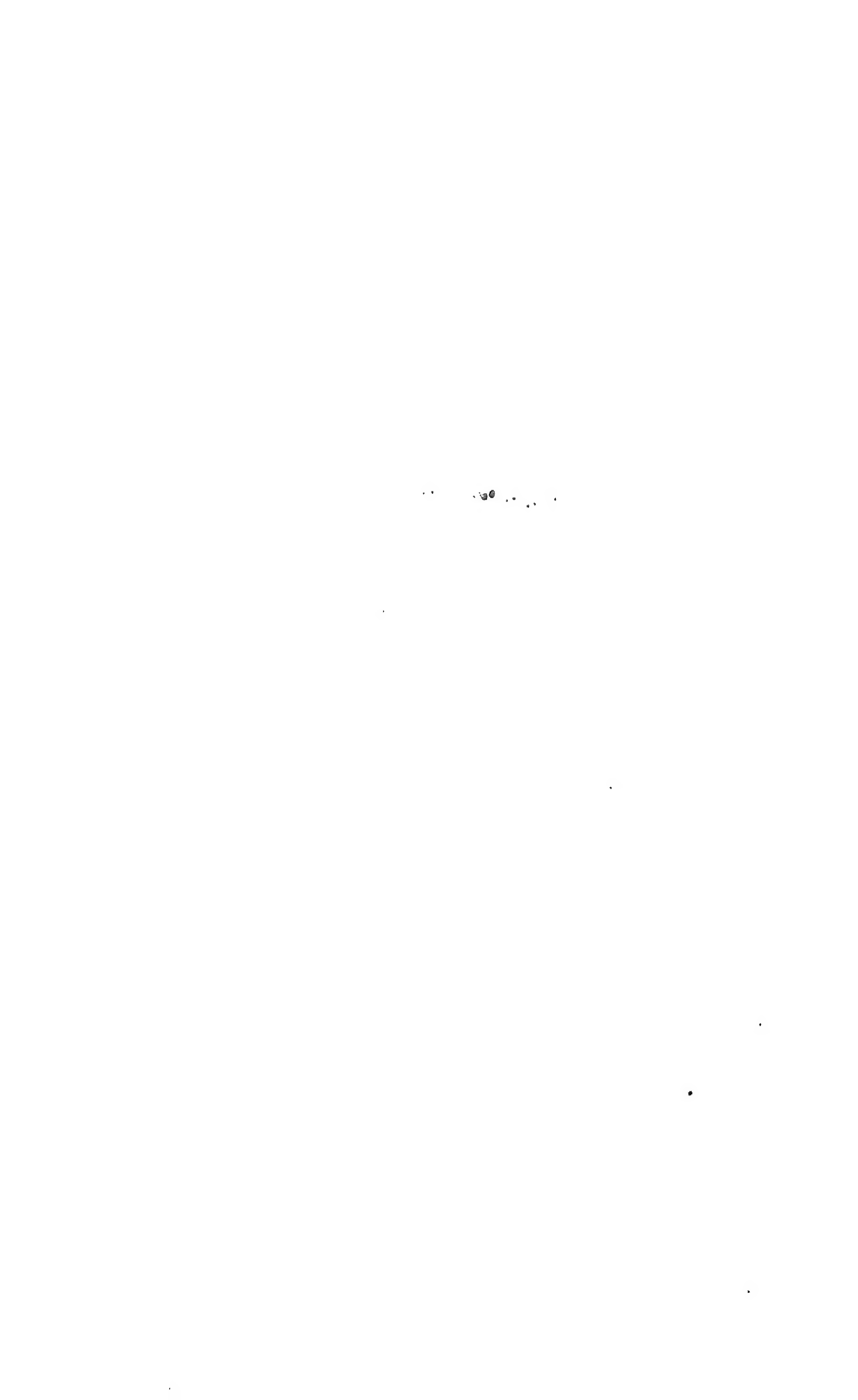


अष्टछाप-काव्य
का
सांस्कृतिक मूल्यांकन

(लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत प्रबंध)



डा० मायारानी टंडन, पी-एच० डी०



२३ जूलाई, १६६०



प्रकाशक : हिंदी साहित्य भंडार,
गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ

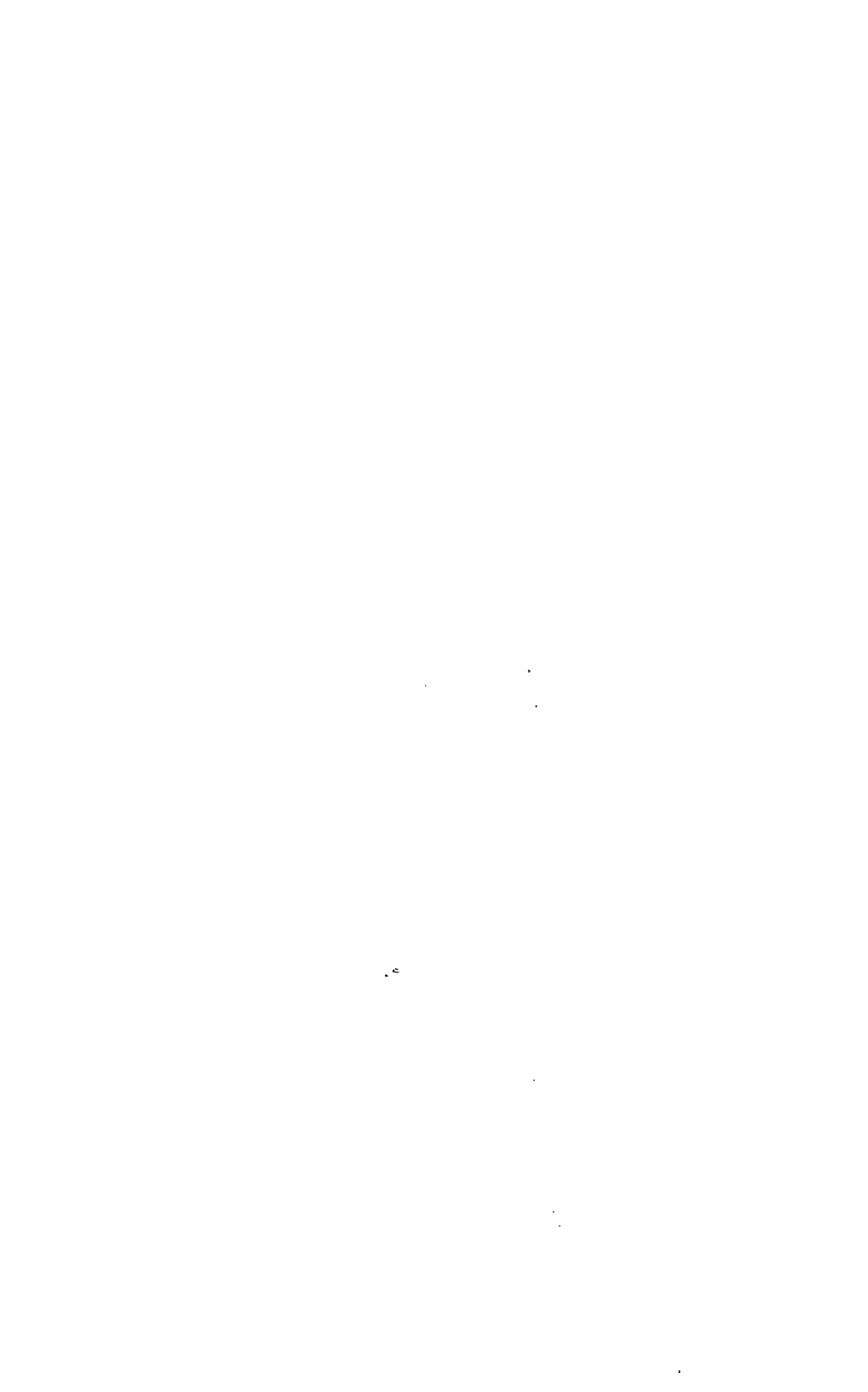
मुद्रक : विद्यामंदिर प्रेस,
रानीकटरा, लखनऊ

मूल्य : पचीस रुपये

श्रद्धेय डा० प्रेमनारायण टंडन

को

प्रणतिपूर्वक



उपोद्घात

किसी देश के शिक्षित निवासी के लिए अपने राष्ट्र की संस्कृति के मूल तत्वों से परिचित होना आवश्यक है। अपनी संस्कृति की अनभिज्ञता की स्थिति में स्वदेश के प्रति प्रेम और आत्मगौरव की भावना का जाग्रत होना सामान्यतया संभव नहीं होता। परंतु इस अभीष्ट की सिद्धि तभी संभव है जब देश-विदेश के सांस्कृतिक विकास का ऐतिहासिक विवरण सुलभ हो। इसीलिए सांस्कृतिक इतिहास-संपादन का कार्य महत्व का समझा जाता है। जिन देशों के जन्म और विकास को जितना कम समय बीता है, उनकी संस्कृति का इतिहास उतना ही सीधा-सादा है। कठिनाई तो ऐसे देशों के सांस्कृतिक विकास के अंकन में होती है जिनको सभ्य हुए कई सहस्र वर्ष बीत चुके हैं और जिनकी संस्कृति की अविच्छिन्न धारा आज तक अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित है। भारतवर्ष ऐसे ही देशों में है।

हमारे देश की संस्कृति का इतिहास लगभग चार सहस्र वर्षों का है। देश और विदेश के अनेक इतिहासकारों ने राजनीतिक इतिहास के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के कुछ पक्षों पर भी विचार किया है; परंतु साहित्यिक ग्रन्थों के आधार पर युग-विशेष के साहित्यिक अध्ययन का महत्वपूर्ण कार्य अभी कम ही हुआ है। संस्कृत साहित्य के प्रमुख ग्रन्थों को लेकर डा० वासुदेवशरण अग्रवाल प्रभृति विद्वानों के कुछ उच्च कोटि के ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं; परंतु हिंदी के किसी युग के साहित्य से संबंधित वैसा कार्य अभी तक नहीं हो सका है। मुझे हर्ष एवं संतोष है कि लखनऊ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अंतर्गत सांस्कृतिक अध्ययन का एक सफल प्रयास हुआ है जिसे कुमारी मायारानी ने संपन्न किया है। इनके इस शोधपूर्ण ग्रन्थ को स्वीकृत करके लखनऊ विश्वविद्यालय ने इन्हें पी-एच. डी. की उपाधि प्रदान की है।

हिंदी साहित्य के इतिहास में अष्टछाप-काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है।

इस कृष्ण-काव्य का भक्ति और दर्शन-विषयक विशिष्ट अध्ययन 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय' नामक मेरे ग्रन्थ में हो चुका है। सांस्कृतिक दृष्टि से उक्त काव्य के मूल्यांकन का कार्य शेष था। इसी विषय को लेकर प्रस्तुत प्रबंध लिखा गया है। अपने ढंग का हिंदी में सर्वप्रथम प्रयास होने के कारण यह प्रबंध बहुत अंशों में सर्वथा मौलिक है।

प्रस्तुत प्रबंध में विषय-प्रवेश और उपसंहार को छोड़कर नौ अध्याय हैं जिनमें से प्रथम छह में अष्टछाप-काव्य के आधार पर प्राकृतिक वातावरण, सामान्य, पारिवारिक और सामाजिक जीवन-चर्या, वाणिज्य-व्यवसाय और जीविका के साधन एवं राजनीतिक जीवन-चित्रण पर प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार अंतिम परिच्छेद में अष्टछापी कवियों के साहित्य, कला और विज्ञान-विषयक विचार दिये गये हैं। ये सातों परिच्छेद विदुषी लेखिका ने अत्यंत परिश्रम से लिखे हैं और सर्वथा मौलिक हैं। शेष दोनों परिच्छेद भक्ति और दर्शन से संबंध रखते हैं। इनका जो भाग सांप्रदायिक और सैद्धांतिक विवेचन से युक्त है, उसके लिए स्वयं लेखिका ने मौलिकता का दावा नहीं किया है; हाँ, भक्ति-विषयक चर्चा के अंतर्गत धार्मिक कृत्यों का वर्णन किसी अंश में मौलिक कहा जा सकता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध लखनऊ विश्वविद्यालय के सहायक प्रोफेसर डा० प्रेमनारायण टंडन के निर्देशन में लिखा गया है। मुझे यह कहते हुए बहुत हर्ष होता है कि उनके निर्देशन में लिखा गया यह प्रयास निश्चय ही एक सफल कृति है। डा. मायारानी के परिश्रम और अध्ययन की भी मैं प्रशंसा करता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आगे भी उनकी लेखनी से और भी महत्व के ग्रन्थ लिखे जायँगे। उनके लिए मेरी मंगल-कामना है।

दीनदयालु गुप्त
एम. ए., एल-एल. बी., डी. लिट्.
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष
हिंदी एवं आधुनिक भाषा-विभाग

२३ जूलाई, १९६०
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

निवेदन

हिन्दी साहित्य के इतिहास में अष्टछाप-काव्य का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है और अष्टछापी कवियों में सर्वोपरि सूरदास को गोस्वामी तुलसीदास के बाद प्रथम स्थान देने में हिंदी के सभी विद्वान एकमत हैं। परमानंददास और नंददास भी अपने युग के प्रथम श्रेणी के काव्यकारों में हैं। अष्टछाप के अन्य कवियों, यथा कुंभनदास, कृष्णदास, गोविंद-स्वामी, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास के काव्यों के सुसंपादित रूप में प्रकाशित न हो सकने के कारण यद्यपि उनका सम्यक् मूल्यांकन अभी तक नहीं किया जा सका है, तथापि हिंदी के विद्वान इस दिशा में भी प्रयत्नशील हैं। सूरदास, परमानंददास, नंददास आदि के काव्य को लेकर अब तक जो कुछ लिखा गया है वह मुख्यत: उनके जीवन-वृत्त, काव्य की प्रामाणिकता, उनकी काव्य-कला और भक्ति तथा दर्शन-संबंधी उनके विचारों और सिद्धांतों से ही संबंध रखता है। इस प्रकार प्रस्तुत प्रबंध का विषय नवीन और उसका प्रतिपादन कई दृष्टियों से सर्वथा मौलिक है।

प्रस्तुत प्रबंध में विषय-प्रवेश और मूल्यांकन के अतिरिक्त सांस्कृतिक अध्ययन के नौ पक्षों पर विचार किया गया है। प्रथम परिच्छेद प्राकृतिक वातावरण से संबंधित है जिसको वल्लभ-संप्रदायी भक्त अपने परमाराध्य का 'नित्य लीला-धाम' मानते हैं और जहाँ अष्टछापी कवियों ने अपने काव्य-काल का अधिकांश समय व्यतीत किया था। यह परिच्छेद प्रमुख रूप से तीन भागों में विभाजित है—प्राकृतिक स्थान, वनस्पति वर्ग और मानवेतर प्राणी। इनके सोदाहरण विवेचन से व्रज के भौगोलिक वातावरण का परिचय स्पष्ट रूप से मिल जाता है।

द्वितीय परिच्छेद अष्टछाप-काव्य में चित्रित सामान्य जीवन के चित्रण को लेकर लिखा गया है। उसके सात उपशीर्षक हैं—आवास एवं अन्य विचरण स्थान, खानपान, वस्त्र, शृंगार-प्रसाधन, जीवनोपयोगी सामान्य और विशेष वस्तुएँ, धातु एवं खनिज पदार्थ

तथा वाहन । इस प्रकार यह परिच्छेद उन व्रजवासियों के सामान्य जीवन का परिचय कराता है जिनके मध्य में अष्टछापी कवियों के परमाराध्य पले थे और जिनको अपनी रसमय लीलाओं से इस प्रकार आनंदित किया था कि उनके जीवन से देव-वर्ग को भी ईर्ष्या होने लगी थी ।

तृतीय परिच्छेद में अष्टछापी कवियों के काव्य में चित्रित पारिवारिक जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है । यह परिच्छेद चार उपशीर्षकों में विभाजित है—परिवार का संगठन और संबंधी, पारिवारिक जीवन-चर्या, पारिवारिक शिष्टाचार और संस्कार-वर्णन । इनमें अंतिम को छोड़कर प्रथम तीनों उपशीर्षकों की सामग्री के लिए समस्त अष्टछाप-काव्य की छानबीन करनी पड़ी है, क्योंकि अष्टछापी कवियों का ध्येय प्रत्यक्ष रूप से पारिवारिक चित्रण नहीं था ।

चौथे परिच्छेद ने, जिसमें सामाजिक जीवन-चित्रण की विवेचना है, प्रस्तुत प्रबंध के सबसे अधिक पृष्ठ घेर लिये हैं । यह परिच्छेद छह उपशीर्षकों में विभाजित है—सामाजिक व्यवस्था, मनोविनोद, पर्वोत्सव, सामाजिक लोकाचार और लोक-व्यवहार एवं विश्वास तथा मान्यताएँ । इन छहों उपशीर्षकों से संबंधित विषय पुनः अनेक उपविभागों में बँटा हुआ है । इस प्रकार यह परिच्छेद जितना विस्तृत है, उतना ही रोचक भी है और इससे व्रज के सामाजिक जीवन का अच्छा परिचय मिल जाता है ।

पाँचवाँ परिच्छेद वाणिज्य, व्यवसाय और जीविका के साधनों से संबंध रखता है । आरंभ में इस परिच्छेद को 'सामाजिक जीवन' के ही उपशीर्षक के रूप में रखा गया था, परंतु उस लेख के बहुत बढ़ जाने पर इसे स्वतंत्र परिच्छेद के रूप में देना ही उचित प्रतीत हुआ । इसके पाँच उपशीर्षक हैं—व्यापारिक स्थान, रीति और वस्तुएँ; व्यापार के रूप और साधन, विविध व्यवसाय और व्यवसायी, जीविका के विविध साधन-रूप एवं अन्य व्यवसायी वर्ग । सामान्यतया काव्य, और विशेषतया गीतिकाव्य, में वाणिज्य और व्यवसाय एवं जीविका-साधन-रूपों के विवेचन के लिए कोई अवकाश नहीं रहता; परंतु लगभग पचास पृष्ठ का यह परिच्छेद लिखे जाने की सामग्री अष्टछापी गेय काव्य में मिल जाना एक ऐसी विशेषता है जो हिंदी-साहित्य के संभवतः किसी भी युग के कवियों में इतने स्पष्ट रूप में नहीं मिल सकेगी ।

यही बात छठे परिच्छेद के संबंध में भी कही जा सकती है जिसमें राजनीतिक जीवन-संबंधी अष्टछापी कवियों के विचार दिये गये हैं । इस लेख के उपशीर्षकों की

संख्या पाँच है—राजवर्ग का संगठन और उद्देश्य, शासन - व्यवस्था, सेना और युद्ध, राजस्व एवं राजनीति-संबंधी अन्य बातें ।

सातवें परिच्छेद में अष्टछापी कवियों के भक्ति और धर्म-संबंधी तथा आठवें में उनके दार्शनिक विचार दिये गये हैं । इनमें प्रथम परिच्छेद तीन उपशीर्षकों—सांप्रदायिक विचार और भक्ति के विविध रूप, सामान्य धार्मिक विचार एवं धार्मिक कृत्य—में विभाजित है और द्वितीय में ब्रह्म, जीव, जगत-संसार, माया, मुक्ति, रास एवं गोपी के संबंध में अष्टछापी कवियों के विचार दिये गये हैं ।

नवाँ परिच्छेद अष्टछापी कवियों के साहित्य, कला और विज्ञान-संबंधी विचारों का परिचायक है एवं 'उपसंहार' में उनके भारतीय तथा विदेशी संस्कृति-विषयक दृष्टिकोण की संक्षिप्त विवेचना करने के पश्चात् , संक्षेप में ही, उनके काव्य के सांस्कृतिक महत्व पर प्रकाश डाला गया है ।

इस प्रकार विषय-प्रवेश और उपसंहार को छोड़कर प्रबंध के नौ परिच्छेदों में सात तो सर्वथा मौलिक हैं ही, भक्ति एवं दार्शनिक विचारों के प्रतिपादन वाले दोनों परिच्छेदों के सांप्रदायिक और सैद्धांतिक विवेचन को छोड़कर, धार्मिक विचार और धार्मिक कृत्य की चर्चा भी इस प्रबंध का मौलिक अंश है । हिंदी साहित्य के किसी अंग को लेकर इस प्रकार का कोई सांस्कृतिक अध्ययन अब तक प्रकाश में नहीं आया है । इस कारण प्रस्तुत प्रबंध की मौलिकता निस्संदेह निर्विवाद है ।

अष्टछापी कवियों में सूरदास के लगभग पाँच हजार और परमानंददास के पंद्रह सौ पदों, नंददास के बारह छोटे-बड़े ग्रंथों के अतिरिक्त लगभग डेढ़ सौ पद तथा शेष कवियों में कृष्णदास को छोड़कर प्रत्येक के तीन से चार सौ तक पद प्रकाश में आ चुके हैं । रचना-विस्तार की दृष्टि से इन आठों कवियों का जो अनुपात है, वही विभिन्न विषयों से संबंधित उनके काव्य में प्राप्त उदाहरणों में भी है । सूरदास का काव्य, विस्तार की दृष्टि से यदि अष्टछापी कवियों में सबसे बढ़कर है तो उसमें प्राप्त विविध विषयों के उदाहरण भी अधिक हैं । यही कारण है कि प्रस्तुत प्रबंध में उद्धृत पंक्तियों में सबसे अधिक संख्या सूरदास की ही है । इससे उस महाकवि की बहुज्ञता का स्पष्ट रूप से परिचय मिलता है । अन्य कवियों में परमानंददास, कुंभनदास और गोविंदस्वामी के उदाहरणों की संख्या चतुर्भुजदास, कृष्णदास और छीतस्वामी से अधिक है; क्योंकि अनेक विषयों पर प्राप्त उनके पद सांस्कृतिक विवेचन की दृष्टि से सामान्य ही हैं ।

प्रस्तुत प्रबंध आठ कवियों से संबंध रखता है और संप्रदाय की एकता होने पर भी संस्कारगत विविधता के कारण उनके स्वभाव, विचार और आदर्श में भिन्नता के दर्शन होते हैं। ऐसी स्थिति में विषय के प्रामाणिक विवेचन के लिए उचित यही था कि समान विचारवाले प्रसंगों को छोड़कर मत-भिन्नता वाले स्थलों पर तो सभी कवियों के विचार सोदाहरण दिये जाते। अनेक स्थलों पर यद्यपि प्रस्तुत प्रबंध में ऐसा किया गया है, तथापि कुछ स्थलों पर, विस्तार-भय से, तद्विषयक संकेत करके ही संतोष करना पड़ा है। इसी प्रकार प्रबंध का कलेवर बहुत बढ़ते देखकर उदाहरणों के सुलभ होते हुए भी अनेक प्रसंगों में उनकी संख्या घटानी पड़ी है। यद्यपि उद्धरण न देकर केवल प्रसंग-निर्देश या पद-संख्या देकर प्रबंध की पृष्ठ-संख्या सहज ही घटायी जा सकती थी, तथापि विषय की विवरणात्मकता के कारण वैसा करना मुझे उचित नहीं प्रतीत हुआ। कारण, वैसी स्थिति में विषय के विवेचन में वांछनीय स्पष्टता और रोचकता संभवतः न आ पाती। प्रस्तुत प्रबंध में अष्टछापी कवियों के काव्य से लगभग दस हजार उद्धरण दिये गये हैं जिनका चयन विषय की स्पष्टता के लिए किया गया है। प्रबंध का कलेवर बढ़ने न देने के उद्देश्य से प्रायः सर्वत्र उतना ही अंश उद्धृत किया गया है जितना विषय की उपयुक्तता के लिए आवश्यक था। सारे प्रबंध में पूरे पद कदाचित् ही कहीं दिये गये हैं और जहाँ उनको उद्धृत करने के लिए अवकाश भी था, वहाँ प्रबंध को बढ़ने न देने के लिए केवल पद-प्रसंग सूचित करके ही काम चलाया गया है। उदाहरण के लिए 'सामान्य जीवन-चित्रण' के अंतर्गत भोजन के वर्णन में 'सूरसागर' के दशम स्कंध से १८३, २११, ८१० आदि कई लंबे पद उद्धृत किये जा सकते थे; परंतु वैसा न करके केवल पद-संख्या सूचित करना ही पर्याप्त समझा गया है जिससे विषय में रुचि रखनेवाले पाठक तो लाभ उठा सकें और प्रबंध के कलेवर में भी अनावश्यक वृद्धि न हो। इसी प्रकार पद के लंबे चरणों का उतना ही भाग सर्वत्र उद्धृत किया गया है जितना प्रसंग से घनिष्ठतम रूप से संबंधित है। इसलिए सारे प्रबंध में अष्टछाप-काव्य से उद्धृत पूरे पदों की संख्या बहुत थोड़ी है और विवश होकर यदि कहीं पूरे पद उद्धृत भी किये गये हैं तो वे छोटे और मार्मिक हैं एवं प्रसंग की स्पष्टता में सहायक होने के साथ-साथ विषय-विशेष का प्रतिनिधित्व करने में भी सर्वथा समर्थ सिद्ध होंगे।

जिन-जिन प्रसंगों में विविध प्रकार के व्यंजनों, वस्त्राभूषणों आदि की सूचियाँ दी गयी हैं, वहाँ पाठक की सुविधा के लिए उनको अकार-क्रम से ही देने का प्रयत्न किया गया है। ऐसा करने से लेखिका को अतिरिक्त समय अवश्य देना पड़ा है,

परंतु इससे पाठकों को विशेष सुविधा होगी जिससे लेखिका अपना श्रम सार्थक समझती है।

'सूरसागर' के पद-निर्देशन में विशेष नीति अपनायी गयी है। नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित उसके सर्वसुलभ संस्करण के प्रथम स्कंध में ३४३ पद हैं और उसके दो से नौ तथा ग्यारहवें और बारहवें स्कंधों की पद-संख्या इससे कम है। 'सूरसागर' का केवल दशम स्कंध, प्रथम से बड़ा है। इसलिए दशम स्कंध के ३४३वें पद तक से दिये गये उदाहरणों के साथ तो स्कंध की १० संख्या दी गयी है, आगे के पदों के साथ नहीं। अन्य स्कंधों के उदाहरणों के साथ सर्वत्र स्कंध-विशेष का निर्देश कर दिया गया है। ऐसा करना इसलिए आवश्यक था जिससे 'सूरसागर' से परिचित अध्येता स्कंध की सूचना पाते ही विषय को भी समझ ले। उदाहरण के लिए सभा के 'सूरसागर' के प्रथम स्कंध में विनयपद, द्वितीय से नवें तक पौराणिक प्रसंग, दशम : पूर्वार्द्ध में गोकुल, वृन्दावन और मथुरा-लीला, एवं दशम : उत्तरार्द्ध में द्वारका-लीला की ओर विज्ञ पाठक का ध्यान केवल स्कंध-संख्या देखते ही पहुँच सकता है।

प्रस्तुत प्रबंध में अष्टछापी कवियों के सांस्कृतिक विचारों की तुलना में संस्कृत और हिन्दी के अन्य कवियों के तत्संबंधी विचार भी दिये जा सकते थे; परंतु प्रबंध का कलेवर बहुत बढ़ते देखकर इस लोभ का भी संवरण करना पड़ा है। केवल कुछ ही स्थलों पर 'वाल्मीकि रामायण', 'श्रीमद्भागवत', 'हर्षचरित', 'कादंबरी', 'शकुंतला', 'पद्मावत', 'रामचरित-मानस', 'गीतावली', 'कवितावली', 'साकेत' आदि काव्यों के बहुत संक्षिप्त उदाहरण देकर अथवा केवल पृष्ठ-निर्देश करके ही मुझे संतोष करना पड़ा है।

प्रस्तुत प्रबंध को सुचारु रूप देने के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग एवं आधुनिक भारतीय भाषा-विभाग के अध्यक्ष डा० दीनदयालु गुप्त ने अष्टछापी कवियों का हस्तलिखित संग्रह प्रदान करके मेरा कार्य तो सुगम कर ही दिया, समय-समय पर अनेक बहुमूल्य सुझाव देकर मुझे सदैव प्रोत्साहित किया। हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान डाक्टर बलदेव प्रसाद जी मिश्र ने प्रबंध के अधिकांश देखकर अनेक उपयोगी सुझाव एवं डा० मुंशीराम शर्मा ने अनेक आवश्यक निर्देश देने की कृपा की। इन सब गुरुजनों का मैं हृदय से आभार मानती हूँ। जिन विद्वानों के ग्रंथों से इस प्रबंध में विशेष सहायता ली गयी है, उनके, विशेषकर डा० दीनदयालु गुप्त, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल और डा० मुंशीराम शर्मा के प्रति भी अपनी कृतज्ञता सविनय प्रकट करती हूँ।

प्रस्तुत प्रबंध लखनऊ विश्वविद्यालय के सहायक हिंदी प्रोफेसर डा० प्रेमनारायण

टंडन के निर्देशन में लिखा गया है। प्रबंध की मूल प्रेरणा देकर जहाँ उन्होंने मेरे कार्य की दिशा निर्धारित की, वहीं कार्य-काल में सतत प्रोत्साहन और सक्रिय निर्देशन देकर मेरा मार्ग भी प्रशस्त और सुगम किया। यों प्रस्तुत प्रबंध उन्हीं के आशीर्वाद और अनुग्रह का परिणाम है जिनकी कृपा का मूल्य औपचारिक अथवा व्यावहारिक कृतज्ञता-विज्ञप्ति द्वारा न आँककर आत्मानुभूत करने में ही मुझे हार्दिक संतोष है। प्रबंध की न्यूनताएँ अवश्य मेरी अपनी हैं।

हिंदी साहित्य-भंडार के अध्यक्ष श्री तेजनारायण टंडन ने प्रस्तुत प्रबंध के प्रकाशन का समुचित प्रबंध करके मुझे इधर-उधर भटकने से बचा लिया जिसके लिए मैं उनका भी बहुत आभार मानती हूँ।

लेखिका।

विषय-सूची

१. विषय-प्रवेश २५-३५

संस्कृति और उसका क्षेत्र—२७, सांस्कृतिक मूल्यांकन से तात्पर्य—३०, अष्टछाप-काव्य के अब तक प्रस्तुत किये गये सांस्कृतिक अध्ययन का मूल्यांकन—३१, प्रस्तुत प्रबंध की मौलिकता, प्रस्तुत मूल्यांकन के लिए प्राप्त प्रामाणिक अष्टछाप-काव्य—३२, अष्टछापी कवियों के वर्ण्य विषय—३३।

२. प्राकृतिक जीवन-चर्या ३७-११८

(क) व्रज और व्रजमंडल—४०, प्राकृतिक स्थान, वन—४१, उपवन—४२, पर्वत, अन्य पर्वत—४३, नदी—४४, अन्य नदियाँ—४५, अन्य स्थान—४६।

(ख) वनस्पति-वर्ग—४८, पुष्पों के वृक्ष—४६, फलों के वृक्ष—५१, झाड़-लता आदि—५४, पौराणिक वृक्ष—५६, वृक्षों का उपमान या प्रतीक-रूप में उल्लेख—५७, फल, मीठे फल—५८, खट्टे फल, अन्य फल—६१, सूखे फल या मेवे, तरकारियाँ और साग—६२, तरकारियाँ—६३, साग—६८, फूल—६६, पत्ते—७६।

(ग) मानवेतर प्राणी, पशु, वन्य पशु—७७, सामान्य पालतू पशु—७६, सवारी के लिए उपयोगी पालतू पशु—८६, जलचर—८६, कीट-पतंग—६०, कीट—६१, पतंग—६३, पक्षी—६५, लोक-प्रिय पक्षी—६६, लोक-तिरस्कृत पक्षी—१०८, पौराणिक पशु-पक्षी और कीट—११४, समीक्षा—११७।

३. सामान्य जीवन-चित्रण ११६-१६४

(क) आवास एवं अन्य विचरण-स्थान—१२१।

(ख) खानपान, भोजन के समय और पदार्थ, कलेऊ—१२४, दोपहर का भोजन—१२५, छाक—१२६, बियारी—१२७, घी और तेल—१२८, मसाले—१२६, पेय पदार्थ—१३०, तांबूल—१३२, समीक्षा—१३३।

(ग) वस्त्र—१३४, बालकों के वस्त्र—१३६, पुरुषों के वस्त्र—१३७, बालिकाओं के वस्त्र, स्त्रियों के वस्त्र—१३८, समीक्षा—१४१।

(घ) शृंगार-प्रसाधन, उबटन—१४१, स्नान, केश-विन्यास—१४२, माँग—१४३, अंजन, महावर, बिंदी और तिलक—१४४, तिल—१४५, मेंहदी, गंध-द्रव्य, आभूषण—१४६, पुरुषों के आभूषण—१४७, स्त्रियों के आभूषण, शीश के आभूषण—१४८, माथे के आभूषण, कान के आभूषण—१४६, नाक के आभूषण, गले के आभूषण—१५०, बाहु के आभूषण, कलाई के आभूषण—१५१, कटि के आभूषण—१५२, पैर के आभूषण, फूलमाल—१५३, पान रचाना, शृंगार में सहायक दर्पण—१५४, समीक्षा—१५४।

(ङ) व्यवहार की सामान्य वस्तुएँ, दैनिक उपयोग की वस्तुएँ—१५५, पात्र, दैनिक व्यवहार के पात्र—१५६, अन्य पात्र—१५७, बैठने और सोने के उपकरण—१५८, लिखने के उपकरण, रंग—१५६।

(च) धातु एवं खनिज पदार्थ—१६१।

(छ) वाहन—१६३।

४. पारिवारिक जीवन-चित्रण १६५-२२५

(क) परिवार का संगठन और संबंधी—१६७, दादा, दादी, नाना-नानी, माता-पिता—१६८, माता-पिता के समवर्गीय—१७०, भाई-भावज, बहन-बहनोई—१७१, पति-पत्नी—१७२, देवर-देवरानी, ननद-ननदोई, पुत्र-पुत्रबधू—१७४, पुत्री-जामाता, अन्य संबंधी—१७६, समधी-समधिनि, सौति, अनेक संबंध-सूचक 'तात' शब्द—१७७, संबंध-स्थान-सूचक शब्द, परिवार के दास-दासी, परिवार के अतिथि—१७८,।

(ख) पारिवारिक जीवन-चर्या, पुरुषों के कार्य, स्त्रियों के कार्य—१७६।

(ग) पारिवारिक शिष्टाचार—१८१, अभिवादन के विविध रूप,

पालागन—१८२, प्रणाम या प्रनाम—१८३, जुहार, हाथ जोड़ना और बिनती करना, आशीर्वाद के विविध रूप, आशीर्वाद या असीस—१८४, आलिंगन करना (कंठ लगाना), प्रीति जनाना—१८५, पत्र-संबंधी शिष्टाचार—१८६।

(घ) उत्सव तथा संस्कार—१८७, जन्मोत्सव—१८६, जातकर्म और जन्मोत्सव—१६१, छठी—१६५, नामकरण—१६८, निष्क्रमण, अन्नप्रासन—१६६, वर्षगाँठ—२००, चूड़ाकर्म, कर्णवेध—२०१, उपनयन (यज्ञोपवीत)—२०३, वेदारंभ, विवाह—२०४, वर-प्रेक्षण—२०७, सगाई या मँगनी और वाग्दान, सगाई—२०८, वाग्दान, निमंत्रण—२०६, मंडपकरण—२१०, हल्दी-तेल चढ़ाना, वर की सज्जा—२११, कंकण-बंधन, देवी-पूजन—२१३, वधू-गृहागमन, मधुपर्क—२१४, विवाह, पाणिग्रहण, गठबंधन—२१५, अग्नि-प्रदक्षिणा, कंकण-मोचन—२१६, जुआ खेलना—२१७, गाली गाना, न्यौछावर देना या भूर बाँटना, विदा—२१८, दायज या दहेज—२२०, गृह-प्रवेश, अंत्येष्टि—२२१, समीक्षा—२२५।

५. सामाजिक जीवन-चित्रण २२७-४१३

(क) सामाजिक व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था—२२६, अष्टछाप-काव्य में वर्ण-व्यवस्था-संबंधी उल्लेख—२३१, ब्राह्मण—२३२, क्षत्रिय—२३४, शूद्र, आश्रम-व्यवस्था—२३५, ब्रह्मचर्याश्रम - चर्चा—२३६, गृहस्थाश्रम चर्चा, वानप्रस्थाश्रम चर्चा, संन्यासाश्रम चर्चा—२३७।

(ख) अष्टछाप-काव्य में मनोविनोद—२३७, बाल्यावस्था के खेल और मनोविनोद—२३८, कम दौड़-धूप के खेल—२३६, दौड़-धूप के खेल, आँखमिचौनी—२४१, छुआ-छुऔवल—२४३, वृक्षारोहण—२४४, बैल-बैल, कंदुक-क्रीड़ा—२४५, चौगान-बटा—२४६, अन्य खेल, पतंग—२४७, कहानी सुनाना, पहेली-बुझौवल—२४८, शर-क्रीड़ा, बालिकाओं के खेल—२४६, युवकों के खेल, साहस के खेल, चौगान—२५०, मल्लयुद्ध—२५२, मृगया—२५४, बौद्धिक दाँव-पेच के खेल—२५५, द्यूत-क्रीड़ा—२५७, कला-कौशल के खेल—२५६, मनोरंजन के अन्य साधन, कुंज-विहार—२६०, जल-विहार—२६१, पशु-पक्षियों से क्रीड़ा—२६४, नट-विद्या, समीक्षा—२६५।

(ग) पर्वोत्सव—२६६, ऋतूत्सव, फूलमंडली—२६७, हिंडोरा—२६८,

रास —२६६, देव-प्रबोधिनी, डोल—२७१, लीलावतारोत्सव, रामनवमी —२७२, नृसिंह-जयंती—२७३, वामन-जयंती, रथ-यात्रा—२७४, जन्माष्टमी २७७, राधाष्टमी—२७८, गोपाष्टमी—२८०, पवित्रा—२८२, अक्षय-तृतीया २८४, अन्य पर्वोत्सव, संवत्सर—२८६, मनगौर, सावनतीज—२८७, साँझी २८८ ।

(घ) त्यौहार—२८८, रक्षाबंधन—२८६, दशहरा—२६२, दीपावली, धनतेरस—२६५, रूपचतुर्दशी—२६६, दीपमालिका—२६७, अन्नकूट : गोवर्द्धन और गोधन-पूजा—३०१, भाई-दूज, होली—३०६, समीक्षा—३५१ ।

(ङ) लोकाचार और लोक-व्यवहार—३५२, सम्मान-प्रदर्शन, नमन-नमस्ते, नमस्कार —३५३, साष्टांग अथवा दंडवत् प्रणाम, पालागन, जुहार —३५४, विनम्र व्यवहार—३५५, अतिथि-सत्कार—३५६, स्वागत-सत्कार ३५७, अतिथि-सेवा, अन्य लोकाचार, उपहार भेजना—३५८, शुभ कामना —३५६ ।

(च) विश्वास और मान्यताएँ, पौराणिक विश्वास—३५६, चौबीस अवतार—३६०, परब्रह्म के अवतार राम, परब्रह्म के अवतार कृष्ण—३६१, राम और कृष्ण की एकता—३६४, परमशक्ति की अवतार सीता, सीता और राधा की एकता—३६५, राम-कृष्ण की लीलाएँ देखने देवताओं का आना —३६६, अन्य देवताओं-संबंधी पौराणिक प्रसंग—३७१, पौराणिक पशु, पक्षी, वृक्ष, वाहन, सर्प आदि—३७३, लोकमान्यताएँ और सामान्य विश्वास, परंपरागत मान्यताएँ, भाग्यवाद—३७४, कर्मवाद—३७७, पुनर्जन्मवाद, ज्योतिष के प्रति आस्था—३७६, स्वस्तिवाचन के प्रति विश्वास, भूत-प्रेतादि के प्रति विश्वास—३८०, उपचार-संबंधी विश्वास, नजर लगना—३८१, डिठौना—३८३, राई-नोन उतारना, तिनका तोड़ना—३८४, निछावर करना, पानी उतार कर पीना—३८५, सयानों से हाथ दिलाना, झाड़-फूँक और टोना-टोटका—३८६, जंत्र-मंत्र—३८७, शकुन—३८६, शकुन-सूचक मनः-स्थिति, शकुन-सूचक प्राकृतिक व्यापार—३६०, शकुन-सूचक शारीरिक व्यापार—३६१, जीव-जंतुओं की शकुन-सूचक क्रियाएँ—३६३, अशकुन ३६४, अशकुन-सूचक मनःस्थित, अशकुन-सूचक प्राकृतिक व्यापार—३६५, अशकुन-सूचक शारीरिक व्यापार—३६६, जीव-जंतुओं की अशकुन-सूचक

क्रियाएँ—३६७, अन्य विश्वास, स्वप्न-संबंधी विश्वास, आगामी सुख-सूचक स्वप्न—३६८, भावी अनिष्ट-सूचक स्वप्न—४००, भावी गति-विधि-निर्देशक स्वप्न—४०३, अन्य स्वप्न—४०४, शपथ पर विश्वास—४०५, शाप या कोसने में विश्वास—४०६, आशीर्वाद में विश्वास—४०८, कवि-प्रसिद्धियाँ, पशुओं से संबंधित कवि-प्रसिद्धियाँ—४०६, पक्षियों से संबंधित कवि-प्रसिद्धियाँ—४१०, कीट-पतंग-संबंधी कवि-प्रसिद्धियाँ—४११, पुष्प-संबंधी कवि-प्रसिद्धियाँ, नक्षत्र-संबंधी कवि-प्रसिद्धियाँ—४१२, समीक्षा—४१३ ।

६. वाणिज्य, व्यवसाय तथा जीविका के साधन-रूप ४१५-४७०

(क) व्यापारिक स्थान, रीति और वस्तुएँ—४१७, व्यापार की स्थानीय वस्तुएँ, सुदूर प्रदेश से आनेवाली वस्तुएँ—४३० ।

(ख) व्यापार के रूप और साधन—४३०, टका—४३२, दमड़ी, दाम, रूपा—४३३ ।

(ग) विविध व्यवसाय और व्यवसायी, अहीर—४३५, कृषक—४३७, बनजारा—४३८, पंसारी, महाजन—४३६, जौहरी और सर्राफ, बजाज, काछी ४४१, कुलाल, मनिहार—४४२, गंधी, तमोली, चोलिनी, तेली—४४३, पारधी—४४४, कसाई—४४५ ।

(घ) जीविका के विविध साधन-रूप—४४५, बुद्धिजीवी जीविकोपार्जक, मान्य वर्ग—४४६, आचार्य, वैद्य—४४७, सामान्यवर्ग, कलाकार वर्ग—४५०, चित्रकार, मूर्तिकार, वास्तुकलाकार, स्वर्णकार—४५१, अन्य व्यवसायी, दरजी, बढ़ई—४५२, रँगरेज, रजक, श्रमजीवी जीविकोपार्जक, सामान्य श्रमजीवी वर्ग—४५३, कहार, केवट—४५४, नाई, बारी, माली—४५७, दाई, धाय—४५८, विशेष श्रमजीवी वर्ग—४५६, अन्य वर्ग, गुणी—४६०, मनरंजनकारी जीविकोपार्जक, नट या बाजीगर, गनिका—४६३, प्रशस्तिगायक जीविको—४६४, याचक वर्ग, ढाढ़ी—४६५, जगा, भिखारी—४६६, तिरस्कृत वर्ग—४६७, समीक्षा—४६६ ।

७. राजनीतिक जीवन-चित्रण ४७१-४६५

(क) राजवर्ग का संगठन और उद्देश्य—४७३ ।

(ख) शासन-व्यवस्था—४८१ ।

(ग) सेना और युद्ध—४८५।

(घ) राजस्व—४९२।

(ङ) राजनीति-संबंधी अन्य बातें—४९४, समीक्षा—४९५।

८. भक्ति और धर्म-संबंधी विचार ४९६-५५५

(क) सांप्रदायिक विचार और भक्ति के विविध रूप—४९८, श्रवण—५०२, कीर्तन, स्मरण—५०३, पाद-सेवन—५०४, अर्चन—५०५, बंदन ५०६, दास्य—५०७, सख्य—५०८, आत्मनिवेदन—५१४, वात्सल्य-भक्ति—५१५, वात्सल्य-भक्ति का संयोग-पक्ष—५१६, वात्सल्य-भक्ति का वियोग-पक्ष, मधुर-भक्ति—५१८, मधुर-भक्ति का संयोग-पक्ष—५१९, मधुर-भक्ति का वियोग-पक्ष—५२३, भक्ति के विविध रूप—५२६, आदर्श भक्त, सेवा—५२७।

(ख) सामान्य धार्मिक विचार, ज्ञान और योग—५२८, वैराग्य और अनासक्ति—५३१, गुरु-महिमा—५३२, सत्संग-महिमा—५३४, धार्मिक कृत्य, पूजा, इष्टदेवता की पूजा—५३५, कुलदेवता इंद्र की पूजा—५३७, गोवर्द्धन-पूजा, विष्णु की पूजा—५३९, सूर्य की पूजा, शिव-पार्वती की पूजा—५४०, देवी की पूजा—५४२, गणपति और शारदा की पूजा, व्रत—५४३, तीर्थ ५४४, तीर्थस्थान—५४८, दान, तप—५५१, यज्ञ—५५२, श्राद्ध, कथा-श्रवण—५५३, समीक्षा—५५४।

९. दार्शनिक विचार ५५६-५८६

(क) ब्रह्म—५५९।

(ख) जीव—५६६।

(ग) जगत और संसार—५७१।

(घ) माया—५७२।

(ङ) मुक्ति—५७५।

(च) रास—५८०।

(छ) गोपी—५८३, समीक्षा—५८५।

१०. साहित्य, कला और विज्ञान-संबंधी विचार ५८७-६१०

(क) साहित्य संबंधी विचार, वेद और वेदांग—५८८, गीता, श्रीमद्-भागवत तथा अन्य पुराण—५६२, अन्य ग्रन्थ – ५६५, समीक्षा—५६६ ।

(ख) कला-संबंधी विचार, वास्तु-कला—५६६, मूर्तिकला—५६७, चित्रकला, संगीत कला-गायन—५६८, वादन—६०२, तत्‌वाद्य, चमड़ामढ़े बाजे—६०३, तालवाद्य—६०४, सेखर वाद्य—६०५, नृत्यकला—६०६, समीक्षा—६०७ ।

(ग) विज्ञान—६०८, समीक्षा—६१० ।

११. उपसंहार ६११-६२१

(क) अष्टछापी कवियों का भारतीय संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण—६१३ ।

(ख) विदेशी संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण—६१४ ।

(ग) सांस्कृतिक चित्रण की दृष्टि से अष्टछाप-काव्य का महत्व—६१६ ।

१२. नामानुक्रमणिका ६२३-६३२

(क) लेखक—६२५ ।

(ख) ग्रंथ—६२८ ।

(ग) पत्र—६३२ ।

संकेत-सूची

अ०	: अध्याय
अनेकार्थ०	: अनेकार्थमंजरी
अयो० या अयोध्या०	: अयोध्याकांड
अष्ट०	: अष्टछाप
उत्तर०	: उत्तरकांड
काँक०	: काँकरौली
कीर्तन० या कीर्तन सं०	: कीर्तन-संग्रह (दो भाग)
कुंभन०	: कुंभनदास कवि
	: कुंभनदास-पद-संग्रह
कृष्ण०	: कृष्णदास कवि
	: कृष्णदास-पद-संग्रह
गीता०	: गीतावली
गोविं०	: गोविंदस्वामी कवि
	: गोविंदस्वामी-पद-संग्रह
चतु०	: चतुर्भुजदास कवि
	: चतुर्भुजदास-पद-संग्रह
छीत०	: छीतस्वामी कवि
	: छीतस्वामी-पद-संग्रह
तुलसी०	: गोस्वामी तुलसीदास
दशम०	: दशम स्कंध
दो०	: दोहा
दोहा०	: दोहावली
नंद०	: नंददास कवि
	: नंददास काव्य-संग्रह (दो भाग)
पंच०	: पंचमंजरी
पदा०	: पदावली

पदमा० संजी० व्या०	: पदमावत संजीवनी व्याख्या
परमा०	: परमानंददास कवि
	: परमानंद-सागर
परि०	: परिशिष्ट
पृ०	: पृष्ठ
बाल०	: बालकांड
भँवर०	: भँवरगीत
भ्रमर०	: भ्रमरगीत
	: भ्रमरगीत-सार
मान०	: मानमंजरी
मानस०	: रामचरितमानस
मीतल०	: प्रभुदयाल मीतल-अष्टछाप-पदावली
रस०	: रसमंजरी
रामाज्ञा०	: रामाज्ञाप्रश्न
रास०	: रासपंचाध्यायी
रुक्मि० रुक्मिणी० या रुक्मिनी०	: रुक्मिणी-मंगल
रूप०	: रूपमंजरी
लहरी०	: साहित्यलहरी
लहरी० उ०	: साहित्यलहरी उत्तरार्द्ध
श्लो०	: श्लोक
संपा०	: संपादक
सा०	: सूरसागर (सभा)
सारा०	: सूर-सारावली
सा० वें०	: सूरसागर, वेंक्टेश्वर प्रेस
सिद्धां० या सिद्धांत	: सिद्धांतमंजरी
सुंदर०	: सुंदरकांड
सूर०	: सूरदास कवि
सोम० अष्ट० पदा०	: सोमनाथ गुप्त-अष्टछाप-पदावली
श्याम० या स्याम०	: श्याम-सगाई
हर्ष० सां० अध्य०	: हर्षचरित-सांस्कृतिक अध्ययन
हस्त०	: हस्तलिखित

अष्टछाप-काव्य
का
सांस्कृतिक मूल्यांकन

१ विषय-प्रवेश

'संस्कृति' और उसका क्षेत्र—

यों तो 'संस्कृति' शब्द का संबंध 'संस्कार', 'संस्क्रिया या 'संस्कृत' शब्दों से स्थापित किया जाता है, परंतु वस्तुतः अर्थ की दृष्टि से वह अँगरेजी के 'कल्चर' शब्द के अधिक निकट है। संस्कृत के एक विद्वान के अनुसार 'संस्कृति' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'सम् उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से भूषण अर्थ में 'सुट्' का आगम करके 'क्तिन' प्रत्यय करने से 'संस्कृति' शब्द बनता है'[1]। इस व्युत्पत्ति के आधार पर 'संस्कृति' का अर्थ होता है—भूषणयुक्त सम्यक् कृति या चेष्टा। इस वाक्य में 'सम्यक्' शब्द ध्यान देने योग्य है। सामान्य प्राणी की क्रियाएँ अपने मूल रूप में शरीर की प्रकृति के अनुसार स्वच्छंद होती हैं; उनमें स्थान, समय, संपर्क आदि का ध्यान नहीं रखा जाता। परंतु मनुष्य इस प्रकार की स्वच्छंदता को उचित नहीं समझता; वह अपने कार्य-व्यापारों को वही रूप देना चाहता है जो उचित और सम्यक् हो। उक्त व्युत्पत्ति के अनुसार 'संस्कृति' के अर्थ का संबंध ऐसी ही सम्यक् कृति या चेष्टा से जोड़ा गया है। एक अन्य विद्वान ने 'संस्कृति' शब्द का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ 'परंपरागत अनुस्यूत संस्कार' बताया है[2]। इन दोनों अर्थों में प्रथम कार्य-प्रधान और द्वितीय संस्कार-प्रधान है।

संस्कृत में 'संस्कृ' धातु के अनेक अर्थ होते हैं; यथा—सजाना, सँवारना, परिष्कृत करना[3] आदि। अँगरेजी के 'कल्चर' शब्द के कुछ अर्थ भी इसी से

१. 'कल्याण', 'हिंदू संस्कृति अंक', पृ० २४।

२. 'कल्याण', 'हिंदू संस्कृति अंक', पृ० ४१।

३. आप्टे के संस्कृत कोश में 'संस्कृ' धातु के ये अर्थ दिये गये हैं—*(1) to adorn, grace, decorate, (2) to refine, polish, (3) to consecrate by repeating mantras, (4) to purify (a person) by scriptural ceremonies, perform purificatory ceremonies over (a person), (5) to cultivate, educate, train, (6) make ready, prepare, equip, fit out, (7) to cook, dress (food), (8) to purify, cleanse, (9) to collect, heap together, (10) to construct, form well or thoroughly.*

मिलते-जुलते हैं; यथा—विचार, रुचि और आचार का शिक्षण तथा परिष्कार; एवं विचार, रुचि और आचार के शिक्षित और परिष्कृत किये जाने की स्थिति[४] आदि। इन अर्थों का उक्त धात्वर्थ से सर्वथा विरोध ही हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। कारण, 'कल्चर' शब्द के इन अर्थों में जिस 'शिक्षण या परिष्कार' को महत्व दिया गया है, उसी की ओर इंगित करनेवाला 'सम्यक्' शब्द ऊपर प्रयुक्त हुआ है। तात्पर्य यह कि जिन कार्यों या व्यापारों से हमारा आचार-विचार सजाया-सँवारा हुआ माना जाय और हमारी रुचि शिक्षित या परिष्कृत समझी जाय, उन सबका संबंध 'संस्कृति' से है।

उक्त कथन के आधार पर सम्यक् कृतियों और परंपरा से प्राप्त संस्कारों की समष्टि को 'संस्कृति' कह सकते हैं[५]। दूसरे शब्दों में, मानव के हृदय पर विभिन्न कारणों से जो भाव-चित्र उत्पन्न होकर भाषा या कला-कौशल के माध्यम से धर्म, समाज आदि मानवीय कार्य-क्षेत्रों में अनेक रूप धारण कर प्रस्फुटित होते हैं, उन सभी भाव-चित्रों और संस्कार-समुच्चयों को 'संस्कृति' कहना चाहिए। यों व्यापक अर्थ में मानवीय जीवन-यापन की समग्र व्याख्या को 'संस्कृति' समझा जा सकता है। इसमें ज्ञान, विश्वास, शिल्प-कला और अन्य कलाएँ, नैतिकता, नियम, रीति-रिवाज तथा वे सभी अन्य योग्यताएँ समाहित हो जाती हैं, जिन्हें व्यक्ति, समाज का सदस्य होने के नाते, ग्रहण करता है[६]। सारांश यह कि 'संस्कृति' का संबंध मानव के उन वैयक्तिक और सामाजिक कार्यों की अभिव्यक्ति है जिनके द्वारा मानवता को पशुत्व से मुक्ति मिलती है।

४. अँगरेजी की 'आक्सफोर्ड डिक्शनरी' में 'कल्चर' शब्द के ये अर्थ मिलते हैं—*The training and refinement of mind, tastes and manners, the condition of being thus trained and refined, the intellectual side of civilisation, the acquainting ourselves with the best that has been known and said in the world.*

५. श्री महादेव शास्त्री दिवेकर, 'आर्य संस्कृति का उत्कर्षापकर्ष', पहला प्रकरण, पृ० ५।

६. *'Culture is that complex whole which includes knowledge, belief, art, morals, law, custom and other capabilities acquired by man, as member of society'*

—*E. B. Taller, 'Primitive culture', page 1.*

समान संस्कारों वाले मनुष्यों के समूह को ही साधारणतया 'जाति' या 'समाज' समझा जाता है। अतएव समाज की प्रकृति या स्वभाव और आस्था या विश्वास की प्रेरक भावनाओं में प्राय: समान संस्कार रहते हैं। संभवत: इसी कारण संस्कृत की एक प्रचीन उक्ति में, किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन-व्यापारों, सामाजिक संबंधों और मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करनेवाले तत्वों की समष्टि को 'संस्कृति' कहा गया है[७]। इस प्रकार मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाओं[८] और जाति-विशेष के आंतरिक भावों की अभिव्यंजना को 'संस्कृति' समझना चाहिए[९]।

हिंदी के प्रमुख कोशकारों में एक ने संस्कृति को 'रहन-सहन की रूढ़ि' कहा है,[१०] तो दूसरे ने उसे 'आचारगत परंपरा' बताया है[११] और तीसरे ने उसके अंतर्गत मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास-सूचक बातें ली हैं[१२]। इस प्रकार मानव के रहन-सहन और आचार-विचार से संबंधित उन सभी परंपरागत बातों से 'संस्कृति' का संबंध बताया गया है जो उसकी विविध विषयक रुचियों के परिष्कार और विविध अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों के विकास में सहायक होती हैं। यों 'संस्कृति' के दो पक्ष हो जाते हैं। पहले का संबंध उन बातों से रहता है जिनका निर्माण रहन-सहन, आचार-विचार आदि से संबंधित वातावरण, संस्कार, संपर्क आदि के फलस्वरूप हुआ करता है और दूसरे पक्ष का संबंध परंपरा से अर्थात् उन बातों से रहता है जो मानव अपने पूर्वजों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ग्रहण करता है। प्रथम पक्षीय विषयों की नींव मानव के जन्म-काल से ही पड़ जाती है और उसके रहन-सहन,

७. कस्यापि देशस्य समाजस्य वा विभिन्नजीवनव्यापारेषु सामाजिकसंबंधेषु वा मानवीयत्व दृष्ट्या प्रेरणाप्रदानां तत्तदार्शानां समष्टिरेव संस्कृति:"।

—'भारतीय संस्कृति का विकास' (डा० मंगलदेव शास्त्री) में उद्धृत, पृ० ३।

८. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'अशोक के फूल', पृ० ७५।

९. *'Culture or kristhi is the outer expression of the inner genius of the people.'*

—Hirendra Nath Dutta, 'Indian culture', page 4.

१०. डा० श्यामसुंदर दास, 'हिंदी शब्द-सागर', चतुर्थ भाग, पृ० ३४१५।

११. सर्वश्री कालिका प्रसाद, राजवल्लभ, मुकुंदीलाल, 'बृहत् हिंदी कोश', पृ० १३४४।

१२. श्री रामचंद्र वर्मा, 'प्रामाणिक हिंदी कोश', पृ० १२५६।

आचार-विचार आदि पर जिन बातों का आरंभ से ही प्रभाव पड़ने लगता है, उनमें प्रमुख हैं—प्राकृतिक वातावरण, जीवन की सामान्य रूपरेखा, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक स्थिति आदि। द्वितीय पक्ष के अंतर्गत विभिन्न विषयों के संबंध में परंपरा से प्राप्त विश्वास और मान्यताओं के साथ-साथ अनेक पर्वोत्सव आदि भी आ जाते हैं जिनसे जीवन के प्रति समाज के दृष्टिकोण की संकुचितता या व्यापकता का सहज ही परिचय मिल सकता है।

'सांस्कृतिक मूल्यांकन' से तात्पर्य—

साहित्य या काव्य के अंग-विशेष को लेकर 'संस्कृति' के उक्त दोनों पक्षों पर सम्मिलित रूप से विचार करना उसका 'सांस्कृतिक मूल्यांकन' कहलाता है। काव्य-विशेष के सांस्कृतिक मूल्यांकन से उसके रचनाकालीन समाज की स्थिति पर दोहरा प्रकाश पड़ता है। एक तो पाठक उसकी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक और कलात्मक स्थिति से परिचित हो सकता है और दूसरे, उन संस्कारों और आदर्शों का भी उसे परिचय मिल सकता है जो जाति या वर्ग-विशेष के लौकिक जीवन का परिचालन करते हैं। प्रथम प्रकार की जानकारी का घनिष्ठ संबंध इतिहास से रहता है, क्योंकि ऐतिहासिक परिस्थिति के साथ-साथ उक्त सभी प्रकार की स्थितियाँ भी परिवर्तित होती रहती हैं। द्वितीय प्रकार का परिज्ञान अपेक्षाकृत अधिक महत्व का होता है। कारण, समाज-विशेष के लौकिक जीवन-संबंधी आदर्शों का निर्माण शताब्दियों में होता है, उन आदर्शों की जड़ ऐतिहासिक भूमि में बहुत गहरी समायी रहती है; वस्तुत: ऐसे संस्कारों का बीज-वपन उसी दिन हुआ समझना चाहिए जिस दिन मानव समाज ने सभ्यता का प्रथम पाठ सीखा होगा।

काव्य का संबंध भी जाति के इतिहास से अधिक उसके संस्कार-जन्य आदर्शों से रहता है। फलस्वरूप ऐतिहासिक स्थिति के संबंध में जो संकेत या विवरण किसी काव्य में मिलते हैं वे प्राय: सामान्य और असंबद्ध ही होते हैं। प्रबंध-काव्य में तत्संबंधी उल्लेखों के लिए थोड़ा-बहुत अवकाश हो भी सकता है; परंतु गीतिकाव्य में उनके लिए कोई स्थान नहीं होता; यद्यपि स्वयं कवि उनकी सर्वथा उपेक्षा नहीं करना चाहता। द्वितीय प्रकार की स्थिति से संबंधित अनेक संकेत सभी प्रकार की रचनाओं में मिलते हैं; कारण, तत्संबंधी उल्लेख कोई भी कवि अनायास ही कर जाता है; क्योंकि उसके व्यक्तित्व का निर्माण भी उन्हीं संस्कारों और आदर्शों से होता है। ये संकेत कभी तो प्रत्यक्ष रूप से वर्णित विषयों में मिलते हैं और कभी परोक्षत:

अलंकारों के रूप में इस उद्देश्य से अपनाये जाते हैं कि अबोधावस्था में ही संस्कार रूप में परिचित पाठक उन्हे सहज ही हृदयंगम कर सके; अस्तु।

अतएव सामान्य रूप से काव्य के सांस्कृतिक मूल्यांकन के मुख्य नौ पक्ष हो जाते हैं—प्राकृतिक, पारिवारिक, सामान्य, सामाजिक, राजनीतिक और व्यावसायिक जीवन की रूपरेखा, धर्म और दर्शन-संबंधी विचार तथा साहित्य एवं कला की स्थिति का परिचय। प्रस्तुत प्रबंध में अष्टछाप - काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन इन्हीं शीर्षकों के अंतर्गत किया जायगा।

अष्टछाप-काव्य के अब तक प्रस्तुत किये गये सांस्कृतिक अध्ययन का मूल्यांकन—

समस्त अष्टछाप-काव्य का प्रथम आलोचनात्मक अध्ययन डा० दीनदयाल गुप्त का 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय' नामक विख्यात ग्रंथ है जो उसी प्रकार के किसी अन्य ग्रंथ के अब तक प्रकाशित न होने के कारण 'अंतिम' भी कहा जा सकता है। इस विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ में धर्म, भक्ति, दर्शन आदि से संबंधित अष्टछापी कवियों के विचारों का सामाजिक विवेचन तो मिलता है, परंतु सांस्कृतिक अध्ययन के अन्य पक्षों पर कुछ नहीं लिखा गया है।

अष्टछापी कवियों में केवल सूरदास के काव्य को लेकर इधर पाँच-सात सुंदर प्रबंध और ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं जिनमें डा० मुंशीराम शर्मा का 'भारतीय साधना और सूर-साहित्य', डा० ब्रजेश्वर वर्मा का 'सूरदास', डा० हरवंशलाल का 'सूर और उनका साहित्य', आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का 'महाकवि सूरदास', डा० प्रेमनारायण टंडन का 'सूर की भाषा' और 'सूर-साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन' आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से अंतिम को छोड़कर शेष प्रायः सभी ग्रंथों में सूर-काव्य के शास्त्रीय, धार्मिक और दार्शनिक पक्षों का विवेचन जितने विस्तार से किया गया है उसको देखते हुए यही कहा जायगा कि उसके सांस्कृतिक पक्ष की किसी सीमा तक उपेक्षा ही की गयी है, यद्यपि डा० मुंशीराम शर्मा जैसे विद्वानों ने 'सूरदास और ब्रज की संस्कृति' जैसे नाम से एक परिच्छेद अपने ग्रंथ में देकर तद्विषयक अध्ययन की आवश्यकता का निर्देश अवश्य कर दिया है। डा० टंडन का 'सूर-साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन' शीर्षक ग्रंथ यद्यपि इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि किसी भी हिंदी कवि को लेकर वैसी कोई रचना अभी तक प्रकाश में नहीं आयी है, तथापि उसमें विषय की एक प्रकार से रूपरेखा भर दी गयी है, उसका सम्यक् विवेचन नहीं किया गया है।

प्रस्तुत प्रबंध की मौलिकता—

हिंदी के जब किसी भी कवि के काव्य को लेकर कोई विधिवत् सांस्कृतिक अध्ययन अब तक प्रकाश में नहीं आया है, तब प्रस्तुत प्रबंध की 'मौलिकता' निर्विवाद ही है। इसके नौ परिच्छेदों में से धर्म और दर्शन वाले परिच्छेदों के लिए विशेष रूप से और संस्कार-वर्णन के लिए सामान्य रूप से उक्त ग्रंथों से कुछ सहायता मिल सकी है; यद्यपि उनमें भी प्राप्त सामग्री की सुचारु और स्पष्ट रूप से सोदाहरण विवेचना का लेखिका का ढंग एक प्रकार से 'निजी' ही है। फिर भी इन परिच्छेदों को प्रस्तुत प्रबंध में संक्षिप्त ही रखा गया है और उन परिच्छेदों को विस्तार दिया है जिनका विषय-प्रतिपादन मौलिक है। अतएव प्रस्तुत प्रयत्न हिंदी में अपने ढंग का सर्वप्रथम मौलिक प्रयास कहा जाना चाहिए।

प्रस्तुत मूल्यांकन के लिए प्राप्त प्रामाणिक अष्टछाप-काव्य—

अष्टछापी कवियों की जिन-जिन रचनाओं का उल्लेख विभिन्न खोज-रिपोर्टों में हुआ है, उनमें से अनेक की प्रामाणिकता संदिग्ध है। अतएव प्रस्तुत प्रबंध मुख्यतः उन्हीं कृतियों के आधार पर लिखा गया है जिनकी प्रामाणिकता के संबंध में प्रमुख विद्वान एकमत हैं। इन कृतियों की सूची, संपादकों के नाम सहित, नीचे दी जाती है—

कवि	ग्रंथ	संपादक या संकलनकर्ता
सूरदास	सूर-सागर (दो भाग)	आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी।
	सूरसारावली[१३]	श्री प्रभुदयाल मीतल
	साहित्यलहरी	श्री रामलोचन शरण।
परमानंददास	परमानंद-सागर (पद-संग्रह)	डा० गोवर्द्धन नाथ शुक्ल

१३. 'सूर-सारावली' और 'साहित्य-लहरी' को सूरदास की प्रामाणिक रचना मानने वालों में प्रमुख हैं मिश्रबंधु ('हिन्दी नवरत्न', चतुर्थ संस्करण, पृ० २३२), पं० रामचंद्र शुक्ल ('हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० १६४,१६५), डा० दीनदयालु गुप्त ('अष्ट-छाप और वल्लभ-सम्प्रदाय', प्रथम भाग, पृ० २७८ और २६८) डा. मुंशीराम शर्मा ('भारतीय साधना और सूर-साहित्य', पृ० ५४), आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी ('महाकवि सूरदास', पृ० ६१-६२) आदि। डा० व्रजेश्वर वर्मा इनसे सहमत नहीं हैं, ('सूरदास', द्वितीय संस्करण, पृ० ५०)।

कुम्भनदास	जीवनी, पद-संग्रह और भावार्थ	गो० व्रजभूषण
कृष्णदास	हस्त लिखित पद-संग्रह[१४]	डा० दीनदयालु गुप्त
नंददास	'नंददास' (दो भाग)[१५]	श्री उमा शंकर शुक्ल
चतुर्भुजदास	जीवन, झाँकी तथा पद-संग्रह	गो० व्रजभूषण
गोविन्दस्वामी	साहित्यिक विश्लेषण, वार्ता और पद-संग्रह	गो० व्रजभूषण
छीतस्वामी	जीवनी तथा पद-संग्रह	गो० व्रजभूषण

अष्टछाप - काव्य के उक्त संस्करणों के अतिरिक्त उनके पदों के निम्नलिखित संकलनों से भी यत्र-तत्र सहायता ली गयी है—

नाम	प्रकाशित-अप्रकाशित	संपादक या संकलनकर्त्ता
अष्टछाप-पदावली	प्रकाशित	डा. सोमनाथ गुप्त
अष्टछाप-परिचय	,,	श्री प्रभुदयाल मीतल
अष्टछाप-संग्रह	अप्रकाशित (हस्तलिखित)	डा. दीनदयालु गुप्त

अष्टछापी कवियों के वर्ण्य विषय

विषय की दृष्टि से अष्टछापी कवियों के दो वर्ग किये जा सकते हैं।

१४. कृष्णदास के संपूर्ण पदों का कोई संग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। 'अष्टछाप-पदावली' और 'अष्टछाप-परिचय' में उनके कुछ पद संग्रहीत हैं। डा० दीनदयालु गुप्त ने कृष्णदास के साथ-साथ, सूरदास को छोड़कर, अष्टछाप के सभी कवियों के पदों का एक सुन्दर संग्रह तैयार किया था। प्रस्तुत अध्ययन में उसी का उपयोग किया गया है—लेखिका

१५. श्री उमाशंकर शुक्ल ने अपने संपादित ग्रंथ 'नंददास' (दो भाग) में पदावली के अतिरिक्त नंददास के ग्यारह ग्रंथ दिये हैं—रूपमंजरी, विरहमंजरी, रस मंजरी, मानमंजरी, नाममाला, अनेकार्थमंजरी, स्याम-सगाई, भँवर - गीत, रुक्मिणी मंगल, रास-पंचाध्यायी, सिद्धांत-पंचाध्यायी और दशम स्कंध। डा० दीनदयाल गुप्त ने भी उक्त ग्रंथों को तो प्रामाणिक माना ही है, उनके अतिरिक्त 'गोवर्द्धन-लीला' और 'सुदामा-चरित' को भी नंददास का रचा बताया है—'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय', प्रथम भाग, पृ० ३७७।

प्रथम वर्ग में परमानंददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, और छीतस्वामी आते हैं जिन्होंने पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय के आराध्य श्रीकृष्ण की केवल गोकुल-वृन्दावन की लीलाओं का ही वर्णन किया है। द्वितीय वर्ग सूरदास और नन्ददास का है जिन्होंने श्रीकृष्ण की गोकुल, वृन्दावन, मथुरा और द्वारका-लीला के विविध प्रसंगों के साथ-साथ कुछ पौराणिक कथाओं का भी विस्तार से वर्णन किया है। इस प्रकार यों तो इन कवियों की रचना का मुख्य विषय श्रीकृष्ण की बाल, पौगंड और किशोर लीलाएँ हैं, फिर भी प्रत्येक कवि को अपने आराध्य की लीला का अंश-विशेष अधिक प्रिय रहा है और उसी का वर्णन करने में उसे विशिष्टता प्राप्त है। ब्रज की सारी 'रीति' का गान[१६] करने पर भी सूरदास वात्सल्य और शृंगार-वर्णन में अद्वितीय हैं तो परमानन्ददास का बाल, पौगंड और किशोर-लीला-वर्णन सुन्दर है, क्योंकि उनकी भक्ति[१७] बाल, कान्ता और दास-भाव की थी और तत्संबंधी विषयों की चर्चा की ही परमानंद-काव्य में अधिकता है। कृष्णदास का विशेष कौशल रासलीला एवं प्रिया-प्रियतम-विहार-वर्णन में परिलक्षित होता है[१८]। नन्ददास ने जो कुछ कहा है वह राग[१९] या अनुराग रंग में रँगा हुआ है। कुम्भनदास की वृत्ति किशोर लीला[२०] में अधिक रमी है तथा

१६. परमानंद अरु सूर मिलि 'गाई सब ब्रजरीति'।
भूलि जात बिधि भजन की सुनि गोपिनि की प्रीति।
—ध्रुवदास, 'भक्त-नामावलि', संपा० राधाकृष्णदास, छं० ९५।

१७. 'परमानन्द के पद में बाल-लीला भाव और रहस्यूह झलकता है। सो जा लीला को अनुभव परमानन्ददास को भयो, ताही लीला के पद परमानन्द गाये'
—'अष्टछाप', काँकरोली, पृ० ८९।

१८. जुगल माधुरी रस-अब्धि में परयो प्रबोध मन जाइ।
बृन्दाबन रस माधुरी गाई अधिक लड़ाइ।
—'भक्तनामावली', छं० २९।

१९. नन्ददास जो कुछ कह्यो राग-रंग सों पागि।
अच्छर सरस सनेह मय, सुनत सबल उठि जागि।
—'भक्तनामावली', छं० ७७।

२०. 'कुम्भनदास को किशोर लीला में, निरोध भयो'।
—'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ९७।

चतुर्भुजदास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी आदि की विशिष्टता भक्ति-रस का तन्मयता पूर्वक वर्णन करने में है।

दूसरी बात यह कि यद्यपि सूरदास और नंददास ने मथुरा-द्वारका-लीला-वर्णन द्वारा तत्कालीन नागरिक संस्कृति का भी परोक्षत: संक्षिप्त परिचय दिया है, तथापि अष्टछाप के सभी कवियों की वृत्ति अपने आराध्य की गोकुल-वृन्दावन-लीला में ही रमी रही और इस प्रकार वे ग्रामीण संस्कृति का ही यथार्थ चित्र अंकित करने में पूर्ण सफल हो सके। उनका यह प्रयत्न दो दृष्टियों से बड़े महत्व का है। पहली बात तो यह है कि भारत का हृदय गाँवों में ही है, नगरों में नहीं। अतएव ग्रामीण संस्कृति ही भारतीय संस्कृति के वास्तविक रूप से परिचित करा सकती है। दूसरे, अष्टछापी कवियों के समय तक मथुरा-आगरा आदि व्रज-प्रदेशीय प्रमुख नगरों के नागरिक जीवन पर इसलामी जीवनचर्या और विचार-धारा का जो प्रभाव पड़ चुका था, उससे भी गोकुल, वृन्दावन आदि के ग्रामीण अपेक्षाकृत अछूते ही थे। अतएव सूरदास, परमानंददास, नंददास आदि ने तत्कालीन ग्राम्य जीवन के अध्ययन के लिए ऐसी महत्वपूर्ण सामग्री सुलभ कर दी है जो ऐतिहासिक दृष्टि से भी मूल्यवान है।

---

२ प्राकृतिक जीवन-चित्रण

'व्रज' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'व्रज' (जाना) धातु से है। ऋग्वेद-काल से लेकर संहिता और महाकाव्य-काल तक यह शब्द पशुओं के समूह अथवा चरागाह के अर्थ में ही सीमित रहा[1]। पुराण-युग में अवश्य 'व्रज' के अर्थ में कुछ स्थानपरकता का भाव आ गया[2] और डॉ० धीरेन्द्रवर्मा के अनुसार, इस शब्द का प्रयोग 'मथुरा के निकटस्थ नंद के व्रज अर्थात् गोष्ठ-विशेष के अर्थ में होने लगा।'[3] तदनंतर 'व्रज' शब्द क्रमशः देशपरक अर्थ का द्योतक होता गया और हिन्दी-साहित्य के भक्ति-युग के आरम्भ से ही मथुरा के निकटवर्ती प्रदेश का वाचक रहा है। अष्ट-छाप के प्रायः सभी कवियों की रचनाओं में[4] और उनके पश्चात् लिखी गयी 'चौरासी'[5] तथा 'दो-सौ-बावन-वैष्णवों की वार्ता'[6] में भी 'व्रज' शब्द इसी अर्थ में

१. 'ऋग्वेद', मं० २, सू० ३८ मं० ८; मं० ५, सू० ३५, मं० ४; मं० १०, सू० ४, मं० २ इत्यादि—'व्रजभाषा-व्याकरण', भूमिका, पृ० ६।

२. क. जैसे—'तद् व्रजस्थानमधिकम् शुशुभे काननावृतम्'—'हरिवंश', विष्णु पर्व; अध्याय ६, श्लोक ३०।

ख. 'कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद्व्रजं गतः—श्रीमदभागवत्, दशम स्कन्ध, अध्याय १, श्लोक ६६।

३. डा० धीरेन्द्रवर्मा, 'व्रजभाषा-व्याकरण', भूमिका, पृ० ६ की पादटिप्पणी संख्या २।

४. क. 'व्रज' में होत कुलाहल भारी—परमा० २५।

ख. 'व्रज' बसि बोल सबन के सहिये—परमा० ८३५।

ग. हौं ढाढिनि व्रजराज की 'व्रज' तें आयी हो—चतु० ७।

५. 'तब श्रीनाथ जी ने श्री आचार्य जी महाप्रभून सों कह्यौ जो तुम मेरी सेवा को चलावो 'व्रज' में श्री गोवर्धन पर्वत है तहाँ हम तीन दमन हैं।....................तब श्री आचार्य जी महाप्रभु परिक्रमा झारखंड में रात्रि के 'व्रज' को पाउ धारे"

—'चौरासी वार्ता', पृ० २४५।

६. एक समय गोबिंददास आंतरी गांम ते 'व्रज' को आये और महावन में आयके रहे काहें तें जो या 'व्रजधाम' है। इहाँ भागवत चरणारविंद की प्राप्ति होयगी"

—'दो सौ वार्ता', पृ० १।

प्रयुक्त हुआ है। कालांतर में 'व्रज' की परिधि बढ़ कर चौरासी कोस की हो गयी और उसे 'व्रज-मंडल'[७] कहा जाने लगा।

इस व्रजमंडल के प्रति अष्टछापी कवियों में बड़ी श्रद्धा रही है। इसके दो मुख्य कारण जान पड़ते हैं। प्रथम तो यह कि इस मंडल के अन्तर्गत गोकुल, वृन्दावन, गोवर्द्धन, बरसाना, मथुरा आदि ऐसे प्रसिद्ध स्थल हैं जो अष्टछाप के परमाराध्य श्रीकृष्ण की लीला-भूमि रहे हैं। दूसरे, उक्त स्थानों में से कुछ, यथा महावन, जमुनावतौ, गोपालपुर आदि अष्टछापी कवियों के निवास स्थान थे। इनके अतिरिक्त गोवर्द्धन पर तो महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा संस्थापित श्रीनाथ जी का प्रसिद्ध मंदिर भी है जहाँ श्रीनाथ जी के समक्ष वे कवि कीर्तन किया और पद रचा करते थे[८]।

अष्टछाप-काव्य के अनुसार जब स्वयं श्रीकृष्ण व्रजभूमि के दर्शन करके अत्यंत पुलकित हो जाते हैं,[९] तब उनके भक्त-कवियों का उस पुण्यभूमि को बैकुंठ से भी श्रेष्ठ मानना सर्वथा संगत ही समझा जायगा। यही कारण है कि कोई अष्ट-छापी कवि इसलिए बैकुंठ जाना व्यर्थ समझता है कि वहाँ बंसीवट, यमुना, गोवर्द्धन, वृन्दावन आदि नहीं हैं[१०] और कोई विधिना से सदैव व्रज-वास का ही वरदान

७. व्रजमंडल के विस्तार के संबंध में निम्नलिखित दो कथन प्रसिद्ध हैं—
क. इत बरहद इत सोननद, उत सूरसेन को गाँव।
ब्रज चौरासी कोस में मथुरा मंडल माँह।
ख. 'पूर्वं हास्यवनं नीयं पश्चिमस्योपहारिकं।
दक्षिणे जन्हु संज्ञाकं भुवनाख्यं तथोत्तरे।

८. डा० दीनदयालु गुप्त, 'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय', पृ० ७।

९. वे देखियत हमारे गोकुल के रूख जू।
प्राची दिसि तें नेकु ही दच्छिन मेरी अँगुरी के अग्रज करो मूख जू।
× × × ×
'जनमभूमि' चलि आए 'गोविन्द' प्रभु तन पुलकित मन भयो अति सूख जू।
—गोविं० ५८८।

१०. कहा करौं बैकुंठे जाइ।
जहाँ नहीं बंसीबट, जमुना गिरि गोबर्धन नंद की गाइ।
जहाँ नहीं ए कुंजलता द्रुम मंद सुगंध बाजत नहिं बाइ।

चाहता है[११] क्योंकि वही नित्यधाम है जहाँ परमाराध्य का साहचर्य सदैव सुलभ रहता है।

अष्टछाप-काव्य में व्रजवासियों के प्राकृतिक-जीवन का चित्रण बड़े विस्तार से किया गया है। अध्ययन की सुविधा और स्पष्टता के लिए उसको तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—१. प्राकृतिक स्थान, २. वनस्पति वर्ग और ३. जीव-जंतु।

१. प्राकृतिक स्थान—

इस शीर्षक के अंतगत व्रज के जो प्राकृतिक स्थान आते हैं, उनको स्थूल रूप से पाँच वर्गों में बाँटा जा सकता है—क. वन, ख. उपवन, ग. पर्वत, घ. नदी और ङ. अन्य स्थान।

क. वन—'मथुरा मेम्वायर' के अनुसार व्रज के बारह वन ये हैं—मधु, ताल, कुमुद, बहुला, काम, खिदर, वृन्दा, भद्र, भांडीर, वेल, लोह और महावन[१२]। 'सूरसागर' में इन वनों का उल्लेख मात्र है,[१३] 'सारावली' में अवश्य उनके नाम गिनाये गये हैं[१४]।

कोकिल मोर हंस नहिं कूजत ताको बसिबो कहा सुहाइ।
जहाँ नहीं बंसी धुनि बाजत कृष्न न पुरवत अधर लगाइ।
प्रेम पुलक रोमांचय उपजत मन क्रम बच आवत नहिं दाइ।
जहाँ नहीं ए भुव बृन्दाबन बाबा नंद जसोमति माइ।
गोविंद प्रभु तजि नंद सुवन को व्रज तजि वहाँ बसत बलाइ—गोविं० ५७४।

११. अहो बिधिना ! तो पैं अँचरा पसारि माँगौं,
जनमु - जनमु दीजै याही व्रज बसिबौ—छीत० ११७।

१२. ग्राउज, 'मथुरा मेम्वायर', पृ० ८०-८१।

१३. 'द्वादस बन' रतनारे देखियत, चहुँ दिसि टेसू फूले जू—सा० ३४७२।

१४. यहि बिधि क्रीड़त गोकुल में हरि निज बृन्दाबन धाम।
मधुवन और कुमुदबन, सुन्दर बहुलाबन अभिराम।
नंदग्राम संकेत खिदरबन और कामबन धाम।
लोहबन माठ बेलबन सुन्दर भद्र बृहद् बन ग्राम।
—सारा० १०८८,८९।

व्रज के उक्त वनों में 'वृन्दावन'[१५] का उल्लेख सभी अष्टछापी कवियों ने किया है, क्योंकि यह वन ही श्रीकृष्ण की बाल और किशोर लीलाओं का मुख्य केन्द्र था। सूरदास, परमानंददास और नंददास के काव्यों में वृन्दावन के अतिरिक्त कुमुदवन, कोकिलावन, तालवन और मधुवन का उल्लेख भी मिलता है। प्रथम अर्थात् कुमुदवन में श्रीकृष्ण के साथ सखाओं के बहुत दिन तक रहने की,[१६] कोकिलावन में राधा और उसकी सखियों के खेलने की,[१७] तालवन में जमुना-जल पीने की[१८] और मधुवन में कदंबवृक्ष की सघन डालों में झूला झूलने[१९] की बात कही गयी है।

अन्य वन—व्रज के उपरोक्त वनों के अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में दो वनों का उल्लेख और हुआ है—एक है मुंजारण्य और दूसरा दंडकवन। प्रथम का उल्लेख नंददास ने दावानल-प्रसंग में किया है[२०] और द्वितीय का सूरदास ने रामकथा के संबंध में[२१]।

ख. उपवन—'मथुरा मेम्वायर' के अनुसार व्रज के ये चौबीस उपवन प्रसिद्ध हैं[२२]—गोकुल, गोवर्द्धन, बरसाना, नंदगाँव, संकेत, परममन्द, अरींग, शेषशायी, माट, ऊँचागाँव, खेलवन, श्रीकुण्ड, गन्धर्ववन, परासौली, बिलछू, बछवन, आदिबद्री, करहला, अजनोख, पिसायोवन, कोकिलावन, दधिवन, कोटवन और रावलवन। अष्टछाप-काव्य में इन उपवनों की अधिक चर्चा नहीं है; केवल 'परमानंद-सागर'

१५. क. बृंन्दाबन कुंजधाम, बिहरत पिया संग स्याम—कुंभन० ६५।
ख. चलहि बृंन्दाबिपिन बैठे जहाँ गिरिधरन —चतु० ३१२।

१६. बहुत दिवस हम रहे कुमुदबन कृष्न तुम्हारे साथ—परमा० काँक० २८८।

१७. सात पाँच मिलि खेलन निकसीं कोकिलाबन की डगर—परमा० २६८।

१८. चलहु भैया हो जइये तालबन पी जमुना को पान्यो—परमा० काँक० २६२।

१९. मधुबन सघन कदंब की डारैं झुलन झुकत गोपालैं—नंद० की०, भा० १, पृ ३३३।

२०. मुंजारन्य नाम है जहाँ, अति गहबर सुधि परत न तहाँ।
—नंद०, दशम०, पृ० २८४।

२१. तहँ ते चले दंडकावन को सुखनिधि साँवल गात—सारा० २५४।

२२. डा० दीनदयालु गुप्त के 'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय', पृ० ७ में उदधृत 'मथुरा मेम्वायर' (ग्राउज), तृतीय संस्करण, पृ० ८०।

में नंदगाँव[२३] का सामान्य रूप से, परासोली का बेनु-प्रसंग में[२४] और मधुवन का दानलीला-प्रसंग में[२५] उल्लेख हुआ है।

ग. पर्वत—ब्रज के चार पर्वत या टीले कहे जाते हैं—गोबर्द्धन[२६], बरसाना, नन्दीस्वर और चरण पहाड़ी। कृष्ण की लीलाओं में गोवर्द्धन-धारण का विशिष्ट स्थान होने के कारण सभी अष्टछापी कवियों ने गोवर्द्धन का ही उल्लेख अधिक किया है[२७]। नंद और यशोदा को वृषभानु 'नन्दीस्वर' से निमंत्रित कर श्याम की सगाई के लिए बुलाते हैं[२८]। राधा का जन्मस्थान और वृषभानु जी का निवास स्थान होने के कारण 'बरसाने' की भी चर्चा अष्टछाप-काव्य में हुई है[२९]; क्योंकि वहीं श्रीकृष्ण की 'सगाई' होती है[३०]। 'चरन-पहाड़ी' का उल्लेख केवल परमानंददास ने श्रीकृष्ण के 'आँखमिचौनी' खेलने के प्रसंग में किया है[३१]।

अन्य पर्वत—उक्त पर्वतों के अतिरिक्त सूर-काव्य में द्रोणागिरि, ऋष्यमूक, त्रिकूट और मंदराचल का भी वर्णन मिलता है। प्रथम दो का उल्लेख रामकथा-प्रसंग में और अंतिम दो का गजग्राह और सागर-मंथन के प्रसंग में हुआ है। द्रोणागिरि पर संजीवनी बूटी लेने के लिए हनुमान गये थे[३२]। ऋष्यमूक पर्वत पर राम और सुग्रीव से मित्रता हुई थी[३३]। त्रिकूट लंका का पर्वत है; किन्तु सूर ने

२३. जो तू नंदगाँव दिसि जैहै—परमा० ८६५।

२४. बेनु मधुर सुनि चली री चपल त्रिय परासोली तें परे—परमा० काँक० २६८।

२५. रोकत घाट बाट मधुवन को ढोरत माट करत हौ बुराई—परमा० १७४।

२६. मथुरा से करीब तेरह मील दूर 'गोवर्द्धन' की छोटी सी पहाड़ी और गाँव अब भी है—लेखिका।

२७. क. गोबर्धन धरनी धरयो मेरे बारे कन्हैया—परमा० २८६।
ख. नंदलाल गोबर्द्धन कर धारयौ। कुंभन० ५६।

२८. नंदीस्वर तें नन्द जसोदा गोपिनि न्योति बुलाए।
× × × ×
पहुँचे जाइ नन्दीस्वर को बृषभान पठायो करन सगाई—कुंभन० १०।

२९. चले कुँवर लै बरसाने कों प्रफुलित मन ब्रज-राज—कुंभन० १०।

३०. बरसाने बृषभान गोप कें लाल की भई सगैया—परमा० ३०७।

३१. लुकि लुकि खेलत आँखमिचौनी चरनपहारी ऊपर—परमा० २६८।

३२. दौनागिरि पर आहि सँजीवनि, बैद सुषेन बताई—सा० ६-१४६।

३३. रिष्यमूक पर्वत बिख्याता—सा० ६-६८।

गजग्राह की कथा में इसका वर्णन किया है[३४]। सागर-मंथन के समय मंदराचल की नेति बनाये जाने की बात भी सूरदास ने ही लिखी है[३५]।

घ. *नदी*—व्रज की प्रमुख नदी है यमुना जिसके अतिरिक्त मानसी-गंगा का भी उल्लेख हुआ है। यमुना का वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने बड़ी उमंग से किया है। इसका मुख्य कारण यह जान पड़ता है कि यमुनातट ही कृष्ण-लीला का मुख्य स्थल रहा है जिससे जलविहार, कालीनाग-नाथन, पनघट-लीला आदि प्रसंगों में यमुना का उल्लेख स्वत: हो गया है। इसके अतिरिक्त अष्टछापी कवियों की दृष्टि में यमुना की महिमा भी बहुत है। चतुर्भुजदास सदा यमुना की भक्ति करने की प्रेरणा देते हैं[३६]। छीतस्वामी यमुना के भजन को 'कृष्णभक्ति का साधन'[३७] और 'बैकुंठ की निसैनी'[३८] बताते हैं। गोविन्दस्वामी ने यमुना को 'पतितोद्धारक' और 'भक्ति-मुक्ति-दात्री' कहा है;[३९] क्योंकि वह भक्तों की इच्छा-पूर्ति करती है। परमानंददास की सम्मति में यमुना के दर्शन तथा जल-पान से प्राणी को यमयातना नहीं सहनी पड़ती[४०]।

अष्टछाप-काव्य में 'यमुना' के लिए मुख्यत: ये नाम आये हैं—कालिंदी, तरणि-

३४. भयौ त्रिकूट पर्वत गज सोई—सा० ८-२।

३५. बलि कह्यौ, बिलंब अब नैंकु नहिं कीजियै,
मंदराचल अचल चलौ धाई—सा० ८-८।

३६. चित्त में जमुना निसि दिन जो राखौ।
भक्ति के बस कृष्न करत हैं सर्वदा, ऐसौ जमुना जी को है साखौ।
—चतु० ३५५।

३७. गुन अपार एक मुख कहाँ लौं कहिये।
तजौ साधन, भजौ नाम जमुना जी कौ, लाल गिरिधरन कों तब ही पइये
—छीत० १६२।

३८. दोऊ कूल खंभ, तरंग सीढ़ी मनों, जमुना जगत बैकुंठ - निसैनी।
—छीत० १६५।

३९. श्री जमुना अधम उधारन मैं जानी।
\+ \+ \+ \+
'गोविंद' प्रभु 'रबितनया' प्यारी भक्ति-मुक्ति की खानी—गोविं० ५४८।

४०. जो जमुना कौ दरसन पावै अरु जमुना-जल पान करै।
सो प्रानी जमलोक न देखै चित्रगुप्त लेखौ न धरै—परमा० ५७६।

नंदिनी,[४१] तरनितनया,[४२] भानुतनया,[४३] रवितनया,[४४] सूर-सुता,[४५] सूरजा[४६] आदि। 'कलिंद' पर्वत से निकलने के कारण यमुना को 'कालिंदी'[४७] कहा जाता है। व्रज को इस प्रसिद्ध नदी के उक्त सब नामों में 'यमुना' ही अष्टछाप-काव्य में सबसे अधिक प्रयुक्त हुआ है[४८]।

'मानसी-गंगा' वस्तुतः व्रज का एक सरोवर है[४९] जिसके साथ 'गंगा' शब्द होने से इसे कभी कभी नदी कह दिया जाता है। अष्टछाप-काव्य में केवल चतुर्भुज-दास ने 'मानसी-गंगा' के स्नान का उल्लेख गोवर्द्धन-पूजा-प्रसंग में किया है। उन्होंने गोवर्द्धन की पूजा के समय मानसी-गंगा के जल से स्नान कराने के पश्चात् दूध की धार भी चढ़वायी है[५०]।

अन्य नदियाँ—व्रज की उक्त दो नदियों के अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में चंद्रभागा, गंगा, गोदावरी, सरयू, सरस्वती, सतद्रु और सिंधु का नामोल्लेख भी विविध प्रसंगों में हुआ है। 'चंद्रभागा' चंद्रभाग पर्वत से निकली 'चेनाव' नदी है जिसकी चर्चा 'सारावली' में है[५१]। धार्मिक दृष्टि से 'गंगा' की महिमा तो सर्वोपरि है ही। परमानंददास के विचार से 'गंगाजल' में मज्जन और गंगाजल-पान से प्राणी

४१. अति मंजुल जल प्रबाह मनोहर सुख अवगाहन राजत अति 'तरनि-नंदिनी' —परमा० ५७७।

४२. सुंदर सुभग 'तरनितनया' तट खेलत हैं हरि होरी हो—गोविं० १२४।

४३. तिहारी कृपा तें 'भानु की तनया' हरि पद प्रीति बढ़ाऊँ—परमा० ५७८।

४४. गोविंद प्रभु 'रवितनया' प्यारी भक्ति मुक्ति की खानी—गोविं० ५४८।

४५. सूर-सुता तट सदा बहति है त्रिबिध पवन सुखकारी—गोविं० १२२।

४६. 'सूरजा' तट परम रमनीक पवन सुखद मारुत मलय मृदु बहंते। —गोविं० १०८।

४७. जै जै श्री 'सूरजा कलिंद-नंदिनी'—छीत० १९३।

४८. 'जमुना' जल तरंग सुन सजनी री सीतल सुगंध मंद बहत पवन। —गोविं० ४७६।

४९. 'इतिहासप्रसिद्ध राजा मानसिंह ने गोवर्द्धन में इसी मंदिर के पास 'मानसी गंगा' नामक सरोवर बनवाया'—व्रज का इतिहास, भाग १, पृ० १५३।

५०. मानसी गंगा' न्हवाइ नख-सिख तें पाछे दूध धौरी को नावत—चतु० ४३।

५१. पुनि 'सतद्रू' औरहु 'चंद्रभागा, गंगा' ब्यास अन्हवाए—सारा० ८८२।

आवागमन से मुक्ति पा जाते हैं[५२] और उनके त्रिविध ताप नष्ट हो जाते हैं। तीर्थराज प्रयाग में 'यमुना' और 'सरस्वती' के साथ 'गंगा' के प्रकट होने की बात भी उन्होंने कही है[५३]। इसी से 'त्रिवेणी-स्नान' का बड़ा माहात्म्य है[५४]। 'गंगा' के लिए 'सूरसागर' में 'सुरसरी' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है[५५]। 'गोदावरी' का उल्लेख नंददास कृत 'दशमस्कंध' में है[५६]। अयोध्या की 'सरयू' नदी का वर्णन रामकथा में हुआ है[५७] जिसके तीर पर अयोध्या नगरी बसी बतायी गयी है[५८]। 'सरस्वती'[५९] का नाम विद्याधर-शाप-मोचन-प्रसंग[६०] और 'सिन्धु'[६१] का नाम कृष्ण के द्वारका जाने के प्रसंग में आया है। 'सतद्रू' अर्थात् पंजाब की 'सतलज' नदी में व्यास जी के स्नान करने की बात 'सारावली' में कही गयी है[६२]।

अन्य स्थान—इस शीर्षक के अन्तर्गत कन्दरा, कुंज, खादर, डूँगर, छीलर, झरना, ताल-तलैया, दह, पुलिन, सर-सरवर, सागर आदि प्राकृतिक स्थल लिये जा सकते हैं। गोवर्द्धन की सघन 'कन्दरा'[६३] में कृष्ण और राधा ने रात्रि-निवास किया

५२. मज्जन कियें होत तन निर्मल, आवागमन मिटै—परमा० काँक. १२४८।

५३. तीरथराज प्रयाग प्रकट भई 'बानी जमुना वेनी' संगे—परमा० ५८६।

५४. सुभ कुरुछेत्र अजोध्या मिथिला प्राग 'त्रिबेनी' न्हाये—सारा० ८२८।

५५. नाग नर पसु सबनि चाह्यौ 'सुरसरी' कौ बुंद—सा० ९-१०।

५६. हे गंगे हे हे 'गोदावरि', हे जमुने, हे भावरि, चावरि।

—नंद०, दशम०, पृ० २७१।

५७. पाणिनि ने नदियों में 'सरयू' का उल्लेख भी किया है। राप्ती नदी सरयू की सहायक थी—'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि', पृ० ४५।

५८. उत्तर दिसि हम नगर 'अजोध्या', है सरयू के तीर—सा० ९-४४।

५९. अनेक नदियों के 'सरस्वती' नदी होने का संदेह किया गया है। उदीच्य तथा प्राच्य भागों को बाँटने वाली नदी इन सबमें प्रसिद्ध थी'।

—'इंडिया ऐज नोन टू पाणिनि', पृ० ४६।

६०. गए 'सरस्वति' तट इक दिन, सिव अंबिका पूजा हेत—सा० १८०२।

६१. पथिक कह्यो ब्रज आइ, हरि जात 'सिंधु' तट—सा० ४८६७।

६२. पुनि 'सतद्रू' औरहु चंद्रभागा, गंगा व्यास अन्हवाये—सारा० ८२८।

६३. गोबर्द्धन-गिरि-'सघन कंदरा' रयनि-निवास कियो पिय प्यारी—चतु० ३२५।

था। 'कन्दरा' के पर्याय 'खोह'[६४] 'गुफा'[६५] और 'गुहा'[६६] का वर्णन संन्यासियों के तपस्थान के रूप में हुआ है। व्रज की 'कुंजों'[६७] में श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ अनेकानेक मधुर लीलाएँ की थीं। 'खादर' या तराई भाग में चरती हुई गायों को मुरली बजाकर बुलाने की चर्चा भी अष्टछापी कवियों ने की है[६८]। इन्द्र-मान-भंग-प्रसंग में इन्द्र गोवर्द्धन को 'डूँगर'[६९] कहते हैं। 'छीलर' का जल गंदा और अस्वास्थ्यकर होता है। इसीलिए सूरदास का कथन है कि सागर की लहर को छोड़कर 'छीलर' में किस प्रकार स्नान किया जाय[७०]? व्रज में क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्ण 'झरना', 'सरिता' और 'सर' के सुरभित जल में अवगाहन करते थे[७१]। व्रजवासियों के विश्वास के अनुसार इन्द्र की पूजा से ही 'ताल-तलैया' सब भर जाते हैं और पृथ्वी हरीभरी रहती है[७२]। व्रज की प्रमुख 'दह' तो 'कालीदह' के नाम से प्रसिद्ध है ही[७३]। 'पुलिन' से तात्पर्य नदी-तट से है और 'बृन्दावन-पुलिन' पर मंडल बनाकर श्रीकृष्ण ने रासलीला की थी[७४]। 'मैदान' में श्रीकृष्ण के 'चौगान' खेलने का उल्लेख परमानंददास ने किया है[७५]।

'वापी',[७६] 'सर'[७७] या 'सरवर'[७८] भी प्राकृतिक-स्थानों के वर्ग में ही आते

६४. सूर सुबस्ती छाँड़ि परम सुख हमें बतावत खोह—सा० ३५३६।
६५. गुफा बसि मोहिं न पावै—सा० १६१८।
६६. श्रम गहि 'गुहा' रह्यौ—सा० ४०३७।
६७. लिये अबीर अरगजा कुमकुम, कुंज कुंज में खेलै—परमा० ३८५।
६८. बहुतक फैलि रहीं 'खादर' में मुरलि सुनावो टेरि—कुंभन० १६०।
६९ 'डूँगर' को बल उनहिं बताऊँ, ता पाछे व्रज खोदि बहाऊँ—सा० ९२५।
७०. सागर की लहर छाँड़ि 'छीलर' कस न्हाऊँ—सा० १-१६६।
७१. सौरभ जल 'झरना' सरिता सर अवगाहन पग पेलि—गोवि० ४०६।
७२. 'ताल-तलैया' सब भरे बहुतृन उपजैं भूमि—परमा० २७२।
७३. हो प्रभु वह 'दह' महा अगाध, तरल गरल करि भरयौ असाध।
—नंद०, दशम०, पृ० २७४।
७४. मंडल बिमल सुभग बृन्दावन 'पुलिन' स्यामघन घोरी—परमा० २३०।
७५. खेलत व्रजकुमार बालक संग लीने बृन्दावन 'मैदान'—परमा० ९५।
७६. बधिक अजामिल 'बापी'—सा० १-१४०।
७७. सुन्दर 'सर' निर्मल जल ऐसे—नंद०, दशम०, पृ० २७०।
७८ भानै मठ कूप बाइ 'सरवर' कौ पानी—सा० ९-९६।

हैं। 'जलाशयों' में 'समुद्र' सबसे बड़ा होता है। अष्टछाप-काव्य में 'समुद्र' के लिए 'अंबोधि',[७९] 'उदधि',[८०] 'पयोनिधि',[८१] 'बारिधि',[८२] 'सरितापति',[८३] 'सागर',[८४] 'समुद्र',[८५] 'सिंधु'[८६] आदि शब्द व्यवहृत हुए हैं। सामान्य रूप के साथ-साथ प्रकृति के इन अंगों का उल्लेख उपमान-रूप में भी किया गया है। 'सागर' का उल्लेख अधिकतर संसार की गहनता, दुस्तरता, दुख की अगाधता आदि के लिए हुआ है। सागर 'सुख'[८७] का बतलाया गया है और 'विषय-विष'[८८] तथा 'अघ'[८९] का भी। सूर ने 'मोह' का समुद्र[९०] भी बतलाया है जिससे उद्धार होने का एकमात्र साधन भगवन्नाम ही है। सांसारिक 'भय'[९१] को भी 'समुद्र' के समान विकराल कहा गया है। अष्टछापी कवियों ने कभी तो अपने परमाराध्य को 'सागर' बताया है[९२] और कभी उनकी 'दया' या 'कृपा' की असीमता देखकर उनको 'कृपासिंधु',[९३] 'कृपा-पयोधि'[९४] आदि कहा है।

(२) वनस्पति-वर्ग—

वनों-उपवनों की अधिकता व्रजभूमि की उर्वराशक्ति की परिचायिका

७९. भव 'अबोधि' नाम-निज-नौका, सूरहिं लेहु चढ़ाइ—सा० १-१५५।
८०. अनुचर एक लंकपुर जारी 'उदधि' बाँधि पाषाननि—परमा० काँक० १२३१।
८१. मनहुँ पयोनिधि सहित फेन फुट—परमा० ५६४।
८२. सीता नयन बारि 'बारिधि' कैसै कै तरिबो—परमा० काँक० १२३४।
८३. तबहूँ और रह्यौ 'सरितापति' आगैं जोजन सात—सा० ६-१०४।
८४. 'सागर' सूर बिकार भर्यो जल—सा० १-१४०।
८५. कहा कहूँ जो बगद न आयो स्याम समुद्र पर्यो—परमा० ४६५।
८६. मानों माई 'सिंधु' फिर्यो तनया निति—परमा० काँक० १२३०।
८७. जातैं काल-अगिनि तैं बाँचौ, सदा रहौ सुखसागर—सा० १-६१।
८८. या संसार 'बिषय बिष-सागर', रहत सदा सब घेरे—सा० १-८५।
८९. पुनि पाछैं 'अघ-सिंधु' बढ़त है, सूर खाल किन पाटत—सा० १-१०७।
९०. 'मोह-समुद्र' सूर बूड़त है लीजै भुजा पसारि—सा० १-१२१।
९१. 'भय उदधि' जमलोक दरसै, निपट ही अँधियार—सा० १-८८।
९२. क. अति गंभीर 'उदार-उदधि' हरि, जान सिरोमनि राइ—सा० १-८।
ख. परमानंद 'हरि सागर' तजि कै नदी सरन कत जाऊँ—परमा० ८४२।
९३. 'कृपा-सिंधु' उनहीं के लेखै, मम लज्जा निरबहिए—सा० १-११२।
९४. 'कृपा-पयोधि' भगत चिंतामनि ऐसे बिरद बुलाये—परमा० ८६२।

है; साथ ही इस बात की सूचक भी है कि व्रजवासियों के जीवन का विकास प्रकृति की गोद में ही होता रहा है। स्याम सलिलावती यमुना के निकटवर्ती समतल भूभाग और गिरिगोवर्द्धन के पर्वतीय प्रदेश में, सभी प्रकार के उपयोगी पेड़-पौधे उजपाने की क्षमता रही है। यही भूभाग श्रीकृष्ण की बाल और किशोर लीला-भूमि है और यहीं प्रतिदिन गोचारण करते-करते श्रीकृष्ण और उनके सखाओं ने घने वनों और दुर्गम प्रदेशों की खोज की थी।

पेड़-पौधों के लिए अनेक पर्यायवाची शब्द अष्टछाप-काव्य में व्यवहृत हुए हैं; जैसे तरु,[९५] द्रुम,[९६] बिटप,[९७] बृच्छ[९८] आदि। अष्टछायी - कवियों ने व्रज की उर्वरा-भूमि में उगनेवाले जिन पेड़-पौधों के नाम गिनाये हैं, स्थूल रूप से, उनके तीन वर्ग किये जा सकते हैं—अ. पुष्पों के वृक्ष, आ. फलों के वृक्ष और इ. अन्य वृक्ष।

(अ) पुष्पों के वृक्ष—पुष्पों के वृक्षों में अशोक, कदंब, करबीर, कुंद, कोबिद, टेसू, ढाक, तमाल, नीप, बकुल आदि का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है। इनमें से 'करबीर', 'कुंद', 'टेसू' और 'बकुल' की चर्चा 'पुष्प' शीर्षक के अन्तर्गत आगे की जायगी क्योंकि उनके पुष्पों का विवरण अधिक विस्तार से दिया गया है; शेष के संबंध में अष्टछापी-कवियों के विचार नीचे दिये जाते हैं।

'अशोक'[९९] वृक्ष का उल्लेख नन्ददास-कृत 'दशम स्कंध' की यज्ञपत्नी-कथा[१००] और 'सूरसागर' के 'नवम् स्कंध'[१] में मिलता है। चीर-हरण लीला में

९५. पाहन पिघरे, 'तरु' नए, मोहे खग मृग नाग—चतु० २६६।

९६. 'द्रुम', लता, कुसुम मधु कलित सु नाना बरन—कुंभन० ७७।

९७. जोजन डेढ़ 'बिटप' बेली सब चूर चूर करि डारि—सारा० ४१७।

९८. मनौ 'बृच्छ' तमाल बेली-कनक, सुधा सिंचाई—सा० २११६।

९९. 'अशोक' की पत्तियाँ आम की पत्तियों की भाँति लहरदार होती हैं। इस वृक्ष पर वैशाख में सुनहरे रंग का बौर आता है तथा इसका फल निबौरी से मिलता-जुलता होता है। कवि-प्रसिद्धि के अनुसार अशोक वृक्ष रूपवती स्त्री के पदाघात से पुष्पित होता है।

—कालिदास-टीका मल्लिनाथ, 'पादाघातदशोकः', 'उत्तर-मेघ', श्लो० १५, पृ० ४७७।

१००. जमुना निकट सुभग इक बाग, सब 'अशोक' तरु अति बड़ भाग।

—नंद०, दशम०, पृ० ३०३।

१. पुनि आयो सीता जहँ बैठी, बन 'असोक' के माँहि—सा० ६-७५।

कालिंदीतीर के 'कदम'[२] या 'कदंब' वृक्ष का वर्णन मुख्य रूप से हुआ है[३]। कृष्ण की विरहिणी गोपियाँ 'कोबिद' को फूला देखकर कृष्ण की याद करती हैं[४]। ढाक वृक्ष के नीचे कृष्ण के छाक खाने की बात 'परमानन्ददास' ने कही है[५]। 'मणि-मरकत' जैसे पत्तों वाले 'तमाल' वृक्षों की अधिकता यमुना के किनारे बतायी गयी है[६]। कृष्ण के स्याम रंग के उपमान रूप में भी 'तमाल' की चर्चा इन कवियों ने की है।

(आ) फलों के वृक्ष—आम, कदली, गूलर, गोखरू, जंबू या जामुन, धतूरा, नारिकेल, निंब, पीपर, पनस, बदरी, बट, भांडीर आदि फलों के वृक्षों का वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। इनमें से आम, जामुन, नारिकेल और निंब की चर्चा 'फल और मेवे' शीर्षक के अन्तर्गत आगे की जायगी। शेष वृक्षों में 'कदली' की ओट में जल-विहार के पश्चात् गोपियों के अंचल निचोड़ने का वर्णन सूर ने किया है[७]। 'कदली'[८] अथवा 'कदली-खंभ' की उपमा स्त्री की 'जंघा' से दी गयी है। 'कदली' के पर्यायवाची 'रम्भा' शब्द का प्रयोग भी 'जंघा' के उपमान-रूप में हुआ है। राधा की 'जाँघों' की उपमा मरकत-मनि 'रंभा' से सूर ने दी है[९]। 'गूलर' के फल में सैकड़ों जीवों की उपस्थिति की बात 'सूरसागर' के 'ब्रह्मा-

२. क. 'कदम्ब' का फूल हल्के पीले रंग का जालदार-सा होता है जो सावन-भादों में फूलता है। अबुलफजल ने इसे 'तुमागा' शाही टोपी के समान वर्णित किया है—'आइने-अकबरी', पृ० १८३।

ख. नीप और कदंब का वृक्ष एक ही कहा जाता है—
'कालिदास', टीका मल्लिनाथ, 'उत्तर मेघ', श्लो० २।

३. बसन हरे सब 'कदम' चढ़ाए—सा० ७८४।

४ कुरज, कुंद, कदंब, 'कोबिद', करनिकार, सुकंज—सा० ३३१४।

५. स्याम 'ढाक' तर मंडल जोरि जोरि बैठे अब छाक खात दधि ओदन।
—परमा० ६४५।

६. क. तरनि-तनया तीर 'मरकत मनि' जु 'स्याम तमाल'—चतु० ३३।

ख. हेमलता 'तमाल' अवलंबित सीस मल्लिका फूली हो—परमा० २१६।

७. 'कदली' ओट निचोरत अंचल, अधर सुधा रस भीनो—सा० ११२५।

८. जंघा 'कदली' की अति सोभा, तापर गुल्फ बिराजै हो—परमा० ५७५।

९. जुगल जंघ मरकत-मनि-रंभा, बिपरीत भाँति सँवारे—सा० १७६१।

वत्स-हरण' प्रसंग में स्वयं ब्रह्मा ने कही है[१०]। 'गूलर' के फल की रसहीनता की बात गोपियाँ उद्धव से कहती हैं[११]।

'गोखरू' चने के आकार का छोटा सा कँटीला फल है। इसका उल्लेख कुंभनदास के काव्य में हुआ है[१२]। 'बदरी' वृक्ष की चर्चा उन वृक्षों के साथ की गयी है जिनसे 'सूरसागर' में विरहिणी गोपियाँ प्रियतम कृष्ण का पता पूछती हैं[१३]।

(ग) अन्य वृक्ष--इस वर्ग के अन्तर्गत आक, चंदन, ताल, धतूरा, नीम, पीपर, बट, बबुर, बाँस, मंदार, मालूर, सेमर आदि वृक्ष आते हैं जिनका वर्णन अष्टछापी कवियों ने यत्र-तत्र किया है।

'आक' को 'मदार' भी कहते हैं। इसका फल जब चिटकता है तो उसके बीज, जिनके चारों ओर रुई के रेशे जैसे छोटे-छोटे रोयें उगे होते हैं, निकल निकल कर वायु में उड़ने लगते हैं। 'आक' के बीज बड़े हल्के होते हैं। इसीलिए सूरदास ने उपमान के रूप में इसका प्रयोग किया है और कहा है कि 'वह' (गोपिका) नेत्रों का अनुसरण करती हुई इस प्रकार चारों ओर दौड़ती फिरती है, जैसे 'आक' के बीज फूटने पर 'आकरुई' के बुड्डे वायु में लहरते हैं[१४]।

'चंदन' का वृक्ष भारत में अत्यंत पवित्र माना जाता है। इसकी लकड़ी अति सुगंधित होती है। इसे घिस कर जो लेप तैयार किया जाता है, वह देवताओं पर चढ़ाया जाता है। यह लेप शीतलता प्रदान करता है। अतः ताप-निवारण के लिए लोग इसे शरीर पर लगाते हैं। धार्मिक कृत्यों और मृतक संस्कार के अवसर पर भी चंदन की आवश्यकता पड़ती है। अष्टछाप - काव्य में परमानंददास ने अक्षय तृतीया के दिन स्त्रियों द्वारा 'चंदन' की पूजा का उल्लेख किया है[१५]। सूरदास ने 'चंदन', अगर, घृत आदि सुगंधित पदार्थों की सहायता से 'चिता' तैयार करने

१०. मैं ब्रह्मा इक लोक कों, ज्यों 'गूलर फल जीव'—सा० ४६२।
११. सूर सु बहुत कहे न रहै रस, 'गूलर' को फल फोरे—सा० ३६००।
१२. काँटे बहुत 'गोखरू' बूड़े फारत सिंह परायो तनौ—कुंभन० ३६८।
१३. कहि धौं री कुमुदिनी, कदली कछु, कहि 'बदरी' करबीर—सा० १०६१।
१४. उड़ियै उड़ी फिरति नैननि संग, फर फूटै ज्यों आकरुई—सा०१८५५।
१५. 'चंदन' पूजि प्रीतम सुख दीजै रीझि यहै कहौं बतिया—परमा० ७३३

की बात कही है[१६]। चंदन जैसी पवित्र और बहुमूल्य लकड़ी को चूल्हे में जलनेवाले ईंधन के रूप में प्रयोग करने की मूर्खता की ओर भी परमानंददास ने संकेत किया है[१७]।

'ताल' का वृक्ष नारियल से मिलता-जुलता होता है। इसे 'ताड़' भी कहते हैं। व्रजभूमि में यमुना-तट पर यह वृक्ष पाया जाता है। इसका उल्लेख कहीं-कहीं 'नरकुल'[१८] नाम से भी किया जाता है। सूरदास ने कृष्ण तथा अन्य ग्वालबालों का 'तालवृक्षों' के वन में जाने का उल्लेख किया है[१९]।

'धतूरे' के पौधे में काँटेदार फल लगते हैं और इसके बीज विषैले होते हैं, जिन्हें कुछ लोग गहरा नशा लाने के उद्देश्य से 'भाँग' के साथ घोटकर पीते हैं। इसका फल महादेव जी पर चढ़ाया जाता है। सूरदास ने धतूरे के मादक प्रभाव का उपमान के रूप में वर्णन किया है। श्रीकृष्ण की प्रीति में पगी गोपी इस प्रकार 'पागल' सी घूमती है जैसे उसने 'धतूरा' खा लिया हो[२०]।

'नीम' का वृक्ष भारत में सर्वत्र पाया जाता है। औषधि के रूप में यह गुणकारी है; परंतु इसकी पत्ती, छाल और इसके फल का स्वाद 'कटु' और अप्रिय होता है। इसीलिए अप्रिय स्वादवाली वस्तुओं के उपमान-रूप में 'नीम' का उल्लेख अष्टछापी कवियों ने किया है[२१]। नंददास ने व्रज के वृक्षों में 'नीम' को भी गिनाया है[२२]।

'पीपर' अथवा 'पीपल' का वृक्ष हिंदुओं के लिए पूज्य माना जाता है[२३]।

१६. 'चंदन' अगर सुगंध और घृत, बिधि करि चिता बनायौ—सा० ९-५०।
१७. 'चंदन' भील पुलिंदी के घर ईंधन करि ताहि माने—परमा० ५४६।
१८. 'आइने अकबरी', पृ० १५०।
१९. चलौ 'ताल बन' कौ जैऐ अब—सा० ४६६।
२०. सूरदास प्रभु दरसन कारन मानो फिरति 'धतूरा' खाये—सा० ४०४०।
२१. जो मन जाकैं सोइ फल पावै, 'नीम' लगाइ आम को खावै—सा० ६२४।
२२. नूत, प्रयाल, कदंब, 'निंब' अरु अंग पनस जहँ।
—नंद०, सिद्धांत०, पृ० १८६।
२३. आवहुरी ये बड़ महान 'बट' पीपर बूझैं—नंद०, सिद्धांत०, पृ० १८६।

सूरदास ने उत्पात - शांति के हेतु 'पीपल' की पूजा का उल्लेख किया है[२४]। 'बट-वृक्ष' भी पवित्र और पूज्य है। सूरदास ने व्रजभूमि के प्रमुख वृक्षों में इसकी गिनती की है[२५]। उन्होंने इसको स्त्रियों द्वारा वंदनीय ठहराया है[२६]।

'बबुर' या 'बबूल' का वृक्ष काँटेदार होता है। इसमें छाया नहीं होती और न इसके फल ही खाने योग्य होते हैं। इस वृक्ष का आदर नहीं होता। यह कष्ट और पीड़ा का प्रतीक है। दुष्कर्म करके अच्छे परिणाम की आशा नहीं की जा सकती। सूरदास ने इस तथ्य को 'बबूल' के उदाहरण से स्पष्ट किया है[२७]।

'बाँस' का वृक्ष भीतर से पोला होता है। इसका प्रयोग छप्पर छाने में होता है। इससे बाँसुरी या मुरली जैसे वाद्ययंत्र तैयार होते हैं। कृष्ण को मुरली अत्यंत प्रिय थी। अतः अष्टछापी कवियों ने मुरली संबंधी पदों में 'बाँस' के वृक्ष की चर्चा की है[२८]। वनों में जब आग लगती है, तो 'बाँस' बड़ी जोर से चिटकता है। नंददास ने दावानल-प्रसंग में 'बाँस' वृक्षों के चिटकने का वर्णन किया है[२९]।

'मंदार' वृक्ष अपने परागपूर्ण पुष्पों के लिए विख्यात है। पराग के लोभ में भौंरे उस पर मँडराते हैं। कुंभनदास ने हिंडोरा-वर्णन में फूले हुए 'मंदार' वृक्ष पर भौंरों के गूँजने का वर्णन किया है[३०]। गोविंदस्वामी ने भी मधुलोभी भ्रमरों के 'मंदार' पर मँडराने की बात कही है[३१]। 'मालूर' वृक्ष के पत्रों का शिवपूजा में प्रयोग किया जाता है। सूरदास ने गोपियों द्वारा शिव पर 'मालूर' के पत्रों

२४. अनुदिन अति उत्पात कहाँ लगि, दीजै 'पीपर' कौ बन दाहिन।
—सा० १४८८।

२५. कहि धौं कुंद, कदंब, बकुल 'बट' चंपक ताल तमाल—सा० १०६१।

२६. आवहु री ये बड़ महान 'बट' पीपर बूझैं—नंद०, सिद्धांत०, पृ० १८६।

२७. बोवत 'बबुर' दाख फल चाहत, जोवत है फल लागे—सा० १-६१।

२८. मुरली तौ यह 'बाँस' बंस की—सा० १२४६।

२९. पटके 'बाँस' काँस तृन चटके—नंद०, दशम०, पृ० २८५।

३०. पारिजात 'मंदार' प्रफुल्लित धूनित अलिकुल गुंज—कुंभन० १२०।

३१. लटपटी पाग 'मंदार' माल लटपटात मधुप मधु काजैं—गोविं० २२३।

के चढ़ाये जाने का उल्लेख किया है[३२]। 'सेमर' के वृक्ष में फल लगते हैं, परन्तु वे खाने योग्य नहीं होते; क्योंकि उनसे रस-गूदे के स्थान पर रुई निकलती है। पक्षी उसके फल को रसमय समझ कर चोंच से प्रहार करता है, परन्तु उसे केवल पछताना पड़ता है[३३]।

(घ) *झाड़-लता आदि*—इस वर्ग के अंतर्गत करील, काँस, सर, कुस, जवासा, गुंजा, तुलसी, लवंगलता आदि झाड़ और लताएँ आती हैं।

'करील' की झाँड़ियाँ व्रजप्रदेश में अधिकता से पायी जाती हैं। कृष्ण की लीलाओं के वर्णन में अष्टछापी कवियों ने करील का उल्लेख विभिन्न प्रकार से किया है। करील में पत्ते नहीं होते, केवल 'टेंटी' नामक फल इसमें लगता है। सूर के अनुसार यह फल कसैला होता है[३४]। 'काँस' झुंडदार घास होती है। सूरदास ने 'काँस' के कुँवार मास में फूलने की बात कही है[३५]। वर्षांत में 'काँस' में फूल लगते हैं। इस संबंध में एक लोकोक्ति भी है—फूले काँस, गयी वर्षा की आस। नंददास ने दावानल-प्रसंग में 'काँस' के चिटकने का वर्णन किया है[३६]। 'सर' या 'सरपत' के पत्तों से छप्पर छाये जाते हैं[३७]। इसके डंठल से लेखनी बनाने का निर्देश सूर ने किया है[३८]। 'कुस' एक प्रकार की घास है जो पवित्र मानी जाती है और पूजा आदि में इसका उपयोग किया जाता है। सूर ने दावानल-

३२. कमल-पुहुप 'मालूर' पत्र फल नाना सुमन सुबास—सा० ७६६।

३३. रसमय जानि सुआ 'सेमर' कों चोंच घालि पछितायौ—सा० १-५८।

३४. जिहिं मधुकर अंबुज रस चाख्यो, क्यों करील फल भावै—सा० १-१६८।

३५. ज्यों कुँआर फूलहिंगे 'काँस'—सा० परि० २००।

३६. जरि परि ताल तमाल जु लटकै, पटकैं बाँस 'काँस' तृन चटकै।
—नंद०, 'दशम०', पृ० २८२।

३७. बन-ग्राम के घरों की दीवारें वेणुपार अर्थात् फटे बाँस और नल शक्ति अर्थात् नरकुल तथा शरकांड से बनाई गयी थीं—हर्ष०, सां० अ०, पृ० १८२।

३८. क. कागद गरे मेख मसि खूटि, सर दव लागि जरै—सा० ३९१८।

ख. पाणिनि ने घास के अनेक प्रकार बताये हैं, यथा—शर, काश, कुश, मुंज, नर, शाद, वेतस तथा घृतृन। गणों (पुराणों) में वीरण, वल्वज, तथा पूतीक नाम भी मिलते हैं—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि', पृ० २१४, २१५।

प्रसंग में वनों के साथ 'कुस' के जलने का भी उल्लेख किया है[३९]। 'जवासा' एक छोटा सा जंगली पौधा होता है। वर्षा ऋतु में इसके पत्ते झड़ जाते हैं और गर्मी में यह फूलता है। सूरदास ने 'जवास' का उल्लेख उद्धव-गोपी-संवाद में किया है[४०]।

'तुलसी' एक घना झाड़दार पौधा होता है। भक्तजन को यह अत्यंत प्रिय है। स्त्रियाँ कई पर्वों में इसकी पूजा करती हैं। तुलसी के पौधे की सूखी डालों को टुकड़े-टुकड़े करके उनकी माला बनायी जाती है और साधु-संत उसे धारण करते हैं। परमानंददास ने 'तुलसी-माल' के धारण करने का उल्लेख किया है। कहीं-कहीं तुलसी के पत्तों की माला बनाकर पहनने का भी चलन है। यह माला मणि-माला के तुल्य बतायी गयी है[४१]। सूर ने 'तुलसी की माला' से कृष्ण के सौन्दर्य में वृद्धि की बात कही है[४२]। तुलसी की पत्ती को कानों में लटका कर भक्तजन अपना शृंगार करते हैं[४३]। तुलसी की 'पत्ती' चरणामृत के साथ दी जाती है और इसे प्रसाद के रूप में भी बाँटते हैं। इसे 'तुलसीदल' कहते हैं[४४]। भक्तों की दृष्टि में थोड़ा-सा 'तुलसीदल' चढ़ाने से ही भगवान प्रसन्न हो जाते हैं।

'संजीवनी' एक प्रकार की बूटी होती है, जिसमें मृत व्यक्ति को फिर से जिला देने का गुण बताया गया है। राम-कथा में हनुमान के 'संजीवनी बूटी' लाने का वर्णन सूरदास ने किया है[४५]।

'लता' के लिए 'अष्टछाप-काव्य' में बेल, बेली, बल्ली आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है[४६]। लताओं में कुंदलता, राजबेलि, राजबल्ली और लवंग लता प्रमुख हैं।

३९. लटकि जात जरि जरि द्रुम-बेली पटकत बाँस, काँस, 'कुस', ताल।
—सा० ५९४।

४०. सूर करम की खीर परोस्यो फिरि फिरि चरत 'जवास्यौ'—सा० परि० १६३।

४१. दिव्य गंध 'तुलसी माला' उर मनि धरि गाइ ग्वालनि—परमा० ८८२।

४२. स्याम देह दुकूल द्युति छबि, लसति 'तुलसीमाल'—सा० ६२७।

४३. भाल तिलक स्रवननि 'तुलसी-दल' मेटे अंक बिये—सा० १-१७१।

४४. अतुल प्रताप तनिक 'तुलसी-दल' मानत सेवा भारी—छीत० ३८।

४५. दौनागिरि पर आहि 'सँजीवनि' बैद सुषेन बताई—९-१४९।

४६. क. 'लता' बिटप बन माँझ प्रगट ह्वै फल भरि भूमि नवावनि।
—परमा० ८८२।

'राजबल्ली' का वर्णन अष्टछाप-काव्य में स्वतंत्र रूप से नहीं मिलता। नंददास ने 'मानमंजरी' में 'राजबल्ली' के कई नाम गिनाये हैं[४७]।

'लवंग लता' लौंग की बेल को कहते हैं। सूरदास ने अन्य पुष्प वृक्षों के साथ 'लवंग लता' के फूलने का वर्णन किया है[४८]। लवंग की लता देखने में न केवल सलोनी होती है, प्रत्युत गोविंदस्वामी के अनुसार यह अति सुगंधदायिनी भी होती है[४९]। 'गुंजा' या 'घुँघुची' की भी लता होती है। इसमें लाल दाने निकलते हैं जिनका मुँह काला होता है। इनकी मालाएँ बनाकर पहनी जातो हैं। अष्टछापी कवियों ने भी 'गुंजाहार' या 'घुँघुचिनि की माल' का उल्लेख किया है;[५०] क्योंकि यह श्रीकृष्ण की प्रिय वस्तुओं में है। एक पद में तो परमानंददास ने कामना की है कि मुझे 'गुंजाबन-बेली' के रूप में ही जन्म क्यों न मिला जिससे मैं श्रीकृष्ण को प्रिय लगता[५१]। 'घुँघुची' का प्रयोग तौलने के लिए भी होता है। परमानंददास ने 'सोने' या स्वर्ण के साथ 'घुँघुची' के भी तौले जाने की बात लिखी है[५२]।

(ङ) *पौराणिक वृक्ष*—भारतीय पौराणिक कथाओं में 'कल्पवृक्ष' और 'पारिजात' के वृक्षों का उल्लेख हुआ है। 'कल्पवृक्ष' मनुष्य को उसकी इच्छानुकूल फल

ख. तरनि तनया तीर ठौर रमनीक अति द्रुम 'लता'—कुंभन० ७०।
ग. फूले 'लता' नवल गहबर बन, बरन बरन बहु भाँति—चतु० ७६।
घ. नाना बरन सकल बृन्दाबन जहाँ तहाँ द्रुम 'बेलनि' नये—चतु० ७२।
ङ. फूले द्रुम 'बेली' भाँति भाँति, नव बसंत सोभा कहि न जात।
—चतु० ८३।
च. द्रुम 'बल्ली' यह दीप जुग बनी, जलति अनल त्रिय जारिहैं।
—सा० २११६।

४७. तुमहिं देखि फूली जु बलि रंचक इहि तन चाहि—नंद०, मान०, पृ० ६४।
४८. फूले चंपक चमेलि, फूलि 'लवंग-लता' बेलि—सा० २६१७।
४९. ललित 'लवंग लता' सुबास, केतकी तरुनी मानों करत हास—गोविं० १०६।
५०. झलक कुंडल अलक अरुझी 'हार गुंजा' ताटंक—परमा० ६६३।
५१. क्यों न भए 'गुंजा बन बेली' रहत स्याम जू की ओर—परमा० ७६६।
५२. जो 'घुँघुची' सोने संग तोली इतनीयै बहुत बड़ाई—परमा० काँक० ११३४।

प्रदान करता है। इसलिए वह पूज्य है[५३]। 'कल्पतरु' को पाने की इच्छा सभी करते हैं और सत्यभामा भी पति श्रीकृष्ण से इस वृक्ष के दर्शन कराने की प्रार्थना करती हैं[५४]। परमानंददास ने बताया है कि 'कामधेनु' और 'कल्पवृक्ष' से मनोवांछित फल प्राप्त हो सकता है[५५]।

समुद्र-मंथन से प्राप्त होनेवाले रत्नों में 'पारिजात' भी था जो देवताओं के राजा इंद्र को दे दिया गया था[५६]। सूरदास ने हिंडोला-वर्णन में 'पारिजातक' की डंडी का उल्लेख किया है[५७]।

(च) वृक्षों का उपमान या प्रतीक-रूप में उल्लेख—अष्टछापी कवियों ने पेड़-पौधों के केवल नाम गिना कर ही संतोष नहीं कर लिया, प्रत्युत उन्होंने मानव-जीवन की गति का सूक्ष्म अध्ययन करके अनेक स्थलों पर ऐसे तथ्यों का संग्रह किया है जिनकी सत्यता मन को मुग्ध कर लेती है। ऐसे स्थलों पर वृक्षों का तथ्यात्मक उल्लेख मात्र न करके उपमानों के रूप में उनकी चर्चा द्वारा इस जीवन के गहन तथा गूढ़ दर्शन को स्पष्ट किया गया है। उदाहरण के लिए सूर ने एक पद में राम-नाम के दो अक्षरों की 'धर्म रूपी वृक्षांकुर के दो दल' से उपमा दी है;[५८] दूसरे पद में उन्होंने संसार को 'द्रुम-डरिया' कहा है;[५९] तीसरे में तन को 'तरुवर' बताया है[६०] और चौथे में उन्होंने मलय-वृक्ष की उदारता को आदर्श माना है, क्योंकि वह अपने काटनेवाले कुठार को भी सुगंधित करता है[६१]। इसी प्रकार अष्टछापी

५३. कालिदास, 'उत्तर मेघ', श्लोक ११।

५४. 'कल्पतरु' देखिबे की भई साध मोहिं, कृपा करि नाथ ल्यावहु दिखाई।
—सा० ४२६४।

५५. गोधन कामधेनु 'कल्पतरु' गोधन पै माँगै सोई पावै—परमा० २७८।

५६. अप्सरा, 'पारिजातक' धनुष, अस्व, गज स्वेत, ये पाँच सुरपतिहि दीन्हें।
—सा० ४३५।

५७. डाँड़ि बनाई 'पारिजातक' कनक-पटुली बानि—सा० परि० १०६।

५८. अदभुत 'राम-नाम के अंक'।
'धर्म-अँकुर के पावन द्वै दल', मुक्ति-बधू-ताटंक—सा० १-९०।

५९. हौं अनाथ बैठ्यौ 'द्रुम-डरिया'—सा० १-९७।

६०. ता दिन तेरे 'तन-तरुवर' के सबै पात झरि जैहैं—सा० १-८६।

६१. जद्यपि 'मलय-वृक्ष' जड़ काटै, कर 'कुठार' पकरै।
तऊ 'सुभाव न सीतल छाँड़ै', रिपु-तन-ताप हरै—सा० १-११७।

कवियों ने उलझी हुई 'सिवार' में सांसारिक बंधन, माया की जंजीरों और मोह-ममता की जकड़न का प्रतिबिंब पाया है[६२]। उनके लिए 'सेमर' संसार के झूठे आकर्षण का प्रतीक है[६३]। इसी प्रकार 'बबूल' का वृक्ष 'बुरे कर्म का बुरा फल' के सिद्धान्त का और 'आम' का वृक्ष शुभ कर्मों के सुफल का प्रतीक कहा गया है[६४]।

(छ) फल—अष्टछाप-काव्य में ब्रज में उत्पन्न होनेवाले फलों की चर्चा तो है ही, 'खूबानी', 'सेव' आदि उन फलों का भी उल्लेख हुआ है जो दूसरे प्रदेशों में उपजते हैं। स्थूल रूप से उन कवियों द्वारा उल्लिखित फलों को चार वर्गों में रखा जा सकता है—मीठे फल, खट्टे फल, अन्य फल और सूखे फल या मेवा। स्वयं सूरदास ने अशोकवाटिका-प्रसंग में 'मृदुल, मीठे और खट्टे' फलों की चर्चा की है;[६५] सूखे फलों का वर्णन करने का वहाँ अवकाश ही नहीं था। अतएव उन सब की चर्चा अष्टछापी कवियों ने अपने आराध्य के भोजन-प्रसंग में ही प्रमुख रूप से की है।

(अ) मीठे फल—इस वर्ग के अंतर्गत अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित जो फल विशेष रूप से आते हैं, वे हैं—आम, अनार, ऊख, केला, खरबूजा, खूबानी, तरबूज, बेर, सेव, श्रीफल, सफरी आदि।

'अंब', 'अँबुआ', 'रसाल' आदि नामों से प्रसिद्ध 'आम' भारत का प्रमुख फल माना जाता है। बर्नियर ने भारतीय फलों में 'आम' की बड़ी प्रशंसा की है[६६]। 'आम' प्राचीन काल से ही भारत में पैदा होता रहा है। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में फलों के अन्तर्गत उसका उल्लेख है[६७]। सूर ने कृष्ण को दिये जाने वाले 'कलेऊ' के फलों की लंबी सूची में 'आम' का नाम सम्मिलित किया है[६८]। परमानंददास

६२. पग न इत-उत धरन पावत, उरझि 'मोह-सिवार'—सा० १-९९।
६३. 'सेमर-फूल सुरँग अति' निरखत, मुदित होत खग-भूप।
परसत चोंच तूल उधरत मुख, परत दुःख कैं कूप—सा० १-१०२।
६४. क. 'बोवत बबुर' दाख फल चाहत जोवत हैं फल लागे—सा० १-६१।
ख. 'काटहु अंब', 'बबूर लगावहु', चंदन की करि बारि—सा० ४५२१।
६५. अगनित तरु फल सुगंध 'मृदुल, मिष्ट, खारे'—सा० ९-७६।
६६. एफ० बर्नियर, 'ट्रैविल्स इन दी मुगल इम्पायर', पृ० २८१।
६७. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'इंडिया ऐज़ नोन टु पाणिनि'—पृ० ११०।
६८. केरा, 'आम', ऊख-रस, सीरा—सा० १०-२११।

के कृष्ण को 'आम' इतना प्रिय है कि आम बेचनेवाली की आवाज सुनकर वे माता यशोदा से 'आम' दिला देने का हठ करते हैं[६९]। पका आम तो मीठा तथा स्वादिष्ट होता ही है, कच्चे आम से भी अत्यंत स्वादिष्ट अचार तैयार किये जाने की बात अष्टछापी कवियों ने लिखी है। सूर ने कृष्ण के भोजन में 'आम के अचार' का भी वर्णन किया है[७०]। बसंत के दिनों में 'अँबुआ' के वृक्ष में 'बौर' आने तथा उनकी सुगंध एवं उनके पराग पर लुब्ध भ्रमरों के मँडराने की बात सूरदास ने कही है[७१]। 'आम' अथवा 'अंब' को सूर ने 'सुफल' कहा है जिसे छोड़ कर 'सेमर' का फल कौन पसंद करेगा[७२] ?

'अनार' या 'दाड़िम' के फल के भीतर लाल, सफेद या गुलाबी रंग के दाने होते हैं। यह फल मीठा और खट्टा दोनों तरह का होता है; पर मीठा फल ही अधिक रुचि से खाया जाता है। परमानंददास ने एक पद में 'अनार' का उल्लेख किया है[७३]। 'ऊख', 'ईख', 'गन्ना', 'गाँड़ा' आदि नाम से बताया जानेवाला पौधा भारत में प्रायः सर्वत्र होता है। इसके तने में ही 'रस' होता है जिसे कुचल कर 'रस' निकाला जाता है। इसे 'ऊख' या 'गन्ने का रस' कहते हैं। यह पेय अति प्रिय माना गया है। 'ऊख रस' से 'गुड़' और 'शकर' तैयार होती है। इसकी खेती भारत में प्राचीन काल से होती आयी है। पाणिनि[७४] और बाणभट्ट[७५] ने 'इक्षु-वन' का वर्णन किया है। 'ऊख' के तने को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर चूसा जाता है; इन्हें 'गँडेरी' कहते है। सूर के एक पद में हाथी को गन्ना प्रिय

६९. कोउ माई 'आम' बेचन आई।
मैया, मोहिं आम लै दे री संग सखा बल भाई—परमा० ६७३।

७०. निंबुआ, सूरन, 'आम अथानो' और करौंदनि की छबि न्यारी।
—सा० १०-२४१।

७१. क. 'मौरे अँबुआ' अरु द्रुम बेली, मधुकर परिमल भूले—सा० २८५४।
ख. नव कमल महानव 'नव रसाल'—सा० २८४६।

७२. 'अंब सुफल' छाँड़ि कहा सेमर को धाऊँ—सा०१-१६६।

७३. चम्पक बकुल गुलाब निवारी 'लाल अनार' सुधारी – परमा० ७५०।

७४. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि', पृ० १०९-११०।

७५. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'हर्ष०, सां० अ०, पृ० १८३।

होने की बात का उल्लेख है[७६]। कृष्ण को 'ऊख का रस' प्रिय था और उनके 'कलेवे' में अन्य फलों के साथ इसे भी सम्मिलित किये जाने की बात सूरदास ने लिखी है[७७]।

'केला' या 'कदली' का फल अत्यंत मधुर और स्वादिष्ट होता है। यह पवित्र भी माना जाता है। कृष्ण के 'कलेवे' में इसको भी स्थान मिलने की बात सभी कवियों ने लिखी है[७८]। आज भी भगवान के भोग में 'केला' ही उन्हें सबसे अधिक प्रिय माना जाता है। 'खरबूजा' भी एक लोक-प्रिय फल है। कृष्ण के कलेवे में 'खरबूजा' छील-काटकर धरे जाने की बात सूरदास ने लिखी है[७९]। ताजे फलों के अंतर्गत 'खुबानी' का भी नाम अष्टछाप-काव्य में आया है। अकबर के समय में अपने रंग के कारण यह 'जर्द आलू' कहलाता था। सूरदास ने 'अरुण-खुबानी' का उल्लेख किया है[८०]। तरबूज की चर्चा भी इसी प्रसंग में की गयी है[८१]।

उक्त फलों के अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में बेर,[८२] सेव,[८३] श्रीफल,[८४] सफरी[८५] या अमरूद आदि का यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। इन फलों की चर्चा के संबंध में एक उल्लेखनीय बात यह है कि इनमें से 'अनार' या 'दाड़िम' और 'श्रीफल' का उल्लेख भोज्य पदार्थों के साथ अष्टछापी कवियों ने न करके क्रमशः दाँतों[८६] और उरोजों[८७] के उपमान-रूप में अधिक किया है।

७६. कहु षटपद कैसैं खैयतु है 'हाथिनि कैं सँग गाँड़े'—सा० ३६०४।
७७. केरा, आम, 'ऊख-रस' सीरा—सा० १०-२११।
७८. 'केरा', आम, ऊख-रस, सीरा—सा० १०-२११।
७९. छोलि धरे 'खरबूजा' केरा। सीतल बास करत अति घेरा—सा० १०-३९६।
८०. सफरी चिउरा 'अरुन खुबानी'—सा० १०-२११।
८१. सफरी, सेब, छुहारे, पिस्ता, जे 'तरबूजा' नाम—सा० १०-२१२।
८२. 'कोइ माई 'बेर' बेचन आई—परमा० ६७४।
८३. सफरी 'सेब' छुहारे पिस्ता जे तरबूजा नाम—सा० १०-२१२।
८४. जबहिं सरोज धरयो 'श्रीफल' पर, तब जसुमति गई आइ—सा० ६८२।
८५. 'सफरी', सेब, छुहारे, पिस्ता जे तरबूजा नाम—सा० १०-२१२।
८६. क. 'दाड़िम' दामिनि कुंदकली मिलि बढ़यो बहुत बखान—लहरी० उ० १५।
ख. 'दसन' कुंद 'दाड़िम' दुति दामिनि प्रगटत अरु दुरि जात—सा० ११३६।
८७. जबहिं सरोज धरयो 'श्रीफल' पर, तब जसुमति गई आइ—सा० ६८२।

(आ) *खट्टे फल*—अष्टछाप-काव्य में कुछ खट्टे फलों का भी उल्लेख हुआ है जो प्रायः अचार बनाने के काम आते हैं। इनका उल्लेख तरकारियों के साथ अधिक हुआ है। इनमें 'इमली', 'आँवला', 'करवँदा', 'करौंदनि' या 'करौंदा', 'निबुआ', 'निबुआनि' या 'नीबू' प्रमुख हैं। 'इमली' का स्वाद खट्टा और मीठा मिला हुआ होता है। सूरदास की सम्मति में इसके आगे 'षटरस' भी मात हैं[८८]। 'आँवले' का अचार बड़ी विधि से तैयार किया जाता था। उसमें हींग, हल्दी, मिर्च, तेल, अदरख आदि मिलाये जाने की बात सूर ने लिखी है[८९]। 'करौंदे' का अचार भी यत्न से तैयार होता है, जिसे कृष्ण चाव से खाते थे[९०]। 'नीबू' तो अपने गुणों के लिए प्रसिद्ध ही है। इसका अचार भी तैयार होता है जो कृष्ण को अत्यंत रुचिकर बताया गया है[९१]।

(इ) *अन्य फल*—इस वर्ग में ककड़ी, खीरा, सिंघाड़ा, पेठा, कंदमूल आदि रखे जा सकते हैं जो या तो फीके होते हैं या जिनको पकाकर खाया जाता है। 'ककड़ी' पतली, मुलायम और स्वादिष्ट होती है। इसको नीबू-नमक के साथ खाते हैं। कोई-कोई ककड़ी 'कड़ुई' निकल जाती है। सूरदास ने 'करुई ककरी' की चर्चा एक पद में की है[९२]। ककड़ी की जाति का दूसरा फल है 'खीरा' जिसकी चर्चा अष्टछाप-काव्य में कई स्थानों पर हुई है[९३]। 'सिंघाड़े' कच्चे खाये जाते हैं और सुखाकर भी। कच्चे सिंघाड़े की तरकारी भी बनती है। 'आइने अकबरी' में 'सिंघाड़ों' का उल्लेख हुआ है[९४]। कृष्ण के कलेवे में प्रस्तुत किये गये फलों में 'सिंघाड़े' भी बताये गये हैं[९५]। 'पेठे' की 'बड़ियाँ' बनती हैं और इसका 'मुरब्बा' भी डाला

८८. अरुइहिं 'इमली' दई खटाई। जेंवत षटरस जात लजाई—सा० १२१३।
८९. हींग, हरद, मिर्च, छौंकै तेले, अदरख और 'आँवरे' मेले—सा० ३९६।
९०. क. कितिक भाँति केला करि लीने, दै 'करवँदा' हरदि रंग भीने—सा० १२१३।
  ख. राइ 'करौंदा' अंब कलौंजी—सा० परि० १५३।
९१. क. 'निंबुआ' लोन तेल तर सूजी—सा० परि० १५३।
  ख. 'निबुआ'..............और करौंदनि की रुचि न्यारी—सा० १०-२४१।
९२. जब लै सूर कहति है उपजी सब ककरी करुई—सा० ३२९६।
९३. खारिक, दाख, खोपरा, 'खीरा'—सा० १०-२११।
९४. 'आइने अकबरी', पृ० १५२।
९५. अँदरसे खटमिठे 'सिंघारे'—सा० परि० १५३।

जाता है। सूरदास ने कई प्रकार से 'पेठे' के बनाये जाने की बात लिखी है[९६]। 'कंदमूल' का उल्लेख परमानंददास ने किया है[९७]।

(ई) *सूखे फल या मेवे*—जिन सूखे फलों या मेवों की चर्चा अष्टछाप-काव्य में हुई है उनमें किसमिस, दाख, छुहारा, चिरौंजी, बादाम और खोपरा या 'गरी' और 'पिस्ता' प्रमुख हैं। 'किसमिस' नामक 'मेवा' अंगूर के सुखाने से तैयार होता है। अंगूर के बड़े दाने के सूखने पर वही 'दाख' या 'द्राक्षा' कहलाता है। परमानंद ने इसके लिए 'द्राच्छा' शब्द का प्रयोग किया है[९८]। श्रीकृष्ण के कलेवे में 'खारिक' या छुहारा, 'दाख', 'किसमिस', 'खोपरा' या 'गरी' के साथ-साथ 'चिरौंजी' और 'बदाम' का वर्णन भी सूरदास ने किया है[९९]। 'छुहारे' का उल्लेख भी 'दाख' के साथ 'सूरसागर' के ही एक पद में हुआ है[२००]। 'खोपड़ा' या 'खोपरा' नारिकेल या नारियल की 'गिरी' को कहते हैं। नारियल जब कच्चा और हरा होता है तो फल के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। यह मरुभूमि में और समुद्र के किनारे उत्पन्न होता है[१]। भीतर से पोला होने के कारण यह मधुर तथा स्वादिष्ट जल से पूर्ण होता है। इसे तोड़ कर जल पी लेते हैं और इसकी कच्ची 'गिरी' खाते हैं। सूरदास ने अपने आराध्य के कलेवे में 'खोपरा'[२] और 'पिस्ता'[३] होने की बात लिखी है।

(उ) *तरकारियाँ और साग*—भोज्य पदार्थों में तरकारियों और सागों (शाक) का जो महत्व आज है, भारतवासियों को वह बहुत पहले से ज्ञात था।

९६. 'पेठा' बहुत प्रकारनि कीन्हें, तिनसौं सबै स्वाद हरि लीने—सा० १२१३।
९७. 'कंदमूल' फल तर मेवा धरी ओट किये मुरकैया—परमा० ६८१।
९८. फोग केरा 'द्राच्छा' किये बिल सारू फेरी—परमा० २७२।
९९. 'खारिक', 'दाख' 'चिरौंजी' 'किसमिस' उज्जल 'गरी' 'बदाम'।
—सा० १०-२१२।
२००. ऊधौ मन माने की बात।
'दाख', 'छुहारा' छाँड़ि अमृत फल बिष कीरा बिष खात—सा० ४०२१।
१. बाण भट्ट ने विंध्याटवी के फलों में 'नारिकेल' का उल्लेख किया है।
—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्ष०, सां० अ०, पृ० १८६।
२. खारिक दाख 'खोपरा' खीरा—सा. १०-२११।
३. सफरी सेब छुहारे 'पिस्ता' जे तरबूजा नाम—सा. १०-२१२।

इस बात की पुष्टि दैनिक भोजन में इन वस्तुओं की प्रचुरता से होती है। फल और मेवों का आस्वादन अन्य दूरस्थ प्रदेशों से मँगाकर किया भी जा सकता था; परन्तु तरकारियाँ और साग तीन-चार शताब्दी पूर्व किसी प्रदेश में बाहर से मँगाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। अतएव अष्टछाप-काव्य में उन्हीं तरकारियों और सागों का उल्लेख है, जो उर्वरा ब्रजभूमि की देन रहे हैं।

(अ) *तरकारियाँ*—इस वर्ग में अष्टछापी कवियों द्वारा अपने काव्य में वर्णित ये तरकारियाँ आती हैं—अगस्त की फली या 'फरी', अदरख, अरुई या 'अरुहहिं', ककोरा, कचनार, करेला, कदुआ या कुम्हड़ा, कुनरू या कुँदरू, कचरी या कचरिया, चिचिंडी या चिचिंडा, खीरा, टेंटी, ढेढ़स, परवल या 'परवर', पाकर की कली, पिंडारू, भंटा, भाँटा या बैंगन, भिंडी, मूली या 'मूरी', रतालू, सेम, सूरन आदि। इनका संक्षिप्त सोदाहरण परिचय नीचे दिया जाता है।

'अगस्त' नाम का एक वृक्ष होता है, जिसके फूल तरकारी बनाने के काम आते हैं। सूर ने इस फूल को 'फरी' कहा है, क्योंकि यह आकार में सेम या मटर की फली से मिलती-जुलती है। प्रायः इसे बेसन में लपेट कर तल लेते हैं। सूर का तात्पर्य इसी से है। उन्होंने इसका स्वाद अमृत के समान बताया है[४]। 'अदरख' के पौधे की जड़ खायी जाती है। उसके छोटे-छोटे टुकड़े काट कर तरकारियों के साथ मिलाकर खाये जाते हैं। अचार और चटनी के साथ भी इसका प्रयोग होता है। सूरदास ने नींबू के साथ 'अदरख' के खाये जाने का स्वाद अच्छा बताया है[५]।

'अरुहहिं', 'अरुई' या 'अरबी' भूमि के भीतर होती है। इसकी तरकारी भी कई प्रकार से तैयार की जाती है। सूर ने इमली की खटाई के साथ 'अरुई' को बनाने का उल्लेख किया है[६]। कटीले परवल को 'ककोरा' कहते हैं। इसकी तरकारी बड़ी स्वादिष्ट बनती है। सूर ने इसकी भी गिनती तरकारियों में की है[७]।

४. फूल करील कली पाकर नम। 'फरी अगस्त' करी अमृत सम—सा० १२१३
५. 'अदरख' अरु निबुआनि ह्वै है रुचि—सा० १२१३।
६. 'अरुइहि' इमली रही खटाई—सा० १२१३।
७. कुनरू और 'ककोरा' कोरे—सा० १२१३।

कचनार वृक्ष का फूल तरकारी बनाने के काम आता है। सूर ने कृष्ण के भोजन में इसकी तरकारी का उल्लेख किया है[८]।

'करेला'[९] खाने में कड़वा होता है। इसकी भी तरकारी बना कर खायी जाती है। कड़वाहट दूर करने के लिए इसके ऊपरी भाग को छील कर उस पर नमक मलते हैं; फिर उसे घी में तल लेते हैं। सूर ने इसका उल्लेख करते हुए बताया है कि 'करेले' में नमक लगाकर तुरंत तल लेने से वे बहुत अच्छे बनते हैं[१०]। 'कदुआ' या 'कुम्हड़ा', 'सीताफल' भी कहलाता है। यह प्रत्येक ऋतु में पैदा होता है। यह आकार में काफी बड़ा होता है। इसकी तरकारी बनती है और उसे पेठे की तरह शकर में पागा भी जाता है। 'कदुआ' को शकर के साथ घी में पागे जाने का उल्लेख सूर ने किया है[११]। एक ही खेत में धनिया, धान और 'कुम्हड़े' उत्पन्न न हो सकने की बात एक पद में सूर ने कही है[१२]। उपमान के रूप में भी 'कुम्हड़े' या 'कुष्मांड' का प्रयोग किया गया है। गोपियाँ योग के सिद्धांतों को ग्रहण करने में उसी प्रकार असमर्थ हैं जैसे बकरी के मुँह में 'कुष्मांड' नहीं समाता[१३]।

'कुनरू'[१४] परवल के आकार का होता है और बेल में लगता है। हरे 'कुनरू' की तरकारी कई प्रकार से बनती है जो खाने में स्वादिष्ट होती है। पकने पर यह लाल रंग का हो जाता है, जिसे 'बिंबा' फल कहते हैं। 'ककोरा' के साथ 'कुनरू' की तरकारी का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है[१५]। 'कचरी'

८. ककरी कचरी अरु कचनारयो—सा० १२१३।

९. करेले का उल्लेख 'आइने अकबरी' में भी है। उसमें 'करेले' का भाव प्रति सेर डेढ़ दाम दिया हुआ है—पृ० १३७-३८।

१०. भले बनाइ 'करेला कीने', लौन लगाई तुरत तल लीने—सा० १८३१।

११. 'कदुआ' करत मिठाई घृत पक—सा० ८९२।

१२. सूरदास तीनों नहिं उपजत 'धनियाँ धान कुम्हाड़े'—सा० ३६०४।

१३. जोग अलि 'कुष्मांड' जैसो अजा मुख न समात—सा० ३९०२।

१४. 'आइने अकबरी' में इसके लिए 'ककरी' शब्द दिया गया है—पृ० १३६।

१५. 'कुनरू' और ककोरा कोरे—सा० १२१३।

या 'कचरिया' की तरकारी का उल्लेख परमानंददास[१६] और सूरदास[१७] ने किया है। यह ककड़ी की तरह की होती है। श्रीकृष्ण को यह इतनी प्रिय है कि वह नंद बाबा से स्वयं बन जाकर 'कचरिया' ढूँढ़ लाने का आग्रह करते हैं। 'चिचिंडी' या 'चिचिंडा'[१८] ककड़ी की जाति की तरकारी है; परन्तु यह लंबाई तथा मोटाई में ककड़ी से बड़ा होता है। अष्टछापी कवियों ने तरकारियों में इसका भी उल्लेख किया है[१९]। 'खीरे'[२०] की चर्चा 'फल' के अंतर्गत पीछे हो चुकी है; सूरदास ने 'खीरे' की तरकारी को इतना अच्छा बताया है कि जिसे खाने की रुचि न हो, वह भी इसे बड़ी रुचि के साथ खाता है[२१]।

'टेंटी' का फल व्रज में पायी जानेवाली करील की झाड़ी में लगता है। वहाँ के लोग इसकी तरकारी बना कर खाते हैं। सूरदास ने टेंटी को छीलकर तरकारी बनाने की बात कही है[२२]। टेंटी अथवा करील के फल का उल्लेख उद्धव-गोपी-संवाद में भी हुआ है और इसे कमल से हीन बताया गया है[२३]। 'करील के फूल' की सब्जी बनायी जाने की बात भी सूरदास ने लिखी है[२४]। 'ढेंड़स' का उल्लेख टेंटी के साथ हुआ है[२५]। 'परवल' का नाम भी तरकारियों में गिनाया गया है[२६]।

१६. क. और भावैं चाहै सेव 'कचरिया' लाओ बबा बन हेर—परमा० १०३।
ख. 'कचरिया' सुकबन की करी भुंजेना बहु भाय—परमा० २७२।

१७. 'कचरी' चारु चिंचीडा सौरे—सा० १२१३।

१८. 'आइने अकबरी' में 'चिंचिडी' को 'चँचेड़ा' नाम दिया गया है। फल वाली सूची में तरकारियाँ, पका कर खाये जाने वाले फलों के नाम से दी गयी हैं—पृ० १३७।

१९. क. बनकौरा पिंडीक 'चिचीडी'—सा० ३९६।
ख. कचरी चारु 'चिंचीड़ा' सौरे—सा० १२१३।

२०. 'आइने अकबरी' में 'खीरे' और 'ककड़ी' के अचार का भी वर्णन है।
—पृ० १२६।

२१. 'खीरा' रामतरोई तामैं। अरुचिनि रुचि अंकुर जिय जामैं—सा० १२१३।

२२. 'टेंटी' ढेंढस छोलि कियौ पुनि—सा० १२१३।

२३. जिहिं मधुकर अंबुज रस चाख्यौ क्यों 'करील फल' भावै—सा० १-१६८।

२४. 'फूल करील' कली पाकर नम—सा० १२१३।

२५. टेंटी 'ढेढ़स' छोलि कियौ पुनि—सा० १२१३।

२६. पोई 'परवर' फाँग फरी चुनि—सा० १२१३।

'पाकर' या 'पकरिया' का वृक्ष 'गूलर' के समान होता है। इसकी कली का साग तैयार किये जाने की बात अष्टछाप-काव्य में लिखी गयी है[२७]। 'पिंडारू' 'सकरकंद' का ही एक प्रकार है। 'आइने अकबरी'[२८] में इसका नाम मिलता है। इसकी बेल के पत्ते पान के आकार के होते हैं। इसकी जड़ खोद कर निकाल लेते हैं और उसे पका कर तरकारी बनाते हैं। सूरदास ने इसका उल्लेख किया है[२९]। 'भँटा', 'भाँटा' या 'बैंगन'[३०] की तरकारी कई तरह से बनाई जाती है; इसका बना हुआ 'भरता' भी स्वादिष्ट होता है। इसे आग में रखकर भून लेते हैं, फिर ऊपर का छिलका निकाल कर गूदे को मसल कर 'भरता' बनाते हैं। सूरदास ने 'भाँटे' के 'भरते' में खटाई मिलाने का उल्लेख किया है[३१]। परमानंद-दास[३२] ने कई शाकों के साथ 'बैंगन'[३३] के 'भुरता' के तैयार किये जाने की बात कही है।

'भिंडी' की तरकारी भी कई विधियों से तैयार की जाती है। भिंडी कड़ी हो जाने पर बेकार हो जाती है; मुलायम रहने पर अच्छी बनती है। इसीलिए सूर ने कोमल भिंडी की तरकारी बनाये जाने की बात कही है[३४]। 'मूरी' या 'मूली'[३५] का उल्लेख सब्जियों में नहीं है। 'उद्धव-गोपिका-संवाद' में सूरदास ने 'मूरी' के पत्तों का उल्लेख किया है[३६]। 'मूली' की फली 'सिंगरी' के नाम से सूर ने गिनायी है[३७]। 'रतालू' देखने में सुन्दर होता है। सूर ने इसे घी या तेल में तल कर

२७. फूल करील 'कली पाकर' सम—सा० १२१३।

२८. 'आइने अकबरी,' पृ. १३६।

२९. सीप 'पिंडारू' कोमल भिंडी—सा० ३९६।

३०. 'आइने अकबरी' में भी 'बैंगन' का उल्लेख है—पृ० १३६।

३१. भरता 'भँटा' खटाई दीनी—सा० १२१३।

३२. बैंगन 'भुरता' शाक कई बहु भाँति बनाये—परमा० २७२।

३३. 'बैंगन' भारत की प्राचीन तरकारियों में से है। इसकी चर्चा 'हर्ष-चरित' में 'बैंगन' नाम से है—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, हर्ष०, सां० अ०, पृ० १८३।

३४. सीप 'पिंडारू' कोमल भिंडी— सा० ३९६।

३५. 'आइने अकबरी' में अचारों तथा शाकभाजी की सूचियों में 'मूली' का नाम भी आया है—पृ० १२९।

३६. 'मूरी' के पातनि के बदलैं को मुक्ताहल दैहै—सा० ३६६४।

३७. सेम सींगरी छौंकि झोरई—सा० १२१३।

गर्म-गर्म खाने का उल्लेख किया है[३८]। परमानंददास ने भी इसका नाम लिया है[३९]।

'सेम' की लता में सेम की फली लगती है। इसकी तरकारी बनती है और इसका अचार डाला जाता है। सूर ने इसको 'छौंक' कर बनाने की बात कही है[४०]। 'सूरन' अथवा 'जिमीकंद' जमीन के भीतर उत्पन्न होता है। इसे कच्चा खाने पर मुँह में किनकिनाहट उत्पन्न हो जाती है। परमानंददास ने इसके साथ इमली की खटाई मिलाकर तरकारी बनाने का उल्लेख किया है[४१]। सूरदास ने भी 'सूरन'[४२] की चर्चा की है[४३]।

इन सबके अतिरिक्त 'लहसुन' का भी उल्लेख सूरदास ने एक पद में किया है। इसकी चर्चा साग-तरकारियों के साथ नहीं की गयी है। इसका प्रयोग वैष्णव लोग नहीं करते; संभवत: इसीलिए अष्टछाप के कवियों ने 'लहसुन' की उपेक्षा की है। यह दुर्गंधयुक्त होता है। कपूर की तुलना में 'लहसुन' का महत्व ठीक उसी तरह नहीं है, जैसे हंस की तुलना में काग का[४४]।

अष्टछाप-काव्य में वर्णित उक्त तरकारियों के नामों में 'कटहल' का अभाव खटकता है। यह प्राचीन काल में भी प्रचलित था[४५]। नंददास ने 'सिद्धांत पंचाध्यायी' में 'पनस' या कटहल के पेड़ का उल्लेख किया है;[४६] परन्तु अन्य

३८. सुन्दर रूप 'रतालू' रातौ तरि-तरि लीन्हौं अबहीं तातौ—सा० १२१३।
३९. अरबी 'रतालू' जिमीकंद इमली जु मिलाई—परमा० २७२।
४०. 'सेम' सींगरी छौंकि बनाई—सा० १२१३।
४१. अरबी, रतालू 'जिमीकंद' इमली जु मिलाई—परमा० २७२।
४२. बाणभट्ट ने 'हर्ष-चरित' में 'सूरनकंद' का उल्लेख किया है।
—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, हर्ष०, सां अ०, पृ० १८३।
४३. 'सूरन' करि तरि सरस तोरई—सा० १२१३।
४४. जैसे काग हंस की संगति 'लहसुन' संग कपूर—सा० ३१५२।
४५. क. 'हर्ष-चरित' में वर्णित विन्ध्याटवी के वृक्षों में 'कटफल' अर्थात् कटहल भी है—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, हर्ष०, सां० अ०, पृ० १८६।
ख. 'आइनेअकबरी' में हिंदुस्तानी मीठे फलों के अन्तर्गत कटहल का उल्लेख है—पृ० १३५।
४६. नूत प्रयाल, कदंब, निंब अरु अंब 'पनस' जहँ—नंद०, सिद्धा०, पृ० १८६।

कवियों ने इसका वर्णन नहीं किया है। आज भी कटहल उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में कम उत्पन्न होता है। संभवतः ब्रजप्रदेश में कम होने के कारण इसका उल्लेख नहीं हुआ है।

उक्त तरकारियों के अतिरिक्त अष्टछापी कवियों ने अन्य तरकारियों का भी उल्लेख किया है, जिनमें पिंडीक,[४७] फाँगी,[४८] बनकौरा,[४९] रामतोरई,[५०] सहिंजन के फूल[५१] आदि हैं।

अ. *साग*[५२]—हरे पत्तों की बनी हुई तरकारी को 'साग' कहते हैं। इसके लिए 'शाक' शब्द का भी व्यवहार किया जाता है[५३]। सूरदास ने विभिन्न प्रकार के 'सागों' का उल्लेख भोजन-प्रसंग में किया है जिनमें चौराई, चने, मरुसे, सरसों, मेथी, सोवा, पालक, पोई, लाल्हा आदि के 'साग' प्रमुख हैं[५४]।

'चौराई' एक छोटे पौधे के पत्तों का साग है। यह कई प्रकार का होता है, यथा—कटीला, हरा, लाल। कई प्रकार के पत्तों की 'चौराई' होती है। 'चौराई' को अन्य सागों के साथ मिलाकर और नींबू का रस उसमें निचोड़ कर खाने का उल्लेख हुआ है और इसे 'लाल्हा' तथा 'पोई' के साथ मिलाने की बात कही गयी है[५५]। 'चने' और 'मरुसा' के साग बनाने का भी उल्लेख हुआ है[५६]। इसी प्रकार

४७. बनकौरा 'पिंडीक' चिचिंडी—सा० ३९६।

४८. रुचिर लजालु लोनिका 'फाँगी'—सा० ३९६।

४९. 'बनकौरा,' पिंडीक चिचिंडी—सा० ३९६।

५०. खीरा 'राम तरोई' तामैं, अरुचिनि रुचि अंकुर जिय जामैं—सा० १२१३।

५१. फूले 'फूल सहिजना' छौंके—सा० १२१३।

५२. 'आइने अकबरी' में 'साग' नामक एक व्यंजन की भी चर्चा जो पालक, सोया तथा अन्य सागों में घी, प्याज, अदरख, कालीमिर्च, लौंग, इलायची आदि डालकर बनाया जाता था—पृ० १७०।

५३. शकरकंद मीठो, 'शाक' रुचिर धरयौ बनाई—परमा० २७२।

५४. 'आइने अकबरी' में सोआ, पालक, पोदीना, जीतू, पोई, चूका, बथुआ, चौलाई आदि सागों के नाम आये हैं—पृ० १२६।

५५. चौराई लाल्हा अरु 'पोई', मध्य मेलि निबुआनि निचोई—सा० ३९६।

५६. 'साग' 'चना' 'मरुसा' 'चौराई'—सा० १२१३।

'सरसों', 'मेथी', 'सोवा', 'पालक', 'पोई' और 'लाल्हा' आदि सागों की चर्चा सूरदास ने की है[५७]।

(म) फूल—अष्टछाप-काव्य में साग-तरकारियों के समान मुख्यतः उन्हीं फूलों की चर्चा है, जो व्रजप्रदेश में पैदा होते हैं। अष्टछापी कवियों की विशेषता यह है कि मथुरा, द्वारका अथवा अयोध्या के उपवनों या वाटिकाओं में उपजाये जानेवाले फूलों की चर्चा में उन्होंने इतनी रुचि नहीं ली है, जितनी व्रज के वन-उपवनों में पैदा होनेवाले फूलों में; अस्तु। अष्टछाप-काव्य में 'पुष्प' शब्द के लिए कई पर्यायों का प्रयोग हुआ है; जैसे फूल,[५८] पुहुप,[५९] कुसुम[६०] आदि।

अष्टछापी कवियों ने अपने काव्य में जिन फूलों की चर्चा विशेष रूप से की है, उनमें प्रमुख ये हैं—अतिसी, कमल, कदंब, कनिआरी, कनेल, कनीर, करना, कुमुद, कुमुदिनी, कर्निकार, केतकी, केवड़ा, कुबंक, कूजा, गुलाब, चंपा, चमेली, जूही, टेसू, निवारी, पाटल, बंधूक, बकुल, मल्लिका, माधवी, मालती, मौलसिरी, सेवती, सेमर आदि। इन नामों में से कुछ एक दूसरे के पर्याय भी हैं; परंतु सामान्य पाठक उनको स्वतंत्र समझता है। अतएव प्रत्येक की चर्चा स्वतंत्र रूप से करना ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

'अतिसी' का फूल उन पुष्पों में है जिसकी चर्चा अष्टछाप-काव्य में बहुत कम हुई है[६१]। 'कमल' के लिए उसके अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग अष्टछाप-काव्य में हुआ है; यथा अरविंद, अंबुज, अंभोज, इंदीवर, कंज, सुकंज, कुसेसय, जलजात, जलरुह, जलज, पंकज, पद्म, राजीव, बारिज, सरोज आदि। कमल अनेक रंग के होते हैं। लाल रंग का कमल भारत के प्रायः सभी भागों

५७. क. 'सरसों', 'मेथी', 'सोवा,' 'पालक'—सा० ३६६।
ख. 'चौराई', 'लाल्हा' अरु 'पोई'—सा० ३६६।

५८. 'फूल' के थंम 'फूल' की चौखटि, फूलनि बनी है सुदेस तिवारी।
—चतु० ६६।

५९. क. पहिरावत उर 'पुहुपन' दाम—चतु० ५२।
ख. पुहुप, पान, नाना फल, मेवा, षटरस अर्पन कीन्हौ—सा० १७६८।

६०. ताकौ कुंजनि 'कुसुम' बिनावै—परमा० ४५५।

६१. 'अतिसी' कुसुम कलेवर बूँदैं प्रतिबिंबित निरधार—सा० ११५२।

में पाया जाता है। 'अंबुज' शब्द लाल कमल के लिए प्रयुक्त हुआ है। श्वेत कमल या 'पुंडरीक' काशी के आस-पास तथा नील कमल अथवा 'इंदीवर' या 'राजीव' तिब्बत और चीन में होता है। पीला फूल अमरीका और जर्मनी में भी होता है।

भारतीय संस्कृति में 'कमल' अपनी कमनीयता और कोमलता के कारण बहुत मान पाता रहा है और भारतीय ललित कलाओं में भी उसे स्थान मिला है। काव्य में 'कमल' का प्रयोग मुख, नेत्र, हाथ, पैर आदि शरीरांगों के उपमान रूप में हुआ है। अष्टछापी कवियों ने भी 'कमल' का उल्लेख मुख्यतः इसी रूप में किया है। सूरदास ने राधा के कोमल हाथों की तुलना 'अंबुज' से[६२] और कृष्ण के पैरों की तुलना 'पदुम' से की है[६३]। मुख की तुलना भी 'सरोज' से की गयी है[६४]। साँवले रंग के कृष्ण के बड़े-बड़े नेत्र अष्टछाप-काव्य में 'बारिज' के समान बताये गये हैं[६५]।

उपमान-रूप में प्रयोग के अतिरिक्त 'कमल' का वर्णन और भी कई प्रकार से अष्टछाप-काव्य में हुआ है। कमल की माला कृष्ण धारण करते हैं[६६]। शुद्ध प्रकृति-वर्णन में 'जलज', 'इंदीवर', 'राजीव', 'कुसेसे', 'सुकंज' आदि का प्रयोग आलोच्य कवियों ने किया है[६७]। 'कमल' के संबंध में प्रचलित परंपरागत विश्वासों का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में मिलता है। उदाहरण के लिए सूर्य के उदय होने पर 'जलजात' के खिलने,[६८] 'जलरुह' का चंद्रमा से बैर होने,[६९] रात में कमल के मुँदने पर 'अलि' तथा 'अरबिंद' का मिलन होने[७०] की बात

६२. श्री राधा 'अंबुज-कर' भरि भरि छिरकत बारंबार—सा० ११५६।

६३. जे 'पद-पदुम' रमत बृन्दाबन अहि सिर धरि अगनित रिपु मारे—सा० १-६४।

६४. मंद मंद मुसकनि 'सरोज-मुख' सोभा बरनि न जाइ—सा० २८७५।

६५. साँवरो ढोटा को है माई 'बारिज नैन' बिसाल—सा० २८७५।

६६. कंठ कठुला नीलमनि 'अंभोज माल' सँवारि—सा० १०-१६६।

६७. क. फूल फूलि रहे 'जलज', 'सुदेसे', 'इंदीवर', 'राजीव', 'कुसेसे'।
—नँद०, रूप०, पृ० ३।

ख. कुटज, कुंद, कदंब, कोबिद, करनिकार 'सुकंज'—सा० ३३१४।

६८. मनहु मोर 'जलजात' लाल रंग भीने हो—सा० २८६३।

६९. मनु जलरुह तजि बैर मिलत बिधु—सा० १७६७।

७०. उदित सूर चकई मिलाप, निसि अलि जु मिलै 'अरबिंदहि'—सा० ३२७१।

उन कवियों ने लिखी है। 'कमल' पर अलिगण की भीड़[७१] का उल्लेख छीतस्वामी ने किया है। 'कंज' अथवा 'कमल' के आसन की बात भी अष्टछाप-काव्य में कही गयी है[७२]।

'कदंब' व्रजप्रदेश का मुख्य फूल है जिसकी चर्चा प्रकृति-वर्णन-प्रसंग में की गयी है[७३]। 'कनिआरी' भी प्रमुख फूलों में है[७४]। 'कुंद' का फूल सफेद रंग का होता है और बहुत बड़ी संख्या में फूलता है[७५]। अगहन-पूस इसके फूलने का समय है। सफेद होने के कारण 'कुंद' दाँतों का उपमान भी है। 'मेघदूत' में कालिदास ने कुंद पुष्प से अलंकृत केशराशि का वर्णन किया है[७६]। 'कनेल' का पुष्प पीले अथवा लाल रंग का होता है। सूर ने प्रमुख फूलों में इसकी गणना की है[७७]। 'कनीर'[७८] और 'करना'[७९] का उल्लेख भी अन्य पुष्पों के साथ हुआ है। 'कुमुद' और 'कुमुदिनी', दोनों फूल कवियों को कमल के समान ही प्रिय रहे हैं। कृष्णदास के अनुसार कुमुद-कुमुदिनी, दोनों चंद्रमा को देखकर रात्रि में फूलते हैं[८०]।

'करनिकार' या 'कर्णिकार' का पुष्प लाल, पीले और सफेद रंग का होता है। कविप्रसिद्धि के अनुसार वह पद्मिनी स्त्रियों के नृत्य से पुष्पित होता है[८१]।

७१. 'पंकज' पर मानो आए मधुप अरिकैं—छीत० ११४।
७२. प्रतिचरन मनु हेम बसुधा देति आसन 'कंज'—सा० १०-२१८।
७३. क. कहि धौं 'कदंब' बकुल बट चंपक ताल तमाल—सा० १०६१।
ख. कुटज, 'कदंब' सुदेस तमाल—गोविं० १०६।
७४. जाही जुही सेवती करना 'कनियारी'—सा० १०६५।
७५. फूली बनराजि जाइ 'कुंद' कुसुम थोरे—गोविं० १०६।
७६. 'मेघदूत', उत्तर मेघ, श्लोक २।
७७. तहाँ कमल केवरा फूले केतकी 'कनेल' फूले—सा० २६१७।
७८. कुल केतकि करनि 'कनीर' मिलि झूमक हो—सा० २६०३।
७९. जाही जुही सेवती 'करना' कनियारी—सा० १०६५।
८०. क. अद्भुत सतदल बिकसित कोमल मुकुलित कुमुद 'कल्हार'।
—कृष्ण०, सोम०, पृ० ७८।
ख. तू ब्रज सर की 'कुमुदनी' हरि बृन्दाबन चंद—कृष्ण०, सोम०, पृ० ४६।
८१. 'कालिदास', मल्लिनाथ टीका, उत्तर मेघ २, श्लोक १५।

कालिदास ने पार्वती के केशों में 'कर्णिकार' के गुँथे होने का वर्णन किया है[८२]। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार संस्कृत का 'कर्णिकार' हिंदी का 'अमलतास' है और 'कनेर' से भिन्न फूल है[८३]। 'आइने अकबरी' में 'कर्णिकार', को जहरीला बताया गया है तथा जो इसे सर पर धारण धारण कर लेता है वह लड़ने लगता है[८४]। 'केतकी' का फूल सफेद होता है और कुँआर में फूलता है। इसका वर्णन सूरदास, चतुर्भुजदास, गोविंदस्वामी आदि ने किया है[८५]। 'केवरा' या 'केवड़ा' बड़ी अच्छी सुगंध का फूल है। इसका इत्र तैयार किया जाता है, जो लगाने तथा खाने के काम आता है। अबुलफजल ने कपड़ों को सुगंधित करने के लिए सूखा 'केवड़ा' रखने का उल्लेख किया है[८६]। चतुर्भुजदास[८७] और सूरदास[८८] ने सुगंधित पुष्पों के साथ 'केवड़े' का वर्णन किया है।

प्रकृति-वर्णन में 'कुरबक' अथवा 'कुर्वक' पुष्प का नाम कुंभनदास और गोविंदस्वामी ने लिया है[८९]। 'कूजा' का उल्लेख सूर ने किया है[९०]। 'आइने अकबरी' में यह गुलाब के समान बताया गया है। सम्भवत: यह 'मोतिया' या 'बेले' का ही नामान्तर है[९१]। कहीं-कहीं सूरदास ने 'खूभों' पुष्प का नाम लिया

८२. क. 'कुमार सम्भवम्,' तृतीय सर्ग, श्लोक ५५।
 ख. 'कुमारसंभवम्', तृतीय सर्ग, श्लोक ६२।
८३. 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', पृ० २३०।
८४. 'आइने अकबरी', पृ० १२३।
८५. क. कुल 'केतकि' करनि कनीर मिलि झूमक हो—सा० २६०३।
 ख. 'केतकि' कनेल फूले संतन हित फूल डोल—सा० १६१७।
 ग. जूही जई, केवरो 'केतकी' सौरभ सरस धरम रुचिकारी—चतु० १००।
 घ. 'केतकी' मालती बँधायो—गोविं० १०२।
८६. 'आइने अकबरी', पृ० १७८।
८७. जुही, जई, 'केवरो' केतकी सौरभ—चतु० १००।
८८. तहाँ कमल 'केवरा' फूले हो—सा. १६१०।
८९. क. कुरबक बकुल, मालती चंपौ, केतकी, नवल निवारे—कुंभन० ८१।
 ख. 'कुर्बक' बकुल बेली घन चंपौ कुसुमनि दाम सँचत—गोविं० ३२०।
९०. कूजा मरुआ कुंद सों कहैं गोद पसारी—सा० १०६५।
९१. 'आइने अकबरी', पृ० १७३।

है[९२]। 'गुलाब' विदेशी फूल है जो मुगलों के भारत में आने पर लोकप्रिय हो गया। अष्टछाप के कवियों ने इसका वर्णन किया है, परन्तु 'गुलाब' को उन्होंने 'कमल' अथवा 'कुमुद' जैसा महत्व नहीं दिया है। अन्य फूलों के साथ 'गुलाब' को चित्रसारी में सजाने की बात गोविंदस्वामी ने कही है[९३]। चतुर्भुजदास ने भी गुलाब का उल्लेख किया है[९४]।

'चंपक' अथवा 'चंपे' का फूल भारतीय पुष्पों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसका उल्लेख 'आइने अकबरी' में भी हुआ है[९५]। कवि - प्रसिद्धि के अनुसार 'चंपा' पद्मिनी स्त्रियों के हास्य से पुष्पित होता है[९६]। एक दूसरी कवि-प्रसिद्धि यह है कि चंपे के फूल पर भौंरा नहीं बैठता[९७]। सूरदास ने भी भौंरे को 'चपंक' न रुचने की बात कही है[९८]। एक अन्य पद में सूरदास ने 'नासिका' की तुलना 'चंपक-कली' से की है[९९]। छीतस्वामी, परमानंददास, कुंभनदास और गोविंदस्वामी ने भी पुष्प-वर्णन में चंपक का उल्लेख किया है[३००]। 'चमेलि' अथवा 'चमेली' के फूल का नाम भी अष्टछाप-काव्य में आया है। संस्कृत में इसे 'जाही' अथवा 'मालती' कहते हैं[१]। सूरदास ने सामान्य चमेली का[२] और परमानंददास ने

९२. खूभौ मरुवौ मोगरौ मिलि झूमक हो—सा० २६०३।
९३. चंपक बकुल, 'गुलाब' निवारो नीकी है चित्रसारी—गोविं० १४५।
९४. चंपौ फूल्यौ, फूल्यौ निवारो, नव गुलाब अरु जाई—चतु० २१४।
९५. 'आइने अकबरी', पृ० १००।
९६. 'कालिदास', मल्लिनाथ टीका, उत्तरमेघ, श्लोक १५।
९७. 'चम्पा' प्रीति न भौरहिं दिन दिन आगरि बास।
—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पद्मा०, सं० व्या०, २७-२२।
९८. जोग हमहिं ऐसो लागत ज्यों तुहि चंपे कौ फूल—सा० ४३४६।
९९. नासिका चंपक कली कौं अली भाये—सा० १०७६।
३००. क. 'चंपक' बकुल गुलाब के सोंधे सिंधु तरंग—छीत० ५७।
ख. 'चम्पक' बकुल गुलाब, निवारी, लाल अनार सुधारी—परमा० ७५०।
ग. नीम और प्रवाल 'चंपक' बकुल जम्बू अंब—कुंभन० १२०।
घ. कुरवक, बकुल, मालती, चंपौ, केतकी, नवल निवारे—कुंभन० ८१।
ङ. कुर्बक, बकुल बेली घन 'चंपौ' कुसुमनि दल संचत—गोविं० ३२०।
१. कालिदास, मल्लिनाथ टीका, 'उत्तरमेघ', श्लोक ३५।
२. क. फूलें चंपक, 'चमेलि', फूलि लवंग लता बेलि—सा० २६१७।
ख. बेलि 'चमेली', मालती बूझति द्रुम डारी—सा० १०६५।

पीली 'चमेली' तथा उसकी सुगंधि का वर्णन किया है[३]। 'जई' या 'जाही' का फूल सामान्यतया श्वेत रंग का होता है। अबुलफजल ने इसके तिसाला फूलने तथा बेल के पेड़ से लिपट जाने का वर्णन किया है[४]। 'जूही' का फूल भी उपर्युक्त फूलों के साथ अष्टछाप-काव्य में वर्णित है[५]।

'टेसू' का सुंदर फूल 'पलाश' वृक्ष में पैदा होता है। यह लाल रंग का होता है। जिस समय 'टेसू' फूलता है, ऐसा जान पड़ता है मानो वन में आग लगी हुई हो। सूर ने 'टेसू' के फूलों से सुशोभित वन का वर्णन किया है[६]। 'निवारी' के फूल का वर्णन भी अष्टछापी कवियों ने अन्य फूलों के साथ किया है[७]। अबुल-फजल ने बताया है कि इसका फूल एक पत्ते का होता है और 'रायबेलि' से ही मिलता-जुलता है। इसमें एक साथ इतने अधिक फूल आते हैं कि पौधे ढक जाते हैं[८]।

'पाटल', 'पाँडल' या 'पाडल' पुष्प 'गुलाब' का ही भारतीय नाम है। इसका उल्लेख सूरदास और चतुर्भुजदास के पदों में हुआ है[९]। 'बंधूक' के फूल का

३. 'पीत चमेली' चित को चोरत रायबेलि महकारी—परमा० ७५०।
४. 'आइने अकबरी', पृ० १७६।
५. क. 'जाही' 'जुही' सेवती करना कनिआरी—सा० १०६५।
   ख. 'जूही', 'जई' केवरो, केतकी—चतु० १००।
   ग. 'जूही', 'जई' केवरो कूजो, राइबेलि महकारे—कुंभन० ८१।
६. क. द्वादस बन रतनारे देखियत चहुँ दिसि टेसू फूले—सा० २८५४।
   ख. ससि उर चढ़त प्रेम पावक परि बंक 'कुसुंभ' रहे कुम्हिलाई।
   —सा० ३४८५।
७. क. फूली 'निवारी' एलि मोगरौ सेवति सुबेलि—सा० २६१७।
   ख. चपंक, बकुल, गुलाब 'निवारी' नीकी है चित्रसारी—गोविं० १४५।
   ग. राइबेलि, मालती, माधवी, चंपक, बकुल, गुलाब, 'निवारी'—चतु० १००।
८. 'आइने अकबरी', पृ० १७६।
९. क. मिलत सनमुख 'पाटल' भरत मानहि जुही—सा० २८४४।
   ख. जहाँ 'पाँडल' बिपुल गँभीर मिलि झूमक हो—सा० २६०३।
   ग. 'पाडल', झरी, सेवती, मल्ली, बोलसरी, रचि रुचिर सँवारी।
   —चतु० १००।

उपयोग प्रायः अधरों और मसूढ़ों के उपमान-रूप में हुआ है[१०]। कालिदास ने 'बंधूक' के लिया 'जपा' शब्द का भी प्रयोग किया है[११]। 'आइने अकबरी' में इसके लिए 'अड़हुल' नाम आया है[१२]। 'बंधूक' पुष्प माला में नहीं गूँथा जाता; क्योंकि जन-विश्वास के अनुसार, सेही के काँटें की भाँति, यह 'घर' में लड़ाई करवाता है[१३]। परमानंददास ने 'बंधूक' के लिए 'जपा' शब्द का प्रयोग किया है[१४]। 'बकुल' के फूल का नाम अष्टछाप-काव्य में अनेक बार आया है[१५]। इसके लिए 'मोलश्री', 'मोलसिरी' और 'बोलसिरी' आदि शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। यह फूल पीले रंग का और सुंगधि से परिपूर्ण होता है। कवि-प्रसिद्धि के अनुसार 'बकुल' स्त्रियों के कुल्ले से पुष्पित होता है[१६]। 'आइने अकबरी' में इसका नाम 'मौलश्री' दिया हुआ है। 'बेले' के फूल का उल्लेख सूरदास, चतुर्भजदास और परमानन्ददास ने किया है। इसकी कई किस्में होती हैं, जैसे 'मोतिया', 'मोगरा', 'रायबेलि'[१७] आदि। इसीका साहित्यिक नाम 'माधवी' है[१८]। अष्टछापी कवियों ने 'माधवी' का उल्लेख अपने काव्य में बहुत उल्लास से किया है; क्योंकि उसके विकास के समय प्रकृति में भी उल्लास छा जाता है[१९]। अष्टछाप-काव्य में भी 'माधवी' नाम

१०. अधर बिंब, बंधूक निरादर दसन कुंद अनुहारी—सा० ११६७।
११. कालिदास, मल्लिनाथ टीका, पूर्व मेघ, श्लोक ३६।
१२. 'आइने अकबरी', पृ० १८२।
१३. 'कृषक जीवन', अध्याय १३, पृ० १२।
१४. मनहुँ 'जपा कौ कुसुम' पात पर कहियै कहा बिबेक—परमा० ५६५।
१५. क. कहि धौं कुंद कदंब, 'बकुल' बट चंपक ताल तमाल—सा० १०६१।
ख. कुरबक, 'बकुल', मालती, चंपौ केतकी नवल निवारे—कुंभन० ८११।
ग. चंपक, 'बकुल', गुलाब, निवारी—परमा० ७५०।
घ. ···· ···· ····मल्ली, बोलसिरी रचि रुचिर, सँवारी—चतु० १००।
१६. 'कालिदास', मल्लिनाथ टीका, 'उत्तरमेघ', श्लो० १५।
१७. क. केतकी करबीर 'बेला' बिमल बहु बिधि मंजु—सा० ३३१४।
ख. खूभौ मरुऔ, 'मोगरो' मिलि झूमक हो—सा० २६०३।
ग. पीत चमेली चित को चोरत 'रायबेलि' महकारी—परमा० ७५०।
१८. 'कालिदास', मल्लिनाथ टीका, उत्तरमेघ, श्लो० १५।
१९. क. बेलि चमेली 'माधवी' मिलि झूमक हो—सा० २६०३।
ख. प्रफुलित नव मल्लिका मालती 'माधवी'—गोविं० १०८।

आया है। इसी प्रकार 'मल्लिका',[२०] 'मालती',[२१] 'मरुवो'[२२] और 'सेवती'[२३] आदि फूलों का वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। इनमें से 'सेवती' का उल्लेख 'आइने अकबरी' में भी है। इसका रंग सफेद और इसकी आकृति 'गुलाब' जैसी होती है[२४]।

उपर्युक्त फूलों में से अधिकांश का उल्लेख अष्टछाप के कवियों ने ऋतु-वर्णन अथवा स्त्रियों के शृंगार के प्रसंग में किया है। शैय्या के सजाने, अंगों तथा स्थानों के अलंकरण में भी फूलों का वर्णन आया है। 'सेमर' जैसे फूल के उपमान द्वारा संसार के दुरंगेपन—वाह्यरूप में आकर्षक और अन्दर से खोखला होने—का वर्णन करके उन कवियों ने संसार की असारता प्रदर्शित की है[२५]।

आ. पत्ते—अष्टछाप-काव्य में जिन 'पत्तों' का उल्लेख हुआ है, उनमें 'तुलसी-दल' प्रमुख है। इसके संबंध में पीछे विस्तार से लिखा जा चुका है। अन्य वृक्षों या पौधों के पत्तों का अलग अलग उल्लेख नहीं है। उनका केवल सामान्य रूप से वर्णन आया है। 'पत्ता' का 'पात' के लिए 'पल्लव'[२६] और 'किसलय'[२७] शब्दों

२०. क. जमुन पुलिन 'मल्लिका' मनोहर सरद सुहाई जामिनि—सा० १०४८।
 ख. 'मल्लिका' मालती बिकसति बिबिध खंड कदंब—कुंभन० १२०।
 ग. जाइ जुही 'मल्लिका' जूथी फूले निरमल फूल—परमा० ६८८।
२१. क. बूझहुँ धौं 'मालती' कहूँ तैं पाए हैं तन चंदन—सा० १०६१।
 ख. राइबेलि 'मालती' माधवी चंपक बकुल गुलाब निवारी—चतु० १००।
 ग. केतकी 'मालती' जुही बँधायो—गोविं० १०२।
 घ. मल्लिका 'मालती' बिकसित बिबिध खंड कदंब——कुंभन० १२०।
२२. क. कूजा 'मरुआ' कुंद सौ कहैं गोद पसारी—सा० १०६५।
 ख. खूझौ 'मरुऔ' मोगरो मिलि भूमक हो—सा० २६०३।
२३. क. जाही जुही सेवती करना कनिआरी—सा० २०६५।
 ख. पाडल, झरी, 'सेवती' मल्ली, बोलसरी रुचि रुचिर सँवारी–चतु० १००
 ग. बीच जुही, बिच 'सेवती' अरु बिच-बिच नवल निवारी री झारी।
 —गोविं० १३४।
२४. 'आइने अकबरी', पृ० १७२।
२५. 'सेमर-फूल सुरँग अति' निरखत मुदित होत खगभूप।
 परसत चोंच तूल उघरत मुख परत दुःख कैं कूप—सा० १-१०२।
२६. भव जंजाल तोरि तरुबन के, 'पल्लव' हृदय बिदारयौ—सा० २२४५।
२७. 'किसलय' कुसुम कुंत सम सायक पायक पवन बिचारिहै—सा० २११६।

का प्रयोग अष्टछाप-काव्य में किया गया है। जीवन की असारता, क्षणभंगुरता और एक बार ही मिलने वाले अवसर की ओर संकेत करने में 'पत्ते' का उदाहरण ही हमारे कवियों ने उपयुक्त समझा है[२८]।

(छ) मानवेतर प्राणी—

इस वर्ग में अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित वे पशु, जलचर, कीट-पतंग, पक्षी आदि आते हैं जिनका मानव से या तो संघर्ष रहा है या जिनको वश में करके और पालतू बनाकर उसने उनको अपने लिए उपयोगी सिद्ध किया है। ध्यान देने की बात यह है कि ऋतु-वर्णन, लीला-चर्चा तथा उपमान-रूप में अष्टछाप-काव्य में अनेक ऐसे पशु-पक्षियों का भी उल्लेख मिलता है जो आज तो व्रज में पाये ही नहीं जाते। जो हो, इससे इतना तो स्पष्ट होता ही है कि भारतीय संस्कृति में मानव-समाज के साथ-साथ मानवेतर प्राणियों के लिए भी सदा से स्थान रहा है।

अ. *पशु*—अष्टछाप-काव्य में वर्णित 'पशु वर्ग' को, स्थूल रूप से, दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—प्रथम वर्ग में 'वन्य पशु' आते हैं और द्वितीय में पालतू पशु जिनको पुनः दो वर्गों में रखा जा सकता है—सामान्य पालतू पशु और सवारी के पशु। इन सबके संबंध में अष्टछापी कवियों के विचार, संक्षेप में, नीचे दिये जाते हैं।

क. *वन्य पशु*—वन्य पशु सामान्यतया हिंसक, मांसभक्षी और भयानक होते हैं। इनके अन्तर्गत सिंह, सूकर, स्यार और रीछ आदि पशु आ जाते हैं जिनकी चर्चा अष्टछाप-काव्य में हुई है। इनके कुछ पर्यायवाची शब्द भी उसमें प्रयुक्त हुए हैं। पशुओं में प्रमुख 'सिंह' अथवा 'केहरी' सबसे अधिक शक्तिशाली माना गया है; यद्यपि उसकी शक्ति भाग्य-बल के आगे निरर्थक सिद्ध होती है। सूर ने विनय-पदों में कहा है कि सिंह शक्तिशाली होते हुए भी भाग्यहीन होने पर कभी-कभी भूखों मर सकता है[२९]।

२८. क. धरनि 'पत्ता' गिरि परें तै फिर न लागै डार—सा० १-८८।
ख. ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै 'पात' झरि जैहैं—सा० १-८६।
२९. अति प्रचंड पौरुष बल पाये, 'केहरि' भूख मरै—सा० १-१०५।

'सिंह' की चर्चा उपमान-रूप में भी हुई है। उसका कटि-प्रदेश सुन्दर होता है; अत: मनुष्य के सुन्दर कटि-प्रदेश की तुलना 'सिंह' के कटि-प्रदेश से की गयी है[३०]। प्राचीन उपदेशात्मक पशु-कथाओं में एक ऐसी कथा है जिसमें 'सिंह' अपनी परछाई देखकर मूर्खतावश कुएँ में कूद पड़ता है। इस प्रसंग का कहावत के रूप में सूर ने उल्लेख किया है[३१]। 'सिंह' के साथ अष्टछाप-काव्य में 'बाघ' शब्द भी आया है। 'बाघ' एक क्रूर और घातक पशु है जो 'गाय' का घोर शत्रु है। अतएव उसकी सर्वत्र निंदा की गयी है[३२] और उसको मृगादि निर्बल पशुओं को सतानेवाले 'आततायी' के रूप में प्रस्तुत किया गया है[३३]।

'सृगाल', 'स्यार', 'सियार' अथवा 'जंबुक' की गणना हीन पशुओं में की गयी है[३४]। 'सृगाल' अथवा 'शृगाल' कायरता का प्रतीक माना गया है[३५]। यह पशु शिकारी नहीं होता और प्राय: मृत शरीर का ही मांस खाता है। मनुष्य के शरीर की अंतिम गति 'स्यार' का भक्ष्य बनना भी है, जिसकी ओर संकेत करके सूरदास ने कहा है—इस मानव शरीर पर गर्व करना अनुचित है, क्योंकि मृत्यु के बाद 'स्यार' इसको नोच-नोच कर खा जायँगे[३६]। 'बृक' भी हिंसुक पशु है जो गायों के बछड़ों को मार कर खा जाता है। परमानंददास ने 'बृक' के भय से त्रस्त व्रजवासियों के कष्टों का उल्लेख किया है[३७]।

'सूकर' या 'बाराह' 'बनैले सुअर' को कहते हैं। यों तो यह गंदा तथा घातक पशु है, परन्तु पुराणों में वर्णित विष्णु के अवतारों में 'बाराह' अवतार के होने से

३०. क. कटि 'सिंघ', गौर तनु, सुभग सींवा—कुंभन० १६०।
ख. कटि निरखत 'केहरि' डर मान्यो, बन-बन रहे दुराइ—सा० १७५७।
३१. ज्यौं 'केहरि' प्रतिबिंब देखि कैं आपुन कूदि परयौ—सा० २-३६।
३२. बैरु परसपर उपज्यो है बन 'बाघ' गाइ कौं मारत—परमा० काँक० ११४०।
३३. 'ब्याध' जु मृगनि बधत सुनि सजनी—परमा० काँक० ११३७।
३४. क. समुझत नाँहि दीन दुख कोऊ, हरि भख 'जंबुक' पानिहिं।
—सा० ४१६६।
ख. सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु जैसैं सूकर स्वान 'सियार'—सा० १-४१।
३५. करनि सिंह तुम्हरी धरी कैसैं भएँ 'सृगाल'—सा० ४१८८।
३६. या देही को गरब न कीजै 'स्यार' काग गिध खैहैं—सा० १-८६।
३७. घर घर तैं बछरा 'बृक' काटत सब प्रानी अति आरत—परमा०काँक० ११४०।

यह पूज्य भी है। एक ओर अष्टछाप-काव्य में इस पशु का अवतार के रूप में उल्लेख है,[३८] दूसरी ओर 'सूकर' के जीवन को अधम बताया गया है और ईश्वर-भक्ति से विमुख जनों से उसकी तुलना की गयी है[३९]। 'रीछ' का नाम 'सूरसागर' में राम-कथा के प्रसंग में आया है। प्रसिद्ध योद्धा जांबवान को रीछ ही कहा गया है जो आज के वैज्ञानिक युग में असंगत जान पड़ता है। जांबवान राम के भक्त थे। वृद्धावस्था में भी वे बड़े पराक्रमी थे। उनकी 'रीछ' सेना ने राम-राक्षस-युद्ध में भाग लिया था[४०]।

त्र. *सामान्य पालतू पशु*—अनादि काल से मनुष्य और पशुओं का निकटतम संबंध रहा है। मानवीय सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में उनका भी योग रहा है और उनकी सहायता से मनुष्य को अनेक सुख साधन उपलब्ध होते रहे हैं। मनुष्य अनेक पशुओं को पालता रहा है। इनको पालतू बनाने के दो कारण हैं; प्रथम, व्यावहारिक जीवन में उनकी उपादेयता और दूसरे, उनके साथ सहानुभूति करने और उनसे सहानुभूति पाने के कारण रागात्मक संबंध का होना। कुछ पशुओं का पालन उनके रूप-रंग के प्रति आकर्षण से मनोरंजन प्राप्त करने की दृष्टि से भी किया जाता है।

पशुओं में 'बंदर' एक ऐसा पशु है जो रूप और आकार में मनुष्य के अधिक निकट है। इसके लिए अष्टछाप-काव्य में 'बानर', 'कपि', 'मरकट', 'साखामृख', 'लंगूर' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस पशु के संबंध में अष्टछाप-काव्य में दो प्रकार की बातें कही गयी हैं। एक तो बानर जाति के प्रति आदर प्रकट किया गया है; क्योंकि राम-कथा में हनुमान, अंगद, सुग्रीव आदि बानरों के वीरता-

३८. क. तब हरि बपु - 'बराह' धरि आयौ—सा० ३-१०।
ख. तब हरि धरि 'बराह'-बपु, ल्याए पृथी उठाइ—सा० ३-११।
ग. पद्म पुरान कथा सब ऊपर धरनी सों 'बाराह' जसु गावै।
—परमा० काँक० १३८०।

३९. क. उदर भरयौ कूकर 'सूकर' लौं, प्रभु कौ नाम न लीनौ—सा० १-६५।
ख. भजन बिनु कूकर 'सूकर' जैसौ—सा० २-१४।
ग. परमानन्द प्रभु तुम्हरे भजन बिनु जैसे 'सूकर' स्वान सियार।
—परमा० काँक० १३६४।

४०. 'रीछ' लंगूर किलकारि लागे करन, आन रघुनाथ की जाइ फेरी–सा० ९-१३८।

पूर्ण कार्य वर्णित हैं[४१]। यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है कि राम-रावण-युद्ध में अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित करने वाले 'बानर' कौन थे। वे मनुष्य जाति के थे या पशु, इसका निर्णय करना इतिहासकारों का काम है। अष्टछाप के कवियों ने तो उन्हें 'पशु' ही स्वीकार किया है। राम-रावण-युद्ध में वे 'बानर' मनुष्यों के साथ कंधे से कंधा भिड़ा कर लड़े थे। दूसरी ओर 'बानर' का उपहास भी किया गया है। यह पशु मूर्ख होता है जो अच्छी या बुरी वस्तु का भेद नहीं जानता। वह 'मणि' को नष्ट कर देता है और 'कस्तूरी' को मिट्टी में फेंक देता है[४२]। हनुमान को 'साखामृग' कह कर, उनकी प्रिय वाणी की सीता ने प्रशंसा की है[४३]। 'बानर' खेल-तमाशे का साधन भी है। उसे पाल कर प्रशिक्षित किया जाता है और 'मदारी' उसे नचाता है। सूरदास ने 'कपि' वर्ग की इस मूर्खतापूर्ण विवशता की चर्चा भी की है[४४]। 'लंगूर' भी 'बंदर' को एक किस्म है। उसका मुख काला और दुम लम्बी होती है। राम-कथा-प्रसंग में इसका भी उल्लेख हुआ है[४५]।

'मृग', 'म्रिग', 'मृगा', 'मृगी', 'कुरंग', 'सारंग', 'हरिन' आदि नामों से विख्यात पशु का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में मुख्यत: संगीत-प्रेम के प्रसंग में हुआ है। इस पशु को संगीत से बड़ा प्रेम होता है और अष्टछापी कवियों ने 'संगीत' सुनकर मृग के आत्मविस्मृत हो जाने की बात कही है[४६]। कृष्ण की वंशी की तान सुनकर यह पशु घास चरना भी भूल जाता है[४७]। 'मृग' की आँखों के सौन्दर्य की ओर संकेत करते हुए कुंभनदास और चतुर्भुजदास ने व्रजबालाओं को 'मृगनैनी'

४१. क. 'कपि' सोभित सुभट अनेक संग, ज्यों पूरन ससि सागर तरंग। —सा० ६-१६६।
ख. 'बानर' बीर हँसैंगे मोकौं, ताकौ बहुत डराऊँ—सा० ६-७५।

४२. मनि 'मरकट' कौं देत मूढ़ मति, मृगमद रज मैं सानहिं—सा० ४१६६।

४३. महामधुर प्रिय बानी बोलत, 'साखामृग', तुम किहि के तात—सा० ६-६६।

४४. ज्यों 'कपि' डोरि बाँधि बाजीगर कन कन को चौहटैं नचावै—सा० १-३२६।

४५. सैन सहित सबै हते झपटि कै 'लँगूर'—सा० ६-६६।

४६. आए 'मृग' बन के स्रवन सुनि सुधि न रही सरीरन—चतु० १६८।

४७. क. तृन न चरत हैं 'मृगा मृगी' री तान परी जब कान—चतु० ११६।
ख. 'जैसे खग 'मृग' पसु द्रुमलता बेली मोहैं—गोवि० ३२५।

या 'नैन कुरंगी' आदि कहा है[४८]। अष्टछाप-काव्य में कहीं-कहीं 'मृग' शब्द[४९] पशु मात्र के लिए प्रयुक्त हुआ है[५०]। कहीं-कहीं 'कस्तूरी मृग' की अज्ञानता का उल्लेख भी किया गया है। कवि-प्रसिद्धि के अनुसार किसी-किसी 'मृग' की नाभि में कस्तूरी होती है, जिसकी सुगंधि से वह इतना मुग्ध हो जाता है कि उसकी खोज में बन-बन दौड़ता फिरता है यद्यपि वह उसी की नाभि में वर्तमान रहती है। इसी प्रकार अज्ञानी व्यक्ति अपनी आत्मा में परमात्मा का आलोक न देखकर व्यर्थ के आडंबरों में फँसकर भटकता फिरता है[५१]। सूरदास ने राम-कथा प्रसंग में मृग के रूप में सीता को धोखा देनेवाले राक्षस का उल्लेख किया है[५२]। 'कपट कुरंग' और 'मृग' के अर्थ में 'सारंग' शब्द का प्रयोग भी अष्टछाप-काव्य में हुआ है। अनेकार्थी होने के कारण 'सारंग' शब्द हिंदी कवियों के विशेष प्रिय रहा है[५३]। इसके आधार पर 'श्लेष' का चमत्कार उन्होंने खूब दिखाया है। इस शब्द को लेकर मध्यकालीन कवियों ने पूरे-पूरे पद लिख डाले हैं। सूर तथा अन्य अष्टछापी कवियों ने भी इसी प्रकार पद-रचना की है[५४]।

'कूकर', 'स्वान' अथवा 'कुत्ता' पालतू पशु है जो प्रायः मनुष्यों की बस्तियों में रहना पसंद करता है और घरों की जूठन पर पलता है। 'कुत्ते' में स्वामिभक्ति की भावना रहने पर भी हमारे यहाँ इसे अधम ही माना गया है; इसका जीवन भक्तिभाव-विहीन निरुद्देश्य जीवन का उपमान बन गया है। अष्टछापी कवियों ने 'कूकर' के

४८. क. करि सिंगार चंचल 'मृगनैनी' पहिरि कुसुंभी चोली—कुंभन० २८६।
ख. 'नैन कुरंगी' रति रसमाते घिरत तरल अनियारे—चतु० १९८।

४९. सकल खग 'मृग' पैक पायक पौरिया प्रतिहार—सा० ३२२७।

५०. अष्टाध्यायी में 'मृग' शब्द जंगली पशुओं के सामान्य अर्थ में आया है। पाणिनि ने दो प्रकार के हिरनों—ऋश्य और नियुष्क (gazalle) के नाम दिये हैं।
—डा०वासुदेव शरण अग्रवाल,'इंडिया ऐज नोन टू पाणिनि', पृ० २२८, २२१।

५१. क. ज्यौं 'मृग नाभि कमल' निज अनुदिन निकट रहत नहिं जानत।
—सा० १-४९।
ख. ज्यों मृगा कस्तूरि भूलै, सु तौ ताकैं पास—सा० १-७०।

५२. कपट कुरंग रूप धरि आयो सीता बिनती कीन्ही—सारा० २६४।

५३. सारँग के कई अर्थ हैं, जैसे मृग, सर्प, शेर, हाथी, कोयल, कपूर आदि।

५४. क. 'सारँग' बिकल भयो सारँग' में, सारँग तुल्य शरीर—सा० १-३३।
ख. 'सारँग' नैनी 'सारँग' गावै—चतु० २०२।

संबंध में ऐसे ही भाव प्रकट किये हैं[५५]। भोजन के पीछे कुत्ते को 'अस्म, लकुट और पद-त्रान' के प्रहार भी सहने पड़ते हैं[५६]।

'खर' अथवा 'गर्दभ', 'गधे' के नाम हैं। यह पशु बोझा ढोने के लिए प्रयुक्त होने के कारण उपयोगी तो है, परन्तु गंदा और मूर्ख होने के कारण असम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। सूरदास ने कहा है कि कहाँ अगर का सुगंधित अनुलेप और कहाँ 'खर'[५७]! गधे की सवारी अपमानजनक है; हाथी-घोड़े की तुलना में यह कहाँ ठहरता है[५८]! होली के अवसर पर अवश्य 'गधे' की सवारी किये जाने का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है[५९]।

भारतीय जीवन में 'गाय' की अत्यधिक उपयोगिता रही है जिसके फल-स्वरूप हिंदू उसे 'माता' मानते आये हैं। वेदकालीन भारतीय संस्कृति का मुख्य आधार गाय ही है जिससे उसका बहुत महत्व था। यज्ञों, पर्वों और धर्मोत्सवों से लेकर भोजन तथा वाणिज्य - व्यापार तक में 'गाय' सभी अनुष्ठानों और क्रियाओं का केन्द्र थी और आज भी है। अष्टछाप - काव्य में 'गाय' को लगभग उतने ही महत्व का स्थान दिया गया है। गोचारण, कवियों के आराध्यदेव कृष्ण की लीला का प्रमुख अंग रहा है। जिन ग्वाल-बालों के बीच वे पोषित हुए थे, वे गाय को 'गोधन' मानते थे; क्योंकि उनकी जीविका का प्रमुख आधार गाय ही थी।

अष्टछाप-काव्य में 'गाय' के लिए 'गाइ', 'गैया', 'गौ', 'धेनु', सुरभी आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। रंगों के अनुसार भी 'गायों' के अनेक नाम लिये गये हैं, जैसे धूमरि, धौरी, काजरि, राती, रौछी, पियरी, मौरी, गोरी, गैनी, खैरी, कजरी, दुलही,

५५. क. भजन बिनु 'कूकर' सूकर जैसौ—सा० २-१४।
ख. लालच लुब्ध 'स्वान जूठनि ज्यौं', सोऊ हाथ न आई—सा० १-३२८।
ग. 'स्वान' तुल्य है बुद्धि तुम्हारी, भोजन काज सहत दुख भारी। —सा० १-२८४।

५६. कौर-कौर कारन कुबुद्धि जड़ किते सहत अपमान।
जहँ-जहँ जात तहीं तहिं त्रासत अस्म लकुट पदत्रान—सा० १-१०३।

५७. 'खर' कौ कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषन अंग—सा० १-३३२।

५८. हय गयंद उतरि कहा 'गर्दभ' चढ़ि धाऊँ—सा० १-१६६।

५९. राते कवच बरात सजि 'खरनि' भये असवार—सा० २९१४।

फुलही, भौंरी, भूरी आदि। सूरदास,[६०] चतुर्भुजदास,[६१] और गोविंदस्वामी[६२] के पदों में विभिन्न रंगों की गायों का उल्लेख है। व्यावहारिक दृष्टि से 'गाय' का आदर इसीलिए है कि यह दूध देती है, जो स्वास्थ्य के लिए अत्यंत गुणकारी होता है। बच्चों के लिए तो यह दूध अमृत के समान जीवनदायक है। सामान्य विश्वास के अनुसार सबसे बढ़िया तथा उत्तम कोटि का दूध 'श्यामा' या 'कजरी' गाय का होता है और उससे उतर कर 'कत्थई' या 'लाल' रंग की गाय का। सूरदास ने 'कजरी' के दूध पीने पर कृष्ण की बेनी बढ़ने की बात कही है[६३]। गाय का गोबर भारत की उर्वरा भूमि के लिए बहुत उपयोगी खाद माना जाता है। यह भी उसके महत्व का एक कारण है।

अष्टछाप-काव्य में, कृष्ण-जन्म के साथ ही, 'गायों' का उल्लेख प्रारंभ हो जाता है। नंद के घर पुत्र-जन्म होते ही आनन्द का सागर उमड़ पड़ता है। इस अवसर पर 'गोदान' का उल्लेख है[६४]। दान में दी जानेवाली 'गायें' बढ़िया होती थीं। सूरदास के अनुसार नंद जी ने 'गायों' के खुर, ताँबे से; पीठ, चाँदी से; और सींग, सोने से मढ़वा कर उन्हें दान में दिया था[६५]। अनिष्ट-निवारण के लिए या अनिष्ट टल जाने पर भी 'गायें' दान में दी जाती हैं। जब कृष्ण असुरों का संहार करते हैं या वे संकटों से बच जाते हैं तो 'गायों' का दान किया जाता है। 'गोदान' की यह प्रथा आगे चलकर स्थायी हो गयी और मृत्यु के समय 'गोदान'

६०. धौरी, धूमरि, राती रौंछी', बोल बुलाइ चिन्हौरी।
पिबरी, भौंरी, गोरी, गैनी, खैरी, कजरी जेती।
दुलही फुलही भौंरी, भूरी, हाँकि ठिकाई तेती—सा० १०६३।

६१. 'साँग बुलाई धूमरि धौरी' टेरत बेनु बजाई—चतु० २१५।

६२. चढ़ि कदंब 'धौरी धूमरि काजरि और पियरी' पूरत मधुरें सुर बेनु।
—गोविं० १६२।

६३. 'कजरी' को पय पियहु लाल, जासों तेरी बेनि बढ़ै—सा० १०-१७४।

६४. क. जुवतिन बहुविधि भूखन दीजै, बिप्रन को 'गोदान'—परमा० १८।
ख. हय, गज, 'धेनु', अरथ, अंबर, बन दीन्हें धन भांडार—चतु० ५।
ग. 'कपिला धेनु, कनक-सिंगी' नाना बिधि के दान—गोविं० १२।

६५. 'खुर ताँबें', 'रूपै पीठि', 'सोनें सींग मढ़ीं'।
ते दीन्हीं द्विजनि अनेक, हरषि असीस पढ़ीं—सा० १०-२४।

इतना आवश्यक बन गया कि उसके अभाव में मनुष्य का 'वैतरणी' पार कर सकना असंभव माना जाने लगा; अस्तु।

कृष्ण के बड़े होने पर, 'गाय' उनके जीवन का प्रमुख अंग बन जाती है। 'गोपालन' नंद जी के परिवार का मुख्य व्यवसाय था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि कृष्ण भी इस कार्य में रुचि लेने लगें। माता यशोदा उन्हें गाय चराने के लिए वन जाने से रोकती हैं, पर वे बराबर हठ करते हैं। कुछ और बड़े होने पर वे ग्वाल-बाल के साथ, 'गायों' के झुंड लेकर वन जाते हैं और लगभग सारा दिन वहीं व्यतीत करते हैं। गायों को चराने ले जाना,[६६] वापसी के समय या उनके बहुत दूर चले जाने पर ऊँचे चढ़कर उन्हें टेर कर बुलाना,[६७] घाट पर पानी पिलाना,[६८] दूध दुहना[६९] आदि सभी बातें कृष्ण सीखते हैं। गायें भी कृष्ण से प्रेम करने लगतीं हैं। कृष्ण का मुरली-वादन तो उन्हें विशेष रूप से प्रिय है। जब वे बाँसुरी बजाते हैं तो वे तृण चरना भूल जाती है[७०]। वे चाहे जितनी दूर चर रही हों, कृष्ण के वंशी बजाते ही, दौड़कर निकट आ जाती हैं। कृष्ण उनके पीछे-पीछे वंशी बजाते चलते हैं[७१]। उस समय उनके साँवरे मुख पर 'गो-पद-रज' सुशोभित रहती है[७२]। इस प्रकार जब तक कृष्ण व्रजभूमि में रहते हैं, गाय उनके जीवन का प्रमुख अंग बनी रहती है।

गाय के बच्चे को 'बछड़ा' कहते हैं। इसके लिए 'गोसुत', 'गोवत्स', 'बच्छ',

६६. चले सब गाइ चरावन ग्वाल।
हेरी टेर सुनत लरिकन के दौरि गए नँदलाल—सा० ४१३।

६७. क. गोविंद गिरि चढ़ि टेरत 'गाइ'—चतु० २१५।
ख. 'गैयाँ' गईं दूरि, टेरो जू कान्ह—गोविं० ३३६।
ग. गिरि पर चढ़ि गिरिवर-धर टेरे—सा० ४६३।

६८. हौं वोहि बाट 'पिवावत गैया' जहाँ भरत पनिहारी—परमा० ६६६।

६९. छबीलौ लाल 'दुहत है धेनु धौरी'—कुंभन० २०८।

७०. पसु मोहैं, 'सुरभी बिथकित', तृन दंतनि टेकि रहत—सा० ६२०।

७१. 'आगे धेनु' रेनु तन मंडित मधुरें बेनु बजावत—कुंभन० २१६।

७२. बन तैं आवत धेनु चराए।
संध्या समय 'साँवरे मुख पर गो-पद-रज लपटाए'—सा० ४१७।

'बछरू', 'बछरुवा' आदि शब्द अष्टछाप-काव्य में आये हैं[७३]। गाय की भाँति इनके प्रति भी कृष्ण का परम स्नेह आलोच्य कवियों ने बताया है।

'छेरी' या 'अजा', जिसे प्रचलित भाषा में 'बकरी' कहते हैं, दूध देनेवाली पालतू पशु है। यद्यपि इसका दूध भी स्वास्थ्य की दृष्टि से गुणकारी होता है, परन्तु भारतीय समाज में इसे वह महत्व नहीं प्राप्त है जो गाय को है। अष्टछाप-काव्य में इस पशु की चर्चा केवल सामान्य रीति से की गयी है। सामान्य जीवन में बकरी, जब गाय से ही हीन समझी जाती है तब 'कामधेनु' की तुलना में तो सूरदास स्वभावतः उसे कोई स्थान नहीं देना चाहते[७४]।

'बिलार' या 'बिलाव' की चर्चा सूरदास ने यह समझाने के लिए की है कि विषय-वासना में लिप्त व्यक्ति की स्थिति काल के सामने वैसी ही रहती है, जैसी 'बिलाव' के सामने 'मूसे' की[७५]। इसी प्रकार 'भैंसे' या 'महिष' और 'मेढ़े' की चर्चा भी सूरदास ने विषय-वासना में लिप्त जीवन की अधमता बताने के लिए की है[७६]।

'बैल', 'वृष' या 'वृषभ' भी पालतू पशु है, जो गाय से ही उत्पन्न होता है। यह मुख्य रूप से खेती का हल चलाने और बोझा ढोने के काम आता है[७७]। इन

७३. क. 'गोसुत' अरु नर नारि मिले, अति हेत लाइ गर—सा० ४३७।
ख. कह्यौ गोपाल चरत हैं 'गोसुत' हम सब बैठि कलेऊ कीजै—सा० ४३८।
ग. अतिहि उठे अकुलाइ कै, ग्वाल बच्छ सब गाइ—सा० ४३१।
घ. भोजन करत सखा इक बोल्यौ, 'बछरू' कतहूँ दूरि गए—सा० ४३८।
ङ. सेली हाथ 'बछरुवा' मिलवत कौन कौन छबि लागे—परमा० ६६८।

७४. क. सूरदास प्रभु कामधेनु तजि 'छेरी' कौन दुहावै—सा० १-१६८।
ख. कामधेनु छाँड़ि कहा 'अजा' लै दुहाऊँ—सा० १-१६६।

७५. क. काल फिरत 'बिलार' तनु धरि, अब धरी तिहिं लेत—सा० १-३३१।
ख. जैसे घर 'बिलाव' के मूसा रहत बिषयबस वैसौ—सा० २-१४।

७६. क. सूरदास भगवंत-भजन बिनु, मनौं ऊँट वृष 'भैंसौ'—सा० २-३१४।
ख. 'मेढ़ा' 'महिष', मगर गुदरारौ मोर आखुमन, बाहन गावन—सा० ६७६।

७७. 'जोते जानेवाले पशु 'युग्म' नाम से पुकारे जाते थे। वाहनों के अनुसार भी उनके नाम रक्खे जाते थे, जैसे 'रथ्य' (रथ के बैल), 'शाकट' (शकट के), 'हालिक'

दोनों कामों के लिए उपयोगी 'बैलों' का सामान्य रूप से अधिक आदर होता है। मेले या विशेष पर्व के अवसर पर बैलों को सजाया जाता है। उनके शरीर और सींग रँगे जाते हैं[७८]। इसके विपरीत, कोल्हू में जोते जानेवाले 'बैल' का जीवन बड़ा दुखपूर्ण माना गया है। उसकी आँखें ढक दी जाती हैं और वह कोल्हू के चारों ओर चक्कर लगाता रहता है। सूरदास ने भक्ति-रहित तथा माया में फँसे मनुष्य की तुलना ऐसे ही 'बैल' से की है[७९] और एक अन्य पद में 'बिराने बैल' के दयनीय जीवन का मार्मिक वर्णन किया है[८०]।

ञ. *सवारी के लिए उपयोगी पालतू पशु—*

अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित तीन ही पशु इस वर्ग में आते हैं—घोड़ा, हाथी और ऊँट। इनमें से प्रथम दो का उल्लेख युद्ध-प्रसंग, सेना-वर्णन और आवागमन के 'साधन' के रूप में हुआ है। 'घोड़े' के लिए अष्टछाप-काव्य में 'अश्व', तुरंग', 'बाजि', 'तुरी', 'ताजी'[८१] आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। विवाह-प्रसंग में सूरदास ने 'घोड़े' पर बैठने तथा उसकी जड़ाऊ जीन, झूल और साज-

तथा 'सोरिक' (हल के बैल), 'संवधुरीण' तथा 'एकधुरीण' बैल (दोनों ओर अथवा एक ओर जोते जानेवाले बैल)। हिंदी में 'उपराल' तथा 'तरवाल' क्रमशः दाहिने तथा बायें बैल कहलाते हैं। पाणिनि ने 'गो-खाद' तथा 'उष्ट्रसार' शब्दों का प्रयोग बैल और ऊँट पर चढ़नेवालों के लिए किया है। उन्होंने साल्वदेश के प्रसिद्ध 'साल्वक' बैलों का भी उल्लेख किया है। पतंजलि ने 'शतीक पालि' का नाम और जोड़ दिया है।
—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'इंडिया ऐज नोन टू पाणिनि', पृ० १५३।

७८. धौरी धेनु सिंगारी मोहन, बड़रे 'बृषभ' सँवारे—परमा० २५८।

७९. क. सूरदास भगवंत-भजन बिनु मनौ ऊँट 'बृष' भैंसौ—सा०-२-३४।
ख. तेली के बृष लौं नित भरमत भजत न सारँगपानि—सा० १०२।

८०. भक्ति बिनु 'बैल बिराने' ह्वैहौ।
पाउँ चारि सिर स्रंग 'गुंग मुख' तब कैसैं गुन गैहौ।
चारि पहर दिन चरत फिरत बन, तऊ न पेट अघैहौ।
'टूटे कंधऽरु' 'फूटी नाकनि' कौ लौं धौं भुस खैहौ।
'लादत जोतत लकुट बाजिहै', तब कहँ मूड़ दुरैहौ।
सीत घाम घन 'बिपति बहुत बिधि' भार तरैं मरि जैहौ—सा० १-३३।

८१. फारसी में 'ताज़ी' का अर्थ अरब देश का घोड़ा होता है—लेखिका।

सज्जा[८२] का वर्णन किया है[८३]। इस अवसर पर अन्य व्यक्ति भी 'घोड़े' पर चढ़कर चलते बताये गये हैं[८४]। सूर ने 'अस्व' पर सवार होकर 'मृगया' के लिए श्रीकृष्ण के जाने की चर्चा की है[८५]। 'घोड़े' या 'तुरंग' को उन कवियों ने सदैव श्रेष्ठ पशु माना है[८६]। लंबी यात्राओं के लिए द्रुतगामी 'घोड़ों' वाले रथ पर जाने की बात भी अष्टछाप-काव्य में लिखी गयी है[८७]। चौगान का प्रसिद्ध खेल 'घोड़ों' पर चढ़कर खेला जाता था। चौगान-प्रसंग में सूरदास ने 'घोड़ों' की अनेक किस्मों का उल्लेख किया है, जैसे 'उच्चैस्रवा', 'कुमैत' आदि[८८]। अष्टछापी कवियों के अनुसार दौड़ में घोड़ों की प्रतियोगिता भी हुआ करती थीं[८९]।

'हाथी'[९०] के लिए अष्टछाप-काव्य में गज, कुंजर, गजेन्द्र, गयंद, गजराज, मतंग आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। सवारी ले जाने वाले पशुओं में हाथी सबसे अधिक मूल्यवान होता है और प्रायः इसे राजा-महराजा लोग ही पालते हैं। भक्ति-साहित्य में

८२. क. 'जीन' जरित जराव 'पाखरि' लगी नव मुक्तालरी—सा० ४१८६।

ख. 'पाखरि' घोड़े पर पड़ी 'झूल' को कहते हैं—लेखिका।

८३. बाणकालीन घोड़ों की सज्जा में 'लवण-कलापी', 'किंकिणी' तथा जाली से युक्त 'पर्याण' अथवा 'जीन' प्रचलित थी।

—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्ष०, सां० अ०, पृ० १४३।

८४. सब सखा बरात चलैंगे हौंऽब चढ़ौंगो घोरो—परमा० ३१३।

८५. कहुँ मृगया को चले 'अस्व' चढ़ि श्री बसुदेव-कुमार—सारा० ६६५।

८६. क. कहाँ 'तुरंग' कहाँ गज केहरि, हंस सरोवर सुनिये—सा० १५५०।

ख. अति ही बिचित्र रच्यौ बिस्वकर्मा सोभित चार 'तुरंग'—परमा० ७४३।

८७. तजि द्वारका घोष गमन को कंचन जीन पलाने 'बाजि'—परमा०कीं० ११५२।

८८. क. निकसे सबै कुँवर असवारी 'उच्चैस्रवा' के जोर।
'नील' 'सुरंग', 'कुमैत', स्याम तोहि परादे सब मन रंग।
बरन अनेक भाँति भाँतिनि के चमकत चपला ढंग—सा० ४७८४।

८९. चंचल 'बाजि' नचावत आवत होड़ लगावत यान—परमा० ६५।

९०. 'इंडिया ऐज़ नोन टु पाणिनि' के अनुसार उस युग में 'हाथी' को 'हस्तिन', 'नाग', 'कुंजर' आदि नामों से पुकारा जाता था। बड़ी सूँड़ वाला हाथी 'शुंडार' कहलाता था; ऊँचाई-नीचाई के हिसाब से उनके 'द्विहस्ति', 'त्रिहस्ति' आदि नाम थे। 'हस्ति-दंत' का उपयोग भी उस युग में होता था—पृ० २१६।

'गजेन्द्र-मोचन' की कथा प्रसिद्ध है। गज और ग्राह के युद्ध में 'गज' की आर्त पुकार सुनकर भगवान उसकी रक्षा के लिए दौड़ पड़ते हैं। इस कथा के उल्लेख द्वारा सूर तथा अन्य अष्टछापी कवियों ने भगवान की भक्त-वत्सलता का चित्रण किया है[९१]। पशु के रूप में 'गज'-दान की बात चतुर्भुजदास ने कही है[९२]। 'हाथी के दाँतों' का विवरण परमानंददास के पदों में आया है[९३]। हाथी का स्वभाव है कि वह नहाने के बाद अपने शरीर पर फिर धूल चढ़ा लेता है। सूरदास ने विषय-रत मनुष्यों के स्वभाव की तुलना हाथी की इस प्रकृति से की है[९४]। मस्त हाथी की चर्चा भी अष्टछाप-काव्य में उपमान-रूप में की गयी है। मस्त हाथी 'महावत' के वश में नहीं रहता। उस पर लोहे के नुकीले 'अंकुश' से बार पर बार किये जाते हैं, परन्तु वह नियंत्रण में नहीं आता। ऐसे हाथी से 'महावत' भी भयभीत रहता है[९५]। 'सिंह' और मस्त हाथी की शत्रुता का भी उल्लेख आलोच्य कवियों ने किया है[९६]। कवि-प्रसिद्धि के अनुसार मस्त हाथी के गंडस्थल से एक रस प्रवाहित होता रहता है। ऐसे गंडमद से सुशोभित काले हाथी का वर्णन सूर के काव्य में हुआ है[९७]।

'ऊँट' की चर्चा अष्टछाप-काव्य में घोड़े और हाथी की तुलना में बहुत कम की गयी है। सूरदास[९८] के एक पद में भारवाही पशु वृष और भैंसे के साथ 'ऊँट' का भी उल्लेख हुआ है जिसमें उसके जीवन को दुखपूर्ण होने की ओर ही संकेत

९१. क. हा करुनामय 'कुंजर' टेरयौ, रह्यौ नहीं बल थाकौ—सा० १-११३।
ख. यहै बचन 'गजराज' सुनाऔ, गरुड़ छाँड़ि तहँ धाए—सा० ५५६।
ग. कृपा करी गज-काज, गरुड़ तजि धाइ गए जब—सा० ५८६।
घ. सुनत पुकार परम आतुर ह्वै दौरि छुड़ायो 'हाथी'—सा० १-११२।
९२. हय 'गज' धेनु अरथ अंबर घन, दीन्हें धन भंडार—चतु० ५।
९३. 'कुंजर' दंत कंध धर लीने रुधिर विन्दु लपटाने—परमा० ५००।
९४. ज्यों 'गयंद' अन्हाइ सरिता बहुरि वहै सुभाइ—सा० १-४५।
९५. क. ज्यों मदमत्त 'मतंग' सदा तें डरपत रहत महावत—परमा० ७२१।
ख. आवै निरंकुस मातौ 'हाथी'—परमा० ४६६।
ग. सकत न पवन 'महावत' हू पै, मुरत न अंकुस मोरै—सा० १३०३।
९६. मानौं सिंह सैल तैं निकस्यो 'महामत्त गज' जानि—सा०-१-२१६।
९७. स्याम सुभग तन चुवत 'गंडमद' बरषत थोरे थोरे—सा० ३३०३।
९८. सूरदास भगवंत भजन बिनु, मनौ 'ऊँट' वृष भैंसौ—सा० २-१४

है[९९]। बोझ ढोनेवाला अन्य पशु है 'गर्दभ' जिस पर सवारी करना, जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है, अच्छा नहीं समझा जाता।

आ. जलचर—जल में रहनेवाले अनेक प्रकार के जीव होते हैं जिनमें से कच्छप, मगर, नक्र, ग्राह, दादुर, मच्छ, मीन आदि की चर्चा अष्टछापी कवियों ने की है। उनके काव्य में इन जलचरों का उल्लेख मुख्यत: उदाहरण-रूप में ही हुआ है।

'कच्छ' या 'कच्छप' के लिए 'कमठ', 'कूर्म' आदि शब्दों का प्रयोग अष्टछाप-काव्य में हुआ है। इसका उल्लेख विष्णु के अवतारों के प्रसंग में भी मिलता है। सूर ने 'कमठ' या 'कच्छप'-अवतार का वर्णन किया है[४००]।

'मकर', 'मगर', 'नक्र', 'ग्राह' आदि नामों से प्रसिद्ध भयानक जीव जल में रहकर अन्य जलचरों और थलचरों का शिकार किया करता है। पुराणों में वर्णित 'गज और ग्राह' की कथा प्रसिद्ध है जिसमें गज के पुकारने पर भगवान ने दौड़कर चक्र से 'ग्राह' को मार डाला था। अष्टछाप-काव्य में, भगवान की इस भक्तवत्सलता-वर्णन में 'ग्राह' का उल्लेख हुआ है[१]। किसी-किसी कवि ने 'ग्राह' का स्मरण उपमान-रूप में भी किया है। सूरदास ने कामदेव को 'ग्राह' के समान माना है, जो मनुष्य को माया के जल में खींच कर ले जाता है और मार डालता है[२]। अन्य स्थलों पर भी 'मगर' का उल्लेख हुआ है[३]। कृष्ण के 'मकराकृत' कुंडलों का वर्णन अष्टछाप-काव्य में अनेक वार हुआ है[४]।

९९. 'ऊँट के लिए 'उष्ट्र तथा 'औष्ट्रक' शब्द भी 'अष्टाध्यायी' में उल्लिखित है—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि', पृ० २१६।

४००. क. 'कमठ' रूप धरि धरयौ पीठि पर तहाँ न देखे हाऊ—सा० १०-२२१।
 ख. जैसे भयो 'कूर्म' अवतार, कहौं सुनौ सो अब चित धारि—सा० ८-७।
 ग. मच्छ, 'कच्छ' बाराह बहुरि नरसिंह रूप धरि—सा० २-३६।
 घ. 'कच्छप' अध आसन अनूप अति डाँडी सहस फनी—सा० २-२८।

१. क. नीरहु तैं न्यारो कीन्हौ चक्र 'नक्र' सीस छीनौ—सा० ८-५।
 ख. जग्य-जोग तो कियो कहा नृग, कौन बेद गज-ग्राह कियो—परमा० ८६०।

२. लिये जात अगाध जल कौं गहे ग्राह-अनंग—सा० १-६६।

३. मेढ़ा महिष 'मगर' गुदरारौ मोर आखुमन बाहन गावत—सा० ६७६।

४. क. सुधा-सर जनु 'मकर' क्रीड़त, इंदु डह-डह डोल—सा० ६२७।

'दादुर' या मेढक जल में रहने वाला जीव है। यह वर्षा ऋतु में निरंतर बोलता रहता है। वर्षा-वर्णन में अष्टछाप के कवियों ने इसका उल्लेख किया है[५]। इसकी चर्चा उपमान-रूप में भी की गयी है[६]।

'मच्छ', 'मछली', 'मीन', 'मत्स्य' आदि एक ही जीव के अनेक नाम हैं जिनका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में विविध प्रसंगों में हुआ है। भगवान के अवतारों में 'मत्स्य' के अवतार का वर्णन सूरदास ने किया है[७]। मछली को उपमान भी माना गया है। 'मीन' या 'मछली' पानी के बिना जीवित नहीं रह सकती। इसलिए उसका आदर्श प्रेम कवियों को खूब भाया है[८]। मछलियों में एक तिमिंगल नाम की मछली होती है, जो आकार में बहुत बड़ी होती है और अन्य मछलियों को उदरस्थ कर जाती है। इस तथ्य का उल्लेख नंददास ने किया है[९]।

३. कीट-पतंग—

अष्टछाप-काव्य में जिन कीट-पतंगों का उल्लेख हुआ है, मुख्यत: उनको दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में भूमि पर रेंगनेवाले कीड़े आते हैं और द्वितीय में उड़नेवाले पतंगे।

ख. मोर मुकुट मकराकृत कुंडल मुरली की छबि न्यारी—चतु० १११।

५. क. दादुर मोर पपीहा बोलत नान्हीं नान्हीं बूँद सुहाई—चतु० १३१।
ख. 'दादुर' मोर कोकिला कलरव करत कोलाहल भारी—परमा० ७६३।
ग. ज्यों पावस रितु घन प्रथम घोर जल जीवन 'दादुर' रटत मोर।
—सा० ९-१६६।

६. मारू मार करत भट 'दादुर' पहिरे बिबिध सनाह—सा० ३३१३।

७. क. तिन हित हरि 'मच्छ' रूप धारयो—सा० ८-१६।
ख. जहाँ सनक सिव हंस 'मीन' मुनि नख रवि प्रभा प्रकास—सा० १-३३७।
ग. 'मत्स्य'-भगवान कह्यौ जान पुनि नृपति सौं—सा० ८-१६।

८. क. सूर स्याम के रंगहिं राँची, टरति नहीं 'जल तैं ज्यों मीनी'—सा० २४७६।
ख. जौ लौं 'मीन' दूध में डारै 'बिनु जल नहिं सचु पायो'—सा० ३५३।

९. तेई तहाँ 'तिमिंगल' मारे, अपनी जाति के भच्छनहारे।
'तिमि' इक जाति 'मीन' की आहि, सत जोजन बिस्तार है जाहि।
ताहि गिलत जो जलचर लहियै, ताकौ नाउँ 'तिमिंगल' कहियै।
—नंद०, दशम०, पृ० १९९।

क. कीट—

इस वर्ग में साँप, गिरगिट, पिपीलिका आदि वे कीट आते हैं जो भूमि पर रेंगकर या उससे सटकर चलते हैं।

'साँप' के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग अष्टछापी कवियों ने किया है, यथा—अजगर, अहि, उरग, नाग,[१०] पन्नग, फनिग, ब्याल, भुअंग, भुजंगम, आदि। यों तो सभी सर्प भयानक होते हैं, परन्तु अजगर भीमकाय होने के कारण बड़ा भयंकर होता है। भारी होने के कारण वह चल नहीं पाता; एक स्थान पर ही पड़ा रहता है और अपनी साँस से शिकार को निकट खींच कर निगल जाता है। इस प्रकार बिना उद्यम किये ही 'अजगर' के 'उदर भरने' की बात सूरदास ने लिखी है[११] और तर्क-रूप में यह कहा है कि भगवान के सहारे रहने पर प्राणी की सारी आवश्यकताएँ अपने आप पूरी हो जाती हैं। 'काला सर्प' बड़ा विषैला होता है जिससे कभी-कभी 'कृष्ण' की तुलना की गयी है[१२]। साँप के काटने पर 'गुनी' अर्थात् विष झाड़नेवाले को बुलाने की बात भी अष्टछाप-काव्य में मिलती है[१३]। 'नागिनि' तो सामान्यतया और भी विषैली होती है। सूर ने रात्रि की उपमा 'नागिनि' से दी है। रात्रि यदि चाँदनी है तो जान पड़ता है कि नागिनि 'डसकर' उलटी हो गयी है। ऐसी नागिनि का विष जंत्र-मंत्र से भी नहीं उतरता[१४]। किसी-किसी अष्टछापी कवि ने 'काल' को भी 'ब्याल' कहा है[१५]। मलय या चंदन वृक्ष

---

१०. 'नागों' के प्रसिद्ध कुल आठ हैं—बासुकि, तक्षक, कुलक, कोटक, पद्म, शंखचूड़, महापद्म, और धनंजय। 'नागों' के रहने के देश को 'उरगदीप' या 'नागलोक' कहा गया है—लेखिका।

११. अनायास बिनु उद्यम कीन्हें 'अजगर' उदर भरै—सा० १-१०५।

१२. लै लै बड़े उसास, डसी मैया, मोहिं कारे स्याम—नंद०, स्याम०, पृ० ११८।

१३. स्याम 'भुअंग' डस्यौ हम देखत 'ल्याबहु गुनी बुलाई'—सा० ७४६।

१४. पिया बिनु नागिनि कारी राति।
जौ कहुँ जामिनि उवति जुन्हैया, डसि उलटी ह्वै जाति।
जंत्र न फुरत मंत्र नहिं लागत, प्रीति सिरानी जाति।
सूर स्याम बिनु बिकल बिरहिनी मुरि मुरि लहरैं खाति—सा० ३८६०।

१५. नातरु काल-ब्याल लेत हैं, छाँड़ि देहु तुम सब जंजालहिं—सा० १-७४।

में 'नागों' के लिपटे रहने का उल्लेख सूर ने किया है[१६]। 'साँप' की ऊपरी खाल 'केंचुल' कहलाती है जिसको वह छोड़ देता है, इस तथ्य की ओर भी अष्टछाप-काव्य में संकेत किया गया है[१७]। कुछ 'साँपों' के पास 'मणि' होने की कल्पना कवियों ने की है। सर्प इस मणि को प्राणों से अधिक चाहता है। यदि मणि खो जाय या छिन जाय तो वह निराश होकर अपना जीवन नष्ट कर डालता है। इसलिए इसे वह अपने 'फन' के नीचे छिपाये रखता है[१८]। कवियों ने प्रिय और बहुमूल्य वस्तुओं की तुलना सर्प की 'मणि' से की है। सूरदास को भगवान कृष्ण की बाल-लीला, उसी प्रकार 'प्रिय' है जैसे 'फनिग' को अपनी 'मणि'[१९]। अष्टछाप-काव्य में वेणी की तुलना 'नागिनि' से की गयी है[२०]। सूरदास के अनुसार, राधा की 'वेणी' से 'ब्याल' होड़ न ले पाते थे, परन्तु जब वे कृष्ण-वियोग में मूर्छित हो गयीं तो ये गर्व और हर्ष के साथ 'बिलों' से बाहर निकल आये[२१]।

अष्टछापी कवियों ने 'साँप' का उल्लेख 'काली' नाग के नाथे जाने के प्रसंग में भी किया है। सूरदास के अनुसार कृष्ण ने उसको 'नाथ' कर, उसके फन पर पैर रख कर, उसका गर्व चूर करके उसे 'उरगदीप' भेज दिया[२२]। अष्टछापी कवियों ने एक ऐसे साँप का भी उल्लेख किया है जो पानी में रहता है; उसे 'गुदरारौ' कहते हैं[२३]। 'साँप' के साथ-साथ 'छछूँदर' का भी उल्लेख हुआ है। कहते हैं कि साँप जब भूल से 'छछूँदर' को पकड़ लेता है, तब न उसे छोड़ सकता है और

१६. बिपुल बाहु भरि कुति परिरंभन मनहुँ मलय-द्रुम 'नाग'—सा० ३२६१।
१७. ज्यों 'अहिपति' केंचुरि कौ लघु-लघु छोरत है अंग बदन—सा० ११५८।
१८. मानौ मनिधर मनि ज्यौं छोड़्यौ फन तर रहत दुराए—सा० १२६२।
१९. निरखत रहौं 'फनिग की मनि' ज्यौं सुन्दर बाल-बिनोद तिहारै—सा० ६१४।
२०. तू जो कहति बल की बेनी ज्यौं ह्वैहै लाँबी मोटी।
काढ़त-गुहत-न्हवावत जैहै नागिनि सी भुँइ लोटी—सा० १०-१७५।
२१. मनौ रह्यौ 'पन्नग' पीवन कौं।
फूले 'ब्याल दुरे ते प्रगटे, पवन पेट भर खायौ—सा० ४१४१।
२२. क. पूँछ राखो चाँपि, रिसनि काली काँपि, देखि सब 'साँपि' अवसान भूले।
—सा० ५५२।
ख. सूरदास प्रभु अभय ताहि करि उरग-दीप पहुँचाए—सा० ५७३
२३. मेढ़ा, महिष, मगर गुदरारौ मोर आखुमन बाहन गावत—सा० ६७६।

न खा सकता है। सूरदास ने 'उरग' की ऐसी ही स्थिति की ओर एक पद में संकेत किया है[२४]।

रेंगनेवाले एक अन्य जीव, 'गिरगिट' की चर्चा शापग्रस्त राजा नृग के प्रसंग में की गयी है।[२५] रेंगने या भूमि पर चलने वाले क्षुद्र 'कीटों' के लिए अष्टछापी कवियों ने 'कीट' शब्द का प्रयोग किया है[२६]।

'पिपीलिका' या 'चींटी' की गणना भी रेंगनेवाले 'कीट'-वर्ग में करना उचित प्रतीत होता है। 'पिपीलिका' प्रसिद्ध ज्ञात कीटों में क्षुद्रकाय है और 'हाथी' विशालकाय। अतएव 'चींटी' से 'हाथी' तक कह देने से अष्टछापी कवियों का तात्पर्य समस्त चेतन जगत से रहा है[२७]।

ख. पतंग—

इस वर्ग के अंतर्गत आनेवाले जिन जीवों की चर्चा अष्टछापी कवियों ने की है उनमें मुख्य ये हैं—पतिंगा, भौंरा, झिल्ली या झींगुर, मधुमक्खी आदि।

'पतिंगे' से तात्पर्य उड़नेवाले उन छोटे जंतुओं से है जो दीप - शिखा की ओर आकर्षित होकर दौड़ते हैं और उसी में जलकर भस्म हो जाते हैं। सूर आदि कवियों ने इस तथ्य को त्यागप्रधान तथा अनन्य प्रेम के समर्थन में उदाहरण-रूप में प्रस्तुत किया है[२८]।

अष्टछाप-काव्य में वर्णित कीट-पतिंगों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान 'भौंरे' को प्राप्त है। इसके अनेक नाम कवियों द्वारा व्यवहृत हुए हैं; यथा अलि, चंचरीक, छपद, भ्रमर, भृंग, भृंगी, मधुकर, मधुप, शिलीमुख, षटपद आदि। इतने अधिक पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग से अष्टछाप-काव्य में भ्रमर-संबंधी वर्णनाधिक्य का प्रमाण मिलता है। 'भ्रमर' को लक्ष्य करके अन्योक्ति-रूप में सूरदास,

२४. भई रीति हठि उरग छूछूँदरि छौंड़े बनै न खात—सा० ३७३९।
२५. तनक चूक तैं 'गिरगिट' कीन्हौं को करि सकै बखान—सा० ४१९६।
२६. 'कृमि' पावक तेरौ तन भखिहैं, समुझि देखि मन माँहीं—सा० १-३१९।
२७. सब सौं बात कहत जमपुर की 'गज-पिपीलिका' लौं—सा० १-१५१।
२८. क. दीपक पीर न जानई पावक परत पतंग—सा० १-३२५।
    ख. जैसैं प्रेम 'पतंग' दीप सौं, पावक हूँ न डरत—सा० १-५५।

नंददास आदि ने कृष्ण-कथा का एक पूरा प्रसंग लिख डाला है, जो 'भ्रमरगीत' के नाम से प्रसिद्ध है[२९]। प्रकृति-वर्णन में भी अष्टछापी कवियों ने 'भ्रमर' का उल्लेख अनेक प्रकार से किया है। खिले हुए कमलों पर 'चंचरीक' मँडराते और गुंजार करते हैं[३०] और कमल-दलों में रम जाते हैं[३१]। 'भ्रमर' काले तथा घुँघराले बालों का प्रसिद्ध उपमान है[३२]। कहीं-कहीं 'रोमावली' या 'रोमराजी' के वर्णन में भी 'भ्रमर' का स्मरण किया गया है[३३]। प्रेम के सच्चे और झूठे, दोनों पक्षों के स्पष्टीकरण में भी अष्टछापी कवियों ने 'भ्रमर' को उदाहरण-रूप में प्रस्तुत किया है। कमल के प्रति भ्रमर का प्रेम आदर्श और सहज होता है;[३४] क्योंकि वह कमल-कोष में बंद हो जाता है और कष्ट सहता है, फिर भी प्रेम नहीं छोड़ता। दूसरी ओर अनेक फूलों और लताओं पर भटकने के कारण कवियों ने स्वार्थी तथा लंपट कहकर 'भौंरे' की हँसी भी उड़ायी है[३५]। 'भ्रमर' तथा 'कमल' का रूपक बाँध

२९. क. मधुकर, हमहीं क्यों समुझावत—सा० ३५०३।
 ख. कहु 'षटपद', कैसे खैयतु हैं हाथनि के सँग गाँड़े—सा० ३६०४।
 ग. जनि 'अलि', चालहिं बात पराई—सा० ३५६६।
३०. क. बिकसित कमलावली, चले प्रपुंज 'चंचरीक'—सा० १०-२०५।
 ख. बिबिध सुर 'अलि' गुंज, कूजित मत्त पिक कीरे—कुंभन० ६८।
३१. सघन गुंजत बैठि उन पर भौंरहू बिरमाहिं—सा० १-३३८।
३२. क. 'बिथुरि अलकैं रहीं' मुख पर बिनहिं बपन सुभाइ।
 देखि कंजनि चंद के बस 'मधुप' करत सहाइ—सा० १०-२२५।
 ख. 'कुटिल अलक' बिना बपन के मनौ 'अलि-सिसु जाल'-सा० १०-२३४।
 ग. 'कुंचित केस' सुदेस कमल पर मनु 'मधुपनि माला' पहिराई-सा० ६१६।
 घ. कुंचित अलक सिलीमुख मिलि मनु लै मकरंद उड़ाने-सा० २३१६।
३३. क. 'रुचिर रोमावली' हरि कैं चारु उदर सुदेस।
 मनौ 'अलि-स्रेनी' बिराजति बनी एकहिं भेस—सा० ६३४।
 ख. दृष्टि 'रोमावली पर रही, बनत नाहीं परखि।
 ....
 कोउ कहत 'अलि-बाल पंगति' जुरी एक सँजोग—सा० ६३६।
३४. क. 'भौंरा भोगी' बन भ्रमै, मोद न मानै ताप।
 सब कुसुमनि मिलि रस करै, 'कमल बँधावै आप—सा० १-३२५।
 ख. सहज प्रीति 'कमल भौंर' मानैं—परमा० ३८२।
३५. 'मधुकर', हम न होंहि वे बेली।
 जिन भजि तजि तुम फिरत और सँग करत कुसम रस केली—सा० ४१२६।

कर अष्टछापी कवियों ने हरि-चरणों में मन लगाने का आदेश भी दिया है[३६]। कान के निकट 'अलि' का गूँजना सूरदास के अनुसार 'शकुन' में गिना जाता है[३७]।

मधु का संचय करने के लिए 'मधुमक्खी' प्रसिद्ध है। सूरदास ने उपमान के रूप में इसका प्रयोग किया है[३८]। 'झिल्ली' या 'झींगुर' को सामान्यतया संध्या के समय और विशेष रूप से वर्षा-काल में अपने निरंतर रव से रात्रि की निस्तब्धता भंग करने के कारण, अष्टछाप-काव्य में स्थान मिला है[३९]।

ज. पक्षी—

जिस प्रकार मनुष्य का पशुओं से घनिष्ठ संबंध रहा है, उसी प्रकार पक्षियों से भी वह संबंधित है। अष्टछाप-काव्य में पक्षी के लिए 'पच्छी' या 'पंछी',[४०] 'बिहंग',[४१] 'खग',[४२] 'दुज',[४३] 'चिरिया'[४४] आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं[४५]। आलोच्य कवियों ने प्रकृति-वर्णन में नाना रंग के पक्षियों, उनकी बोलियों और क्रियाओं का वर्णन किया है। अष्टछाप-काव्य में जिन पक्षियों की चर्चा की गयी है उनको, स्थूल रूप से, दो वर्गों में विभाजित किया जा

३६. क. 'मन-मधुकर' पद-कमल लुभान्यौ—सा० २४५७।
ख. भृंगी री, भजि स्याम 'कमल-पद' जहाँ न निसि कौ त्रास—सा० १-३३६।

३७. जबहिं चले ऊधौ मधुबन तैं, गोपिनि मनहिं जनाइ गई।
बार बार 'अलि' लागे स्रवननि कछु दुख कछु हिय हर्ष भई—सा० ३४५३।

३८. ज्यों मधुमाखी सँचति निरंतर बन की ओट लई—सा० १-५०।

३९. क. चातक पिक 'झिल्लीगन' दादुर सब मिलि मारू गायौ—सा० ३३२८।
ख. घन हर घोरै पवन झकोरै दादुर 'झींगुर' कानन फोरै।
—नंद०, रूप०, पृ० १६।

४०. जा दिन मन-पंछी उड़ि जैहै—सा० १-८६।

४१. क. अति आनंद निरखि दोऊ सुख गावनि 'बिहंगम' जन की-चतु० १६३।
ख. रहु रहु रे 'बिहंग' बनवासी—सा० ३३३१।

४२. जितै तितै नर नारि मीन 'खग' सबहिनि के प्रतिबिंब दिखावत-सा० ४१६५।

४३. क. हारिल परेवा भृंग पिकऽरु कपोत दुज-कुल-बृंद—सा० परि० २।

४४. 'चिरिया' कहा समुद्र उलीचै पवन कहा परबत टरै—सा० १-२३४।

४५. 'चिड़ियों' को 'पक्षी', 'तिर्यक्' अथवा 'शकुनि' कहा गया है। पाणिनि ने पक्षी-विशेष के नामों में 'चटक', 'मयूर', अथवा 'कलापित्', 'कुक्कुट', 'ध्वांस', 'श्येन' (Hawk) दिये हैं। 'शुक' नाम पतंजलि ने जोड़ दिया है।
—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि', पृ० २१८।

सकता है। प्रथम वर्ग 'लोकप्रिय' पक्षियों का है जिनमें कोई सुंदर रूप के कारण और कोई विशेष गुण के कारण मानव-समाज को प्रिय रहा है। इस वर्ग के अनेक पक्षियों को पालने का भी प्रयत्न सदा से होता आया है। दूसरा वर्ग उन 'लोक-तिरस्कृत' पक्षियों का है जो अपनी गुणहीनता और दुष्ट स्वभाव के कारण मानव समाज में प्राय: तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाते हैं।

अ. *लोकप्रिय पक्षी*—इस वर्ग में कपोत, कुलाल, कोयल, खंजन, गररी, चकवा, चकोर,[४६] चातक, तमचुर, नीलकँठीर, भरुही, मोर, लालमुनैया, सारिका,[४७] सुक, हंस, हारिल आदि पक्षी आते हैं। अष्टछाप-काव्य में इन पक्षियों में से कुलाल, गररी, नीलकँठीर, भरुही, लालमुनैया, हारिल आदि की सामान्य रूप से और शेष की विशेष रूप से चर्चा की गयी है।

'कपोत', 'कबूतर', 'परेवा' या 'पारावत' नामक पक्षी अपनी सिधाई और कुशाग्रबुद्धि-जनित स्मरण - शक्ति के कारण लोकप्रिय है। अष्टछाप-काव्य में कुछ स्थलों पर इस पक्षी का अन्य पक्षियों के साथ सामान्य रूप से उल्लेख हुआ है;[४८] अन्यत्र इसकी विशेषताओं को ध्यान में रखकर इसका वर्णन किया गया है। 'कपोत' की गर्दन सुडौल होने के कारण सुंदर लगती है। कुंभनदास ने एक पद में ग्रीवा की सुडौलता का वर्णन करते समय 'कपोत' का स्मरण किया है[४९]। सूरदास ने 'परेवा'[५०] की प्रीति को आदर्श मानकर उसका बखान किया है[५१]।

४६. बाणभट्ट ने विंध्याटवी के पक्षियों में चकोर, वन-कुक्कटी, गौरैया, मुरंड, तोते आदि का उल्लेख किया है—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्ष०, सां० अ०, पृ० १८६।

४७. बाणभट्ट ने घरेलू पक्षियों में सुक-सारिका, हंस-मिथुन, चक्रवाक-युगल, गृह सारसी आदि का वर्णन किया है—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्ष०, सां० अ०, पृ० ६७।

४८. क. दुरि गये कीर, कपोत मधुप, पिक सारंग सुधि बिसरी—सा० ६५६।

ख. .... सुभग सर, सुक सारिका हंस 'पारावत'—सा० ४१६५।

४९. क. नासा कीर 'कपात ग्रीव' छबि दाड़िम दसन चुराई—सा० ६२६।

ख. 'ग्रीवा कपोत', उरज श्रीफल, कटि केहरि, भुजा मृनाल—कुंभन० १६२।

५०. जायसी ने 'पदमावत' में 'गिरहिं परेवा' या 'खिरिनि परेवा' का वर्णन किया है—'गिरहिं परेवा' और करबरहीं—२६-३ तथा 'खिरिनि परेवा' आव जस।

—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पदमा०, संजी० व्या०, ३५-३।

५१. परनि 'परेवा' प्रेम की, चित लै चढ़त अकास।

तहँ चढ़ि तीय जो देखई, भू पर परत निसास—सा० १-३२५।

मधुर 'बानी' बोलनेवाले पक्षियों में भी 'कपोत' को अष्टछाप-काव्य में स्थान दिया गया है[५२]।

'कोयल', 'कोकिल', 'कोकिला' या 'पिक' नामक पक्षी वर्ण में तो कौए की तरह ही काला होता है; परंतु अपने स्वर की मधुरिमा के लिए बहुत लोकप्रिय है। अष्टछापी कवियों ने भी कहीं तो 'मधुर बानी' बोलनेवाले पक्षियों में कोकिल की गणना की है[५३] और कहीं स्वतंत्र रूप से उसकी 'सुहाई गिरा' की,[५४] उसके 'कूजने'[५५] और उसकी 'मधुर बानी' की प्रशंसा की है[५६]। हमारे कवियों ने कोकिल का संबंध मुख्य रूप से वर्षा[५७] और वसंत ऋतुओं से बताया है

५२. हारिल 'परेवा' भृंग पिकऽरु कपोत दुज कुल बृंद।
बोलहिं गहगह मधुर बानी गगन गरजै घूमि—सा० परि० १०६।

५३. क. पपिहा गुंज, 'कोकिला' बन कूँजत अरु मोरनि कियौ गाजन।
—सा० ६२२।

ख. बृंदावन जमुना तीर बोलत 'पिक' मोर कीर—गोविं० २०२।

५४. मंद सुगंध बहै मलयानिल 'कोकिल' कूजत गिरा सुहाई—परमा० ५४६।

५५. तैसेई 'कोकिला' कूजति प्रमुदित पवन झकोरै—कुंभन० ३८६।

५६. क. कटि केहरि 'कोकिल कल बानी', ससि मुख प्रभा धरी—सा० ६-६३।

ख. बानी मधुर जानि पिक बोलति कदम करारत काग—सा० ११२६।

५७. क. कारी घटा पौन झकझोरैं, लता तरुन लपटानीं।
दादुर मोर चकोर मधुप 'पिक' बोलत अमृत बानी—सा० ३२६८।

ख. अब बरषा कौ आगम आयौ।
× × ×
दादुर मोर पपीहा बोलत, 'कोकिल' सब्द सुनायौ—सा० ३२६६।

ग. ब्रज पर सजि पावस दल आयौ।
× × × ×
चातक, मोर, इतर पैंदर गन, करत अवाजैं 'कोयल'—सा० ३३०४।

घ. रिमिझिमि बरखत मेह प्रीतम संग री! चलो सखी! भींजत सुख लागैगो।
तैसेई बोलत चातक, 'पिक', मोर तैसेई गरज मधुरी तैसोई पवन सीतल लागैगो—कुंभन० ६१।

ङ. आजु ब्रज पर बरसत खासी।
× × × ×

जब मोर, चातक आदि अन्य पक्षी भी उन्मादक स्वर से बोलते हैं[५८]। कोकिल जैसे मधुर वाणी बोलनेवाले पक्षियों के बैकुंठ में[५९] न होने के कारण गोविंद स्वामी तो वहाँ जाना ही व्यर्थ समझते हैं। कोकिल की चतुराई भी हमारे कवियों का वर्ण्य विषय रही है। अपने अंडे स्वयं 'सेने' के कष्ट से उसका बचना और 'कौए' के घोसले में उन्हें रखकर 'कउई' द्वारा उनके सेये जाने की योजना

कोकिल सब्द करत द्रुम ऊपर, नाचत मोर कला सी—गोविं० १७७।

ञ० पावस नट नट्यौ अखारो बृंदावन अवनी रंग।
निर्त्तत गुन रासि बरुहा पपैया सब्द उघटत 'कोकिला' गावति तान तरंग—गोविं० १८१।

५८. क. राधे जू आज बरनौं बसंत।
× + ×
पवन-परिमल सहचरी, 'पिक-गान' हृदय हुलास—सा० २८४४।

ख. सुंदर बर सँग ललना बिहरति, सरस बसँत रितु आई।
× × × ×
अति 'रस-भरी कोकिला बोली', बिरहिनि बिरह जगायौ-सा०२८५४।

ग. आई रितु चहुँ दिसि फूले द्रुम कानन 'कोकिला समूहनि गावति' बसंत हिं—कुंभन० ६७।

घ. खेलत बन सरस बसंत लाल कोकिल कूजत अति रसाल—कुंभन० ७३।

ङ. देखि सखी नव बसंत आगम नीके लागत नव फूल पल्लव नए।
× × × ×
गुंजत मधुप, कीर, 'पिक कूजत, ठौर-ठौर आनंद ठए—चतु० ७२।

च. ब्रजपति ब्रजराज-कुँवर परम मुदित रितु बसंत।
× × × ×
'गावत पिक, मोर, कीर उपजत मन सुख लसंत—छीत० ५५।

छ. आयो बसंत रितु अनूप कंत नूत मौरे।
'बोलत बन कोकिला' मानों कुहू कुहू रस ढोरे—गोविं० १०१।

ज. राधा गिरिधर बिहरत कुंजन आई हो बसंत पंचमी।
घर घर द्रुम प्रति कोकिला कूजत बोलत बचन अमी—गोविं० १०७।

५९. कहा करौं बैकुंठे जाइ।
× × ×
'कोकिल' मोर हंस नहिं कूजत ताकौ बसिबो काहि सुहाइ—गोविं० ५७४।

बनाना, 'कोयल' की चतुरता का प्रमाण है जिसकी ओर सूरदास ने स्पष्ट संकेत किया है[६०]।

'खंजन' या 'खंजरीट' एक बहुत चंचल सुंदर पक्षी होता है जिससे कविगण नेत्रों की उपमा देते हैं। अष्टछाप-काव्य में भी नेत्रों के उपमान-रूप में 'खंजन' या 'खंजरीट' अनेक स्थानों पर उल्लिखित है[६१]।

'चकोर' और उसकी मादा 'चकोरी' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में चंद्रमा के प्रति अनन्य प्रीति रखने के कारण हुआ है[६२]। गोविंदस्वामी के अनुसार, 'चकोर' का बोलना सारस, हंस आदि पक्षियों के स्वर के समान सुखदायी है[६३]।

६०. क. ज्यौं कोइल-सुत काग जियावै, भाव भगति भोजन जु खवाइ।
कुहुकि कुहुकि आएँ बसंत रितु अंत मिलै अपने कुल जाइ—सा० ३५९१।

ख. करी जु प्रगट कपट पिक की रति, आपु काज लगि धीर।
काज सरैं उड़ि मिले आपु कुल, कहा बायस की पीर—सा० ३६५९।

६१. क. कुटिल अलक मुख 'चंचल लोचन' निरखत अति आनंदन।
कमल मध्य मनु 'द्वै खग खंजन' बँधे आइ उड़ि फंदन—सा० ४७६।

ख. 'खंजरीट' मृग मीन की गुरुता नैननि सबै निवारी—सा० ११९७।

ग. देख री हरि के 'चंचल नैन'।
खंजन-मीन-मृगज-चपलाई, नहिं पटतर इक सैन—सा० १८१३।

घ. बाल भाव अनुसरति 'भरति दृग' अग्र अंसु कन आनै।
जनु 'खंजरीट' जुगल जठरातुर लेत सुभप अकुलानैं—सा० वें० २०५३।

ङ. मनोहर हैं नैनन की भाँति।
खंजरीट मृग मीन बिचारति उपमा को अकुलाति—सा० वें० २१४७।

च. 'खंजन नैन' सुरँग रस माते—सा० २६६७।

छ. बारौं मीन 'खंजन' आली के 'दृगन पर'—परमा० ६५९।

ज. बदन-कमल अलक मधुप 'नैन खंजरीट'।
—सोम०, अष्ट० पदा०, कृष्ण० २५।

६२. क. ज्यों 'चितवत ससि ओर चकोरी' देखत ही सुख मान—सा० १-१९९।

ख. स्याम भए राधा बस ऐसैं।
चातक स्वाति, 'चकोर चंद ज्यौं', चक्रवाक रबि जैसैं—सा० २१३८।

ग. बदन चंद-कर पान करैं ए चकोर तबहिं माई चैन—कुंभन० २०९।

६३. सारस हंस 'चकोर' सबै मिलि कूजत हैं सुखरासी—गोविं० १७७।

चकोर के संबंध में अंगार खाने की बात प्रसिद्ध है जिसकी ओर सूरदास के एक पद में संकेत किया गया है[६४]।

'चकवा', 'कोक', 'चकवाक' या 'चक्रवाक' पक्षी के लिए सामान्यतया जल के किनारे रहने और रात्रि में अथवा चंद्र-दर्शन से दुखी होने की बात हमारे कवियों[६५] ने लिखी है[६६]। रात में यह अपनी मादा 'चकई', 'कोकी' या 'चक्रवाकी' से बिछुड़ जाता है[६७]। इसी से सूरदास ने 'चकई' को उस दिव्य 'चरन-सरोवर' पर चलने की सलाह दी है जहाँ कभी 'भ्रम-निशा' होती ही नहीं[६८]। सूर्योदय होने पर यह पक्षी और इसकी मादा, दोनों बहुत प्रसन्न होते हैं; क्योंकि तभी दोनों का मिलन होता है[६९]। अतएव सूरदास ने चक्रवाक का रवि के 'वश' में ही सदा रहना बताया है[७०]।

प्रेम की अनन्यता और एकनिष्ठा के आदर्श पर चलनेवाले, चकोर, चक्रवाक आदि पक्षियों के क्रम में चातक भी आता है। कवि-प्रसिद्धि के अनुसार यह पक्षी केवल स्वाती नक्षत्र में बरसनेवाले पानी को पीकर ही अपनी प्यास बुझाता

६४. पद-नख-चंद-चकोर बिमुख मन खात अँगारमई—सा० १-२६६।

६५. क. कालिदास, टीका मल्लिनाथ, उत्तरमेघ, श्लो० २१।

ख. चकई चकवा केलि कराहीं—'पदमावत', ३३।५।

६६. देखौ माई, रूप-सरोवर साज्यौ।

× × ×

कुच 'चक्रवाक' बिलोकि 'बदन-बिधु' 'बिछुरि रहे अनबोल—सा० १०४६।

६७. अपने रस को तजि 'चकवाकी बिछुरि चलति' मुख चाहि—कुंभन० १६७।

६८. 'चकई' री, चलि चरन 'सरोवर', जहाँ न प्रेम-बियोग।

जहँ भ्रम-'निसा' होति नहिं कबहूँ, सोइ सायर सुख जोग—सा० १-३३७।

६९. क. भोर भयौ जागे नंदनंदन।

× × ×

चंद मलिन 'चकई रति राजी'—सा० १०-२३३।

ख. भोर भयौ जागे नँदनंद।

तात निसि बिगत भई चकई आनंदमई, तरनि की किरनि तैं

चंद भयौ मंद—सा० १२१०।

७०. स्याम भए राधा बस ऐसैं।

चातक स्वाति, चकोर चंद ज्यौं, 'चक्रवाक रबि जैसैं'—सा० २१३८।

है;[७१] अन्यथा मर भले ही जाय, अन्य जल से अपनी प्यास बुझाने की बात वह कभी नहीं सोचता। सूर ने इस जन-विश्वास की ओर संकेत किया है[७२] और 'स्वाती' के प्रति उसकी प्रीति को आदर्श माना है[७३]। चातक को 'पपीहा', 'पपिहा' या 'पपैया' नाम भी हमारे कवियों ने दिये हैं[७४]। 'पपीहा' के काले रंग का प्रमाण सूर के एक पद से मिलता है[७५]। कहीं-कहीं पर भगवान के दर्शन के लिए भक्तों की व्याकुलता चातक के सादृश्य से व्यक्त की गयी है[७६]। पपीहा अन्य पक्षियों की तरह दिन में तो बोलता ही है, कभी-कभी रात में भी बोलता है[७७]। उसका 'पी-पी' शब्द कानों से उतर कर सीधा हृदय में पहुँचता है[७८]। प्रिय के वियोग में दुखी प्रेमिका को यह शब्द मानों जलाता है; क्योंकि उससे प्रिय की स्मृति सजग हो जाती है[७९]। अष्टछापी कवियों ने प्रकृति-वर्णन में, अन्य पक्षियों के साथ-साथ, चातक का भी नाम लिया है[८०]।

७१. जाँचै बारहमास 'पियै पपीहा स्वाति जल'—तुलसी०, दोहा०, ३०७।

७२. मन 'चातक जल तज्यौ स्वाति हित' एक रूप व्रत धार्यौ—सा० १-१२०।

७३. स्याम भए राधा बस ऐसैं।
चातक स्वाति, चकोर चंद ज्यौं, 'चक्रवाक रवि जैसैं'—सा० २१३८।

७४. क. पिउ पिउ लागे करैं 'पपीहा'—पद्मा०, संजी० व्या०, २६-४।
ख. 'पपिहा' तउ बोलै पिउ पीऊ—पद्मा०, संजी० व्या०, ३४२-१।

७५. बहुत दिन जीवौ 'पपिहा' प्यारौ।
बासर रैनि नाम लै बोलत भयौ 'बिरह जुर कारौ'।
आपु दुखित पर दुखित जानि जिय 'चातक' नाम तुम्हारौ—सा० ३६५५।

७६. तृषित हैं सब दरस कारन, चतुर 'चातक' दास—सा० १०-२१२।

७७. क. रात 'पपीहा' बोल्यो री माई—परमा० ५३१।
ख. रे पापी तू 'पंखि पपीहा' पिय पिय कर अधराति पुकारत—सा० ३३३८।

७८. उघटत सब्द 'पपैया' पियु पियु करे मधुव्रत गुंजमाल सरस उपंग।
—गोविं० १८२।

७९. क. पुनि तहँ पापी 'पपिहा' दहै—नंद०, रूप०, पृ० १६।
ख. 'चातक', पिक, मोर बोलत सुनि-सुनि स्रवननु जरिये—कुंभन० ३५०।

८०. क. मोर कोकिल हंस 'चातक', मधुप बोलत कीर—गोविं० १६५।
ख. 'पपिहा' गुंज, कोकिल बन गूँजत अस मोरन कियो गाजन—सा० ६२२।
ग. दादुर मोर पपीहा बोलत नान्हीं नान्हीं बूँद सुहाई—चतु० १३१।

'केकी',[८१] 'बरह', 'बरहो', 'मयूर', 'सिखंडी', 'सिखी'[८२] आदि शब्दों का प्रयोग अष्टछाप-काव्य में 'मोर' नामक प्रसिद्ध पक्षी के लिए हुआ है। इस पक्षी को वर्षा ऋतु बहुत प्रिय है। वर्षा में यह अन्य पक्षियों के साथ बोलने लगता है[८३]। अष्टछापी कवियों के अनुसार वर्षा में घटा के घिर आने पर मोर बड़ा कोलाहल करते हैं[८४]। विरहणियों के लिए मोर का बोलना वर्षागम-सूचक[८५] होने के कारण दुखदायी भी है। इसी कारण कृष्ण-वियोग में विकल व्रजबालाओं को 'मोर' बैरी जैसे लगते हैं[८६]। मोर के पंख चंद्राकृति चिह्नों के कारण बहुत सुंदर लगते हैं; इन्हें 'मोरचंद्र',[८७] 'मोर चंद्रिका',[८८] 'मोरचँदवा'[८९] आदि कहते हैं। श्रीकृष्ण के

८१. बीच बीच मुरली धुनि सुनियत 'केकी' पिक चातक तिहिं ठाँईं।
—चतु० १२३।

८२. देखि सखी बन तैं जु बने ब्रज आवत हैं नँदनंदन।
'सिखी सिखंड सीस', मुख मुरली, बन्यौ तिलक, उर चंदन—सा० ४७६।

८३. क. 'केकी', कोक, कपोत और खग करत कुलाहल भारी—सा० २८५३।
ख. दादुर 'मोर' पपीहा बोलत नान्ही नान्ही बूँद सुहाई—चतु० १३१।
ग. 'बोलत मोर' कोकिला कूजति तैसीये दामिनि अति दरसै री।
—कुंभन० २६२।

८४. क. बहुरि 'बन बोलन लागे मोर'।
करत सँभार नंदनंदन की, सुनि बादर की घोर—सा० ३३२५।
ख. तैसिय स्याम घटा घन घोरनि, बिच बग पाँति दिखावहिं।
तैसेइ 'मोर' कुलाहल सुनि सुनि, हरषि हिंडोरनि गावहिं—सा० ३३८७।

८५. 'सिखिनि' सिखर चढि टेर सुनायौ।
बिरहिनि सावधान ह्वै रहियौ, सजि पावस दल आयौ—सा० ३३२८।

८६. क. हमारे माई, 'मोरवा' बैर परे।
घन गरजत बरज्यौ नहिं मानत, त्यौं त्यौं रटत खरे—सा० ३३२९।
ख. कोउ माई, 'बरजै री इन मोरनि'।
टेरत बिरह रह्यौ न परै छिन, सुनि दुख होत करोरनि—सा० ३३३०।

८७. मुरली मधुर चेप काँपा करि, 'मोर चंद्र' फँदवारि—सा० ३१८५।

८८. क. कुंचित केस 'मयूर चंद्रिका' मंडल सुमन सुपाग—सा० १७७७।
ख. नाहिंन 'मोर-चंद्रिका माथैं, नाँहिन उर बनमाल।
नहिं सोभित पुहुपनि के भूषन, सुन्दर स्याम तमाल—सा० ३१९२।

८९. कब देखौं इहिं भाँति कन्हाई।
'मोरनि के चँदवा माथे पर', काँध कामरी लकुट सुहाई—सा० ३२१७।

मोर मुकुटधारी होने की बात तो प्रसिद्ध ही है,[९०] अतएव यह सम्मान या दुलार पाकर, सूरदास की गोपियों की सम्मति में, 'मोरवा' बहुत ढीठ हो जाते हैं[९१]। मोरपंखी के 'व्यजन' बनाये जाने की बात भी सूरदास ने लिखी है जिसे देखकर सिंहासनासीन कृष्ण, व्रजवास की चर्चा न उठने देने के लिए, प्रसंग बदल देते हैं[९२]। सर्प और मोर में जन्मजात शत्रुता रहती है[९३] और उसे देखते ही यह खा जाना चाहता है। सूरदास ने मयूर की इस प्रकृति का भी वर्णन किया है[९४]।

'लालमुनिया' या 'लालमुनैया' नामक लाल चिड़िया का वर्णन अष्टछापी कवियों में केवल सूरदास ने किया है। यह चिड़िया बहुत छोटी होती है और एक पिंजड़े में कई-कई 'लालमुनियाँ' पाल ली जाती हैं। कृष्ण के जन्मोत्सव में सम्मिलित होने के लिए जानेवाली, वस्त्राभूषण से अलंकृता गोपियों को सूरदास ने पिंजड़ा छोड़कर एक साथ उड़नेवाली 'लालमुनियों'-जैसा बताया है[९५]। वृन्दावन

९०. सुनि सखि 'वे बड़भागी मोर'।
जिनि पाँखनि कौ मुकुट बनायौ, सिर धरि नंदकिसोर—सा० ४७७।

९१. हमारे माई, मोरवा बैर परे।
घन गरजत बरज्यौ नहिं मानत, त्यौं त्यौं रटत खरे।
करि करि प्रगट पंख हरि इनके, लै लै सीस धरे।
याही तैं न बदत बिरहिनि कौं, मोहन ढीठ करे—सा० ३३२६।

९२. सुनियत मुरली देखि लजात।
दूरिहिं तैं सिंहासन बैठे, सीस नाइ मुसकात।
मोर पच्छ कौ व्यजन बिलोकत, बहरावत कहि बात—सा० ३१६३।

९३. कहलाने एकत बसत 'अहि मयूर' मृग बाघ।
जगत तपोवन सो कियो दीरघ दाघ-निदाघ—'बिहारी-बोधिनी', ५६५।

९४. क. जननी मथि, सनमुख संकर्षन खैंचत कान्ह खस्यौ सिर चीर।
मनहु सरस्वति संग उभय दुज, कल मराल 'अरु नीलकठीर'।
'सुंदर स्याम गही कबरी कर', मुक्तामाल गही बलबीर।
सूरज 'भष लैबे अप अपनौं', मानहुँ लेत निबेरे सीर—सा० १०-१६१।
ख. 'कबरी ग्रसत सिखंडी अहि भ्रम', चरन सिलीमुख लाग—सा० ११२६।

९५. ते अपनैं अपनैं मेल निकसीं भाँति भली।
'मनु लाल मुनैयनि पाँति' पिंजरा तोरि चली—सा० १०-२४।

की हरित भूमि में 'लालमुनियों' के झुंड रहने की बात भी सूरदास के एक पद में मिलती है[९६]।

'सारिका', 'सारी' या 'मैना' भी पिंजड़े में पाली जानेवाली चिड़िया है[९७]। इसकी वाणी मधुर होती है और सिखाने पर यह मनुष्य की बोली तोते की तरह ही सीख जाती है। गो० तुलसीदास की जानकी तोते की तरह पढ़ाने के लिए सारिका को भी सोने के पिंजड़े में पालती है[९८]। हमारे कवियों ने 'सुक-सारिका' के साथ-साथ रहने का वर्णन किया है[९९] और श्री मैथिलीशरण गुप्त जी के 'साकेत' का 'कीर' तो लक्ष्मण के द्वारा सिखाये जाने पर 'सलोनी सारिका' की कामना भी करता है[५००]। परंतु अष्टछापी कवि इन पक्षियों के पढ़ाये जाने की बात न कह कर वर्षा ऋतु में अन्य खगों के साथ इनके बोलने का ही वर्णन करते हैं[१]।

'कीर', 'तोता', 'सुक', 'सुअना', 'सुआ', 'सुवा' आदि नामों से प्रसिद्ध पक्षी कदाचित इसीलिए पाला जाता है कि वह पढ़ाये जाने पर कुछ शब्दों का स्पष्ट उच्चारण कर लेता है। अष्टछापी कवियों ने भी 'सुक' के पढ़ाये जाने की बात का उल्लेख किया है और तोते को भगवन्नाम पढ़ाते-पढ़ाते तो 'गनिका' के तर तक जाने की बात उन्होंने लिखी है[२]। तोते का रंग हरा होता है जिसके कारण

९६. ब्रन्दाबन कालिंदी कैं तट हरित सोभित भूमि।
तहँ 'लाल मुनियाँ झुंड' बैठे मत्त अलि कल गुंज—सा० परि० १०६।

९७. कालिदास, टीका मल्लिनाथ, उत्तर मेघ, श्लो० २२।

९८. 'सुक-सारिका जानकी ज्याये', कनक पींजरन्हि राखि पढ़ाए।
—मानस०, बाल०, ३३८।

९९. मृगनारी सौं बूझहीं, बूझैं सुक-सारी—सा० ११२०।

५००. तदपि तुम, यह कीर क्या कहने चला?
कह अरे, क्या चाहिए तुझको भला?
'जनकपुर की राज कुंज - बिहारिका,
एक सुकुमारी सलोनी सारिका—'साकेत', प्रथम सर्ग, पृ० २३-२४।

१. ऐसौ जो पावस रितु प्रथम सुरति करि माधौ जू आवहिं।
× × ×
हंस, सुक, पिक 'सारिका, अलि गुंज नाना नाद—सा० ३३१४।

२. क. 'कीर पढ़ावत' गनिका तारी—सा० १-६७।

सूरदास ने कृष्ण के गले में पड़ी हुई तुलसी-माला के उपमान-रूप में 'स्रेनिका सुक-जाल' का स्मरण किया है[३]। नख-शिख-वर्णन में 'कीर' को नासिका का उपमान बताया जाता है[४]। वसंत-वर्णन में अनेक पक्षियों के साथ 'कीर' या 'सुक' के बोलने की बात भी उन्होंने कही है[५]। अष्टछापी कवियों के अनुसार सांसारिक सुखों की ओर जीव उसी प्रकार आँख मूँदकर आकृष्ट होता है जैसे 'तोता' सेमर के फूल की ओर; उनकी निस्सारता देखकर इसे निराशा भी होती है;[६] फिर भी वह सचेत नहीं होता। संसार की स्वार्थ और कपटपूर्ण प्रीति भी सुक-सेमर के संबंध जैसी उन कवियों ने बतायी है[७]। संसार में जन्म लेकर अपनी मूर्खतावश प्राणी का 'अपुनपौ' अथवा 'आत्मशक्ति' भूल जाना अष्टछापी कवियों ने 'नलिनी के सुक' अथवा 'सुवटा' के उदाहरण से समझाया है जो उलटा लटकते ही अपनी उड़ने की शक्ति को भूल जाने के कारण दूसरों के अधीन हो जाने का दुख भोगता है[८]।

ख. 'सुवा पढावत' गनिका तारी—सा० १-८६।
ग. गनिका किए कौन व्रत-संजम 'सुक-हित नाम पढावै'—सा० १-२१२।

३. स्याम-देह दुकूल-दुति मिलि, लसति तुलसी-माल।
तड़ित घन संजोग मानौ, 'स्रेनिका सुक-जाल'—सा० ६२७।

४. क. अधर अरुन, अनूप नासा, निरखि जन-सुखदाइ।
'मनौ सुक, फल बिंब कारन,' लेन बैठ्यौ आइ—सा० १०-२३४।
ख. 'नासिका सुक' नैन खंजन कहत कबि सरमाइ—सा० १७५५।
ग. तिल प्रसून 'सुक नाक' नयन जुग खंजन मीन कुरंग—कुंमन० १६२।

५. क. हंस 'सुक' पिक सारिका अलि गुंज नाना नाद—सा० ३३१४।
ख. गुंजत मधुप, 'कीर' पिक कूजत ठौर-ठौर आनन्द ठये—चतु० ७२।

६. क. ज्यों 'सुक सेमर-फूल बिलोकत' जात नहीं बिनु खाए—सा० १-१००।
ख. 'सेमर-फूल सुरँग अति निरखत, मुदित होत खग भूप'।
परसत चोंच तूल उघरत मुख, परत दुःख कैं कूप—सा० १-१०२।

७. क. कत तू 'सुआ होत सेमर कौ,' अंतहिं कपट न बचिबौ—सा० १-५६।
ख. यह 'जग-प्रीति सुवा सेमर ज्यौं' चाखत ही उड़ि जात—सा० १३१३।

८. क. बिबस भयौ 'नलिनी के सुक ज्यौं' बिनु गुन मोहि गह्यौ—सा० १-४६।
ख. अपुनपौ आपुन ही बिसरयौ।
× × × ×
सूरदास 'नलिनी कौ सुवटा' कहि कौनैं जकरयौ—सा० २-२६।

'मराल' अथवा 'हंस' एक प्रसिद्ध पक्षी है जो सरस्वती का बाहन होने के कारण भारत में सदा से सम्मान पाता रहा है। इसका प्रसिद्ध वासस्थान कैलास पर्वत पर स्थित मानसरोवर माना जाता है[९]। कृष्ण का वृंदावन छोड़कर मथुरा जाना सूरदास की दृष्टि में वैसा ही है जैसे हंस मानसरोवर छोड़कर अन्यत्र चला गया हो[१०]। हंस के मोती या 'मुक्ताहल' चुगने की बात कवियों में प्रसिद्ध रही है[११]। हंस का उज्ज्वल श्वेत वर्ण भी कवियों का वर्ण्य विषय रहा है[१२]। सूरदास के एक पद में बलराम को उज्ज्वल वर्ण के कारण 'मराल' ही कहा गया है[१३]। कवि-प्रसिद्धि है कि हंस नीर-क्षीर-विवेकी और कमल-दल-लोभी होता है। उसके स्वभाव की इस दूसरी विशेषता का सूरदास ने एक पद में स्पष्ट उल्लेख किया है[१४]। गज की तरह हंस और हंसी की गति को सुंदर मानकर उससे सुंदर चाल की उपमा, जायसी आदि के साथ, अष्टछापी कवियों ने दी है[१५]।

९. क. 'मानसरोवर छाँड़ि हंस तट' काग-सरोवर न्हावै—सा० २-१३।
ख. 'मानसरोवर हंस से राजत'— गोवि० ६।

१०. एई सुत नंद अहीर के।

× × × ×

उड़ि आए तजि 'हंस मात मनु मानसरोवर तीर के'—सा० ३०६३।

११. क. जल तजि 'हंस चुगै मुकताहल' मीन कहाँ उड़ि जाहिं—सा० ३२३०।
ख. 'हंस उज्जल पंख निर्मल,' अंग मलि-मलि न्हाहिं।
'मुक्ति मुक्ता अनगिने फल, तहाँ चुनि-चुनि खाहिं'—सा० १-३३८।

१२. 'हंस उज्जल पंख निर्मल'—सा० १-३३८।

१३. जननी मथि, 'सनमुख संकर्षन' खैंचत कान्ह खस्यौ सिर चीर।
मनहुँ सरस्वति संग उभय दुज, 'कल मराल' अरु नीलकँठीर—सा० १०-१६१।

१४. रतन-जटित पग सुभग पाँवरी, नूपुर परम रसाल।
मानहुँ चरन-'कमल-दल लोभी, बैठे बाल मराल—सा० १७६१।

१५. क. लंक सिंघिनी सारँग नैनी। 'हँस गामिनी' कोकिल बैनी—सा० २-८।
ख. लाल उन सुनी मनोहर बंसी।

× × × ×

कैसैं लाउँ सँगीत सरोवर मगन भई 'गति हंसी'—सा० २११५।
ग. 'गज गति मंद मराल बिरोधी'—सा० ३२३३।
घ. लाल गिरिवरधरन मानिनी मनहरन तोहि बोलत प्रिया 'हंस कुल गामिनी'—चतु० ३२।

स्त्रियों के नूपुर, 'किंकिनी'-जैसे आभूषणों की मधुर ध्वनि को 'मराल छौने' के मधुर 'रव' के समान हमारे कवियों ने कहा है[१६]। कहीं-कहीं 'हंस' का सांकेतिक अर्थ 'प्राण' अथवा 'आत्मा' से भी उन्होंने लगाया है[१७]।

अब रह गये इस वर्ग के 'गररी', 'तमचुर', 'कुलाल', 'नीलकँठीर', 'भरुही', 'सूही', 'हारिल' आदि पक्षी जिनका सारे अष्टछाप-काव्य में एक-एक दो-दो बार ही उल्लेख हुआ है। 'गररी' का लड़ना सूरदास ने असगुन-सूचक बताया है[१८]। 'तमचुर' को प्रचलित भाषा में 'मुर्गा' कहते हैं। यह पक्षी दस-पाँच फीट से अधिक नहीं उड़ पाता। यों तो यह किसी भी समय बोल सकता है, लेकिन सामान्यतया उषाकाल में इसके बोलने के क्रम में निरंतरता रहती है। अष्टछापी कवियों ने अरुणोदय के आसपास ही इसके बोलने का उल्लेख किया है[१९]। कृष्ण-वियोगिनी

१६. क. मनौ मधुर 'मराल छौना' किंकिनी कल राव—सा० १-३०७।
    ख. रतन-जटित पग सुभग पाँवरी, नूपुर परम रसाल।
    मानहुँ चरन-'कमल-दल-लोभी, बैठे' बाल मराल—सा० १७६१।

१७. क. जा छन 'हंस' तजी यह काया प्रेत-प्रेत कहि भागी—सा० १-७६।
    ख. बिछुरयौ 'हंस' काय घटहूँ तैं फिरि न आव घट माहीं—सा० ३२२६।

१८. फटकत स्रवन स्वान द्वारे पर, 'गररी करति लराई'।
    माथे पर ह्वै काग उड़ान्यौ, 'कुसगुन बहुतक पाई'—सा० ५४१।

१९. क. आज भोर तमचुर के रोल—१०-६४।
    ख. भोर भयौ जागौ नंदनंद।
    × × × ×
    अरुन गगन 'तमचुरनि' पुकारयौ—सा० १०-२३३।
    ग. भोर भयौ जागौ नंद-नंद।
    × × × ×
    तमचुर खग रोर, अलि करैं बहु सोर—सा० १२१०।
    घ. भोर भयौ बन 'तमचुर' बोलै—चतु० १३६।
    ङ. 'प्रात होन लागो' सुनि सजनी अबहीं 'तमचर बोलत'।
    —सोम०, अष्ट० पदा०, कृ० ग० २४।
    च. कहौ धौं कहाँ तुम रैनि गँवाई लाल 'अरुन उदय' आये।
    कौन सँकोच स्याम घन सुंदर 'तमचुर बोलत' उठि धाये।
    —सोम०, अष्ट० पदा०, कुंभन० ७।

गोपियों को 'तमचुर का बोल' अप्रिय लगने की बात परमानंददास ने कही है[२०]। 'कुलाल' नामक पक्षी भी 'तमचुर' की ही जाति का होता है जिसे 'जंगली मुर्गा' कहते हैं। अष्टछापी कवियों में से केवल सूरदास ने इसका उल्लेख किया है[२१]।

'नीलकँठीर' और 'भरुही' का उल्लेख भी आलोच्य कवियों में से केवल सूरदास के काव्य में मिलता है। 'नीलकँठीर' संभवतः 'नीलकंठ' अथवा उसी से मिलता-जुलता नीलवर्ण का पक्षी है जिसका स्मरण सूरदास को श्रीकृष्ण का श्याम वर्ण देखकर हो आता है[२२]। 'भरुई' संभवतः 'भारद्वाज' पक्षी है जिसका अंडा, महाभारत के भयंकर युद्ध में भी नष्ट होने से बच जाने का उल्लेख सूर ने किया है; क्योंकि उस पर गज का घंटा 'टोप' की तरह जा गिरा था। इस प्रसंग में सूरदास ने भगवत्कृपा से घोर संकट में भी रक्षित रहने की बात कही है[२३]। 'सूही' का उल्लेख 'सूरसागर' में वर्षाकालीन पक्षियों के साथ हुआ है[२४]।

'हारिल' पक्षी अपने हरे रंग के कारण 'हरियल' भी कहलाता है। सूरदास ने इसकी चर्चा वर्षा ऋतु में बोलनेवाले पक्षियों के साथ की है[२५]। इस पक्षी के स्वभाव की उल्लेखनीय विशेषता है हर समय लकड़ी का टुकड़ा या तिनका अपने पंजों में दबाये रखना। गोपियों ने अपने लिए कृष्ण को 'हारिल की लकड़ी' ही बताकर संकेत किया है कि हमने किसी लोभ, स्वार्थ या कामना से नहीं, अपने सहज स्वभाव के अनुसार ही नंदनंदन को दृढ़ता से पकड़ रखा है[२६]।

२०. सुन री सखी, अब कैसे जीजै सुन 'तमचुर' खग रोरै—परमा० ५४३।
२१. जैसैं स्वान 'कुलाल' के पाछै लगि धावै—सा० २-६।
२२. मनहुँ सरस्वति संग उभय दुज, कल मराल अरु 'नीलकँठीर'।
 'सुंदर स्याम गही कबरी कर,' मुक्ता माल गही बलबीर—सा० १०-१६१।
२३. ज्यौं भारत 'भरुही के अंडा' राखे गज के घंट तरी।
 सूरजदास ताहि डर काकौ, निसि बासर जौ जपत हरी—सा० ४१५६।
२४. कैसे कैं भरिहौं दिन सावन के।
 × × × ×
 दादुर मोर सोर चातक पिक 'सूही' निसा सिरावन के—सा० ३३१६।
२५. 'हारिल' परेवा भृंग पिकऽरु कपोत दुज कुल बृंद—सा० परि० १०६।
२६. हमारैं 'हरि हारिल की लकरी'।

आ. *लोक-तिरस्कृत पक्षी*—अष्टछाप-काव्य में वर्णित जो पक्षी इस वर्ग में आते हैं, उनमें उलूक, काग, गीध, बक, सचान, सारस आदि मुख्य हैं। यद्यपि इन पक्षियों से प्रत्यक्षतः मानव-समाज का कोई अहित नहीं होता जिससे इनका तिरस्कार किया जाय और 'कौआ' तो हर घर की छत पर दिन में किसी भी समय देखा जा सकता है, फिर भी इनमें से किसी के प्रति हमारे मन में वह सद्भाव नहीं रहता जो कपोत, कोयल, खंजन, चकवा, चकोर, चातक, मोर, सारिका, सुक, हंस आदि के लिए रहता है। यों तो प्रायः सभी पक्षी कीड़े-मकोड़े खाते हैं, परंतु इस लोक-तिरस्कृत वर्ग के प्रायः सभी पक्षी मांसाहारी हैं; कुछ मछलियाँ खाते हैं, कुछ छोटी चिड़ियों या चूहे आदि छोटे जंतुओं का शिकार करते हैं और कुछ मृतकों का मांस खाते हैं जो संभवतः उनके प्रति हमारी तिरस्कार-भावना का प्रथम कारण है। इस वर्ग के पक्षियों के तिरस्कृत होने का दूसरा कारण, प्रथम वर्गीय पक्षियों जैसा रूप-गुण आदि इनमें न होना भी हो सकता है।

तिरस्कार की दृष्टि से देखे जानेवाले पक्षियों में सर्वप्रथम है 'उलूक' या 'उल्लू'। इसका बोलना अशुभ माना जाता है और घर की छत पर बैठ जाना तो सर्वनाश का ही सूचक समझा जाता है। यह पक्षी सायान्यतया रात के अँधेरे में ही निकलता है। सूरदास ने उलूक की इस प्रवृत्ति का उल्लेख एक विनय पद में करते हुए बताया है कि आकाश में सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश के रहते हुए भी 'उलूक' अपनी टेव के अनुसार उसको पसंद नहीं करता[२७]।

'काग', कौआ', 'बायस' आदि नामों से प्रसिद्ध पक्षी अपने काले रंग और कर्कश स्वर के कारण निरादृत रहता है। प्रथम अर्थात् रंग-दोष के कारण हंस के साथ कौए का रहना अष्टछापी कवियों को कृष्ण-कुब्जा[२८] और कृष्ण-

मन-क्रम-बचन नंदनंदन उर यह 'दृढ़ करि पकरी'—सा० ३६८८।

२७. क. ज्यौं 'दिनकरहिं' उलूक न मानत' परि आई यह टेव—सा० १-१००।
ख. 'रबि कौ तेज उलूक न जानै' तरनि सदा पूरन नभ ही री—सा० १६१४।

२८. क. कंस बध्यौ कुबिजा कैं काज।
और नारि हरि कौं न मिली कहूँ, कहा गँवाई लाज।
जैसे 'काग हंस की संगति', लहसुन संग कपूर—सा० ३१५२।

शिशुपाल[२९] जैसा लगा है। और द्वितीय दोष अर्थात् कर्कश स्वर के कारण वह कोकिल के सामने सदैव तिरस्कृत होता रहा है[३०]। यह पक्षी मूर्ख इतना होता है कि कोयल द्वारा सदैव ठगा जाता है और अपने बच्चे 'सेने' का काम वह 'कौए' की मादा से ही सदैव कराती है। श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों ने ऊधव से उनके ऐसे ही व्यवहार की ओर संकेत किया है[३१]। 'काग' को अष्टछापी कवियों ने मृतक मांस का भक्षी भी बताया है[३२]। अपना स्वभाव न बदल पानेवाले कुटिलजनों का वर्णन करते समय भी 'काग' का स्मरण उन कवियों ने किया है[३३]। बायीं ओर काग का बोलना,[३४] माथे पर होकर 'काग' का उड़ना[३५] अथवा रात में 'काग का बोलना'[३६] अष्टछापी कवियों ने कुसगुनों में

ख. 'हंस काग कौ संग भयौ'—सा० ३४१८।

ग. हेम काँच, 'हंस काग' खरि कपूर जैसौ; कुबिजा अरु कमलनयन संग बन्यौ ऐसौ—सा० ३६५३।

घ. ऊधो, जाके माथैं भाग।
बिलपत छाँड़ि सकल गोपीजन, चेरी चपल सुहाग।
जोरी भली बनी है उनकी, 'राजहंस अरु काग'—सा० ३६५२।

२९. द्विज, कहियौ हरि कौ समुझाइ।
परमिति गऐं लाज तुमहीं कौं 'हंस' कौ भाग काग लै जाइ—सा० ४१७०।

३०. बानी मधुर जान पिक बोलति 'कदम करारत काग'—सा० ११२६।

३१. क. करि निज प्रगट कपट पिक की रति अपने काज लगि धीर।
काज सरे तब गये कहाँ धौं का 'बायस की' पीर—सा० ३६५६।

ख. ज्यौं कोइल सुत 'काग जियावै', भाव भगति भोजन जु खवाइ।
कुहुकि कुहुकि आएँ बसंत रितु अन्त मिलै अपने कुल जाइ—सा० ३५६१।

ग. कोकिल कपट कुटिल 'बायस छलि' फिरि नहिं उहिं बन जाति।
—सा० ३७५३।

३२. क. या देही कौ गरब न करिए स्यार 'काग'-गिध खैहैं—सा० १-८६।

ख. यहै तन-गति जनम झूठौ स्वान 'काग' न खाइ—सा० १-३१६।

३३. 'कागहिं कहा कपूर जुगाएँ', स्वान न्हवाए गंग—सा० १-३३२।

३४. बाएँ काग, दाहिनैं खर-स्वर, ब्याकुल घर फिरि आई।
सूर स्याम कौं टेरति जननी, नैकु नहीं मन सांति—सा० ५४०।

३५. 'माथे पर ह्वै काग उड़ान्यौ, कुसगुन बहुतक पाइ—सा० ५४१।

३६. रोवैं बृषभ तुरग अरु नाग, स्यार द्यौस 'निसि बोलैं काग'—सा० १-२८६।

गिनाया है। एक 'कौए' के मरने पर दूसरों का थोड़ी देर 'काँ काँ' करके उड़ जाना भी सूर के एक पद में वर्णित है[३७]। किसी संबंधी के आगमन का शकुन 'कौए' को उड़ाकर जानने का विश्वास भारतीय समाज में प्रचलित है। अष्टछाप-काव्य में इस विश्वास की ओर भी अनेक पदों में संकेत किया गया है[३८]। काग के द्वारा इस प्रकार के 'सगुन' जानकर प्रियतम कृष्ण के आने का समाचार पाने के लिए गोपियाँ 'बायस' को दिनभर उड़ाती रहती हैं जिससे उनकी बाहें थक जाती हैं[३९]। श्राद्धपक्ष में 'कौए' को 'बलि' खिलाने की प्रथा है जिसकी ओर बिहारी ने भी संकेत किया है;[४०] परंतु सूरदास के अनुसार कृष्ण के वियोग से पीड़ित व्रज में 'बायस' 'बलि' भी नहीं खाता[४१]।

३७. जैसैं 'काग काग के मूएँ काँ काँ करि उड़ि जाहीं'—सा० १-३१६८।

३८. क. बैठी जननि करति सगुनौती।
लछिमन राम मिलैं अब मोकौं, दोउ अमोलक मोती।
इतनी सुनत 'सुकाग उहाँ तैं हरी डार उड़ि बैठ्यौ'।
अंचल गाँठि दई दुख भाज्यौ, 'सुख जु आनि उर पैठ्यौ—सा० ६-१६४।

ख. तेरैं आवैंगे आजु सखी, हरि खेलन कौं फाग री।
'सगुन सँदेसौ हौं सुन्यौ, तेरे आँगन बोलै काग री—सा० २८५६।

ग. जबहिं चले ऊधौ मधुबन तैं गोपिनि मनहिं जनाइ गई।
× × ×
जहँ तहँ 'काग उड़ावन लागीं', हरि आवत, उड़ि जात नहीं।
समाचार कहि जबहिं मनावतिं, 'उड़ि बैठत सुनि औचकहीं'।
सखी परस्पर यह कही बातैं, आज स्याम कै आवत हैं।
किधौं सूर कोऊ व्रज पठयौ, आजु खबरि कै पावत हैं—सा० ३४५३।

घ. तौ तू उड़ि न जाइ रे काग।
जौ गुपाल गोकुल कौं आवैं, तौ ह्वै हैं बड़ भाग।
दधि ओदन भरि दोनौ दैहौं, अरु अंचल की पाग—सा० ३४५६।

३९. बाँह थकी बायसहिं उड़ावत, कब देखौं उनहारि—सा० ३२४३।

४०. क. दिन दस आदर पायकै, करि लै आपु बखान।
जौलौं काग सराधपख, तौलौं तो सनमान—'बिहारीबोधिनी', ६६७।

ख. मरत प्यास पिंजरा परो, सुवा दिनन के फेर।
आदर दै दै बोलियत, बायस बलि की बेर—'बिहारीबोधिनी', ६६८।

४१. कहाँ लौं कहिऐ व्रज की बात।

'गीध' या 'गृद्ध' मृत पशुओं और मुर्दों का मांस खानेवाला पत्ती है[४२]। आकाश में यह बड़ी ऊँचाई तक उड़ान भरता है। इसकी दृष्टि बड़ी तेज होती है। रामकथा में जटायु और सम्पाती जैसे गिद्धों का वर्णन है। जटायु ने तो सीता की रत्ता के लिए रावण से लड़कर अपने प्राण दिये थे[४३]। सूरदास के अनुसार राम ने उसका 'शव-दाह' किया था[४४]। जिस व्यक्ति में भजन-भाव नहीं होता उसके जीवन को सूरदास ने 'गीध-गोधिनी' के सारहीन जीवन-जैसा कहा है[४५]।

'बक', 'बग', 'बगुला', 'बलाक' आदि नामों से प्रसिद्ध पत्ती का उल्लेख अष्टछापी कवियों ने वर्षा ऋतु के अन्य खगों के साथ किया है[४६]। साधारणतया यह पत्ती सरोवर या जलाशय के समीप बैठता है[४७] और पंक्तिबद्ध होकर आकाश में उड़ता है। अष्टछाप-काव्य में 'बग' के इस स्वभाव को लक्ष्य करके उसका उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है[४८]। 'जल-सुत'-माला अथवा 'मुक्तामाल'

सुनहु स्याम तुम बिनु उन लोगनि जैसैं दिवस बिहात।

× × ×

पिक चातक बन बसन न पावत, 'बायस बलि नहिं खात—सा० ४११६।

४२. या देही कौ गरब न करियै स्यार-काग 'गिध' खैहैं—सा० १-८६।

४३. 'गीध' ताकौं देखि धायौ तरयौ सूर बनाइ—सा० ८६-६।

४४. रघुपति निरखि 'गीध' सिर नायौ।
कहि कै बात सकल सीता की तन तजि चरन-कमल चित लायौ।
'श्री रघुनाथ' जानि जन अपनौ अपनैं कर करि ताहि जरायौ—सा० ६-६६।

४५. भजनु बिनु कूकर-सूकर जैसौ।

× × ×

बग-बगुली अरु गीध-गीधिनी, आइ जनम लियौ तैसौ।
उनहूं कैं गृह, सुत, दारा हैं, उन्हैं भेद कहु कैसौ—सा० २-१४।

४६. सखी री पावस सैन पलान्यौ।
बोलत मोर सैल-द्रुम चढ़ि चढ़ि, बग जु उड़त तरु डारैं—सा० ३३०५।

४७. देखौ माई रूप-'सरोवर' साज्यौ।

× × ×

'मुक्तामाल बाल बग-पंगति' करति कुलाहल कूल—सा० १०४६।

४८. क. चपला चमचमाति आयुध 'बग-पंगति' धुजा अपार—सा० ३३१३।
ख. घन धावन 'बग पाँति' पटोसिर, बैरख तड़ित सुहाई—सा० ३३२४।

के उपमान-रूप में भी 'बग-पाँति' का वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है[४९]। कृष्ण की 'रोमावली' भी सूरदास को 'बग-पाँति' सी जान पड़ती है[५०]। भजन-भाव से रहित गृहस्थ के सारहीन जीवन की 'सूरसागर' के एक पद में 'बग-बगुली' के जीवन-सा बताया गया है[५१]।

'सचान' या 'बाज' शिकारी पक्षी होता है। इसे 'शिकरा' भी कहते हैं। इसके द्वारा अन्य पक्षियों का शिकार कराया जाता है। इसे सिखाकर आकाश में उड़ाते हैं और यह छोटे पक्षियों को पकड़ कर ले आता है। बिहारी ने एक दोहे में 'बाज' की इस प्रकृति की ओर संकेत किया है[५२]। सूरदास भी एक निरीह पक्षी पर आक्रमण के लिए तैयार 'सचान' का उल्लेख करते हैं[५३]।

'सारस' पक्षी वर्षा ऋतु में प्रायः जल से भरे हुए खेतों और अन्य जलाशयों के निकट दिखायी देता है। लंबी टाँगों वाले इस पक्षी की चोंच भी लंबी होती है जिससे यह जल-जीवों से अपना पेट भरा करता है। जायसी ने 'सारस' के जोड़े के साथ-साथ रहने की बात लिखी है और यह भी प्रसिद्धि है कि एक की

ग. बग पंगति उड़ानी—कुंभन० ३४६।

घ. इन्द्र धनुष 'बग पाँति' स्याम छबि लागत है सुखकारी—परमा० ७६३।

४९. क. स्याम-हृदय 'जलसुत की माला', अतिहिं अनूपम छाजै।
मनहुँ 'बलाक-पाँति' नव घन पर, यह उपमा कछु भ्राजै—सा० १८०७।

ख. 'द्वै बग पंगति राजति मानौ, मुक्तामाल सुभी—सा० १८७०।

ग. जनु 'बग-पाँति माल मोतिनि की'—सा० ३३१५।

घ. इन्द्रधनु बनमाल मोतिनि हार बलाक डोर—कुंभन० ६३।

५०. रोमावली सुभग बग पंगति जाति नाभि हृद झुंड—सा० १७७५।

५१. 'भजन बिनु' कूकर-सूकर जैसौ।

× × ×

'बग-बगुली' अरु गीध-गीधिनी, आइ जनम लियौ तैसौ।
उनहूँ कैं गृह, सुत, दारा हैं, उन्हें भेद कहु कैसौ—सा० २-१४।

५२. स्वारथ सुकृत न स्रम बृथा, देखु बिहंग! बिचारि।
'बाज', पराये पानि परि, तू पंछीहिं न मारि—'बिहारी बोधिनी', ६६६।

५३. हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम-डरिया, पारधि साधे बान।
ताकैं डर मैं भाज्यौ चाहत, 'ऊपर ढुक्यौ सचान'—सा० १-९७।

मृत्यु होने पर दूसरा भी आजीवन वियोगी रहता है[५४]। अष्टछापी कवियों ने 'सारस' के संबंध में अधिक नहीं लिखा है, सरोवर या जलाशय-तट के पक्षियों में उसको गिनाकर ही उसकी चर्चा समाप्त कर दी है[५५]।

पौराणिक पशु-पक्षी और कीट--

अष्टछाप-काव्य में कुछ ऐसे पशु, पक्षी, कीट आदि का उल्लेख हुआ है जो रूप, रंग अथवा आकार में इस जगत के प्राणियों से मिलते-जुलते हैं; परंतु अपनी विशेषताओं के कारण इनसे भिन्न भी हैं। इन पशु-पक्षियों का वर्णन पुराणों तथा प्राचीन महाकाव्यों में आया है। सूर आदि अष्टछापी कवियों ने भी पौराणिक कथाओं के प्रसंग में उनका नाम लिया है। गुण और शक्ति में वे सब इस जगत के समवर्गीय प्राणियों से बहुत बढ़े-चढ़े बताये गये हैं। अकार-क्रम से उनके नाम इस प्रकार हैं—उच्चैश्रवा, ऐरावत, कामधेनु, गरुड़, तक्षक, वासुकि, शेषनाग आदि।

'उच्चैश्रवा' इन्द्र के घोड़े का नाम है। यह समुद्र से निकले चौदह रत्नों में था[५६]। इसके कान खड़े और मुँह सात थे। अष्टछाप-काव्य में इस घोड़े की चर्चा नहीं है; परंतु चौगान के खेल में श्रीकृष्ण और अन्य कुँवरों का उच्चैश्रवा-जैसे घोड़ों पर सवार होकर खेल खेलने निकलना बताया गया है[५७]।

श्वेत रंग का 'ऐरावत' हाथी देवराज इंद्र का वाहन है। यह समुद्र-मंथन से प्राप्त हुआ था और तब विष्णु ने जो पाँच रत्न इन्द्र को दिये थे उनमें 'ऐरावत' भी एक था[५८]। सूर ने आकाश-मार्ग से दौड़कर पृथ्वी की ओर तीव्र गति से

५४. 'सारस जोरी' किमि हरी मारि गयेउ किमि खगिग।
—पदमा, संजी० व्या०, ३४१।

५५. देखौ माई रूप-'सरोवर' साज्यौ।
'सारस' हंस मोर सुक स्रेनी बैजयंति सम तूल—सा० १०४६।

५६. अप्सरा, पारिजातक, धनुष, अस्व, गज स्वेत, ये पाँच सुरपतिहिं दीन्हें।
—सा० ८-८।

५७. निकसे सबै कुँवर असवारी, 'उच्चैस्रवा' के पोर—सा० ४१६६।

५८. अप्सरा, पारिजातक, धनुष, अस्व, गज स्वेत, ये पाँच सुरपतिहिं दीन्हें।
—सा० ८-८।

आते हुए 'ऐरावत' का उल्लेख किया है[५९]। उनके एक अन्य पद में भी 'ऐरावत' की चर्चा की गयी है[६०]। परमानंददास ने इंद्र द्वारा 'ऐरावत' आदि प्रस्तुत करके गंगाजल से कृष्ण का अभिषेक किये जाने की बात लिखी है[६१]।

'कामधेनु' या 'कामनाधेनु' भी 'सागर-मंथन' से प्राप्त चौदह रत्नों में थी जो सप्तर्षियों को दी गयी थी[६२]। सप्तर्षियों में परशुराम के पिता जमदग्नि भी थे; अतएव उनके यहाँ कामधेनु होने और सहस्रार्जुन द्वारा बलपूर्वक उसके छीन लिये जाने का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है[६३]। रंक सुदामा की निर्धनता दूर करने के लिए भी 'कामधेनु' दिये जाने का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में मिलता है[६४]। परमानंददास के अनुसार गोवर्द्धन-पूजा के अवसर पर पराजित होकर देवराज इंद्र 'कामधेनु' आदि दिव्य पशु प्रस्तुत करके गंगाजल से श्रीकृष्ण का अभिषेक करता है[६५]। भूलोक-वासियों की चर्चा में 'कामधेनु' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में दो स्थलों पर हुआ है। प्रथम, नंद जी जिन दो लाख गैयों का दान करते हैं वे 'कामधेनु' से किसी प्रकार कम नहीं हैं[६६]। दूसरा प्रसंग रुक्मिणी-विवाह का है जिसमें उसको शिशुपाल से ब्याहना वैसा ही असंगत बताया गया है जैसे 'कामधेनु', 'खर' को सौंपी जा रही हो[६७]।

५९. सुरगन सहित इन्द्र ब्रज आवत।
'धवल बरन ऐरावत' देख्यौ उतरि गगन तैं धरनि धँसावत—सा० ९७६।
६०. तब तिहिं समय आनि 'ऐरावत' ब्रजपति सौं कर जोरे—सा० ३३०३।
६१. 'ऐरावत' कामधेनु अरु गंगाजल आनी।
हरि को अभिषेक कियो जय जय सुर बानी—परमा० २८६।
६२. 'कामनाधेनु पुनि सप्तरिषि कौं दई'—सा० ८-८।
६३. क. फिरि 'नृप' जमदग्न्याश्रम आयौ, 'कामधेनु बल करिकैं धायौ।
—सा० ९-१३।
ख. कामधेनु जमदग्नि की लै गयौ नृपति छिनाइ—सा० ९-१४।
६४. रंक सुदामा कियौ अजाँची, दियौ अभय-पद ठाऊँ।
'कामधेनु चिंतामनि,' दीन्हौं कल्पवृच्छ तर छाऊँ—सा० १-१६४।
६५. ऐरावत 'कामधेनु' अरु गंगाजल आनी।
हरि को अभिषेक कियो जयजय सुरबानी—परमा० २८६।
६६. कामधेनु तैं नैंकु न हीनी, द्वै लख धेनु द्विजन कौं दीनी—सा० १०-३२।
६७. कामधेनु खर लेइ—सा० ४१८८।

'गरुड़', पक्षियों का राजा और विष्णु का वाहन माना गया है। अष्टछाप-काव्य में गज-ग्राह-युद्ध में गज की रक्षा करने के लिए गरुड़ छोड़कर विष्णु के नंगे पैर ही दौड़ पड़ने की बात अनेक पदों में कहकर करुणामय प्रभु की भक्त-वत्सलता सिद्ध की गयी है[६८]। 'गरुड़' सर्पों का शत्रु माना गया है जिसके भय से कालियनाग के यमुना में आकर छिपने की बात अष्टछाप-काव्य में कही गयी है[६९]। कालियदह में कालियनाग के छिपने का कारण यह था कि गरुड़ को वहाँ जाने पर प्राण से हाथ धोने का शाप सौभरि ऋषि द्वारा दिये जाने की बात वह जानता था[७०]। अतएव कृष्ण का कृपापात्र बन कर आज वह ऋषि का परम उपकार भी मानता है[७१]।

'तच्छक' या 'तक्षक', 'वासुकि' और शेषनाग' प्रसिद्ध पौराणिक नाग हैं। प्रथम अर्थात् 'तक्षक' का उल्लेख शृंगी ऋषि द्वारा परीक्षित को दिये गये शाप के प्रसंग में हुआ है[७२]। 'वासुकि' की चर्चा सागर-मंथन-प्रसंग में की गयी है

६८. छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरौ पवन के गवन तें अधिक धायौ।
—सा० १-५१।

६९. गरुड़ त्रास तैं जौ ह्याँ आयौ।
तौ प्रभु-चरन-कमल फन-फन-प्रति अपनैं सीस धरायौ।
× × ×
प्रभु-बाहन-डर भाजि बच्यौ अहि, नातरु लेतौ खाइ—सा० ५७३।

७०. तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम्।
निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोऽहरत् ॥९॥
मीनान् सुदुःखितान् दृष्ट्वा दीनान् मीनपतौ हते।
कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥१०॥
अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान् स खादति।
सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ॥११॥
तं कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः।
अवात्सीद् गरुडाद् भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥१२॥
—'श्रीमद्भागवत', दशम स्कंध, सप्तदशोऽध्यायः, श्लो० ९-१२।

७१. धनि रिषि साप दियो खगपति कौं, ह्याँ तब रह्यौ छपाई—सा० ५७३।

७२. दियो साप तिहिं तच्छक खाइ—सा० १-२९०।

जिसमें उसकी 'नेति' बनायी जाने की बात का उल्लेख मिलता है[७३]। शेषनाग का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में दो प्रसंगों में हुआ है। प्रथम में यह शेषशायी विष्णु की 'शैया' बताया गया है[७४]। दूसरे प्रसंग में मथुरा के बंदीगृह से निकलकर वसुदेव जब शिशु कृष्ण को गोकुल ले जाते हैं तब शेषनाग द्वारा उन पर अपने 'फन' फैलाकर उनकी रक्षा करते चलने की बात सूरदास ने एक पद में कही है[७५]।

समीक्षा—पशु-पक्षियों के उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अष्टछापी कवियों ने अनेक प्रकार के जीवों का उल्लेख उपमान-रूप में अथवा प्रकृति-वर्णन के साथ स्वतंत्र रूप से किया है। इन सभी प्रकार के वर्णनों के आधार पर तीन निष्कर्ष निकलते हैं। प्रथम, अष्टछापी कवियों ने पशु-पक्षियों के सामान्य जीवन को लेकर उनकी प्रवृत्तियों और प्रभावों का ज्ञान प्रदर्शित किया है। उदाहरण के लिए 'कपि गुंजा की नाईं' से बंदर का स्वभाव प्रकट होता है। इसी प्रकार भ्रमर के फूल-फूल पर मँडराने; काग, स्वान, खर तथा मरकट का अपने स्वभाव को न छोड़ने आदि का उल्लेख भी उनकी प्रकृति से संबंधित है।

दूसरे, मनुष्य जिस प्रकार पशु-पक्षियों का अपने जीवन में उपयोग करने लगा है, उसको ध्यान में रखकर अष्टछाप के कवियों ने अनेक उक्तियाँ कही हैं जैसे 'तेली के बृष लौं नित भटकत' उक्ति द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि तेली के कोल्हू में जो बैल जोता जाता है, उसका जीवन कितना कष्टमय होता है। इसी प्रकार मनुष्य भी भक्ति का सहारा न लेकर माया-जाल में फँसा रहकर दुख पाता है

तीसरे, अष्टछापी कवियों ने पशु-पक्षियों के पारस्परिक संबंधों, उन पर आनेवाले संकटों तथा उनकी प्रतिक्रियाओं से संबंधित कुछ बातें कही हैं; जैसे 'वृक ग्रसित अजा' आदि। पहले दोनों निष्कर्षों के अनुसार, अष्टछापी कवियों का

७३. बासुकि नेति अरु मंदराचल रई—सा० ८-८।

७४. सेसनाग के ऊपर पौढ़त तेतिक नाहिं बड़ाई—सा० १-२१५।

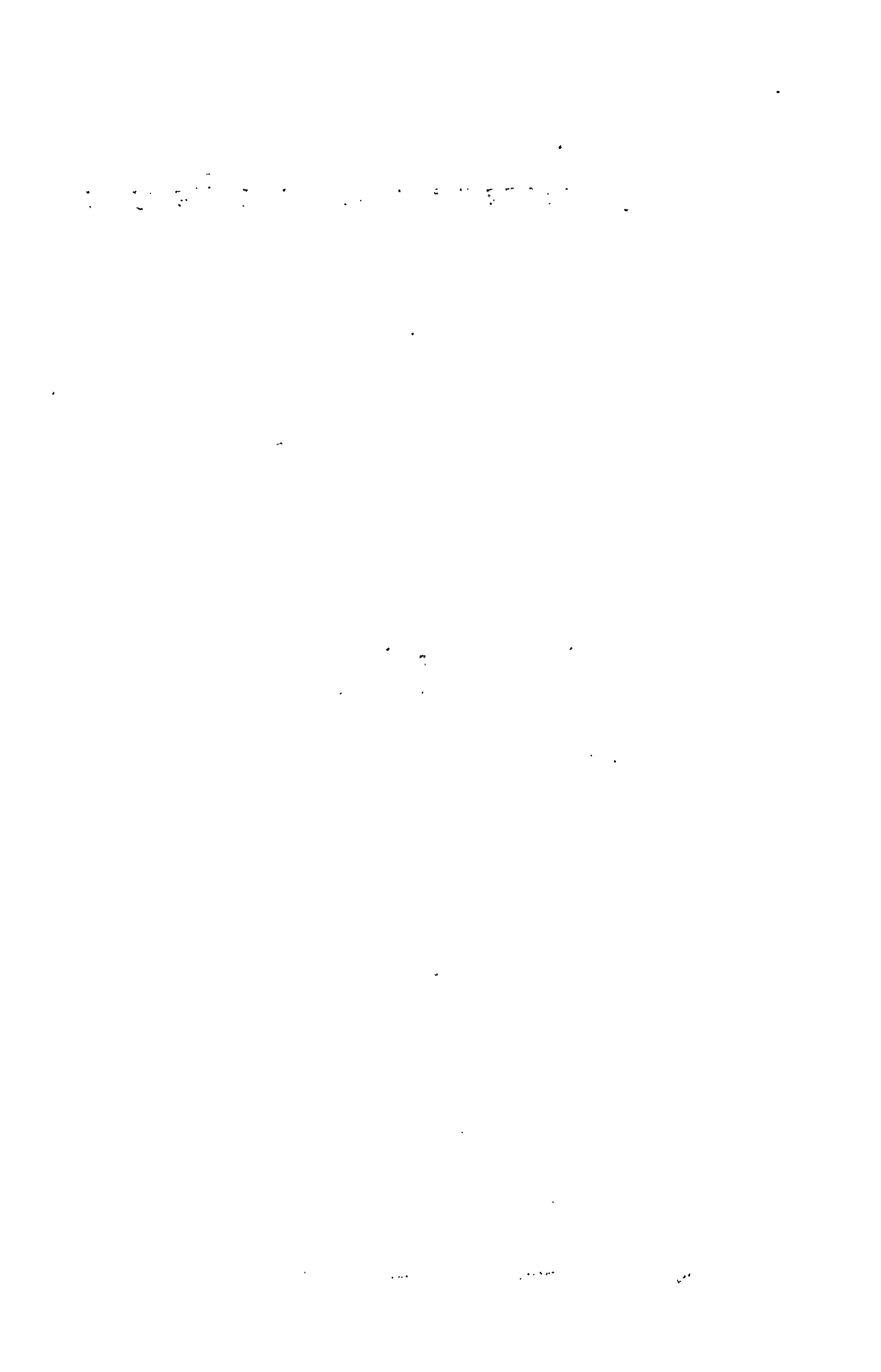
७५. क. सेष सहस फन ऊपर छायौ लै गोकुल कौं भागे—सा० १०-४।

ख. सीस धरि श्रीकृष्न लीने, चले गोकुल बाट।
सिंह आगैं, सेष पाछैं, नदी भई भरिपूरि—सा० १०-५।

जो ज्ञान प्रकट होता है, वह उतना अनुभवजन्य नहीं प्रतीत होता जितना तृतीय प्रकार की उक्तियों से ध्वनित है। प्रथम दोनों प्रकार की उक्तियों का आधार वे अनेक लोकोक्तियाँ हैं, जो मनुष्य-समाज में अनादि काल से प्रचलित रहकर हमारी जन-भाषा का स्थायी अंग बन गयी हैं। अतः इन कवियों ने उनका संग्रहमात्र किया है। इसके विपरीत, तृतीय प्रकार की उक्तियों से अष्टछापी कवियों की पर्यवेक्षण शक्ति तथा सूक्ष्मग्राहिणी प्रवृत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। इनसे उनकी प्रतिभा और सूझबूझ का परिचय मिलता है। किसी सीमा तक उनकी ये उक्तियाँ मौलिक कही जा सकती हैं।

---

३ सामान्य जीवन-चित्रण



चेतन-जगत के समस्त प्राणियों की प्रमुख आवश्यकताएँ केवल तीन हैं—आवास, भोजन और वस्त्र। इनके लिए मनुष्य को व्यवहार की अनेक सामान्य और विशेष वस्तुओं की आवश्यकता होती है। इनका प्रबंध हो जाने पर उसका ध्यान शृंगार के विविध प्रसाधनों की ओर जाता है। अतएव अष्टछाप-काव्य में चित्रित सामान्य जीवन का अध्ययन मुख्यतः सात उपशीर्षकों के अंतर्गत करना उपयुक्त होगा—१. आवास एवं अन्य विचरण-स्थान, २. खानपान, ३. वस्त्र, ४. आभूषण एवं शृंगार-प्रसाधन, ५. व्यवहार की सामान्य एवं विशेष वस्तुएँ, ६. धातु एवं खनिज पदार्थ और ७. वाहन।

१. आवास एवं अन्य विचरण स्थान—

सरल और छलकपटरहित प्रकृति[1] के ब्रजवासी गोवर्द्धन के निकटवर्ती वनों और उपवनों में बसे[2] गोकुल और वृंदावन के ग्रामों में रहते थे[3]। यद्यपि अन्य भारतीय ग्रामों की भाँति ही, उन ग्रामीणों के 'आवास' भी आर्थिक स्थिति के अनुसार विभिन्न स्तरों के होते होंगे, परंतु अष्टछापी कवियों ने सुदामा की 'मड़ैया'[4] या मिट्टी के कच्चे घर[5] के अतिरिक्त किसी निर्धन ग्रामीण की फूस की झोपड़ी या कच्चे घर की चर्चा नहीं की है। उन्होंने लंका और मथुरा के राजमहलों के अतिरिक्त दशरथ, नंदराय और वृषभानु के उन असाधारण और भव्य भवनों का उल्लेख किया है जहाँ उनके आराध्य और आराध्या निवास करते थे। इन वास-स्थानों को

१. नाहिं तुम्हारे घर को गाम, नाहिंब ताके बन कौ नाम।
तुम तो बन परबत के बासी, सुख पावें तहाँ रहैं ब्रजवासी—गोविं० ७०।

२.क. हम तुम कानन सैल निवासी नहिं काहूँ सों हेत—गोविं० ६७।
ख. ब्रजवासी कह जानहीं तामस को व्यवहार—सा० १६१८।
ग. तुम तो सूधे ब्रज के बासी, सुख पावें तहाँ रहैं ब्रजबासी—गोविं० ७०।

३.क. 'गोकुल' ग्राम सुहावनों 'वृन्दावन' सों ठौर—परमा० ३३४।
ख. ब्रज में एक बड़ो है ग्राम, 'गोकुल' कहियत जाकौ नाम—गोविं० ७०।

४. इहाँ हुती मेरी तनक 'मड़ैया'—सा० ४२३५।

५. कहा भयो मेरो 'गृह माटी' कौ—सा० ४२३६।

अष्टछापी कवियों ने 'अवास', 'आलय', 'गृह', 'घर', 'धाम', 'भवन', 'महल', 'मंदिर' आदि कहा है[६]। इनके द्वारों की चौखटों का निचला भाग 'देहली' कहा गया है जिसे पार करने में शिशु कृष्ण की कठिनाई का वर्णन अष्टछापी कवियों ने बड़ी रुचि से किया है[७]। उन भवनों के निर्माण में 'कनक' का उपयोग बहुत अधिक होना कहा गया है[८] यहाँ तक कि उनके आँगन तथा कमरों के गच भी सोने के होते थे जिनमें मणियाँ जड़ी रहती थीं। अष्टछापी कवियों ने नंद-भवन के मणिमय आँगन में बालकृष्ण को घुटनों चलते बताया है[९]। घरों की ऊँची छत को 'अटा' या 'अटारी' कहा गया है। परमानंददास ने 'अटा' पर चढ़कर कृष्ण के चंग उड़ाने का उल्लेख किया है[१०]। ऊँचे महलों में कँगूरे होते थे, जो देखने में बड़े सुन्दर लगते थे[११]। परमानंददास ने राम-जन्म के समय लंका में सिंधु काँपने और महलों के कंगूरों के गिरने का वर्णन किया है[१२]। घरों में झरोखे होते थे, जिनके द्वारा भीतर का व्यक्ति बाहर का दृश्य देख सकता था। इनका प्रयोग अधिकतर स्त्रियाँ

६.क. देखि 'अवास' लोग लोभ जिन उपजै—परमा० ४८६।
ख. मनिमय-भूमि नंद के 'आलय', बलि बलि जाऊँ तोतरे बोलनि—सा० १०-१२१।
ग. मंगलचार करौ 'गृह' मेरे, सँग के सखा बुलावो—परमा० ४३६।
घ. आजु 'गृह' नंदमहर के बधाई—सा० १०-३३।
ङ. नंदमहर 'घर' आजु बधाई—गोविं० ४।
च. अपने 'धाम' आई देखन को जुरि जुरि नवलकिसोरी—परमा० ३३२।
छ. सूनौ 'भवन', सिंहासन सूनौ, नाहीं दसरथ ताता—सा० ९-४६।
ज. भूलि 'भवन' जिनि जाहु नंद के निरखि छिड़ाइ जसोदा लैहे—परमा० ४११।
झ. बने माधौ के 'महल'—परमा० ७४६।
ञ. दसरथ कौसल्या कैकेई बैठे आय 'मंदिर' के द्वार—परमा० ३३६।
७.क. 'देहरि' चढ़त परत गिरि-गिरि, कर-पल्लव गहत जु मैया—सा० १०-३१।
ख. तिरपद भूमि मापी न आलस भयो, अब जो कठिन भयो 'देहरी' उलंघना। —परमा० ६२।
८. भले 'अवास रचे कंचन के' केसो कंस-निकंदन—परमा० ४६४।
९.क. 'मनिमय भूमि नंद के 'आलय', बलि बलि जाऊँ तोतरे बोलनि—सा० १०-१२१।
ख. 'मनिमय आँगन' नंदराय के बाल गोपाल तहाँ करें रिंगना—परमा० ६२।
१०. कान्ह 'अटा' पर चंग उड़ावत—परमा० ६२८।
११. कंचन कोट 'कँगूरनि' की छबि मानों बैठे मैन—सा० ३०२०।
१२. काँप्यो सिंधु 'कँगूरा ढरियो' लंका आगम जनायो—परमा० ३३७।

करती थीं। होली के पर्व पर स्त्रियों का इन्हीं के द्वारा पिचकारी से रंग फेंकना कहा गया है[13]। मेले या उत्सवों के अवसर पर वे छज्जों पर बैठकर 'झरोखे' से बाहरी दृश्य देखती थीं[14]।

कुछ गृहों में 'धरहरा' या 'धौरहर' होता था। यह खंभे की तरह का मकान का बहुत ऊँचा भाग होता था, जिस पर चढ़ने के लिए भीतर ही भीतर सीढ़ियाँ होती थीं। इन पर चढ़कर बाहर की ओर देखने से दृश्य सुन्दर दिखायी देता था[15]। धौरहर ऊँचा होने के कारण उसी प्रकार शीतल रहता था जैसे कैलास। ठंढक के लिए लोग 'बँगला' छवाते थे। चंदन से बने बँगले में कृष्ण के बैठने का उल्लेख परमानंददास ने किया है[16]। कुछ आवासों में धुजा, पताका आदि फहराने की बात अष्टछापी कवियों ने कही है[17]।

भवनों के साथ 'उपवन', 'बाग' अथवा 'फुलवारी' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है[18]। एक स्थान से दूसरे तक जाने के लिए चौड़े जन-पथों को अष्टछापी कवियों ने 'मार्ग' और 'पंथ';[19] एवं सँकरे को 'खोरि', 'गलियारा', 'गली', 'गैल', 'बीथी' आदि कहा है[20]। इसी प्रकार 'हाट-बाजार' की चर्चा भी अष्टछाप-

१३. बिचित्र चित्र 'झरोखनि' 'मोखनि' चलत कनक पिचकारी—छीत० ५६।
१४.क. कोउ महलनि पर कोउ 'छज्जनि' पर कुल लज्जा न करयौ—सा० ३०२५।
 ख. 'छाजें' बैठ 'झरोखे' झाँक री—परमा० काँक० २५२।
१५. चढ़ि 'धरहरा' झरोखा चितयो सखी लियो मन चोरि—परमा० काँक० २३४।
१६. 'चंदन को बँगला' अति सोभित बैठे तहाँ गोबरधनधारी—परमा०७३६।
१७. पजरत 'धुजा पताका' छत्र रथ मनिमय कनक अवास—सा० ६-८३।
१८.क. ब्रज जुवतिन 'उपवन' मैं पाए, लयौ उठाइ कंठ लपटानी—सा० १०-७८।
 ख. छाँड़ि नारि बिचारि पवनसुत लंक 'बाग' बसहीं—सा० ६-६१।
 ग. संध्या समय 'बाग' तें बिछुरी अर्धराति सुधि पैया—परमा० २५६।
 घ. हँसि हँसि हरि पर डारती, अरुन नैन 'फुलवारी'—सा० २८६४।
१९.क. गारी देत संक नहिं मानत आवत 'मारग' वेरी—परमा० १८६।
 ख. कबहुँक पंथ के तिनका दूर करन कौं धावत—परमा० ७२१।
२०.क. लरिका पाँच-सात सँग लीने निपट 'साँकरी खोरि'—परमा० ६२४।
 ख. द्वार द्वार मारग 'गरियारे' तोरन कंचन कलस धराये—परमा० ३४०।
 ग. तहाँ लै जाऊँ मदन मोहन पैं मैं देखी इक बंक 'गली'—परमा० ४३७।
 घ. बाँकी चितवन 'गैल' भुलानी—परमा० ७३१।

काव्य में मिलती है[२१]।

२. *खानपान*—

अष्टछाप-काव्य में 'खानपान' की चर्चा विस्तार के साथ की गयी है। विषय की स्पष्टता के लिए तत्संबंधी विवरण का अध्ययन पाँच उपशीर्षकों में करना उचित जान पड़ता है—क. भोजन के समय और पदार्थ, ख. घी और तेल, ग. मसाले, घ. पेय पदार्थ और ङ. तांबूल।

क. *भोजन के समय और पदार्थ*—अष्टछाप-काव्य में व्रजवासियों के चार समय के भोजनों का उल्लेख हुआ है—अ. कलेऊ, आ. मध्यकालीन भोजन, 'इ'. छाक और 'ई'. 'बियारी', 'ब्यारी' या 'ब्यालू'।

अ. *कलेऊ*—प्रातःकालीन जलपान को 'कलेवा' या 'कलेऊ' कहा गया है[२२]। वल्लभ-संप्रदाय में इसके लिए व्यवहृत 'मंगलाभोग' शब्द परमानंददास के एक पद में मिलता है[२३]। सूरदास ने कृष्ण के 'कलेवे' का विस्तृत वर्णन तीन-चार पदों में किया है। उनमें 'कलेऊ' के लिए जो ताजे पदार्थ, मिठाई, पकवान, फल, मेवा आदि प्रस्तुत किये गये हैं, अकारक्रम से वे इस प्रकार हैं—अँदरसे, आम, ऊखरस, किसमिस, केरा, खजूरी, खाझा, खारिक, खिर लाडू, खीरा, खुबानी, खुरमा, खोपरा, खोवा, गरी, गाल-मसूरी, गूझा, घृतपूरी, घेवर, चिउरा, चिरौंजी, छुहारे, जलेबी, तरबूजा, दधि, दधिबरा, दाख, दूध, दूधबरा, पचकौरी, पिराख, पिस्ता, प्योसर, फेनी, बादाम, मठरी, मधु, माखन, मालपूआ, मिठाई, मिसिरी, मोतीलाडू, रोटी, लाडू, श्रीफल, सक्करपारे, सफरी, साढ़ी, सीरा, सुहारी, सेव,

ङ. मानहुँ मदन मंडली राचे पुर बीथिन बिपिन बिहार—सा० २८५३।
च. बिहरत व्रज 'बीथिन' बृंदाबन गोपी जन मनुहारी—परमा० ७४२।
२१.क. गोकुल 'हाट-बजार' करत जु लुटावन रे—सा० १०-२८।
ख. दसरथ उठ 'बजार' पधारे सारी सुरंग बसायो—परमा० ३३७।
२२.क. बुन्दन झर लायो आँगन जहाँ करत 'कलेऊ' लाल—परमा० ६११।
ख. प्रात समै उठि मात रोहिनी बलदाऊ कों आनि जगावै।
उठो लाल तुम करो 'कलेऊ' कान्ह कुँवर तोहि टेरि बुलावै—चतु० १४०।
ग. आजु गोपाल 'कलेऊ' न कीनों—गोविं० २३२।
२३. उठत प्रात मात जसोदा 'मंगलभोग' देत दोऊ छोरा—परमा० ६१६।

हेसमि आदि[२४]। अन्य अष्टछापी कवियों ने कलेवे में मुख्य रूप से दही, दूध, मलाई, माखन, मिश्री, मेवा आदि होने की बात कही है[२५]। परमानंददास ने एक पद में 'घैया'[२६] का और दूसरे में 'मीसी की छोटी रोटी' माखन से खाने का उल्लेख किया है[२७]।

अ. *दोपहर का भोजन*—अष्टछापी कवियों में सूरदास ने इस समय के भोजन का वर्णन विस्तार से किया है। व्यंजनों, मिठाइयों और पकवानों के साथ-साथ इस समय के भोजन में तरह तरह की तरकारियों और फलों की भी उन्होंने चर्चा की है। उनके द्वारा गिनाये गये खाद्य पदार्थों की लम्बी सूची इस प्रकार है—अगस्त की फरी, अँचार, अँदरसा, अदरख, इँडहर, इमली की खटाई, उभकौरी, ककरी, कचनार, कचरी, कचौरी, कढ़ी, करवँदा, करील के फूल, करेला, कुनरू, केला, खाँड़ की खीर, खीचरी, खीरा, खोवा, गाल मसूरी, गोभा, घेवर, चने का साग, चिचींड़ा, चौराई, छौंछ, छुँगारी, जलेबी, टेटी, ढरहरी, तोरई, दही, निबुआ, निमोना, पकौरी, परवर, पाकर की कली, पानौरा, पापर, पूरी, पेठा, फाँगफरी, फेनी, बथुआ, बरा, बरी, बेसन-सालन, भाँटा-भरता, भात, माखन, मालपूआ, मुँगछी, रतालू, राइता, रामतोरई, रोटी, लाडू, लपसी, लुचुई, सरसों, सहिजना के फूल, सिखरन, सींगरी, सुहारी, सूरन, सेम, सोवा आदि[२८]।

२४. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद १८३, २११, २१२ और ८१०।
२५.क. लेहु ललन कछु करो कलेऊ अपने हाथ जिमाऊँगी।
'सीतल माखन' मेल 'मिस्री कर' सीरा लाल खवाऊँगी।
औट्यौ दूध सद्य धौरी को सीयरो करि करि प्याऊँगी—परमा० ६०८।
ख. उठो लाल तुम करो कलेऊ कान्ह कुँवर तोहि टेरि बुलावै।
'माखन मिस्री दही मलाई', माँट थार भरि संग चलावै।
जमुनोदक झारी भरि लावै, हस्त पखारत खात खवावै—चतु० १४०।
ग. आजु गोपाल कलेऊ न कीनों।
२६. बुन्दन झर लायो आँगन जहाँ करत कलेऊ दोऊ भैया।
× × ×
परमानन्द प्रभु जननी कहत बात प्यावत मथि मथि 'दूध की घैया'—परमा० ६११।
२७. द्वारे ठाढ़े ग्वाल-बाल करो हो कलेऊ लाल 'मीसी रोटी' छोटी माखन सों खाइये।
—परमा० ६१३।
२८. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद १२१३।

परमानंददास ने दोपहर के भोजन में 'षटरस व्यंजन' कंचन थाल में परोसे जाने की बात कही है[२९]। उनके 'लाल को 'मीठी खीर' बहुत प्रिय है[३०]। मधु, मेवा, पकवान, मिठाई, दूध, दही, घृत, ओदन आदि पदार्थ उन्होंने इस समय के भोजन[३१] में गिनाये हैं। अन्य अष्टछापी कवियों ने इस प्रकार की लंबी सूचियाँ प्रस्तुत करने में अधिक रुचि नहीं ली है।

इ. *छाक*—वन में गाय चरानेवाले ग्वाल-बालों के लिए दोपहर या तीसरे पहर भेजा जानेवाला भोजन 'छाक' कहलाता है जिसका वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने बड़ी रुचि से किया है। घर से 'छाक' लेकर जानेवाली प्रायः कोई 'स्त्री' ही कही गयी है[३२]। 'छाक' में माखन, दधि, मधु, मेवा, पकवान, मिष्टान्न, भात, शिखरन, टेटी, शाक, संधानो आदि पदार्थ भेजे जाने की बात अष्टछापी कवियों ने लिखी है[३३]। चतुर्भुजदास ने 'छाक' में 'छप्पन भोग' और 'छत्तीसों व्यंजन' होना बताया है[३४] और परमानंददास की यशोदा तो 'छाक' में इतना सामान भेज देतीं थी कि कभी कभी काँवर भर कर जाती थी[३५]। केवल कृष्ण के यहाँ से ही नहीं, सभी ग्वाल-बालों के यहाँ से 'छाक' आती थी और इस प्रकार खट्टे, मीठे, सलोने,

२९. भोजन करत हैं गोपाल।
'खट रस' धरे बनाय जसोदा साजे कंचन थाल—परमा० १११।
३०. लाल कों 'मीठी खीर' जो भावै।
बेला भरि भरि लावति जसोदा बूरो अधिक मिलावै—परमा० ११२।
३१. मधु, मेवा, पकवान मिठाई दूध दह्यो घृत ओद सों—परमा० ११३।
३२.क. प्रेम सहित 'लै चली छाक वह'—सा० १०७५।
ख. अरी छाकहारी चार-पाँच आवति मध्य ब्रजराज लला की—परमा० ६४२।
३३.क. सद माखन साजो दधि मीठो, मधु मेवा पकवान—सा० १०७४।
ख. लवनी दधि मिष्ठान्न जोरि कै जसुमति मों हाथ पठाई—सा० १०८४।
ग. 'पातनि' पे धरत भात, दधि सिखरन लिए हाथ।
× × ×
बिंजन सब भाँति भाँति, अनुपम कछु कहि न जात—छीत० ७७।
घ. टेंटी, साक, सँधानो, रोटी, गोरस, सरस, महेरी—कुंभन० १७५।
३४. तिन में बैठे छाक खात मदन रूप मंडली रची।
'छप्पन भोग' 'छत्तीसों ब्यंजन' आनि आगे थार सँची—चतु० १७०।
३५. 'काँवर द्वय भरि के छाक पठाई' नन्दरानी आप—परमा० ६४४।

सभी प्रकार के व्यंजन एकत्र हो जाते थे[३६]। यों तो संभवत: श्रद्धावश परमानंददास ने 'जगमगाते-कनक थालों' में 'छाक' भिजवायी है,[३७] पर अन्य कवियों ने वन में 'पनवारे',[३८] 'कमल-पत्र' या 'पलाश के दोनों'[३९] में, जाति-पाँति, धनी-निर्धन का सारा भेद-भाव भुलाकर[४०] एक दूसरे के हाथ से छीन कर 'छाक' खाने[४१] का उल्लेख किया है। यहाँ तक कि कभी कभी शाम हो जाती है, गैया इधर-उधर हो जाती हैं, फिर भी 'छाक' का सम्मिलित भोज चलता रहता है[४२]।

ई. *बियारी*—रात्रि का भोजन 'बियारी',[४३] 'ब्यारू'[४४] या 'बियारू'[४५] कहा गया है। सूरदास ने 'बियारी' के व्यंजनों की जो सूची दी है, वह इस प्रकार है—अँदरसा, अथानौ, अमिरती, इलायचीपाक, उरद की दाल, कढ़ी, करौंदा, काचरी, कूरबरी, केरा, कौरी, खजूरी, खरबूजा, खारिक, खाँड़ की खीर, खाजा, खूआ, गरी, गाल-मसूरी, गिंदौरी, गोभा, गुड़बरा, गोंदपाक, घेवर, चने की भाजी और दाल, चिंचीड़ा, चौराई, जलेबी, भोरी, तिनगरी, दाख, दूध, दूधबरा, निमोना, पतबरा, पिंड, पिंडारू, पिंडीक, पिठौरी, पूआ, पेठापाक, पोई, पौर, फुलौरी, फेनी, बथुआ, बदाम,

३६. घर घर तें आई छाक।
खाटे-मीठे और सलोने बिबिध भाँति के पाक—कुंभन० १७५।
३७. 'कनक थार' जगमगात बेलन की भाँति काँति, भरे नन्दरानी आप—परमा० ६४४।
३८. अर्जुन, तुम लेहु भइया, 'पनवारे' देहु डारि—कुंभन० १७६।
३९.क. 'कमल पत्र दोना पलास के' सब आगे धरि परुसत जात।
ग्वाल मंडली मध्य स्याम धन, सब मिलि भोजन रुचिकर खात—सा० १०८३।
ख. 'आने पात बनाये दोना' दिये सबन कों बाँट—परमा० ६४३।
४०. 'जाति-पाँति' सबकी हौं जानौं बाहर छाक मँगाई—सा० १-२४४।
४१. सखनि के मध्य छाक लेत कर छीने—सा० १०८५।
४२. जेंवत छाक गाइ बिसराई।
सखा श्रीदामा कहत सखनि सों, छाकहिं में तुम रहे भुलाई।
धेनु नहीं देखियत कहूँ नियरे, 'भोजन ही में साँझ कराई'—सा० १०८६।
४३. सूर-स्याम कछु करौ 'बियारी', पुनि राखौं पौढ़ाई—सा० ८४४।
४४.क. 'ब्यारू' कीजै मोहन राय—परमा० ७०५।
ख. 'ब्यारू' स्याम अरोगन लागे—चतु० २८३।
४५.क. चलो लाल 'बियारू' कीजै दोऊ भैया एक थारी—परमा० ७०८।
ख. गिरिधर लाल 'बियारू' कीजै—गोविंद० ३६३।

बनकौरा, बरी, बाटी, बेसन-दोने, बेसनपुरी, भात, भिंडी, मसूर की दाल, मिथौरि, मूँग की दाल, मूँग पकौरा, मूरा, मेथी, मैदा की पूरी, मोती लाडू, रोटी, लापसी, लाल्हा, लावनि-लाडू, लुचुई, लोनिका, सरसों, सीरा, सूरन, सेव और सोवा आदि[४६]। इनके अतिरिक्त 'हींग-हरद-मिर्च' आदि मसाले डाल कर अदरख, आँवरे और आँब के टुकड़े मिलाकर, तेल में छौंके और कपूर से सुवासित किये हुए अनेक प्रकार के सालनों की चर्चा भी सूरदास ने की है[४७]।

अन्य अष्टछापी कवियों ने अपने आराध्य को खुरमा, खाजा, पापर, फेनी, मधु, मिश्री, मेवा, लड़ुआ आदि के साथ दार, भात, कढ़ी भी 'ब्यारू' में[४८] खिलायी है। 'बियारी' के समय नींद के आलस्य में भरे सूरदास के बालक कृष्ण[४९] बार-बार जमुहाते हैं,[५०] तब माता मुख पखराकर पौढ़ाने की बात कहती है[५१]।

ख. *घी और तेल*—भोजन को स्वादिष्ट और पौष्टिक बनाने के लिए घी और तेल का उपयोग किया जाता है। खाने के उपयोग में आनेवाले मीठे और कड़ुये, दो प्रकार के तेलों की चर्चा अष्टछापी कवियों ने की है। सूरदास ने मीठे तेल[५२] में चने की भाजी तैयार करायी है तो परमानन्ददास ने 'करुए तेल'[५३] में

४६. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद० २१४, २२७ और ३६६।

४७. हींग, हरद मिर्च, छौंके तेले, अदरख और आँवरे मेले।
सालन सकल कपूर सुबासत, स्वाद लेत सुंदर हरि ग्रासत—सा० ३६६।

४८.क. ब्यारू कीजै मोहन राय।
'मधु मेवा पकवान मिठाई' बिंजन सरस बनाय।
दार भात और कढ़ी बरी की मिस्री पनो छनाय—परमा० ७०५।

ख. 'फेनी पापर खुरमा खाजा गुंजा मिस्री लड़ुआ' लीजै—परमा० ७०७।

ग. ब्यारू स्याम अरोगन लागे।
बहु 'मेवा पकवान मिठाई' ब्यंजन करे मधुर रस पागे।
'दार भात घृत कढ़ी सँधानौ,' रुचिकर मुख सों माँगे—चतु० २८३।

४९. आलस सों कर कौर उठावत, नैननि नींद झमकि रही भारी—सा० ८४६।

५०. बार-बार जमुहात सूर प्रभु—सा० ८४६।

५१. कछु-कछु खाइ अँचयो तब जम्हात जननी जाने।
उठहु लाल कहि मुख पखरायौ तुमको लै पौढ़ाऊँ—सा० ८४८।

५२. 'मीठे तेल' चना की भाजी—सा० ३६६।

५३. पापर 'करुए तेल' में तरे सँवार बनाय—परमा० २७२।

पापड़ तलवाये हैं। इन दोनों प्रकार के तेलों से घी या घृत अधिक पौष्टिक माना जाता है और इसका मूल्य भी अधिक होता है। इस कारण उच्च वर्गों में तेल की अपेक्षा घी का प्रचलन अधिक रहता है। सूरदास ने एक पद में इसी बात को ध्यान में रखकर कहा है कि जो तेल खाता है, वह घी का स्वाद क्या जानेगा;[५४] घी के सामने तेल को कैसे पसंद करेगा ?

ग. मसाले—भोजन को स्वादिष्ट बनाने के लिए 'मसालों' का उपयोग किया जाता है। अष्टछाप-काव्य में मसालों की चर्चा दो-तीन रूपों में हुई है। प्रथम 'दानलीला-प्रसंग' में उनकी सूची दी गयी है जिसकी चर्चा 'वाणिज्य-व्यवसाय' के अन्तर्गत आगे की जायगी। दूसरे, तरकारियों तथा अन्य व्यंजनों में पड़नेवाले 'मसालों' का उल्लेख 'भोजन-प्रसंग' में हुआ है। ऐसे मसालों में अजवाइन, इमली की खटाई, जीरा, मिर्च या म्रिच, राई, लोन या सेंधा, सोंठ, हरद या हरदि, हींग आदि मुख्य हैं[५५]। इनके अतिरिक्त सूरदास ने तरकारियों के साथ-साथ जल को 'कपूर' से सुवासित करने की बात लिखी है[५६]। दूध और पान में कपूर डालकर पीने-खाने की चर्चा भी अष्टछापी कवियों ने की है जिसके उदाहरण पीछे दिये जा चुके हैं। मृगमद और चंदन के साथ कपूर मिलाकर तिलक[५७] लगाने का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में हुआ है।

५४. सूरदास तिल-तेल सवादी, स्वाद कहा जाने घृत ही री—सा० १९२४।
५५.क. रोटी रुचिर कनक बेसन करि, 'अजवाइन', 'सेंधौ' मिलाइ धरि—सा० १२१३।
ख. भरता भँटा 'खटाई' दीनी—सा० १२१३।
ग. अरुइहिं 'इमली' दई खटाई—सा० १२१३।
घ. सिखरन दही भात 'जीरा' जु मिलायो—परमा० २७२।
ङ. मिलै 'मिरच' मेंटत चकचौंधी—सा० १२१३।
च. हींग लगाइ 'राइ' दधि साँध्यौ—सा० १२१३।
छ. भले बनाइ करेला कीने, 'लोन' लगाइ तुरत तरि लीने—सा० १२१३।
ज. प्यौसर अति सरस बनाई, तिहिं 'सोंठ' मिरिच रुचि नाई—सा० १०-१८३।
झ. कितिक भाँति केरा करि लीने, दै करवँदा 'हरदि' रँग भीने—सा० १२१३।
ञ. 'हींग, हरद, म्रिच' छौंके तेले—सा० ३९६।
५६.क. सालन सकल कपूर सुवासत—सा० ३९६।
ख. सीतल जल 'कपूर' रस अँचयो—सा० १२१३।
ग. अरगजा अंग लगाइ 'कपूर जल' अँचाए—गोविं० १६४।
५७. मथि मृगमद मलय 'कपूर' माथैं तिलक किए—सा० १०-२४।

मसालों की चर्चा का तीसरा रूप स्फुट प्रसंगों में मिलता है। ऐसे मसालों में 'धनियाँ',[५८] राई-लोन[५९] और हल्दी मुख्य हैं। इनमें एक स्थान पर तो 'हल्दी' अच्छत, दधि, दूब, फल-फूल आदि के साथ पूजन की शुभ वस्तुओं में गिनी गयी है[६०] और दूसरे स्थान पर दधि के साथ 'हरद' मिलाकर परस्पर छिड़कना[६१] कहा गया है। उबटन में तेल के साथ 'हरदी' मिलाने[६२] की भी चर्चा है। हल्दी और चूना मिलने से उसका रंग 'लाल' हो जाता है जो 'अनुराग' के रंग का स्मरण कराता है। गोपियों ने श्रीकृष्ण के प्रति अपनी वैसी ही गहरी प्रीति होने की बात कही है[६३]।

घ. *पेय पदार्थ*—प्राणी का सर्वप्रधान और सर्वप्रिय पेय है जल जो कपूर आदि से सुवासित होने पर रुचि से पिया जाता है[६४]। भारत जैसे गरम देश में शीतल जल सभी को प्रिय होता है। सूरदास के कृष्ण माता से वही माँगते हैं[६५]। कुछ देर रखा रह जाने पर 'शीतल जल' गरम हो जाता है और पीने में स्वादिष्ट नहीं लगता। इसीलिए परमानंददास की यशोदा ऐसे 'तातो' जल को पीने से लाल को रोकती और भोजन के समय ताजा जल भर लाने की बात कहती है[६६]। कूप,

५८. सूरदास तीनों नहिं उपजत 'धनियाँ' धान कुम्हाड़े—सा० ३६०४।
५९.क. जसुमति माय धाय उर लीन्हों 'राई-लोन' उतारो—सा० ४५७।
ख. सूरदास प्रभु हमहिं निदरि दाढ़े पर 'लोन' लगावत—सा० ३६३६।
ग. 'राई-लोन' उतारि बहु न्यौछावर कीन्हौ—परमा० २७२।
६०. दधि-दूब-'हरद' फल-फूल पान, कर कनक थार तिय करति गान—सा० ९-१६६।
६१.क. कनक को माट लाइ, 'हरद - दही मिलाइ' छिरकैं परस्पर छल बल धाइ कै।
—सा० १०-३१
ख. 'हरद' दूब दधि माखन छिरकैं मच्यो भदैया फाग—परमा० ५।
६२. 'हरदी' तेल सुगंध सुबासित लालै उबटि न्हवावै—परमा० १२।
६३. मानति नहीं लोक-मरजादा हरि कैं रंग मजी।
सूर स्याम कौं मिलि 'चूनौ हरदी' ज्यौं रंग रजी—सा० १६३१।
६४. 'सीतल जल कपूर' रस अँचयौ—सा० १२१३।
६५. कान्ह कह्यौ हौं मातु अघानौ, अब मोंकों 'सीतल जल' आनौ—सा० ३९६।
६६. लाडिले यह जल जिनहि पियो।
× × × ×
जब आरोगोगे भरि लाऊँ तातो जल दियो डारि—परमा० ६८०।

जमुना और गंगा के जलों की चर्चा अष्टछाप-काव्य में हुई है। इनमें 'गंगाजल' सर्वश्रेष्ठ है जिसको छोड़कर, जल के लिए उसी के तीर पर रहनेवाले प्यासे का 'कूप' खनाना सूरदास को सर्वथा मूर्खता का काम जान पड़ता है[६७]। वृन्दावन-वासियों के लिए जमुना-जल पीने की बात भी उन्होंने कही है[६८] जो नितान्त स्वाभाविक है।

दूसरा पेय पदार्थ है दूध। अष्टछाप के परम आराध्य जिन लोगों के बीच पले थे, गाय पालना ही उनका मुख्य कार्य था; इसलिए 'दूध' उनका प्रिय पेय होना ही चाहिए; क्योंकि वह उन्हें जल की भाँति सुलभ भी था। यों तो अष्टछापी कवियों ने प्रात:कालीन भोजन के साथ 'सद्य' या ताजा और अन्य भोजनों के साथ 'अधावट' 'दूध' पीने की बात कही है, परंतु 'बियारी' के पश्चात् अच्छी तरह औटाया हुआ गरम गरम दूध फूँक मारकर अपने आराध्य को पिलाये जाने की चर्चा उन्होंने बड़ी रुचि से की है[६९]।

तीसरा पेय 'मधु' कहा जा सकता है; क्योंकि 'रामायण-काल' में इसकी गणना 'पेयों'[७०] में की जाती थी। नंददास और गोविंदस्वामी ने 'मधु-पान' का उल्लेख विशेष रूप से किया है[७१]।

'मदिरा', 'वारुणी' या 'सुरा' की गणना 'मादक पेयों' में है जिसका पान कुछ वर्गों में सदा से प्रचलित रहा है[७२]। सामान्य वर्ग यद्यपि विशेष अवसरों पर उसका पान करता है, तथापि साधारणतया उसके लिए मदिरा-पान वर्जित रहा है।

६७.क. परम गंग को छाँड़ि पियासौ दुरमति कूप खनावै—सा० १-१६८।
  ख. बसत सुरसरि तीर मंदमति कूप खनावै—सा० २-६।
६८. जमुना जल राख्यो भारी भरि—सा० ३६६।
६९.क. आछौ दूध ओटि धौरी की लै आई रोहिनि महतारी—सा० ८४५।
  ख. फूँकि फूँकि जननी पय प्यावति—सा० ८४६।
  ग. दूध पियौ मनमोहन प्यारे—परमा० ७११।
७०. 'रामायणकालीन संस्कृति', पृ० ८८।
७१.क. तुम कियौ 'मधुपान' घूमत—नंद०, परि०, ६६।
  ख. तुम कीनो 'मधुपान' मोहि तो तुम्हारो ध्यान—गोविं० २५३।
७२. रामायण-काल में भी वारुणी पी जाती थी—'रामायणकालीन संस्कृति', पृ० ८६।

नंददास ने 'द्विजवर' के लिए सुरापान करने के बाद पछताने की बात कही है[७३] जिससे स्पष्ट है कि उस वर्ग के लिए मदिरा-सेवन वर्जित रहा है। सूरदास ने सुरापान किये जानेवाले स्थान को कलियुग का वास-स्थान बताया है[७४]। विशेष पर्वोत्सवों पर आनंदातिरेक में 'वारुणी' आदि का थोड़ा-बहुत प्रयोग सभी वर्ग के लोग करते हैं। परमानंददास ने 'होली' पर बलराम के वारुणी पीने की बात कही है जिससे उनके नैन 'रसमसे', कच ढीले, पाग लटपटी और भौंहें चढ़ी-चढ़ी हो जाती हैं[७५]। सूरदास ने निशाचरों को सदा मदपान करनेवाला बताया है[७६]।

नशीले 'पेयों' में 'विजया' भी है जिसको पीकर ग्वालिनि के 'बौंरी' हो जाने की बात परमानंददास ने लिखी है[७७]।

ङ. *तांबूल*—प्रतिदिन के चारों भोजनों—कलेऊ, मध्याह्न का भोजन, छाक, और बियारी—के अंत में कपूर और कस्तूरी से सुवासित 'तमोल' या 'पान' दिये जाने की बात सभी अष्टछापी कवियों ने लिखी है[७८]। पुराने पीले पान अधिक

७३. करनि मीड़ पछितात हैं ऐसे, सुरापान करि द्विजवर जैसे—नंद०, दशम०, पृ० ३११।

७४. कही हरि-बिमुखऽरु बेस्या जहाँ, 'सुरापान', बधिकनि-ग्रह तहाँ।
जूआ खेलत जहाँ जुआरी, ये पाँचौं हैं ठौर तुम्हारी—सा० १-२६०।

७५. हो हो होरी हलधर आवै।

× × ×

पियै 'बारुनी' 'मन संकरषन' नैन रसमसे कच कछु ढीले।
'भौंह चढ़ी चढ़ी' सिर पाग लटपटी बचन गँभीर अधर गीले—परमा० १०१।

७६. नाना रूप निसाचर अद्भुत सदा करत मद-पान—सा० ६-७५।

७७. ग्वालिनि बीच ठाढ़ी नंद की पौरी।
बेर बेर इति उत फिरि आवति बिजिया खाय भई बौरी—परमा० ४०३।

७८.क. तब बीरी तनक मुख नायौ, अति लाल अधर ह्वै आयौ—सा० १०-१८३।
ख. तब 'तमोल' रचि तुमहिं खवावौं—सा० १०-२११।
ग. उज्ज्वल 'पान' कपूर कस्तूरी, आरोगत मुख की छबि रूरी—सा० ३९६।
घ. पान मुख 'बीरी' राची हरि के रंग सुरंगे—परमा० ६७६।
ङ. 'बीरी' देत बनाय बनाय—परमा० ६७७।
च. परमानंददास को ठाकुर हँसि दीनौ मुख 'बीरा'—परमा० ७१२।
छ. 'बीरी' सुबल स्याम को देत—चतु० १७१।
ज. मुख पखारि 'बीरी' कर लीनी रुचि सों जुगल बिहारी—छीत० ७८।

स्वादिष्ट होते हैं। सूरदास ने एक पद में अपने आराध्य के लिए पुराने पानों के बीड़े लगवाये हैं[७९]। 'पान' या 'नागबेलि' चबाती मदमाती ग्वालिनि की भी चर्चा उन्होंने की है[८०]। 'प्रसाद' में पान का 'बीड़ा' दिये जाने का उल्लेख परमानंद दास ने किया है[८१]।

अष्टछाप-काव्य में 'पान' या 'तँबोल' का उल्लेख दो रूपों में और हुआ है। प्रथम रूप में उसकी गणना दूब, दधि, रोचन आदि पूजन-सामग्री के साथ की गयी है[८२] और द्वितीय रूप में 'पान का बीरा' लेकर किसी महत्वपूर्ण कार्य करने का दायित्व लेना समझा जाता है। राम के सेवक हनुमान सीता की खोज कर लाने का दायित्व लेते समय 'तँबोर' लेते हैं[८३]। कंस भी कृष्ण को मारने का 'बीड़ा' सकटासुर को देता है[८४]।

समीक्षा—

दिन के प्रत्येक भोजन में खाद्य पदार्थों की जो विविधता अष्टछापी कवियों के उक्त वर्णन से ज्ञात होती है उससे स्पष्ट है कि केवल संपन्न व्यक्तियों के लिए ही उनका प्रबंध करना संभव रहा होगा। अष्टछापी कवि स्वयं संपन्न नहीं थे और न उनको संपन्नता की कामना ही थी; अतएव अपने परमाराध्य के लिए छप्पन प्रकार के व्यंजनों को प्रस्तुत करने के मूल में उनकी प्रेममयी भावना ही थी। पुष्टिमार्गीय सेवा में 'छप्पन-भोग' का महत्व होने से भी इस प्रकार के वर्णनों के लिए उनको

७८. अँचवन करिकें राइ कों 'बीरी' देति सखि इक भींजे रुचि पवन—गोविं० २६४।

७९. 'पीरे पान पुराने बीरा', खात भई दुति दाँतनि हीरा।
मृगमद-कन कपूर कर लीने, बाँटि बाँटि ग्वालनि कों दीने—सा० १२१३।

८०. 'नागवेलि' चाबतिं फिरै मदमाती हो—सा० २८६२।

८१. लै राधे मोहन पठयौ है यह 'प्रसाद को बीरा'—परमा० ३६०।

८२. धरि 'तमोर' दूब दधि रोचन हरषि जसोदा ल्याई—सा० ६६६।

८३. लियौ बुलाइ मुदित चित ह्वै कै, कह्यौ, 'तँबोलहिं' लेहु।
ल्यावहु जाइ जनक-तनया-सुधि, रघुपति कौं सुख देहु।
× × × ×
'लियौ तँबोल माथ धरि हनुमत', कियौ चतुरगुन गात—सा० ६-७४।

८४. कंस नृपति ने सकट बुलायौ लै करि 'बीरा' दीन्हौं—सारा० ४२४।

प्रेरणा मिली होगी। जो हो, ऐसे उल्लेखों से यह तो स्पष्ट होता ही है कि वल्लभ-संप्रदायी मंदिरों की आर्थिक स्थिति बहुत उत्तम थी, जहाँ भोजनों का राजसी प्रबंध सहज ही किया जा सकता था। आज भी कुछ मंदिरों में उस परंपरा का निर्वाह बड़े उल्लास से किया जाता है। अष्टछापी कवियों का तत्संबंधी वर्णन निस्संदेह उनको इस बीच में बराबर प्रोत्साहित करता रहा होगा। प्रतिदिन के सामान्य और पर्वोत्सवों के विशेष भोजन-आयोजनों में जिस प्रकार का अंतर जनसाधारण के घर में देखा जाता है, वैसा ही आयोजन इन मंदिरों में भी रहता है। सूरदास आदि ने जो सूचियाँ प्रस्तुत की हैं, वे विशेष आयोजनों की ही जान पड़ती हैं, जिनके आधार पर यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि अष्टछाप के आराध्य के भोजन का प्रतिदिन किया जानेवाला प्रबंध भी असाधारण ही रहा होगा और भक्तों की श्रद्धा-भावना वैसा करके ही सदैव संतुष्ट होती रही है।

३. वस्त्र—

आवास और भोजन की प्रारंभिक आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् मानव को शरीर-रक्षा के लिए 'वस्त्र' चाहिए जो ऋतु, स्थान और पद या स्थिति के अनुकूल हों। दैनिक वस्त्रों के अतिरिक्त पर्वोत्सवों या संस्कारों के शुभ और हर्ष के अवसरों पर विशेष रूप से सुंदर और आकर्षक वस्त्र पहनने के सुख का अनुभव भी मानव-समाज सहस्रों वर्षों से करता आया है। अष्टछाप-काव्य में अपने परमाराध्य और आराध्या के तो सामान्य और विशेष, दोनों अवसरों के वस्त्रों की चर्चा बड़ी रुचि से की गयी है; शेष पात्रों के वस्त्रों में दीन सुदामा के 'कुचील चीर' या 'जीर्न बसन'[८५] और साधुओं के 'कंथा'[८६] की तरह ही उन व्रजवासियों के वस्त्रों की चर्चा भी बहुत चलते ढंग से की गयी है जिनके बीच में श्रीकृष्ण पले थे।

८५.क. वेई 'चीर कुचील' वहै बिधि—सा० ४२३४।
ख. कहिए कंत कौन बिधि परसे 'बसन कुचील' छीन अति गाता—सा० ४२४०।
ग. छीन अंग 'जीन बसन' दीन मुख निहारै—सा० ४२४४।
८६.क. सीस सेली कंस मुद्रा कनक बीरी बीर, बिरह भस्म चढ़ाइ बैठी, सहज 'कंथा' चीर।
—सा० वें०, पृ० ३१२६।
ख. 'कंथा' पहिरि बिभूति लगाऊँ जटा बँधाऊँ केस—सा० वें०, पृ० २७५४।

सूती, रेशमी और ऊनी वस्त्रों में प्रथम दो का ही उल्लेख अष्टछाप-काव्य में अधिक है। 'ऊनी' वस्त्रों में ग्वाल-बालों की तरह कृष्ण के भी 'कंबर', 'कमरी' या 'कामरि'[८७] का उल्लेख कई पदों में मिलता है, जिसके एक एक रोम पर श्रीकृष्ण ने चीर-पटंबर तक वारने की बात कहकर मोटे वस्त्र की महिमा बतायी है[८८]।

वस्त्र के लिए अष्टछाप-काव्य में 'अंबर', 'चीर', 'पट', 'पटंबर' या 'पाटंबर', 'बसन', 'वस्त्र' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है[८९]। बिना धुले हुए कपड़े को 'कोरा कापरा'[९०] कहा गया है। जिन सूती कपड़ों के वस्त्र अष्टछाप-काल में प्रसिद्ध थे, उनमें 'तनसुख', 'ताफता', 'खासा' आदि[९१] मुख्य हैं। दक्षिण के 'चीर'

८७.क. कान्ह बाँधे 'कामरिया' कारी, लकुट लिये कर घेरै हो—सा० ४५२।
ख. काँधे 'कमरिया' हाथ लकुटिया, बिहरत बछरनि साथ—सा० ४८७।
ग. बन बन गाय चरावत डोलत काँधे 'कमरिया' राजै—सारा० ७४१।
घ. देहु कान्ह ! काँधे को कंबर—कुंभन० ९६।
८८. या 'कमरी' के एक रोम पर वारौं चीर-पटंबर—१५१५।
८९.क. मनि मानिक पाटंबर 'अंबर' लेत न बनत बिभूत—सा० १०-३६।
ख. मनि मानिक के भूषन 'अंबर' जाचक जन लुटायो है—परमा० ४।
ग. जल तैं निकसि आइ तट देख्यौ, भूषन 'चीर' तहाँ कछु नाहीं—सा० ७८५।
घ. ब्रजजन देत बिबिध 'पट' भूखन फूले अंग न समाई—गोविं० ४।
ङ. हीरा रतन पटंबर हमकौं दीन्हें ब्रज के नाथ—सा० १०-३८।
च. पाट 'पटंबर' खासा झीनों जैसौ जाहिं मन भायौ—परमा० ३३७।
छ. दै दै कनिक पाटंबर भूखन ग्वालि सबै पहिराई—परमा० २३।
ज. नाना 'बसन' अनूप—सा० १०-३८।
झ. घर घर तें सुंदरि चलीं सजि भूषन 'बसन' सिंगारि—गोविं १२।
ञ. संपति देहु, लेहुँ नहिं एकौ, अन्न 'बस्त्र' किहिं काज—सा० ९-३६।
९०. काढ़ौ कोरे कापरा, काढ़ौ घी के भौन—सा० १०-४०।
९१.क. ह्याँ हैं तरल तरयौना काकैं, अरु 'तनसुख' की सारी—सा० ३८१७।
ख. 'तनसुख' स्वेत सुदेस अंस पर बहुत अरगजा भीनी—परमा० ७१५।
ग. 'तनसुख' सारी पहिरि झीनी अति मधुर सुर बीन बजावै—गोविं० २०२।
घ. गादी सुरंग 'ताफता' सुंदर लरे बाँह छबि न्यारी—परमा० ७४२।
ङ. कुलह सुरंग सिर 'ताफता' की लाल झगुली पीत सुदेस—गोविं० १८।
च. पीत ताफता कौ झगुला बन्यो है—गोविं० ५३६।

का भी उल्लेख सूरदास और गोविंदस्वामी ने किया है[१२]। अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित वस्त्रों का अध्ययन करने के लिए उनको, मुख्य रूप से, चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—बालकों, पुरुषों, बालिकाओं और स्त्रियों के वस्त्र।

क. बालकों के वस्त्र—अष्टछाप-काव्य के अनुसार 'कुलह', 'कुलही' या 'कुलहिया', 'चौतनिया', 'चौतनी', 'टिपारा' या 'टिपारो' और 'पाग', 'पगा', 'पगिया' या 'पागरी' आदि बालक सिर पर पहनते थे[१३]। अष्टछाप के प्रायः सभी कवियों ने बालकों के अन्य प्रमुख वस्त्रों में उपरैना,[१४] कछनी या काछनी,[१५]

छ. पिछौरा 'खासा' को कटि बाँधे—परमा० ५६२।

ज. पाट-पटंबर 'खासा' झीनों—परमा० ३३७।

६२.क. 'दच्छिन चीर' तिपाड़ को लहगा, पहिरि बिबिध पट मोलनि महँगा।
—सा० २६०१।

ख. दिव्य 'चीर पहिरे दच्छिन कों—गोविं० २८०।

६३.क. 'कुलह' सूत फूलन भरी सुभर—चतु० १८६।

ख. 'कुलही' लसत सिर स्याम सुन्दर कैं, बहु बिधि सुरँग बनाई—सा० १०-१०८।

ग. सेत कुलही सीस राजति सोभित घु घरे बाल—गोविं० १५।

घ. स्याम बरन पर पीत झँगुलिया, सीस 'कुलहिया' चौतनियाँ—सा० १०-१३२।

ङ. तन झँगुली सिर लाल 'चौतनी'—सा० १०-८६।

च. माथे अमल बरन कौ टिपारौ तन चंदन कौ खौरा—परमा० काँक० ४२६।

छ. माथे कनक बरन कौ 'टिपारो' ओढ़े पीत पिछौरा—परमा० ६२०।

ज. रोकि रहत गहि गली साँकरी टेढ़ी बाँधत पाग—सा० १०-३२८।

झ. 'पाग' सुरंगी कुंकुम रंगी पेच रतन के झलकै—परमा० काँक० ३३।

ञ. नाना बिधि सिंगार 'पाग' जरकसी बागो पहरन छंद—परमा० २०८।

ट. तिपेची 'पाग' टेढ़ी सोहति स्याम धारी—चतु० १८८।

ठ. कछु न कहि परत तब जबहिं फिरि हेरि कै, पेंच दै छबीली 'पगिया' सँवारी।
—सा० ३०६०।

ड. बलि कुंतल बलि 'पाग लटपटी', बलि कपोल, बलि उर बनमाल—सा० १३७१।

ढ. 'चुनरी की पाग' चुनरी पिछौरा कटि—चतु० ३६५।

६४.क. सिर पर मुकुट, पीत उपरैना, भृगु-पद उर भुज चारि धरे—सा० १०-८।

ख. ओढ़े लाल उपरैनी झीनी—परमा० काँक० ५४३।

६५.क. खेलत हरि निकसे ब्रज खोरी, कटि कछनी पीताम्बर बाँधे—सा० ६३४।

चोलना,[९६] झगा, झगुलि या झगुलिया[९७] जो सादा या 'कंचन तगा'[९८] से बना होता था, तनिया,[९९] निचोल,[१००] पटुका,[१] पामरी,[२] पिछौरा या पिछौरी,[३] पितंबर या पीतांबर,[४] बागा या बागे,[५] सूथन[६] आदि का उल्लेख हुआ है।

ख. पुरुषों के वस्त्र—पुरुषों के वस्त्रों में मुख्य रूप से 'धोती'[७] और 'पिछौरा'[८] का वर्णन अष्टछाप-काव्य में मिलता है। पटुका, पीतांबर आदि पुरुषों के अन्य वस्त्रों का उल्लेख बालकों के वस्त्रों के प्रसंग में हो चुका है।

ख. लाल 'काछनी' काछैं—सा० २८२६।
ग. 'काछनी' कटि अति सुदेस लाल अंबर सोहै—गोविं० १८७।
९६.क. पीत 'चोलना' स्याम-कटि सोभित—कुंभन० १०।
ख. स्याम पाग पर स्वेत 'चोलना' छूटे बंद सुहावै—नंद०, पदा०, पृ० ३३१।
ग. सूथन लाल अरु सेत 'चोलना' कुल्है जरकसी अति मन भावत—गोविं० ५१।
९७.क. लाल की बधाई पाऊँ लाल को 'झगा'—सा० १०-३६।
ख. पीत चोलना स्याम कटि सोभित पहिरें पीत 'झँगुलिया' सुदेस—कुंभन० १०।
ग. मोहन पीत 'झँगुलिया' सोहै—परमा० ६०।
घ. पीत 'झँगुलिया' लाल तनियाँ—गोविं० १५।
९८. प्रफुलित ह्वै कै आनि, दीनी है जसोदा रानि झीनीये झगुलि तामैं 'कंचनतगा'।
—सा० १०-३६।
९९. पीत झगुली लाल 'तनियाँ' कंठ श्री उरमाल—गोविं० १५।
१००.क. सिर चौतनी डिठौना दीन्हौ, आँखि आँजि पहिराइ 'निचोल'—सा० १०-६५।
ख. नील 'निचोल' पहिरि, तजि नूपुर समै जोग्य सजु सुंज—कुंभन० २५५।
१. कंठसिरी बनी लाल 'पटुका' कटि छोरनि छबि—चतु० २८७।
२. ओढ़े पीरी 'पामरी' पहिरे लाल निचोल—सा० १४५७।
३.क. सुरख चुनरिया भिजोई तेरौ भीज्यो 'पिछौरा'—चतु० २५।
ख. पहिलो दाव परयौ स्यामा कौ पीत 'पिछौरी' हारी—परमा० ६३३।
४.क. पीतांबर कटि-तट छबि अद्भुत—सा० ६२५।
ख. मोर-मुकुट पीतांबर काछे—सा० १५०२।
५.क. माथै कै चढ़ाइ लीनौ लाल कौ 'बगा'—सा० १०-३६।
ख. 'बागे' चीरे बनाइ, भूषन पहिरावौ—सा० १०-६५।
६ 'सूथन' लाल अरु सेत चोलना कुल्है जरकसी अति मन भावत—सा० १०-४४।
७.क. यह कहि नंद गए जमुना-तट, लै 'धोती' झारी बिधि-कर्मट—सा० १०-४४।
ख. अब सुनियत है 'धोती' पहिरे, चढ़े खराऊँ न्हात—सा० ३८२७।
८.क. कटि तट पीत पिछौरा बाँधे, काकपच्छ धरे सीस—सा० ६-२०।

ग. *बालिकाओं के वस्त्र*—अष्टछापी कवियों ने व्रज की किसी बालिका के वस्त्रों की चर्चा नहीं की है। परमानंददास, चतुर्भुजदास, गोविंदस्वामी आदि जिन कवियों ने राधा के जन्मोत्सव, 'पलना' आदि का वर्णन किया है, वे भी वस्त्रों के प्रसंग में मौन रहे हैं। सूरदास ने कृष्ण से बालिका राधा का नहीं, किशोरी राधा का परिचय कराया है। उस अवस्था में राधा के केवल दो वस्त्रों का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में मिलता है। प्रथम है 'फरिया' और द्वितीय है 'चूनर' या 'चूनरिया'। 'फरिया' से आशय कहीं 'लहँगे' से लिया जाता है और कहीं 'ओढ़नी' से[९]। सूरदास ने 'फरिया' का उल्लेख 'किशोरी राधा' के छोटे लहँगे के अर्थ में ही किया जान पड़ता है[१०]। किशोरियों के 'सूथन' और उसके 'नाराबंद' का उल्लेख भी सूरदास ने किया है[११]। बालिकाओं के ओढ़ने के वस्त्रों में 'उढ़निया' या 'ओढ़नी'[१२] का उल्लेख तो कम हुआ है और 'चुनरिया', 'चूनरि' या 'चूनरो' का अधिक[१३]।

घ. *स्त्रियों के वस्त्र*—स्त्रियों के प्रमुख वस्त्र तीन हैं—लँहगा या सारी, कंचुकी और ओढ़नी जिनके अनेक प्रकारों का उल्लेख अष्टछापी कवियों ने किया है। 'लहँगा' साधारण रूप में वर्णित है और 'तिपाड़' का भी बताया गया है[१४]।

ख. पिछौरा खासा को कटि बाँध्यौ—परमा० ६३४।
९. पद्मा०, संजी० व्या०, ३२६-२।
१०.क. सारी चीरि नई 'फरिया' लै अपने हाथ बनाई—सा० ७०४।
ख. तिल चाँवरी गोद भरि दीन्ही 'फरिया' दई फारि नव सारी—सा० ७०८।
ग. नील बसन 'फरिया' कटि पहिरे, बेनी पीठ रुलति झकझोरी—सा० १०५७।
११. 'सूथन' जंघन बाँधि 'नाराबँद' तिरनी पर छबि भारी—सा० १०५४।
१२.क. पीत 'उढ़निया' कहाँ बिसारी—सा० ६६३।
ख. 'ओढ़नि' आनि दिखाई मोकों—सा० ६६५।
१३.क. सुरख 'चुनरिया' भिजोई तेरो भीज्यो पिछोरा—चतु० २५।
ख. नीलांबर, पाटंबर, सारी, सेत पीत 'चुनरी' अरुनाए—सा० ७८४।
ग. आजु तेरी 'चुनरी' अधिक बनी—परमा० ३७६।
१४.क. दच्छिन चीर 'तिपाड़ को लहँगा', पहिरि बिबिध पट मोलनि महँगा।
—सा० २६०१।
ख. 'लहँगा' पीत हरे और राते सारी स्वेत सुहाई—परमा० ६१६।
ग. तेरी सौंधे सनी अँगिया उरजनि पर अरु कटि 'लहँगा' लाल—चतु० ७६।

'सारी' का, जिसे 'सट' या 'साटक'[१५] भी कहते हैं, उल्लेख भी सामान्य और विशेष, दोनों रूपों में हुआ है;[१६] विशेष रूप में 'सुरँग'[१७] और 'पँचरँग' सारी[१८] की चर्चा मिलती है। चतुर्भुजदास ने 'चुनरी की सारी'[१९] और 'तनसुख की सारी'[२०] का उल्लेख किया है तथा सूरदास, परमानंददास तथा कुंभनदास ने 'झूमक सारी'[२१] का। रेशमी साड़ी को सूरदास ने 'पटोरी'[२२] कहा है। सूरदास और परमानंददास की व्रजबालाएँ लाल किनारे या 'ढिगनि' की सारी[२३] पहनती हैं। 'सारी', 'चुनरी', 'दुपटिया' आदि के पल्ले का किनारा 'खूँट'[२४] कहलाता है। 'सारी' तथा 'अंचलपट' से 'घूँघट'[२५] काढ़ने का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में हुआ है।

'कंचुकी' के लिए 'अँगिया', 'आँगी', 'कंचुकी', 'चोली' आदि शब्द अष्टछाप-काव्य में प्रयुक्त हुए हैं जिनमें सिलाई या बनावट के कारण प्राय: अंतर होता है। सूरदास ने 'कटाव की अँगिया'[२६] के साथ-साथ 'जड़ाऊ अँगिया'[२७] का भी उल्लेख

१५. 'प्राचीन भारतीय वेशभूषा', पृ० ३७।
१६. लाल 'सारी' पहिरि बैठी प्यारी—छीत० ८६।
१७. तैसीये 'सुरँग सारी' पहिरे सुभग अंग—चतु० १२९।
१८. पगनि जेहरि, लाल लहँगा, अंग 'पँचरँग सारि'—सा० १०४९।
१९. चुनरी चोली बनी 'चुनरी की सारी'—चतु० ३६५।
२०. 'तनसुख सारी' पहिरि झीनी—चतु० २०२।
२१.क. 'झूमक सारी' तन गोरैं हो—सा० २७९४।
ख. छापे री झूमक अंग साजे चहुँ दिसि लगी किनारी—परमा० ९१९।
ग. लहँगा लाल 'झूमकी सारी' कसूँभी बरन पिय हेत रँगाई—कुंभन० ३१६।
२२.क. अंग मरगजी 'पटोरी' राजति—सा० वें० १३३२।
ख. जाइ श्रीदामा लै आवत तब दै मानिनि बहु भाँति पटोरी—सा० वें०, २४४५।
२३.क. यह तो 'लाल ढिगनि' की ओढ़े, है काहू की सारी—सा० ६९३।
ख. लाल 'ढिगनि की सारी' ताकौ पीत उढ़नियाँ कीन्ही—सा० ६९४।
ग. ये तो 'लाल ढिगनि' की ओढ़े है काहू की सारी—परमा० ६६६।
२४. नीलांबर गहि 'खूँट' चूनरी, हँसि हँसि गाँठि जुराई—सा० २८७९।
२५.क. सबै हिरानी हरि मुख हेरैं, 'घूँघट'-पट-ओट करैं—सा० १६५३।
ख. कर 'अंचल पट ओट' बाबा को ठाढ़ी ब्यार दुरावै—परमा० ३१२।
२६. सुभग हमेल 'कटाव की अँगिया' नगनि जटित की चौकी—सा० १५४०।
२७. बहु नग जरे 'जराऊ अँगिया'—सा० १४७५।

किया है। परमानंददास 'कंचन-सूत' और 'रत्नों के धागे' वाली 'आँगी' का वर्णन करते हैं [२८]। सूरदास ने 'नील अँगिया' के साथ उसके आगे के तिकोने साज अर्थात् 'माड़नी' का 'राती' या 'लाल' होना भी कहा है,[२९] तो गोविंदस्वामी ने राधा की खुली कंचुकी की 'माँड़नि' पीली बतायी है [३०]। 'कंचुकी' में बंद लगे होते हैं जिनके कसने की बात सूर ने लिखी है [३१]। 'चोली' में सामान्यतया 'बंद' या 'तनी' नहीं होती, परंतु सूरदास ने 'चोली-बंद' तोड़े जाने[३२] की बात लिखी है तो परमानंद दास और कुंभनदास ने उसमें 'तनी'[३३] का वर्णन किया है। परमानंददास और चतुर्भुजदास ने 'कटाव की अँगिया' की तरह 'कटाव की चोली'[३४] का भी उल्लेख किया है। गोविंदस्वामी के काव्य में कसीदा-कढ़ी 'कंचुकी'[३५] का वर्णन मिलता है। सूरदास ने 'अँगिया' में जुड़ी नाभि तक लटककर पेट को ढकनेवाली पट्टी का भी, जो 'अँतरौटा' कहलाती है, 'माया' के वर्णन में उल्लेख किया है जिसे देखकर असुर मद-माते हो जाते हैं[३६]।

स्त्रियों के ओढ़ने के वस्त्रों में 'उपरैना' का उल्लेख 'माया' के वस्त्रों में किया गया है[३७]। 'उपरना' गोपियों का भी वस्त्र था जिसे छीनकर कृष्ण द्वारा डालों में

२८. देहो ब्रजनाथ हमारी 'आँगी'।

× × ×

'सकल सूत कंचन के लागे बीच रतनन की धागी'—परमा० २०१।

२९. 'अँगिया नील माड़नी राती'—सा० १०३५।

३०. चंपक तन कंचुकी खुली स्याम सुदेस सुढारी हो।
'माँडनि' पिय पट पीत की ता ऊपर मोतिनि हारी हो—गोविं० १३५।

३१. कसत 'कंचुकि बंद'—सा० २४५०।

३२. सूर सुतहिं बरजौ नँदरानी, 'अब तोरत चोली बँद डोरि'—सा० ३२७।

३३.क. सोहत 'चोली चारु तनी'—परमा० ३७६।
ख. अंजन नैन, तिलक सेंदुर छबि, चोली चारु तनी—कुंभन० ३१७।

३४.क. पहिरि कसूँभी 'कटाव की चोली' चंद्र-बधू सी ठाढ़ी सोहै—परमा० ३६९।
ख. पहिरे दिव्य 'कटाव की चोली'—चतु०, कीर्तन-संग्रह, भाग २, पृ० १७१।

३५. कंचुकी सोभित 'कसीदा सुंदर'—गोविं० ४२।

३६. अँतरौटा अवलोकि के असुर महा-मद-माते हो—सा० १-४४।

३७. पहिरे राती चूनरी सेत 'उपरना' सोहै हो—सा० १-४४।

लटकाये जाने की बात सूरदास ने कही है[३८]। स्त्रियों के ओढ़ने के वस्त्रों में 'दुपटिया', 'उढ़निया' और 'चूनर' का उल्लेख बालिकाओं के वस्त्रों में हो चुका है।

समीक्षा—वस्त्रों के संबंध में अष्टछापी कवियों के जो विचार ऊपर दिये गये हैं, उनसे स्पष्ट है कि अपने आराध्य के तत्संबंधी विवरण में ही उन्होंने विशेष रुचि ली है और सामान्यतया उनके उसी रूप का वर्णन उन्होंने किया है जो दीर्घकाल से भारतीय जनता का परिचित रहा है। हाँ, 'तनसुख', 'ताफ्ता', 'खासा'-जैसे कपड़ों से यह अवश्य सूचित होता है कि अष्टछाप-काल में इनका अच्छा प्रचार था। ऐसे उल्लेख ही वस्तुतः सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं और अष्टछापी कवियों ने प्रायः सभी विषयों से संबंधित ऐसी सामग्री उपस्थित करके अध्येताओं के कार्य को सुगम ही नहीं, रोचक भी कर दिया है।

४. शृंगार-प्रसाधन—

शृंगार के सोलह अंग कहे गये हैं—उबटन, मंजन, मिस्सी, स्नान, सुवसन, केश-विन्यास, माँग भरना, अंजन, महावर, बिंदी, ठोढ़ी पर तिल बनाना, मेंहदी, गंध-द्रव्य, आभूषण, फूलमाला और पान रचाना[३९]। अष्टछाप-काव्य में पुरुषों के शृंगार में मुख्यतः छह अंगों, यथाः उबटन, स्नान, सुवसन, आभूषण, फूलमाला और पान रचाना, का वर्णन किया गया है। इनमें से 'मंजन' और 'मिस्सी' की चर्चा अष्टछाप-काव्य में नहीं की गयी है और 'सुवसन' के संबंध में, इसी परिच्छेद में, पीछे लिखा जा चुका है। अतएव 'पुनरावृत्ति' से बचने के लिए स्त्री और पुरुष, दोनों के 'शृंगार' के शेष अंगों की चर्चा, अष्टछाप-काव्य के आधार पर, साथ-साथ की जायगी।

क. *उबटन*—अष्टछाप-काव्य के अनुसार माता यशोदा श्रीकृष्ण को स्नान कराने के पूर्व सदैव 'उबटन' लगाती हैं[४०]। 'उबटन' के स्थान पर कभी कभी 'तेल'

३८. लियो 'उपरना' छीनि दूरि डारनि अटकायौ—सा० ११२४।
३९. श्री रामचंद्र वर्मा, 'प्रामाणिक हिंदी कोश', पृ० १२२८।
४०.क. केसरि कौ 'उबटनौ' बनाऊँ, रचि-रचि मैल छुड़ाऊँ—सा० १०-१८५।
ख. तेल 'उबटनौ' लै आगे धरि, लालहिं चोटत-पोटत री—सा० १०-१८६।
ग. अमित सुगंध सुबास अंग करि 'उबटन' गुन गाऊँगी—परमा० ६०८।
घ. 'उबटि' न्हवाये दोऊ भैया—गोविं० ८०।

लगाने की बात भी कही गयी है[४१]। राधा तथा अन्य सखियों के 'उबटन' लगाये जाने की चर्चा भी अष्टछापी कवियों ने की है[४२]।

ख. *स्नान*—'उबटन' या 'तेल' लगाने के पश्चात् 'स्नान' किया जाता है। सामान्य धार्मिक कृत्य के रूप में गंगा या जमुना-स्नान की चर्चा तो उसी प्रसंग में आगे की जायगी, यहाँ उस पर संक्षेप में ही विचार करना है। बालक कृष्ण के स्नान के लिए माता यशोदा ऋतु के अनुसार शीतल या उष्ण जल का प्रबंध करती हैं[४३]। स्त्रियों के स्नान का जल सुगंधित करने के लिए परमानंददास ने जल में 'केसर' घोले जाने की[४४] और नंददास ने 'अष्टगंध'[४५] मिलाये जाने की[४६] बात कही है।

ग. *केश-विन्यास*—स्त्रियों के लंबे, घने और काले बाल शोभा-वृद्धि में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। सूरदास ने स्नान के समय गीली लट की शोभा का वर्णन किया है[४७]। राधा के बाल 'एँड़ी' तक पहुँचनेवाले बताये गये हैं[४८]। केशों को चमकीला बनाने के लिए उनमें 'तेल' लगाया जाता है। सूरदास ने गोपियों के बालों में 'कनक-कटोरा' भर 'तेल-फुलेल' डालने की बात कही है[४९]। सुगंधों और फुलेलों का उपयोग बालों को सुगंधित करने के लिए उन्होंने कराया है[५०]। बिना

४१. 'तेल' लगाइ कियौ रुचि-मर्दन, बस्तर मलि-मलि धोए—सा० १-५२।
४२.क. इत 'उबटि' खोरि सिंगारि सखियनि, कुँवरि चौरी आनियो—सा० १०७२।
ख. अंग मरदन करिबे कौं लागी 'उबटन' तेल धरी—सा० १०००।
४३ क. 'तातो जल' आनि समोयो, अन्हवाइ कियो मुख धोयो—सा० १०-१८४।
ख. 'उष्न सीतल' अन्हवाय खोर 'जल', चंदन अंग लगाऊँगी—परमा० ६०८।
४४. 'केसर सौंधी घोरि' जननी प्रथम लाल अन्हवायो री—परमा० २०७
४५.क. पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' में अनेक प्रकार की गंधों का उल्लेख किया है।
—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'इंडिया ऐज नोन टू पाणिनि', पृ० १३१-३२।
ख. 'आइने-अकबरी' में 'सुगंधालय' विभाग की चर्चा है जिसमें अनेक 'सुगंधें' तैयार होती थीं—पृ० १५८, १७६।
४६. 'अष्टगंध' उष्नोदक सौं अस्नान कराये—नंद०, रुक्मिणी०, पृ० १४६।
४७. तैसीय लट बगरि रही उर पर, स्रवत नीर अनूप—सा० ११६३।
४८. बड़े बड़े बार जु एँड़नि परसत, स्यामा अपने अंचल में लिए—सा० २६१७।
४९. जे कच 'कनक कटोरा भरि-भरि मेलत तेल-फुलेल'—सा० ३८१५।
५०. 'लटैं' घुँघरारी रहीं छूटि छूटि आनन पैं, 'भींजी हैं फुलेलनि सौं' आली हरि संग केलि—सा० २०१०।

'तेल' के बालों की 'लटें' बँध जाती हैं। विरहिणी गोपियों को कृष्ण के प्रवास-काल में 'केश-विन्यास' नहीं सुहाता, बालों में वे तेल तक नहीं डालतीं, इससे उनके बालों की 'लटें' 'बट-लट' सी हो जाती हैं[५१]। घुँघराले बालों के लिए 'अलक'[५२] और 'कुंतल' शब्दों का ही नहीं, 'जुल्फों' तक का प्रयोग किया गया है[५४]।

सामान्यतया बाल 'वेणी' या 'चोटी' के रूप में बाँध लिये जाते हैं; उनका खुला रखना दुख, शोक, रोग, अरुचि आदि का सूचक माना जाता है। इसी से परमानंददास की विरहिणियों के बाल खुले रहते हैं, उन्हें बाँधने में उनको रुचि ही नहीं होती[५५]। बँधे हुए बालों के लिए अष्टछाप-काव्य में 'चोटी', 'बेनी', 'कबरी' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है और उसे बनाने के लिए 'गूँथना', 'गुहना' आदि कहा गया है[५६]। चोटी में 'फुँदना' झूलने की बात भी परमानंददास ने लिखी है[५७]। 'बेनी' में चंपे आदि फूलों का गूँथा जाना उन्होंने[५८] कहा है और तीन लड़ों में गूँथी जाने वाली 'मेढ़ी' का भी उल्लेख किया है[५९]।

घ. *माँग*—बालों को सुलझाकर चोटी करके 'माँग' निकाली जाती है जिसे 'मंग', माँग, 'सीमंत'[६०] आदि कहा गया है। 'माँग' निकालने के लिए 'पाटी' या

५१. 'अलक' जु हुती भुवंगम हू सी, 'बट लट मनहु भई'—सा० ३४०४।
५२.क. राजति राधे 'अलक' भली री—सा० १७०३।
ख. सहज सुगंध साँवरी 'अलकैं', 'बिनहिं फुलेल' उलेल सी झलकैं—नंद०, रूप०,पृ० ४।
ग. 'अलक' मधुप सम राजहीं अरु मुक्तावलि भाल—परमा० ६१८।
५३. 'कुंतल' अलिमाल तापैं मुरली कल रटना—परमा० १२४।
५४. लटकत केस 'जुल्फ' घुँघरारी बोलत सब्द हलाहल कूटे—परमा० ३३०।
५५. व्याकुल 'बार न बाँधति छूटे'—परमा० ५५८।
५६.क. बेनी ललित ललित कर 'गूँथत' सुन्दर माँग सँवारत—सा० २६२८।
ख. बेनी चंपक बकुलन 'ग्रंथित' रुचि रुचि सखिनि सँवारी—परमा० ६१६।
ग. बेनी सुंदर स्याम 'गुही' री—गोविं० २०३।
५७. पाँच चँवर पटियन पै गूँथी डोर चुनाव में झूले।
झूलत झबि फबि सुंदरता फुँदना जहाँ समतूले—परमा० ६१६।
५८. 'बेनी चंपक बकुलनि ग्रंथित' रुचि रुचि सखिनि सँवारी—परमा० ६१६।
५९. मृगमद तिलक अलक घुँघरारे गुही है जसोदा 'मेढ़ी'—परमा० काँक० ११४।
६०.क. गजमोतिनि सुन्दर लसत 'मंग'—सा० २८४६।
ख. बेनी गुही बिच 'माँग' सँवारी सीस फूल लटकारी—कुम्भन० २५२।

'पटिया' 'पारना' शब्द प्रयुक्त हुआ है[६१]। 'माँग' को मोती आदि से भरने की बात भी अष्टछापी कवियों ने लिखी है[६२]। सधवा हिंदू स्त्रियाँ सेंदुर से 'माँग' भरती हैं जिसका उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में मिलता है[६३]।

ङ. *अंजन*—नेत्रों में 'अंजन' या 'काजल' लगने से सामान्यतया उनकी शोभा बढ़ जाती है। अष्टछापी कवियों ने भी सुंदरी गोपियों के नेत्रों में 'अंजन' या 'काजल-रेख' का वर्णन किया है[६४] और परमानंददास की विरहिणी गोपी ने तो निश्चय कर लिया है कि नंदनंदन के नयनों से 'नयना' मिलने पर अर्थात् उनका दर्शन होने पर ही नेत्रों में काजल लगाऊँगी[६५]।

च. *महावर*—पैरों में 'महावर' या 'जावक' लगाने की बात अष्टछापी कवियों ने अनेक स्थलों पर लिखी है। कृष्ण-जन्म के अवसर पर यशोदा के पैरों में 'महावर' लगाने के लिए 'नाइन' को बुलाने की बात सूरदास कहते हैं[६६]। उनकी गोपियाँ तो शृंगार करते समय 'महावर' या 'जावक' लगाना कभी भूलती ही नहीं[६७]।

छ. *बिंदी और तिलक*—अष्टछापी कवियों की गोपियाँ 'सेंदुर' या 'चंदन',

ग. सिर सीमंत सँवारि—सा० २११८।
६१.क. बेनी गूँथि माँग सिर 'पारी'—सा० २८७६।
ख. मुँडली 'पाटी' पारि सँवारै—सा० वें० ३०२६।
ग. वे मोरे सिर 'पटिया पारै' कंथा काहि उढ़ाऊ—सा० वें० ३४६६।
६२. मोतिन माँग बिथुरी ससि मुख पर, मानहुँ नछत्र आए करन पुजा—कुंभन० ३०५।
६३.क. मुख मंडित रोरी रंग 'सेंदुर माँग छुही'—सा० १०-२४।
ख. मुखहि तँबोल नैन भरि काजर 'सेंदुर माँग सुदेस जू'—कुंभन० ६२।
६४.क. बसीकरन रस सों भिजीं रचि पचि 'अंजन रेख' बनाई—परमा० ६१६।
ख. चिबुक बिंदु बर खुँभी 'नैन अंजन धरि' कै अब जोहै—चतु० १६६।
६५. ता दिन काजर देहौं सखी री।
जा दिन नंदनँदन के नैना अपने नैन मिलैहौं सखी री—परमा० ५४४।
६६. नाइन बोलइ नवरंगी, ल्याउ 'महावर' बेग—सा० १०-४०।
६७.क. नखनि रंग 'जावक' की सोभा देखत पिय-मन भावत—सा० १०५४।
ख. नखनि 'महावर' खुल रह्यौ—सा० ११८०।
ग. पीन पिंडुरिया तैसोइ चरनन 'जावक' दीनो ललिता—परमा० ६१९।

'रोरी' या 'रोली', 'चंदन' आदि की 'बिंदियाँ'[६८] और 'मृगमद', 'केसर' आदि का 'तिलक' या 'टीका'[६९] लगाती हैं जिससे उनके गोरे मुख की शोभा और भी बढ़ जाती है। कभी कभी 'सिंदूर' आदि की बिंदी के साथ साथ 'कस्तूरी' या 'मृगमद' का आड़ा तिलक लगाये जाने[७०] की बात भी अष्टछापी कवियों ने लिखी है। कुंभनदास ने काजल का तिलक लगाया जाना लिखा है[७१]। सूरदास ने 'बिंदी' और 'तिलक' के चारों ओर लाल 'चूनी' भी लगाये जाने का वर्णन किया है[७२]। शुभ अवसरों पर 'गोरोचन' या 'रोचन' के तिलक लगाने की भी बात उन्होंने कही है[७३]।

ज. *तिल*—गोरे मुख की 'ठोढ़ी' पर काला 'तिल' सुंदर लगता है। अष्टछापी कवियों ने भी 'चिबुक' पर 'तिल' अथवा 'काजल-बिंदु' की शोभा का वर्णन किया है[७४]। सूरदास ने गोरे मुख पर श्यामल 'तिल' की प्राकृतिक शोभा की ओर संकेत किया है[७५]। चिबुक पर 'तिल' बनाने के अतिरिक्त कपोलों पर विविध रंगों से चित्र बनाये जाने की[७६] बात भी अष्टछापी कवियों ने लिखी है। कहीं कहीं

६८.क. गोरे ललाट सोहै 'सेंदुर को बिंदु'—सा० १०७६।
  ख. 'बंदन बिंदु' निरखि हरि रीझै, ससि पर बाल-बिभास—सा० १०५३।
६९.क. 'तिलक' केसरि को 'ता बिच सेंदुर बिंदु बनायौ'—सा० २६११।
  ख. ससि मुख 'तिलक' दियौ 'मृगमद कौ'—सा० १०५५।
  ग. 'सेंदुर तिलक' तँबोल खुटिला बने बिसेख—चतु० ८०।
  घ. भृकुटी धनुष, नैन सर साँधे सिर 'केसरि कौ टीकौ'—सा० १७०२।
७०.क. भाल लाल 'सिंदूर बिंदु पर मृगमद दियौ' सुधारि—सा० २११८।
  ख. 'कुमकुम आड़' स्रवत श्रम-जल मिलि—सा० १७०३।
  ग. 'सेंदुर तिलक' तँबोल खुटिला बने बिसेख।
  सोहत 'केसरि-आड़' कुमकुम 'काजर-रेख'—चतु० ८०।
७१. 'काजल तिलकु दियौ' नीकी बिधि रुचि रुचि माँग सँवारी—कुंभन० ३१६।
७२. ताटँक तिलक सुदेस झलकत खचित 'चूनी' लाल—सा० २८४२।
७३.क. 'गोरोचन' दूध दधि माथे रोरी अच्छत लाय—परमा० १२२।
  ख. दधि 'रोचन' को तिलक कियो सिर—परमा० ४८६।
७४.क. 'चिबुक स्याम बिंदु'—सा० १०४३।
  ख. 'चिबुक चारु तिल' ताकि बनायौ—सा० २६११।
  ग. 'चिबुक मध्य सामल बिंदु राजे' मुख सुख सदन सयानी—परमा० ६१६।
७५. 'चिबुक बिंदु' बिच दियौ बिधाता रूप सींव निरुवारि—सा० २११८।
७६.क. काजर आँजे नैन 'रोरी हरद' कपोल—चतु० ८०।

कृष्ण के अंगों पर भी इसी प्रकार के चित्र बनाये जाने का उल्लेख मिलता है[७७]।

झ. *मेंहदी*—हाथ-पैरों में मेंहदी रचाने का प्रचलन भी बहुत समय से रहा है। अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास ने इसका उल्लेख किया है[७८]।

ञ. *गंध-द्रव्य*—स्नान के पश्चात् शरीर को विविध द्रव्यों से सुगंधित करना इस देश की स्त्रियों को बहुत प्राचीन काल से प्रिय रहा है। अष्टछाप-काव्य में भी उनकी इस रुचि की चर्चा अनेक स्थलों पर की गयी है। जिन सुगंधित द्रव्यों का इसके लिए उपयोग किया जाता रहा है, अष्टछापी कवियों के अनुसार वे अकार-क्रम से ये हैं—अगरु, अरगजा, कपूर, कस्तूरी या मृगमद, केसर, चंदन, चोवा आदि[७९]।

४. *आभूषण*—स्त्री और पुरुष, दोनों सदा से आभूषण-प्रेमी रहे हैं और कभी-कभी तो आभूषण ही उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति के द्योतक मान लिये जाते हैं। अष्टछाप-काव्य में भी आभूषणों का उल्लेख बहुत हुआ है जो इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि तत्संबंधी लौकिक वैभव के जिस आदर्शतम रूप की कल्पना मानव-समाज कर सकता था, वह सभी अष्टछापी कवियों ने अपने परम आराध्य और उनकी प्रियाओं के लिए सहज ही सुलभ कर दिया है। श्रीकृष्ण, राधा, गोपी तथा अन्यान्य स्त्रियों के आभूषण अष्टछापी कवियों ने 'कंचन' या 'हाटक' के साथ-साथ मोती, रत्न, मणि-माणिक्य, लाल आदि के बताये हैं[८०]। इन बहुमूल्य धातुओं और रत्नों के अतिरिक्त कहीं-कहीं 'काँच की मनियाँ' आदि

ख. 'उत धरवा इत धातु चित्र रुचि' सुभग श्रीअंग लसन की—चतु० १६३।
७७. 'स्याम सुभग तन धातु चित्र अंग' बदन प्रसन्न मनु हासि—परमा० ५६५।
७८.क. अचल सुहाग भाग्य की लहरें 'हस्त हैं मेंहँदी दागे'—परमा० ६१६।
ख. 'पाँइ पैंजनी मेंहदी' राजति, पीठि पुरट के पान—कुंभन ५०।
७९.क. 'चंदन अरगजा' सूर 'केसरि' घरि लेऊँ—सा० १०७५।
ख. 'चंदन अगरु कुमकुमा' मिस्रित—सा० २७०८।
ग. 'चोवा, चंदन और अरगजा' जा सुख में हम राजी—सा० ३६०१।
घ. 'मृगमद मलय कपूर कुमकुमा केसर मलिए साख—सा० ३६३७।
८०.क. कुंडल 'कनक जड़े मनि मरकत' जगमगात जैसे मीन—परमा० ५६५।
ख. 'कंचन नगनि' जटित आभूषन बिधि सों कर सिंगार बनावै—चतु० १४०।

का भी उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है;[८१] अस्तु। जिन आभूषणों की उसमें चर्चा है, उनको दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—पुरुषों के आभूषण और स्त्रियों के आभूषण।

क. *पुरुषों के आभूषण*—अष्टछापी कवियों ने पुरुषों में मुख्यतः श्रीकृष्ण के आभूषणों की चर्चा की है। अतएव इनको पुरुषों के आभूषण न कहकर वास्तव में बालक या किशोरों के आभूषण कहना चाहिए। इनमें सबसे प्रमुख हैं सिर का 'मुकुट', जिसको सामान्यतया 'मोरमुकुट' कहा गया है[८२]। सूरदास ने सोने के 'जड़ाऊ मुकुट' का भी वर्णन किया है[८३]। माथे के आभूषण-रूप में परमानंददास ने घूँघरवाले बालों के साथ 'गजमोती' लटकने की बात कही है[८४] तो सूरदास ने सामान्य 'लटकन' का वर्णन किया है[८५]। 'कनछेदन' के अवसर पर कानों में 'दुर' नामक आभूषण पहनाये जाने की बात भी उन्होंने लिखी है;[८६] यों सामान्य रीति से कृष्ण सदैव 'मकराकृत स्वर्ण-कुंडल' ही कानों में पहने बताये गये हैं[८७]। श्रीकृष्ण के गले के आभूषणों में 'कठुला' और 'पदिक',[८८] 'हँसुली'[८९] और 'मोतीमाला'[९०]

८१. मोर चंद्रिका 'काँच की मनियाँ,' गुंजाफल मोहिं दै री—परमा० ६६३।
८२. निरतत मंडप मध्य नंदलाल।
'मोर मुकुट' मुरली पीतांबर अरु गुंजा बनमाल—परमा० २२३।
८३. भूषन 'मुकुट जराइ' जर्यो है—सा० १०५०।
८४. घूँघरवारे बार स्याम के 'लट लटकत गजमोती'—परमा ६०।
८५. कटि किंकिनि चंद्रिका मानिक 'लटकन' लटकत भाल—सा० १०-६६।
८६. कंचन के द्वै 'दुर' मँगाइ लिये, कहौं कहा छेदनि आतुर की—सा० १०-१८०।
८७.क. कुंतल कुटिल, 'मकर कुंडल', भ्रुव नैन बिलोकनि बंक—सा० ७०४।
ख. 'कुंडल' स्रवन कपोल बिराजत सुंदरता बन आई—परमा० १२०।
ग. छोटे से 'कुंडल' कान मुनिन के छूटे ध्यान—नंद०, कीर्तन-संग्रह, भाग १, पृ० १७१।
८८.क. 'कठुला' कंठ बज्र केहरि नख—सा० १०-८४।
ख. कंचन को 'कठुला' मनि मोतिन बिच बघनहाँ है रह्यौ पोह री—सा० १०-१४८।
ग. काजर तिलक कंठ 'कठुला'—परमा० ४५।
घ. कंठ 'कठुला' ललित लटकन भ्रकुटि मन कौ फंद—चतु० १०।
ङ. पहुँची करनि पदिक उर हरि-नख, 'कठुला' कंठ गजमनियाँ—सा० १०-१०६।
८९. कारवासोती 'हँसुली' धारे मोहन पीत झँगुलिया सोहै—परमा० ६०।
९०.क. 'स्वाँति-सुत-माला बिराजत' स्याम-तन—सा० १०-११०।

का वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। बाहु के आभूषण 'अंगद' और 'केयूर' बताये गये हैं[९१]। बालकों के हाथ में 'चूरा' और 'पहुँची'[९२] भी अष्टछापी कवियों ने पहनायी है और कमर में 'करधनी', 'किंकिनी' या 'क्षुद्रघंटिका'[९३]। बालकों के पगों में 'नूपुर' और 'पैंजनिया' या 'पैजनी' पहनाये जाने का भी उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है[९४]।

ख. *स्त्रियों के आभूषण*—सूरदास ने एक पद में स्त्रियों के 'द्वादश आभरणों' का उल्लेख किया है,[९५] परन्तु अन्यत्र उन्होंने तथा अन्य अष्टछापी कवियों ने सोलह आभूषण धारण करने की बात कही है[९६]। स्त्रियों के बारह आभूषण ये हैं—शीशफूल, टीका, बाली, बेसर, कंठश्री, हार, बाजूबंद, चूड़ी, कंगन, अँगूठी, किंकिणी तथा नूपुर; परंतु थोड़े-बहुत अंतर से अष्टछाप-काव्य में वर्णित उनके भेदों और उनसे मिलते-जुलते आभूषणों की संख्या बहुत बढ़ जाती है। स्थूल रूप से उनको नौ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—शीश, माथे, कान, नाक, गले, बाहु, कलाई, कटि और पैर के आभूषण।

अ. *शीश के आभूषण*—'टीका' या 'शीशफूल', 'माँगपाटी', 'चंद्रक' या

ख. नख-सिख अंग सिंगार महर मनि 'मोतिनि की माल' पहराई—परमा० ३०६।

९१.क. लै 'केयूर' भुज स्याम निहारति—सा० ५.१२।

ख. कटि किंकिनी कर कंकन 'अंगद' बनमाला पद कमल लुभाई—गोविं० १३।

९२.क. तन झँगुली सिर लाल चौतनी 'चूरा' दुहुँ कर पाइ—सा० १०-८६।

ख. कर 'पहुँची' नूपुर बाजे पाय—परमा०, कीर्तन० सं०, भाग १, पृ० १७२।

ग. कठुला कंठ रुचिर 'पोहोंची' कर—चतु० ६।

घ. 'पहुँची' कर बनी चारु - छीत० ७६।

९३.क. तनक कटि पर कनक 'करधनि' छीनि छबि चमकाति—सा० १०-१८४।

ख. नूपुर कंकन 'किंकिनि' कटि रुनझुन बाजै—परमा० ७७।

ग. रुनन झुनन धरत पाँव, 'किंकिनी' बिचित्र राव—छीत० ७६।

घ. नूपुर कनक 'क्षुद्रघंटिका' रजु आकरषित बाजै—परमा० ४७।

९४.क. आँगन पंकराग तन सोहत चल 'नूपुर' धुनि सुनि मन मोद—परमा० ८४।

ख. रुनुक झुनुक पग बाजत 'पैजनियाँ'—परमा० ४४।

ग. पाँय 'पैंजनी' रुनझुन बाजै आँगन मनिमय डोलना—परमा० ४५।

९५. 'द्वादस अभरन' सजि कंचन तन—सूर०, कीर्तन संग्रह, भाग २, पृ० १७८।

९६. झूलन आई सकल ब्रज सुन्दरि 'षटदस भूषन' सारी—परमा० ७९१।

'चंद्रिका' आदि शीश के आभूषणों की चर्चा अष्टछापी कवियों ने की है[१७]। इनके अतिरिक्त मोतियों की लड़ों से माँग को अलंकृत[१८] करने की भी बात उन्होंने लिखी है।

आ. *माथे के आभूषण*—अष्टछाप-काव्य में माथे के मुख्य आभूषण के रूप में 'बेंदी' या 'बेना'[१९] का उल्लेख हुआ है।

इ. *कान के आभूषण*—'अवतंस', 'कर्णफूल', 'खुटला', 'खुंभी' या 'खुभी', 'झुमका' या 'झूमक' आदि आभूषण कान के बताये गये हैं[२००]। इनके अतिरिक्त 'ताटंक' भी कान का ही आभूषण है जिसे 'तरकी', 'तरिवन', 'तरयौना' आदि भी

९७.क. मोतिनिमाल जराइ कौ 'टीकौ'—सा० १५४०।
ख. 'टीका', टीक, टिकावली, हीरा हार, हमेल—छीत० ५७।
ग. टूटत चुरी खिसत 'सिरफूल'—परमा० २३३।
घ. बेनी गुही बिच माँग सँवारी 'सीसफूल' लटकारी—गोविं० २०४।
ङ. बिबिध बेनी रची, 'माँग पाटी' सुभग भाल बेंदी बिंदु इन्दु लाजै—सा० १०४२।
च. 'चंदक' मनहुँ महाउत मुख पर अंकुस बेसरि लावै—सा० १४३६।
छ. कटि किंकिनी 'चंद्रिका' मानिक—सा० १०-६७।
९८. 'मोतिनि मांग' बिथुरी ससि मुख पर—कुंभन० ३०५।
९९.क. बदन बिंद 'जराइ की बेंदी'—सा० २६२८।
ख. दीनी नई नकबेसरि 'बेंदी जराऊ' की—चतु० ७।
२००.क. मिलि राजत 'अवतंस'—सा० २६१२।
ख. 'करनफूल' कर लिए सँवारति—सा० २१८६।
ग. मानौं 'करनफूल' चारा कौं रबकत बारंबार—सा० २६१०।
घ. जिन स्रवननि ताटंक, खुभी और करनफूल खुटिलाऊ—सा० ३८१५।
ङ. कनक 'करनफूल' भृकुटी गति मोहत कोटि अनंग—चतु० १०८।
च. 'खुभी' जराइ जरी है—सा० १०५५।
छ. सेंदुर तिलक तँबोल 'खुटिला' बने बिसेखि—चतु० ८०।
ज. 'खुटिला' 'खुँभी' रुचिर नकबेसरि—चतु० ९२।
झ. अलक तिलक रतन 'खुँभी' गंड अति बिराज—कृष्ण०, हस्त० प्रति०, पृ० १४२।
ञ. 'खुटिला' खुँभी जराय की मृगमद आड़ सुदेस—गोविंद, कीर्तन०, भाग २, पृ० १३०।
ट. अंचल चंचल 'झूमका'—सा० ११८०।
ठ. गजमोतिनि के 'झूमका' बाँधे—चतु० ११।
ड. करनफूल 'झूमका' गजमोतिनि बिथुरि रहे लपटाने—चतु० ३६६।

कहा गया है[1]। 'बीरा' भी 'ताटंक' से मिलता-जुलता ही आभूषण है जिसका उल्लेख सूरदास ने किया है[2]।

ई. *नाक के आभूषण*—अष्टछापी कवियों ने नाक के आभूषणों में 'नथ', 'बेसरि' या 'बुलाक'[3] आदि का उल्लेख किया है।

उ. *गले के आभूषण*—स्त्रियों के सभी अंगों के आभूषणों से अधिक संख्या अष्टछाप-काव्य में गले के आभूषणों की मिलती है। एक एक आभूषण के कई कई नाम भी उन कवियों ने लिखे हैं। अकार-क्रम से गले के प्रमुख आभूषण और उनके लिए प्रयुक्त पर्यायवाची शब्द ये हैं—कंचनहार, कंठश्री या कंठसिरी, खँगवारो,[4] गज-मोतिनि-हार, चौकी, टीक, तिलरी, तौक या तौकी, दुलरी, नौसरिहार, पदिक, मनिमयजटित हार, मुक्तामाल, मुक्तावली, मोतिसिरी, मोतीमाला, हमेल, हाँसु,

१.क. की मनिमय रथ-चक्र कि तरिवन, रवा रचित सहसाज—सा० २४४५।
 ख. स्रवन पास 'ताटंक' सोहत मानों रवि ससि जुगल परे मन फंद।
 —कृष्ण०, सोम० पदावली, पृ० ५४।
 ग. फूलन के 'तरोंना' कुंडल फूलन की किंकिनी सरस सँवारी—नंद०, पृ० ३७८।
 घ. नकबेसरि 'ताटंक' कंठसिरी अनुभाँति—चतु० ८०।
२.क. काननि की 'बीरें' अति राजति मनहुँ मदन रथ-चक्र चढ़ायौ—सा० २६११।
 ख. कनक जटित जराइ 'बीरे' कवि जु उपमा पाइ—सा० २८३१।
३.क. नासा 'नथ' मुकता के भारहिं रह्यो अधर तट जाइ—सा० १४६८।
 ख. नासा 'नथ' अतिहीं छबि राजति, अधरन बीरा रंग —२०२७।
 ग. करम 'नथ' नव जोति संगम, जोर भूप अनंग—सा० २१३१।
 घ. भाल तिलक, काजर चख, नासा 'नकबेसरि' 'नथ' फूली—सा० ३८१५।
 ङ. लटकनि 'बेसरि' जननि की इकटक चख लावै—सा० १०-७२।
 च. नासा सुभग निपट सुढारी 'बेसर' सिखी आकारी—परमा० ६१६।
 छ खुटिला खुँभी रुचिर 'नकबेसरि' दूरि करत रवि कांति जू—चतु० ६२।
 ज. कटि किंकिनि पग नूपुर बाजै नाक 'बुलाक' हलै री—सा० परि० १-११।
४.क. 'कंचन हार' दिए नहिं मानति, तुहीं अनोखी दाई—सा० १०-१६।
 ख. 'कंठश्री' दुलरी बिराजति, चिबुक स्यामल बिंद—सा० १०४३।
 ग. नकबेसरि ताटंक 'कंठसिरी' अनुभाँति—चतु० ८०।
 घ. कंठ 'कंठसिरी' सोहै, कनक बाजूबंद हाथ मुक्तनि की माल गरें—छीत० ८६।
 ङ. रतनजटित 'खँगवारौ' गर कौ जसुमति लै पहिरायौ—सा० परि० ८।

हार, हारावली आदि[५]।

ऊ. *बाहु के आभूषण*—अष्टछाप-काव्य में स्त्रियों की बाहु के आभूषणों में केवल तीन का प्रमुख रूप से उल्लेख हुआ है—टाँड़, बहुँटा और बाजूबंद[६]।

ए. *कलाई के आभूषण*—अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित कलाई के प्रमुख आभूषण और उनके लिए प्रयुक्त अन्य नाम इस प्रकार हैं—अँगूठी, कंकन या कंगन, कड़ा, चूरा, चूरी, पहुँचिया, पहुँची या पोहोंची, बलय, मुँदरी, मुँदरिया, मुद्रिका आदि[७]।

५.क. कंचन अरु किंकिनी उर 'गजमोतिनि हार'—चतु० ८० ।
ख. उर 'गजमोतिनि हार' जू—चतु० ६२ ।
ग. 'चौकी' हेम चंद्रमनि लागी रतन जराइ खचाइ—सा० १०५५ ।
घ. 'चौकी' पर नग बन्यो बनायौ—सा० २६११ ।
ङ. 'चौकी' बनी जराइ दूरि करत रवि-कांति—चतु० ८० ।
च. 'चौकी' हेम जराय की रत्न खचित निरमोल—गोविं०, कीर्तन., भाग २, पृ. १३ ।
छ. टीका, 'टीक', टिकावली हीरा-हार 'हमेल'—छीत० ५७ ।
ज. कंठसिरी, दुलरी, 'तिलरी-उर', मानिक मोती हार—सा० १४७५ ।
झ. बहुँटा कर कंकन, बाजूबंद एते पर है 'तौकी'—सा० १५४० ।
ञ. फूलन की 'दुलरी' हमेल हार—नंद०, पृ० ३७८, पद ४६ ।
ट. कंठसिरी, दुलरी तिलरी तर और 'हार इक नौसरि'—सा० १५७० ।
ठ. कंठसिरी उर 'पदिक' बिराजत 'गजमोतिनि' के हार—सा० २६१० ।
ड. 'मनिमय जटित हार' ग्रीवा कौ—सा० १०-१५ ।
ढ. कंबु कंठ नाना मनि भूषन, उर 'मुकुता की माल'—सा० १०६५ ।
ण. कंठ कपोत 'मुक्तावलि हार'—सा० २६०१
त. जाहु तहीं 'मोतसिरी' गँवाई—सा० १६७२ ।
थ. हरि तोरी 'मोतिनि की माला'—सा० १६३१ ।
द. पहिरि लेहि सोने के तरिका रतन जटित कौ 'हाँसुरी'—परमा० काँक० ७२१ ।
ध. चंचल अचपल कुच 'हारावली' बनी चलित खसित कुसुमाकर—परमा० १३७ ।
६.क. कर कंकन तें भुज 'टाँड़' भई—सा० ४०६० ।
ख. 'बहुँटा' कर कंकन, 'बाजूबंद' एते पर है तौकी—सा० १५४० ।
ग. 'बाजूबंद' तउ ढिंग सोहत नग बहु मोती लागे—परमा० ६१६ ।
घ. 'बाजूबंद' जटित कर पहुँची—चतु० २०६ ।
७.क. तब कर काढ़ि 'अँगूठी' दीन्हीं, जिहिं जिय उपज्यो धीर—सा० ६-८६ ।

ऐ. *कटि के आभूषण*—कटि का केवल एक प्रमुख आभूषण है 'करधनी' जिसके लिए 'किंकिनी', 'छुद्रघंटिका', 'छुद्रावली' आदि शब्दों का प्रयोग अष्टछापी कवियों ने किया है[८]। इनके अतिरिक्त 'करधनी' के लिए 'काँची', 'दाम', 'मेखला' और 'रसना' शब्द भी प्रयुक्त होते हैं[९]। इनमें से अष्टछाप-काव्य में 'मेखला' और 'हेमदाम'[१०] का उल्लेख प्रमुख रूप से मिलता है।

ख. गई री गिराइ करहु ते 'कंकन' द्वारे जाइ सँभारयौ।
'ढीली कील' निसरि गई क्यों ही जसोमति द्वारे डारयौ—परमा० काँक० २२३।
ग. कर 'कंकन' कटि किंकिनि राजत—गोविं० १७२।
घ. रुनुक भुनुक कर 'कंगन' बाजै बाँह हलावत ढीली री—परमा० १३६।
ङ. बाहनि बाजूबँद, 'कड़ा' जटित कर, अँगुरिनि मुँदरी राजै—कुंभन० १०।
च. कर कंकन 'चूरा' गजदंती, नख मेटत मनि मानिक कंती—सा० २६०१।
छ. टूटत हार कंचुकी फाटत 'चुरी' खिसत सिरफूल—परमा० २३३।
ज. अबहीं नई पहिरि हौं आई, 'चुरियाँ' गईं सब टूटि—परमा० ६३५।
झ. चित्रित बाँह पहुँचिया पहुँचै—सा० ४५१।
ञ. बाजूबंद जटित कर पहुँची—चतु० २०६।
ट. नवग्रह गजरा जगमगै नव 'पोहोंची' चुरियन आगे—परमा० ६१६।
ठ. नौग्रही कर पोहोंचिया हो—गोविं० १३५।
ड. कनक 'बलय', मुद्रिका मोद प्रद, सदा सुभग संतन काजे—१-६६।
ढ. भुजा बहूंटनि 'बलय' संग को—सा० १४७५।
ण. दिये कुंडल हार दई कर 'मुँदरी'—चतु० ७।
त. दरपन निरत मुँदरिया' धरनी तेज पुंज की नगरी—परमा० ६१६।
थ. कर पल्लवनि 'मुद्रिका' सोहत, ता छबि पर मन लाजति—सा० १०५३।
द. पल्लव पानि 'मुद्रिका' सोभित छुद्रावलि गजगति चाली हो—गोविं० २०४।

८.क. 'किंकिनी' नूपुर बाजहीं सबद री कोलाहल केलि—परमा० ६१६।
ख. कटि 'किंकिनी' हार तरलित ताटंक अलक घुँघरारी—गोविं० २६७।
ग. कर कंकन कटि किंकिनी की छबि—गोविं० ६२।
घ. कटि तट पर 'किंकिनी' कल नूपुर रव रुनभुन करै—छीत० ४।
ङ. 'छुद्रघंटिका' पग नूपुर जेहरि, बिछिया सब लेखौ—सा० १५४०।
च. 'छुद्रावलि' उतारति कटि तैं सैंति धरति मनही मन वारति—सा० ५४१।

९. 'रामायणकालीन संस्कृति', पृ. ६१।

१०.क. अब कत दुराहि 'कनक मेखला' मिलि सुरति निसान बजाई।
—कृष्ण०, हस्त० प्रति०, पद ३४।

ओ. *पैर के आभूषण*—'घुँघरू', 'जेहरि', 'झाँझ', 'नूपुर', 'पायल', 'पैंजनी'[११] आदि पैर के आभूषणों का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है। इनके अतिरिक्त पैर के अँगूठे में 'अनवट' और उँगलियों में 'बिछिया' या 'बिछुवन' पहनने की बात भी कही गयी है[१२]।

ठ. *फूल-माल*—इस देश के शृंगार-प्रसाधनों में फूलों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है और व्रज में तो 'फूलमंडली' नाम से फूलों का उत्सव भी मनाया जाता है जिसमें श्रीकृष्ण और राधा का सारा शृंगार फूलों से ही होता है[१३]। इसकी चर्चा 'उत्सवों' के अंतर्गत आगे की जायगी। फूलों की 'माला'[१४] धारण करने की बात भी अष्टछापी कवियों ने बराबर लिखी है।

ख. मुखरित कटि तट 'मनिमेखला', अभिनव गति चंचल करतला।
—कृष्ण०, सोम० पदा०, पृ० ७५।
ग. कटि तट सोहत हेमनि 'दाम'—कृष्ण०, सोम० पदा०, पृ० ७५।

११.क. 'घुँघरू' घंट घुमाइ ग्वालि मदमाती हो—सा० २८६२।
ख. पग 'जेहरि' जंजीरनि जकरयौ—सा० १४३६।
ग. जेहर तेहर पायन सों—परमा० ६१६।
घ. 'जेहर' तेहर पाय बिछुवन छबि उपजायल—नंद०, कीर्तन०, भाग २, पृ० १२६।
ङ. चरन महावर नूपुर मनिमय बाजत भाँति भली—सा० २६१६।
च. बन्यौ है कटि मेखला, चरन 'झाँझ' री—परमा० काँक० २५१।
छ. चरन 'नूपुर' दीप्ति कटि छुटि क्षुद्रघंटिका—कृष्ण०, सोम० पदा०, पृ० ६६।
ज. सोहै नकवेसरि आइ 'पायल' रुनझुन बाजहीं—कृष्ण०, कीर्तन०, भा० २, पृ. १२३।
झ. अनवट नूपुर चूरा रत्न खचित है 'पायल'—नंद०, कीर्तन०, भा० २, पृ० १२६।
ञ. कंकन, चुरी, किंकिनी, नूपुर, 'पैंजनि', बिछिया सोहत—सा० १०५८।
ट. पाँइ 'पैंजनी', मेंहदी राजति, पीठि पुरट के पान—कुंभन ५०।

१२.क. जेहर तेहर पायन सों 'अनवट' कुंदन हीरा बलिता—परमा० ६१६।
ख. 'अनवट' 'नूपुर' चूरा रत्न जटित है पायल—नंद०, कीर्तन०, भाग २, पृ० १२६।
ग. कंकन, चुरी, किंकिनी नूपुर पैंजनि 'बिछिया' सोहत—सा० १०५८।
घ. झंकृति कोकिल रव मर्दन करि नूपुर 'बिछिया' बोलैं—परमा० ६१६।
ङ. जेहर तेहर पाय 'बिछुवन' छबि उपजायल—नंद०, कीर्तन०, भाग २, पृ. १२६।

१३.क. करि 'सिंगार सब फूलन' ही को—सा० २८६२।
ख. 'फूलनि नख-सिख सिंगार'—सा० १६१७।
ग. 'कुसुमनि के आभूषन', कुसुमनि के परदा—गोविं० १४६।

१४.क. क्रीट मुकुट सिर सुभग लाल गरे 'फूलन की माला'—परमा० ६२८।

ङ. *पान रचाना*—'पान' की कुछ चर्चा पीछे की जा चुकी है। अष्टछापी कवियों ने श्रृंगार-प्रसाधन के रूप में भी उसका वर्णन किया है[१५] कपोल आदि पर जिसकी पीक का वर्णन 'खंडिता'-संबंधी पदों में मिलता है[१६]।

शृंगार में सहायक 'दर्पण'—श्रृंगार करने के लिए 'दर्पण' या 'आरसी' अत्यंत आवश्यक है। केवल यथोचित श्रृंगार करने के लिए ही नहीं, स्वरूप को देखकर स्वयं ही मुग्ध होने की मानवीय कामना भी 'दर्पण' या 'आरसी' देखने पर ही पूरी होती है। अष्टछापी कवियों में छीतस्वामी ने श्रृंगार के समय दर्पण दिखाये जाने[१७] का वर्णन किया है तो सूरदास ने श्रृंगार करके[१८] दर्पण में स्वप्रतिबिंब देखकर राधा के इतना मुग्ध होने की बात कही है कि वह उसे ब्रज की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी समझकर उस पर कृष्ण के रीझने के डर से खीझने तक लगती है[१९]। सूरदास की यह कल्पना कितनी कमनीय और साथ ही कितनी अद्भुत है, सहृदय ही समझ सकते हैं।

ख. फूलन की सेज फुलन 'गलमाला'—परमा० ६२८।
ग. पिय प्यारी की बेनी बनावत 'फूल के हार' सिंगार करत—गोविं० १५०।
१५.क. मुख 'तँबोर' नहिं काजर बिरह सरीर बिगोये—परमा० ५२१।
ख. परमानंददास को ठाकुर हँसि दीनौ 'मुख बीरा'—परमा० ७१२।
१६.क. 'पीक कपोलनि' तरिवन कैं ढिग झलमलाति मोतिनि छबि जोए—सा० २६६३।
ख. अधर काजर नयन रँगमगे रची 'कपोलनि पीक'—परमा० ६०६।
ग. अधर दसन छत बसन 'पीक' सह अरु 'कपोल' स्रम-बिंदु देखियत—गोविं० २४५।
१७. बिबिध भाँति भूषन लै, करति सिंगार रुचि अपनी सुघर।
'लै दर्पन श्रीमुख दिखरावति' निरखि निरखि हँसि लेत है मन हर—छीत० ७३।
१८.क. दरपन लै कजराहिं सँवारत—सा० २१८६।
ख. करति सिंगार बृषभानु-बारी।

× × ×

निरखि आपनौ रूप आप ही बिबस भई, सूर परछाहिं कौ नैन जोरै-सा० २१९०।
१९.क. यह सुंदरी कहाँ तैं आई।
कर तैं 'मुकुर' दूरि नहिं डारति, हृदय माँझ कछु रिस उपजाई।
बार-बार प्रतिबिंब निहारति, नागरि मन मन रही लुभाई।
देखैं कहूँ नैन भरि याकौं, नागर सुंदर कुँवर कन्हाई—सा० २१९१।
ख. मुकुर छाँह निरखि देह की दसा गँवाई।

समीक्षा—अष्टछापी कवियों के शृंगार-प्रसाधन के प्रमुख अंग, अलंकार-वर्णन से स्पष्ट है कि उन्होंने सामान्य लौकिक नर-नारियों की कल्पना से परे समृद्धिशाली नायक-नायिकाओं का चित्रण किया है। 'दान-प्रसंग' के एक पद में गोपियों के लगभग बीस आभूषणों की चर्चा श्रीकृष्ण ने की है[२०] जिससे खीझकर गोपियाँ कहती हैं कि जितना हम आज पहनकर आयी हैं, उससे दूना अभी घर पर है[२१]। निस्संदेह यह समृद्धि उन्हीं व्रजवासियों की हो सकती है जहाँ सिद्धियाँ और निधियाँ बिखरी फिरती हों। जो हो, अष्टछापी कवियों के शृंगार-वर्णन से व्रज के समकालीन युग की जन-मनोवृत्ति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है और उससे उनके समाज के सर्वाधिक समृद्धिशाली वर्ग का चित्र भी सहज ही सामने आ जाता है।

५. व्यवहार की सामान्य वस्तुएँ—

अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित इस वर्ग में आनेवाली वस्तुओं को मुख्य रूप से पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:—क. दैनिक उपयोग की वस्तुएँ, ख. पात्र, ग. बैठने और सोने के उपकरण, घ. लिखने के उपकरण और ङ रंग।

क दैनिक उपयोग की वस्तुएँ—इस वर्ग में आने वाली वस्तुओं में सर्वप्रथम है 'इँडुरी' जिसके लिए अष्टछापी कवियों ने 'इँडुरिया', 'इँडुरी', 'ईंडुरी', 'गिंडुरी', 'गेंडुरी', 'बहनिया' आदि शब्दों का प्रयोग किया है[२२]। इस वर्ग की अन्य वस्तुएँ

बोली धौं कौन की, आपुन हीं गवन कियौ, ऐसी को बैरिन है या व्रज मैं माई।
—सा० २१६२।

ग. नाम कहा सुन्दरी तुम्हारौ, क्यौं मोसौं नहिं बोलति हौ।
हँसै हँसति चितएँ चितवति तुम, तन डोलै तन डोलति हौ—सा० २१६८।

२०. 'मोतिनि माल जराइ कौ टीकौ, करनफूल, नकबेसरि।'
'कंठसिरी, दुलरी, तिलरी' तर और 'हार इक नौसरि'।
सुभग 'हमेल' कटाव की अँगिया, नगनि जरित की 'चौकी'।
'बहुँटा, कर-कंकन, बाजूबँद', एते पर है 'तौकी'।
'छुद्रघंटिका', पग 'नूपुर जेहरि', 'बिछिया' सब कहँ लेखौ—सा० १५४०।

२१. जितनौ पहिरि आजु हम आईं, 'घर है यातैं दूनौ'—सा० १५४१।

२२.क. देहौ लाल 'इँडुरिया' मेरी—गोविं० ५४२।
ख. काहू की 'इँडुरी' छटकावै—सा० १३६६।

इंधन,[२३] उलूखल या ऊखल,[२४] कुठार,[२५] कुलुफ,[२६] चाक,[२७] चूल्हा,[२८] छुरी,[२९] छींका,[३०] दीप या दीपक,[३१] पिंजरा या पींजरा,[३२] मथनिया या मथनी अथवा मथानी,[३३] संदूख,[३४] साँकरि[३५] आदि हैं।

ख. पात्र—अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित पात्र, स्थूल रूप से, दो वर्गों में रखे जा सकते हैं :—अ. दैनिक व्यवहार के पात्र और आ. अन्य पात्र।

अ. दैनिक व्यवहार के पात्र—इस वर्ग में कचौरा,[३६] कटोरा या कटोरी,[३७]

ग. मखतूली 'इँडुरो' मोतिनि की झालरि झूमका—गोविं० ५४०।
घ. नीकैं देहु न मेरी 'गेंडुरी'—सा० १४१६।
ङ. काहू की छीनत हौ 'गेंडुरी' काहू की फोरत गगरी—सा० ८५३।
च. मेरे सिर की नई 'बहनिया' लै गोरस में सानी जू—सा० १०-३३७।
२३.क. ब्रज करि अवाँ जोग करि 'इंधन' सुरति अगिनि सुलगाए—सा० ३७८१।
ख. चंदन भील पुलिंदी के घर, 'इंधन' करि ताहि माने—परमा० ५४६।
२४.क. माखन लागि 'उलूखल' बाँध्यौ सकल लोग ब्रज जोवैं—सा० ३४७।
ख. देखि स्याम 'ऊखल' सों बाँधे—सा० ३७०।
ग. काहे को दाम 'उलूखल' बाँधे अहो कैसी महतारी—परमा० काँक० १३७।
२५. जद्यपि मलय-बृच्छ जड़ काटै, कर 'कुठार' पकरै—सा० १-११०।
२६. कज्जल 'कुलुफ' मेलि मंदिर में पल संदूक पट अटकै—सा० २३२१।
२७. सदा रहति चित 'चाक' चढ़्यो सो और न कछू सुहाय—परमा० ४४६।
२८. एक जेंवन करत त्यागयौ, चढ़ी 'चूल्है' दार—सा० ६६५।
२९. लै-लै 'छुरी' कुमारि राधिका, कमलनैन पर धाई—सा० २८५४।
३०. 'छींकें' ते काढ़ि खाट चढ़ि मोहन कछु खायो कछु भू ढरकायौ—परमा० १४७।
३१.क. 'दीप' सों 'दीप' जैसैं उजारी—सा० २४६५।
ख. 'दीपक' प्रेम क्रोध मारुत छिनु, परसत जनि बुझि जाई—सा० २८२६।
३२. दौरि गहन मुख मृदु मुसकावनि, लोभ 'पींजरा' डारे—सा० २२७२।
३३.क. दाम दोहिनी माट 'मथानी'—परमा० ५३०।
ख. गोपी रई 'मथनियाँ' धोवै, अपनो-अपनो दह्यो बिलोवै—चतु० १३।
ग. ब्रज की औरै रीति भई।
प्रात समय अब नाहिंन सुनियत, घर-घर चलत 'रई'—परमा० ५३३।
३४. 'संदूखनि' भरि धरे सो न खोलै री—सा० १६७४।
३५. अंजन छाँड़ि दई कर 'साँकरि'—कुंभन० २३६।
३६. मुकुलित केस सुदेस देखियत नील बसन लपटाये।
भरि अपने कर कनक 'कटोरा' पीवति प्रियहि चखाये—सा० १० उ० १३८।
३७.क. कनक 'कटोरा' भरि-भरि पीजै—परमा० ७११।

कूँड या कूँडी,[३८] कोपर,[३९] भारी,[४०] ढकनिया,[४१] तष्टी अर्थात् तश्तरी[४२] आदि पात्र आते हैं जो दैनिक व्यवहार के लिए आवश्यक होते हैं। कमोर या कमोरी,[४३] गगरी, गगरिया, गागर, गागरिया या गागरी,[४४] और थार, थारी, थाल, थालिका[४५] एवं दोहनी[४६] भी इसी वर्ग के पात्र हैं।

आ. अन्य पात्र—इस वर्ग के पात्रों में कमंडल या कमंडली,[४७] कलश,[४८]

ख. कंचन थार अरु स्फटिक 'कटोरा', पृथक-पृथक करि राखे—कुंभन० १०।
ग. गायो घृत भरि धरी 'कटोरी'—सा० ३६६।
घ. कनक 'कटोरी' भरि कुंकुम अच्छत आगे लै राखी मदन गोपाला—गोविं० २८६।
३८. पूँगी फल जुत जल निरमल करि, धरि आनी भरि 'कूँडी' जो कनक की—सा० ६-२५।
३९. दधि, फल, दूब कनक 'कोपर' भरि, साजत सौंज बिचित्र बनाई—सा० ६-१६६।
४०. ढिग-ढिग धरी सबनि कों 'भारी' जमुनोदक भरि लाए—कुंभन० १०।
४१. सुभग 'ढकनियाँ' ढाँकि बाँधि पट जतन राखि छीकें समुदायो—सा० १६००।
४२. धरि 'तष्टी' भारी जल ल्याई—सा० १२१३।
४३.क. सौंधै भरयो 'कमोर', लाल रँग होरी—सा० २८६६।
ख. जो चाहौ सब देउँ 'कमोरी', अति मीठौ कत डारत—सा० १०-२६५।
४४.क. काहू की 'गागरि' धरि फौरैं—सा० १३६६।
ख. हँसि ब्रजनाथ गह्यो कर-पल्लव जाते 'गगरी' गिरन न पावै—परमा० ७२८।
ग. कीनी मार उलेड़ी 'गागर'—परमा० ६१६।
घ. आइ झपटिकै 'गागरि' पटकी मेरी—चतु० २५।
४५.क. 'थार' कटोरा जरित रतन के, धरि सब सालन बिबिध जतन के—सा० १२१३।
ख. कनक 'थार' बेला परिपूरन झलकत दोऊ ठौर तें—परमा० ६५३।
ग. जसोमति 'थार' परोसि धरी है—गोविं० २६१।
घ. माँगत कछु जूठन 'थारी'—सा० १०-१८३।
ङ. चलो लाल बियारू कीजै दोऊ भैया एक 'थारी'—परमा० ७०८।
च. सुनत चलीं सब ब्रज की सुंदरि कर लिए कंचन 'थाल'—परमा० २८।
छ. झलमल दीप समीप सौंज भरि लै कर कंचन 'थालिका'—सा० ८०६।
४६.क. कैसे गहत 'दोहिनी' घुटुवनि, कैसें बछरा थन लै लावहु—सा० ४०१।
ख. लै जु रहे कर कनक 'दोहिनी' बैठे हो अधपैयाँ—परमा० ७०२।
ग. हाथ कनक की 'दोहिनी'—परमा० ७०४।
४७.क. हुतौ 'कमंडल' दृढ़ काठी कौ—सा० ४२३६।
ख. लिए बोलि होत जहाँ जग्यन लिए 'कमंडल' हाथन—परमा० २०१।
४८.क. कनक 'कलस' कुच प्रगट देखियत आनँद कंचुकि भूली—सा० २५६१।

बेला,[४९] मटकी या मटुकिया अथवा मटुकी या माट,[५०] हँडिया या हाँड़ी[५१] आदि पात्र आते हैं।

ग. बैठने और सोने के उपकरण—बैठने के उपकरणों में अष्टछापी कवियों ने आसन,[५२] चौकी,[५३] बैठकी,[५४] पटुली[५५] और पीढ़ा[५६] का उल्लेख किया है। सोने के उपकरणों में सर्वप्रचलित है चारपायी जिसको शिशु या बालकों के लिए 'खटोला'[५७] कहा गया है और वयस्कों के लिए खाट,[५८] पर्यंक या

ख. मनु मधु 'कलस' स्यामताई की, स्याम छाप सी दीनी—सा० २८२६।
ग. मंगल 'कलस' दूब दधि अच्छत बेद पढ़त द्विज धीर—परमा० ४।
घ. कंचन 'कलस' चरचि केसर कें, बाँधति बंदनवार—चतु० ३।
ङ. मंगल 'कलस' कनक केसरि भरि बाँधी बंदनवार—गोविं० २०।
४९. कनक थार 'बेला' परिपूरन झलकत दोऊ ठौर तें—परमा० ६५३।
५०.क. 'मटुकी' मेरी मोहन दीजै—चतु० १६।
ख. उचित मोल कहि दधि को लेहुँ 'मटुकिया' सगरी—परमा० १८५।
ग. भरि 'मटुकिया' कनक की सिर धरि—चतु० २१।
घ. लेउ छिनाइ 'मटुकिया' सीस तें—गोविं० २५।
ङ. छबीले सुंदर स्याम 'मटुकी' धरि के धाम—गोविं० ३८।
च. बड़ौ 'माट' इक बहुत दिनन को ताहि करयौ दस टूक—सा० १०-३१७।
छ. हौं दधि 'माट' मेलि सुन सजनी लेन जु गई मथानी—परमा० ७२५।
ज. कंचन 'माट' भराये सौंधे भरी है कमोरी—नंद०, कीर्तन०, भाग १, पृ० १०१।
५१. 'हँडिया' मूँदि जसोदा मैया तुमको दै पठई ब्रजनाथ—परमा० ६४१।
५२.क. करि दंडवत 'कुसासन' दीन्हौ—सा० १-१४१।
ख. बुलाय दियौ 'अरधासन'—परमा० ५८।
५३.क. मज्जन करत गोपाल 'चौकी' पर।

× × × ×

पुनि सिंगार करन को बैठी रतन जटित 'चौकी' पर—छीत० ७३।
ख. अदन सदन कंचन 'चौकी' पर जगर मगर दुति भवन—गोविं० २६४।
५४. देव महल चंदनहि लिपायौ, चौक देइ 'बैठकी' लिपायौ—सा० १०-११०।
५५.क. 'पटुली' हेम बिछौना साजहीं—गोविं० १६६।
ख. फूलन के खंभ दोउ 'पटली' फूलन की—गोविं० २०६।
५६. आवति 'पीढ़ा' बैठनि दीनौ—सा० १०-५०।
५७. घुनौ बाँस जुत बनौ 'खटोला', काहु कौ पलँग कनक माटी कौ—सा० ४२३६।
५८. छींकें तें काढ़ि 'खाट' चढ़ि मोहन, कछु खायौ कछू भू ढरकायो—परमा० १४७।

पलँग,[५९] पलिका,[६०] सेज या सेज्या[६१]। 'तकिया' और 'तल्प'[६२] भी सेज से संबंधित उपकरण हैं।

घ. *लिखने के उपकरण*—अष्टछाप-काव्य में अनेक स्थलों पर 'पत्र' या 'पाती'[६३] लिखने का उल्लेख हुआ है। ये पत्र 'कागद' या कागर'[६४] पर लिखे बताये गये हैं, यद्यपि प्राचीनकाल की तरह रुक्मिणी की 'लगन' 'ताड़पत्र'[६५] पर लिखी जाने की बात भी सूरदास ने लिखी है। लिखने के अन्य उपकरण लेखनी[६६] और मसि[६७] हैं जिनका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है।

ङ. *रंग*—अष्टछापी कवियों ने अरुन या लाल, काले, कुसुंभी, गुलाबी, नीले, पीले, श्वेत या स्वेत, हरे आदि रंगों की चर्चा की है[६८]। रंगों के हल्के और गहरेपन को ध्यान में रखकर उन्होंने 'चटक', 'चुहि-चुहि', 'डहडहे' आदि भेदों का

५९.क. सुख 'पर्यंक' सँवारि मृदुल अति तापर मोहिं सुवावै—गोविं० ५६६।
ख. गोद उठाइ लाइ घर भीतर बैठि 'पलँग'—चतु० १४०।
६०. जसुमति लै 'पलिका' पौढ़ावति—सा० १०-१६७।
६१.क. सुखद 'सेज' पौढ़े श्री-बल्लभ—परमा० ६६१।
ख. लाल कुसुम की 'सेज' बनाई—परमा० ६६४।
ग. 'सेज्जा' पर संग लै पौढ़ावति—सा० ५१४।
६२.क. कुसुम के गादी कुसुम के 'तकिया' कुसुम सों सेज बनायी—गोविं० १४६।
ख. तजि वह जनकराज भोजन-सुख, कत तृन 'तलप', बिपिन फल खाहु—सा० ६-३४।
ग. हम तो थकित अस्त उदया करि रहे 'तलप' ह्याँ साज—परमा० ८८६।
६३.क. ऐसौ 'पत्र' पठायौ बसंत—सा० २८४५।
ख. यह 'पाती' राधा कर दीजौ—सा० ३४४५।
ग. 'पतियाँ' बाँचे हू न आवै—परमा० ५३६।
६४.क. 'कागद' गरे मेघ 'मसि' खूटी, सर दव लागि जरे—सा० ३३००।
ख. काहे कौं लिखि पठवत 'कागर'—सा० ३४६३।
६५. 'ताड़पत्र' पर दियौ लगन लिखि—सा० ४१७४।
६६. 'लेखनि' काम-बान कै चाप—सा० २८४५।
६७.क. 'कागद' गरे मेघ मसि खूटी, सर दव लागि जरे—सा० ३३००।
ख. पतियाँ पठवति 'मसि' नहिं खूँटति—सा० ३४०३।
६८.क. सूथन कटि चोलना 'अरुन रंग' पीतांबर की गाती—परमा० २६६।
ख. 'अरुन' पाग पर पेच जरकसी तापर सिवन अपार—परमा० ५६५।

वर्णन किया है[६९]। एक ही वस्त्र का कई रंगों से रँगा जाना, जैसे 'पँचरँग' सारी[७०] का उल्लेख भी उनके काव्य में मिलता है। 'नवरंग' शब्द का प्रयोग श्रीकृष्ण का बहुनायकत्व सूचित करने के लिए किया गया है[७१]। 'केसर', 'टेसू', 'मजीठ' आदि

ग. भींजत देखी राधा, माधव लै 'कारी' कामरी उढ़ाई—सा० १६६० ।
घ. दीजै कान्ह काँधे को कंबर ।
नान्हीं-नान्हीं बूँदन बरसन लागी, भीजत 'कसूँभी' अंबर—सा० १५६६ ।
ङ. पहिरि 'कसूँभी' कटाव की चोली चन्द्र-बधू सी ठाढ़ी सोहै—परमा० ३६६ ।
च. नवल बन में पहिरि तन में 'कसूँभी' चीर कनक बरनि—चतु० ११२ ।
छ. नवल 'कसूँभी' सारी पहिरे नव बधू प्यारी—चतु० १२१ ।
ज. सुभग 'कुसुँभी' बरुनी बिथुरित पीत बंद बिबिध मोजें—गोविं० ४३५ ।
झ. 'गुलाबी' पिछोरा पाग 'गुलाबी'—चतु० १७५ ।
ञ. गौर स्याम मिलि 'नील' पीत छबि—सा० २८३२ ।
ट. खसि-खसि परत 'नील' पीतांबर—परमा० ७६४ ।
ठ. 'नील' बसन सों अंग गोरें—गोविं० १६५ ।
ड. वैसोइ मुकुट मनोहर कुंडल, 'पीत' बसन रुचिकारि—सा० ३४५६ ।
ढ. वैसोइ पट 'पीत' अंग सुंदर अति सोभा—सा० ३४६० ।
ण. 'पीत' पिछौरा उर चंदन को—परमा० ६३० ।
त. कटि नील लहँगा, 'लाल' चोली, उबटि केसरि अंग—सा० २८३० ।
थ. 'लाल' सारी नील लहँगा—सा० २८३१ ।
द. कटि पट पीत सुहावनो अरुन उपरैना 'लाल'—परमा० ६१८ ।
ध. लहँगा 'लाल' गुलाल रंग सम पुरट उदक सों भूलें—परमा० ६१६ ।
न. 'लाल' काछ कटि किंकिनी पग नूपुर—गोविं० १६१ ।
प. लाल सारी नील लहँगा, 'स्वेत' अँगिया अंग—सा० २८३१ ।
फ. लहँगा पीत हरे और राते सारी 'स्वेत' सुहाई—परमा० ६१६ ।
ब. लहँगा पीत 'हरे' और राते—परमा० ६१६ ।
६९.क. मेरे सिर की 'चटक' चूनरी लै गोरस में सानी जू—परमा० १५६ ।
ख. पहिरे चीर सुहि सुरंग सारी 'चुहुचुहु' चूनरी बहुरंगनी—सा० १२८० ।
ग. 'चुहि-चुहि' चूनरि बहुरंग—सा० २८३० ।
घ. नीलांबर पीतांबर ओढ़े हौ आए, अति 'डहडहौ' नयौ—सा० २५०८ ।
७०.क. 'पँचरँग' सारी बहुत दिवाई—सा० २६१० ।
ख. कंठ माल पीरो उपरैना बनी इजार 'पँचरँग'—चतु० १०८ ।
ग. अति सुरंग 'पँचरँग' बनी पहिरे श्री राधा प्यारी—गोविं० १३५ ।
७१.क. आजु बनो 'नवरंग' पियारो—सा० २६४५ ।

से रंग बनाये जाने की बात भी अष्टछापी कवियों ने लिखी है[७२]।

६. *धातु एवं खनिज पदार्थ—*

धातुओं में सर्वाधिक उल्लिखित है 'कंचन' जिसके लिए 'कनक', 'सोना', 'हाटक', 'हेम' आदि शब्दों का प्रयोग अष्टछापी कवियों ने किया है[७३]। शुद्ध कंचन को 'बारह बानी' कहते हैं और मिलावटवाले को 'खोटा'। इन दोनों का प्रयोग सूरदास की गोपियों ने अपने और ऊधव के लिए किया है[७४]। 'सुहागा' डालकर सोना पिघलाये जाने की बात भी अष्टछाप-काव्य में कही गयी है। परमानंददास की मानिनी राधा को मनाती हुई दूती कहती है कि 'सुहागा' डालकर तो 'जड़ कंचन' भी पिघला लिया जाता है, पर तू कैसी है कि इतनी खुशामद पर भी द्रवित नहीं होती है[७५]। 'पारे' की सहायता से 'रासायनिक' द्वारा सोना बनाये जाने का उल्लेख सूरदास

ख. गोपिनि नाम धरयौ 'नवरंगी'—सा० ३६७५।

७२.क. सौंधे तेल अबीर अरगजा, तैसी 'जरद केसरि' चटकारी—सा० २८७१।

ख. 'टेसू कुसुम' निचोइ कै—सा० २८७४।

ग. एक 'पलास' कुसुम रँग बरसत—गोविं० ११२।

घ. यह कलंक तुमहीं कौं चढ़िहै, जैसे 'रंग मजीठी'—सा० ३४६२।

७३.क. 'कंचन' कोट कँगूरन की छबि मानहु बैठे मैन—सा० २५५६।

ख. रतन जटित 'कंचन' कौ पलना झुलवत हैं ब्रजबाम—चतु० ११।

ग. राँचौ नहीं 'कनक' मुक्ता नग लैहौं कछु मो लाग—चतु० १६।

घ. अनगढ़ 'सोना' ढोलना (गढ़ि) ल्याए चतुर सुनार—सा० १०-४०।

ङ. 'सोने' सींग घंटा अरु कठुला पीठ पत्र समुदाई—परमा० २५४।

च. स्रवन तार्टंक 'हाटक' रत्न-खचित—कुम्भन० १६०।

छ. प्रति चरन मनु 'हेम' वसुधा, देति आसन कंज—सा० १०-२१८।

ज. हँसुली 'हेम' हमेल अरु दुलरी बनमाला उर पहरैया—परमा० ३०१।

७४. जाहु जाहु ऊधौ जाने हौ, पहिचाने हौ।

× × ×

सूरदास प्रभु हम हैं 'खोटी' तुम तो 'बारहबाने' हौ—सा० ३५२०।

७५. बिछुरे होय सों फिर मिलें, रूसो लेहि मनाय।
मिल्यो रहे अरु ना मिले तासों कहा बसाय।
'तनक सुहागो डारि के जड़ कंचन पिघलाय'।
सदा सुहागिनि राधिका क्यों न कृष्न ललचाय—परमा०, हस्त० प्रति०, ३५२।

ने किया है[७६]। आँच में तपाकर सोने को पिघलाने की बात भी उनके ऊधव-गोपी-संवाद में कही गयी है[७७]। 'कंचन' के आभूषण तो बनते ही हैं, सूरदास जी ने नंद और वसुदेव जो द्वारा दान में दी गयी गायों के सींग भी 'सोने' से 'मढ़े' जाने का उल्लेख किया है[७८]।

सोने के अतिरिक्त प्रमुख धातुओं में 'चाँदी' या 'रजत' और 'ताँबे' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है। 'चाँदी' या 'रूपे' से दाम या 'सिक्का' बनाने[७९] एवं 'मरूवा-मयारि' तथा दान में दी जानेवाली गायों की पीठ, मढ़ी जाने की बात सूरदास ने लिखी है[८०]। ऐसी गायों के खुर 'ताँबे' से मढ़ा जाना कहा गया है[८१]।

अन्य धातुओं में अष्टछापी-कवियों ने 'काँच', 'पारा', 'लोहा'[८२] आदि का उल्लेख किया है।

७६. 'जैसें हाटक लै रसाइनी पारहिं' आग दई।
जब मन लाग्यो इष्टि तब बोल्यौ, सीसी फूटि गई—सा० ३२६६।

७७.क. 'आँच लगे च्योनो सोनों सौं,' यों तनु धातु हई—सा० ३४०४।
ख. 'च्योनों' धातु गलाने की 'घरिया' को कहते हैं—लेखिका।

७८.क. खुर ताँबे, रूपै पीठि, 'सोने सींग मढ़ीं'।
ते दीन्हीं द्विजनि अनेक, हरषि असीस पढ़ी—सा० १०-२४।
ख. धेनु जे संकल्प राखीं लई वे गनाइ कै।
'ताँबे' रूपे सोने सजि राखीं वै बनाइ कै—सा० ३०६२।

७९. माटन 'रूपो' दाम—परमा० १४।

८०.क. 'रचि रजत मरुव मयारि'—सा० २८३०।
ख. खुर ताँबै 'रूपौ' पीठि सोनै सींग मढ़ीं।
ते दीन्हीं द्विजन अनेक, हरषि असीस पढ़ीं—सा० १०-२४।
ग. धेनु जे संकल्प राखीं लई ते गनाइ कै।
ताँबे 'रूपे' सोने सजि राखीं वै बनाइ के—सा० ३०६२।

८१. खुर 'ताँबै', रूपै पीठि, सोने सींग मढ़ीं—सा० १०-२४।

८२.क. सूरदास कंचन अरु 'काँचहिं' एकहिं धगा पिरोयो—सा० १-४३।
ख. कंचन-मनि खोलि डारि, 'काँच' गर बँधाऊँ—सा० १-१६६।
ग. 'पारहिं' आगि दई—सा० ३२६६।
घ. इक 'लोहा' पूजा में राखत—सा० १-२२०।

खनिज पदार्थों में इंद्रनील या नीलम, पन्ना, पिरोजा, प्रबाल या विद्रुम, वज्र या हीरा, मरकत, माणिक्य, मुक्ता, लाल[८३] आदि रत्नों के साथ साथ अबीर, गेरू और फटिक या स्फटिक का भी उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है[८४]।

७. *वाहन*—

जल, थल और आकाश, तीनों स्थानों में विचरण की कामना मनुष्य में आदि काल से रही है जिसके लिए विविध वाहनों का निर्माण वह करता आया है। अष्टछापी कवियों ने भी तीनों स्थानों के वाहनों की चर्चा की है। थल के वाहनों में प्रमुख है 'रथ' जिसके लिए 'स्यंदन'[८५] शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। आर्थिक स्थिति के

८३.क. 'इंद्रनील मनि' तैं तन सुन्दर—सा० १०-२१६।
 ख. मोतिनि झालरि झुमका राजत, बिच 'नीलम' बहु भावनो—सा० २८३२।
 ग. 'पन्ना' पिरोजा लगे बिच बिच—सा० ४१८६।
 घ. हीरा 'पिरोजा' पाँति मुक्ता और अति आरम्भ—परमा० ७८६।
 ङ. रतन जटित के खंभ दोऊ लगे 'प्रबालहिं' लाल—परमा० ७६२।
 च. 'बिद्रुम' खंभ जटित नग पटुली—गोविं० २०६।
 छ. बज्र की लौ लगी सुठि सोभाकारि—सा० २८४१।
 ज. 'हीरा' हाटक हार अमोलक रानी जू पहिराए—परमा० १६१।
 झ. जगमगात 'हीरा' ज्यों चिबुक छबि निरखत रवि लाजै—कुम्भन० १०।
 ञ. डाँडी खची पचि पचि 'मरकत' मय सुपाँति सुढार—सा० २८४१।
 ट. मरुवे सों 'मानिक' चुनी लागी, बीच हरि तरंग—सा० २८३३।
 ठ. 'मुक्ताहार' कंठ उर पर सखि, पंगति बक गन की—कुम्भन० १४६।
 ड. रेसम बनाइ नवरतन पालनौ, लटकन बहुत पिरोजा 'लाल'—सा० १०८४।
८४.क. उड़त गुलाल 'अबीर' जोति रवि दिसि उँजियारी—सा० २८५४।
 ख. जैसे कंचन काँच बराबरि 'गेरू' काम सिंदूर—सा० ३१५२।
 ग. लाल डाँडी 'फटिक' पटुली, मनिनि मरुवा धौर—सा० २८३५।
 घ. 'स्फटिक' सिंहासन मध्य बिराजत—सा० २८३२।
 ङ. कंचन थार अरु 'स्फटिक' कटोरा, पृथक पृथक करि राखे—कुम्भन० १०।
८५.क. यहि कहि चले आप हरि 'रथ' चढ़ि सोभा कही न जाय—सारा० ६२७।
 ख. 'रथ' आरूढ़ भये बल-केसौ वे देखौ बिमल धुजा फहरात—परमा० ४६०।
 ग. चढ़ि आयो अक्रूर जाहि पर 'स्यंदन' व्रज तन आवति री—सा० ३४५८।
 घ. धनुष तरँग, भँवर 'स्यंदन' पद—सा० ४१६२।

अनुसार 'कंचन रथ' होने की बात सूरदास ने लिखी है[८६] तो परमानंददास ने अपने आराध्य को हीरे-मोती जड़े 'रथ' में बैठाया है[८७]। 'सारावली' में घोड़े जुते 'रथ' के साथ साथ 'गज-रथ' का भी उल्लेख मिलता है[८८]। स्थल मार्ग से सामान लाद कर ले जानेवाली गाड़ी को 'शकट' कहा गया है जिस पर व्रजवासी गोवर्द्धन-पूजा की सामग्री लादकर ले जाते हैं[८९]।

जल के वाहनों में 'नाव' या 'नौका' और 'जहाज' या 'पोत' अथवा 'बोहित' के साथ-साथ 'बेड़े' का भी उल्लेख हुआ है[९०]। आकाश-मार्ग का प्रमुख वाहन 'विमान' कहा गया है। देवगण विमानों पर बैठकर ही आकाश से फूल बरसाते हैं और राम की लंका से अयोध्या-यात्रा भी विमान पर ही होती है[२९१]। मानवों की 'विमान-यात्रा' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में नहीं है, क्योंकि पाश्चात्य अविष्कारकों को वायुयान के निर्माण में अष्टछाप-काल तक सफलता नहीं मिली थी।

८६. मदन गोपाल बैठि 'कंचन रथ'—सा० ३३६१।

८७. तुम देखौ माई, रथ बैठे गोपाल।
'हीरा मोती पाँत' बनी है बिच-बिच राजत लाल—परमा० ७४३।

८८. कहुँ 'गजरथ' कहुँ 'बाजिरथनि' सजि डोलत हैं गृह-द्वार—सारा० ६७४।

८९. सब सामग्री 'सकट' माँझ सबहिनि जु धराई।
अपने 'सकट' जुराय चली रोहिनी जसोदा माई—परमा० २७२।

९०.क. जमुना जल खेवत हैं हरि 'नाव'—परमा० ७४५।
ख. नांहिं चितवन देत सुत तिय, नाम-'नौका' ओर—सा० १-९९।
ग. बुधि-बल-बचन 'जहाज' बाँह गहि—सा० १-३३७।
घ. जलधि थकित जनु काग 'पोत' कौ कूल न कबहूँ पायौ री—सा० १०-१३७।
ङ. बारिधि जोग अपार अगम कौ निगम न थाह लहो।
बुधि बिबेक 'बोहित' चढ़ि स्रम करि तौ सिव चेत परी—सा० ३६१०।
च. सेमर-ढाकहिं काटि के बाँधौ तुम 'बेरौ'—सा० ९०४२।

२९१.क. अंबर 'बिमाननि' सुमन बरषति, हरषि सुर सँग नारि—सा० २८३०।
ख. सुर सुमननि बरषावत गावत ब्योम 'बिमाननि' साज—सारा० ३९४।
ग. ब्योम 'बिमान' महाछबि छाजत—सा० ९१६७।

४ पारिवारिक जीवन-चित्रण

अष्टछाप-काव्य में पारिवारिक जीवन का जो चित्रण हुआ है, उसका अध्ययन मुख्यत: चार शीर्षकों के अंतर्गत करना उचित प्रतीत होता है—१. परिवार का संगठन और संबंधी, २. पारिवारिक जीवन-चर्या, ३. पारिवारिक शिष्टाचार और ४. पारिवारिक उत्सव तथा संस्कार।

१. परिवार का संगठन और संबंधी—

प्राणी का जन्म परिवार में ही होता है जिसके अनेक सदस्यों से, उसके जन्मते ही आयु और पद के आधार पर अनेक प्रकार के संबंध स्थापित हो जाते हैं। अन्य प्राणियों में इन संबंधों की मर्यादा के निर्वाह की वैसी बुद्धि नहीं होती जैसी मानव में होती है। फलत: जहाँ अन्य प्राणी एक ही पीढ़ी के रक्त-संबंध का भी ध्यान नहीं रख पाते, वहाँ मानव तीन और चार पीढ़ियों के संबंधों का सरलता से निर्वाह कर लेता है। मनुष्य की यह मनोवृत्ति या बुद्धि ही आरंभ से संयुक्त परिवार[1] के संगठन का मूल रही है। विभिन्न कारणों से रक्त का संबंध रखनेवाले व्यक्ति चाहे साथ न भी रह सकें, तथापि आयु और पद की मर्यादा का ध्यान परस्पर सबको सदा रहता है। वर्तमान युग में संयुक्त परिवारों की संख्या हर देश में घट जाने पर भी मनुष्य की यह मनोवृत्ति सर्वत्र देखी जाती है।

अष्टछाप-काव्य में जिन परिवारों का चित्रण है, उनमें तीन मुख्य हैं—दशरथ का संयुक्त परिवार, नंद का स्वतंत्र परिवार और श्रीकृष्ण का परिवार। इनके अतिरिक्त वृषभानु, सुदामा और कौरव-पांडवों के साथ-साथ कुछ अन्य पौराणिक परिवारों की चर्चा भी यत्र-तत्र की गयी है। इन सभी परिवारों में सामान्यतया तीन पीढ़ियों के—दादा-दादी, नाना-नानी, माता-पिता, सास-ससुर, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री तथा इनके समवर्गीय स्त्री-पुरुषों की चर्चा की गयी है।

१. ऋग्वेद में संयुक्त परिवार का मर्म इस प्रकार समझाया गया है—'मनुष्यों को एक साथ चलना चाहिए एक साथ बोलना चाहिए, और एक दूसरे के मन को अच्छी तरह समझना चाहिए'—ऋग्वेद १०।१९१-१९२।

क. *दादा-दादी*—दादा के रूप में अष्टछाप-काव्य में कौरव-पांडवों के केवल भीष्म पितामह की चर्चा हुई है जिनके पद और जिनकी आयु का सम्मान उनके संबंधी ही नहीं, उनके संपर्क में आनेवाले सभी व्यक्ति करते हैं। अपने अंतिम समय में भीष्म पितामह युधिष्ठिर की विनम्रता देख कर सुखी होते हैं और बहु-मूल्य उपदेश देते हैं[२]। परमानंददास ने भी एक पद में 'पितामह' द्वारा 'मन्मथराज' का तिलक किया जाना लिखा है[३]। किसी 'दादी' का चित्रण अष्टछाप-काव्य में नहीं है।

ग. *नाना-नानी*—मातृ-पक्ष में नाना-नानी का पद दादा-दादी के समकक्ष होता है। अष्टछाप-काव्य में श्रीकृष्ण के नाना उग्रसेन की चर्चा की गयी है, परंतु उनकी पत्नी का उल्लेख नहीं है। श्रीकृष्ण के प्रति नाना-नानी के सहज वात्सल्य-पूर्ण व्यवहार के दर्शन भी अष्टछाप-काव्य में नहीं होते। 'नानी-नानन' (नाना) का प्रयोग अवश्य गोपियों ने एक पद में सामान्य अर्थ में किया है और कृष्णदास भी एक स्थल पर उन्हें स्मरण करते हैं[४]।

घ. *माता-पिता*—माता जन्मदात्री होती है, अतः उसे जननी या जननि[५] कहा जाता हैं। इसके अतिरिक्त 'माता' के लिए सात-आठ अन्य शब्द अष्टछाप-

२.क. राजधर्म तब 'भीषम' गायौ। दानापद पुनि मोक्ष सुनायौ।
पै नृप कौ संदेह न गयौ। तब 'भीषम' नृप सौं यौं कह्यौ।
धर्मपुत्र, तू देखि बिचार। कारन करनहार करतार।
नर के किएँ कछू नाहिं होइ। करता हरता आपुहिं सोइ—सा० १-२६१।
ख. जे पद-कमल 'पितामह भीषम' भारत में देखन पाए—परमा० १।

३. मन्मथराज सिंघासन बैठे तिलक 'पितामह' दीनों—परमा० ३३१।

४.क. कहा कथत मौसी के आगैं जानत 'नानी नानन'—सा० ३६४६।
ख. 'नाना', मामा, 'नानी', मामी, मौसी।
—कृष्णदास, 'कीर्तन संग्रह', भाग १ (जन्माष्टमी के पद), पृ० १३६।

५.क. 'जननी' आज्ञा पाय चले बन, पंच बरस सुकुमार—सारा० २३।
ख. ता तर पूत कुसर सौं पायौ 'जननी' जठर जीव तब पायौ—नंद०, दशम०, पृ० २६।
ग. 'जननी' मुदित मन चितै-चितै सिसु तन, कंठ लाइ सुंदर स्याम सुभग।
—चतु० १४६।
घ. अपनी 'जननी' के जानु लागि पय पीवत नवल असाढ़े—छीत० ६।
ङ. 'जननि' जसोदा करति आरती मोतिनि भरि-भरि थाल—गोविं० ८२।

काव्य में प्रयुक्त हुए हैं, जैसे महतारी,[६] मा,[७] माई,[८] मात,[९] माता,[१०] मातु,[११] माय[१२] और मैया[१३]। 'माता' की तुलना में 'पिता' का पद छोटा समझा जाता है; अतः इसके लिए चार-पाँच शब्द ही अष्टछाप-काव्य में प्रयुक्त हुए हैं; जैसे पिता,[१४] पितु,[१५]

६ कहि जाको ऐसो सुत बिछुरै, सो कैसे जीवै 'महतारी'—सा० १०-११

७.क. सूर स्याम यह कहत जननि सौं, रहि री 'मा' धीरज उर धारै—सा० ५६५।

ख. 'मा' कहै मेरौ, पितु कहै मेरौ, मोल लयौ सु कहै मो चेरौ।

—नंद०, दशम०, पृ० २४०, पं० १७।

८. कबहुँक लछिमन पाइ सुमित्रा, 'माइ माइ' कहि मोहिं सुनैहै—सा० ६-८१।

९.क. तब लघु 'मात' कह्यौ, तब बैठौ जब मेरे अवतार—सारा० ७२।

ख. 'मात' तात पतियात भुवन में सबहिनि कौ कहिबौ सिर धारयौ—परमा० ४५८।

ग. घर में 'मात' पिता मोहिं त्रासत तैं कुल-लाज गँवाई—कुंभन० २३७।

घ. 'मात' पिता भैया सुनैं साँझ परत बन माँहि—चतु० २६।

ङ. 'मात' जसोदा राखी बाँधति बल कें अरु श्रीगोपाल कें—छीत० ६७।

च. आवो हो तात रिसात 'मात' अब कहा चित्त में ठानी—गोविं० २६२।

१०.क. राम जू कहाँ गये री 'माता'—सा० ६-४६।

ख. सुची 'माता' के गोद बैठिकै मूँदि स्रवन मन करखे—परमा० ५३।

ग. नंद पिता जसुमति है 'माता'—नंद०, रूप०, पृ० २१।

११.क. बिनु रघुनाथ और नहिं कोऊ, 'मातु' पिता न सहेली—सा० ६-६४।

ख. बाल रुदन जब करन लग्यो रोहिनी 'मातु' लै भागी—परमा० ५३।

१२. अनप्रासन दिन नंदलाल कौ करत जसोदा 'माय'—परमा० ५०।

१३.क. पाछैं चितै फेरि-फेरि 'मैया-मैया' बोलै—सा० १०-१०१।

ख. 'नाग डसी'! 'मैया' सुनत गिरी धरनि मुरझाइ—नंद०, स्याम०, पं० ६७।

ग. 'मैया' मोहिं माखन मिश्री भावै—चतु० ३६२।

घ. प्रातकाल उठि जसौदा 'मैया' कीनों है सब साज—गोविं० ८१।

१४.क. बिनु रघुनाथ और नहिं कोऊ, मातु 'पिता' न सहेली—सा० ६-६४।

ख. अरी मैं लोक बेद कौ मारग छाड़यौ मात 'पिता' की लाज री—परमा० ४१५।

ग. घर में मात-'पिता' मोहिं त्रासत तैं कुल-लाज गँवाई—कुंभन० २३७।

घ. नंद 'पिता' जसुमति है माता—नंद०, रूप०, पृ० २१।

ङ मात 'पिता' भैया सुनें साँझ परत बन माँहि—चतु० २६।

च. बैठे आइ 'पिता' की गोद, देखत श्री मुख भयो प्रमोद—गोविं० ७०।

१५.क. कहौ 'पितु' मोसौं सोइ सतिभाव—सा० १-२७५।

ख. मा कहै मेरौ, 'पितु' कहै मेरौ, मोल लयौ सु कहै मो चेरौ।

—नंद०, दशम०, पृ० २४०, पं० १७।

बाप,[१६] तात,[१७] गुसाईं[१८]। 'पिता' के लिए 'गुसाईं' शब्द अत्यंत आदरसूचक होने पर भी प्रायः अप्रचलित ही है।

ङ. *माता-पिता के समवर्गीय*—इस वर्ग में सास-ससुर, विमाता, चाचा-चाची या काका-काकी, ताऊ-ताई, बुआ (फूफी) फूफा, मामा-मामी, मौसा-मौसी आदि आते हैं। इनमें से अष्टछाप-काव्य में 'सास-ससुर', 'काकी', 'फूफी', 'मामा' और 'मौसी' का ही उल्लेख हुआ है। 'सास-ससुर' के लिए अष्टछाप-काव्य में मुख्य रूप से तीन शब्द आये हैं—सास,[१९] सासु,[२०] ससुर[२१]। 'फूफी' शब्द का प्रयोग कम हुआ है, राधा के विवाह के अवसर पर उसकी 'फूफी' और 'काकी' बड़ी ममता से उसे गले लगाती हैं[२२]। मथुरा का राजा कंस श्रीकृष्ण का 'मामा' था; परंतु उसके लिए 'मातुल'[२३] शब्द का प्रयोग अधिक किया गया है। किसी 'मामी' की चर्चा 'अष्टछाप-काव्य में नहीं है। 'मौसी'[२४] शब्द अवश्य दो-एक पदों में प्रयुक्त हुआ है।

१६.क. सूर परेखो काको कीजै, 'बाप' कियौ जिन दूजौ—सा० ३६५० ।
ख. द्वै 'बाप' सबै कोऊ जानै, जाहि बेद-पुरान बखानै—परमा० ६२६ ।
ग. 'बाप' देत कर कंस रजा कों, पूत सँगाती डोलत मैंडे—कुंभन० १६ ।
१७.क. मात 'तात' पतियात भुवन में, सबहिनि कौ कहिबौ सिर धारयौ—परमा०
ख. मात 'तात' अरु भ्रात, बंधुजन सबै परौ भठ—नंद०, रुक्मिनी०, पृ० १४६ ।
ग. आवो हो 'तात' रिसात मात अब कहा चित्त में ठानी—गोविं० २६२ ।
१८. होहु बिदा घर जाहु 'गुसाईं', माने रहियौ नात—सा० ३१२४ ।
१६.क. नाहीं ब्रज-बास 'सास', ऐसी बिधि मेरौ—सा० १०-२७६ ।
ख. जाने 'सास' ननद बैरिनि सब, बन में आजु न भटकौ—परमा० ३७४ ।
ग. 'सास' रिसाउ, मात ग्रह त्रासौ, हौं पति सों मानहुँ घट फोरयौ—कुम्भन० २४२ ।
२०.क. 'सासु' नँनदि घर-घर लिए डोलतिं याकौ रोग बिचारौ री—सा० १०-१३५ ।
ख. 'सासु' ननद अरु पास-परौसिनि हँसि बहु बार कह्यौ—चतु० १५७ ।
२१.क. तजी सीख सब सास 'ससुर' की, लाज जनेऊ जारे—सा० ३५६६ ।
ख. मागध, जरासंध बल-अंध, तासौं जाहि 'ससुर' संबंध—नंद०, दशम०, पृ० २०५, पं० ५ ।
२२.क. तेरी 'फूफी' पंच भरतारी, सो तो अर्जुन की महतारी—परमा० ६२६ ।
ख. 'काकी' भाभी बहिनि पुनि 'फूफी' तिन लीनी उर धार ।
—कृष्ण०, कीर्तन०, भाग १, पृ० १०५ ।
२३.क. 'मातुल' मारि बहुत अघ कीन्हें कहँ लौं करौं बड़ाई—सारा० ७४० ।
ख. किहिं 'मातुल' हति कियौ जगतजस कौन मधुपुरी छाए—सा० ३६१७ ।
२४. कहा कथत 'मौसी' के आगैं जानत नानी-नानन—सा० ३६४६ ।

ङ. *भाई-भावज*—'भाई' के लिए ये शब्द प्रयुक्त हुए हैं—बंधु[२५] या बंधू,[२६] भाई,[२७] भैया,[२८] भ्रात,[२९] भ्राता,[३०] बीर[३१] और सहोदर[३२]। 'बड़े सहोदर' के लिए 'अग्रज'[३३] शब्द का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त 'बड़े भाई' के लिए 'ददा' या 'दादा' शब्द भी व्यवहृत हुआ है। परमानंददास ने बलराम के लिए इसका प्रयोग कराया है[३४]। बड़े भाई की स्त्री को 'भाभी' या 'भावज' कहते कहते हैं। यद्यपि लक्ष्मण के लिए 'देवर' शब्द का प्रयोग हुआ है, परंतु सीता के लिए 'भावज' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। राधा की 'भाभी' अवश्य उसके विवाह के अवसर पर गले से लगाकर गद्गद् हो जाती है[३५]।

च. *बहन-बहनोई*—'बहनोई' की अपेक्षा 'बहन' शब्द के अधिक पर्यायवाची

२५.क. भाई-'बंधु' कुटुंब-सहोदर सब मिलि यहै बिचारयौ—सा० १-३३६।
ख. मात, पिता, पति, 'बंधु' रहे झुकि, नहिंन रहीं रुकि—नंद०, रास०, पृ० १६१।
२६. 'बंधू' करियौ राज सँभारे—सा० ९-५४।
२७. 'भाई-बंधु' कुटुंब-सहोदर सब मिलि यहै बिचारयौ—सा० १-३३६।
२८.क. जबहिं मोहिं देखत लरिकनि सँग तबहिं खिझत बल 'भैया'—सा० १०-२१७।
ख. भोर के आये दोऊ 'भैया', कीनो नहिंन कलेऊ दैया—नंद०, दशम०, पृ० २४४।
ग. माता पिता 'भैया' सुनें साँझ परत बन माँहिं—चतु० २६।
घ. तब अग्रज हँसि कह्यो 'भैया' हो ! कहो कहा मतौ कीजै—छीत० ५६।
ङ. सकल सिंगार बिचित्र बिराजत सँग सोभित बल 'भैया'—गोविं० २२०।
२९.क. 'भ्रात' मुख निरखि राम बिलखाने—सा० ९-५२।
ख. अहो 'भ्रात' बड़ मंगल भयौ, बिधना तुमरे पूत जु दियौ—नंद०, दशम०, पृ० २१९।
३०. काके तात-मात अरु भ्राता को पति, नेह नवेली—चतु० २४५।
३१.क. यह माँगो संकरषन 'बीर'—परमा० ९००।
ख. जौ जीवैगी कुँवरि, 'बीर'—नंद०, स्याम०, पृ० ११९।
ग. हलधर 'बीर' महाबली तुम साँचे बलरासि—छीत० ५७।
३२. भाई बंधु कुटुम्ब 'सहोदर' सब मिलि यहै बिचारयौ—सा० १३३६।
३३.क. मनु हलधर 'अग्रज' मोहन के, स्रवननि सब्द परे—सा० ३४६५।
ख. जसुमति कहति कि 'अग्रज' तेरौ, यह तौ झूँठ न बोलत मेरौ।
—नंद०, दशम०, पृ० २३३।
ग. तब 'अग्रज' हँसि कह्यो भैया हो ! कहो कहा मतौ कीजै—छीत० ५६।
३४. बूझि देखि बलभद्र 'ददा' सौं कैसी मैं टेरि बुलाई—परमा० २९३।
३५. काकी 'भाभी' बहिन पुनि तिन लीनी उर धार—कृष्ण०, कीर्तन०, भाग १, पृ० १०५।

शब्दों को अटछाप के कवियों ने प्रयुक्त किया है जिनमें ये प्रमुख हैं—बहिन,[३६] भगिनि या भगिनी,[३७] भैनी,[३८] सखि,[३९] स्वसा या सुसा[४०]। 'छोटी बहन' के लिए 'अनुजा'[४१] शब्द का प्रयोग हुआ है। बहन के पति अर्थात् बहनोई को 'भगिनी-भर्त्ता'[४२] कहा गया है। बहन की बेटी के लिए नंददास ने 'भनेंजी' शब्द का प्रयोग किया है[४३]।

छ. *पति-पत्नी*—परिवार में पति - पत्नी का स्थान कदाचित् सबसे महत्वपूर्ण होता है और संभवतः इसी कारण साहित्य में उनके लिए प्रयुक्त शब्दों की संख्या भी सबसे अधिक होती है। 'पति' के लिए अष्टछाप-काव्य में जिन सारगर्भित शब्दों का प्रयोग हुआ है उनमें कंत,[४४] पति,[४५]

३६.क. 'बहिन' देवकी बसुदेव सुजन उनको दीनों त्रास—परमा० ४८३।
ख. 'बहिन' सुभद्रा अरु बल भइया और सखा सब लीन्हें साथ—कुंभन० ६०।
ग. भाई दूज जानि कैं जसुमति 'बहिन' सुभद्रा न्योति बुलावति—गोविं० ८०।
३७.क. रिषि-तनया कह्यौ मोहिं बिबाहि, कच कह्यौ, तू गुरु-'भगिनी' आहि—सा० ६-१७३।
ख. 'भगिनी'-रथ कौ सारथि भयौ, प्रीति बिबस सु दूरि लौं गयौ।
—नंद०, दशम०, पृ० २०२।
३८. सुनहु सूर नाते की भैनी, कहति बात हरषात—सा० १३६०।
३९.क. 'सखि'! कहा कहों तुव रूप की निकाई—कुम्भन० १६०।
ख. 'सखि' कहै बारि फेरि हौं डारी—नंद०, रूप०, पृ० ११।
ग. कहा री 'सखी' तोहिं लागी ढौरी?—चतु० २८२।
घ. 'सखी' नंदनंदन आजु अति बिराजें—गोविं० ४३६।
४०. जिहिं बिस्वास 'सुसा' के तात, सौनक ज्यौं में कीनी घात—नंद०, दशम०, पृ० २१५।
४१. याहि न मारि देखि दिसि मेरी, हौं 'अनुजा' मनुजाधिप तेरी।
—नंद०, दशम०, पृ० ११४।
४२. अहो भगिनि! अहो 'भगिनीभर्ता'! मो सम नहिंन पाप कौ कर्ता।
—नंद०, दशम०, पृ० २१५।
४३. भैया, न डरि, 'भनैंजी' भई—नंद०, दशम०, पृ० २१४।
४४.क. फाग खेलावहु संग 'कंत'। हा हा कर तृन गहत दंत—सा० २८५१।
ख. कमला-'कंत' दियौ हुँकारौ जमुना पार दयौ—परमा० ३४।
ग. मन सिहाय पर-तीय भलें भरि भाँवरि लियो ताहि कौ 'कंत'—चतु० ७३।
४५.क. मातु-पिता-'पति'-बंधु सजन जन, सखि आँगन सब भवन भरयौरी—सा० १८७२।
ख. सास रिसाउ, मातु गृह त्रासौ, हौं 'पति' सों मानहुँ घट फोरयौ—कुंभन० २४१।

पिय,[४६] प्रानपति,[४७] प्रीतम[४८] आदि प्रमुख हैं। पति, सर्वत्र गृह का स्वामी होता है; इसलिए उसे 'गृहपति'[४९] भी कहा जाता है। 'पति' के लिए 'खसम' शब्द का भी प्रयोग सूरदास और परमानंददास ने किया है[५०]। 'पत्नी' के लिए प्रयुक्त होनेवाले शब्दों की संख्या 'पति' के लिए प्रयुक्त शब्दों से लगभग दुगुनी है। 'पत्नी' के लिए प्रयुक्त प्रमुख शब्द ये हैं—अर्धंगी,[५१] घरनी,[५२] तिया,[५३] तिरिया,[५४] दारा,[५५] पत्नी,[५६] बनिता,[५७] बाम,[५८] भामिनी,[५९]

ग. तात, पिता, 'पति' बंधु रहे झुकि, नहिंन रहीं रुकि—नंद०, रास०, पं० १३६।
घ. काके तात-मात अरु भ्राता को 'पति', नेह नवेली—चतु० २४५।
४६.क. गौर बरन मेरे देवर सखि, 'पिय' मम स्याम सरीर—सा० ६-४४।
ख. तुम 'पिय'! मेरे सकल दुख हरहु—कुंभन० २०६।
ग. जौ न मनोरथ-रथ तहँ होई, क्यौं पहुँचै 'पिय' पै तिय सोई।
—नंद०, रस०, पृ० ५५, पं० ४८१।
घ. 'पिय'-सनमुख गवनति गजगामिनि—चतु० ३०२।
४७. तबहिं तें मोहिं कछु न सुहाइ 'प्रान-पति' जोये परै कल ना—कुंभन० २२५।
४८.क. जा कौ 'प्रीतम' गमन्यौ चहै, भीत भई कछुवै नहिं कहै—नंद०,रस०, पृ० ५६।
ख. 'प्रीतम' प्रीति तें बस कीनों—छीत० ११२।
ग. 'प्रीतम' प्रीत ही तें पैये—गोविं० ३४३।
४९. अब तो काज सकल बिसराए 'गृहपति' तें नाहिंन सकुचाति—कुंभन० १९४।
५०.क. सूरदास प्रभु झगरौ सीख्यौ ज्यौं घर 'खसम' गुसैयाँ—सा० ७३४।
ख. परमानन्द त्यौं हठ मंड्यौ ज्यों घर 'खसम' गुसैयाँ—परमा० ७०१।
५१. 'अर्धंगी' पूछत मोहन सौं कैसे हितू तुम्हारे—सा० ४२३०।
५२. तरुवर मूल अकेली ठाढ़ी, दुखित राम की 'घरनी'—सा०९-७३।
५३.क. अस्मय-तन गौतम-'तिया' कों साप नसावै—सा० १-४।
ख. इहि बिधि ब्रज 'तिय' सुख बिस्तरै—नंद०, दशम०, पृ० २४३।
५४. 'तिरिया' रैनि घटे सचु पावै—सा ३३७३।
५५. पर-'दारा' कैं जाइ, आपु कत लज्जा हारे—सा० १६१८।
५६. मनु रघुपति भयभीत सिंधु 'पत्नी' प्यौसार पठाई—सा० ९-१२४।
५७.क. सुत-संतान-स्वजन-'बनिता'-रति, घन समान उनई—सा० १-५०।
ख. देखि-देखि ब्रज-'बनिता' सब मिलि मोतिनि चौक पुराई—कुंभन ६०।
ग. अद्भुत बनिता-बेष बनाइ, अँग-अँग रूप अनूप चुचाइ—नंद०, दशम०, पृ० २२१।
घ. ब्रज 'बनिता' मन-रंजन कारन रास बिलासी नमो नमो—गोविं० १०।
५८. सूरदास-प्रभु-रूप चकित भए, पंथ चलत नर-'बाम'—सा० ९-४४।
५९. गहि पद 'सूरदास' कहै 'भामिनि', राज बिभीषन पायौ—सा० ९-११९।

सजनी,[६०] स्वामिनी,[६१] त्रिय[६२] आदि। पति-पत्नी के लिए प्रयुक्त होनेवाले उक्त शब्द गृहस्थी में उनकी स्थिति और अधिकार के भी द्योतक हैं। घर के आंतरिक क्षेत्र में पत्नी का ही पूर्ण अधिकार होता है; अतः उसे 'स्वामिनी', 'घरनी' आदि की संज्ञा प्रदान की गयी है। पत्नी को पति की 'अर्धंगी' या 'अर्धांगिनी' भी कहा गया है।

ज. *देवर-देवरानी*—पति का छोटा भाई 'देवर' कहलाता है और उसकी पत्नी देवरानी। 'देवर' की चर्चा[६३] अष्टछाप-काव्य में है, 'देवरानी' की नहीं।

झ. *ननद-ननदोई*—पति की बहन को 'ननद' या 'ननदी'[६४] कहते हैं। पति की बहन का पति 'ननदोई' कहलाता है, परंतु अष्टछाप के कवियों ने इस शब्द का प्रयोग नहीं किया है।

ञ. *पुत्र-पुत्रवधू*—पुत्र के लिए कुँवर,[६५] छोरा,[६६] छोहरा,[६७] डिंभ,[६८] ढोटा,[६९]

६०.क. उनके बचन सत्य करि 'सजनी', बहुरि मिलैंगे आई – सा० ६-४४।
 ख. कुसुम बीजना ब्यार ढोरै 'सजनी' परमानंद—परमा० २४७।
६१. कौसिल्या सौं कहति सुमित्रा, जनि 'स्वामिनि' दुख पावै—सा० ६-१५२।
६२. ऐसी कृपा करी नहिं, जब 'त्रिय' नगन समय पति राखी—सा० ५६६।
६३. गौर बरन मेरे 'देवर' सखि, पिय मम स्याम सरीर—सा० ६-४४।
६४.क. सासु 'ननद' घर त्रास दिखावैं—सा० १६२१।
 ख. 'ननदी' तौ न दिये बिनु गारी रहति—सा० १६१६।
 ग. जाने सास 'ननद' बैरिनि सब, बन में आजु न भटकौ—परमा० ३७४।
 घ. सासु 'ननद' अरु पास-परोसिनि हँसि बहु बार कह्यौ—चतु० १५७।
६५. नंदराइ को 'कुँवर' लाडिलो सुरपति गर्वप्रहारी—गोविं०१२२।
६६. काहू की तू मानें नाहीं कौन को है 'छोरा'—चतु० २५।
६७.क. मो आगे कौ 'छोहरा', जीत्यौ चाहै मोहिं—सा० १६१८।
 ख. अरी वह नन्द महर कौ 'छोहरा' बरजो नहिं मानें—गोविं० १३१।
६८. गहि मनि खंभ 'डिंभ' डग डोलै, कल-बल बचन तोतरे बोलै—सा० १०-११७।
६९.क. जसुमति 'ढोटा' ब्रज की सोभा, देखि सखी कछु औरै गोभा—सा० १०-३२।
 ख. 'ढोटा' भयो नन्द बाबा कें सुखनिधि स्याम सरीर—परमा० ४।
 ग. इनि 'ढोटा' हौं उहकी री मेरी माई—कुंभन० २२७।
 घ. तौ मैं 'ढोटा' नन्द कौ, पाइन परि परि देहिं—नंद०, स्याम०, पृ० ११७।
 ङ. नंदराइ गृह 'ढोटा' जायो दधि लै छिरकत करत बधाई—गोविं० १३।

तनय,[७०] नंदन,[७१] पुत्र,[७२] पूत,[७३] बालक,[७४] बेटा,[७५] लरिका,[७६] लला,[७७] लालन,[७८] सुत[७९] आदि शब्द अष्टछाप-काव्य में प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार

७०—नंद परम आनन्दहिं पाइ, लीनो 'तनय' कंठ लपटाइ—नन्द०, दशम०, पृ० २२४।
७१.क. ठाढ़ी निरख निकट तन मन सों नन्द-'नन्दन' की प्रीति न थोरी—परमा० ७०४।
ख. नंद-'नँदन' बृषभानु-नंदिनी बैठें फूल मंडनी राजैं—छीत० ६१।
७२.क. त्राहि-त्राहि कहि, 'पुत्र-पुत्र' कहि, मातु सुमित्रा रोयौ—सा० ६-१५१।
ख. नन्द महर के 'पुत्र' भयो है आनंद-मंगल गाई—परमा० ३।
ग. 'पुत्र' सनेहमई रसमई, माया जननि उपर फिर गई—नंद०, दशम०, पृ० २२८।
घ. 'पुत्र' तिहारे कौ हौं गाहक भूत भबिष्र बर्तमान—चतु० ५।
ङ. 'पुत्र' सनेह चुचात पयोधर पुलकित अति हरखानी—गोविं० २८०।
७३.क. सुन्दर नन्द महरि कै मंदिर, प्रगट्यो 'पूत' सकल सुख कंदर—सा० १०-३२।
ख. जसोदा चंचल तेरो 'पूत'—परमा० १३४।
ग. बाप देत कर कंस रजा कों, 'पूत' सँगाती डोलत मैंडे—कुंभन० १६।
घ. मैया लाल सौं कहै, 'पूत'! हौं नाकैं आई—नन्द०, स्याम०, पृ० ११६।
ङ. जदुकुल-तिलक प्रगट प्रभु गोकुल, नन्द-महरि घर 'पूत'—चतु० ५।
च. लेहौं बधाई मन भाई अब नन्द 'पूत' सुनि आयो—गोविं० ६।
७४.क. पसु पंछी तृन कन त्यागौ अरु 'बालक' पियौ न पयौ—सा० ६-४६।
ख. 'बालक' हते निगड़ में राखे कारागृह में बास—परमा० ४८३।
ग. देखो या 'बालक' की लीला कोटिक बिघ्न नसाए—कुंभन० १०।
घ. काल के मुख मैं 'बालक' गयौ—नंद०, दशम०, पृ० २२७।
ङ. करि करुना बसुदेव देवकी अद्भुत 'बालक' दरस दिखाई—गोविं० १३।
७५. तुम अक्रूर बड़े के 'बेटा' अति कुलीन मतिधीर—परमा० ४८३।
७६.क. कान तोरि वह लेत सबनि के, 'लरिका' जानत जाहि—सा० १०-२२०।
ख. 'लरिका' जूथ संग मनमोहन बालक तनक-तनक—परमा० ८७।
७७.क. छैल छबीले 'लाल' कहत नंदराय सों—परमा० २७२।
ख. कीरति कही महरि! यह लली 'लला' की सगाई कीजै—कुंभन० १०।
ग. बलि गई नंद के 'लला'—चतु० २२।
७८. हमरी लली, तुम्हारे 'लालन' यह जग जाए परम अनूप—कुंभन० १०।
७९.क. 'सुत' संतान-स्वजन-बनिता-रति घन समान उनई—सा० १-५०।
ख. जिहिं सनेह 'सुत' पति बिसराये हा हरि हा हरि करत चली—परमा० २१५।
ग. प्रमुदित मन 'सुत' के गुन गावति, राग बिभास सरस मृदु बानी—गोविं० २२७।

पुत्र-बधू को बहुरिया,[८०] बधु या बधू[८१] कहा गया है।

ट. *पुत्री-जामाता*—अष्टछाप के कवियों ने पुत्री को कुँवरि,[८२] तनया,[८३] नंदिनी,[८४] बिटिया,[८५] बेटी,[८६] लली,[८७] सुता[८८] आदि शब्दों से संबोधित किया है। पुत्री का पति 'जामाता'[८९] कहा गया है। परिवार में 'जामाता' का पर्याप्त आदर किया जाता है ; वह 'मान्य' होता है। वसुदेव-देवकी के विवाह के अवसर पर जब कंस बहन-बहनोई का अपमान करने को आगे बढ़ता है तभी लोग उसको दोनों के 'मान्य' होने की बात समझाते[९०] और उनका अपमान करने से रोकते हैं।

ट. *अन्य संबंधी*—समधी-समधिनि और सौति का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में और हुआ है जो ऊपर के वर्गों में नहीं आ सके हैं। अतएव उनकी चर्चा स्वतंत्र रूप से करना है।

८०. मैया मोहिं ऐसी 'बहुरिया' भावै—चतु० १४६।
८१.क. कबहुँक कृपावंत कौसिल्या, 'बधू बधू' कहि मोहिं बुलैहैं—सा० ६-८१।
ख. जे वे गोप 'बधू' हीं व्रज में तेइ अब बेद-रिचा भई येह—छीत० १५।
ग. गोप 'बधू' देखन सब निकसीं कियो संकेत बताई सैन—गोविं० ८३।
८२. प्रगटी 'कुंवरि' श्री राधा जाकें आनंदनिधि सुखदाई—कुंभन० १०।
८३.क. सुंदरी बृषभानु-'तनया', नैन चपल कुरंग—सा० २८३५।
ख. तरनि-'तनया'-तीर मरकत मनि जु स्याम तमाल—चतु० ३३।
ग. सुंदर सुभग तरनि-'तनया' तट खेलत हैं हरि होरी—गोविं० १२४।
८४.क. दृष्टि परे बृषभान 'नंदनी', अरुझे नयन निरवार न जाई—परमा० ७०३।
ख. नंदनँदन, बृषभानु-'नंदिनी' बैठे फूल-मंडनी राजैं—छीत० ६१।
८५. बड़ी बार की उठी बहू 'बिटिया', कोउ है भोरी कोउ है सयानी—कुंभन० १८४।
८६.क. तू बृषभान गोप की 'बेटी', मोहन लाल भाव तें भेंटी—परमा० ४५५।
ख. अति सतराति क्योंऽब छूटै बड़े गोप की 'बेटी'—कुंभन० ११।
८७. बरसगाँठि बृषभान 'लली' की बहुरि कुसल सों आई—कुंभन० ६।
८८.क. द्रुपद-'सुता' दिन हरि सुमिरै नृपति नगन बपु करि न छियो—परमा० ८१०।
ख. कीरति-'सुता'-बदन बिधु देख्यो, निरखि-निरखि सुख पाई—कुंभन० १०।
ग. सुत जसुमति की ढिंग पौढ़ाइ, 'सुता' परी तहँ तैं इक पाइ।
—नंद०, दशम०, पृ० २१३।
८९. तनया 'जामातनि' कौं समदत नैन नीर भरि आए—सा० ६-२७।
९०. तुम्हारे 'मान्य' बसुदेव-देवकी—सा० ६२२।

अ. *समधी-समधिनि*—वर और कन्या पक्ष के गुरुजन परस्पर 'समधी'[९१] कहलाते हैं। 'समधी' वर्ग की पत्नियाँ 'समधिनि' कही गयी हैं[९२]।

आ. *सौति*—यों तो अनेक पौराणिक राजाओं की चर्चा अष्टछाप-काव्य में है जिनकी कई-कई पत्नियाँ परस्पर 'सौति' थीं, स्वयं श्रीकृष्ण की ही अनेक रानियों का नामोल्लेख अष्टछाप-काव्य में है; परंतु वे परस्पर 'सौति' नहीं कही गयी हैं। इस शब्द का प्रयोग तो दो प्रसंगों में विशेष रूप से हुआ है। पहले प्रसंग में सीता वनवासिनी स्त्रियों से कहती हैं कि सासु की 'सौति'[९३] ने हमको वन भेजा है। दूसरे प्रसंग में 'सौति' शब्द का प्रयोग गोपियों ने उस कुब्जा के लिए किया है जो श्रीकृष्ण का प्रेम पाकर अपने सौभाग्य पर इठला गयी है और 'चाम के दाम' चलाने जैसा अन्याय का कार्य कर रही है[९४]। दोनों प्रसंगों से स्पष्ट है कि अष्टछापी कवि 'सौति' का प्रयोग ईर्ष्यालु या कलहप्रिय सपत्नियों के अर्थ में करते हैं, सामान्य सपत्नी के अर्थ में नहीं।

इ. *अनेक संबंध-सूचक 'तात' शब्द*—अष्टछाप-काव्य में 'तात' शब्द का प्रयोग कई संबंधों के लिए हुआ है, जिनमें तीन मुख्य हैं—पिता, पुत्र और प्रभु।

क्ष. *पिता के लिए*—श्रीराम छोटे भाई भरत को समझाते हुए कहते हैं—

चौदह बरस तात (पिता) की आज्ञा मोपै मेटि न जाई[९५]।

त्र. *पुत्र के लिए*—नंद जी पुत्र श्रीकृष्ण के संबंध में यशोदा से कहते हैं—

कहत नन्द जसुमति सुनि बात

अब अपने जिय सोच करति कत, जाके त्रिभुवन पति से तात[९६]।

९१. ताल-पखावज चले बजावत, 'समधी' सोभा कौ—सा० १-१५१।

९२. इहि भाँति चतुर सुजान 'समधिनि' सकति रति सब सौं करै।

× × × ×

'इहिं भाँति' समधिनि संग निसि दिन फिरति भ्रम भूले भए—सा० ४१८७।

९३. सासु की 'सौति' सुहागिनि सो सखि अतिहीं पिय की प्यारी।

अपने सुत कौं राज दिवायौ, हमकौं देस निकारी—सा० ६-४४।

९४. सिर पर 'सौति' हमारैं कुबिजा चाम के दाम चलावै—सा० ३६३६।

९५. 'सूरसागर', नवम स्कंध, पद ५३।

९६. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद ६८६।

ञ. *प्रभु अथवा स्वामी के लिए*—पतित भक्त अपने 'प्रभु' से कहता है—

जानिहौं अब बाने की बात।
मोसौं पतित उधारौ प्रभु जौ, तौ मनिहौं निज तात[९७]।

ड. *संबंध-स्थान सूचक शब्द*—प्रमुख संबंधों के आधार पर संबंधियों के घर का भी नामकरण कर लिया जाता है। इसीसे नानी के घर को 'ननिहाल' या 'ननसार',[९८] लड़की के ससुर के घर को 'पतिगृह',[९९] और माता के घर को 'मायका' या 'प्यौसार'[१००] कहा गया है।

ढ. *परिवार के दास-दासी*—अत्यधिक संपर्क में रहने के कारण दासी, दास, सेवक आदि भी परिवार के ही अंग हो जाते हैं। इनके लिए अष्टछाप-काव्य में दास,[१] दासी,[२] भृत्य,[३] लौंडी,[४] सेवक[५] आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

ण. *परिवार के अतिथि*—भारतीय परिवार में अतिथि का सत्कार विशेष आदर और श्रद्धा से किया जाता रहा है। अष्टछाप के कवियों ने भी 'अतिथि' के लिए 'पाहुनो'[६] और उसके स्त्रीलिंग-रूप 'पाहुनी'[७] का प्रयोग किया है।

९७. 'सूरसागर', प्रथम स्कंध, पद १७९।
९८. हौं 'ननसार' गई ही न्योतैं बार-बार बूझत ब्रज बालै—परमा० ५१६।
९९. 'पतिग्रह' काज सबै बिसराये नंदनंदन दूत के छोर—परमा० ४१८।
१००.क. मनु रघुपति भयभीत सिंधु पत्नी 'प्यौसार' पठाई—सा० ६-१२४।
ख. बरसानौ 'प्यौसार' हमारौ अपजस तैं कबहूं न डरौं री—परमा० ८८४।
१. तृषित हैं सब दरस कारन, चतुर चातक 'दास'—सा० १०-२१८।
२.क. चौदह सहस किन्नरी जेती, सब 'दासी' हैं तेरी—सा० ९-७९।
ख. बर बरनी, तरुनी रँग भीनी, 'दासी' बीनि दोइ सत दीनी।
—नंद०, दशम०, पृ० २०२।
३. प्रेम मत्त फिरत 'भृत्य', गुनत गुन तिहारे—सा० १०-२०५।
४. 'लौडी' की डौंड़ी जग बाजी, बढ़यौ स्याम अनुराग—सा० ३६५२।
५. इन्द्र समान हैं जाके 'सेवक' नर बपुरे की कहा गनी—सा० १-३९।
६. सब मिलि गईं जसोदा के घर, कौन तुम्हारे 'पाहुनो' आयो—परमा० ४८२।
७.क. 'पाहुनी', कर दै तनक मह्यौ—सा० १०-१८२।
ख. ग्वालिनि एक 'पाहुनी' आई ताकी यह गति कीनी—परमा० ४६४।

२. *पारिवारिक जीवन-चर्या*—

अष्टछाप-काव्य में व्रजवासियों का ही अधिक वर्णन मिलता है। व्रज के अधिकतर निवासी जाति के अहीर थे। उनका मुख्य व्यवसाय गोपालन, दूध-दही बेचना आदि था। स्त्री-पुरुष दोनों को ही दिन भर कार्य करना पड़ता था। छोटे बालक भी गृह-कार्यों में सहायता करते थे।

क. *पुरुषों के कार्य*—पुरुष प्रातःकाल उठकर गायों की सानी-पानी करके, खरिक में ले जाकर उन्हें दुहते हैं। सभी ग्वाले इस कार्य को बड़ी तत्परता से करते हैं। गोपों के प्रधान नंद जी भी अपनी गायों को स्वयं ही दुहते हैं और कृष्ण को भी वैसा करना सिखाते हैं[८]। अन्य ग्वाल-बाल भी बालक कृष्ण को प्रात होते ही गाय दुहने आने को उत्साहित करते हैं[९]। गायें दुहने का कार्य प्रातः और सायं,[१०] दोनों ही समय होता है। उसके बाद ग्वाल-बाल गायों को चराने[११] ले जाते हैं। यह कार्य सभी ग्वालों के बालक करते हैं। नंदनंदन कृष्ण, भाई बलराम के साथ समस्त ग्वाल-बालों को लेकर गाय चराने जाया करते हैं।

ख. *स्त्रियों के कार्य*—स्त्रियों का कार्य प्रातःकाल दही से माखन निकालना

८. बाबा मोकौं दुहन सिखायौ—सा० १२८५।
९.क. सूर स्याम सों कहत ग्वाल सब, धेनु 'दुहन' प्रातहि उठि आयहु—सा० ४०१।
ख. तनक कनक की दोहिनी दै री मैया।
तात मोहिं सिखवन कह्यौ 'दुहन' धौरी गैया—परमा० ११८।
ग. छबीलौ लाल 'दुहत' है धेनु धौरी—कुंभन० २०८।
घ. देहु री माई! खरिक जान, गो 'दोहन' की टरति बार—चतु० २७५।
ङ. गाइ 'दुहावन' के मिसि आवत—परमा० ८६८।
१०.क. गाइ 'दुहन' समयौ भयौ, रही रैन अब थोर—नंद०, परि०, पृ० ४४३।
ख. कहा री सखी! तोहिं लागी ढौरी!
'संध्या' समै खरिक बीथिनि में इत उत झाँकति डोलति दौरी—चतु० २८२।
ग. सन्ध्या समै खरिक में ढाढ़ौ सखी! करत 'गोदोहन'—परमा० ७००।
११.क. मैं अपनी सब 'गाइ चरैहौं'।
प्रात होत बल कैं सँग जैहौं, तेरे कहैं न रैहौं—सा० ४२०।
ख. प्रथम 'गोचारन' चले कन्हाई—परमा० १२०।
ग. जब तें री! 'गाइ चरावन' जाइ—चतु० २२६।

है। गोप-बधुएँ और बालाएँ दही मथने लगती हैं[१२]। घर-घर से 'रई' चलने की आवाज आती है[१३]। प्रातः ही राधा जब यशोदा के घर जाती है तो वह उससे दधि मथने के लिए कहती हैं[१४]। दधि-मंथन के पश्चात् गोप-बालाएँ गोरस,[१५] दधि या दही,[१६] माखन और घृत के माट[१७] भरकर बेचने के लिए निकटस्थ नगर मथुरा को जाती हैं। गोपियों का यही मुख्य दैनिक कार्य है जिसका वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। कृष्ण की दान-लीला मुख्यतः इसी कार्य से संबंधित है। दही बेचने जाती हुई गोपियों को जब कृष्ण दही-माखन खाने के

१२. रवि के उदै कमल परकासे, भ्रमर उठ चले तमचुर भासे।
गोप बधू 'दधि मन्थन' लागी हरि जू की लीला रस पागी—परमा० ६००।

१३.क. प्रात समय अब नाहिंन सुनियत, घर-घर चलत 'रई'—परमा० ५३३।
ख. वैसेई धरयौ दधि बिना मथनु किए देहु जसोमति नेंकु अपनी 'रई'—चतु० १५६।
हमरे ह्यॉं ढूँढ़ि रही उठि अँधियारे हूँ, पावत न भवन माँहिं कहाँ धौं गई।

१४. महरि मुदित हँसि यौं कह्यौ, 'मथि' भान दुहाई—सा० ७१५।

१५.क. हौं परभात समै उठि आई कमलनयन देखन तुम्हरो मुख।
'गोरस' बेचन जात मधुपुरी लाभ होय मारग पाऊँ सुख—परमा० ५६८।
ख. हमरो दान दै गुजरेटी!
नित तू चोरी बेचति 'गोरस' आजु अचानक भेंटी—कुंभन० ११।
ग. तुम चले जाहु ढोटा अपने मग कित रोकत ब्रज बधुन बाट।
कहत कहा सोई कहो जु दूरि भए जिन परसौ 'गोरस' के माट—गोविं० ३३।

१६.क. अब आवति ह्वै हैं 'दधि' लीन्हे, घर घर तैं ब्रज नारी—सा० २११२।
ख. हरि जू को दरसन भयो सबेरो।
बहुत लाभ पाऊँगी री माई 'दह्यौ बिकैगो' मेरो—परमा० ५६६।
ग. दान ब्रजराज कौ लाडिलौ लेत है।
धरें सिर माट 'दधि' चलो वाही डगर—कुंभन० २२।
घ. कहो किनि कीनों दान 'दही' कौ—चतु० २०।
ङ. होत अबार 'दधि' बेचन कों मारग मों ठान्यौ झगरौ—गोविं० ३२।

१७.क. कान्ह कहत, दधि-दान न दैहौ?
लैहौं छीनि दूध-दधि-'माखन', देखत ही तुम रैहौ—सा० १५०८।
ख. ग्वालिनि यह भली नहिं करति।
दूध, दधि, 'घृत' नितहिं बेचति दान देत डरति—सा० २५०४।

लिए रोकते हैं तब गोपियाँ इसी कारण खीझती हैं कि उन्हें दही बेचने की देर हो रही है[१८]।

दूध-दही बेचकर घर लौटने के बाद गोपियों को अन्य गृह-कार्य भी करने पड़ते हैं। अपने कार्य में बाधा डालनेवाले श्रीकृष्ण से वे कहती हैं कि तुम भले ही खाली हो, हमें तो रात-दिन घर के कार्य करने पड़ते हैं[१९]। बाल-बच्चों की देखभाल के अतिरिक्त नदी से पानी भरने का काम भी स्त्रियों को ही करना पड़ता है। इसके लिए पास-पड़ोस की सब स्त्रियाँ एकत्र होकर पनघट जाती हैं[२०]। श्रीकृष्ण की पनघट-लीला में भाग लेने का सौभाग्य पनघट पर जानेवाली गोपियों को ही प्राप्त होता है।

३. पारिवारिक शिष्टाचार—

सामान्यतया पारिवारिक शिष्टाचार का विशद चित्रण प्रबंध-काव्यों में ही सुचारु रूप से होता है, गीतिकाव्य में कथा-प्रसंगों की न्यूनता के कारण उसके लिए कम अवकाश रहता है। प्राय: समस्त अष्टछाप-काव्य मुक्तक गेय रूप में होने के कारण पारिवारिक शिष्टाचार-परिचायक स्थल उसमें बहुत कम हैं। नंददास के जिन दो-एक काव्यों में—यथा भ्रमरगीत, रासपंचाध्यायी आदि—एक ही प्रसंग को अधिक विस्तार दिया गया है, वहाँ भी कथा के सामान्य पारिवारिक या लौकिक पक्ष पर कवि की दृष्टि न रहने के कारण शिष्टाचार के उदाहरण उसमें भी नहीं के बराबर ही हैं। अन्य विषयों की तरह इस विषय के भी सबसे अधिक उदाहरण अंधकवि सूरदास के ही काव्य में मिलते हैं।

यों तो पारिवारिक सुख-शांति के लिए सभी को एक दूसरे के साथ प्रेम और आदर का व्यवहार करना वांछनीय होता है, तथापि मर्यादा-निर्वाह की दृष्टि से

१८.क. हमकौं जान देहु दधि बेंचन, पुनि कोऊ नहिं लैहै।
गोरस लेत प्रातहीं सब कोउ सूर धरयौ पुनि रैहै—सा० १५०६।
ख. होत अबार 'दधि' बेचन कों मारग मों ठान्यौ झगरौ—गोविं० ३२।
१९. तुम तो ठाले फिरत हो जु निसि दिन हम 'ग्रह-काज' करें—गोविं० ३७।
२०.क. द्रुम कैं ओट रहे हरि आपुन, 'जमुना-तट' गई बाम।
जल हलोरि गागरि 'भरि' नागरि, जबहीं सीस उठायौ—सा० १४०४।
ख. कन्हैया माई! 'पनघट' बाट रोके रहतु—नन्द०, परि०, पृ० ४३४।

परिवार में जो व्यक्ति आयु या पद में बड़े होते हैं, छोटों का उनके प्रति सम्मान दिखाना और शालीन व्यवहार करना ही 'शिष्टाचार' के अंतर्गत आता है। छोटों की व्यावहारिक शालीनता देखकर बड़ों को संतोष होता है और उनके हृदय से जो आशीर्वाद निकलता है वह छोटों के लिए सदैव कल्याणकारी समझा जाता है।

क. *अभिवादन के विविध रूप*—बड़ों के प्रति आदर प्रदर्शित करने का सबसे प्रचलित रूप है अभिवादन करना। पारिवारिक गुरुजनों को अभिवादन करने के लिए अष्टछाप-काव्य में 'पालागन', 'प्रनाम' और 'जुहार' करने और 'हाथ जोड़ने' का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है।

अ. *पालागन*—अभिवादन के लिए 'पालागन' कहने में पूज्य व्यक्ति के चरण-स्पर्श करने का भाव निहित रहता है, यद्यपि यह कहने के साथ चरणों का स्पर्श किया नहीं जाता। इसी 'पालागन' को और स्पष्ट करके इसके स्थान पर कभी-कभी 'पायँ लगना' भी कहा जाता है। जो व्यक्ति सामने नहीं है उसके प्रति भी विनम्रता सूचित करने के लिए 'पालागन' या 'पायँ लगने' की बात अष्टछाप-काव्य में अनेक स्थानों पर कही गयी है। लक्ष्मण की भाभी सीता जब अशोक वाटिका में हैं तब हनुमान आकर उनका 'सविनय पालागन' सीता से कहते हैं[२१]। पंथी द्वारा नंदरानी ने देवकी को 'पालागन' कहलाया है[२२]। श्रीकृष्ण ऊधव के द्वारा पिता नंद[२३] और माता यशोदा के लिए 'पालागन' कहलाते हैं[२४]।

'पालागन' का शब्दार्थ लेकर स्त्रियाँ जिनके प्रति आदर रखती हैं उनके 'पायँ लगने' की बात कहती हैं। श्रीकृष्ण जब मथुरा जाते हैं और उनका मामा कंस उनसे शत्रुता का व्यवहार करता है, तब मथुरा के स्त्री-पुरुष उसके आचरण को अनुचित बताते हुए उसे अपनी बहन देवकी के 'पायँ लगने' की सलाह देते

२१ लछिमन 'पालागन' कहि पठयौ, हेत बहुत करि माता—सा० ९-८७।
२२. हौं इहाँ गोकुल ही तैं आई।

× × × ×

तुमसौं महर जुहार कह्यौ है, 'पालागन' नँदरानी—सा० ३१७८।
२३. बाबा नन्दहिं 'पालागन' कहि, पुनि पुनि चरन गहौगे—सा० ३४४०।
२४. ता पाछैं मेरौ 'पालागन' कहियो जसुमति माइ सौं—सा० ३४४९।

हैं[२५]। इसी प्रकार गोपियों ने ऊधव के द्वारा श्रीकृष्ण से 'पायँ लगने' की बात बड़ी अनुनय-विनय के साथ कहलायी है[२६]। श्रीकृष्ण के पास संदेश भेजती हुई यशोदा ऊधव से विनती करती हुई 'पा लगने' की[२७] और देवकी के प्रति 'पालागन' करने की बात कहलाती है[२८]। जिस ब्राह्मण के द्वारा रुक्मिणी श्रीकृष्ण के पास प्रेम-पत्र भेजती हैं; पहले 'पालागौं' कहकर उसका अभिवादन करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझती हैं[२९]।

'पालागन' कहने या 'पायँ लगने' का ही एक रूप है 'चरण' स्पर्श करना या पकड़ना। पूज्य व्यक्ति के प्रति सामान्य स्थिति में श्रद्धा प्रकट करने के लिए तो 'चरण स्पर्श' करने की बात कही ही जाती है, परंतु भावावेश की दशा में विनयी व्यक्ति पूज्य पुरुष या स्त्री के 'चरण पकड़' भी लेता है। श्रीकृष्ण का संदेश लेकर जब अक्रूर पांडवों के पास जाते हैं, तब श्रद्धा के आवेश में वे उनकी माता कुंती के चरण 'पकड़' लेते हैं[३०]। इसी प्रकार अत्यधिक भावावेश में चरणों से लिपट जाने की बात अष्टछाप-काव्य में कही गयी है। चित्रकूट में अग्रज राम के दर्शन करते ही अनुज भरत भक्ति-विह्वल होकर उनके चरणों से 'लिपट' जाते हैं[३१]।

आ. प्रणाम या प्रनाम—कभी कभी 'पालागन' के स्थान पर 'प्रणाम' शब्द भी कहा जाता है। अष्टछापी कवियों ने सामान्यतया इस शब्द का प्रयोग ऐसे व्यक्तियों से कराया है जो साक्षर हैं। चित्रकूट में भरत और शत्रुघ्न अयोध्यावासियों के साथ जब राम, सीता और लक्ष्मण से विदा लेते हैं तब दोनों भाई अग्रज को 'प्रणाम'

२५. बहन देवकी 'पायँ लागियै', बसुदेव बंदि छिड़ाइये—परमा० ५०८।
२६. ऊधौ, इतनी जाइ कहौ।
सबै बिरहिनी 'पा लागति' हैं, मथुरा कान्ह रहौ—सा० ४०६७।
२७. ऊधौ 'पा लागति' हौं कहियौ स्यामहिं इतनी बात—सा० ४०८२।
२८. इतनी सील करैं 'पालागौं' यहै निहोरौ मानैं - सा० ४०८६।
२९. द्विज, पाती दै कहियौ स्यामहिं।
× × ×
पालागौं तुम जाहु द्वारिका, नन्दनन्दन के धामहिं—सा० ४१६८।
३०. ....पुनि पांडव गृह आए।
पकरि चरन कुंती के पुनि पुनि, सब गहि कंठ लगाए—सा० ४१६०।
३१. देखि दरस 'चरननि लपटाने', गदगद कंठ न कछु कहि जाइ—सा० ९-५१।

करते हैं[३२]। ऊधव द्वारा पत्र और संदेश भिजवाते हुए श्रीकृष्ण सबसे पहले पिता नंद को 'प्रनाम' कहलाते हैं[३३]।

इ. *जुहार*—पारिवारिक शिष्टाचार के रूप में 'जुहार' करने की बात अष्टछाप-काव्य में कम मिलती है। पंथी के द्वारा संदेश भेजते हुए नंद महर, श्रीकृष्ण की माता देवकी के प्रति 'जुहार' कहलाते हैं[३४]।

ई. *हाथ जोड़ना और बिनती करना*—छोटों द्वारा बड़ों को किये गये प्रत्येक अभिवादन में यों तो विनय का भाव निहित रहता ही है और उसका प्रदर्शन प्रायः हाथ जोड़कर किया जाता है, परंतु कभी - कभी, विशेष कर बड़ों को पत्र लिखते समय, इन बातों का स्पष्ट उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है। ऊधव के द्वारा नंद-यशोदा को पत्र भिजवाते समय श्रीकृष्ण पिता से 'बिनै' और माता से 'कर-जोरने' की बात लिखते हैं[३५]।

ख. *आशीर्वाद के विविध रूप*—अभिवादन—पालागन, प्रणाम, जुहार आदि—के उत्तर में गुरुजन अथवा जिन्हें अभिवादन किया गया है वे, आशीर्वाद या असीस देते, आलिंगन करते और प्रीति जनाते हैं।

अ. *आशीर्वाद या असीस*—छोटे जब अभिवादन करते हैं तो बड़े उनकी कल्याण-कामना करते हुए प्रत्युत्तर में आशीर्वाद या असीस देते हैं। किसी स्नेह-भाजन को जब संदेश कहलाया जाता है, तब भी आशीर्वाद या असीस देकर अपनी बात कहने की प्रथा भारतीय परिवार में सदा से प्रचलित रही है। लक्ष्मण जब सीता को 'पालागन' कहलाते हैं तब उनके सामने न रहने पर भी सीता अपने सूर्यवंशी देवर को सूर्यदेव को साक्षी करके असीस देती हैं[३६]। श्रीकृष्ण को ऊधव द्वारा संदेश

३२. भरत-सत्रुहन कियौ 'प्रनाम', रघुबर तिन्ह कंठ लगायौ—सा० ९-५५।
३३. पहिलैं 'प्रनाम' नन्दराइ सौं—सा० ३४४६।
३४. हौं इहाँ गोकुल ही तें आई।
×   ×   ×   ×
तुमकौं महर 'जुहार' कह्यौ है, पालागन नन्दरानी—सा० ३१७८।
३५. स्याम कर पत्री लिखी बनाइ।
नन्द बाबा सौं 'बिनै', 'कर जोरि' जसुदा माइ—सा० ३४३६।
३६. 'दई असीस' तरनि सन्मुख ह्वै, चिरजीवौ दोउ भ्राता—सा० ९-८०।
विशेष—यहाँ 'दोउ भ्राता' से तात्पर्य पति राम और देवर लक्ष्मण से है। देवर को

भेजती हुई यशोदा भी सबसे पहले उनको असीस ही कहलाती हैं[३७]।

आ. आलिंगन करना (कंठ लगाना)—समवयस्क स्त्री-पुरुष सखा-सखियों को भावावेश में प्रायः कंठ, गले या छाती लगाकर अर्थात् उनका आलिंगन करके अपना प्रेम प्रदर्शित करते हैं। कभी कभी प्रणामकर्ता यदि विनयावेश में अथवा अन्य किसी कारण से पैरों पर इस प्रकार गिर पड़ता है कि स्वयं नहीं उठता तब आयु में बड़ा व्यक्ति उसे उठाकर छाती या गले से लगा लेता है। चित्रकूट में पहुँचकर भरत जब अग्रज राम के चरणों से लिपट जाते हैं तब राम उन्हें उठाकर हृदय से लगा लेते हैं[३८]। ऊधव द्वारा व्रजवासियों को भिजवाये गये पत्र में अपने सखाओं गोप-ग्वालों को श्रीकृष्ण ने 'हिलि-मिलि कंठ लगाने' की बात लिखी है[३९]। इसी प्रसंग में श्रीदामादि ग्वालों को 'कोतौ भेंटने' की बात भी उन्होंने कही है[४०]। श्रीकृष्ण द्वारा भेजे गये अक्रूर पांडवों को बड़े प्रेम से 'गले लगाते' हैं[४१]।

इ. प्रीति जनाना—जो प्रेम या स्नेह-भाजन सामने नहीं होते उनको किसी प्रकार का संदेश भेजते या पत्र लिखते समय उनके प्रति 'प्रीति जनाने' की बात अष्टछाप-काव्य में लिखी गयी है जिसका तात्पर्य है संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों को सप्रेम स्मरण करना। ऊधव द्वारा भेजे गये पत्र में व्रज के नर-नारियों के प्रति श्रीकृष्ण 'प्रीति जनाते' हैं[४२]।

असीस देने की बात तो ठीक है, पति को असीस देने की बात कुछ अटपटी जान पड़ेगी। वस्तुतः यहाँ 'असीस' से तात्पर्य हृदय की कल्याण-कामना से है जो सभी आत्मीयों के लिए सीता-जैसी वात्सल्यमयी नारियों के हृदय में सदैव रहती है।

—लेखिका।

३७. कहियौ जसुमति की 'आसीस'—सा० ४०६०।

३८. देखि दरस चरननि लपटाने।

× × × ×

लीनौ 'हृदय लगाइ' सूर प्रभु, पूछत भद्र भए क्यौं भाइ—सा० ६-५१।

३९. गोप-ग्वाल सखनि कौं हिलि-मिलन 'कंठ लगाइ'—सा० ३४३६।

४०. श्रीदामाऽदि सकल ग्वालनि कौ मेरौ 'कौतौ भेंटियौ—सा० ३४४६।

४१. ....पुनि पांडव-गृह आए।

पकरि चरन कुंती के पुनि पुनि सब गहि कंठ लगाए—सा० ४१६०।

४२. स्याम कर पत्री लिखी बनाइ।

और व्रज नर-नारि जे हैं, 'तिनहिं प्रीति जनाइ'—सा० ३४३६।

ग. *पत्र-संबंधी शिष्टाचार*—आत्मीय जनों के प्रवास-काल में पत्र-व्यवहार की आवश्यकता विशेष रूप से होती है जिससे अपना कुशल-समाचार दिया जा सके और दूसरों का जाना जा सके। पत्र लिखते समय यों तो शिष्टाचार का निर्वाह करने के लिए अभिवादन के सामान्य रूप ही व्यवहृत होते हैं, तथापि पत्र-प्रेषक और पत्र-प्राप्तकर्त्ता, दोनों के लिए उनके अतिरिक्त कुछ अन्य बातों का भी निर्वाह करना वांछनीय होता है। यद्यपि यह ठीक है कि पत्र-लेखन का जो सौंदर्य गद्य में परिलक्षित होता है वह काव्य, विशेषतः गीतिकाव्य, में नहीं; तथापि शिष्टाचार-संबंधी कुछ संकेत पद्य में लिखे गये पत्र में भी रहते ही हैं। अष्टछाप-काव्य में पत्र-प्रेषक के लिए शिष्टाचार की जिन बातों का परोक्ष रूप से उल्लेख किया गया है। उनमें सबसे प्रमुख बात है स्वयं ही पत्र लिखने की। किसी परम आत्मीय जन को दूसरों से लिखवाकर पत्र भेजना शिष्टाचार के प्रतिकूल समझा जाता है और स्वयं पत्र लिखना उसके अनुकूल। श्रीकृष्ण मथुरा जाने पर नंद-यशोदा और व्रजवासियों को ऊधव द्वारा जो पत्र भेजते हैं वह उन्होंने 'स्वयं बनाकर' अर्थात् बड़ी आत्मीयता के साथ लिखा है[४३]। इसी प्रकार ऊधव को व्रज जाते सुनकर देवकी-वसुदेव भी नंद-यशोदा को 'आपु सौं पाती' लिखते हैं[४४]। राधा और अन्य गोपियों को कुबिजा ने भी अपने हाथ से ही पाती लिखी है[४५]।

अपने प्रियजन का पत्र उसके मिलन से कम सुखदायी नहीं होता। इसी कारण पत्र की प्राप्ति पर किया गया व्यवहार उसके प्रति हमारे व्यवहार का द्योतक होता है। परोक्ष रूप से किसी के पत्र के प्रति किये गये हमारे आचरण का संबंध शिष्टाचार से भी होता है। किसी के पत्र को छाती से लगाना, किसी को सर-आँखों से लगाना, किसी को स्वयं पढ़ना, किसी को दूसरे से पढ़वाना, किसी को ललककर दोनों हाथ से लेना, किसी को बायें हाथ में लेना आदि बातें पत्र-प्रेषक के प्रति हमारे व्यवहार के साथ-साथ हमारे संबंध की

४३. स्याम 'कर पत्री लिखी बनाइ'—सा० ३४३६।

४४. ऊधौ जात व्रजहिं सुने, देवकी बसुदेव सुनि कै हरैं हेत गुने।
'आपु सौं पाती लिखी' कहि धन्य जसुमति नन्द—सा० ३४४२।

४५. कुबिजा सुन्यौ जात व्रज ऊधौ, महलहिं लियौ बुलाइ।
'अपने कर पाती लिखि' राधेहिं गोपिनि सहित बड़ाई—सा० ३४४३।

घनिष्ठता-अघनिष्ठता की भी द्योतक हैं। अष्टछाप-काव्य में जिन दो-तीन पत्रों की चर्चा है उनमें व्यावहारिक शिष्टाचार की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है गोपियों को लिखा गया श्रीकृष्ण का पत्र जिसकी सूचना पाते ही व्रजबालाएँ घर से दौड़ पड़ती हैं, उसे बार-बार छाती से लगाती हैं, नेत्रों से लगाती हैं; फिर भी उनकी प्रेम-तृषा नहीं बुझती[४६]। अपने प्रियजन के हाथ की लिखी हुई 'पाती' पाकर हमें वास्तव में बड़ा संतोष होता है; क्योंकि इससे अपने प्रति प्रियजन की आत्मीयता का परिचय पाकर हम आश्वस्त हो जाते हैं। इसीलिए गोपियाँ स्वयं श्रीकृष्ण के हाथ की लिखी 'पाती' पाकर अत्यंत प्रफुल्लित हो जाती हैं, उसकी चर्चा बड़े गर्व से करती फिरती हैं[४७] और कोई-कोई गोपी तो स्वयं श्याम के ही पत्र लिखने की बात बार-बार सुनने के लिए ऊधव से पूछती है—क्या यह 'पाती' कन्हाई की ही लिखी हुई है[४८] ?

४. *संस्कार—*

'संस्कार' से आशय शास्त्रविहित उन मांगलिक कृत्यों[४९] से है जो मानव के सर्वांगीण विकास के लिए किये जाते हैं। इन कृत्यों का आरंभ जन्म के पूर्व से ही हो जाता है और अंत शरीरांत के साथ होता है। संस्कारों की संख्या के संबंध में भारतीय संस्कृति के विद्वान एकमत नहीं हैं; किसी ने मनु के अनुसार

४६.क. पाती मधुबन ही तैं आई
सुन्दर स्याम आपु लिखि पठई, आइ सुनौ री माई
अपने अपने गृह तैं दौरीं, 'लै पाती उर लाई'।
'नैननि निरखि' निमेष न खंडित प्रेम-तृषा न बुझाइ—सा० ३४८६।

ख. निरखतिं अंक स्याम सुंदर के 'बार-बार लावतिं लै छाती'—सा० ३४८७।

ग. पाती मधुबन तैं आई।
ऊधौ हरि के परम सनेही, ताकैं हाथ पठाई।
कोउ पढ़ति, कोउ धरति नैन पर, काहूँ हृदै लगाई—सा० ३४८८।

४७. पाती मधुबन ही तैं आई।
सुन्दर 'स्याम आपु लिखि पठई' आइ सुनौ री माई—सा० ३४८६।

४८. कोउ पूछति फिर फिर ऊधौ कौं, 'आपुन लिखी कन्हाई'—सा० ३४८६।

४९. 'बृहत् हिन्दी शब्द कोश' में 'संस्कार' का अर्थ इस प्रकार दिया गया है—'द्विजातियों के शास्त्रविहित कृत्य जो मनु के अनुसार बारह हैं और कुछ लोगों के अनुसार सोलह हैं—पृ० १३४४।

उनकी संख्या बारह मानी है[५०] और किसी ने सोलह। सोलह संस्कारों[५१] के नाम ये हैं—१. गर्भाधान, २. पुंसवन, ३. सीमन्तोन्नयन, ४. जातकर्म, ५. नामकरण, ६. निष्क्रमण, ७. अन्नप्राशन, ८. चूड़ाकर्म, ९. कर्णवेध, १०. उपनयन, ११. वेदारंभ, १२. समावर्त्तन, १३. विवाह, १४. वानप्रस्थ, १५. संन्यास और १६. अंत्येष्टि।

उक्त संस्कारों में प्रथम तीन प्रारंभिक हैं जिनका स्पष्ट वर्णन अष्टछाप-काव्य में नहीं मिलता। बंदीगृह में जन्म होने के कारण कृष्ण के ये प्रारंभिक संस्कार हुए भी नहीं थे। इसी प्रकार समावर्त्तन, वानप्रस्थ, संन्यास आदि संस्कारों का वर्णन भी अष्टछाप-काव्य में नहीं है। अतएव जिन संस्कारों का वर्णन अष्टछाप-काव्य में मिलता है, वे दस हैं—१ जातकर्म, २ नामकरण, ३ निष्क्रमण, ४ अन्नप्राशन, ५ कर्णवेध, ६ चूड़ाकर्म, ७ उपनयन, ८ वेदारंभ, ९ विवाह और अंत्येष्टि। इन संस्कारों का सबसे विस्तृत वर्णन सूरदास ने किया है। परमानंददास के काव्य में भी 'अंत्येष्टि' को छोड़कर शेष संस्कार वर्णित हैं; केवल 'निष्क्रमण' संस्कार का उल्लेख उन्होंने 'भूमि-उपवेशन' के रूप में किया है। अष्टछाप के शेष कवियों ने दो-एक संस्कारों का ही वर्णन किया है जिनमें राधा और कृष्ण अथवा किसी एक के जन्म-संस्कार का वर्णन तो सभी के काव्यों में मिलता है। छीतस्वामी और चतुर्भुजदास ने केवल जन्म-संस्कार का वर्णन किया है। कुंभनदास ने जन्म के साथ सगाई अथवा विवाह-संस्कार की चर्चा संक्षेप में की है। नन्ददास के काव्य में जातकर्म, नामकरण, विवाह और अंत्येष्टि, चार संस्कारों का उल्लेख हुआ है। गोविंदस्वामी ने केवल जन्म के अवसर पर 'बधाई' और 'सोहिले' गाये हैं।

शास्त्रविहित उक्त संस्कारों की भाँति ही इनसे मिलते-जुलते कुछ और कृत्य भारतीय परिवारों में अत्यंत निष्ठा से किये जाते हैं जिन्हें 'कुलाचार' कह सकते

५०. 'हिंदी शब्द-सागर', भाग ४ में निम्नलिखित बारह संस्कार माने गये हैं—
१. गर्भाधान, २. पुंसवन, ३. सीमन्तोन्नयन, ४. जातकर्म, ५. नामकरण, ६. निष्क्रमण, ७. अन्नप्राशन, ८. चूड़ाकर्म, ९. उपनयन, १०. केशांत, ११. समावर्तन और १२. विवाह—पृ० ३४१४।

५१. श्री शिवदत्तज्ञानी, 'भारतीय संस्कृति', पृ० ९५-९६।

हैं। उदाहरणार्थ छठी और वर्षगाँठ को संस्कारों के रूप में तो मान्यता नहीं प्रदान की गयी, फिर भी ये उत्सव संस्कारों के समान ही अत्यंत उत्साह से मनाये जाते हैं। अधिकांश अष्टछापी कवियों ने 'छठी' का और कनछेदन के पूर्व 'वर्षगाँठ' का वर्णन किया है। जनसमाज में इस प्रकार की परम्परागत रीतियों की मान्यता शास्त्र-सम्पादित आधारों से कम नहीं होती और इनके वर्णन से तत्कालीन व्रज-संस्कृति का अच्छा परिचय मिल सकता है। अतएव विषय की स्पष्टता और क्रमबद्धता के लिए उक्त संस्कारों के वर्णन के साथ 'छठी' और 'वर्षगाँठ' को भी सम्मिलित करके इनकी भी चर्चा क्रमानुसार की गयी है।

क. *जन्मोत्सव*—अष्टछाप-काव्य में राम, कृष्ण, राधा तथा गोसाईं गिरिधर के जन्म का वर्णन हुआ है। सूरदास ने श्रीकृष्ण के जन्म-संस्कार का वर्णन बहुत विस्तार से किया है। सर्वप्रथम वे देवकी और यशोदा की गर्भावस्था का वर्णन करते हैं। हरि के गर्भ में आते ही देवकी का शरीर उजला (या पीला) होने लगता है और वह हर समय अलसायी-सी रहती है[५२]। इसी प्रकार यशोदा की गर्भावस्था के वर्णन में आठ मास चंदन और नवें में कपूर पीने की बात उन्होंने लिखी है। दसवें मास श्रीकृष्ण का जन्म होता है[५३]। नंददास ने भी गर्भावस्था में देवकी के प्रकाशपूर्ण तथा हर्ष और शोकयुक्त होने की बात लिखी है[५४]।

पुत्र-जन्म[५५] की शुभ सूचना पाकर जाति-बंधु और ग्वाल-बाल बधाई देने

५२. हरि के गर्भ बास जननी को 'बदन उजारौ लाग्यौ'।
कछु दिन गए 'गर्भ कौ आलस', उर देवकी जनायौ—सा० १०-४।

५३. आठ मास 'चंदन पियौ' (हो) नवएँ 'पियो कपूर'।
'दसएँ मास मोहन भए' (हो) आँगन बाजे तूर—सा० १०-४०।

५४. सप्तम गर्भ बिष्नु कौ धाम।
देवकि तहाँ 'अतिव परकासी, हर्ष सोक दोऊ मिलि भासी'—नंद०, दशम०, पृ० ३०५।

५५. वाण ने भी हर्ष के जन्मोत्सव का विशद चित्रण किया है जो सूर के वर्णन से मिलता है। 'हर्षचरित' में शंख, दुंदुभी आदि मंगल वाद्य, सुवर्ण शृंखलाओं से बँधी कलशियाँ, यज्ञशालाओं में प्रज्ज्वलित अग्नि, ब्राह्मणों का वेदोच्चारण, परिचारकों का प्रसन्नता से नृत्य आदि उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त प्रसन्न हो महाजनों की दूकानें लूटने और कारागार से बंधन-मुक्ति की प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है। सूतिगृह में जात मातृ

आते हैं[५६]। उनकी प्रसन्नता का ओर-छोर नहीं है। कोई मंगल-सूचक दधि-दूब सिर पर रखता है, कोई आवेश में पैरों पर लोटा जाता है, कोई परस्पर बधाई देता है और कोई प्रसन्नता से गा उठता है[५७]। कोई नाचता-गाता, कलोल करता और परस्पर 'हरद दही' छिड़कता है तथा कोई 'दधि-गोरोचन-दूब' दूसरे के शीश पर रखकर शिशु की मंगल-कामना करता है[५८]। स्त्रियों का हर्ष तो और भी बढ़ा-चढ़ा है। अत्यधिक प्रसन्नता के कारण अंचल तक सम्हालने की उनको सुधि नहीं है और वे फूल बरसाती हुई नंद महर के घर भागी चली जा रही हैं[५९]। उनके आगमन की सूचना पाते ही सबको भवन में बुला लिया जाता है। पुत्र की सलोनी सूरत देखकर सब उसके पैर पड़ती हैं, बार बार उसका मुँह खोलकर देखती और प्रफुल्लित होकर शुभ आशीस देती हैं[६०]। 'हरद-दही' आदि परस्पर छिड़कने में भी वे पुरुषों से पीछे

देवी अथवा चर्चिका की आकृति बनायी गयी थी। दूसरे दिन सामन्तों की स्त्रियों के तथा अन्य छोटे - बड़ों के नृत्य करने, फूल मालाएँ, कपूर, कुमकुम, चंदन आदि सुगंधियाँ तथा सिन्दूर पात्रों को एकत्रित करने का उल्लेख है। वारविलासिनी स्त्रियाँ रसिक पदों को गा गाकर नाचने लगीं तथा अनेक प्रकार के बाजों का कोलाहल हुआ—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल,हर्ष०, सां० अ०, पृ० ६५।

५६.क. नंद महर के 'पुत्र भयो है' आनंद मंगल गाई।
गाम-गाम ते जाति आपनी घर-घर तैं सब आई—परमा० ३।
ख. सुनि कै 'गोप महामुद भरे, चले' महरि-घर रंगनि ररे।
पहिरे अंबर सुंदर-सुंदर, जे कबहूँ निरखे न पुरंदर।
मंगल भेंट करन मैं लिये, मैन से लरिकन आगे किये।
गोपी मुदित, भयौ मन भायौ, 'महरि जसोदा ढोटा जायौ'।
—नंद०, दशम०, पृ० २१७।

५७. एक फिरत 'दधि-दूब धरत सिर', एक रहत 'गहि पाइ'।
एक परस्पर 'देत बधाई', एक उठत हसि गाइ—सा० १०-२०।

५८. इक मिलि नाचत 'करत कलोल' 'छिरकत हरद दही'।
× × × ×
इक 'दधि-गोरोचन-दूब' 'सबके सीस धरे'—सा० १०-२४।

५९. आनँद उर 'अंचल न सम्हारति' सीस 'सुमन बरसावति'—सा० १०-२३।

६०. लइ भीतर भवन बुलाइ, सब सिसु पहिं पाँइ परी।
इक बदन उघारि निहारि, 'देहिं असीस खरी'—सा० १०-२४।

नहीं हैं[६१]। ब्रजजन बजाते-गाते तरह-तरह के उपहार लेकर शिशु का मुख देखने आते हैं। बधाई के लिए लाये हुए दूध, दही, तेल आदि की मात्रा इतनी अधिक है कि ब्रज में उनकी सरिता बहने लगती है[६२]। कंचन-कलशों को केशर-चर्चित करके बंदनवारें बाँधी जाती हैं[६३]।

नंद महर के घर पुत्र होने पर दाई अपने नेग के लिए झगड़ा करती हुई यशोदा से कहती है कि मणि-जटित हार मिल जाने पर ही मैं 'नार-छेदूँगी', पहले नहीं[६४]। हार पाकर दाई नार छेद कर बधाई देती है और कंचन के आभूषण तथा मोतियों से भरा थाल लेकर जाती है[६५]। इस अवसर पर होम, द्विज-पूजा और घर लीपने का कई बार उल्लेख है[६६]। बारिनि या मालिनि बंदनवार और तोरना[६७] बाँधती हैं और हार गूँधती हैं[६८]।

ख. *जातकर्म और जन्मोत्सव*—बालक का जन्म होने पर पिता द्वारा देव-पितर-पूजन, ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवचन आदि जो कार्य किये जाते हैं वे 'जातकर्म' कहलाते हैं। श्रीकृष्ण का जन्म होने पर नंद जी ब्राह्मणों को सादर बुलाते हैं जो

६१. 'छिरकत हरद दही पय तरुनी' अति ही सोभा देत।
—कृष्ण०, कीर्तन-संग्रह, भाग १, पृ० १६।

६२. उड़त नवनीत, दूध, दधि, हरद, तेल, 'बहि चली आतुर सिंधु सरिता सबै'।
—कुंभन० २।

६३. कंचन 'कलस चरचि' केसरि के 'बाँधति बंदनवार'—चतु० ३।

६४. जसुदा, 'नार न छेदन दैहौं'।
मनिमय जटित हार ग्रीवा कौ, वहै आजु हौं लैहौं—सा० १०-१५।

६५. सूरदास 'कंचन के अभरन लै झगरिनि पहिराई'—सा० १०-१६।

६६.क. कंचन कलस 'होम द्विज पूजा' चंदन भवन लिपायौ—सा० १०-४।
ख. आँगन लीपौ 'चौक पुरावौ' 'बिप्र पढ़न लागे बेद'—परमा० ११।

६७. 'तोरना' या 'तोरण' से तात्पर्य ऐसी अर्द्ध चंद्राकार वंदनवार से है जो द्वार पर बाँधी जाती है—लेखिका।

६८.क. अच्छत दूब लिए रिषि ठाढ़े 'बारिनि बंदनवार बँधाई'—सा० १०-१६।
ख. 'मालिनि बाँधे तोरना' (रे) आँगन रोपे केरि—१०-४०।
ग. गुनी गंधर्व मिलि मंगल गावे 'मालिनि गूँथे हार'।
—कृष्ण०, कीर्तन-संग्रह, भाग १, पृ० २०।

उनके यहाँ पधार कर वेद-पाठ करते, पितर और देव-पूजन कराते तथा 'स्वस्तिवचन' पढ़कर आशीर्वाद देते हैं[६९]। पुत्र के जन्म-लग्न की गणना करके आचार्य गर्ग द्वारा जन्मपत्री बनाये जाने की बात भी इसी प्रसंग में आती है[७०]। नंद जी स्नान करके कुश हाथ में लेकर नांदी मुख श्राद्ध और पीतरों का पूजन करते हैं[७१]। इसके पश्चात् वे चंदन घिसकर विप्रों का तिलक करते और उनको तथा गुरुजनों को वस्त्रादि पहनाकर उनके चरण छूते हैं[७२]।

इसके अनंतर दान का क्रम आरंभ होता है। सबसे पहले ब्राह्मणों को बहुत सी अन्य सामग्री के साथ दो लाख गायें दान में दी जाती हैं[७३]। जन्मोत्सव के शुभ अवसर पर नंद जी अपने इष्ट-मित्रों और बंधु-बांधुओं को सादर निमंत्रित करते हैं और कपूर-चंदन-कस्तूरी का तिलक लगाकर अपनी प्रीति एवं प्रसन्नता प्रकट करते हैं[७४]। इस प्रकार उनके द्वार पर भारी भीड़ एकत्र हो जाती है जिसमें जाति-बंधुओं के साथ-साथ पुरजन, प्रजाजन, याचक, बंदीजन आदि सभी हैं। नंद जी सभी को यथा योग्य गाय, वस्त्र, आभूषण, नग-रत्न, पुहुप-माल, चंदन, दूब-रोचना आदि देकर सबका सम्मान करते हैं[७५]। याचकों और ढाढ़ी-ढाढ़िनि को इतना अधिक सामान

६९. नंदराय घर ढोटा जायो महर महा सुख पायौ।
बिप्र बुलाय 'वेद-धुनि कीन्ही' स्वस्ती बचन पढ़ायौ।
जातकर्म करि पूजि पितर, सुर-पूजन बिप्र करायो—सारा० ३९१-९२।

७०.क. 'ग्रह-लगन-नखत-पल सोधि' कीन्ही बेद धुनी—सा० १०-२४।
ख. गर्ग आचारज पाँव धारिये 'लिखी जनम की पाँति'—गोविं० १२।

७१. तब न्हाइ नंद भए ठाढ़े अरु कुस हाथ धरे।
'नांदी मुख पितर पुजाइ' अंतर सोच हरे—सा० १०-२४।

७२. 'घसि चंदन चारु मँगाइ' बिप्रन तिलक करे।
'द्विज गुरुजन कौ पहिराइ' सबके पाइ परे—सा० १०-२४।

७३. 'दोइ लख धेनु दई' तिहिं अवसर बहुतहिं दान दिवायो—सारा० ३९२।

७४. सब इष्ट मित्र अरु बंधू हँसि-हँसि बोलि लियै।
'मथि मृगमद मलय कपूर माथे तिलक कियै'—सा० १०-२४।

७५. एकनि कौं 'गौ-दान' समर्पत, एकनि कौं 'पहिरावत चीर'।
एकनि कौं 'भूषन पाटंबर', एकनि कौं जु 'देत नग-हीर'।
एकनि कौं 'पुहुमनि की माला', एकनि 'कौं चंदन घसि नीर'।
एकनि माथैं 'दूब-रोचना', एकनि कौं 'बोधत दै धीर'—सा० १०-२५।

दान में मिलता है कि वे उसे गयंद पर लादकर ले जाते हैं[७६]। अनेक याचक तो मार्ग में जाते हुए 'राजा' के समान प्रतीत होते हैं; क्योंकि वे कंचन-मणि-भूषण पहने हैं और नाना प्रकार के वस्त्र धारण किये हैं[७७]। कपिला धेनु, सींगों को सोने से मढ़ाकर रत्न, भूमि, वस्त्राभूषण[७८] आदि के साथ विप्रों को दान में दी जाती हैं।

राधा के जन्म पर वृषभानु-भवन में भी याचकगण मणि, कंचन, मुक्ता, पट-भूषण आदि दान में पाते हैं[७९]।

कुछ भारतीय परिवारों में शुभ संस्कारों के अवसर पर गाली गाने की प्रथा है। श्रीकृष्ण के जन्म के अवसर पर 'गाली', 'गारी' या 'गारि'[८०] भी गायी गयीं हैं[८१]। ढाढ़ी-ढाढ़िनि भी मनचाहा नेग पाकर बधावा और बकसीस गाते हैं[८२]।

७६. दीन्ही है सारी सोंधें भींजी कंचुकी नेह की।
कीन्ही है मालिनि ढाल सुढाढ़िनि गेह की।
'ढाढ़ी गयंद लदाइ चल्यो' चित चाड़िलौ।
चिरजीवो 'चत्रुभुज' कौ प्रभु गिरिधर लाड़िलौ—चतु० ७।

७७. बंदीजन अरु भिच्छुक सुनि-सुनि दूरि-दूरि तैं आए।
इक पहिलैं ही आसा लागे, बहुत दिननि तैं छाए।
ते 'पहिरे कंचन-मनि-भूषन', नाना बसन अनूप।
मोहिं मिले मारग मैं, 'मानो जात कहूँ के भूप'—सा० १०-३५।

७८. तब ब्रजराज गोप सब मिलि कें अति आदर सों बिप्र बुलाई।
'रतन भूमि मँगाइ दान दे कें' आसिस बचन पढ़ाई—गोविं० १३।

७९.क. तब मागध बंदीजन बसुधा जाचक धनिक करे।
'भवन भँडार खोलि सौंज सब बकसत' सकट भरे।
—कुंभन, कीर्तन-संग्रह, भाग १, पृ० १८६।

ख. देत दान 'बृषभानु भवन में जाचक बहु निधि पाई'।
मनि कंचन मुकता पट हीरा अरु नाना बिधि गाई—गोविं० २०।

८०. 'गाली' गीतों में संबंधियों पर अश्लील व्यंग्य होते हैं। हर्ष के जन्मोत्सव में बाण ने भी वार विलासिनियों के अश्लील रासक पदों (सीठनों) के गाने का उल्लेख किया है—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल,—हर्ष०, सां० अ०, पृ० ६७।

८१. निर्भर अभय निसान बजावत 'देति महरि कौं गारी'—सा० १०-४।

८२.क. मैं तेरे घर कौ हौं ढाढ़ी, मो सरि कोउ न आन।
सोइ लैहौं 'जो मो मन भावै, नंद महर की आन'—सा० १०-३६।

जिस स्थान पर बालक का जन्म होता है वह 'सूति-गृह' कहलाता है[८३]। उसके द्वार पर स्त्रियाँ सींक से सथिया (स्वस्तिक चिन्ह) बनाती हैं[८४]। पुत्र-जन्म के शुभ अवसर पर असीम प्रसन्नताद्योतक उक्त कार्यों के साथ-साथ ताल, मृदंग, मुरज, बेनु, पखावज, ढोल, तूर, दमामा, भेरी, विखान, सहनाई आदि विविध वाद्य बजते हैं[८५]।

इनके अतिरिक्त घर-घर से 'टीका' आता है[८६]। गोपगण नाना प्रकार के वस्त्राभूषण और उपहार लेकर दूध-दही आगे करके लाते हैं[८७]। परमानंददास ने

ख. ढाढ़ी दान-मान के भाई !
नन्द उदार भए पहिरावत, बहुत भली बनि आई।
जब-जब नाम धरौं ढाढ़ी कौ, 'जनम करम गुन गाऊँ'।

× × ×

'लै ढाढ़िनि कंचन-मनि-मुक्ता', नाना बसन अनूप।
'हीरा-रतन-पटंबर' हमकौं दीन्हे ब्रज के भूप—सा० १०-३२।

८३. उखटत परत, सु बिहवल भयौ, डरत-डरत 'सूती-ग्रह गयौ'।
—नन्द०, दशम०, पृ० २१४।

८४. 'द्वार सथिया देत' स्यामा सात सींक बनाइ—सा० १०-२६।

८५.क. बाजत 'ताल-मृदंग' जंत्रगति—सा० १०-१९।
ख. नाचत कूदत करत कुलाहल 'मुरज' बजायो—परमा० ६।
ग. बाजत 'बैनु पखावज मनोहर गावत गीत' सुहाए।

× × × ×

चहुँ बेद-ध्वनि करत महामुनि पंच सबद 'ढप ढोल'—परमा० १५।
घ. बाजत 'तूर' बरना मिलि गावत लाल पटा बैठायो—परमा० १६।
ङ. बाजत ताल 'मृदंग बासुरी ढोल दमामा भेरी'—परमा० २१।
च. घुरत निसान सबद 'सहनाई बाजत है जो बधाई'—परमा० २७।
छ. 'दुंदुभी' देव बजावहीं हो चहुँदिसि धुरे निसान।
बहु बिधि 'बाजे बाजहीं' हो करत सप्त सुर गान॥
—नन्द०, कीर्तन-संग्रह, भाग १, पृ० ५३।

८६. घर-घर तें आयो टीको—परमा० २०।

८७. आये गोप 'भेंट लै लै कै' भूषन बसन सोहाये।
'नाना बिधि उपहार' दूध दधि आगे धरि सिर नाये—सा० ३६७।

राम-जन्मोत्सव पर लोगों के पान-फूल, उपहार आदि लेकर आने का वर्णन किया है[८८]।

कृष्ण-जन्म पर केवल व्रजवासी ही नहीं, देवता भी प्रसन्न होकर पुष्प-वर्षा करते और नगाड़े बजाते हैं[८९]। अष्टसिद्धि[९०] और नवनिधि[९१] जन्मोत्सव में भाग लेती हैं। वे उनका द्वार बुहारती और 'सथिये' रखती हैं[९२]।

ग. *छठी*—छठी (सं० षष्ठी) का उत्सव जन्म के छठे दिन होता है। यह उत्सव मुख्यत: सूतिगृह की स्वच्छता का है। स्त्रियाँ स्वयं इसके प्रमुख कार्य कर लेती हैं। बच्चे की बुआ 'सोबर' (सं० शोभागृह) के द्वार पर गोबर से लिपे चौक पर गोबर और जौ[९३] से सथिया (सं० स्वस्तिका) रखती है और बच्चे के काजल लगाती है। वह बच्चे के लिए वस्त्र, खिलौने आदि लाती है[९४] और शिशु की जननी (अपनी भावज) से 'नेग' के लिए झगड़ती है।

कृष्ण के जन्म के छठे दिन व्रजनारियाँ और यशोदा उनकी छठी मनाती हैं। सभी स्त्रियाँ इकट्ठी होकर 'सोहर' गाती और 'काजर-रोरी' से छठी का 'चार' करती

८८. 'पान फूल, फल, चोवा, चन्दन बहु उपहार' लोग लै आये—परमा० ३४०।
८९. हरखे देव सुमन बरसे नभ निसान बजायो है—परमा० ६।
९०. अष्ट सिद्धियाँ ये हैं—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, इशित्व और वशित्व—श्री रामचंद्र वर्मा,'प्रामाणिक हिन्दी कोश', पृ० १३२८।
९१. नवनिधि अर्थात कुबेर के नौ रत्न ये हैं—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील और वर्च्च—'प्रामाणिक हिन्दी कोश', पृ० ६९३।
९२.क. द्वार बुहारति फिरतिं 'अष्टसिद्धि'। कौरनि सथिया चीततिं 'नवनिधि'।
—सा० १०-३२।
ख. भीर भई है नंदजू के द्वारें 'अष्ट महासिद्धि' आईं—परमा० १६।
९३. बाण ने 'कादम्बरी' में सूतिका-गृह के वर्णन में सोबर के बाहर बने 'सथिये' का उल्लेख किया है। यह कपास के रंग-बिरंगे फाहों से अलंकृत किये गये थे।
—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, हर्ष०,सां० अ०, पृ० ७२।
९४. जब ननद बच्चे के लिए कुरता-टोपी लाती है उस समय व्रज में गाया जानेवाला एक प्रसिद्ध गीत 'जगमोहन लुगरा' गाया जाता है। इसमें ननद अपनी भाभी से नेग में 'जगमोहन' नामक साड़ी और 'लुगरा' नामक लहँगा माँगती है।
—डाॅ सत्येन्द्र, 'व्रजलोक साहित्य का अध्ययन', पृ० १४६।

हैं[९५]। नाइन यशोदा के पैरों में महावर लगाती है और पुरस्कार में 'लाख टका' और 'झुमका' पाती है। व्रजनारियाँ बधाई लेकर आती हैं[९६]। इस अवसर पर सोहिले, बधाई तथा मंगलचार गाने का भी वर्णन हुआ है[९७]। 'सोहिलो' का लोक-गीतों में महत्वपूर्ण स्थान है। इसे जनबोली में 'सोहर' कहा जाता है। इस गीत में ननद, सास, जिठानी, देवर आदि के 'नेगों' और उस समय पर होनेवाली प्रसन्नता का उल्लेख विशेष रूप से होता है। इसी प्रकार 'बधाई' के गीत मांगलिक अवसरों पर गाये जानेवाले बधाई-सूचक होते हैं। राधा के जन्म पर रावलि में और कृष्ण-जन्म पर नंद महर के यहाँ बधाई गायी गयी है[९८]। कृष्णदास ने चंद्रावली जी की बधाई गायी है[९९] और कुंभनदास ने राधा का 'सोहिलो' गाया है[२००]। सूरदास कृष्ण-जन्म पर और गोविन्दस्वामी राम-जन्म पर 'सोहिलो' गाते हैं। घर-घर से सब स्त्रियाँ टोल बनाकर सजधज कर आती है और 'सोहिलो' गाती हैं[१]।

९५. काजर रोरी आनहु करौ 'छठी को चार'—सा० १०-४० ।

९६.क. आजु 'छठी' जसुमति के सुत की चलो बधावन जैए माई—कुंभन० ६ ।

ख. आज 'छठी' छबीले लाल की ।
उबटि न्हवाइ भूषन बसन दिए सुंदर स्याम तमाल की—चतु० १३ ।

९७. कनक थार लिए ब्रजसुंदरि 'गावतिं मंगलचार'—चतु० ४ ।

९८.क. आजु तौ 'बधाइ बाजै' मंदिर महर के—सा० १०-३४ ।

ख. सुनियत 'रावलि होत बधाई' ।

× × × ×

सब सखियनि मिलि गावति मंगल आजु अधिक बनि आई—गोविं० २० ।

९९. चंद्रभान के नवनिधि आई ।
सुखमा कूखि अवतरी कन्या 'घर-घर बजत बधाई' ।
—कृष्ण०, कीर्तन-संग्रह, भाग १, पृ० १७६ ।

२००. अरी माई प्रकटी है आनंद कंद 'लली जू को सोहिलो' ।
—कुंभन०, कीर्तन-संग्रह, भाग १, पृ० १८६ ।

१.क. गौरि गनेस्वर बीनऊँ (हो), देवी सारद तोहिं ।
गावौं 'हरि कौ सोहिलौ' (हो), मन-आखर दै मोहिं ।
हरषि बधावा मन भयौ (हो), रानी जायौ पूत ।
घर-बाहर माँगैं सबै (हो), ठाढ़े मागध-सूत—सा० १०-४० ।

ख. मेरो 'राम लला कौ सोहिलो' सुनि नाचैं सुर-नारि—गोविं० १५४ ।

छठी के अन्य मांगलिक कार्यों में 'मंडप रचाने',[२] 'घृत-दीप' जलाने[३] और अंबा देवी के सामने मंगल-दीप तथा 'लेखनी-मसिदानी' रखने[४] आदि का उल्लेख भी 'परमानंदसागर' में मिलता है। उसके एक पद में चंडी का पूजन 'खंग' और 'लेखनी-मसिदानी' सहित द्विजवर द्वारा कराने का उल्लेख भी 'छठी' के उत्सव के अंतर्गत हुआ है[५]।

इस अवसर पर शिशु की कल्याण-कामना के लिए कुलदेवी या देवता की पूजा भी की जाती है। माता यशोदा कृष्ण को नहलाकर कुल-देवी के पाँव पड़ाती और विविध व्यंजनों का भोग लगाती हैं[६]। पीले वस्त्राभूषण धारण किये, 'ऐपन'[७] की पुतली-सी बनी व्रजनारियाँ बधाई लेकर आती और नंद-पुत्र के तिलक करती हैं[८]। छठी के अवसर पर 'चहरका' नामक गीत-विशेष भी गाया जाता है[९] जिसमें बच्चे की माता को 'गालियाँ' दी जाती हैं। यह गीत प्रायः रात में सबसे बाद में गाया जाता है।

२. 'मंडल रचनि' रचनि पुष्पनि के कमल-कली कुंजनि आज—परमा० काँक० ५८।

३.क. 'दीपावलि घृत-पूरि' पात्र भरि कोटिक चंद छिपा छाजै—परमा० काँक० ५८।

ख. 'दीपक-पंगति' भवननि राजति—परमा० काँक० ५८।

४. रतन चौक राजत चौकी पर 'मंगलदीप' निकट वर घी कौ।
'कनक रचित लेखनि-मसिदानी धरी' जहँ चित्र रह्यौ अंबी कौ।
—परमा० काँक० ५९।

५. बंदनवार बँधी चहुँ ओरें दीपक रचि हाटक थारी।
रच्यौ बिचित्र 'चंडी कौ पूजन' जसुमति रानी सुकुमारी।
करि उपचारि पुजावति द्विजवर 'खंग' कोस तें करि न्यारी।
पत्र 'लेखनी वर मसिदानी' लेख लिखनि की करि न्यारी—परमा० काँक० ६०।

६. मंगल द्यौस छठी कौ आयो।
× × ×
कुँवर न्हवाय जसोदा रानी 'कुलदेवी कौ पाँय परायौ'।
बहु प्रकार 'बिंजन धरि भोगन' सब बिधि भलौ मनायौ—परमा० ३८।

७. 'ऐपन' पिसे हुए कच्चे चावल का हल्दी मिला वह पदार्थ है जिससे मांगलिक अवसरों पर चौक, छापे आदि बनाये जाते हैं—लेखिका।

८.क. 'ऐपन की सी पूतरी' सब सखियनि कियौ सिंगार—सा० १०-४०।

ख. सब ब्रजनारी बधावन आईं सुत कौ 'तिलक करायौ'—परमा० ३८।

९. गोपी 'गावति चहर कें'—सा० १०-३०।

उक्त आचारों के पश्चात् गर्ग मुनि शिशु कृष्ण के उच्च ग्रहों की स्थिति और प्रभाव की व्याख्या करके उनके परमोज्ज्वल भविष्य की शुभ सूचना देते हैं[१०]।

घ. *नामकरण*—इस संस्कार में बालक का नाम रखा जाता है और यह जन्म के दसवें या बारहवें दिन सम्पन्न होता है। इसी से इस संस्कार को जनबोली में 'दृष्ठौन' (सं० दशोस्थापन) या 'बरही' भी कहते हैं। इस संस्कार को सम्पन्न करने के पूर्व मुहूर्त निकलवाया जाता है। नंद के घर बलराम और श्रीकृष्ण के नामकरण-संस्कार के लिए मुनिवर गर्ग जी आते हैं[११]। नंद जी कंस के भय से चुपचाप 'स्वस्तिवाचन' और 'अग्निहोत्र करके' बालकों का नामकरण-संस्कार करने का निवेदन करते हैं[१२]। परमानंददास ने इस अवसर पर 'मोतियों से चौक पूरने' तथा 'मंगलगान करने' का भी वर्णन किया है[१३]। नंद जी के सबको सावधान करने के पश्चात् भी नामकरण-संस्कार के दिन गोकुल में बड़ा कोलाहल होता है। गर्ग जी नामकरण के अवसर पर कृष्ण के विमल यश का वर्णन करते हैं[१४]। रोहिणी-पुत्र बलराम के साथ उन्होंने नवजात शिशु कृष्ण के अनेक नामों का उल्लेख किया है[१५]। तदनंतर नंद जी के द्वारा यथेष्ट दान-मान पाकर याचक सन्तुष्ट होते हैं।

१०.क. नंद जू, आदि जोतिषी तुम्हरे घर कौ, पुत्र-जन्म सुनि आयौ।
'लगन सोधि सब जोतिष गनि कै' चाहत तुम्हहिं सुनायौ—सा० १०-८६।
ख. गर्ग 'निरूपि कह्यौ सब लच्छन', अबिगत हैं अबिनासी—सा० १०-८७।
ग वाण ने भी हर्ष के जन्म पर 'ग्रह संहिताओं' में पारंगत 'तारक' नामक गणक द्वारा हर्ष का भविष्य बताने का उल्लेख किया है—हर्ष०, सां० अ०, पृ० ६५।

११. नन्द गृह आयो गर्ग बिधि जानी।
राम-कृस्न के 'नामकरन' हित जदुकुल में सनमानी—परमा० ५६।

१२. तनक 'स्वस्तिवाचन' करि लीजै, लरिकन कछू नाँव धरि दीजै।
गर्गहिं अरग गये लै नंद, 'अगिनि होत्र करि' मंदहि मंद।
—नंद०, दशम०, पृ० २२६।

१३. गजमोतिनि के 'चौक पुराये नामकरन बिधि नीकी'—परमा० ५६।

१४. गोकुल आज कुलाहल पाई
ना जानों यह अस्ट महासिधि कहो कहाँ ते आई।
बोले 'नामकरन के कारन' गर्ग बिमल जस गाई।
'परमानंद' सन्तन हित कारन गोकुल आये माई—परमा० २४।

१५. प्रथम 'रोहिनी-सुत के नाम धरन लग्यौ' द्विज सब गुन धाम।

व्रजवासियों को कृष्ण के गुणों के बारे में सुनकर हार्दिक प्रसन्नता होती है।

ङ. *निष्क्रमण*—यह संस्कार बालक के चार महीने का हो जाने पर किया जाता है। बालक को खुली हवा में भूमि पर बैठाया जाता है। केवल परमानंददास ने श्रीकृष्ण को गोद से उतार कर भूमि पर बैठाने का वर्णन किया है[१६]। अन्य कवियों ने इस संस्कार को विशेष महत्व नहीं दिया है।

च. *अन्नप्राशन*—जब शिशु की आयु छः महीने की हो जाती है तब उसको पहली बार अन्न चखाने के लिए 'अन्नप्राशन संस्कार' सम्पन्न होता है। श्रीकृष्ण के 'कुछ दिन कम षटमास' के होने की शुभ सूचना पाकर नंद जी उनका 'अन्नप्राशन' करने की सोचते हैं[१७]। ब्राह्मण को बुलाकर संस्कार का मुहूर्त दिखाया जाता है। दिन निश्चित हो जाने पर सखियों को निमंत्रित किया जाता है। व्रज की बधुएँ मंगल-गीत गाती हैं[१८]। विविध प्रकार के व्यंजन बनाये जाते हैं और अपनी पाँति की व्रजबधुओं की ज्योनार की जाती है। माता यशोदा अत्यंत उल्लासपूर्वक बालक कृष्ण को उबटन मलकर नहलाती हैं; बदन में झगुली, सिर पर चौतनी और हाथ-पैरों में 'चूड़ा' पहनाती हैं। नंद बाबा अपनी मंडली के बीच कृष्ण को गोद में लेकर बैठते हैं। सोने का थाल खीर भर कर रखा जाता है। उसमें घृत और मधु डाला गया है। वही बालक को चटाया जाता है। छहों रस से उस दिन श्रीकृष्ण का मुख जुठराया जाता है[१९]। इसके बाद ज्योनार होती है। परमानंददास की यशोदा भी

याकौ एक नाम 'संकर्षन, जन-हर्षन, सबके मन - कर्षन।
बहुरयौ 'राम' परम अभिराम, अति बल तैं कहिहैं 'बलराम'।
अब सुनि अपने सुत के नाम, अद्‌भुत अद्‌भुत गुन के धाम।
इक 'श्रीकृष्न' नाम अस ह्वै है, ससि सम सुधा सबन पर च्वैहै।
कबहूँ पूर्व जन्म सुत तेरौ, पूत भयौ हे बसुदेव केरौ।
तातैं 'वासुदेव' इक नाम, पूरन करिहैं सबके काम।
याके अवर जु नाम अनंत, गनत गनत कोउ लहै न अंत—नंद०, दशम०, पृ०, २२६

१६. कर तैं 'उतारि भूमि राखे'—परमा० ६१।

१७. कान्ह कुँवर की करहु पासनी 'कछु दिन घटि षट मास गये'।
नंद महर यह सुनि पुलकित जिय, हरि 'अनप्रासन जोग' भये—सा० १०-८८।

१८. आछौ दिन सुनि महरि जसोदा, 'सखिनि बोलि सुभ गान करयौ।
जुवतिं महरि कौं 'गारी गावतिं, और महर कौ नाम लिए—सा० १०-८८।

१९. 'षटरस के परकार' जहाँ लगि, लै लै अधर छुवावत—सा० १०-८६।

श्रीकृष्ण का अन्नप्राशन-संस्कार बड़े उत्साह से करती हैं कि वह शीघ्र ही छह मास का हो जाय[२०]। तब वे देव, कुल-देवी और ब्राह्मण की पूजा करती, दान देती, मागध-भाट आदि का यथोचित सम्मान करती, कुटुम्ब के लोगों को खाना खिलाती और वस्त्राभूषण पहिराती हैं[२१]।

छ. *वर्षगाँठ*—शिशु जब एक वर्ष का होता है तब उसकी पहली 'वर्षगाँठ' मनायी जाती है। श्रीकृष्ण भी जब साल भर के होते हैं तब उनकी पहली 'वर्षगाँठ' मनाने का वर्णन आलोच्य कवियों ने किया है। स्त्रियों का मंगलगान करना, आँगन को चंदन से लीपना, मोतियों से चौक पूरना, तूर बजना, विप्र द्वारा शोधी हुई शुभ घड़ी में, अक्षत-दूर्वादल गाँठ में बाँधना आदि 'वर्षगाँठ' के अवसर पर होनेवाले विभिन्न चार हैं[२२]। यशोदा बच्चे को उबटन लगाकर स्नान कराती हैं तथा चौतनी टोपी, निचोल आदि नये वस्त्र और विविध आभूषण उसे पहनाती हैं[२३]। प्रत्येक जन्म-दिन पर एक डोरे में गाँठ बाँधी जाती है और एक गाँठ आयु के एक वर्ष की प्रतीक मानी

२०. परमानन्द अभिलाख जसोदा बेगि बढ़ै खटमासन—परमा० ५१।

२१. अनप्रासन दिन नन्दलाल कौ करत जसोदा माय।
'ब्राह्मन देव पूजि कुलदेवी' बहोत दच्छिना पाय॥
'कुटुम जिमाय पटंबर दीने' भवन आपुने आय।
'मागध भाट सूत सनमाने' सब हित हरख बढ़ाय—परमा० ५०।

२२. अरी, मेरे लालन की आजु बरष-गाँठि, सबै
सखिनि कौं बुलाइ 'मंगल गान करावौ'।
'चंदन आँगन लिपाइ, मुतियनि चौकैं पुराइ',
उमँगि अंगनि आनँद सौं 'तूर बजावौ'।
मेरे कहैं 'बिप्रनि बुलाइ, एक सुभ घरी धराइ',
बागे चीरे बनाइ, भूषन पहिरावौ।
'अछत-दूब-दल बँधाइ', लालन की गँठि जुराइ,
इहै मोहिं लाहौ नैननि दिखरावौ—सा० १०-९५।

२३. फूली फिरति जसोदा तन-मन, 'उबटि कान्ह अन्हवाइ' अमोल।
तनक बदन, दोउ तनक-तनक कर, तनक चरन, 'पोंछति पट झोल'।
कान्ह गरैं सोहति मनिमाला, 'अंग अभूषन अँगुरिनि गोल'।
'सिर चौतनी' डिठौना दीन्हौ, आँखि आँजि 'पहिराइ निचोल—सा० १०-९४।

जाती है। सूर ने इस प्रथा की ओर भी संकेत किया है[२४]। इस प्रथा से ही संभवतः 'बरष-गाँठि' शब्द बना है[२५]। आज भी अधिकांश भारतीय परिवारों में 'वर्षगाँठ' इसी प्रकार मनायी जाती है; परंतु डोरे में गाँठ बाँधने की प्रथा कहीं-कहीं लुप्त हो गयी है।

कुंभनदास ने 'गिरिधरन लाल' की वर्षगाँठ के पुनः कुशलपूर्वक आने की प्रसन्नता का वर्णन किया है[२६]। माता यशोदा पुत्र को तिलक लगाकर अक्षत लगाती हैं। सखियाँ कृष्ण को पीताम्बर और आभूषण पहना कर उनका शृंगार करती हैं[२७]। पश्चात् बड़े हर्षोल्लास के बीच वर्षगाँठोत्सव संपन्न होता है।

ज. *चूड़ाकर्म*—इस संस्कार में जन्म के पश्चात् पहली बार सिर के सब बाल मूँड़ दिये जाते हैं। अष्टछाप-काव्य में गभुआरे और झँडूले बालों का उल्लेख तो है, पर चूड़ाकर्म-संस्कार का वर्णन नहीं है[२८]।

झ. *कर्णवेध*—यह संस्कार बालक के तीसरे या पाँचवें वर्ष में होता है। इसमें बालक के कान छेदे जाने की प्रथा है। निपुण ज्योतिषियों को बुलाकर माता यशोदा तिथि, नक्षत्र, घड़ी आदि का विचार कराकर मुहूर्त निकलवाती हैं[२९]। बालक के कष्ट की पूर्व आशंका से वात्सल्यमयी माता का हृदय स्वभावतः ही काँप उठता

२४.क. ब्रजजन मोहन 'बरस गाँठि को डोरा' खोल—सा० १०-९४।
   ख. प्रभु 'बरष गाँठि' जोरत—सा० १०-९६।

२५. 'वर्ष-गाँठ' का ही एक समानार्थक शब्द 'सालगिरह' है। अँग्रेजी संस्कृति से प्रभावित नागरिक परिवारों में विदेशी पद्धति से वर्षगाँठ मनाने का ढंग भी आज प्रचलित हो गया है। उनके यहाँ केक काटना, वर्षों की प्रतीक जलती हुई मोमबत्तियाँ बुझाना, फूल और भेंट देना, मंगल कामनाओं से अंकित छपे कार्ड भेजना, भोज, गान, नृत्य आदि कार्य होते हैं—लेखिका।

२६. 'बरसगाँठि गिरिधरन' लाल की बहुरि कुसल सों आई—कुंभन० ६।

२७. पीतांबर आभूषन सखियनि 'कर सिंगार बनाई'।
   निरखि निरखि फूलत ललतादिक आनन्द उर न समाई—परमा० १०।

२८.क. 'गभुआरे' सिर केस हैं बर 'घूँघरवारे'—सा० १०-१३४।
   ख. उर बघ-नहाँ, कंठ कठुला, 'झँडूले बार',
   बेनी लटकन मसि-बुन्दा मुनि-मन-हर—सा० १०-१५१।

२९. गुरु बल, 'तिथिबल, नच्छत्र-बार' बलि सुभ घरी बिचारि लीजै।
   गनिक निपुन द्वै चारि बैठि के मतो बिचारयो नीकौ—परमा० ५३।

है। माता यशोदा के हृदय में भी धुकधुकी होती है कि मेरे कान्ह को कनछेदन के अवसर पर कष्ट न हो और वह मचल न जाय। उसका ध्यान हटाने के लिए सुहारी, पूरी और गुड़ उसे पकड़ा दिया जाता है[३०]। माता बच्चे को गोद में लेकर बैठ जाती है। द्विजवर सुई लेकर मंत्र पढ़ते हैं जिससे बालक को जरा भी कष्ट न हो[३१]। सींक से 'रोचन' का निशान लगाकर चतुर नाई सोने की सुई से शीघ्र ही कान छेद देता है[३२]। तब कानों में कंचन के 'दुर' पहनाये जाते हैं। कोमलहृदया माता की आँखों में 'कर्णवेध' देखकर आँसू आ जाते हैं; किंतु बालक की आँखों में आँसू देखकर वह नाई को घुड़की देती है। नंद जी समस्त व्रजवासियों के साथ आँख में आँसू और मुख पर हँसी लिये यह दृश्य देखते हैं[३३]।

'कर्णवेध' के बाद कृष्ण के ऊपर से मणि, मुक्ता आदि निछावर किये जाते हैं। नंद जी अपनी जाति और कुटुंब के लोगों को पहरावनी बाँटते हैं। अन्नदान, गोदान, धन आदि दान भी इस अवसर पर दिये जाते हैं[३४]।

३०.क. कान्ह कुँवर कौ 'कनछेदन' है, 'हाथ सोहारी भेली गुर की—सा० १०-१८०।

ख. आयौ 'कर्णबेध' दिन नीको।
'गुर की भेली' हाथ दिवाई कियो रोचन को टीको।
'गुरु ससि नछत्र बार' बल पहुँच्यौ दिनमनि अति सुखदाई।
सोने कंठ भूषन पहराये 'हाथ सुहारी पाई'
—कृष्ण०, कीर्तन-संग्रह, भाग १, पृ० १४५।

३१. 'सूची पढ़ि दीनी द्विजवर' देवा।
'जाते पीर न होय करन को' हम करिहैं सब सेवा—परमा० ५४।

३२. जसुमति माई गोद लै बैठी लाल देखि मन हरखे।
सूची माता के गोद बैठि के मूँदि स्रवन मन करखे॥
'कनिक सूचि लै स्रवन कों दीनी' वेधत बार न लागी—परमा० ५३।

३३. 'रोचन भरि लै देत सींक सौं', स्रवन-निकट अति ही चातुर की।
'कंचन के द्वै दुर मँगाइ लिए, कहौं कहा छेदनि आतुर की।
'लोचन भरि भरि दोऊ माता, कनछेदन देखत' जिय मुरकी।
रोवत देखि जननि अकुलानी, दियौ 'तुरत नौआ कौं घुरकी'।
हँसत नन्द, गोपी सब बिहँसी, झमकि चलीं सब भीतर दुरकी।
सूरज नँद करत बधाई, अति आनंद बाल ब्रजपुर की—सा० १०-१८०।

३४. कुँवर को 'कर्नबेध' करि लीनों।

ज उपनयन (यज्ञोपवीत)—बालक के सात वर्ष का होने पर उसका उपनयन या यज्ञोपवीत-संस्कार करके उसे विद्याभ्यास के लिए गुरु के पास भेजने की प्रथा भी उच्च वर्गीय समाज में रही है। श्रीकृष्ण का यह संस्कार उचित अवसर पर नहीं हो पाया था। परमानंददास ने एक पद में श्रीकृष्ण का उपनयन संस्कार गोकुल में न हो सकने का उल्लेख किया है[३५]। इसलिए जब कृष्ण, वसुदेव और देवकी के पास मथुरा गये तब उनका 'यज्ञोपवीत-संस्कार' कराया गया। इस संस्कार के द्वारा लौकिक और वैदिक कार्यों का अनुष्ठान किया जाता है। इसी से वसुदेव जी कुल-व्यवहार का विचार करके हरि-हलधर का जनेऊ करते हैं। उस समय गर्ग जी दोनों भाइयों को गायत्री मंत्र सुनाते हैं। वसुदेव जी विविध अलंकारों से अलंकृत करके अनेक गायें ब्राह्मणों को दान में देते हैं। स्त्रियाँ उल्लासपूर्वक सामूहिक रूप से मंगलगान गाती हैं[३६]। विभिन्न वाद्य बजाये जाते हैं और हर्षातिरेक में माता देवकी विभिन्न मूल्यवान वस्तुएँ न्यौछावर करती हैं[३७]। राजा के घर जनेऊ होने के उपलक्ष में देश-देश से 'टीका' भी आता है[३८]।

'उपनयन' या 'यज्ञोपवीत'-संस्कार के अवसर पर भिक्षा माँगने की प्रथा भी कहीं-कहीं देखने में आती है। इस संस्कार के पश्चात् विद्याध्ययन का आरंभ

जाति कुटुम्ब पाटंबर पहिरो जिन जो माँग्यो सो दीनों।
'अन्न दान, गोदान' करि दिय धन जो जाको अधिकारी।
—कृष्ण०, कीर्तन-संग्रह, भाग १, पृ० १४५।

३५. 'पाँच बरस को स्याम मनोहर' ब्रज में डोलत नाँगो।
परमानन्ददास को ठाकुर 'काँधे पर्यो न तागो'—परमा० ६३।
विशेष—इस वर्णन से यह भी ज्ञात होता है कि साधारणतया बालकों का जनेऊ ५ वर्ष की अवस्था तक हो जाता था—लेखिका।

३६. हरि हलधर कौं 'दियौ जनेऊ' करि षटरस ज्यौनार।
जाके स्वाँस-उसाँस लेत मैं प्रगट भए स्नुति चार।
तिन 'गायत्री सुनी गर्ग सौं' प्रभु गति अगम अपार।
बिधि सौं 'धेनु दई बहु बिप्रनि', सहित सर्वऽलंकार।
जदुकुल भयौ परम कौतूहल, जहँ तहँ गावतिं नार—सा० ३०६३।

३७. हरि कर पाटबंर, 'न्यौछावरि करत रतन पटसारी'।
'बाजत ढोल निसान, संख' रव होत कुलाहल भारी—सा० ३०६४।

३८. लोक लोक कौ 'टीकौ आयौ', मुदित सकल नर-नारी—३०६४।

होना माना गया है जिसके लिए बालक गुरुकुलों में जाते थे जहाँ गुरु की आज्ञा से उन्हें भिक्षा माँगने भी जाना होता था। संभवत: इस संस्कार के अवसर पर उसी परंपरा की ओर संकेत 'ब्रह्मचारी' या 'वटु' (जिसका यज्ञोपवीत हो रहा हो) द्वारा भिक्षा माँगने की प्रथा में है। अष्टछापी कवियों ने इस परंपरा के संबंध में कुछ नहीं लिखा है, केवल 'सारावली' में यज्ञोपवीत के अवसर पर 'भिक्षा' माँगने की रीति का वर्णन किया गया है जिसमें सब देवता बालक को भिक्षा देते हैं[३९]।

ट. *वेदारंभ*—'उपनयन' संस्कार के पश्चात् बालक की शिक्षा आरंभ होती है। प्रारंभ में शिक्षा में वेदों का प्रमुख स्थान था, संभवत: इसी से विद्यारंभ को 'वेदारंभ'-संस्कार कहा जाता है। बहुधा यह संस्कार उपनयन के दूसरे दिन सम्पन्न होता है। मथुरा में कृष्ण के यज्ञोपवीत के बाद ही 'वेदारंभ' संस्कार करके उन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिए अवन्तीपुरी भेजे जाने का उल्लेख 'सारावली' में हुआ है, अन्य कवि इस संबंध में मौन हैं[४०]।

ठ. *विवाह*—मानव-जीवन का सबसे महत्वपूर्ण संस्कार 'विवाह' है जिसका भारतीय धर्मशास्त्रों में बड़े विस्तार से वर्णन मिलता है। 'मनुस्मृति' में आठ प्रकार के—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापात्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच—विवाह माने गये हैं[४१]। भारतीय संस्कृति में विवाह को सामान्य समझौता नहीं, ऐसा महत्वपूर्ण संस्कार माना गया है जिसमें युवक-युवती का जन्म-जन्मांतर का संबंध भाग्य द्वारा निश्चित किया हुआ समझा जाता है। विवाह के लिए 'पाणिग्रहण'

३९. 'जज्ञोपवीत विधोक्त' कियो विधि सब सुर भिक्षा दीन्ही—सारा० ३३२।

४०. गर्ग बुलाय बेद बिधि कीन्हीं सुभ 'उपबीत करायो'।
बिद्या पढ़न काज 'गुरु ग्रह दोउ पुरी अवंति' पठायो—सारा० ५३८।

४१. वस्त्राभूषण से सज्जित कन्या की पूजा करके श्रुति-शीलवान वर को सौंपना 'ब्राह्म', वस्त्राभूषण से सज्जित कन्या ऋत्विक को सौंपना 'दैव', एक या दो गो-मिथुन लेकर यथा-विधि कन्या देना 'आर्ष', 'दोनों साथ-साथ धर्माचरण करो' कहकर कन्या देना 'प्राजापात्य', धनादि देकर कन्या प्राप्त करना 'आसुर', वर-कन्या का इच्छानुसार संयोग 'गांधर्व', बलपूर्वक कन्या हरण 'राक्षस' और सुप्त अथवा प्रमत्त कन्या से केवल मैथुन के उद्देश्य से किया गया संबंध 'पैशाच' विवाह कहलाता है—मनुस्मृति ३-२७-३४।

और 'कन्यादान' शब्द भी प्रचलित रहे हैं तथा इस्लामधर्मावलंबियों के भारत में आने के बाद 'शादी' शब्द भी उसी अर्थ में प्रचलित हो गया, यद्यपि अष्टछाप-काव्य में उसका प्रयोग नहीं हुआ है। विधिवत् विवाह के अवसर पर किये जानेवाले मंगल कार्यों, कुलाचारों और शास्त्रविहित कृत्यों का भी विशद वर्णन भारतीय धर्माचार्यों ने किया है और उनकी संख्या चालीस से भी अधिक बतायी है[४२]।

अष्टछापी कवियों में सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास और नंददास ने विवाह-संस्कार का वर्णन जितने विस्तार से किया है, अन्य कवियों ने नहीं। नंददास ने रूपमंजरी, देवकी, राधा और रुक्मिणी के विवाहों का; कुंभनदास ने केवल राधा-कृष्ण की सगाई का और परमानंददास ने वाग्दान, सगाई, टीका आदि वैवाहिक कुलाचारों के साथ-साथ राधा-कृष्ण-विवाह का वर्णन किया है। सूरदास विवाह-संस्कार के विशद वर्णन में अन्य अष्टछापी कवियों से बहुत आगे हैं। उन्होंने 'सूरसागर' के चतुर्थ स्कंध में शिव-पार्वती के, नवम में हलधर-रेवती और राम-सीता के, दशम स्कंध पूर्वार्द्ध में वसुदेव-देवकी और राधा-कृष्ण

४२. 'संस्कार-मयूख' के 'वीर मित्रोदय संस्कार कांड' में स्मृति तथा विवाह पद्धतियों पर आधारित वैवाहिक कृत्यों की विस्तृत सूची इस प्रकार है—वर-वधू-गुण-परीक्षा, वर-प्रेक्षण (कन्या को देखने के लिए वर को भेजना), वाग्दान (विवाह की स्वीकृति), मंडपकरण, पुण्याहवाचन तथा नांदीश्राद्ध, वधू-गृहागमन (कन्या-पक्ष के घर वर-पक्ष का जाना), मधुपर्क, विष्टरादान, (वर को बैठने के लिए आसन देना), गौरी-हर-पूजा, स्नापन, परिधापन तथा संनहन, समंजन (वर वधू को अंगराग लगाना), प्रतिसरबंध (कन्या के हाथ में कवच बाँधना), वधू-वरनिष्क्रमण, परस्पर समीक्षण, कन्यादान, अक्षतरोपण, कंकणबंधन (वधू की कलाई में कंकण बाँधना), आर्द्राक्षतरोपण, तिलककरण, अष्ट फलिदान, मंगल-सूत्र-बंधन, गणपति-पूजा, वधू-वरयोत्तरीय-प्रांत-बंधन (वधू और वर की चादरों का छोर बाँधना), लक्ष्मी-पार्वती-शची-पूजा, वापनदान, अग्निस्थापन तथा होम, पाणिग्रहण, लाजा-होम, अग्नि परिणयन, अश्मारोहण, गाथागान, सप्तपदी, मूर्द्धाभिषेक, सूर्योदीक्षण, हृदयस्पर्श, सिंदूरदान (सिंदूर लगाना—सुमंगली), प्रेक्षकानुमंत्रण, दक्षिणादान, गृह-प्रवेश, गृह प्रवेशनीय होम, ध्रुवारुंधती-दर्शन, आग्नेय स्थालीपाक, त्रिरात्रव्रत, चतुर्थीकर्म, देवकोत्थान तथा मंडपोद्वासन—'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' (संपा० डा० राजबली पांडेय), खंड १, अ० ५, पृ० १३२।

के, एवं दशम स्कंध उत्तरार्द्ध में रुक्मिणी, जांबवती, सत्यभामा, पंचपटरानी—कालिंदी, मित्रविंदा, सत्या, भद्रा और लक्ष्मणा—के साथ कृष्ण के विवाह के, तथा प्रद्युम्न,[४३] अनिरुद्ध-उषा, सांब-लक्ष्मणा एवं अर्जुन-सुभद्रा के विवाहों का उल्लेख किया है। इन विवाहों में सीता के स्वयंवर में धनुष तोड़ने की[४४] और सत्या के विवाह में सात बैल एक साथ नाथने की[४५] प्रतिज्ञा पूरी करने पर विवाह हुआ है। रुक्मिणी का पत्र पाकर देवी-मंदिर से बाहर आने पर उसका हरण करके[४६] और लक्ष्मणा का स्वयंवर से हरण करके[४७] श्रीकृष्ण ने उनसे राक्षस विवाह[४८] किया है। दुर्योधन की पुत्री का सांब ने[४९] और श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा का अर्जुन ने भी हरण ही किया है[५०]। शेष विवाहों के सामान्य रीति से होने का वर्णन है जिनमें पिताओं ने अपनी कन्याएँ योग्य पात्रों को इच्छा-अनिच्छा से सौंपी हैं।

विवाह-संबंध में सांस्कृतिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण संकेत सभी अष्टछापी कवियों ने किया है और वह यह कि समस्त विवाहों में पुत्री के विवाह-योग्य अवस्था की होने पर ही उसके इस महत्वपूर्ण संस्कार का प्रसंग उठाया गया है। रूपमंजरी,[५१]

४३. प्रद्युम्न की पत्नी का नाम 'सूरसागर' में नहीं है—लेखिका।

४४. यह अति 'दुसह पिनाक पिता-प्रन' राघव-बयस किसोर।
इनपै दीरघ धनुष चढ़ै क्यों, सखि यह संसय मोर—सा० ६-२३।

४५. हरि चरननि सत्या चित दीन्हौ, ताकौ 'पिता परन यह कीन्हौ'।
'सात बैल ये नाथैं जोइ, सत्या ब्याह तासु सँग होइ'—सा० ४१६२।

४६. रुक्मिनि देवी मंदिर आई।

× × ×

इहिं अंतर जादौपति आए, 'रुक्मिनि रथ बैठाई'—सा० ४१८१।

४७. बहुरि लक्ष्मना सुमिरन कीन्हौ, ताहि 'स्वयंबर मैं हरि लीन्हौ'—सा० ४१६२।

४८. श्रीमदभागवत में रुक्मिणी के विवाह को 'राक्षस विवाह' ही कहा गया है—
'और बलपूर्वक राक्षसविधि से वीरता का मूल्य देकर मेरा पाणिग्रहण कीजिए'।
—दशम स्कंध, अध्याय ५३, पृ० ४६०।

४९. स्याम-सुत सांब गयौ हस्तिनापुर तुरत लछमना तहँ स्वयंबर रचायौ।
देखतैं सबनि कै 'ताहि बैठारि रथ, आपने देस कौं पलटि धायौ'—सा० ४२०६।

५०. इक दिन सो हरि मंदिर गई। तहाँ भेंट पारथ सौं भई।

× × × ×

'पारथ लै सो रथहि परायौ', रथ के तुरगनि बेगि चलायौ—सा० ४३०३।

५१. 'ब्याहन जोग जानि' पितु-माता, कीनौ मंत्र बोलि सब ग्याता—नंद०, रूप०, पृ० ५।

पार्वती,[५२] देवकी[५३] और रेवती[५४] के प्रसंग में 'वय-प्राप्ति' का स्पष्ट उल्लेख है। अन्य विवाहों में स्वयंवर आदि के वर्णन से भी स्पष्ट होता है कि बाल-विवाह की चर्चा अष्टछाप-काव्य में नहीं है[५५]।

अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित विवाह-संस्कार की रीतियों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में वर-प्रेक्षण, वाग्दान, मंडपकरण, वधू-गृहागमन, मधुपर्क, समंजन, पाणिग्रहण, अग्नि-प्रदक्षिणा, गृह-प्रवेश आदि रीतियाँ आती हैं जिनको 'शास्त्रविहित कृत्य' कहा जा सकता है। द्वितीय वर्ग में वैवाहिक निमंत्रण, हल्दी-तेल चढ़ना, वर की सज्जा, कंकण-पूजन, देवी-पूजन, जुआ खेलना, कंकण-मोचन, गाली गाना, भूर या न्यौछावर बाँटना आदि बातें आती हैं जिनको 'कुलाचार' के अंतर्गत समझना चाहिए। सूरदास के 'बिबाह-ब्यौहार' और 'कुल-ब्यौहार' प्रयोगों से संकेत 'शास्त्रीय विधि' और 'कुलाचारों' से ही जान पड़ता है[५६]। अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित विवाह-रीति को स्पष्ट रूप से समझने के लिए शास्त्रीय कृत्यों और कुलाचारों को सम्मिलित करके विवाह-संस्कार का क्रमबद्ध विवरण देने का प्रयास प्रस्तुत प्रबंध में किया गया है[५७]।

क. *वर-प्रेक्षण*—इसमें कन्या को देखने के लिए वर को भेजा जाता है। कुंभनदास ने 'स्याम-सगाई' में इसका वर्णन किया है। वृषभानु जी नंद, यशोदा आदि के साथ कृष्ण को बरसाने में बुलाते और राधा की सगाई करते हैं[५८]।

५२. पारवती 'बय-प्रापत भई'—सा० ७-४।

५३. 'ब्याहन जोग' जानि छबि मई, सो देवक बसुदेवहिं दई—नन्द०, दशम०, पृ० २०२।

५४. मम पुत्री 'बयप्रापत आहि'। आज्ञा होइ, देउँ तिहि ब्याहि—सा० ६-४।

५५. श्री एस. लेनपूल ने 'मेडिवल इंडिया' में अकबर द्वारा बाल-विवाह रोकने की बात लिखी है—पृ० २५२।

५६.क. और बहुत दायज दीन्हें उन करि 'बिबाह-ब्यौहार'—सा० ४१६०।

ख. 'कुल-ब्यौहार' सकल कराइयौ—सा० ४१८६।

५७. विवाह की शास्त्रीय विधि सभी भारतीय हिंदुओं में प्रायः समान होती है; परंतु कुलाचारों में सदैव अंतर रहता है और एक कुल दूसरे के कुलाचार कभी-कभी अपना भी लेता है जिसका एक प्रमाण है आधुनिक विवाहों में 'जयमाल' का प्रचलन सभी जातियों में हो जाना—लेखिका।

५८. नन्दीस्वर तें नन्द जसोदा 'गोपनि न्योति बुलाए'।

× × ×

ख. *सगाई या मँगनी और वाग्दान*—आज भी विवाह का बीजारोपण 'सगाई' या 'मँगनी' से होता है जिसको 'गोद भरना' भी कहा जाता है। यह विवाह पक्का होने का छोटा-सा उत्सव है[५९]। विवाह के पहले का दूसरा उत्सव 'सगुन' के नाम से प्रसिद्ध है। लड़की के हाथ पर रखकर लग्नपत्रिका तथा भेंट की सामग्री लड़के के घर भेजी जाती है और उसके हाथ पर भी रखी जाती है। यह निश्चित तिथि पर कन्या के घर आने का निमंत्रण है। बहुत से परिवारों में सगाई और वाग्दान-संस्कार अलग अलग किया जाता है।

अ. *सगाई*—अष्टछाप-काव्य में बहुधा ब्राह्मण ही सगाई का प्रस्ताव लेकर जानेवाला बताया गया है[६०]। नंददास ने इस प्रसंग में एक बहुत रोचक संकेत किया है कि यदि सगाई करानेवाला ब्राह्मण धन का लोभी हो तो वह कुपात्र के साथ भी कन्या का विवाह करा देने में संकोच नहीं करता। इसीलिए रूपमंजरी के माता-पिता सगाई करानेवाले ब्राह्मण से प्रार्थना करते हैं कि धन का लोभ न करके कन्या के योग्य सुपात्र ही की खोज कीजिए;[६१] अस्तु। परंतु 'स्याम-सगाई' में द्विज-नारी सगाई का संदेश लेकर जाती है और यशोदा उससे कहती है—वृषभानु महर से जाकर कहना कि अपने पुत्र के लिए मैं तुम्हारी पुत्री गोद पसार कर माँगती हूँ[६२]। सगाई का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने पर कन्या को वर की माता की गोद में

हमरी लली, तुम्हारे लालन यह जग जाए अनूप—कुंभन० १०।

५९. बाण ने राज्यश्री का विवाह पक्का होने की जो विधि दी है उससे बाणकालीन वाग्दत्ता बनाने की प्रथा पर प्रकाश पड़ता है। प्रभाकर वर्द्धन ने शुभ मुहूर्त में ग्रहवर्मा के दूत के हाथ पर राजकुल के समक्ष 'कन्या-जल' गिराया।
—डा० वासुदेवशरण अग्रवल, हर्ष०, सां० अ०, पृ० ६६।

६०. कहुँ मिलि 'बिप्र कहत' सबहिनि सों बालक 'करन सगाई'—सारा० ६७६।

६१. ब्याहन जोग जानि पितु-माता, कीनौ मंत्र बोलि सब ग्याता।

× × × ×

करि बिचारि निज बिप्र बुलायौ, बार बार सब बिधि समझायौ।
अहो बिप्र! धन-लोभ न कीजै, या लाइक नाइक कौं दीजै।
लोभी द्विज कुबुद्धि अस कीनी, कूर कुरूप कुँवर कौं दीनी—नंद०, रूप०, पृ० ५।

६२. जसुमति महाप्रबीन 'एक द्विजनारि बुलाई'।

× × ×

बैठा दिया जाता है और वर को कन्या की माता की गोद में[६३]। सगाई होने का सुसमाचार सुनकर यशोदा अपना घर सजाती और 'मोतियों से चौक पूरती' हैं। नंद जी के घर बधाई बजती है[६४]। व्रज की स्त्रियाँ अवसरानुकूल गीत गाती और आनन्दोत्सव मनाती हैं[६५]।

ख. वाग्दान—वाग्दान में कन्या-पक्ष से वर के घर 'टीका' आता है और विवाह पूर्ण रूप से निश्चित समझा जाता है। 'टीका' आने की सूचना पाकर माता पुत्र को सजाती-सँवारती है। ब्राह्मण वर को तिलक लगाता है। विविध मंगल-वाद्य बजते हैं। कुँवर के ऊपर से वस्त्राभूषण आदि उतार कर न्यौछावर किये जाते हैं[६६]। सर्वत्र प्रसन्नता छा जाती है तथा यह शुभ समाचार फैल जाता है।

ग. निमंत्रण—विवाह के अवसर पर परिवार और समाज के लोगों को निमंत्रित किया जाता है। किसी विवाह का विधिवत् विस्तृत वर्णन न होने के कारण यद्यपि सजातियों और मित्रों को 'निमंत्रण' भेजने का स्पष्ट उल्लेख अष्टछाप-काव्य में नहीं है, तथापि बरातियों की संख्या कभी-कभी 'छप्पन कोटि' तक बताने से स्पष्ट

जाइ कह्यो बृषभानु सौं करियौ बहु मनुहारि।
'यह कन्या मैं स्याम को माँगों गोद पसारि'—नन्द०, स्याम०, पृ० ११५।

६३. इतनी सुनत कीरति 'कुवँरि कों जसुमति गोद बैठाई'।
जसुमति लालन कीर्ति गोद दै' कुवँरि मुदित खिलाई—कुंभन० १०।

६४. सुनत सगाई स्याम, ग्वाल सब अंगनि फूले
× × × ×
जसुमति रानी धर सज्यो, मोतिनि चौक पुराइ।
बटत बधाई नन्द के 'नन्ददास' बलि जाइ।
कि जोरी सोहनी।
—नन्द०, स्याम०, पृ० १२२।

६५. कीरति बोलि सबै 'ब्रज नारी ब्याह के गीत गवाए'।
सुनि सबहिंनि मन हरष भयो अति भए मनोरथ मन-भाए—कुंभन० १०।

६६. आज ललन की होत सगाई।
× × ×
'बृषभान गोप टीका दै पठयो' सुन्दर जाति कन्हाई।
× × ×
'बिप्र प्रबीन तिलक कर मस्तक' अच्छत चोप लियो अपनाई—परमा० ३०६।

है कि विवाह का निमंत्रण पाकर ही सब एकत्र हुए होंगे[६७]। श्रीकृष्ण के गंधर्व-विवाह में गोपियाँ मुरली द्वारा निमंत्रित की जाती हैं[६८]।

घ. *मंडपकरण*—विवाह के लिए मंडप[६९] तैयार किया जाता है। इसे 'मँडवा' भी कहते हैं। यह अधिकतर कदली खम्भों से बनाया जाता है जिसे अनेक प्रकार के फूलों से अलंकृत करते हैं[७०]। मंडप के भीतर 'वेदी' बनाये जाने का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में हुआ है[७१]। यह मंडप कन्या के गृह में बनता है। कृष्ण-राधा के विवाह में मंडप बनाया जाता है जिसके नीचे कृष्ण बैठते हैं;[७२] किंतु रुक्मिणी-हरण के कारण 'सारावली' में द्वारका में 'मँडवा' छाये जाने का उल्लेख मिलता है[७३]।

मंडप और 'वेदी' या 'चौरी' का वैवाहिक कार्य में महत्वपूर्ण स्थान है। समस्त वैवाहिक कार्य, होम, कन्या-दान आदि इसी के नीचे सम्पन्न होते हैं। इसी कारण शुभ मुहूर्त में वेदी या चौरी रची जाती है[७४]। कन्या को उबटनादि लगाकर स्नान कराने के पश्चात् विविध वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके चौरी में लाया जाता है और मुक्ताओं से चौक पूरा जाता है[७५]।

६७. चले साजि बराति जादौ 'कोटि छप्पन' अति बली—सा० ४१८६।
६८. गोपीजन नेवते आई। 'मुरली धुनि तें पठाइ बुलाई'—सा० १०७२।
६९. राज्यश्री के विवाह के निमित्त बेदी के खंभे गीले ऐपन की थापों, आलता के रंग में रँगे लाल कपड़ों और आम एवं अशोक के पल्लवों से सजाये गये थे।
—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्ष०, सां० अ०, पृ० ७२।
७०. 'कदली जूथ' अनूप किसलयदल, सुरंग सुमन लै मंडप छावहु—सा० ४१८५।
७१. छाए जु फूलनि 'कुंज मंडप' पुलिनि में बेदी रची—सा० १०७२।
७२. सजनी री गावो मंगलचार।
× × ×
'मंडप छायो' देखि बरसाने बैठे नन्द उदार—परमा० ३१४।
७३. 'आये नाथ द्वारिका' नीके रच्यो माँडवो छाय'—सारा० ६३६।
७४. सोधि मुहूरत 'चौरी' बिधि रची।
× × ×
'रची चौरी' आपु ब्रह्मा जटित खंभ लगाइ के—सा० ४१८६।
७५.क. इत उबटि खोरि सिंगारि सखियनि, 'कुँवरि चौरी आनियौ'—सा० १०७२।
ख. 'चौक मुक्ताहल पुरायौ', आइ हरि बैठे तहाँ।

ङ. *हल्दी-तेल चढ़ाना*—विवाह के पहले दूल्हे और दुलहिन के शरीर पर हल्दी और तेल चढ़ाने की रस्म होती है जिसके पश्चात् स्नान कराया जाता है। कृष्णदास ने हल्दी चढ़ाकर और उबटन लगाकर कृष्ण के नहलाये जाने का वर्णन किया है[७६]। कन्या को सात सुहागिनें तेल चढ़ाती हैं। लाल रंग का 'सालू' नामक कपड़ा बाँधकर वितान बनाया जाता है जिसके बीच में पकवान रखा जाता है। कन्या को उबटन लगाकर नहलाने के बाद उसको वस्त्राभूषण पहनाये जाते हैं। तब वह सब स्त्रियों की गोद में पकवान देती है। परमानंददास ने सालू के वितान के नीचे सप्त सुहागिनों द्वारा वृषभानुनंदिनी के तेल चढ़ाये जाने और पश्चात् उबटन लगाकर नहलाये जाने का वर्णन किया है। तदनंतर वस्त्राभूषणों से अलंकृत राधा के हाथों से सबको पकवान दिलाया जाता है[७७]।

च. *वर की सज्जा*—विवाह के अवसर पर वर के वेश की प्रधान विशेषता 'मौर' और 'सेहरा' धारण करने में होती है। 'मौर' विवाह के समय के एक शिरोभूषण को कहते हैं जो ताड़पत्र या 'खुखड़ी' का बनाया जाता है। परमानंददास

× × ×

'कुँअरि' सांस षोडस कला 'सिंगार कर ल्याई'' अली—सा० ४१८६।

ग. मनि मानिक 'मंडप रच्यो फूलन' बंदनवार।
बारोठी दूल्हे आयो कुंजमहल के द्वार।
मैं जु 'राधा उबट न्हवाय' षोडस किये सिंगार—सूर०, कीर्तन०, भाग २, पृ० ९८।

७६. 'हरद चढ़ावैं हृदय लगावैं 'उबट न्हवावैं सब ब्रजनारी।
कृष्नदास गिरिधरन छबीले रंग रँगीले की बलिहारी।
—कृष्ण०, कीर्तन-संग्रह, भाग २, पृ० ९५।

७७. बरसानें बृषभान गोप कें 'तेल चढ़ावत' गोरी।
नव तरुनी लै संग बाल रूप अनुपम जोरी।
'सालू तान बितान बनायो' कर गहे कुँवर किसोरी।
ताके मध्य पकवान बिबिध धरि करि कंकन बिधि कंकन जोरी।
'सप्त सुहागिनि तेल चढ़ावैं' भाग्य सुहागिनि जोरी।
राधा जू 'तब उबटि न्हवाई' छबि की तटनि झकोरी।
आभूषन बसन पहिराय कुँवरि को 'मरुवट' कर मुख रोरी।
स्यामा कर 'पकवान दिवायो सबकूँ भरि भरि झोरी'।
—परमा०, 'कीर्तन-संग्रह', भाग २, ब्याह के पद, पृ० १०४।

अपने आराध्य के मौरधारी वेश को देखने की कामना करते हैं[७८] तो नंददास उनके 'मौरधारी' रूप का सोल्लास वर्णन करते हैं[७९]।

वैवाहिक अवसर पर नंददास ने कृष्ण के वस्त्र 'जरी' के बताये हैं;[८०] साथ-साथ वे मणि-मोतियों तथा रत्नों से जटित 'सेहरा'[८१] भी पहने हुए हैं[८२]। राजकुल के लोग 'मौर' के स्थान पर 'मुकुट' धारण करते हैं। इसीसे रुक्मिणी-विवाह के अवसर पर राजा कृष्ण 'मुकुट' धारण करते हैं जिसमें रत्न, हीरे, मणि, माणिक्य आदि लगे हैं; 'मुकुट' के साथ ही माथे पर 'सेहरा' भी बँधा है[८३]। परमानंददास के कृष्ण का 'सेहरा' फूलों का न होकर मोतियों का है[८४]। 'सेहरा' बनाकर लानेवाली नाइन होती है।

वर का वाहन 'घोड़ी', 'घोड़ा' अथवा 'रथ' होता है। रुक्मिणी से विवाह करने के लिए श्रीकृष्ण 'घोड़े' पर चढ़कर जाते हैं जिसकी जीन जड़ाऊ है[८५]। परमानंददास ने दूलह कृष्ण की नीली ऊँची घोड़ी का उल्लेख किया है[८६]।

७८. कब देखौंगी 'मौर धरे' सिर ऊपर पनरथ ढापन की—परमा० ३१०।

७९. 'मौर बन्यो सिर' कानन कुंडल मरुवट मुखहिं सुहाय।
—नन्द०, 'कीर्तन-संग्रह, भाग २, पृ० १०५।

८०. पहिरें जरकसी' पट आभूषन अँग अँग मन अरुझाय।
—नन्द०, 'कीर्तन-संग्रह', भाग २, पृ० १०६।

८१. वर ग्रहवर्मा के सिर पर मल्लिका पुष्पों की माला तथा उसके बीच में फूलों का 'सेहरा' वर्णित है—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्ष०, सां० अ०, पृ० ८३।

८२. 'रत्नजटि को बन्यो सेहरो' उर मोतिनि की माल।
—नन्द०, कीर्तन-संग्रह, भाग २, पृ० १०८।

८३. बसुद्यौ-नन्दन त्रिभुवन-बंदन। मुकुट तरनि मनि कुंडल स्रवनन।
'मुकुट कुंडल जरित हीरा लाल' सोभा अति बनी।
'पन्ना पिरोजा' लगे बिच-बिच चहूँ दिसि लटकत मनी।
'सेहरा सिर' मुकुट लटकत कंठमाला राजई—सा० ४१८६।

८४. 'मनि-मोतिनि कौ सेहरा' सौहै बसियो मन मेरे—परमा० ३१५।

८५. 'तुरी ताजी' बिना ताजन, चपल चपला श्री हरी।
जीन जरित जराव पाखरि, लगी सब मुक्ता लरी—सा० ४१८६।

८६. 'अति उतंग नीली घोरी चढ़ि' और छबि चँवर ढुरन की—परमा० ३१०।

छ. *कंकण-बंधन*—विवाह के पूर्व वर और कन्या, दोनों के हाथों में 'कंकण' या 'कँगना' बाँधा जाता है[८७]। कृष्णदास के अनुसार कृष्ण के हाथ में द्विजवर के द्वारा जो 'कंकण' बाँधा गया था वह मणि-मोतियों का है[८८]।

ज. *देवी-पूजन*—विवाह के पूर्व और पश्चात् देवी-पूजन की प्रथा अनेक कुलों में पायी जाती है। सूरदास की रुक्मिणी भी विवाह के पूर्व सखियों सहित पूजन-सामग्री लेकर गौरी पूजने जाती हैं[८९]। राधा-कृष्ण के गन्धर्व-विवाह में भी 'सूरसागर' में पहले देवी-पूजन का उल्लेख मिलता है[९०]। नंददास ने 'रुक्मिनी-मंगल' में देवी-पूजन की कुल-रीति[९१] का वर्णन किया है[९२]।

८७. तेल चढ़ाते समय वर-वधू के हाथ में 'कंकण' बाँधने की प्रथा आज भी है। एक छोटी सी पोटली में हल्दी, सुपारी और लोहे का छल्ला 'कलावे' से बाँध देते हैं। दोनों ओर की स्त्रियाँ (प्रायः भाभियाँ) उसमें खूब गाँठें बाँध देती हैं जिसमें वह सरलता से खुल न सके। 'कलावा' तिरंगा—लाल, पीला और सफेद—होता है। आजकल इसी प्रकार और भी कुछ खेल 'कोहबर' में (जिस कोठरी में कुल-देवी-देवता स्थापित किये जाते हैं) सम्मिलित हैं जैसे वर-वधू का दीपक की दो बत्तियाँ मिलाकर एक करना, मटकी में पुए मुट्ठी से भरकर निकालना आदि। ये सभी दो व्यक्तियों के एक प्राण होने के प्रतीक हैं। हर घर में किसी न किसी रूप में यह लोकाचार सुरक्षित है—लेखिका।

८८. रत्न जटित मनिमोतिनि जगमग द्विजबर पढ़ि बाँधत हितकारी।
—कृष्ण०, कीर्तन-संग्रह, भाग २, पृ० ६५।

८९. रुक्मिनि 'देवी-मंदिर' आई।
'धूप-दीप पूजन सामग्री' अली संग सब ल्याई।
× × ×
'कुँवरि पूजि गौरी, बिनती करी', बर देउ जादवराई—सा० ४१८१।

९०. यह व्रत हिय धरि 'देवी पूजी'। है कछु मन अभिलाष न दूजी।
दीजै नन्द-सुवन पति मेरैं। जो पै होइ अनुग्रह तेरैं—सा० १०७२।

९१. श्रीमद्भागवत में रुक्मिणी अपनी पत्रिका में इस कुल-रीति की चर्चा करती हैं—'हमारे कुल का तो ऐसा नियम है कि विवाह के पहले दिन कुलदेवी का दर्शन करने के लिए एक बहुत बड़ी यात्रा होती है, जुलूस निकलता है जिसमें विवाही जानेवाली कन्या या दुलहिन को नगर के बाहर गिरिजा देवी के मंदिर में जाना पड़ता है'—दशम स्कंध, अध्याय ५३, पृ० ४६।

९२. 'जहाँ देबि अंबिका, नगर बाहिर मठ अपन'।
ह्वै आई कुलरीति, चली दुलहीं तिहिं पूजन—नंद०, रुक्मिनी०, पृ० १५१।

झ. *वधू-गृहागमन*—विवाह के हेतु वर-पक्ष वाले बरात लेकर कन्या-पक्ष वालों के घर जाते हैं। अष्टछाप-काव्य में राम-जानकी, और कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-प्रसंग में बरात का वर्णन हुआ है। 'बरात' में सम्मिलित होनेवाले लोग 'बराती' (सं० वर-यात्रिक) कहलाते हैं[९३]। महाराज दशरथ बरात लेकर जनकपुर जाते हैं जहाँ मोतियों से चौक पूरा जाता है। ब्राह्मण वेद-मंत्र उच्चारण करते हैं और युवतियाँ मंगलगान करती हैं[९४]। इसी प्रकार उग्रसेन, वसुदेव आदि आनंदपूर्वक 'बरात' सजाकर रुक्मिणी का विवाह करने जाते हैं; भाट विरुदावली गाते हैं तथा अनेक वाद्य बजते हैं[९५]।

वर और कन्या के पिता तथा अन्य गुरुजन 'सजन-समधी' कहलाते हैं। विवाह के समय 'समधी' परस्पर पान बदलते हैं जिसका उल्लेख कृष्णदास के एक पद में हुआ है[९६]। स्वयंवर के अवसर पर 'बरात' बुलाने के लिए विप्र को भेजने का उल्लेख भी कहीं-कहीं मिलता है। 'सारावली' के राम-विवाह-वर्णन में जनकराज ने महाराज दसरथ को बुलाने विप्रदेव को ही भेजा है[९७]।

ञ. *मधुपर्क*—मधु, शर्करा, घृतादि से निर्मित मधुपर्क से बरात के आगमन पर उसका स्वागत किया जाता है[९८]। पूजन-सामग्री में भी मधुपर्क का स्थान रहा

९३.क. मनमथ सैनिक 'भए बराती'—सा० १०७२।
ख. ये सब सखा 'बरात चलेंगे' हौंहुँ चढ़ौंगो घोरी।
जन परमानंद पान खवावै बीरा राखे भरि झोरी।
—परमा०, कीर्तन-संग्रह, भाग २, पृ० १०४।

९४. महाराज दसरथ तहँ आए।
बैठे जाइ जनक मंदिर महँ, 'मोतिनि चौक पुराए'।
'बिप्र लगे धुनि-बेद उचारन', 'जुवतिनि' मंगल गाए—सा० ९-२४।

९५. 'चले साजि बरात जादौ कोटि छप्पन अति बली'।
उग्रसेन बसुदेव हलधर करत मन मन अति रली।
संख भेरि निसान बाजे बजे बिबिध सुहावने।
'भाट बोलैं बिरद' बाल बचन कहैं मनभावने—सा० ४१८६।

९६. बीरी बदल 'सजन दोऊ हरखे' बरखे रंग अपार।
—कृष्ण०, कीर्तन-संग्रह, भाग २, पृ० १०५।

९७. जनकराज तब 'बिप्र पठाये बेगि बरात' बुलाई—सा० २२९।

९८. श्रीमद्भागवत में रुक्मिणी-विवाह के पूर्व ही कृष्ण के आगमन पर उनका स्वागत

है[९९]। 'सूरसागर' में राधा-कृष्ण के गंधर्व-विवाह-प्रसंग में 'मधुपरक' का स्पष्ट उल्लेख हुआ है[३००]।

ट. *विवाह*—वेद-विधि के अनुसार पंडित मंत्रोच्चारण करके विवाह सम्पन्न कराते हैं। श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह के वेद-विधि से सम्पन्न किये जाने का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में मिलता है[१]। इसी प्रकार राम-जानकी-विवाह के भी वेद-शास्त्र-विधि से किये जाने की बात 'सारावली' में कही गयी है जिसमें होम-हवन के साथ द्विज, गणपति, सूर्य, शक्र और महेश की पूजा का वर्णन है[२]।

ठ. *पाणिग्रहण*—वेद-ध्वनि और मंत्रोच्चारण के बाद 'पाणिग्रहण' होता है जिसमें वर, वधू का हाथ पकड़ कर आजन्म साथ देने का वचन देता है। सीता, राधा आदि के विवाह में इसका उल्लेख हुआ है[३]। 'पाणिग्रहण' को जनभाषा में 'हथलेवा' कहते हैं जिसका प्रयोग नंददास ने राधा-विवाह-प्रसंग में किया है[४]।

ड. *गठबंधन*—'पाणिग्रहण' के साथ ही वर के दुपट्टे या पीतांबर से वधू की साड़ी या चादर का छोर बाँधकर 'गँठबंधन' किया जाता है। अष्टछाप-काव्य में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है, परंतु 'प्रीति-ग्रंथ के हिय या जिय' में पड़ने का इसी प्रसंग में उल्लेख निश्चय ही 'गँठबंधन' की ओर संकेत करता है[५]।

इस प्रकार वर्णित है—'तब तुरही, भेरी आदि बाजे बजवाते हुए पूजा की सामग्री लेकर उन्होंने उनकी अगवानी की और 'मधुपर्क', निर्मल वस्त्र तथा उत्तम-उत्तम भेंट देकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की—श्रीमद्भागवत, भाग० २, पृ० ४६४।

९९. पूजन के सोलह अंगों में 'मधुपर्क' भी है—लेखिका।

३००. अधर मधु 'मधुपरक करिकै' करत आनन हास—सा० १०७१।

१. 'बेद-बिधि कियो ब्याह' बिधि, बसुदेव मन उपजी रली—सा० ४१८६।

२. 'बेद-सास्त्र मथि करी ब्याह'-बिधि सोइ कीन्ही नृपराय।

× × ×

होम हवन 'द्विज पूजा गनपति सूरज सक्र महेस'—सारा० २३४।

३.क. 'पानिग्रहन' रघुबर बर कीन्हौ जनक-सुता सुख दीन—सा० ९-२६।

ख. ता परि 'पानिगहन' बिधि कीन्ही—सा०१०-७२।

४. पढ़त बेद चहुँ दिसि बिप्र जन भये सबन मन भाये।
'हथलेवा करि' हरि राधा सों मंगलचार पढ़ाये।
—नंद०, कीर्तन-संग्रह, भाग २, पृ० १०८।

५.क. 'जिय परी ग्रंथि कौन छोरै', निकट ननद न सास—सा० १०७१।

ढ.—अग्नि-प्रदक्षिणा—'अग्नि-प्रदक्षिणा' से तात्पर्य है वर द्वारा वधू के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करना। इसे ही 'भाँवर' या 'फेरे लेना' भी कहते हैं। दूलह-दुलहिनि 'भाँवर' लेते हैं। अष्टछाप-काव्य में 'फेरे' शब्द के स्थान पर 'भाँवर' का ही प्रयोग अधिक हुआ है। 'गँठबंधन' के पश्चात् दूलह-दुलहिनि 'अग्नि-प्रदक्षिणा' करते या 'भाँवर लेते हैं' जिसके मूल में अपने संबंध का साक्षी अग्निदेव को बनाये जाने का भाव रहता है। सूरदास और परमानंददास ने 'भाँवर लेने' का उल्लेख कई पदों में किया है[६]।

ण. कंकण-मोचन[७]—विवाह के पूर्व वर-वधू के बाँधा गया कंकण विवाह के पश्चात् वर-वधू परस्पर खोलते हैं। इस कुलाचार का वर्णन भी अष्टछापी कवियों में सूरदास ने ही सबसे अधिक किया है। 'सूरसागर' में राम-जानकी और कृष्ण-राधा के कंकण खोलने का रोचक वर्णन मिलता है। इस प्रसंग में ध्यान देने की बात यह है कि दूलह के द्वारा कंकण-मोचन-वर्णन में उन्होंने जितनी रुचि दिखायी है, उतनी दुलहिनी द्वारा 'मोचन'-वर्णन में नहीं। श्रीराम जब सीता का कंगन खोलने में सफल नहीं होते तब सखियाँ हास-परिहास करने में भी नहीं चूकतीं और सहायता के लिए माता कौशल्या को बुलाने की सलाह देती हैं[८]। इसी प्रकार राधा का कंकण न खोल

ख. 'प्रीति-ग्रंथि हियै' परी—सा० १०७२।

६.क. ता परि पानिग्रहन बिधि कीन्ही। तब मंडप भ्रमि 'भाँवरि' दीन्ही—सा० १०७२।

ख. बिधिन बिधि सब कीनी। मंडप करिके भाँवर दीनी।

—सूर०, कीर्तन-संग्रह, भाग २, पृ० ६७।

ग. 'भाँभर लेत' प्रिया और प्रीतम तन मन दीजै वार—परमा० ३१४।

७. ब्याह के 'कँगने' के लिए सूत की लच्छियों के रँगने का बाण ने उल्लेख किया है।

—पृ० ८३।

विवाह के पहले गृहवर्मा को स्त्रियों के कौतुक-गृह में ले जाने का उल्लेख किया गया है। यहाँ लोकाचार तथा हँसोड़ स्त्रियों के परिहास की चर्चा भी है। बाण ने 'कोहबर' का उल्लेख विवाह के पहले वर्णन किया है। पंजाब में यही प्रथा है तथा कुरुक्षेत्र में भी प्रचलित होगी। दिल्ली व मेरठ में उल्टा होता है जहाँ स्त्रियों के देवताओं की थापना वाले पूजाचार विवाह-कार्य के बाद होते हैं।

—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्ष०, सां० अ०, पृ० १७२।

८. 'कर कँपै कंकन नहिं छूटै'।

राम सिया-कर परसि मगन भयै, कौतुक निरखि सखी सुख लूटै।

पाने पर उसकी सखियाँ वर से कहती हैं—हे कृष्ण ! यह गिरि उठाने का काम नहीं है; यह तो कंकण खोलना है[९] । इसी प्रसंग में 'कंकनचार' कराती हुई सखियाँ कहती हैं—यदि कंगन न खोल सको तो सहायता के लिए माता यशोदा को बुला लो अथवा राधा के पाँव छुओ[१०] ।

श्रीकृष्ण जब अपने प्रयत्न में सफल हो जाते हैं और राधा का कंकण खोल देते हैं तब सखियाँ प्रसन्नता से किलक उठती हैं और सुकुमारी राधा से दूलह का कंकण खोलने को कहती हैं । राधा के असफल होने पर, दोनों की प्रीति देखकर वे सलाह देती हैं—बाबा वृषभानु को बुलाकर सहायता ले लो[११] । इस प्रकार हास-परिहास के बीच यह कुलाचार सम्पन्न होता है ।

त. *जुआ खेलना*—विवाह के बाद बधू के यहाँ ही वर-बधू को जुआ

गावत नारि 'गारि सब दै दै तात भ्रात की कौन चलावै' ।
तब कर डोरि छुटै 'रघुपति जू जब कौसल्या माता आवै'—सा० ९-२५ ।

९. गावै जु मानिनी मिलि के मंगल कहत कंकन छोरियो ।
नहीं 'होय यह गिरि उचकैबो' लला हँस मुख मोरियो ।
'छोरयौ न टूटे डोरना यह प्रीति-रीति ग्रंथी कही ।
—सूर०, कीर्तन-संग्रह, भाग २, पृ० ६७ ।

१०. प्रथम ब्याह बिधि होइ 'रह्यौ हो कंकनचार बिचारि' ।
रचि रचि पचि पचि गूँथि बनायौ नवल निपुन ब्रजनारि ॥
बड़े हुओ तौ छोरि लेहु जौ, सकल घोष के राइ ।
'कै कर जोरि करौ बिनती, कै छुवौ राधिका पाइ' ।
'यह न होइ गिरि कौ धरिबौ हो', सुनहु कुँवर ब्रजनाथ ।
आपुन कौं तुम बड़े कहावत, काँपन लागे हाथ ।
बहुरि सिमिटि ब्रजसुंदरि सब मिलि दीन्ही गाँठि छुराइ ।
छोरहु बेगि कि आनहु अपनी, 'जसुमति माइ बुलाइ'—सा० १०७३ ।

११. सहज सिथिल पल्लव तैं हरि जू, लीन्हौ छोरि सँवारि ।
किलकि उठीं तब सखी स्याम की, 'तुम छोरौ सुकुमारि' ॥
पचिहारी कैसेंहु नहिं छूटत, बँधी प्रेम की डोरि ।
देखि सखी यह रीति दुहुनि की, मुदित हँसीं मुख मोरि ॥
अब जिनि करहु सहाइ सखीरी, छाँड़हु सकल सयान ।
'दुलहिनि छोरि दूलह कौ कंकन, बोलि बबा बृषभान'—सा० १०७३ ।

खिलाया जाता है। नवम सर्ग में राम-जानकी के विवाहोपरांत जुआ खेलने का वर्णन है। सोने की कूँडी में पूँगीफल युक्त निर्मल जल रखा जाता है। उसी में राम और जानकी जुआ खेलते हैं[१२]। रुक्मिणी-विवाह में भी वर-वधू के जुआ खेलने का उल्लेख हुआ है[१३]।

थ. *गाली गाना*—विवाह के समस्त 'आचारों' के बीच में, 'गाली' भी गायी जाती हैं जिनमें अधिकतर निकटतम संबंधियों के नाम रहते हैं। राम के विवाह में जुआ खेलने के अवसर पर सूरदास ने 'गाली' गवायी है[१४]। ऐसी गालियों में प्रायः माता के अनुचित संबंध की बात कहकर वर-वधू के साथ उपहास किया जाता है। 'सूरदास' का एक लंबा पद इन गालियों का प्रतिनिधित्व कर सकता है[१५]।

द. *न्योछावर देना या भूर बाँटना*—विवाह के बाद वर और वधू के ऊपर से न्यौछावर उतारकर याचकों को दी जाती है। इसी को 'भूर' भी कहा जाता है। सूर ने 'न्योछावरी' में भुक्ति-मुक्ति पायी है[१६] और परमानंददास ने प्रेम-भक्ति और रत्नों के हार 'भूर' में देने का उल्लेख किया है[१७]।

ध. *विदा*—विवाह के पश्चात् कन्या पिता के घर से विदा होती है। बेटी

१२. 'पूँगीफल जुत जल निरमल धरि', आनी भरि कुंडी जो कनक की।
'खेलत जूप सकल जुवतिनि मैं, हारे रघुपति जिती जनक की—सा० ६-२५।
१३. 'जुआ जुवति खिलाइ' कुल ब्योहार सकत कराइयौ—सा० ४१८६।
१४. 'गावत नारि गारि' सब दै दै—सा० ६-२५।
१५. तेरी माइ सकल जग खोयौ। सो को जो इहि मिलि न बिगोयौ।
सो को जु मिलि करि नहिं बिगोयौ फिरति निसि बासर बनी।
सिर सेत पट कटि नील लहँगा लाल चोली बिनु तनी।
कछु मंद मुख मुसकाइ सुर नर नाग भुज भीतर लिए।
बलि जाउँ जादोपति तुम्हारी माइ कुल बिनु तुम किए—सा० ४१८७।
१६. 'भुक्ति मुक्ति न्योछावरी पाई' सूर सुजान—सा० ४१८८।
१७. कुंज भवन में मंगलचार।
× × × ×
'दीनी भूर दास परमानंद प्रेम भक्ति रत्नन के हार।
—परमा०, कीर्तन-संग्रह, भाग २, पृ० ११६।

की विदा का यह दृश्य इतना करुण होता है कि कन्या-पक्ष के लोग ही नहीं, वर-पक्ष के उपस्थित जन भी आँसू बहाने लगते हैं। संस्कृत के महाकवि कालिदास के कण्व मुनि अपनी पालिता पुत्री शकुंतला की विदा के अवसर पर इस तरह आँसू बहाते हैं कि गृहीजन भी बेटी को विदा करते समय उतने द्रवित न होते होंगे[१८]। वस्तुतः बेटी की बिदा के समय का दृश्य इतना करुण और मर्मस्पर्शी होता है कि सहस्रों लोकगीतों का वर्ण्य विषय वही रहा है। आश्चर्य की बात है कि अष्टछाप के सहृदय कवि अनेक विवाहों का वर्णन करने पर भी इस विषय को विस्तार देने का लोभ संवरण कैसे कर सके। इसका समाधान यद्यपि यह कहकर किया जा सकता है कि उनके काव्य में कृष्ण या राम के जिन विवाहों का उल्लेख है उनमें तो ब्रह्म की प्राप्ति इतनी सुखदायिनी है कि उसके लिए बधुएँ मायका छोड़ने को सदैव उत्सुक रहती हैं और शेष व्यक्तियों के विवाहों के वर्णन में उन्होंने विशेष रुचि नहीं दिखायी है, तथापि माता के हृदय के पारखी उन कवियों की उस संबंध में उदासीनता कुछ न कुछ खटकती अवश्य है। जो हो, कृष्णदास के एक पद में विदा होती हुई राधा के साथ-साथ निकट संबंधियों की करुण दशा का मार्मिक वर्णन मिलता है। पिता के घर से विदा होती हुई कीरति-सुता सगे-संबंधियों से लिपट-लिपटकर रोती है। उसकी काकी, भाभी, बहिन, फूफी उसे बार-बार कलेजे से लगाती हैं। पिता बहुत पुचकार कर सांत्वना देता है कि घबड़ाओ मत। मैं जल्दी ही तुम्हारे भैया को भेजकर तुम्हें बुला लूँगा[१९]।

१८. यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमपि स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥
—अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४-८, पृ० २७१।

१९. कनकलता-सी लपट रही है कीरति की जु कुमारि।
नेह नीर करि सींचत छिन-छिन कौन सके निरुवार।
'काकी भाभी बहिन पुनि फूफी तिन लीनी उर धार'।
× × ×
'लैहौं वेगि बुलाय' लड़ैती 'पिता कह्यो पुचकार'।
दैहौं बेगि पठाय भैया को यों कहि रथ बैठार।
—कृष्ण०, कीर्तन-संग्रह, भाग २, पृ० १०५।

न. *दायज या दहेज*—भारतीय विवाह की एक प्रमुख रूढ़ि है कन्या के साथ-साथ भेंट में ऐसा बहुत-सा सामान वर को देना जो गृहस्थ-जीवन में उनके लिए उपयोगी सिद्ध हो। इस सामान में धन-संपत्ति, मणि-रत्न, हाथी-घोड़े, दास-दासियाँ, सभी कुछ दिया जाता है। भारतीय कवियों ने विवाह के साथ-साथ दायज या दहेज का भी वर्णन किया है[२०]। अष्टछापी कवि भी इस संबंध में उनसे पीछे नहीं हैं। वसुदेव से देवकी का विवाह कराते समय सूरदास ने कंस के द्वारा 'हय-गय-रतन-हेम-पाटंबर' आदि बहुत-सा दायज दिलाया है[२१] तो नंददास ने देवकी को पिता देवक द्वारा 'षटसत रथ', 'सेत चारि गज', 'पंद्रह सहस किंक्यान', 'दोइ सत दासी' आदि दहेज में दिये जाने का उल्लेख 'दशम स्कंध' में किया है[२२]। राधा के विवाह में कृष्णदास ने 'हय-गय-भरन-भँडार' के साथ, सोनामढ़े सींग वाली, मोती-हार से सजी चार लाख गायें दहेज में दिलायी हैं जिनका साज भी बहुमूल्य है[२३]। सत्यभामा के विवाह में उनके पिता सत्राजित ने सूर्य-प्रदत्त मणि के साथ अनेक

२०. राज्यश्री को दहेज में दिये जानेवाले हाथी एवं घोड़ों का उल्लेख बाण ने किया है। इस प्रकार ससुराल में दस दिन रहकर ग्रहवर्मा वधू व दहेज के साथ चले गए—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्ष० सां० अ०, पृ० ७१।

२१. आदि ब्रह्म जननी सुर-देवी नाम देवकी बाला।
दई बिबाहि कंस बसुदेवहिं दुख भंजन सुख-माला।
हय, गय, रतन, हेम, पाटंबर आनन्द मंगलचारा—सा० १०-४।

२२. भयौ बिबाह परम रँग भीनौं, देवक बहुत दाइजौ दीनौं।
'षटसत रथ कंचन के नंये, गज सत चारि मत्त छबि छये'।
'पंद्रह सहस सुभग किंक्यान, कनक भरे, नग जरे पलान'।
बर बरनी, तरुनी रँगभीनी, 'दासी बीनि दोइ सत दीनी'।
—नन्द०, दशम०, पृ० २०२।

२३. देत दायजो भान बड़े नृप 'हय-गज-भरन भँडार'।
× × ×
गोपन के गोधन अति प्यारो धोरी धेनु सिंगार।
'झूमर झूल फूल मख तूलन दीनी द्वे लख चार'।
'जगमग सोने सींग सबन के गरे घंटन बड़ प्यार'।
'मोतिनि हार फबी पग पैंजनी' चलत झनन झनकार।
—कृष्ण०, कीर्तन-संग्रह, प्रथम भाग, पृ० १०५।

प्रकार का 'दायज' श्रीकृष्ण को दिया है[२४]। इसी प्रकार सत्या के पिता, श्रीकृष्ण को[२५] और उषा के पिता, अनिरुद्ध को[२६] पुत्री सहित बहुत 'दाइज' देते हैं।

प. *गृह-प्रवेश*—विवाह के बाद नवविवाहिता वधू को लेकर वर अपने घर आता है। उस समय बहन आरती उतारती है और माताएँ पानी उतारकर पीती हैं। रुक्मिणी से विवाह करके घर आने पर बहन सुभद्रा कृष्ण की आरती उतारती है और माता देवकी पानी वार कर पीती हैं[२७]। परमानंददास ने व्रजनारियों द्वारा घर के मुख्य द्वार पर कृष्ण और वृषभानु-नंदिनी राधा की आरती उतारे जाने का उल्लेख किया है[२८]।

विवाह के समय दुलहिन के घूँघट काढ़ने की प्रथा का इन प्रसंगों में उल्लेख नहीं है। कारण यह जान पड़ता है कि पौराणिक काल में परदा-प्रथा भारत में थी ही नहीं। वह तो संभवत: मुसलमानों के भारत में आने के बाद इस देश में आरंभ हुई थी। विवाह के समय अधिकांश परिवारों में आज भी वधू का मुख घूँघट से ढका रहता है और एक रस्म 'मुँहदिखायी' की होती है। उसमें सब गुरुजन नव वधू का मुख देखकर भेंट देते हैं।

फ. *अंत्येष्टि*—मानव का अंतिम संस्कार 'अंत्येष्टि' है जो मृत्यु के पश्चात होता है। भारतीय विश्वास के अनुसार जिस व्यक्ति का यह संस्कार उचित रीति से हो जाता है, उसका परलोक 'सँवर' जाता है। इसका प्रमाण 'सूरसागर' में भरत से कहे गये वशिष्ठ के इस कथन में मिलता है कि पिता की अंत्येष्टि करके उनका परलोक सँवार दो[२९]। मृत्यु के पश्चात् शीघ्र से शीघ्र यह संस्कार कर दिया जाता

२४. और 'बहुत दायज' दीन्हे उन करि बिबाह-ब्यौहार—सा० ४१६० ।

२५. ताको पिता ब्याह तब कीन्हौ, 'दाइज' बहु प्रकार तिन दीन्हो—सा० ४१६२ ।

२६. बहुरि ऊषा दई ब्याहि 'दाइज सहित', हरि हरष करत निज पुरी आए।
—सा० ४१६८ ।

२७. बहुरि निज मंदिर सिधारे 'करि सुभद्रा आरती'।
'देवकी पीजियौ वारि पानी', दै असीस निहारती—सा० ४१८६ ।

२८. बाम भाग बृषभान-नन्दिनी, ललितादिक गावैं सिंघद्वार।
कंचन थार लिये कर मुक्ताफल अरु फूलन के हार।
रोरी केसर तिलक बिराजत 'करत आरती हरख अपार'—परमा० ३१७ ।

२९. गुरु बसिष्ठ भरतहिं समुझायौ।

हैं; क्योंकि सामान्य वर्ग का यह विश्वास रहता है कि देर होने पर मृत प्राणी 'भूत' बन जाता है[३०]। सामान्यतया मृत प्राणी की तीन ही गतियाँ होती हैं। मरने पर वह यों ही पड़ा रहे और जीव-जंतु का भोजन बनकर उनकी 'विष्टा' बन जाय या जमीन में गाड़ दिये जाने पर कीड़ों का भोजन बन जाय अथवा जला दिये जाने पर मुट्ठी भर राख के रूप में शेष रह जाय। मृतक शरीर की इन तीनों गतियों की ओर सूरदास ने एक पद में संकेत किया है[३१] जिससे भारतीय संस्कृति की, शव का दाह करने की प्रथा के साथ-साथ उसको गाड़ देने के चलन की बात भी सूचित होती है।

परमानंददास ने 'अंत्येष्टि संस्कार' के लिए 'क्रिया' शब्द का प्रयोग किया है यद्यपि सामान्यतया इसका तात्पर्य मृतक के श्राद्ध आदि कर्मों से होता है। ऊधव-गोपी-संवाद में उनकी गोपियाँ ऊधव से कहती हैं—ज्ञान योग की निष्ठुर बातें कहकर तुम हमें जब मारने ही आये हो तो हमारी 'क्रिया' करके जाना जिससे बनवारी तुम्हारा 'गुन' मानेंगे;[३२] अस्तु। अष्टछाप के अन्य कवियों में केवल सूरदास ने 'अंत्येष्टि' - क्रिया का वर्णन किया है जो दो रूपों में है। प्रथम में इस संस्कार के संबंध में सामान्य संकेत किये गये हैं और द्वितीय में प्राणी या व्यक्ति-विशेष—यथा महाराज दशरथ, जटायु, शबरी आदि—के अंत्येष्टि-संस्कार का उल्लेख हुआ है। प्रथम अर्थात सामान्य वर्णन में इस संस्कार के अनेक कृत्यों में से केवल एक,

राजा कौ 'परलोक सँवारौ', जुग-जुग यह चलि आयौ—सा० ६-५० ।

३०. जा दिन मन-पंछी उड़ि जैहै।

× × ×

जिन लोगनि सौं नेह करत है तेई-देखि घिनैहैं।
घर के कहत सबारे काढ़ौ, 'भूत होइ धरि खैहै'—सा० १-८६ ।

३१. जा दिन मन-पंछी उड़ि जैहै।
ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं।
या देही कौ गरब न करियै, स्यार-काग-गिध खैहैं।
'तीननि मैं तन कृमि, कै बिष्टा, कै ह्वै खाक उड़ैहै'—सा० १-८६ ।

३२. ऊधौ जी मृतक 'मारन आए', सूर सुभट अबलनि पर धाए।
अब 'क्रिया' करि जाहु हमारी, तुम्हरौ गुन मानैं बनवारी—परमा० हस्त० ३२८ ।

'कपाल-क्रिया'[३३] की ओर सूरदास ने संकेत किया है कि मरते समय भैया, बंधु आदि कुटुम्बी ही नहीं, अपने ही रक्त से पैदा किये हुए जिन पुत्रों को देवी-देवता मनाकर पाया और पाला था, वे कुछ काम न आयँगे और मृत्यु होते ही शीघ्र से शीघ्र 'कपाल-क्रिया' करके गड़े हुए धन की खोज में लग जायँगे[३४]।

दशरथ, जटायु और शबरी में से अंतिम दो के अंत्येष्टि-संस्कार के संबंध में केवल इतना कहा गया है कि जटायु को अपना सेवक जानकर श्रीराम ने उसके शव को अपने हाथ से जला दिया[३५] और शबरी के मरने पर उन्होंने 'तिलांजलि[३६] दी[३७]। महाराज दशरथ के 'अंत्येष्टि संस्कार' का सूरदास ने अवश्य अधिक विस्तार से वर्णन किया है। एक बड़ा 'विमान' बनाकर नृप का शव उस पर रखकर परिजन और पुरजन सरयू के किनारे 'श्मशान घाट' पर ले जाते हैं। वहाँ चंदन की लकड़ी की चिता बनायी जाती है जिस पर राजा का शव रखकर अगर, सुगंध, घृत आदि

३३. 'कपाल-क्रिया' शव-दाह का एक कृत्य होता है। जला दिये जाने पर जब शव के सिर के बीचोबीच का भाग सफेद हो जाता है तब मृतक का दाह - संस्कार करने वाला व्यक्ति बाँस या किसी लकड़ी से खोपड़ी फोड़ देता है। इस 'क्रिया' के मूल में विश्वास यह है कि प्राणी के मर जाने पर भी उसके प्राण ब्रह्मांड में अटके रहते हैं जो 'कपाल-क्रिया' के पश्चात् निकल जाते हैं—लेखिका।

३४.क. भैया-बंधु-कुटुंब घनेरे, 'तिनतैं कछु न सरी'।
लै देही घर-बाहर जारी, सिर ठोंकी लकरी।
मरती बेर 'सम्हारन लागे', जो 'कछु गाड़ि धरी—सा० १-७१।

ख. जिन पुत्रनिहिं बहुत प्रतिपाल्यौ, 'देवी-देव मनैहैं'।
तेई लै 'खोपरी बाँस दै, सीस फोरि बिखरैहैं'—सा० १-८५।

३५. श्री रघुनाथ जानि जन अपनौ, अपनैं कर करि ताहि जरायौ—सा० ६-६६।

३६. भारतीय संस्कृति में 'तिलांजलि' का संबंध अंत्येष्टि-संस्कार से है। मृतक के शव के साथ जो लोग जाते हैं, वे शव-दाह के पश्चात् नदी, तालाब आदि में स्नान करके हाथ में तिल और जल लेकर उसी में छोड़ देते हैं। यह 'क्रिया' इस बात की सूचक है कि इसके पश्चात् मृतक से सदा को संबंध टूट जाता है—लेखिका।

३७. करि दंडवत भई बलिहारी, पुनि तन तजि हरि लोक सिधारी।
सूरज प्रभु अति करुना भई। निज कर करि तिल-अंजलि दई—सा० ६-६७।

डालकर आग लगायी जाती है[३८]। पश्चात्, तिलांजलि दी जाती है[३९]। इसके अनंतर पुरजनों-परिजनों का कार्य समाप्त हो जाता है और 'अंत्येष्टि संस्कार' के शेष कृत्य शव-दाह करनेवाले के लिए रह जाते हैं। महाराज दशरथ का दाह-संस्कार भरत ने किया था; अतएव शेष कृत्य भी वे ही करते हैं। शव-दाह के पश्चात् दस दिन तक वे जल से पूर्ण घट श्मशान घाट पर टाँगते हैं और उस पर दीपक जलाकर 'दीपदान' करते हैं। ग्यारहवें दिन ब्राह्मणों को बुलाकर वे बड़े आदर-सत्कार से भोजन कराते और अनेक प्रकार के दान देकर उन्हें संतुष्ट करते हैं[४०]।

'अंत्येष्टि-क्रिया' करनेवाले को सिर भी मुड़ाना पड़ता है। राजा दशरथ की दाह-क्रिया भरत ने की थी; इसलिए उन्होंने भी सर मुड़ाया था। चित्रकूट में भरत से भेंट होने पर राम उनका 'मुंडित केस सीस' देखकर किसी की मृत्यु का अनुमान करके अत्यंत विह्वल हो जाते हैं; पश्चात्, पिता की मृत्यु की बात सुनते ही मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं। सीता की भी यही दशा होती है और वह भी धरणी पर गिरकर बिलखने लगती है[४१]। 'सूरसागर' में यह प्रसंग यहीं पर समाप्त कर दिया

३८. प्रभाकरवर्द्धन के अंत्येष्टि-संस्कार से बाणकालीन प्रथा पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। उनकी चिता काले अगरु के काष्ठ से बनायी गयी थी। हर्ष एवं सामन्त तथा पुरोहितादि अरथी सरस्वती तट पर ले गये और वहाँ अग्नि के अर्पण की। वह रात्रि हर्ष ने जमीन पर बैठकर काटी तथा सेवक कुशाओं पर सोये। सम्राट के फूल कलशों में रखने के बाद हाथियों द्वारा विभिन्न तीर्थों एवं नदियों में ले जाये गये। दूसरे दिन हर्ष ने सरस्वती में स्नान करने के बाद जलांजलि दी। बाण ने दस अशौच दिवसों का भी वर्णन किया है—हर्ष०, सां० अ०, पृ० १०३।

४६. 'चंदन अगर सुगंध और घृत', बिधि करि 'चिता बनायौ'।
चले 'बिमान' संग गुरु-पुरजन, तापर नृप पौढ़ायौ।
भस्म अंत तिलअंजलि दीन्हीं, देव बिमान चढ़ायौ—सा० ९-५०।

४०. 'दिन दस लौं जल कुंभ साजि सुचि, दीपदान करवायौ'।
जानि एकादस विप्र बुलाए, भोजन बहुत करायौ।
दीन्हौ दान बहुत नाना बिधि, इहिं बिधि कर्म पुजायौ—सा०९-५०।

४१. भ्रात मुख निरखि 'राम बिलखाने।'
'मुंडित केस-सीस', बिहवल दोउ, उमँगि कंठ लपटाने।
तात-मरन सुनि स्रवन 'कृपानिधि धरनि परे मुरझाइ'।

गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने प्रसंग की पूर्णता के लिए समस्त अयोध्यावासियों के साथ राम के मंदाकिनी नदी में स्नान करके पवित्र होने का वर्णन किया है और सब उस दिन निर्जल व्रत भी करते हैं[३४२]।

समीक्षा—

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट है कि यद्यपि अष्टछाप-काव्य में यत्र-तत्र तत्संबंधी ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे तत्कालीन जन-जीवन का कुछ परिचय मिल सकता है, तथापि वे संकेत एक प्रकार से बिखरे हुए सूत्रों के रूप में हैं जिनको एकत्र करके क्रमबद्ध रूप से सजाने पर ही वर्ण्य विषय का ज्ञान होना संभव है। मुक्तक और गेय काव्य-रचना-संबंधी प्रतिबंधों के कारण यद्यपि अधिकांश विषयों का सांगोपांग वर्णन अष्टछापी कवियों ने नहीं किया तथापि अपने आराध्य के जन्म और विवाहोत्सवों का वर्णन इतने उत्साह से उन्होंने किया है कि उनका यथार्थ चित्र आज भी सामने आ जाता है; पाठक के अंतर्जगत में उनका यथार्थ चित्र अंकित हो जाता है और कुछ समय के लिए तो वह अपने को भूल ही जाता है। पारिवारिक जीवन के अन्य प्रसंगों का परिचय देने के लिए भी जो संकेत उन्होंने किये हैं वस्तुतः वे महत्वपूर्ण हैं और उनके लिए वे कवि बधाई के पात्र हैं।

मोह-मगन लोचन जल-धारा, बिपति न हृदय समाइ।
'लोटति धरनि परी सुनि सीता', समुझति नहिँ समुझाई—सा० ९-५२।

३४२. नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा।
मरन हेतु निज नेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर-धुर-धारी।
कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लखन सीय सब रानी।
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राजु अकाजेउ आजू।
मुनिबर बहुरि राम समुझाए। 'सहित समाज सुरसरित नहाए'।
'ब्रतु निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा'। मुनिहु कहें जल काहु न लीन्हा।
—'रामचरित-मानस', अयोध्याकांड, पृ० ५०२।

५ सामाजिक जीवन-चित्रण

अष्टछाप-काव्य में चित्रित तत्कालीन सामाजिक जीवन-चर्या से भली-भाँति परिचित होने के लिए, उसका अध्ययन, स्थूल रूप से, छह शीर्षकों के अंतर्गत करना उचित जान पड़ता है—१. सामाजिक व्यवस्था, २. मनोविनोद, ३. पर्वोत्सव, ४. त्योहार, ५. लोकाचार-लोकव्यवहार और ६. विश्वास-मान्यताएँ।

१. सामाजिक व्यवस्था—

मानव सामाजिक प्राणी है जिसकी सहज प्रवृत्तियाँ उसे अपने साथियों के साथ रहने के लिए प्रेरित करती हैं[1]। विकास, आत्मरक्षा तथा संगठन की कामना या भावना ही समाज-निर्माण की मूल प्रेरणा है। मानव के उन गुणों का विकास भी समाज में ही सम्भव है जिनसे संस्कृति और सभ्यता का विकास होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'समाज' शब्द में ही संगठन-शक्ति, सांस्कृतिक विकास आदि के भाव समाविष्ट रहते हैं[2]।

सामाजिक भावना का उदय होने पर मानव वर्ग का ध्यान आचार-विचार और व्यवहार-आदर्श-संबंधी सिद्धांतों की ओर जाता है। कालांतर में वे ही प्रत्येक देश या समाज के सामाजिक संगठन के मूल या विशिष्ट आधार बन जाते हैं। भारतीय सामाजिक संगठन के भी दो मूलाधार हैं—वर्ण-व्यवस्था और आश्रम-व्यवस्था।

क. *वर्ण-व्यवस्था*—भारतीय समाज चार वर्णों में विभाजित रहा है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र[3]। ऋग्वेद के एक रूपक[4] के आधार पर कहा जा

१. लास्की की मूल पुस्तक 'ए ग्रैमर आव पालिटिक्स' के हिंदी अनुवाद, 'राजनीति के मूल तत्व', पृ० ३।

२. श्री शिवदत्त ज्ञानी, 'भारतीय संस्कृति', पृ० ११३।

३. एफ. बर्नियर-कृत 'ट्रैवल्स इन मुगल इम्पायर' (सन् १६५६-१६६८ ई०) में भी भारतीय समाज के इस विभाजन का उल्लेख है। उन्होंने चार युगों—सत्, त्रेता, द्वापर और कलि का भी उल्लेख किया है—पृ० ३४१-४२।

४. 'समाज-रूपी पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं'—ऋग्वेद, १०-६०-१२।

सकता है कि आरंभ में उक्त वर्गीकरण का मुख्य आधार श्रम-विभाजन का आर्थिक सिद्धांत था; किंतु आगे चलकर इस व्यवस्था में रूढ़ात्मकता आ गयी; वर्ण-व्यवस्था कर्ममूलक के स्थान पर जन्ममूलक हो गयी और अनेकानेक जातियों की उत्पत्ति[५] भेद-भावना की पृष्ठभूमि बन गयी जो समाज के लिए अभिशाप सिद्ध हुई। प्रारंभ में उक्त चारों वर्णों में प्रथम अर्थात् ब्राह्मण के मुख्य तीन कार्य थे—पुरोहिती, शिक्षण और मंत्र-रचना[६]। इन कार्यों का संपादन करके 'ब्राह्मण' समाज में उन्नत विचारों के संचालन का श्रेय प्राप्त करता था; परंतु उसे श्रेष्ठ तभी समझा जाता था जब वह विद्या में पारंगत हो; अनपढ़ ब्राह्मण 'ब्रह्मबंधु' (ब्राह्मण का भाई) कहलाता था, 'ब्राह्मण' नहीं[७]।

इसी प्रकार क्षत्रिय-वर्ग का कार्य प्रबलों के उत्पीड़न से निर्बलों को बचाना था और अन्य वर्ण भी जब राजनीतिक सत्ता स्वायत्त कर लेते थे तो उनका भी आदर क्षत्रिय के समान ही होता था[८]। वैश्य-वर्ग का संबंध मुख्यतः वाणिज्य-व्यवसाय से था और राजनीतिक परिवर्तनों का प्रभाव उन पर साधारणतया कम पड़ता था। इस वर्ग का आर्थिक महत्व प्रायः बना रहा, परंतु उनकी संख्या में एक परिवर्तन अवश्य हुआ। कृषि और पशुपालन करनेवाले बहुत से वैश्य शूद्रों

५. डा० पी० के० आचार्य-कृत—'ग्लोरीज आव इंडिया आन इंडियन कल्चर ऐंड सिविलीजेशन' के अनुसार 'ऋग्वेद' के अन्तिम भाग के पुरुष अंश में केवल चारों वर्णों का उल्लेख हुआ है। पुराण-काल में इस भेद-भावना का पूर्ण विकास हो गया था। धीरे-धीरे अनेक उपजातियों का भी जन्म होता गया तथा महाकाव्य-काल ई० पू० ७०० से ईसा पश्चात् ५०० शती तक इस संबंध में निश्चित नियम भी बन गये थे—पृ० ५६-६१।

६. ऋग्वेद में 'ब्राह्मण' शब्द 'ऋषि' अथवा 'प्रधान पुरोहित' के अर्थ में प्रमुख रूप से अड़तालिस बार प्रयुक्त हुआ है, वर्ण-सूचक अर्थ में केवल आठ बार आया है और मंत्र-रचयिता के अर्थ में सबसे अधिक प्रयुक्त हुआ है—'ग्लोरीज आव इंडिया आन इंडियन कल्चर ऐंड सिविलीजेशन', पृ० ५६-६०।

७. डा० राजबली पांडेय द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास', भाग १, खण्ड १, पृष्ठ १०३ में उद्धृत —'शुक्र-नीति—१ (७५-७६), १ (७७-७८)।

८. डा० राजबली पांडेय द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास'—भाग १, खंड १, मेधातिथि, (मनु, ३, ११६, ४, ८४, ११०, ५, ६३, ६, १-२ पर भाष्य), पृ० १०३।

में गिने जाने लगे[९]। शूद्र वर्ग को निर्विकारभाव से तीनों वर्गों की सेवा का कार्य सौंपा गया था। कालांतर में यह वर्ग उच्च वर्णों द्वारा हेय दृष्टि से देखा जाने लगा[१०]।

अष्टछाप-काव्य में वर्ण-व्यवस्था-संबंधी उल्लेख—अष्टछापी कवियों के प्रादुर्भाव के समय राजनीति के क्षेत्र में बहुत-कुछ उथल-पुथल हो जाने पर भी चारों वर्णों के संबंध में समाज की धारणा में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ था, यद्यपि अपनी उदारता के कारण इन कवियों ने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। यही कारण है कि अष्टछाप-काव्य में वर्ण-व्यवस्था के विषय में अधिक वर्णन नहीं मिलता। वास्तव में इन कवियों ने कृष्ण के लोकरंजक रूप को अपनी रचना का विषय बताया था, लोकरक्षक को नहीं जिसका घनिष्ठ संबंध समाज से रहता है। अतः उन्हें सामाजिक नियमों या विधानों पर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं था। दूसरी बात यह कि भक्ति के क्षेत्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, सभी को समान माना गया है। प्रभु की दृष्टि में सभी समान हैं; क्योंकि सभी उनकी ही सृष्टि हैं। इसी से भगवान भक्त की जाति या इसके कुल-गोत्र[११] का कोई विचार नहीं करते[१२]। इतनी उदारता होते हुए भी समाज में ब्राह्मण-वर्ग की श्रेष्ठता-संबंधी जो धारणा उस वर्ग के व्यक्ति के अंतर्जगत में संस्कार-रूप में बन जाती है, उससे सर्वथा छुटकारा पा लेना भी उसके लिए संभव नहीं होता। इसका प्रमाण

९. डा० राजबली पांडेय द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास', भाग १, खंड १, का फुटनोट—"यह परंपरा 'अमरकोश' से प्रारम्भ हुई जो वैश्य वर्ग के अन्तर्गत वर्णों का महत्व सत्यानृत के आधार पर आँकता है। व्यापार और कृषि में उसे असत्य और हिंसा अधिक दिखायी पड़ती है। अतः वैश्य क्रमशः शूद्रों के साथ परिगणित होते गये—'अमरकोश' (२, ६—२-३), पृ० १०३।

१०. 'पराशर स्मृति' के अनुसार शूद्र का भोजन, उसका संपर्क, एक आसन पर उसके साथ बैठना और उससे पढ़ना तेजस्वी व्यक्ति को भी पतित कर देने वाला था—डा० राजबली पांडेय द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास', भाग १, खंड १, पृ० ५१३।

११. "पाणिनि ने वैदिक शब्द 'वर्ण' के साथ बाद में प्रचलित 'जाति' शब्द का अधिक उल्लेख किया है। 'जाति' शब्द में 'गोत्र' तथा 'चरण', दोनों ही सम्मिलित थे"। —डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'इंडिया ऐज नोन टू पाणिनि', पृ० ७५।

१२. 'जाति, गोत, कुल नाम गनत नहिं रंक होइ कै रानौ'—१-११।

है सूरदास के 'सूरसागर' की एक पंक्ति जिसमें श्रीकृष्ण और कुब्जा के संबंध की अनुपयुक्तता बतायी गयी है और जिससे शूद्र और ब्राह्मण में असमानता की मान्यता पर भी परोक्ष रूप से प्रकाश पड़ता है। उनकी सम्मति में कृष्ण और कुब्जा का साथ हंस-काग, कपूर-लहसुन, कंचन-काँच, सिंदूर-गेरू और भोजन में ब्राह्मण-शूद्र जैसा है[१३]। सूरदास का यह कथन तत्कालीन मनोवृत्ति का ही दिग्दर्शक है, स्वयं उनकी धारणा इतनी अनुदार नहीं थी। परमानन्ददास भी ब्राह्मण की श्रेष्ठता विप्र-कुल में जन्म लेने में नहीं मानते; उनकी सम्मति में तो ईश्वर की सेवा-उपासना न करनेवाले ब्राह्मण से ईश्वर-भक्त श्वपच ही श्रेष्ठ है[१४]।

अष्टछाप-काव्य में उक्त चारों वर्णों में से ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र की चर्चा ही मुख्यत: मिलती है; वाणिज्य-व्यवसाय में लगे हुए वैश्य[१५] कहलानेवाले वर्ण की नहीं, यद्यपि उनके कार्य का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र के अतिरिक्त कुछ अन्य उपजातियों की चर्चा भी अष्टछाप-काव्य में है जिनमें अहिर या अहीर प्रमुख हैं[१६]।

अ. *अष्टछाप-काव्य में ब्राह्मण*—'ब्राह्मण के लिए 'पंडित', 'पांडे', 'ब्राह्मण', 'द्विज', 'विप्र', 'बाँभन' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। 'ब्राह्मण' का संबंध विद्या से रहने के फलस्वरूप 'पंडित' शब्द ब्राह्मणमात्र का प्रतीक हो गया है। परमानन्ददास ने एक पद में 'पंडित' के लिए 'द्विज' शब्द लिखा है[१७]। 'ब्राह्मण' का कार्य 'पुरोहित'

१३. कंस बध्यौ कुबिजा कैं काज।
और नारि हरि कौं न मिली कहुँ, कहा गँवाई लाज॥
जैसैं काग हंस की संगति, लहसुन संग कपूर।
जैसैं कंचन काँच बराबरि, गेरू काम सिंदूर॥
भोजन साथ सूद्र-बाम्हन के, तैसौ उनकौ साथ—सा० ३१५२।

१४. कहा भयो जो 'बिप्र कुल जनम्यो सेवा सुमिरन नाहीं'।
'स्वपच पुनीत' दास परमानंद जो हरि सन्मुख जाहीं—परमा० हस्त०, २७६।

१५. 'वैश्यों को 'आर्य' उपाधि प्राप्त थी जिससे उनके सामाजिक मान का अनुमान लगाया जा सकता है'—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'इंडिया ऐज नोन टू पाणिनि', पृ० ७७।

१६. और 'अहीर' सब कहाँ तुम्हारे हरि सौ धेनु दुहाई—सा० ७४०।

१७. सुनो हो जसोदा आज कहूँ ते गोकुल में इक 'पंडित' आयो।

का भी होता है जिसके घर पधारने पर राजा द्वारा भी बड़ा सम्मान किये जाने का वर्णन परमानंददास ने किया है[१८]। हिंदू गृहस्थ के प्रत्येक शुभ कार्य में 'ब्राह्मण' का विशेष सम्मान होता है। उन्हें स्वच्छ जल से स्नान कराने के पश्चात् वस्त्राभूषणादि दान दिये जाते हैं[१९]। प्रातःकाल उनके वेद-पाठ करने का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में है[२०]। साथ-साथ ब्राह्मणों के बाह्यचारों, जैसे उनका लिपे हुए स्थान पर अलग भोजन बनाना,[२१] किसी के छू लेने पर भोजन का अपवित्र हो जाना, खाना तैयार होने पर उसका भोग लगाकर भोजन करना आदि बातों का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में है। नंद जी के यहाँ आनेवाला 'पाँड़े' स्थान लीपकर अलग भोजन बनाने बैठता है। भोजन तैयार हो जाने पर भोग लगाने के लिए आँख मूँदता है कि कृष्ण आकर 'सिद्ध पाक' जुठा देते हैं। तब यशोदा बहुत विनय करके सारा सामान फिर मँगा देती हैं और पाँड़े जी पुनः भोजन बनाने बैठते हैं[२२]। 'ब्राह्मण' या पंडित, ज्योतिषी का काम करनेवाला भी

× × ×

पाँय पखारि पूजि अँजुली ले तब द्विज पै माँग्यो अनुसासन—परमा० ५८।

१८. पुरोहित आयो नृप के द्वारे।

× × ×

पिता-सदन कुल प्रोहित मानत दोउ कर चरन पखारे—परमा० काँक० १०३।

१९. बोले ब्रज के 'द्विज' बड़भागी, जिनके हुती यहै लौ लागी।
स्वच्छ सुगंध 'सलिल अन्हवाये बिप्रन कंचन तिलक बनाये'।
—नन्द०, दशम०, पृ० २१७।

२०. गोप-बधू दधि-मंथन लागीं बिप्र पढ़न लागे बेद—परमा० काँक० ७४।

२१. करयो पाक प्रोहित अपनी रुचि बिंजन बिबिध नियारे—परमा० काँक० १०३।

२२.क. महराने तैं 'पाँड़े आयौ'।
ब्रज घर-घर बूझत नंद-राउर पुत्र भयौ, सुनि कैं उठि धायौ।
पहुँच्यौ आइ नंद के द्वारैं, जसुमति देखि अनंद बढ़ायौ।
'पाँइ धोइ भीतर बैठारयौ, भोजन कौं निज भवन लिपायौ'।
जो भावै सो भोजन कीजै, बिप्र मनहिं अति हर्ष बढ़ायौ।
बड़ी बैस बिधि भयौ दाहिनौ, धनि जसुमति ऐसो सुत जायौ।
धेनु दुहाइ, दूध लै आई, 'पाँड़े रुचि करि खीर चढ़ायौ'।
घृत, मिष्ठान, खीर मिश्रित करि, परुसि कृष्न हित ध्यान लगायौ।

कहा गया है। परमानंददास ने इसी उद्देश्य से यशोदा के पास एक 'पंडित' के आने की बात लिखी है[२३]।

कंस का दरबारी श्रीधर 'बाँभन' भी 'ब्राह्मण' वर्ग का है जो श्रीकृष्ण को मारने के उद्देश्य से गोकुल आता है। बाँभन होकर भी क्रूर कर्म करनेवाले को 'कसाई' कहा गया है। श्रीधर बाँभन इसी प्रकार का था;[२४] किन्तु ब्राह्मण होने के कारण ही नीच और क्षुद्रकर्मा होने पर भी वह अवध्य समझा जाता है। स्वयं श्रीकृष्ण का कथन है कि 'बाँभन' को मारना उचित नहीं, अंग-भंग कर देना ही उसके क्षुद्र कर्म का पर्याप्त दंड है[२५]।

आ. *अष्टछाप-काव्य में क्षत्रिय*—अष्टछाप-काव्य में क्षत्रिय के लिए 'छत्री', 'ठाकुर' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं[२६]। भ्रमरगीत-प्रसंग में 'ठाकुर' शब्द स्वामी के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है[२७]। जब गोपियाँ ऊधव से व्यंग्यपूर्वक कहती हैं कि

नैन उघारि बिप्र जौ देखै, खात कन्हैया देखि न पायौ।
देखौ आइ जसोदा, सुत-कृति 'सिद्ध पाक इहिं आइ जुठायौ'।
महरि बिनय करि दुहुँ कर जोरे, घृत-मधु-पय फिरि बहुत मँगायौ।
—सा० १०-२४८।

ख. 'पाँड़े नहिं भोग लगावन पावै'।
करि-करि पाक जबै अर्पत है, 'तबहीं तब छ्वै आवै'।
इच्छा करि मैं बाम्हन न्यौत्यौ, ताकौं स्याम खिझावै—सा० १०-२४६।

२३. सुनो हो जसोदा आज कहूँ तें गोकुल मैं 'इक पंडित आयो।
अपने सुत कौ हाथ दिखावो सो कहै जो बिधि निरमायौ—परमा० ५८।

२४. श्रीधर बाँभन करम कसाई, कह्यौ कंस सौं बचन सुनाई।
प्रभु, मैं तुम्हरौ आज्ञाकारी। नन्द सुवन कौं आवौं मारी—सा० १०-५७।

२५. बाँभन मारे नहीं भलाई, अंग-भंग याको मैं देउ नसाई—सा० १०-५६।

२६.क. मारे छत्री इकबिस बार—सा० ६-१३।
ख. ऐसौ को ठाकुर, जनकारन दुख सहि, भलो मनावै—सा० १-१२२।
ग. प्रो० सिलवे लेवी के मतानुसार 'ठाकुर' अथवा 'ठक्कुर' शब्द का उद्गम प्राचीन तुर्की शब्द 'नीठान' है।
—डा० सुनीति कुमार चैटर्जी, 'भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी', पृ० १०१।

२७. कहा भयौ जो गाउँ कौ 'ठाकुर' इहि कैसी लरिकाई—परमा० काँक० ६००।

कहाँ तो ब्रह्मादिक के 'ठाकुर' श्रीकृष्ण और कहाँ कंस की दासी कुब्जा! खूब साथ बना है[२८]!

इ. *अष्टछाप-काव्य में शूद्र*—दृष्टिकोण की उदारता के कारण अष्टछापी कवि किसी की हीनता या तुच्छता की चर्चा करना उचित नहीं समझते। यद्यपि उन्होंने समाज में शूद्र के साथ उच्चवर्गीय व्यक्ति, विशेषत: ब्राह्मण के संबंध की अनुपयुक्तता पर कृष्ण-कुब्जा-संबंध के अनौचित्य को लेकर एक पद में संकेत किया है[२९]।

ख. *आश्रम-व्यवस्था*—शारीरिक और मानसिक शक्तियों के नियमित और व्यवस्थित विकास के लिए मानव की नैसर्गिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर भारतीय मनीषियों ने उसके जीवन को सौ वर्ष का मानकर उसकी आयु को चार आश्रमों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास[३०]—में विभाजित किया था। प्रथम आश्रम पचीस वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर शक्तियों का सम्यक विकास करते हुए विद्याध्ययन के लिए; द्वितीय, विवाह के पश्चात् गृहस्थ-जीवन बिताने और आश्रितों के पालन के लिए; तृतीय चित्तवृत्तियों को संयमित करके लोक-कल्याण में प्रवृत्त होने और पारलौकिक विषयों का चिंतन-मनन करने के लिए तथा चतुर्थ आश्रम सभी क्षेत्रों में चित्तवृत्तियों का निरोध और इंद्रियों का दमन करके मोक्ष-साधन के लिए निश्चित किया गया था। ये चारों आश्रम ब्राह्मण वर्ग के लिए अनिवार्य थे, अन्य तीन वर्गों के लिए संन्यास-आश्रम नहीं था, प्रारंभिक तीन आश्रम ही थे[३१]।

२८. सुनि-सुनि ऊधौ आवति हाँसी। कहँ वै ब्रह्मादिक के ठाकुर, कहाँ कंस की दासी।
—सा० ३६४३।

२९. कंस बध्यौ कुबिजा कैं काज।
और नारि हरि कौं न मिली कहुँ, कहा गँवाई लाज॥
जैसैं काग हंस की संगति, लहसुन संग कपूर।
जैसैं 'कंचन काँच' बराबरि, 'गेरू काम सिंदूर'॥
'भोजन साथ सूद्र बाम्हन के', तैसौ उनकौ साथ—सा० ३१५२।

३०. पाणिनि ने चार आश्रमों के लिए ब्रह्मचारिन्, गृहपति, परिव्राजक तथा भिक्षु शब्दों का उल्लेख किया है।
—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, 'इंडिया ऐज नोन टू पाणिनि', पृ० ८१।

३१. 'शुक्रनीति', ४-३६-४१।

अ. *अष्टछाप-काव्य में ब्रह्मचर्याश्रम चर्चा*—अष्टछापी कवियों का प्रादुर्भाव होने तक आश्रम-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो चुकी थी, अतएव उसका विशद वर्णन उनके काव्य में नहीं मिलता। परन्तु उन कवियों ने अनेक पौराणिक प्रसंगों को भी काव्य का विषय बनाया था; इस कारण चारों आश्रमों का यत्र-तत्र उल्लेख अवश्य हुआ है। श्रीकृष्ण के विद्याध्ययन-प्रसंग में आचार्य संदीपन की चटसार में सुदामा के साथ उनके पढ़ने की बात कही गयी है[32] और बहुत दिन बाद भेंट होने पर श्रीकृष्ण ने सुदामा को गुरु-पत्नी की आज्ञा से लकड़ी तोड़ने के लिए बन जाने की बात का स्मरण कराया है[33]। शिक्षा की समाप्ति पर समावर्तन के पूर्व आचार्य को 'दक्षिणा' देने की बात भी अष्टछाप-काव्य में मिलती है। श्रीकृष्ण अपने आचार्य से 'दक्षिणा' माँगने की प्रार्थना करते हैं और गुरु-पत्नी की आज्ञा से उनके मृतक-सुत यमपुर से ला देने पर उन्हें गुरुवर का आशीर्वाद प्राप्त होता है[34]। हिरण्यकशिपु ने बालक प्रह्लाद को पाँच वर्ष की आयु में ही आचार्य संडामर्क को बुलाकर उनके साथ राजनीति पढ़ने के लिए चटसार भेज दिया था[35]। गुरुकुल के प्रति सदैव श्रद्धा रखना और उसकी सेवा करना ही व्यक्ति का कर्तव्य है; उसका अपकार करना पाप है। महाभारत के युद्ध में द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि के मारे जाने के पाप का भागी धर्मराज युधिष्ठिर अपने को समझ बहुत दुखी होते हैं और उसका निवारण करने के लिए वन जाकर तपस्या करने की बात कहते हैं[36]।

३२. संदीपन कैं हम अरु सुदामा, पढ़े एक चटसार—सा०—४२३०।

३३.क. गुरु-गृह हम जब बन कौं जात।
तोरत हमरे बदलैं लकरी सहि सब दुख गात—सा० ४२३१।

ख. वह सुधि आवत तोहिं सुदामा।
जब हम तुम बन गए लकरियनि, पठये गुरु की भामा—सा० ४२३३।

३४. गुरु सौं कह्यौ जोरि कर दोऊ, दछिना कहौ सो देउँ मँगाई।
गुरु-पतिनी कह्यौ पुत्र हमारे, मृतक भये सो देहु जिवाई॥
आनि दिए गुरु-सुत जमपुर तैं, तब गुरुदेव असीस सुनाई—सा० ३४११।

३५. पाँच बरस की भई जब आइ, संडामर्कहिं लियौ बुलाइ।
तिनकैं सँग चटसार पठायौ, राम-नाम सौं तिन चित लायौ।
संडामर्क रहे पचि हारि, राजनीति कहि बारंबारि—सा० ७-२।

३६. गुरुकुल-हत्या मोतैं भई। अब धौं कैसी करिहै दई।

× × ×

आ. अष्टछाप-काव्य में गृहस्थाश्रम-चर्चा—अष्टछापी कवियों में सूरदास ने तो अनेक पौराणिक व्यक्तियों के साथ श्रीकृष्ण के गृहस्थ-जीवन का वर्णन किया है; परन्तु अन्य कवियों ने इन प्रसंगों को विस्तार से नहीं लिखा है। गृहस्थाश्रम का प्रारंभ विवाह से होता है और विवाह की आयु शास्त्रीय दृष्टि से पचीस वर्ष के आस-पास मानी गयी है; परन्तु सूरदास के कपिलदेव सामान्य रूप से पुत्र के किशोर होते ही माता-पिता द्वारा उसका विवाह कर दिये जाने की बात कहते हैं जिसके पश्चात् वह धनोपार्जन में लगता है[३७]।

इ. अष्टछाप-काव्य में वानप्रस्थाश्रम चर्चा—इस आश्रम का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में विस्तार से नहीं है। ऊधव ने एक पद में गोपियों से श्रीकृष्ण के ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, सभी कुछ होने की बात अवश्य कही है[३८]।

ई. अष्टछाप-काव्य में संन्यासाश्रम चर्चा—इस आश्रम का उल्लेख लौकिक सुखों के त्याग के प्रसंग में 'ऊधव-गोपी-संवाद' में हुआ है। ऊधव जब ब्रजबालाओं को सुखों की कामना त्यागने का उपदेश देते हैं तब उत्तर में गोपियाँ व्यंग्य करती हुई कहती हैं कि रसिकप्रवर श्रीकृष्ण (और बलराम) के साथी अलि-मनोवृत्तिधारी इस व्यक्ति को संन्यास से क्या लेना-देना है[३९]।

२. *अष्टछाप-काव्य में मनोविनोद*—

जीवन में मनोविनोद का महत्वपूर्ण स्थान है और बाल्यकाल से लेकर बुढ़ापे तक वह इसके लिए लालायित रहता है। प्रारंभिक अवस्था में इसकी आवश्यकता शारीरिक शक्तियों के विकास के लिए होती है तो प्रौढ़ावस्था में जीविका

गुरु-हत्या मोतैं ह्वै आई। कह्यौ सो छूटै कौन उपाई

× × ×

करौं तपस्या पाप निवारौं। राजछत्र नाहीं सिर धारौं—सा० १-२६१।

३७. बर्ष ब्यतीत दसक जब होइ, बहुरि किसोर होइ पुनि सोइ।
सुन्दर नारी ताहि बिबाहै, असन,बसन बहु बिधि सो चाहै।
पुनि लछमी हित उद्यम करै .... —सा० ३-१३।

३८. आपुहिं बानप्रस्थ ब्रह्मचारी—सा० ४०६४।

३९. स्याम राम को संगी यह अलि, कीजत कह संन्यास—सा० ३५८३।

के अर्जन की व्यस्तता-जनित क्लांति या शिथिलता को दूर करने के लिए मनोविनोद की आनंददायी योजना मनुष्य मात्र बनाता रहता है। अतएव अवस्था के विकास के साथ - साथ मनोविनोद के साधन भी बदलते रहते हैं। बाल्यकाल में दौड़-धूप के ऐसे कार्यक्रमों से हमारा मनोरंजन होता है जो जल्दी थकानेवाले होने के कारण शरीर को स्वस्थ और मांसल बनाते हैं। ऐसे कार्यक्रम सामान्यतया युवावस्था तक चलते रहते हैं। उसके पश्चात् मनोरंजन के अपेक्षाकृत कम दौड़-धूप वाले कार्यक्रमों में वह सहर्ष भाग लेता है। इस प्रकार, स्थूल रूप से, मनोरंजन के साधनों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम में बाल्यकाल के खेल और विनोद आते हैं और द्वितीय में मनोविनोद के वे साधन आते हैं जिनकी आवश्यकता अवस्था के उत्तरार्द्ध-काल में होती है। दोनों वर्गों के कार्यक्रम समाज के बीच में चलते हैं; और घर से बाहर जाकर, समाज के अन्य व्यक्तियों सहित उनमें भाग लेने पर सहयोग की भावना के विकास के साथ-साथ हमारा मनोरंजन भी होता है।

क. *बाल्यावस्था के खेल और विनोद*—शिशु की बहुत छोटी अवस्था में माता-पिता तथा अन्य संबंधी कभी तो तरह तरह से बातें करके उसका मन बहलाते हैं, और कभी खेलने के लिए उसको खिलौने देते हैं। छोटे बालकों के खेलने के खिलौने प्राय: उनके पालनों से भी बाँध दिये जाते हैं। विश्वकर्मा द्वारा रचे गये पालने में लटकते रंग-बिरंगे रत्नों, खिलौनों और मोतियों की झालरों को देखकर शिशु कृष्ण बार-बार प्रसन्न होकर किलकारी भरता है[४०]। सूरदास के एक पद में 'सोने की उड़न चिरैया' की चर्चा की गयी है[४१]। सोने की तो नहीं, हाँ, कागज, मिट्टी, तार, रुई आदि की 'चिड़ियाँ' आज भी बाजार में बच्चों के खिलौने के रूप में बिकती हैं। इसीलिए, संभव है, शिशु कृष्ण के खिलौनों में 'सोने की उड़न चिरैया' जैसी चीजें भी रही हों।

कभी कभी शिशु का विनोद करने के लिए 'झुनझुना' या 'खुनखुना' बजाकर उसे खिलाया जाता है। नंददास की यशोदा पालने में लेटे हुए शिशु कृष्ण का मन

४०. रेसम बनाइ नव रतन पालनौ, लटकन बहुत पिरोजा-लाल।
'मोतिनि झालरि नाना भाँति खिलौना', रचे बिस्वकर्मा सुतहार।
'देखि-देखि किलकत दँतियाँ द्वै' राजत क्रीड़त बिबिध बिहार—सा० १०-८४।

४१. किन 'सोने की उरत चिरैया' डोरी बाँधि खिलाई—सा० ३९६८।

इसी प्रकार बहलाती है[४२]। जब बालक कुछ और बड़ा हो जाता है तब उसको स्वयं खेलने के लिए 'खुनखुना' या 'झुनझुना' दिया जाता है जिसे बजाकर वह बहुत प्रसन्न होता है। सूरदास का कृष्ण तो 'खुनखुना' बजाकर कवि को उसी प्रकार हँसता जान पड़ता है जैसे शिव डमरू बजाकर हँसते हैं[४३]। अपने दोनों बालकों, बलराम और श्रीकृष्ण, के लिए तरह-तरह के मूल्यवान खिलौने खरीदने नंद जी कभी-कभी मथुरा जाते हैं। ऐसे खिलौने 'रत्नों' के मूल्य के होते हैं[४४]। साधारण खिलौने माता अपने गाँव में ही खरीद लेती है। बालक कृष्ण के 'भौंरा-चकडोरी' माँगने पर सूरदास की यशोदा कहती हैं—कल ही मैंने उन्हें खरीद लिया था; आले पर दोनों चीजें रक्खी हैं; जाकर ले लो[४५]।

बालक कृष्ण जब और बड़ा होकर घर से बाहर जाता है तब अपनी अवस्था के दूसरे बालकों से उसका परिचय होता है। धीरे-धीरे परिचय के घनिष्ठ होने पर वह उनका साथी या सखा बन जाता है। तब वह सामाजिक जीवन का पहला पाठ पढ़ता और सभी साथियों के साथ खेलने लगता है। अष्टछाप-काव्य में वर्णित इस अवस्था के खेल तीन वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं। प्रथम वर्ग में 'बिंगी' या 'फिरकी', 'चट्टा-बट्टा', 'चकई' या 'भौंरा-चकडोरी', 'गुड़ियाँ' आदि के खेल आते हैं जिनके लिए ज्यादा दौड़-धूप की आवश्यकता नहीं होती। दूसरे वर्ग में 'आँख-मिचौनी', 'छुआछुऔवल', 'वृक्षारोहण', 'ढैल-ढैल', 'कंदुक-क्रीड़ा', 'चौगान-बटा' आदि खेल आते हैं जिनमें अधिक दौड़-धूप करनी पड़ती है। तीसरा वर्ग 'पतंगों' आदि अन्य खेलों का है। अष्टछाप-काव्य में बालकों के उक्त सभी खेल-खिलौनों की चर्चा आयी है।

अ. *कम दौड़-धूप के खेल*—परमानंददास के कृष्ण भवन के भीतर अनेक

४२. सुंदर स्याम 'पालने झूले'।
जसुमति माय निकट अति बैठी निरखि निरखि मन फूले।
'झुनझुना लेके बजावत' रुचि सों लाल ही के अनुकूले—नंद०, भाग २, परि० ८।

४३. खुनखुना कर, हँसत हरि, हर नचत डमरू बजाइ—सा० १०-१७०।

४४. नाना बिधि के 'बिबिध खिलौना रतननि अधिक अमोले।
ताको लेन गए मथुरा को..—सा० ४१३।

४५. दै मैया, 'भौंरा चकडोरी'।
'जाहि लेहु आरे पर राख्यौ, काल्हि मोल लै राखै कोरी'—सा० ६६६।

बालकों के साथ कभी डोरी[४६] से 'बंगी' नचाते फिरते हैं,[४७] और कभी 'फिरकी' और 'भौंरा-चकडोरी' से खेलते हैं[४८]। 'चकई' का स्थान बालक कृष्ण के प्रिय खिलौनों में जान पड़ता है, तभी तो जब वह 'चंद-खिलौने' के लिए मचलता है तब माता यशोदा 'चकई-डोरि' का प्रलोभन देकर उसका ध्यान बटाना चाहती हैं[४९]। 'भौंरा' आजकल के लट्टू की तरह डोरी में बाँधकर खेला जाता था। सूरदास और परमानंद-दास, दोनों के कृष्ण पाँच-सात लड़कों के साथ कभी नंद-भवन के द्वार पर और कभी ब्रज की सँकरी गलियों में 'भौंरा-चकडोरी' खेलते फिरते हैं[५०]। इसी प्रकार काठ का 'चट्टे - बट्टे' नामक खिलौना और पी-पी करके बजनेवाला 'पपैया'[५१] भी

४६. गोपाल 'फिरावत हैं बंगी'।
भीतर भवन भरे सब बालक नाना बिधि बहु रंगी॥
सहज सुभाव 'डोरी खेंचत हैं' लेत उठाय कर पै संगी—परमा० ६२५।

४७. 'चकई' के बीच के भाग में डोर लपेट कर उसे इस तरह हवा में फेंका जाता है कि खींचने पर वह उसमें फिर लिपट जाती है। 'चकडोरी' का तात्पर्य इसी से है। 'चकई' में डोर खुलने और लिपटाने की इसी क्रिया को लक्षित करके गोपियाँ ऊधव से कहती हैं—
ऊधौ, 'हरि गुन, हम चकडोर'।
× × ×
'चकडोरी की रीति यहै, फिरि गुनहीं सौं लपटाइ'॥
सूर सहज गुन ग्रंथि हमारैं, दई स्याम उर माहिं—सा० ३५४४।

४८. प्रेम घुमेरे लेत हैं 'फिरकी झुँझना' मनहि सलौना।
चट्टाबट्टा नौबत 'चकई' हित जु सबही करौं ना—परमा० ६२६।

४९. ऐसौ हठी बालगोबिंदा।
अपने कर गहि गगन बतावत 'खेलन को माँगै चंदा।
'चकई डोरि पाट के लटकन', लेहु मेरे लाल 'खिलौना'—१०-१९८।

५०.क. गोपाल माई 'खेलत हैं चकडोरी।
लरिका पाँच-सात सँग लीने निपट साँकरी खोरी—परमा० ६२४।
ख. दै मैया 'भौंरा चकडोरी'।
× × ×
बोलि लिए सब सखा संग के 'खेलत कान्ह नन्द की पौरी'।
तैसेइ हरि, तैसेइ सब बालक, 'कर भौंरा चकरिनि की जोरी'—सा० ६९९।

५१. 'पपैया' छोटे बच्चों का आज भी प्रिय खिलौना है और आम की गुठली की भीतरी

बालकों को सदा प्रिय रहता है। इन दोनों के साथ उक्त सभी खेल-खिलौनों की चर्चा परमानंददास के एक पद में मिलती है[५२]। 'बेत' का स्थान खिलौनों में तो नहीं है, परन्तु बालक कृष्ण की प्रिय वस्तुओं में वह भी है जिसको सम्हालकर रखने की बात वे ऊधव के द्वारा माता यशोदा से कहलाते हैं[५३]। 'बिषान' और 'बाँसुरी' जैसे खिलौनों में भी बालक कृष्ण की रुचि बराबर रही है। बाँसुरी या मुरली बजाने में तो वे अतुलनीय थे ही, 'बिषान' जैसे बाजे दूसरे बालकों को भी बहुत प्रिय थे।

आ. *दौड़-धूप के खेल*—घर से बाहर आने और समवयस्क बालकों से परिचय होने के पश्चात् बालकों का मन दौड़-धूप के खेलों में अधिक लगता है। ग्रामीण बालकों को इसके लिए वातावरण और अवकाश, दोनों सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। गाय चराने जाने पर हरे-भरे मैदानों में दौड़ने, फलदार वृक्षों पर चढ़ने, नदी-सरोवर में स्नान करने आदि में उन्हें खूब आनन्द आता है। दौड़-धूप के इन्हीं सब खेलों की चर्चा अष्टछाप-काव्य में मिलती है। उन कवियों द्वारा वर्णित आँखमिचौनी, छुआ-छुऔवल, वृक्षारोहण, वृषभारोहण, कंदुक-क्रीड़ा और चौगान-बटा आदि को दौड़-धूप के खेलों के अंतर्गत रखा जा सकता है।

१. *आँख-मिचौनी*—पाँच-छह वर्ष का बालक जब घर से बाहर जाकर खेलना चाहता है, तब माता यशोदा का वात्सल्य उसकी सुरक्षा के विचार से अपने

सींगी को घिस कर अथवा बाँस के टुकड़ों को चीर कर सरलता से बना लिया जाता है—लेखिका

५२. लाल आज खेलत सुरँग खिलौना।
काम सबद उघटत है 'पपीहा' बड़ी मधुर मिलौना।
प्रेम घुमेरे लेत है 'फिरकी', 'झुँझना' मनहि सलौना।
'चट्टाबट्टा' 'चौबत' 'चकई' हित जु सबही करौना।
झुमिरि झूमि झुकि बाट देखत 'हथबंगी' मनु जौना—परमा० ६२६।

५३. नोई 'बेंत बिषान, बाँसुरी, द्वार अबेर सबेरैं'।
लै जनि जाय चुराइ राधिका कछुक खिलौना मेरे—सा० ३४३९।
विशेष—यहाँ 'नोई' को भी खिलौनों के साथ गिनाने का संकेत यह जान पड़ता है कि बालक कृष्ण के गाय दुहने की 'नोई' साधारण ग्वालों की 'नोई' से भिन्न बहुत सुन्दर होगी जिसका उसकी प्रिय वस्तुओं में गिना जाना स्वाभाविक ही है—लेखिका।

ही सामने खेलने की प्रेरणा देता है। अपने पुत्र के संगी-साथियों को बुलाकर वह 'आँख-मिचौनी' का खेल खिलाती है जिसमें एक बालक की आँख मूँदी जाती है, बाकी सब भागकर इधर-उधर छिप जाते हैं। आँख खोल दी जाने पर 'चोर' बालक छिपे हुए साथियों को ढूँढ़ने निकलता है। उसके हटते ही छिपे बालक दौड़-दौड़कर आँख मूँदनेवाले को छूते हैं। जिस बालक को इसका अवसर नहीं मिलता और जो आँख मूँदनेवाले को छूने के पहले ही 'चोर' बालक द्वारा छू लिया जाता है, वह आगे के लिए 'चोर' हो जाता है और तब उसकी आँख मूँदी जाती है। सूरदास की यशोदा बलराम और कृष्ण को आँख से ओझल नहीं करना चाहती। इसलिए वह दोनों पुत्रों से कहती है—अपने सब साथियों को बुलाकर यहीं खेलो। बालक कृष्ण इससे सहमत हो जाता है और 'आँख-मिचौनी' का खेल खेलने के लिए अपने सखा ग्वाल-बालों को घर बुलाता है। 'आँख कौन मूँदेगा' का प्रश्न उठते ही यशोदा का लड़ैता लाल झट वात्सल्यमयी माता का नाम ले देता है[५४]। खेल शुरू होता है। स्याम स्वयं 'चोर' बनता है और माता यशोदा[५५] उसकी आँख मूँदती हैं। सब ग्वाल-बाल इधर-उधर छिप जाते हैं। सबके छिप जाने पर 'चोर' की आँख खोल दी जाती है और वह छिपे हुए खिलाड़ियों को खोज कर छूने दौड़ता है। 'चोर' के इधर-उधर जाते ही छिपे हुए ग्वाल-बाल दौड़-दौड़ कर माता यशोदा को छूते हैं[५६]।

इस खेल के प्रसंग में कवि ने माता यशोदा के विनोद-भाव और बालक कृष्ण के स्पर्धा-भाव के संबंध में रोचक संकेत किये हैं। छोटे भाई को बड़े भाई से जितवा कर दोनों की बाल-लीला देखने के लोभ से माता यशोदा आँख मूँदने की

५४. बोलि लेहु हलधर भैया कौं।
मेरे आगैं खेल करौ कुछ, सुख दीजै मैया कौं।
'मैं मूँदौं हरि आँखि तुम्हारी', बालक रहैं लुकाई।
हरषि 'स्याम सब सखा बुलाए' खेलन 'आँखमुँदाई'।
हलधर कह्यौ 'आँखि को मूँदै, हरि कह्यौ, मातु जसोदा'—सा० १०-२३९।

५५. तब हरि 'अपनी आँखि मुँदाई।
सखा सहित बलराम छपाने जहँ-तहँ गए भगाई—सा० १०-२४०।

५६. दौरि दौरि बालक सब आवत, 'छुवत महरि कौ गात'—सा० १०-२४०।

अवस्था में बालक कृष्ण के कान में बलराम के छिपने का स्थान बता देती है; परन्तु कृष्ण के मन में प्रतिद्वंद्विता का भाव बलराम के प्रति नहीं, श्रीदामा के प्रति है। इसलिए वह स्पष्ट कह देता है—मुझे बलदाऊ से नहीं, श्रीदामा से से काम है[५७]। सब बालक यशोदा को छू लेते हैं, केवल सुबल और श्रीदामा बच रहते हैं। तभी श्रीकृष्ण दौड़कर अपने प्रतिद्वंद्वी को छूकर 'चोर' बना देता है। यह देखकर सब बालक श्रीदामा को 'चोर' 'चोर' कहकर बहुत प्रसन्न होते हैं और आँख मुँदाने के लिए अब उसे यशोदा के पास जाना पड़ता है[५८]।

परमानंददास ने भी श्रीकृष्ण के 'आँख-मिचौनी' के खेल की ओर संकेत किया है[५९] तथा 'सारावली' में भी 'आँखमिचौनी' खेले जाने का उल्लेख है[६०]।

२. *छुआ-छुऔवल*—बालक कृष्ण जब कुछ और बड़ा होकर घर के बाहर आ जाता है तब अपने सखाओं के साथ दौड़ कर छूने का खेल खेलता है। 'छुआछुऔवल' के इस खेल में एक लड़का 'चोर' बनता है जो संकेत होते ही भागनेवाले दूसरे लड़कों को दौड़ कर छूता है[६१]। इस खेल में जीत उसकी होती है जो खूब तेज दौड़ता हो। बालक कृष्ण की अभी छोटी अवस्था है और दौड़ने का उसे अभ्यास भी नहीं है। इसलिए दौड़कर खेलते हुए दूसरे बालकों के साथ जब वह भी खेलना चाहता है तब हलधर उसे मना करते हैं। अपने बड़े भाई के रोकने पर कृष्ण तत्काल उत्तर देता है—मेरे शरीर में भी बल है, मैं भी दौड़ना जानता हूँ और जब मेरी 'जोड़ी' श्रीदामा आगे जा रहा है तब मैं कैसे पीछे

५७. 'कान लागि कह्यौ जननि जसोदा, वा घर मैं बलराम।
बलदाऊ कौं आवन दैहौं, श्रीदामा सौं काम—सा० १०-२४०।

५८. सब आए रहे सुबल श्रीदामा, हारे अब कैं तात।
सोर पारि हरि सुबलहिं धाए, 'गह्यौ श्रीदामा जाइ।
दै दै सौहैं नन्द बबा की, 'जननी पै लै आइ'।
हँसि - हँसि तारी देत सखा सब, 'भए श्रीदामा चोर'—सा० १०-२४०।

५९. 'मूँदे दृग' दुरि हो ग्वाल तुम दीने कहाँ बताई—परमा० १२६।

६०. कहुँ खेलत मिलि ग्वाल मंडली 'आँख मीचनी-खेल'—सारा० ६०४।

६१. 'खेलत स्याम ग्वालनि संग।'
सुबल हलधर अरु श्रीदामा, करत नाना रंग।
'हाथ तारी देत भाजत, सबै करि करि होड़'—सा० १०-२१३।

रह सकता हूँ[६२] ? इधर श्रीदामा ने भी श्रीकृष्ण की बात सुनी, वह भी किसी से पीछे नहीं रहना चाहता। उसने तत्काल श्याम को दौड़ने को चुनौती दी। सब साथियों के सामने दी गयी चुनौती को भला श्याम कैसे न स्वीकार करता ? तब दोनों में दौड़ हुई; श्याम आगे, श्रीदामा पीछे। जरा देर ही में श्रीदामा ने तेज दौड़कर कृष्ण को छू लिया[६३]।

खेल में जीतनेवाले को स्वभावत: खुशी होती है और हारनेवाला खिसियाकर बहाने बताने लगता है। बालक कृष्ण भी श्रीदामा से हार कर कहने लगा—तुमने मुझे छुआ क्या, मैं तो जान कर खड़ा हो गया था[६४]। इस प्रकार झगड़ा बढ़ा। सच्ची बात यह थी कि कृष्ण हार गया था; इसीलिए सब बालक श्रीदामा की ओर थे और श्याम को खिझा रहे थे। कृष्ण को कुछ आशा बड़े भाई बलराम से थी। उसने भी न्याय का पक्ष लेकर कहा—कृष्ण को कुछ आता-जाता है नहीं, हार-जीत समझने की भी बुद्धि नहीं है। इसी से हार जाने पर दूसरों से झगड़ा करता है। और करे भी क्यों न ? न इसके माँ है, न बाप। खेल में हार की बात से खीझा हुआ श्याम भाई का अपने प्रति यह 'अन्याय' देखकर रोता हुआ घर की ओर चल पड़ा[६५]। सूरदास के अतिरिक्त अन्य कवियों ने दौड़ के खेलों का इस प्रकार वर्णन नहीं किया है।

३. *वृक्षारोहण*[६६]—बालक कृष्ण कुछ और बड़ा होने पर सखाओं के

६२. बरज हलधर, स्याम, 'तुम जनि चोट लागै गोड़'।
तब कह्यौ मैं दौरि जानत, बहुत बल मो गात—सा० १०-२१३।

६३. उठे बोलि तबै श्रीदामा, जाहु तारी मारि।
'आगैं हरि पाछैं श्रीदामा', 'धरयौ स्याम हँकारि'—सा० १०-२१३।

६४. जानि कै मैं रह्यौ ठाढ़ौ, छुवत कहा जु मोहिं—सा० १०-२१३।

६५. सखा कहत हैं स्याम खिसाने।
आपुहिं आपु बलकि भए ठाढ़े, अब तुम कहा रिसाने।
बीचहिं बोलि उठे हलधर तब याके माइ न बाप।
हारि-जीत कछु नैंकु न समुझत, लरिकनि लावत पाप।
आपुन हारि सखनि सौं झगरत, यह कहि दियो पठाइ—सा० १०-२१४।

६६. श्री हरिदत्त शास्त्री ने इस खेल को 'मर्कटोत्प्लवन-क्रीडा' कहा है—'कल्याण', 'हिंदू संस्कृति-अंक' में प्रकाशित 'भारतीय प्राचीन क्रीड़ाएँ' शीर्षक लेख, पृ०७२३।

साथ गाय चराने जाता है। वन में पहुँचने पर जब गायें चरने लगती हैं तब ग्वाल-बालों के साथ कृष्ण तरह-तरह के खेल खेलता है जिनमें एक है वृक्षों पर चढ़कर छूने का खेल[६७]। साधारण दौड़ से इसमें अंतर यह है कि वह खेल गली या मैदान में होता है और यह खुले स्थान में जहाँ वृक्ष अधिक हों। दौड़ के साधारण खेल में जीत होती है तेज दौड़नेवाले की, लेकिन इस खेल में जीतता वह है जो बंदर की तरह फुर्ती से पेड़ पर चढ़ जाता है और जरूरत पड़ने पर जमीन पर कूद सकता या एक डाल से दूसरी डाल पर पहुँच सकता है। इसको 'चढ़ाचढ़ी' का खेल भी कहते हैं। अष्टछाप-काव्य में इस खेल का वर्णन 'सारावली' में मिलता है जिसमें 'आमरू' डार पर ग्वाल-बालों के चढ़ने और 'बिटप' से धरती पर कूदकर 'चढ़ाचढ़ी' का खेल खेले जाने की बात कही गयी है[६८]।

४. *बैल-बैल*—इस खेल में कई बालक 'बैल' बनने के लिए उसके रंग से मिलता-जुलता कपड़ा ओढ़ कर वैसा ही शब्द करके आपस में लड़ते हैं। कभी-कभी 'बैलों' के साथ कुछ बालक 'गाय' भी बनते हैं। दूसरे पशु-पक्षियों का रूप धरना या केवल बोली बोलना भी इस खेल का एक अंग है। इस खेल को 'कृत्रिम वृषभ-क्रीड़ा' कह सकते हैं। नंददास ने कृष्ण की इस क्रीड़ा का उल्लेख 'दशम स्कंध' में करते हुए लिखा है कि कृत्रिम गाय-बैल बना कर, उनका-सा ही शब्द बुलवाकर कृष्ण अपने सखाओं को लड़ाते हैं[६९]।

५. *कंदुक-क्रीड़ा*—घर के बाहर खेले जानेवाले दौड़-धूप के खेलों में 'कंदुक-क्रीड़ा' या गेंद का खेल प्रायः सभी देशों और कालों के बालकों को बहुत प्रिय

६७. गाँवों में आज भी बालक पेड़ पर चढ़कर एक दूसरे को छूने का खेल खेलते हैं जिसको 'लच्चीडार' कहते हैं। इसका तात्पर्य 'लचौली डार' से जान पड़ता है जिस पर बालक जल्दी चढ़ सकें और जिससे सरलता से कूद भी सकें—लेखिका।

६८. 'चढ़ाचढ़ी को खेल' सखनि में खेलत हैं रस-रेल।
कहूँ आमरू डार बिटप की खेलत सखनि मँझार।
कूदि कूदि धरनी सब धावत दाँव देत किलकार—सारा० ६०४-५।

६९. कहुँ 'कृत्रिम गो-वृषभ बनावत', तैसेई नादत, तिनहि लरावत।
—नंद०, दशम०, पृ० २४७।

रहा है[७०] । अष्टछाप-काव्य में श्रीकृष्ण और उनके सखाओं की कंदुक-क्रीड़ा का वर्णन हुआ है[७१] । श्रीकृष्ण स्वयं गेंद खेलने का प्रस्ताव करते और जाकर उसे ले आने का आग्रह करते हैं[७२] । गेंद का खेल भी सीधे-सादे ढंग से होता है। एक बालक गेंद लेता है और भागते हुए दूसरे साथियों को गेंद फेंक कर मारता है। तब जो गेंद पा जाता है, वही मारनेवाले को गेंद से मारता है और दूसरे तरह-तरह से झुक कर, दायें-बायें हट कर उस मार से अपने को बचाते हैं[७३] । इस खेल में भी श्रीदामा ही कृष्ण का प्रतिद्वंद्वी है। हाथ में गेंद आते ही कृष्ण उसे ही ताक कर मारते हैं। श्रीदामा फुर्ती से एक ओर हट कर बच जाता है और गेंद कालीदह में जा गिरता है[७४] ।

६. *चौगान-बटा*—गेंद या 'बटा' को एक सिरे पर टेढ़े या मुड़े हुए डंडे से, जिसे 'चौगान' कहते हैं, मार कर खेलने का खेल 'चौगान-बटा' कहलाता है। यह खेल बालकों के साथ युवकों को भी बहुत प्रिय रहा है जिसकी चर्चा आगे की जायगी। बालकों के इस खेल में 'बटा' को चौगान से मारने या ढरकाने का ही वर्णन अधिक मिलता है। श्रीकृष्ण की इस खेल में बड़ी रुचि रही है और माता यशोदा उनका 'चौगान-बटा' सम्हाल कर रखती फिरती है[७५] । कृष्ण और बलराम

७०. 'वाल्मीकि रामायण' में 'कंदुक' का उल्लेख रावण और सुग्रीव के द्वंद्व-युद्ध के वर्णन में उपमान-रूप में हुआ है—६-४०-१३।

७१. 'रामायण-कालीन संस्कृति' में इस खेल का प्रचार अधिकतर स्त्रियों में होना बताया गया है—पृ० १११।

७२. गेंद खेलत बहुत बनिहै, आनौ कोऊ जाइ—सा० ५३२ ।

७३. खेलत स्याम सखा लिए संग।
'इक मारत, इक रोकत, इक भाजत करि नाना रंग'।
'मार परस्पर करत आपु मैं' अति आनंद भए मन माहिं।
'मारि भजत जो जाहि, ताहि सो मारत, लेत आपनो दाउँ'—सा० ५३३ ।

७४. स्याम सखा कौं 'गेंद चलाई'।
'श्रीदामा मुरि अंग बचायो', गेंद परी कालीदह जाई—सा० ५३५ ।

७५. बार-बार हरि मातहिं बूझत, कहि 'चौगान कहाँ है'।
दधि-मथनी के पाछैं देखौ, लै मैं धरयो तहाँ है।
लै 'चौगान बटा' अपनैं कर, प्रभु आए घर बाहर।
सूर स्याम पूछत सब ग्वालनि, खेलौगे किहिं ठाहर—सा० १०-२४३ ।

सुबल, श्रीदामा आदि ग्वाल-बालों को दो दलों में बाँट लेते हैं और तब धरती पर 'बटा' डालकर खेल 'जम' जाता है[७६]। कृष्ण जब हारने लगते हैं तब बाल-स्वाभावानुसार कुछ 'पेल' कर बैठते हैं[७७]। परमानंददास ने वृन्दावन के मैदान में 'बाजि' पर चढ़ कर चौगान खेलने का वर्णन किया है[७८]।

अन्य खेल—इस वर्ग में 'पतंग' उड़ाना, कथा-कहानी कहना और पहेली बूझना जैसे वे खेल आते हैं जिनमें न ज्यादा दौड़-धूप चाहिए और न अधिक संगी-साथी ही।

१. पतंग—श्रीकृष्ण या उनके सखाओं के पतंग या चंग उड़ाने की चर्चा सूरदास के काव्य में नहीं है और अष्टछाप के अन्य कवियों में केवल परमानन्द दास ने इसका वर्णन किया है। उनके कान्ह अटारी पर चढ़ कर चंग उड़ाते हैं[७९]। कृष्ण के साथ दूसरे ग्वाल-बाल भी पतंग या गुड़ी उड़ाने में रुचि लेते हैं[८०]। पतंग उड़ाने पर बिना 'पेंच' लड़ाए उड़ानेवालों को उसमें पूरा आनंद नहीं आता। परमानंददास ने भी पतंगों के पेंच लड़ाये जाने की ओर एक पद में संकेत किया है[८१]। सूरदास ने श्रीकृष्ण या उनके सखाओं द्वारा तो पतंग या 'गुड़ी' नहीं

७६. कान्ह हलधर बीर दोऊ, भुजा बल अति जोर।
सुबल, श्रीदामा, सुदामा, 'वे भए इक ओर'।
'और सखा बँटाइ लीन्हे', गोप-बालक-बृंद।
चले 'ब्रज की खोरि खेलत', अति उमँगि नँद-नंद।
'बटा धरनी डारि दीनौं', लै चले ढरकाइ।
आपु अपनी घात निरखत, खेल जम्यो बनाइ—सा० १०-२४४।

७७. सखा जीतत स्याम जाने, 'तब करी कछु पेल'—सा० १०-२४४।

७८. गोपाल माई 'खेलत हैं चौगान।
ब्रजकुमार बालक सँग लीने 'बृन्दावन मैदान'।
'चंचल बाजि नचावत आवत होड़ लगावत यान।
सब ही हस्त लै 'गेंद चलावत' करत बाबा की आन—परमा० ६५।

७९. कान्ह अटा पर 'चंग उड़ावत'—परमा० ६२८।

८०. 'गुड़ी उड़ावन लागे बाल'।
'सुंदर पतँग' बाँधि मनमोहन नाचत हैं मोरन के ताल।
'कोउ पकरत कोउ ऊँचत कोऊ देखत नैन बिसाल—परमा० ६४।

८१. कोउ गुड़ी ते उरझावत आपुन ऐंचत डोर रसाल—परमा० ६४।

उड़वायी है, परन्तु उसकी चर्चा अवश्य की है[८२] जिससे पता चलता है कि उनके समय में पतंग उड़ाना निश्चय ही मनोरंजन के प्रमुख साधनों में था।

२. *कहानी सुनाना*—मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान-वर्द्धन के उद्देश्य से बालक-बालिकाओं को सोते समय दादा-दादी या नाना-नानी प्राय: कहानियाँ सुनाया करते हैं। कभी-कभी लंबी यात्रा में भी साथ के बालकों का मन बहलाये रखने के उद्देश्य से प्राचीन कथाएँ सुनायी जाती हैं। विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण का मनोरंजन इसी प्रकार किया था[८३]। अष्टछाप-काव्य में यात्रा-प्रसंग में तो कहानी कहने की बात कहीं आती नहीं है, हाँ, परमानंददास के कृष्ण-बलराम जब रात को सोते हैं तब माता यशोदा अवश्य उन्हें कहानी सुनाती हैं जिसे दोनों बड़े ध्यान से सुनते हैं[८४]। सूरदास ने केवल कृष्ण को राम-कथा सुनाये जाने की बात लिखी है जिसे सुनते समय वे बराबर 'हुंकारी' भरते जाते हैं। इस समय तक उनकी सद्बुद्धि का इतना विकास हो गया है कि सीता-हरण की बात सुन कर वे बहुत सावधान हो जाते हैं[८५]। सूरदास के बलराम की अनुपस्थिति का कारण संभवत: उस समय उनका अपनी माता रोहिणी के पास होना जान पड़ता है।

३. *पहेली-बुझौवल*—दौड़-धूप के पश्चात् थक जाने पर बालक प्राय: पहेली बूझकर अपना मनोरंजन करते हैं। इसकी चर्चा भी अष्टछाप-काव्य में है। सूरदास

८२.क. बँधी दृष्टि यों 'डोर गुडी' बस पाछे लागति धावति—सा० वें० १४३१।
   ख. 'परबस भई गुड़ी ज्यों डोलति' परति पराये कर ज्यौं—सा० वें० पृ० ३३२।

८३. 'वाल्मीकि रामायण', १-२२-२३।

८४. 'राम कृष्ण दोऊ सोये माई'।
   'कहानी कहत जसोदा रानी' सुनत हैं दोऊ मन लाई—परमा० ६९६।

८५. 'सुनि सुत, एक कथा कहौं प्यारी।
   कमल-नैन मन आनँद उपज्यो 'चतुर सिरोमनि देत हुँकारी।
   दसरथ नृपति हुतौ रघुबंसी, ताकैं प्रगट भए सुत चारी।
   तिनमैं मुख्य राम जो कहियत, जनक-सुता ताकी बर नारी।
   तात बचन लगि राज तज्यौ तिन, अनुज, घरनि सँग गए बन चारी।
   धावत कनक-मृगा के पाछैं, राजिवलोचन परम उदारी।
   'रावन हरन सिया कौ कीन्हौ, सुनि नँद-नंदन नींद निवारी'—सा० १०-१९८।
   'विशेष'—यही पद कुछ पाठांतर के साथ 'परमानंदसागर' में भी मिलता है जो सूरदास का ही जान पड़ता है—लेखिका।

के कृष्ण वन में ग्वाल-बालों के साथ जोड़ी या पार्टी बनाकर पहेली-बुझौवल खेलते हैं और दूसरों की पहेलियों का उत्तर देकर अपनी सूझ-बूझ का परिचय देते हैं[८६]।

४. *शर-क्रीड़ा*—ऊपर जिन खेलों की चर्चा है, उनमें सामान्य बालकों की रुचि अधिक रहती है; परन्तु राजकुमारों को उन खेलों के साथ-साथ अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा आरंभ से दी जाती है जिससे उनका मनोरंजन भी होता है। सूरदास के राम और उनके भाई छोटी ही अवस्था से धनुष-बाण लिये आँगन में खेलते-फिरते हैं[८७]।

ग. *बालिकाओं के खेल*—बालकों की तरह बालिकाओं को भी खेलों की आवश्यकता होती है; परन्तु अष्टछाप-काव्य में बालकों के खेलों की चर्चा जितने विस्तार से की गयी है, बालिकाओं के खेलों की उतने विस्तार से नहीं। उन कवियों ने राधा तथा उनकी सखियों के खेल-खिलौनों के नाम नहीं गिनाये हैं; परन्तु राधा के मुख से अपनी 'पौरी' पर खेलते रहने की बात अवश्य कहला दी है[८८]। अपनी पौरी पर खेलते रहने का संकेत संभवत: यह है कि अष्टछापी कवियों के प्रादुर्भाव-काल में, कदाचित् सुरक्षा के विचार से, लड़कियों को घर से बाहर जाने की बहुत कम स्वतंत्रता थी। बालक तो कहीं भी खेलने जा सकते थे, लेकिन बालिकाओं को घर से दूर नहीं जाने दिया जाता था।

बालिकाओं का सबसे प्रिय खेल 'गुड़ियाँ' खेलना रहा है जिससे उनको आरम्भ से ही गार्हस्थ्य जीवन की शिक्षा, परोक्ष रूप से, मिल जाती है। 'गुड्डे-गुड़िया' को सजाने-सँवारने और उनकी गृहस्थी जुटाने में बालिकाओं को बड़ा आनंद आता है। कभी-कभी सखियों के 'गुड्डे-गुड़ियों' से विवाह रचाने में भी वे बड़ा उत्साह दिखाती हैं। किशोरी रूपमंजरी के गुड़ियाँ खेलने, उनके विवाह रचाने और तदन्तर

८६. 'और सखा सब जुरि जुरि ठाढ़े' आपु दनुज सँग जोरि।
'फल कौ नाम बुझावन लागे' हरि कहि दियौ 'अमोरि'—सा० वें० २३७७।

८७. 'करतल सोभित बान धनुहियाँ'।
'खेलत फिरत कनकमय आँगन', पहिरे लाल पनहियाँ—सा० ६-१८।

८८. काहें कौं हम ब्रज-तन आवतिं, 'खेलति रहतिं आपनी पौरी'—सा० ६७३।

उनको सेज पर सुलाते समय की लज्जा का[८९] अनुभव करने की बात का उल्लेख नंददास ने 'रूपमंजरी' में किया है।

बालिकाओं का दूसरा प्रिय खेल 'झूला झूलना' है जिसकी चर्चा अष्टछाप-काव्य में अनेक स्थलों पर हुई है। परन्तु झूला झूलने का आनंद केवल वर्षा ऋतु में आता है, ग्रीष्म, शरद, शिशिर आदि में नहीं। अतएव 'झूले' की चर्चा ऋतूत्सवों के अंतर्गत विस्तार से की जायगी।

घ. *युवकों के खेल*—ऊपर जिन खेलों की चर्चा की गयी है, वे मुख्यत: आठ-दस वर्ष के बालक-बालिकाओं के लिए ही हैं। अवस्था में किशोर, परन्तु बुद्धि में बालक भी उनमें सरुचि भाग ले सकते हैं। युवकों और प्रौढ़ों को उक्त खेलों में अधिक आनंद नहीं आता। यद्यपि शारीरिक विकास में सहायक दौड़-धूप, चौगान, या मल्लक्रीड़ा-जैसे खेल युवकों के लिए भी बहुत उपयोगी होते हैं, तथापि उनके साथ-साथ वे मृगया-जैसे अधिक साहस के खेलों में, संगीत, वाद्य और नृत्य-जैसी कला-संबंधी योजनाओं में एवं चौपड़ और द्यूत-क्रीड़ा जैसे बौद्धिक दाँव-पेंच के खेलों में भी सरुचि भाग लेना चाहते हैं। युवकों के लिए मनोविनोद के ऐसे ही साधनों की चर्चा अष्टछाप-काव्य में है। स्थूल रूप से उन साधनों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—अ. साहस के खेल, आ. बौद्धिक दाव-पेंच के खेल, इ. कला-कौशल के खेल तथा ई. मनोरंजन के अन्य साधन।

अ. *साहस के खेल*—इस वर्ग के अंतर्गत चौगान, मल्लयुद्ध और मृगया आदि मनोरंजन के साधन आते हैं जिनसे शारीरिक शक्ति के विकास में सहायता मिलती है और जिनमें सफल होने के लिए बल के साथ साथ शरीर में स्फूर्ति की भी आवश्यकता होती है।

१. *चौगान*—'बटा-चौगान' नामक एक खेल की चर्चा बालकों के खेलों के अंतर्गत की जा चुकी है जिसमें दो दल बाँटकर धरती पर पड़े हुए 'बटा' को 'चौगान' से मारा जाता है। युवकों का 'चौगान' खेल बालकों के खेल से भिन्न होता है और घोड़ों पर चढ़कर 'पोलो' के ढंग पर खेला जाता है।

८९. गुड़ा गुड़ी के ब्याह बनावै। 'लाज गहै जब संग सुवावै'—नंद०, रूप०, पृ० ५।

'चौगान' का यह खेल एक सिरे पर टेढ़े या मुड़े हुए डंडे से जिसे 'हेंगुरि' भी कहते हैं,[९०] खेला जाता है[९१]। जायसी ने 'चौगान' का खेल खेलने वाले पुरुषों के साथ इस खेल में रुचि रखनेवाली स्त्रियों की भी चर्चा की है[९२]। इस खेल के मैदान में दोनों सिरों पर, आजकल के हाकी-फुटबाल के मैदानों के सिरों पर बने 'गोल पोल्स' की तरह, दो-दो खंभे लगे रहते थे जिन्हें 'हाल' कहते थे[९३] और 'हाल' के बीच से गेंद निकालने पर 'गोल' हो जाता था। इस तरह 'हाल करने' से तात्पर्य 'गोल' करने से और 'हाल' होने से 'गोल' होने से है। अष्टछाप-काव्य में इस खेल का वर्णन सूरदास और परमानंददास, केवल दो कवियों ने किया है। परमानंददास ने, जैसा पीछे कहा जा चुका है, घोड़े पर चढ़े हुए श्रीकृष्ण और उनके सखाओं को वृन्दावन के मैदान में यह खेल खिलाया है[९४]। 'श्रीमद्भागवत्' में कहीं

९०. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'पद्मावत', पृ० ६८४।

९१. दहुँ चौगान तुरुक कस खेला, होइ खेलार रन जुरौं अकेला।
तब पावौं बादिल अस नाऊँ, जीति मैदान गोइ लै जाऊँ।
आजु खरग 'चौगान' गहि करौं सीस रन 'गोइ'।
खेलौं सौंह साहि सौं 'हाल' जगत महँ होइ।
—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'पद्मावत', ५३-५।

९२. होइ मैदान परी अब 'गोई'। खेल 'हाल' दहुँ काकरि होई।
जोबन तुरै चढ़ी सो रानी। 'चली जीति अति खेल सयानी'।
लट 'चौगान गोइ' कुच साजी। हिय 'मैदान चली लै बाजी'।
'हाल सो करै गोइ लै बाढ़ा'। कूरी दुहूँ बीच कै काढ़ा।
भए पहार दुवौ वै कूरी। दिष्टि नियर पहुँचत सुठि दूरी।
ठाढ़ बान अस जानहुँ दोऊ। सालहिं हिए कि काढ़ै कोऊ।
सालहिं तेहि न जासु हियँ ठाढ़े। सालहिं तासु चहै ओन्ह काढ़े।
मुहमद खेल पिरेम का घरी 'कठिन चौगान'।
सीस न दीजै गोई जौं 'हाल न होइ मैदान'॥
—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'पद्मावत', पृ० ६८३।

९३. 'आइने अकबरी', भाग दो, आईन २६, पृ० ३०६।

९४. 'गोपाल' माई 'खेलत हैं चौगान'।
'ब्रजकुमार बालक सँग लीने बृन्दाबन मैदान॥
'चंचल बाजि नचावत आवत' होड़ लगावत थान।
सब ही हस्त लै 'गेंद चलावत' करत बाबा की आन—परमा० ६५।

ऐसा उल्लेख नहीं है कि श्रीकृष्ण ने वृन्दावन में घुड़सवारी भी की थी; संभवत: इसी कारण सूरदास मथुरा जाने के पूर्व तक घोड़े पर चढ़कर श्रीकृष्ण और उनके सखाओं के 'चौगान' खेलने की बात नहीं लिखते। उन्होंने द्वारकावासी श्रीकृष्ण को घोड़े पर चढ़कर 'चौगान' खेलते अवश्य कहा है। उनके साथ यदुकुल के अनेक 'कुँवर' हैं जो 'उच्चैश्रवा' जैसे ऊँचे और सबल अनेक रंगों के घोड़ों पर सवार होकर द्वारावती के रुचिर मैदान में 'चौगान' खेलने आये हैं। उनके घोड़े की जीन और साज जड़ाऊ है। खिलाड़ियों के बटते ही खेल शुरू हो जाता है। श्रीकृष्ण जब गेंद बढ़ाते हैं तब हलधर और दूसरे खिड़ाड़ियों के रोके भी नहीं रुकते और 'हाल' करके खेल में जीत ही जाते हैं[९५]।

२. *मल्लयुद्ध*—भारतीय संस्कृति में मनोरंजन के साथ-साथ शारीरिक बल-वृद्धि के लिए 'मल्लयुद्ध' का इतना महत्वपूर्ण स्थान रहा है कि इसको हमारे यहाँ 'मल्लविद्या' भी कहा गया है। यों तो सिंह, बाघ, वाराह आदि पशुओं से भी मल्लों के युद्धों का वर्णन प्राचीन साहित्य में कहीं-कहीं मिलता है,[९६] तथापि सामान्यतया यह समवयस्क पुरुषों के ही मनोरंजन का प्रमुख साधन रहा है। मनोरंजन का यह साधन इतना लोकप्रिय था कि राजवंशी लोग भी 'मल्ल-विद्या' सीखते थे। भीम तथा जरासंध, दोनों ही इस विद्या में इतने निपुण थे कि उनका

९५. 'मनमोहन खेलत चौगान'।
'द्वारावती कोट कंचन मैं', रच्यौ रुचिर 'मैदान'॥
'जादव बीर बटाइ बटाई, हरि बल इक इक ओर।
निकसे 'सबै कुँवर असवारी, उच्चैस्रवा के पोर॥
नीले सुरँग कुमैत स्याम तेहि, परदे सब मन रंग।
बरन अनेक भाँति भाँतिनि के, चमकत चपला ढंग॥
'जीन जराइ जु जगमगाइ रहि', देखत दृस्टि भ्रमाइ।
सुर, नर, मुनि कौतुक सब लागे, इक टक रहे लुभाइ॥
जबहीं 'हरि लै गोइ कुदावत', कंदुक कर सौं लाइ।
तबहीं औचकहीं करि धावत, हलधर हरिके पाँइ॥
कुँवर सबै घोड़े फेरे पै, 'छाँड़त नहिं गोपाल'।
'बलै अछत छल-बल करि जीते', सूरदास 'प्रभु हाल'—सा० ४१६६।

९६. डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास, 'रामायण-कालीन संस्कृति', पृ० १११।

मल्लयुद्ध कई दिन तक चलता रहा था। राजदरबारों में अनेक मल्ल भी रहते थे और कंस का राज-दरबार तो इनके कारण बहुत प्रसिद्ध था, यद्यपि उसके दरबारी मल्ल मनोरंजन से अधिक ध्यान व्यायाम के द्वारा शरीर पुष्ट करने की ओर देते थे।

अष्टछापी कवियों ने श्रीकृष्ण और उनके सखा ग्वाल-बालों के परस्पर मल्लयुद्ध का वर्णन कहीं नहीं किया है; केवल 'सारावली' में कंस अवश्य श्रीकृष्ण और बलराम से यह कहता है—हमने सुना है कि वृन्दावन में तुम लोग गोपों के साथ खूब मल्लक्रीड़ा करते हो। इसलिए अपने युद्ध-कौशल का प्रदर्शन हमारे सामने भी करो[९७]। कृष्ण और बलराम ने उसका तात्पर्य समझ लिया; फिर भी अनजान रहकर उन्होंने कंस के मल्लों से खूब दाँव-पेंच दिखाकर कुश्ती लड़ी[९८]। उनका कौशल देखकर ब्रजराज नंद जी प्रसन्न हो गये[९९]। 'सूरसागर' में कंस के योद्धाओं की ललकार पर श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं कि हम काल से भी भिड़ने को तैयार हैं, तुम बेचारे किस गिनती में हो[१००]। पश्चात्, मल्लयुद्ध में कंस के महाभटों की भी कृष्ण-बलराम के सामने कुछ नहीं चलती और सब मारे गये[१]। परमानंददास ने भी कृष्ण-बलराम द्वारा अनेक मल्लों के पछाड़े जाने की बात कही है[२]। इससे यह मानना ही पड़ता है कि गोकुल-वृन्दावन में उन्होंने मल्ल-विद्या का अभ्यास अवश्य किया होगा। वहाँ उनकी यह क्रीड़ा मनोरंजन के साथ-साथ बल-वृद्धि के लिए ही होगी जिसका लाभ उन्हें आगे चलकर सहज ही प्राप्त हो गया।

९७. जब उन कह्यौ 'मल्ल-क्रीड़ा तुम करत गोप के संग'।
'बृंदाबन में हम सुनियत हैं क्रीड़त हौ बहुरंग'—सारा० ५१६।

९८. तब 'हरि भिरे मल्ल-क्रीड़ा करि बहु बिधि दाँव देखाये'—सारा० ५२१।

९९. 'मल्ल-जुद्ध हरि करि' गोपनि सों 'लखि फूले ब्रजराज'—सारा० ५२३।

१००. 'काल सौं भिरैं हम, कौन तुम बापुरे'—सा० ३०७२।

१. स्याम चानूर, बलबीर मुष्टिक भिरे, 'सीस सौं सीस, भुज-भुज मिलावैं'।
'वै उन्हैं गहत वै दौरि उनकौं गहत, करत बल-छल नहीं दाँव पावैं'॥
धरि पछारयौ दुहूँ बीर 'दुहूँ मल्ल कौं हरषि कह्यौ हते ये नँद दुहाई।
सूर-प्रभु परस लहि, लह्यौ निरबान पद, सुरनि आकास जय धुनि सुनाई।
—सा० ३०७२।

२.क. तोरयौ धनुष कुबलया मारयौ चारयौ 'मल्ल पछारे'—परमा० ४९९।
ख. 'मल्ल पछारि' कंस सिर तोरयो नौतन भूषन साजे—परमा० ५११।
ग. रंगभूमि में 'मल्ल पछारे' कंस बाहु बल मारयो—परमा० ५१२।

लंका-वर्णन में रावण के योद्धाओं की चर्चा भी 'सूरसागर' में मिलती है, और वे लोग ठौर-ठौर कुंत-असि-बान का अभ्यास करते हैं[३]।

२. *मृगया*—'चौगान' की तरह मृगया भी साधनसंपन्न वर्ग[४] के मनोरंजन का साधन है जिसके लिए व्यक्ति में पर्याप्त साहस भी चाहिए। आरंभ में 'मृगया' के नाम पर पशुओं के साथ पक्षियों का भी शिकार खेला जाता था;[५] परंतु अष्टछाप-काव्य में 'मृगया' के अंतर्गत केवल मृग आदि के आखेट का ही उल्लेख हुआ है[६]। पक्षियों को मारने या जाल में फँसानेवाले को 'पारधि' या 'पारधी'[७] और 'ब्याध'[८] आदि कहा जाता है। मृगया के लिए जानेवाले व्यक्ति या 'अहेरी' कभी घोड़े पर चढ़कर जाते हैं, कभी रथ पर। 'सारावली' में वसुदेवकुमार के अश्व पर चढ़चर 'मृगया' के लिए जाने का उल्लेख हुआ है[९] तो 'सूरसागर' में एक राजा रथ पर आखेट के लिए जाता है[१०]। नंददास की 'रूपमंजरी' में धर्मराव नामक राजा ऐसा अहेरी है कि उसका कौतुक देखकर सबको अचरज होता है[११]। 'सारावली' में दशरथ-पुत्र राम अपने भाइयों के साथ 'हरिन' आदि

३. ठौर-ठौर 'अभ्यास महाबल करत कुंत-असि-बान'—सा० ६-७४।

४. 'वाल्मीकि रामायण' के अनुसार मृगया राजाओं की क्रीड़ा थी—४-१८-३८-४० तथा राजर्षियों के विनोदार्थ उसका प्रचलन हुआ था २-४६-१६।

५. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि' में शिकारी के लिए 'मार्गिक' और 'पाक्षिक' या 'शाकुनिक' शब्द प्रयुक्त हुए हैं। प्रथम का अर्थ है 'मृग आदि पशुओं का मारनेवाला' और द्वितीय का अर्थ है 'पक्षियों को मारने वाला'—पृ० १६०।

६. कुबुधि-'कमान चढ़ाइ' कोप करि, बुधि-तरकस रितयौ।
'सदा सिकार करत मृग'-मन कौं, रहत मगन भुरयौ—सा० १-६४।

७. अब कैं राखि लेहु भगवान।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम-डरिया, 'पारधि' साधे बान।

× × ×

सुमिरत ही अहि डस्यौ 'पारधी', कर छूट्यौ संधान—सा० १-६७।

८. बिषम जाल बल बाँधि 'ब्याध' लौं, नृप 'खग' अवलि बटोरी—सा० ४२१६।

९. कहुँ 'मृगया' को चले 'अस्व चढ़ि' श्रीबसुदेवकुमार—सारा० ६६५।

१०. जब 'अखेट' पर इच्छा होइ, तब रथ साजि चलै पुनि सोइ।
जा बन की नृप इच्छा करै, ताही द्वार होइ निस्सरै—सा० ४-१२।

११. अस 'अहेर नित खेलै' जोई, जो देखै सो अचरज होई—नंद०, रूप०, पृ० ४।

जंतुओं का आखेट करने जाते हैं[१२]। तात्पर्य यह कि अष्टछाप-काव्य में केवल पौराणिक प्रसंगों में 'मृगया', 'अहेर' या 'सिकार' का वर्णन हुआ है; उसमें वसुदेव-कुमार के रुचि लेने की बात केवल 'सारावली' में कही गयी है[१३]।

आ. *बौद्धिक दाँव-पेंच के खेल*—इस वर्ग के अंतर्गत 'चौपड़' और 'द्यूतक्रीड़ा' आते हैं, बैठकर खेले जाने के कारण जिनके लिए अधिक शारीरिक बल की आवश्यकता नहीं होती। 'चौपड़' का खेल प्रायः उनके लिए होता है जिनके पास अधिक अवकाश हो; इस प्रकार यद्यपि निर्धन भी अवकाश के समय 'चौपड़' खेलते हैं, तथापि आर्थिक दृष्टि से मध्यम और धनी वर्गों में यह खेल सामान्यतया अधिक प्रचलित है। 'चौपड़' को 'चौसर' भी कहते हैं[१४] और यह बिसात पर 'पासों' और 'गोटियों' से खेला जाता है। 'चौपड़' खेलने के तीन पासे होते हैं जो प्रायः हाथीदाँत के बने होते हैं। इसके खिलाड़ियों की संख्या सामान्यतया चार होती है। अष्टछापी कवियों में केवल 'सूरदास' ने इस खेल का वर्णन किया है। 'अष्टछाप' के अंतर्गत 'सूरदास की वार्ता' में 'चौपड़' खेलते हुए कुछ व्यक्तियों की चर्चा आयी है[१५]। इसी प्रसंग में सूरदास ने 'चौपड़' खेलने का आदर्श रूप बताते हुए निम्नलिखित पद कहा है—

मन, तू समुझि सोचि बिचारि।
भक्ति बिनु भगवन्त दुर्लभ कहत निगम पुकारि॥
साधु संगति डारि 'पासा' फेरि रसना 'सारि'।
'दाँव' अबके परयौ पूरौ उतरि पेली पारि॥
राखि 'सत्रह' सुनि 'अठारह', पंच ही को मारि।
दूरि तें तजि 'तीनि' काने, चतुर 'चौक' बिचारि॥

१२. कबहुँक चार भ्रात मिलि 'मृगया जात' परम सुख पावत।
'हरिनि आदि बहु जंतु किये बध' निज सुर-लोक पठावत—सारा० १६१।

१३. 'कहुँ मृगया को चले अस्व चढ़ि श्रीबसुदेव कुमार'—सारा० ६६५।

१४. श्री रामचन्द्र वर्मा, 'प्रामाणिक हिंदी कोश', पृ० ४२२।

१५. 'और एक समय सूरदास जी मार्ग में चले जाते हते। सो मार्ग में कोऊ (दस पाँच जने) 'चोपडि खेलत हते। सो वा चोपडि के खेल में ऐसे लीन ह्वै रहे, जो काहू आवते जावते की खबरि नाहीं। एसे खेल में मगन हे।
—'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ३८।

काम-क्रोध जंजाल भूल्यौ, ठग्यो ठगिनी नारि।
'सूर' हरि के भजन बिनु चल्यो दोउ कर झारि[16] ॥

'सूरसागर' के एक अन्य पद में 'चौपड़' खेलने का विस्तृत वर्णन है जिसमें 'पाँसों' से पड़नेवाले विविध अंकों का अध्यात्मपरक अर्थ लगाया जा सकता है[17] जैसे 'पाँच' का अंक अर्थात् पंचशर कामदेव से पीड़ित होना, 'सात' अर्थात् सात द्वीप या सात द्वीपवती पृथ्वी, 'आठ' अर्थात् आठों पहर तथा आठ 'सिद्धियाँ', 'नौ' अर्थात् नौ द्वारवाला शरीर, 'दस' अर्थात् दस दिशाएँ, 'ग्यारह' अर्थात् पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ और एक मन, 'बारह' अर्थात् बारह महीने जिसका तात्पर्य हुआ 'सर्वदा', 'तेरह' अर्थात् स्वर्ण-साधना की तेरह युक्तियाँ, 'चौदह' अर्थात् चौदहों भुवन, 'पंद्रह' अर्थात् पाँच कर्मेंद्रियाँ, पाँच ज्ञानेंद्रियाँ एवं रूप, रस, गंध, शब्द तथा स्पर्श; 'सोलह' अर्थात् सोलहों शृंगार से युक्त षोडशवर्षीया युवती आदि[18]। 'सारावली' में 'चौपड़' खेलने का उल्लेख तीन छंदों में मिलता है जिनमें

१६. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ३६।
१७. 'सूर-विनयपत्रिका', गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ० ७८-७६।
१८. 'चौपरि जगत मड़े जुग बीते'।
गुन 'पाँसे', क्रम 'अंक', चारि गति 'सारि' न कबहूँ जीते।
चारि पसार दिसानि, मनोरथ 'घर', फिरि-फिरि गिनि आनै।
काम-क्रोध-मद-संग मूढ़ मन खेलत हार न मानै।
बाल-बिनोद बचन हित अनहित बार-बार मुख भाखै।
मानौ बग बगदाइ प्रथम दिसि 'आठ-सात-दस' नाखै।
'षोड़स' जुक्ति, जुवति चित षोड़स, षोड़स बरस निहारै।
षोड़स अंगनि मिलि प्रजंक पै 'छ-दस' अंक फिरि डारै।
'पंद्रह' पित्र-काज, 'चौदह' दस-चारि पठे सर साँधे।
'तेरह' रतन कनक रुचि 'द्वादस' अटन जरा जग बाँधे।
नहिं रुचि पंथ, पयादि डरनि छकि पंच 'एकादस' ठानै।
'नौ दस आठ' प्रकृति तृष्ना सुख सदन 'सात' संधानै।
'पंजा' पंच प्रपंच नारि-पर भजत, 'सारि' फिरि मारी।
'चौक' चबाउ भरे दुबिधा छकि रसना रुचि धारी।
बाल, किसोर, तरुन, जर, जुग सो सुपक 'सारि' ढिग ढारी।
सूर एक 'पौ' नाम बिना नर फिरि-फिरि 'बाजी हारी'—सा० १-६०।

से प्रथम दो में अनेक युवतियों के साथ द्वारकावासी श्रीकृष्ण के 'चौपड़' खेलने की बात है[१९] और तीसरे में युधिष्ठिर का उस खेल में लगा होना बताया गया है[२०]।

द्यूतक्रीड़ा—यों तो किसी भी खेल को लेकर 'दाँव' बदकर उसे 'द्यूत' का रूप दिया जा सकता है, जैसा कि ऊपर उद्धृत अंतिम उदाहरण से स्पष्ट है जिसमें 'चौपड़' के खेल को युधिष्ठिर 'द्यूत' मानकर ही खेलते हैं, तथापि सामान्यतया 'द्यूत' से तात्पर्य 'बाजी' बदकर 'पाँसे' फेंकने या 'चाल' चलने से है जिसमें तत्काल हार-जीत हो जाती है[२१]। जुए के खेल से यद्यपि मनोरंजन होता है, तथापि हार-जीत के आवेश में कभी-कभी ऐसी हानि भी हो जाती है जिसके लिए व्यक्ति को अनेकानेक कष्ट भोगने पड़ते हैं और जीवन भर पछताना पड़ता है; फिर भी, संभवतः जीत जाने के लोभ से, 'द्यूत' का चलन समाज में सदा से रहा है। यों तो निम्न वर्ग के व्यक्ति भी 'द्यूत' में सर्वत्र लगे दिखायी देते हैं, तथापि

१९.क. कहुँ 'चौपर खेलत जुवतिनि सँग' पाँच-सात उच्चार—सारा० ६६५।
ख. 'चौपर खेलत' भवन आपने 'हरि द्वारिका मँझार'।
'पाँसे' डारि परम आतुर सों कीन्हें अनत उचार—सारा० ७६७।

२०. सभा रची 'चौपर क्रीड़ा' करि कपट कियौ अति भारी।
जीति जुधिष्ठिर भइ सब जानी तउ मन में अधिकारी—सारा० ७६२।

२१.क. 'द्यूत-क्रीड़ा' से संबंधित तीन शब्द 'वाल्मीकि रामायण' में आये हैं—'अक्ष' (२-७५-४१) 'देवन' (५-६-३१) और 'पण' (६-६१-४)। 'अक्ष' का अर्थ है 'पाँसा', 'पासों' से जुआ खेलना 'देवन' कहा जाता था और 'पण' उस वस्तु को कहते थे जो जुए के दाँव पर लगायी जाती थी।
—'डा० शांतिकुमार नानूराम व्यास, 'रामायणकालीन संस्कृति', पृ० १००।
ख. 'अष्टाध्यायी' में 'द्यूत' अथवा 'अक्ष द्यूत' नाम मिलते हैं। 'जुआरी' को 'आक्षिक' कहा गया है। पतंजलि के अनुसार जुए की आदतवाला व्यक्ति 'अक्ष-कितव' या 'अक्ष-धूर्त' था। 'कितव' या जुआरी प्राचीन वैदिक शब्द है। ये शब्द इसी अर्थ में बौद्ध साहित्य तथा 'महाभारत' महापर्व (५८।६) में मिलते हैं। अष्टाध्यायी' तथा 'अर्थशास्त्र' के अनुसार यह खेल 'अक्ष' तथा 'शलाका', दो प्रकार से खेला जाता था। भरहुत के द्यूत चित्रों में 'अक्ष' चौकोर टुकड़ों के रूप में चित्रित है। संस्कृत साहित्य में 'ग्लह' का अर्थ 'दाँव' रहा है, 'चाल' नहीं; वैदिक साहित्य में 'चाल' का ही अर्थ था। शकुनि के विचार से 'ग्लह' के कारण ही 'द्यूत' निंद्य खेलों में गिना जाने लगा।
—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि', पृ० १६१-१६२।

पौराणिक प्रसंगों में, मुख्य रूप से, शासक-वर्ग की ही 'द्यूत-क्रीड़ा' की बात कही गयी है। सूरदास ने दुर्योधन द्वारा 'कपट पाँसों' से युधिष्ठिर को 'द्यूत' या 'जुआ' खिलाकर सब 'भूमि-भंडार', यहाँ तक कि द्रौपदी नारी भी जीत लेने की बात एक पद में कही है[२२]। 'सारावली' में भी चौपड़ के खेल में कपट से ही युधिष्ठिर के हारने का उल्लेख हुआ है[२३]।

'द्यूत' या 'जुए' के खेल को सूरदास सदैव निंदनीय ही समझते रहे, तभी तो उन्होंने व्यर्थ ही जन्म खोने को 'जुए' में हारने जैसा कहा है[२४]। 'जुए' में व्यक्ति चाहे जिस उत्साह से भाग ले, धन-संपत्ति हार जाने पर उसकी दशा बहुत दीन हो जाती है। श्रीकृष्ण को मथुरा में छोड़कर अकेले लौटनेवाले नंद जी की तुलना सूरदास ने हारे हुए 'जुआरी' से की है[२५]। जुए में हारा हुआ 'जुआरी' सदैव सर नीचा किये रहता है, ऊपर देखने या किसी से दृष्टि मिलाने का उसमें साहस नहीं होता, इस बात को भी सूरदास ने लक्ष्य किया है[२६]। सूरदास की दृष्टि में 'द्यूत' या 'जुआ' कितना अधम कर्म था, इसका पता उनके एक और पौराणिक उल्लेख से लगता है। कलियुग जब राजा परीक्षित से अपने निवास-स्थान पूछता है तब उन्होंने उसके पाँच स्थान बताये हैं—जहाँ हरि-विमुख, वेश्या, मद्यप, बधिक और 'जुआ खेलनेवाले' रहते हों, वहाँ वास करो[२७]। तात्पर्य यह कि सूरदास 'जुए' को निंदनीय कर्म समझते हैं और इसलिए विवाह के अवसर की

२२. कौरव 'पासा कपट बनाए', धर्मपुत्र कौं जुआ खिलाए।
तिन 'हारयौ सब भूमि भँडार', हारी बहुरि द्रौपदी नार—सा० १-२४६।

२३. सभा रची 'चौपर क्रीड़ा करि कपट कियो' अति भारी।
जीति जुधिष्ठिर भइ सब जानी तउ मन में अधिकारी—सा० ७६२।

२४. आछो गात अकारथ गारयौ।
करी न प्रीति कमललोचन सौं, 'जनम जुवा ज्यों हारयौ'—सा० १-१०१।

२५. कहौ नंद, कहाँ छाँड़े कुमार।
× × ×
चितवत नंद ठगे से ठाढ़े 'मानो हारे हेम जुआर'—सा० वें० २६७१।

२६. अधोमुख रहत उरध नहिं चितवत 'ज्यौं गथ हारे थकित जुआरी'—सा० वें० ३४२५

२७. कही, हरि बिमुखऽरु बेस्या जहाँ, सुरापान बधिकन गृह तहाँ।
'जूआ खेलत जहाँ जुआरी', ये पाँचौ हैं ठौर तुम्हारी—सा० १-१६०।

'द्यूत-क्रीड़ा' को छोड़कर, जो केवल विनोदार्थ होती है, जिसमें किसी प्रकार की आर्थिक या सांपत्तिक हार-जीत का प्रश्न ही नहीं उठता और जिसके उदाहरण विवाह-संस्कार के वर्णन में पीछे दिये जा चुके हैं, उन्होंने अपने आराध्य अथवा उनके अन्य अवतारी रूपों के 'जुआ' खेलने की बात नहीं लिखी है। अष्टछाप के अन्य कवि भी इस विषय में उनसे ही सहमत जान पड़ते हैं। केवल परमानंददास ने इस प्रसंग में, संभवतः अपनी मौलिकता का परिचय देने के उद्देश्य से, श्रीकृष्ण की 'द्यूतक्रीड़ा' का भी वर्णन दो प्रसंगों में किया है। पहले प्रसंग में दीपमालिकावाली अमावस्या को बलराम के साथ उनको 'द्यूत' खेलने की प्रेरणा परमानंददास देते हैं[२८]। दूसरे प्रसंग में श्रीकृष्ण प्यारी राधा के साथ 'पाँसा' खेलते हैं जिसमें राधा का पहला दाँव पड़ने पर श्याम 'पीत पिछौरी' हार जाते हैं और दूसरे दाँव में मुरली[२९]। 'द्यूतक्रीड़ा' के ये दोनों प्रसंग वस्तुतः शुद्ध विनोद की दृष्टि से लिखे गये हैं।

ग. *कला-कौशल के खेल*—इस वर्ग में संगीत, वाद्ययंत्र और नृत्य-संबंधी मनोरंजन के वे साधन आते हैं जो सभी देशों और सभी कालों में मानवमात्र को प्रिय रहे हैं। वस्तुतः संगीतमय शब्दों में ही आंतरिक उल्लास की अभिव्यक्ति अभीष्ट मनोहारी रूप से हो सकती है और संगीत का वाद्य से अभिन्न संबंध है। इसी प्रकार नृत्य भी मानव के आंतरिक उल्लास की अधिकता का परिचायक है और सदैव से मनोरंजन का लोकप्रिय साधन रहा है[३०]। अष्टछापी कवियों ने सभी सामूहिक उत्सवों और 'रास'-जैसी लीलाओं के अवसर पर संगीत और

२८. आज 'कुहू की राति' माधौ 'दीपमालिका' मंगलचार।
'खेलौ द्यूत सहित संकर्षन' मोहन मूरति नंदकुमार—परमा० २६१।

२९. 'पासा खेलत हैं पिय-प्यारी'।
'पहलौ दाँव' परयौ स्यामा कौ 'पीत पिछौरी हारी'॥
अबकी बेर पिय 'मुरली लगावो' तो खेलो सँग भारी।
'परमानंददास' कौ ठाकुर 'जीती हैं बृषभानु-दुलारी'—परमा० ६३३।

३०. 'वाल्मीकि रामायण' के अनुसार अयोध्या, किष्किंधा, लंका आदि नगरियाँ संगीत से गुंजित रहती थीं। जब पिता की मृत्यु से अनभिज्ञ भरत केकय देश से अयोध्या लौटे, तब नगर में वाद्ययंत्रों की गूँज बंद पाकर उन्हें आश्चर्य हुआ।
—डा० शांतिकुमार नानूराम व्यास, 'रामायणकालीन संस्कृति', पृ० १०२।

वाद्यों के मधुर स्वर[३१] के साथ नृत्य का वर्णन किया है। राजाओं की नृत्यप्रियता तो सर्वविदित है ही और अनेक पौराणिक प्रसंगों में खुले स्थानों में, जिन्हें 'अखारा' कहा गया है, स्त्रियों के नृत्य होने की बात सूरदास आदि कवियों ने लिखी है[३२]। इसी प्रकार दूसरों के सामने अपनी कला का प्रदर्शन करके आजीविका का अर्जन करनेवाले नर्तकों के नृत्य से भी निस्संदेह दूसरों का मनोविनोद होता ही है, जिसके संबंध में 'अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल'[३३] से आरंभ होनेवाले सांग रूपकयुक्त पद में सूरदास ने संकेत किया है। मनोरंजन के इन साधनों के विषय में अष्टछापी कवियों के विचार 'साहित्य और कला' शीर्षक परिच्छेद के अंतर्गत विस्तार से दिये जायँगे।

घ. *मनोरंजन के अन्य साधन*—इस वर्ग के अंतर्गत कुंज-बिहार, जल-बिहार पशु-पक्षी से क्रीड़ा और नट-विद्या आदि मनोरंजन के साधन आते हैं जिनमें से प्रथम तीन में व्यक्ति स्वयं अपना मनोरंजन करने में प्रवृत्त होता है और अंतिम अर्थात् नट-विद्या में दूसरों के प्रदर्शन को दर्शक बन कर देखता है। अष्टछापी कवियों ने मनोरंजन के इन सभी साधनों की यत्र-तत्र चर्चा की है।

अ. *कुंज-विहार*—जिस प्रकार बड़े-बड़े नगरों में आजकल उद्यान या 'पार्क' रहते हैं जहाँ भ्रमणार्थ स्त्री-पुरुष जाया करते हैं, उसी प्रकार पूर्वकालीन नगरों के बाहर भी उद्यान-कुंज आदि बनाये जाते थे जहाँ नर-नारी क्रीड़ार्थ एकत्र हुआ करते थे[३४]। अष्टछाप-काव्य के अनुसार, वृन्दावन में यमुना-तटवर्ती अनेक कुंजों

३१. 'ताल मृदंग संगीत बजत' है तत थेई बोलत बाल।
उरप तिरप तान लेत नट नागर गंधर्व गुनी रसाल—परमा० २२३।

३२. तहाँ देखि अप्सरा अखारा, नृपति नहीं कछु बचन उचारा—सा० ९-४।

३३. अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा सब्द रसाल।
भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगति चाल।
तृषना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल।
माया कौ कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दियौ भाल।
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल—सा० १-१५३।

३४. 'वाल्मीकि रामायण' में भी उद्यानों तथा कुंजों का उल्लेख हुआ है। केकय देश

में भाँति-भाँति के फूल खिले रहते हैं और शीतल-मंद-सुगंध पवन बहती रहती है[३५]। सारस, हंस, मोर, पारावत आदि भाँति-भाँति के पक्षियों की बोलियों से ये कुंज सदैव गुंजायमान रहते हैं[३६]। ऐसी रमणीय कुंजों का उल्लेख समस्त अष्टछाप-काव्य में, मुख्यत: संयोग-लीला के प्रसंग में, हुआ है जहाँ श्रीकृष्ण, राधा तथा अन्य गोपियों के साथ नित्य आमोद-प्रमोद और विहार किया करते हैं[३७]।

आ. जल-विहार—यों तो शीतप्रधान देशों के निवासी भी तैरने का आनंद लिया करते हैं, परंतु भारत-जैसे गरम देश में तो जल-विहार एक प्रकार से जीवन-चर्या का प्रमुख अंग है। भारतीय धर्म-चर्या में नदी के स्नान को महत्वपूर्ण स्थान भी इसी कारण दिया गया है। भारतीय संस्कृति का जन्म और विकास भी नदियों के तटवर्ती नगरों में ही मुख्य रूप से हुआ है। अष्टछाप के आराध्य श्रीकृष्ण की लीला-भूमि वृन्दावन भी श्याम सलिलवती यमुना नदी के किनारे बसा है और इसलिए जलविहार या जल-क्रीड़ा भी श्रीकृष्ण के मनोरंजन के मुख्य साधनों में वर्णित है। छोटे-छोटे बालकों को नदी में स्नान करने का बड़ा चाव रहता है और बालक कृष्ण भी प्रारंभ से ही इसमें रुचि लेता रहा है; परंतु माता-पिता ममतावश किसी अनिष्ट की आशंका से उसे नदी में नहाने से रोकते रहते हैं। यही कारण है कि जब बालक कृष्ण माता से गाय चराने जाने की आज्ञा माँगता है तब पहले ही जमुना-जल में न नहाने की बात शपथपूर्वक कह देता है[३८]। श्रीकृष्ण का यह कथन

से लौटने पर भरत ने उन उद्यानों को जहाँ प्रणयीजन क्रीड़ार्थ एकत्र होते थे, निरानंद, सूना और बीरान पाया था।

—डा० शांतिकुमार नानूराम व्यास, 'रामायणकालीन संस्कृति', पृ० १०६।

३५. तैसोई तरनि-तनया तीर तैसोई 'सीतल सुगंध मंद बहत पवन' तैसेई 'सघन फूली जुही निवारी'॥

तैसेई 'प्रफुलित बनराजीव' तैसेई अलिकुल राजै री—गोविं० ३६७।

३६. 'सारस, हंस, मोर, पारावत बोलत अमृत बानि—सारा० ६३२।

३७.क. 'नवल निकुंज' नवल नवला मिलि नवल निकेतन रुचिर बनाए।

बिलसत 'बिपिन बिलास बिबिध' बर बारिज-बदन बिकच सचु पाए—सा० १६८७।

ख. 'कुंज-घर' श्री स्याम स्यामा, बैठे करत बिहार—सा० २४६४।

ग. कुंजभवन में मंगलचार—परमा० ३१८।

३८. सूरदास है साखि 'जमुन-जल सौंह देहु जु नहैहौं—सा० ४२२।

परोक्ष रूप से सूचित करता है कि बाल्यकाल से ही उसकी रुचि जमुना-स्नान के प्रति थी और माता यशोदा भी उसकी इस रुचि से परिचित हो गयी थीं।

आगे चलकर तो जल-विहार में श्रीकृष्ण का मन खूब ही रमता है। ग्वालबालों और गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की जल-क्रीड़ा का वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने अनेक स्थलों पर किया है। रासलीला के पश्चात् 'रास-रस से श्रमित' व्रजबालाओं के साथ श्रीकृष्ण प्रातः जमुना-तट पर आते हैं[३९] और जल-विहार प्रारंभ होता है। श्याम-श्यामा जमुना में विहार करते और परस्पर जल छिड़कते हुए अत्यंत सुशोभित होते हैं[४०]। इस क्रीड़ा में मग्न राधा की कंचुकी के बंद छूट जाते हैं, उसकी गीली लटें इधर-उधर लटकने लगती हैं, सिंदूर फैल जाता है, किंकिणी ढीली हो जाती है[४१]। गीला वस्त्र उसके शरीर से लिपटा हुआ है[४२]। जल-क्रीड़ा के बीच श्याम-श्यामा परस्पर गलबहियाँ डालकर खड़े होते हैं। सभी व्रज-बालाएँ भी जल में ही हैं, कोई जाँघ तक, कोई कमर तक, कोई हृदय और कोई गले तक जल में खड़ी है[४३]। श्रीकृष्ण, राधा तथा व्रजबालाओं के शरीरों से मलयज, कुंकुमा आदि छूटकर जमुना-जल में मिल गया है[४४] और तट पर भी उसकी 'कीच'

३९. 'रास रस स्रमित भई ब्रजबाल'।
निसि सुख दै जमुना-तट लै गए, भोर भयो तिहिं काल—सा० ११५६।

४०. स्यामा स्याम सुभग जमुना-जल निभ्रम करत बिहार।
पीत कमल इन्दीवर पर मनु भोर भएँ नीहार।
श्री राधा अंबुज कर भरि-भरि 'छिरकति-बारंबार'।
कनक-लता मकरंद झरत मनु, हालत पवन सँचार—सा० ११५९।

४१. राधे छिरकति छींट छबीली।
कुच कुंकुम 'कंचुकि-बंद छूटे, लटकि रही लट गीली'।
'बंदन सिर' ताटंक गंड पर, 'रतन जटित मनि नीली'।
गति गयंद, मृगराज सुकटि पर, 'सोभित किंकिनि' ढीली।
मच्यौ खेल जमुना-जल-अंतर, प्रेम मुदित रस-झीली—सा० ११६०।

४२. 'भीजि पट लपट्यौ' सुभग उर—सा० ११६१।

४३. बिहरत हैं जमुना-जल स्याम।
'राजत हैं दोउ बाहँजोरी', दंपति अरु ब्रज-बाम।
कोउ ठाढ़ी जल जानु जंघ लौं, कोउ कटि हिरदय ग्रीव—सा० ११६२।

४४. 'मलयज पंक कुंकुमा मिलि कै जल-जमुना इक रंग'—सा० ११६२।

सी हो गयी है[४५]।

'रासपंचाध्यायी' में नंददास ने भी श्रीकृष्ण और गोपियों के जल-विहार का वर्णन किया है। गोपियों के साथ श्रीकृष्ण उन्हें 'तरुणी करिनी सहित गजराज'-से जान पड़ते हैं[४६]। वे परस्पर जल भी छिड़कते हैं[४७]। जल में लुकती, छिपती और खेलती हुई गोपियाँ बादलों में चमकती बिजलियाँ सी जान पड़ती हैं[४८]। भीगे हुए वस्त्रों के शरीर से लिपट जाने की शोभा का वर्णन करने में कवि अपने को असमर्थ पाता है और गीले वस्त्रों को निचोड़ने से गिरता हुआ जल ऐसा प्रतीत होता है जैसे उस सुन्दर शरीर से बिछुड़ने की पीड़ा पर वे आँसू बहा रहे हों[४९]।

अष्टछाप के अन्य कवियों ने श्रीकृष्ण और गोपियों के जल-विहार का इतना विस्तृत वर्णन नहीं किया है, परंतु तद्विषयक उल्लेख उनके काव्यों में भी मिलते हैं। परमानंददास ने गोपाल की जल-क्रीड़ा के समय ग्वाल-बालों के उछलने-कूदने और हँसने-हँसाने की बात लिखी है[५०]। इसी प्रकार गोविंदस्वामी ने श्याम-श्यामा के परस्पर छींटे फेंककर विविध केलि करने और गीले वस्त्रों से शरीर की अनुपम शोभा होने की बात कही है[५१]।

४५. 'चंदन अंग कुंकुमा छूटत', जल मिलि 'तट भई कीच'—सा० ११६३।

४६. धाय जमुन-जल धँसे लसे छबि परति न बरनी।
बिहरत मनु 'गज-राज संग लिये तरुनी करिनी'—नंद०, रास०, पंचम० २६।

४७. छिरकत 'छैली छैल जमुन-जल अंजलि भरि भरि'—नंद०, रास०, पंचम० २८।

४८. जमुना-जल मैं दुरि दुरि 'कामिनि करत कलोलैं'।
मानौ नव 'घन मध्य दामिनी दमकत डोलैं—नंद०, रास०, पंचम० २९।

४९. भीजि बसन तन लिपटि निपट छबि अंकित है अस,
'नैननि कैं नहिं बैन बैन कै नैन नहीं जस'।
नीर निचोरत जुवतिनि देखि अधीर भये मनु,
तन बिछुरनि की 'पीर चीर रोवत अँसुवनि जनु'—नंद०, रास०, पंचम० ३१।

५०.क. करत गोपाल 'जमुन-जल क्रीड़ा'—परमा० ७३८।
ख. लाल कौ 'छिरकत है ब्रजबाल'।
जमुना जल उछलत 'चहुँ दिसि तैं हँसत हँसावत ग्वाल—परमा० ७६६।

५१. 'गोबिंद छिरकत छींट अनूप'।

जल-विहार का एक अंग नौका-विहार भी है जिसकी ओर केवल परमानंददास ने दो पदों में संकेत किया है[५२]। अन्य कवि इस संबंध में मौन हैं।

इ. *पशु-पक्षियों से क्रीड़ा*—मानव का आमोदप्रिय हृदय पशु-पक्षियों की विविध क्रीड़ाओं से भी अपना मनोरंजन करता रहा है। अष्टछापी कवियों ने श्रीकृष्ण का संबंध पशुओं में केवल गायों से दिखाया है जिनको वे बड़े दुलार से चराते हैं और जिनकी याद उनको मथुरा चले जाने पर भी बराबर बनी रहती है; तभी तो वे ऊधव के द्वारा पिता नंद से कहलाते हैं कि मेरी अनुपस्थिति में 'धौरी-धूमरि गैयौं' को किसी तरह का दुख न हो[५३]। गायें भी श्रीकृष्ण से इतना हिली थीं कि उनके मथुरा चले जाने पर सगे संबंधियों के समान ही वियोग-दुख का अनुभव करती रही थीं[५४]। इसी प्रकार 'सुवा पढ़ावत गनिका तारी'[५५] जैसी उक्तियों से यह तो स्पष्ट होता है कि तोता, मैना-जैसे पक्षियों को पालना और उनको 'पढ़ाना' मनोरंजन के सामान्य साधनों में था, जिसकी ओर परमानंददास ने भी एक पद में

उत बृषभानु-नंदिनी राजत इत घनस्याम स्वरूप।
पावन जल जमुना कौ निरमल करत बिबिध रस-केलि।
'सजल बसन सोभित अंगनि मैं उठत तरंगनि रेलि—गोविं० १६६।

५२.क. बैठे घनस्याम सुंदर 'खेवत हैं नाव'—परमा० ७४४।
ख. जमुना-जल 'खेवत हैं हरि नाव'—परमा० ७४५।

५३. अरु जब मिल्यौ नंद बाबा सौं, तब कहियौ समुझाइ।
तौ लौं दुखी होन नहि पावैं, धौरी धूमरि गाइ—सा० ३४३८।

५४.क. धेनु नाहिं पय स्रवतिं रुचिर मुख चरतिं नाहिं तृन कंद—सा० ३१५७।
ख. ऊधौ, इतनी कहियौ जाइ।
अति कृस गात भई ये तुम बिनु, 'परम दुखारी गाइ'।
जल समूह बरसतिं दोउ अँखियाँ, 'हूँकति लीन्हैं नाउँ'।
जहाँ-जहाँ गो-दोहन कीन्हौ, 'सूँघतिं सोई ठाउँ'।
'परतिं पछार खाइ छिन ही छिन', अति आतुर ह्वै दीन।
मानहु सूर काढ़ि डारी हैं, बारि मध्य तैं मीन—सा० ४०७०।
ग. इनि 'गाइनि चरिबौ छाँड़्यौ है' जौ नहिं लाल चरैहैं—सा० ४०८७।

५५. को को न तरयौ हरि नाम लिऐं।
सुवा पढ़ावत गनिका तारी, ब्याध तरयौ सर घात किऐं—सा० ८९।

संकेत किया है;[५६] परन्तु किसी अष्टछापी कवि ने श्रीकृष्ण द्वारा पक्षियों के पाले जाने की बात नहीं कही है। 'सूरसागर' के एक पद में अवश्य 'ग्वाल-मंडली' द्वारा 'खगों' के खिलाये जाने का उल्लेख हुआ है[५७] जिससे पक्षियों के द्वारा भी कुछ देर मनोरंजन होने की बात की पुष्टि होती है।

ई. *नट-विद्या*—इस शीर्षक के अंतर्गत वे बातें आती हैं जिनका आनंद दर्शक बनकर ही लिया जा सकता है। बाजीगर और नट के खेल इसी वर्ग में आते हैं जिनसे दर्शकों का मन बहलाकर ये लोग आजीविका का अर्जन करते हैं। अष्टछाप-काव्य में 'बाजीगर' और नट'[५८] का उल्लेख मात्र हुआ है। नंददास के 'अनेकार्थ-मंजरी' नामक काव्य में 'भगर विद्या' का एक स्थान पर उल्लेख हुआ है[५९] जिसका संकेत संभवत: 'इंद्रजाल' की ओर ही है। अन्य अष्टछापी कवियों ने इसकी चर्चा नहीं की है।

समीक्षा—बालकों, किशोरों और युवकों के उक्त सभी खेलों के संबंध में दो बातें ध्यान में रखने की हैं जिनका संबंध भारतीय संस्कृति से है। पहली बात यह है कि दौड़-धूप के फुटबाल, हाकी आदि नवीनतम खेलों के समान ही सहकारिता की भावना का विकास करने का गुण अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित उक्त भारतीय खेलों में भी कम नहीं है; क्योंकि खिलाड़ियों को दो दलों में बाँटने का प्रश्न आते ही सहयोग के भाव का जन्म स्वत: हो जाता है। परंतु आधुनिक विदेशी खेलों से एक दूसरी बात में ये भारतीय खेल बढ़े-चढ़े हैं और वह यह है कि भारतीय खेल हाकी, क्रिकेट-जैसे विदेशी खेलों की तरह अधिक व्यय-साध्य नहीं होते और निर्धन से निर्धन वर्ग के बालक उनमें सहज ही साधिकार भाग ले सकते हैं। 'बटा-चौगान' का राजसी खेल अवश्य ऐसे खेलों में है जिसको सामान्य व्यक्ति नहीं खेल सकते। घोड़ों पर चढ़कर खेला जानेवाला यह खेल वास्तव में धनी वर्ग के लिए ही है और

५६. 'सुआ पढ़ावति सारँगनैनी'।
बदति सँकेत लाल गिरिधर सौं गुरुजन निकट गुपति मति कैनी—परमा० काँक०८४१।
५७. नाहिन मोर बकत पिक दादुर, 'ग्वाल मंडली खगनि खिलावति'—सा० ४१४६।
५८.क. कै कहुँ रंग कहूँ ईस्वरता 'नट बाजीगर जैसे'—सा० १-२६३।
ख. ज्यौं बहु कला काछि दिखरावै 'लोभ न छूटत नट कैं'—सा० १-२९२।
५९. जाल भगर-बिद्या जगत दिखि न भूलि नँदनंद—नंद० अनेकार्थ० १०४।

श्रीकृष्ण भी उसको तभी खेलते हैं जब उनका ऐश्वर्य चक्रवर्ती सम्राटों से भी बढ़कर हो जाता है; अस्तु । इन भारतीय खेलों की तीसरी विशेषता उनके नियमों की सरलता में मानी जा सकती है । जटिल या सूक्ष्म नियमों वाले खेलों में खिलाड़ियों के लिए असंतोषदायी स्थल और अवसर बार-बार आते हैं । सरल नियमों वाले खेल, इसके विपरीत, परस्पर प्रीति बढ़ानेवाले सिद्ध हो सकते हैं ।

स्वयं परम भक्त होने के कारण अष्टछापो कवि तो मनोविनोद के उक्त साधनों में से किसी में भाग लेना समय का अपव्यय ही समझते थे; जैसा कि पीछे उद्धृत चौपड़ खेलते हुए व्यक्तियों के संबंध में सूरदास के कथन से सूचित होता है,[६०] परंतु अपने आराध्य को अनेक खेलों में भाग लेते दिखाना उन्हें निस्संदेह रुचिकर रहा है । इससे स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति के पुजारी वे अष्टछापी कवि जीवन में मनोविनोद का महत्व भली-भाँति समझते थे और इस दृष्टि से उनके विचारों का अध्ययन भी मनोरंजन का एक रोचक साधन माना जा सकता है ।

२. पर्वोत्सव—

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पारलौकिक जीवन पर सदैव दृष्टि रखते हुए भी भारतवासियों ने लौकिक जीवन की कभी उपेक्षा नहीं की; और ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि उनकी परलोक-विषयक धारणाओं के मूल में भी इहलोक के जीवन की सुख-समृद्धि-वृद्धि करना ही रहा है । भारतीय सामाजिक जीवन में 'पर्वोत्सवों' की अधिकता से भी सूचित होता है कि जहाँ एक ओर जीवन की व्यस्तता-जनित क्लांति के अनुभव से बचने के लिए वे अनेक प्रकार के 'पर्वोत्सवों' में सोल्लास भाग लेते हैं, वहाँ दूसरी ओर इनकी योजना से सामाजिक सहकारिता की भावना की भी वृद्धि होती है । 'पर्वोत्सवों' के अवसर पर अच्छा खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, सजने-सजाने का भी चलन सदा से रहा है । इससे भारतीय समाज की समृद्धि का परिचय तो मिलता ही है, अर्जित और संचित धन-वैभव के सार्वजनिक प्रदर्शन द्वारा दूसरों को उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने की प्रेरणा भी देता है ।

अष्टछाप-काव्य में जिन 'पर्वोत्सवों' का वर्णन मिलता है, स्थूल रूप से, उनको

६०. देखिए इसी प्रबंध के पृष्ठ २५५ की पाद-टिप्पणी १५—लेखिका ।

तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. ऋतूत्सव, ख. लीलावतारोत्सव और ग. अन्योत्सव।

क. *ऋतूत्सव*—वर्ष की छहों ऋतुओं में मनाये जानेवाले छह उत्सव—ग्रीष्म में 'फूलमंडली', वर्षा में 'हिंडोरा', शरद में 'रास', हेमंत में 'देवि-प्रबोधिनी', शिशिर में 'होली' और वसंत में 'डोल'—इस वर्ग में आते हैं। इनमें से 'होली' की चर्चा तो 'त्योहारों' के अंतर्गत की जायगी; शेष उत्सवों के मनाये जाने का अष्टछाप-काव्य में जो वर्णन हुआ है, उसका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है।

अ. *फूलमंडली*—ग्रीष्म ऋतु के इस उत्सव में राधा-कृष्ण और उनकी किशोरी सखियाँ बड़े उत्साह से भाग लेती हैं। जैसा नाम से स्पष्ट है, इस उत्सव में फूलों की ही प्रधानता रहती है। राधा के चोली, चोलना आदि वस्त्र और हार, 'कंकन', 'बिजाइठे' 'चौकी' आदि आभूषण फूलों के ही हैं[६१]। मदनगोपाल को रिझाने के लिए ही राधा का इस प्रकार का फूलों से शृंगार सखियों ने किया है[६२]। श्रीकृष्ण भी फूलों के ही 'बागे', 'पाग' और आभूषण धारण करते हैं[६३]। इस प्रकार फूलों के वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर श्रीकृष्ण कभी तो 'फूलों के चौबारे' में बैठते हैं,[६४] कभी 'चौखंडी',[६५] कभी 'तिबारी'[६६] और कभी 'फूलों' के खंभेवाले 'फूलों' के भवन में, 'फूलों' ही की सेज पर 'फूलों' के गेंदुआ-तकिया लगाये प्रियतमा राधा के साथ बैठकर शोभित होते हैं[६७]। 'फूलों' की तिबारी के 'झरोखे' और

६१.क. फूलनि की 'चोली', फूलनि के 'चोलना'—परमा० ७७०।
   ख. फूलनि के बसन-आभूषन बिराजें, 'फूलनि के फोंदा, फूल उर हार हैं'।
   —नंद० परि० ४५।
   ग. फूलनि के 'फोंदा रचि गूँथे फूलनि ही की माल' बनाई।
   फूलनि 'के कंकन बिजाइठे' फूलनि की चौकी ढरकाई—चतु० १०३।
६२. फूल सिंगार प्यारी तन सोहत 'मदन गोपाल रीझिबे काजें'—छीत० ६१।
६३. 'फूलनि के बागे' अरु भूषन 'फूलनि ही की पाग' सँवारी—चतु० १०४।
६४. बैठे लाल 'फूलनि के चौबारे'—कुंभन० ८१।
६५.क. बैठे लाल 'फूलनि की चौखंडी'—चतु० १०२।
   ख. अति बिचित्र 'फूलनि की चौखंडी' बैठे तहाँ रसिक गिरिधारी—चतु० १००।
६६. बैठे लाल 'फूलनि की तिबारी'—चतु० १०४।
६७. 'फूलनि की मंडनी' मनोहर बैठे तहाँ रसिक पिय-प्यारी।

उसकी 'अटारी' भी फूलों की है[६८]। वस्तुतः 'फूलों' के बीच, 'फूलों'-से फूले सखा-सखियों के साथ, 'फूल' से सुंदर और सुकुमार राधा-कृष्ण की सरस लीला सारे वातावरण को 'फूल'-सा प्रफुल्लित कर देती है[६९]।

आ. हिंडोरा—'हिंडोरे' का उत्सव वर्षा के आगमन पर मनाया जाता है। यमुना-तटवर्ती कुंजों में 'हिंडोला' डालकर किशोर-किशोरियाँ, सभी झूला झूलते हैं। अष्टछाप-काव्य में कृष्ण और अन्य गोप बालकों का गोपियों के साथ 'हिंडोरा' झूलने का उल्लेख मिलता है। परमानंददास के अनुसार उनके 'हिंडोरे' के खम्भे रत्न-जटित हैं तथा मरुआ और पटुली कंचन की हैं[७०]। वस्तुतः सावन मास में चारों तरफ हरियाली छा जाती है, चातक बोलने लगते हैं, कभी हल्की फुहार पड़ती है और कभी मेघों का मंद गर्जन होता है। ऐसे मनोहारी समय और वातावरण में कुंभनदास के कृष्ण और राधा मणिजटित पटली पर बड़े आनंद से 'हिंडोले' में झूलते हैं[७१]। चतुर्भुजदास ने झूले की चार 'डाँडियों' के बीच हेमजटित चौकी

सोभित सबै साज नाना बिधि 'फूलनि कौ भवन' परम रुचिकारी।
'फूल के थंभ फूल की चौखटि फूलनि बनी है सुदेस तिबारी।
'फूलनि के झूमका झरौखा', फूलनि के छाजे छबि भारी।
सघन फूल चहुँ ओर कँगूरनि 'फूलनि बंदनवार' सँवारी।
'फूलनि के कलसा' अति सोभित 'फूलनि सजी बिचित्र चित्रसारी'।
'फूल की सेज' गेंदुवा तकिया 'फूलनि की माला' मनुहारी।
'चत्रभुजदास' प्रफुलित राधा रस-फूले गोबर्धनधारी—चतु० ६६।

६८. 'फूलनि' के छाजे झरोखा अरु 'फूलनि' की सजी अटारी—चतु० १०४।

६९. 'फूलनि' की बर मंडनी मंडित फूल हियें पिय अंग लसे हैं।
'फूल की सेज' आभूषन फूल के फूल के कोटिक कमल लसे हैं।
फूलि बढ़ी अब दास 'चतुर्भुज' सखि सुख फूलि हिये बिलसे हैं।
फूली निसा ससि फूलि रहे गिरिधारी जु आपुन कुंज बसे हैं—चतु० १०१।

७०. 'रतन जटित के खम्भ' दोऊ लगे प्रबालहिं लाल।
'कंचन को मरुवा' बन्यो पटुली जु परम रसाल।
तन कुसुंभी चीर पहिरें आई सब ब्रज-बाल।
× × ×
गोपी जू हरि संग 'झूलहिं' आनंद सुख के बाल—परमा० ७६२।

७१. 'हिंडोरे हरि झूलत ब्रजनारी।

और मोतियों के झूमक लगे होने का वर्णन किया है[७२]। 'हिंडोरा'-प्रसंग में झूलने और झुलाने के ढंग का भी सुंदर वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। गोविंदस्वामी के अनुसार नारियाँ बड़ी उमंग से झुक-झुक कर लंबे 'झोंटे' देती हैं[७३]। उन्होंने मणिजटित हिंडोरे, पटरी आदि में नहीं, फूलों की डोरीवाले, फूलों के हिंडोरे में, फूलों की पटली आदि पर राधा-कृष्ण को झुलाया है[७४]।

साधारणतया कुंजों में 'हिंडोरा' पड़ने की बात कवियों ने लिखी है, परंतु कृष्णदास के अनुसार नंद-गृह में ही 'हिंडोरा' रोपा गया है जिसमें हीरा, पिरोजा आदि बहुमूल्य रत्न लगे हैं[७५]।

इ. *रास*—शरद ऋतु का सर्वोत्तम उत्सव 'रास' है। 'रास' से तात्पर्य नृत्य-विशेष से है जिसमें स्त्री-पुरुष एक-दूसरे का हाथ पकड़कर सामूहिक रूप से नृत्य करते हैं। 'रास' का वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने किया है, जिनमें सबसे विस्तृत वर्णन सूरदास का है। नृत्य करते हुए राधा-कृष्ण का अत्यंत आकर्षक

सावन मास झुही थोरी, थोरी तैसिये भूमि हरियारी।
नव वन, नव घन, नव चातक पिक, नवल कसूँभी सारी।
नवल किसोर बाम अँग सोभित नव बृषभानु-दुलारी।
कंचन खंभ मनि जटित पेटला, डाँडी सुभग सँवारी—कुंभन० १०८।

७२. डाँडी चारि सुदेस सुहाई चौकी हेम जराए।
× × ×
गरजत गगन दामिनी कौंधति राग मलार जमाए—चतु० ११६।

७३. 'झुकि झुकि झोंटा देत' सुहावनी नारि हो।
रमकति झमकति धमकि रह्यो रँग भारी हो—गोविं० १६६।

७४. 'हिंडोरा फूलनि कौ फूलनि की डोरी', फूले नँदलाल फूली नवल किसोरी।
'फूलनि के खंभ' दोउ 'पटली फूलनि की डाँडी फूलनि की जरावजरी है।
—गोविं० २०६।

७५. 'हिंडोरना हो रोप्यो नंद अवास'। हिंडोरना हो मनिमय भूमि सुवास।
हिंडोरना हो बिस्वकर्मा सूत्रधार। हिंडोरना हो कंचन खंभ-सुढार।
कंचन खंभ सुढार डाँडी लाल भमरा फब रहे।
हीरा पिरोजा कनक मनिमय जोति अति जगमग रहे।
—कृष्ण०, कीर्तन-संग्रह, भाग २, पृ० ३०६।

चित्र 'सूरसागर' में है[७६]। परमानंददास ने गलबहियाँ डाले गोपी-कृष्ण के 'रास' का वर्णन किया है[७७]। नृत्य के साथ ही विविध वाद्यों के बजने की चर्चा अन्य कवियों के साथ गोविंदस्वामी ने भी की है[७८]। चतुर्भुजदास के अनुसार 'रास' करते समय अनेक प्रकार के भाव भी बताये जाते हैं[७९]।

नंददास ने 'रासलीला' का सांगोपांग चित्रण करने के लिए 'रास-पंचाध्यायी' नामक एक काव्य ही लिख डाला है। उसके पंचम अध्याय में रासलीला का वर्णन विस्तार से है। श्रीकृष्ण कमलवत् आसन पर राधा के साथ नृत्य करते हैं[८०]। उनके चारों ओर दो-दो गोपियों के बीच मोहन की एक-एक मूर्ति शोभित है[८१]। नृत्य के समय करतार, मुरली, मृदंग, उपंग, चंग, ताल, वीणा आदि

७६.क. 'नृत्यत स्याम स्यामा-हेत'।
मुकुट-लटकनि, भृकुटि-मटकनि, नारि-मन सुख देत।
कबहुँ चलत सुधंग गति सौं, कबहुँ उघटत बैन।
लोल कुंडल गंडमंडल, चपल नैननि सैन—सा० ११४८।

ख. अरुझी कुंडल लट, बेसरि सौं पीत पट, बनमाल बीच आनि उरझे हैं दोउ जन।
प्राननि सौं प्रान, नैन नैननि अटकि रहे, चटकीली छबि देखि लपटात स्याम घन।
होड़ा-होड़ी नृत्य करैं, रीझि-रीझि अंक भरैं, ता ता थेई थेई उघटत हैं हरषि मन।
सूरदास प्रभु प्यारी, मंडली-जुवति भारी, नारि कौ अंचल लै लै पोंछत हैं स्रमकन।
—सा० ११४६।

७७. रास बिलास गहै कर पल्लव 'इक-इक भुजा ग्रीवा मेली'।
द्वै-द्वै गोपी बिच्च-बिच्च माधव निरतत संग सहेली—परमा० २२८।

७८. नाचत लाल गोपाल रास में सकल ब्रज बधू संगे।
× × ×
ताल मृदंग झाँझ अरु झालरि बाजत सरस सुधंगे—गोविं० ५७।

७९. निर्तत सुलप लेत नूपुर सच बहु बिधि हस्तक भेद दिखावै—चतु० २४।

८०. एक काल 'ब्रज-बाल लाल तहँ चढ़े' जोरि कर।
तिन सन इत उत होत सबै निर्तत विचित्र बर।
मनि-दर्पन सम अवनि रमनि तापर छबि देहीं।
बिलुलित कुंडल, अलक-तिलक झुकि झाईं लेहीं—नंद० रास० ५-४।

८१. कमल-कर्निका मध्य जु स्यामा स्याम बनी छबि।
'द्वै-द्वै गोपिनि बीच जु मोहनलाल' रहे फबि।

वाद्यों की ध्वनि से मिलकर नूपुर, किंकिणि आदि का मधुर स्वर चारों ओर प्रतिध्वनित होता है[८२]। उसी ध्वनि में पद-चालन और करतालों का स्वर मिलाती हुई गोपियों के साथ श्रीकृष्ण, चपलामाला से युक्त घनमंडल-जैसे, जान पड़ते हैं[८३]।

ई. *देव-प्रबोधिनी*—हेमंत ऋतु में दीपावली के बाद एकादशी के दिन 'देव-प्रबोधिनी' का उत्सव और जागरण होता है। अष्टछापी कवियों में इसका वर्णन परमानंददास ने किया है[८४]। उनकी यशोदा इक्षुदंड और पुष्पों का मंडप बनाकर उसके चारों तरफ दिये जलाती, धूप-दीप करके भोग लगाती और रात्रि में जागरण करती हैं। साथ-साथ ताल, पखावज, भेरी, शंख आदि वाद्य भी मधुर ध्वनि से बजते हैं[८५]।

उ. *डोल*—वसंत ऋतु का यह उत्सव फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष में मनाया जाता है। वृन्दावन में 'कालिंदी-कूल' पर चंदन के 'डोल' में बैठकर कभी केवल कृष्ण झूला झूलते हैं, गोपियाँ उन पर अरगजा छिड़कती और आनंद मनाती हैं;[८६] कभी राधा-कृष्ण को विविध वस्त्राभूषण पहनाकर 'डोल' में झुलाया

मूरति एक अनेक देखि अदभुत सोभा अस,
मंजु-मुकुर-मंडल मधि बहु प्रतिबिम्ब बधू जस—नंद० रास० ५-५।

८२. नूपुर, कंकन, किंकिनि, करतल, मंजुल मुरली,
ताल, मृदंग, उपंग, चंग एकै सुर जुरली।
मृदुल मधुर टंकार, ताल, झंकार मिली धुनि,
मधुर जन्त्र की तार भँवर गुंजार रली पुनि—नंद० रास० ५-७।

८३. तैसिय मृदुपद पटकनि चटकनि करतारनि की,
लटकनि, मटकनि, झलकनि, कल कुंडल हारनि की।
साँवर पिय कैं संग नृत्यति यौं ब्रज की बाला,
जनु घन-मंडल-मंजुल खेलति दामिनि-माला—नंद० रास० ५-८।

८४. देव दिवारी 'सुभ एकादसी हरि प्रबोध कीजै' हो आज—परमा० ३०३।

८५. 'देव जगावति जसोदा रानी' बहु उपहार पूजा कै करि कै।
'इच्छु दंड' मंडप पोहपन के चौक चहूँ दिसि 'दीवा धरि कै'।
ताल पखावज भेरि संख धुनि गावति निसि मिलि 'जागरन करि कै'।
धूप दीप करि भोग लगावति दै पोहपांजलि भरि-भरि कै—परमा ३०४।

८६. 'डोल चंदन को' झूलत हलधर बीर।

जाता है[८७]। कुंभनदास ने 'डोल'-वर्णन में केवल वृषभानुजा राधा के 'कंचन डोल' में बैठकर सखियों के साथ झूलने, गाने और अबीर-गुलाल छिड़ककर आनंद मनाने का उल्लेख किया है[८८]।

ख. *लीलावतारोत्सव*—इस वर्ग में जो उत्सव आते हैं उनमें नौ मुख्य हैं—रामनवमी, नृसिंह-जयंती, वामन-जयंती, रथयात्रा, जन्माष्टमी, राधाष्टमी, गोपाष्टमी, पवित्रा और अक्षय तृतीया। इनमें से प्रथम तीन का संबंध विष्णु के अवतार राम, नृसिंह और वामन से है, चतुर्थ का जगन्नाथ जी से और शेष का संबंध श्रीकृष्ण और उनकी प्रिया राधा के जन्म अथवा उनकी लीलाओं से है।

अ. *रामनवमी*—चैत्र के शुक्लपक्ष की 'रामनवमी' के दिन 'रामजन्मोत्सव' मनाया जाता है जिसका वर्णन अष्टछापी कवियों में 'सूरदास' के अतिरिक्त परमानंददास और गोविंदस्वामी ने किया है। सूरदास ने 'रामकथा' को लेकर १५७ पद लिखे हैं जिनमें से प्रारंभिक तीन पदों में राम-जन्म की बात कही गयी है; 'रामनवमी' का उल्लेख कहीं नहीं है[८९]। गोविंदस्वामी के भी इस प्रसंग में

× × ×

गोपी रहीं अरगजा छिरकति उड़त गुलाल अबीर—परमा० ६२५।

८७. गोकुल नाथ 'बिराजत डोल'।
संग लिये बृषभानु-नंदिनी, पहिरे नील निचोल।
कंचन खचित लाल मनि मोती, हीरा जटित अमोल।
झुलवहिं जूथ मिलै ब्रज-सुंदरि, हरषित करतिं कलोल—सा० २६१६।

८८. ललिता बिसाखा झुलवतिं ठाढ़ी कर गहि 'कंचन डोल'।
निरखि-निरखि प्रीतम पिय प्यारी बिहँसि कहति हँसि बोल।
उड़त गुलाल, कुमकुमा चंदन परसत चारु कपोल—कुंभन० ८०।

८९.क. आजु दसरथ कैं आँगन भीर।
ये भू-भार उतारन कारन प्रगटे स्याम-सरीर।
फूले फिरत अजोध्या-बासी, गनत न त्यागत चीर—सा० ६-१६।

ख. अजोध्या बाजति आजु बधाई।
गर्भ मुच्यौ कौसिल्या माता, रामचंद्र निधि आई—सा० ६-१७।

ग. रघुकुल प्रगटे हैं रघुबीर।
देस-देस तैं टीकौ आयौ, रतन कनक मनि हीर—सा० ६-१८।

तीन-चार पद मिलते हैं, परंतु 'रामनवमी' का उल्लेख उन्होंने भी नहीं किया है[९०]। परमानंददास के अवश्य इस विषय पर लिखे गये पाँच-सात पदों में से एक में 'नौमी' का उल्लेख मिलता है[९१]। शेष पदों में राम-जन्म की चर्चा सामान्य रूप से है[९२]।

आ. *नृसिंह-जयंती*—'नृसिंह-चतुर्दशी' का वर्णन अष्टछापी कवियों में सूरदास और परमानंददास ने किया है। 'सूरसागर' में इस विषय का एक लंबा पद है जिसके प्रारंभ में 'नरहरि-अवतार' का वर्णन करने का कवि ने उल्लेख किया है[९३]। सूरदास के एक और पद में श्रीनृसिंह की भक्तवत्सलता की ओर संकेत किया गया है[९४]। परमानंददास ने भी 'नृसिंहावतार' को लेकर पाँच-छह पद लिखे हैं जिनमें उनकी भक्त-रक्षा की बात कही गयी है[९५]।

९०.क. प्रगट्यो राम कमलदल लोचन।
निरखि-निरखि जननी कौसल्या मिटि गयो उर कौ सोचन—गोविं० १५१।
ख. कौसल्या की कूख कल्पतरु प्रगट भए श्रीराम।
देवलोक अरु भुवनलोक में भूषन मन के काम।
दसरथ भागि सराहिए हो कौसल्या बड़ भाग—गोविं० १५२।
ग. बधावो श्री दसरथ राइ कें श्रीपति सिसु भए आय।
मरजादा पुरुषोत्तम प्रगटे बपु लहित रघुबीर।
बसुधा भार दूरि करिबे कों आए हैं रनधीर—गोविं० १५३।
९१. 'नौमी के दिन नौबत बाजे कौसल्या सुत जायौ'।
सात घरी दिन उदित भयो है सब सखियनि मंगल गायौ—परमा० ३३७।
९२.क. आज सखी रघुनन्दन जाये।
सुन्दर रूप नयन भर देखौं गावत मंगलचार बधाये—परमा० ३४०।
ख. आज अयोध्या प्रगटे राम।
दसरथ बंस उदै कुल दीपक सिब बिरंचि मुनि भयौ बिस्राम—परमा० ३४२।
ग. घर-घर उत्सव चारु अयोध्या राघव जनम निवास।
गावत सुनत लोक त्रै पावन बलि परमानंददास—परमा० ३४३।
९३. नरहरि, नरहरि, सुमिरन करौ। नरहरि-पद नित हिरदय धरौ।
'नरहरि-रूप धरयौ' जिहिं भाइ। कहौं सो कथा, सुनौ चित लाइ—सा० ७-२।
९४. ऐसी को सकै करि बिनु मुरारी।
कहत प्रहलाद के 'धारि नरसिंह बपु,' निकसि आए तुरत खंभ फारी—सा० ७-६।
९५.क. बहु सनमान दियो प्रहलादै सबही निसंक जियो।

इ. *वामन-जयंती*—अष्टछापी कवियों में 'वामन-जयंती' का वर्णन करने वाले सूरदास, परमानंददास और गोविंदस्वामी हैं। सूरदास ने 'वटु वामन' के दर्शन बलि के द्वार पर कराये हैं[९६]। परमानंददास ने दो पदों में सूरदास की तरह बलि-द्वार पर खड़े वामन का ही वर्णन किया है;[९७] तीसरे पद में 'भादों' मास की सुभग सुदी द्वादसी को कश्यप और अदिति के घर देव-काज के लिए 'वामनावतार' होने की बात कही है[९८]। गोविंदस्वामी ने अदिति के पुत्र के रूप में वामन के घनश्याम रूप का पीतांबरधारी पुनीत दर्शन कराने[९९] के साथ-साथ यह भी कहा है कि हरि ने ही यह अवतार लिया है[२००]।

ई. *रथ-यात्रा*—आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को रथ-यात्रा का उत्सव मनाया जाता है। इसका वर्णन सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास और

'निकसे खंभ फारि के नरहरि' आपुन राखि लियो—परमा० ३४७।

ख. जय-जय श्री नरसिंह हरी।
जय जगदीस भगत भय मोचन खंभ फारि प्रकटे करुन करी—परमा० ३५०।

९६.क. 'द्वारै ठाढ़े हैं द्विज बावन'।
चारौ बेद पढ़त मुख आगर, अति सुकंठ-सुर-गावन—सा० ८-१३।

ख. राजा, 'इक पंडित पौरि तुम्हारी'।
चारौ बेद पढ़त मुख आगर, है 'बावन-बपु-धारी'—सा० ८-१४।

९७.क. 'बामन आयो बलि पै माँगन'।
आये अनूप रूप कहा कहिये 'ठाढ़ो पौर के आँगन'—परमा० २०१।

ख. अहो बलि ! 'द्वारे ठाढ़े बामन'।
चारौं वेद पढ़त मुख पाठी अति सुमंद सुर गावन—परमा० २०२।

९८. 'कस्यप पिता अदिति माता प्रगटे बामन रूप'।
'भादों मास सुभग सुदी द्वादसी' लीनों रूप अनूप।
सुर तैंतीसौ हरखन लागे होहिं हमारे काम।
'बटु सुरूप धरि' दरसन दीयो आये बलि के धाम—परमा० २०४।

९९. 'प्रगटे श्री बामन अवतार'।
निरखि 'अदिति करत प्रसंसा' जुग जीवन आधार।
तन घन स्याम पीत पट राजत सोभित हैं भुज चार।
कुंडल मकराकर कौस्तुभ मनि उर भृगु रेखा सार—गोविं० ८।

२००. आजु 'हरि बामन रूप लयौ'।
अनेक रिषीश्वर सिष्य संग लिये बलि को दरस दयौ—गोविं० ४६।

गोविंदस्वामी ने किया है। सूरदास ने कृष्ण के रथ को सोने के कलश, ध्वजा-पताका, छत्र, चँवर आदि से युक्त बताया है, जिसमें पवन से भी अधिक वेग वाले घोड़े जुते हैं। उन्होंने तिथि का भी उल्लेख किया है[1]। एक दूसरे पद में सूरदास ने रथ की सज्जा का और विस्तार से वर्णन करते हुए बताया है कि श्रीकृष्ण के शीश पर लाल पाग है, गले में जुही माल है, तन पर नीलमणि है और उनका सुंदर रूप देखकर व्रजवासी फूले नहीं समाते हैं[2]। यही पद कुछ पाठांतर के साथ 'परमानंद' छाप से भी मिलता है जिसमें राधा के साथ श्रीकृष्ण रथ पर बिराजमान बताये गये हैं[3]। अपने दूसरे पद में परमानंददास ने साथ के ग्वाल-बालों द्वारा श्रीकृष्ण का

१. देखो माई, 'रथ बैठे हरि' आजु।
आगें 'ब्रजजन सखा स्यामघन' सबै मनोहर साजु।
'हाटक कलसा, धुजा-पताका, छत्र-चँवर' सिर ताज।
'चपल अस्व चालहिं अति चलिहैं, देखि पवन मन लाज'।
आषाढ़ सुदी दुतिया 'नछत्र पुष्प' अचल नंद-सुत राज।
'सूरदास' हरषत ब्रजवासी, रह्यौ घोष सिरताज।
—'सूर-निर्णय', पृ० २२९ से उद्धृत।

२. देखो माई, 'रथ बैठे गिरिधारी'।
'छतरी अनुपम हाटक जराय की' झूमक लर मुक्तारी।
'गादी सुरँग ताफता सुंदर', फेर बाज छबि न्यारी।
डोरी दिव्य पाट पँचरँग की, कर गहे 'कुंज बिहारी'।
'चपल अस्व बर चलत हंस गति', बुधि नहिं परति बिचारी।
'लाल पाग सिर' लाल छबिकर, जुही-माल गरें भारी।
नील मनी तन, कमलनैन कौं सोहै पीत पट धारी।
बिहरत ब्रज-बीथिनि बृन्दाबन, 'गोपीजन' मनुहारी।
देखि देखि फूले ब्रजबासी, सुख की रासि अपारी।
कुसुमावलि बरषत इन्द्रादिक, 'सूरदास' बलिहारी।
—'सूरनिर्णय', पृ० १२ से उद्धृत।

३. देखो माई, 'रथ बैठे गिरिधारी'।
राजत परम मनोहर सब अँग संग राधिका प्यारी।
मनि मानिक हीरा कुन्दन रुचि डाँडी पाँच प्रवारी।
बिधि करि रच्यो बिचित्र बिधाता अपने हाथ सवारी।
गादी सुरँग ताफता सुन्दर लरे बाँह छबि न्यारी।

चार घोड़ोंवाला रथ खींचे जाने की बात कही है और उनकी प्रसन्नता देखकर दोनों भाइयों का भी हर्षित होना बताया है[४]।

रथ-यात्रा-प्रसंग में कुंभनदास के तीन पद विशेष प्रसिद्ध हैं। पहले दो में उन्होंने राधा के साथ रथ पर श्रीकृष्ण का दर्शन कराया है;[५] परंतु अंतिम में त्रिभुवननाथ की बहन सुभद्रा, भाई बलराम तथा अन्य ग्वाल-बालों के साथ उनका रथ पर विराजमान होना कहा है[६]। चतुर्भुजदास ने बाम भाग में वृषभानु-नंदिनी के दर्शन कराये हैं[७] तथा 'ब्रजरानी' द्वारा आरती किये जाने का भी उल्लेख किया है[८]।

छत्र अनूपम हाटक कलसा झूमक लर मुक्तारी।
चपल बहै चलत हंस गति उपजत है छबि भारी।
दिब्य डोरि पँचरंग पाट की कर गहै कुंजबिहारी।
विहरत ब्रजबीथिनि बृन्दाबन गोपीजन मनुहारी।
कुसुमांजलि बरषत सुर-नर-मुनि परमानंद बलिहारी—परमा० ७४२।

४. तुम देखौ माई, 'रथ बैठे गोपाल'।
हीरा मोती पाँति बनी है बिच बिच राजत लाल।
बैरख फरहरात कलसन पर अरुन हरित बहुरंग।
अति ही बिचित्र रच्यौ बिस्वकर्मा 'सोभित चार तुरंग'।
'खैंचत ग्वाल-बाल सब संग' करत कुलाहल भारी।
किलकत हँसत दोऊ री भैया 'मुदित होत गिरिधारी'—परमा० ७४३।

५.क. 'रथ बैठे मदनगोपाल' अंग-अंग सोभा बरनी न जाई।
मोर-मुकुट बनमाल बिराजति, पीतांबर अरु तिलक सुहाई।
गज-मुक्ता की माल कंठ सोहै मानो नीलगिरि सुरसरि धँसि आई।
श्रीबृन्दाबन-भूमि चारु 'सँग सोहै राधा नागरि' मानों घन-दामिनि की छबि पाई।
—कुंभन० ८८।

ख. 'रथ पर राजति सुंदर जोरी'।
श्रीघनस्यास लाडिलौ सुंदर, श्री राधा जू गोरी—कुंभन० ८९।

६. रथ बैठे त्रिभुवन-नाथ।
'बहिन सुभद्रा अरु बल भइया और सखा सब लीन्हे साथ—कुंभन० ९०।

७. देखौ री या रथ की सुन्दरताई।
× × ×
तहाँ बैठे सुन्दर मन मोहन श्री गोकुलपति राई।
'बाम भाग बृषभानु नंदिनी' अति सोभा सुखदाई—चतु० ११०।

८. देखौ माई, 'रथ बैठे गिरिधारी।

गोविंदस्वामी के इस प्रसंग में पाँच पद मिलते हैं जिनमें से चार में तो अन्य कवियों के समान श्रीकृष्ण और उनके रथ की शोभा का वर्णन किया गया है;[९] एक में अवश्य एक नयी बात कही गयी है। श्रीकृष्ण माता यशोदा से कहते हैं—तू मुझे गोद में लेकर रथ में बैठ जा, इधर राधा बैठे, उधर बल भैया। गोप सखा गीत गाते हुए साथ चलें और व्रजजन (व्रजबालाएँ) आरती उतारें[१०]।

उ. *जन्माष्टमी*—भाद्रपद कृष्ण पक्ष की अष्टमी को श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव बड़े उल्लास से मनाया जाता है। अपने आराध्य का अवतार-दिवस होने के कारण इसकी चर्चा तो यद्यपि सभी अष्टछापी कवियों ने की है, तथापि उसी समय श्रीकृष्ण के गोकुल पहुँचा दिये जाने के कारण यह उत्सव अष्टछाप-काव्य में उस रूप में नहीं वर्णित है, जिस उत्साह से यह आज मनाया जाता है। सूरदास ने भादों की अँधेरी आधी रात में बंदीगृह में कृष्ण-जन्म होने और उसी समय उनके गोकुल पहुँचाये जाने की बात बड़े विस्तार से लिखी है[११]। एक दूसरे पद में उन्होंने कृष्ण

× × × ×

'व्रजरानी मिलि करति आरती 'चत्रुभुजदास' बलिहारी—चतु० १११।

९. देखिए गोविंदस्वामी पद १६८, १६९, १७० और १७२।

१०. तू 'मोहिं रथ ले बैठि री मैया'।
'इतकी ओर बैठिहै राधे, उतकी ओर बल भैया'।
गोप सखा सब संग चलेंगे, अरु गावैंगे गीत।
बढ़ैगी मेरे रथ की सोभा, सुख पावैंगे मीत।
व्रजजन भवन भवन प्रति ठाढ़ी, देखन कों मेरी आड़ी।
आरती लै उतारि कें मो पर, ह्वै हैं मारग आड़ी।
सुनत बचन आनंद-सिंधु में, मगन भई जसुदा माई।
रसिक मनोरथ पूरन गोविंद बैकुंठ तजि ब्रज आई—गोविं० १७१।

११.क. 'भादौं की अध-राति' अँध्यारी।
द्वार-कपाट कोटि भट रोके, दस दिसि कंत कंस भय भारी।
गरजत मेघ, महा डर लागत, बीच बढ़ी जमुना जल कारी।
तातैं यहै सोच जिय मोरैं, क्यों दुरिहै ससि-बदन-उज्यारी—सा० १०-११।

ख. 'अँधियारी भादौं की रात'।
बालक हित बसुदेव देवकी, बैठि बहुत पछितात।
बीच नदी, घन गरजत बरषत, दामिनि कौंधति जात।

पक्ष, रोहणी नक्षत्र और बुधवार के दिन जन्म होना लिखा है[१२]। परमानंददास[१३] और कुंभनदास[१४] ने तिथि, नक्षत्र और वार का उल्लेख करके ही गोकुल के जन्मोत्सव का वर्णन प्रारंभ कर दिया है। चतुर्भुजदास ने तो इनके साथ-साथ 'द्वापर युग' का भी उल्लेख करना आवश्यक समझा है[१५]। गोविंदस्वामी ने अवश्य मथुरा के बंदीगृह में उनके जन्मोत्सव की बात कुछ विस्तार से लिखी है[१६]।

गोकुल में श्रीकृष्ण का 'जन्मोत्सव' बहुत उल्लास से मनाया जाना सभी अष्टछापी कवियों के काव्य में वर्णित है जिसकी चर्चा 'जन्म-संस्कार' के अंतर्गत पीछे की जा चुकी है।

ऊ. *राधाष्टमी*—भादों मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन 'राधाष्टमी' मनायी जाती है और यह उत्सव छह दिन अर्थात् छठी तक चलता रहता है। आराध्य-प्रिया के जन्म का शुभ दिवस होने के कारण सभी अष्टछापी कवियों ने 'राधाष्टमी' का वर्णन बड़े उत्साह से किया है, परंतु श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव के समान

बैठत उठत सेज सोवत मैं कंस डरनि अकुलात।
गोकुल बाजत सुनी बधाई, लोगनि हियैं सुहात—सा० १०-१२।

१२. संबत सरस बिभावन, 'भादौं, आठैं तिथि, बुधवार'।
कृष्न पच्छ, रोहिनी, अर्द्ध निसि', हर्षन जोग उदार—सा० १०-८६।

१३. जनम लियो सुभ लगन बिचार।
कृष्न पच्छ भादों निसि आठैं नच्छत्र रोहिनि और बुधवार—परमा० ३६।

१४. 'भादों कृष्न पच्छ आठैं निसा रोहिनी नछत्र बुधवार'।
ब्रजजन करत कुलाहल निरखत नंदकुमार—कुंभन० ३।

१५. 'बदि भादौं' आयो 'जुग द्वापर अर्ध रात्रि बुधवार।
'बालव करन अरु नछत्र रोहिनी' जनमें जगदाधार—चतु० ५।

१६.क. प्रगटे मथुरा माँझ हरी।
मात तात हित पुत्र रूप मिस अपनी प्रतिग्या करी।
स्याम बरन बपु उर पर भृगु पद जटित कंचन जैसे क्रीट खरी।
दोऊ भुजा बन माला संख चक्र गदा पद्म धरी।
परम पुरुष भगवंत जानि जिय बसुदेव मन खल भीति करी।
द्वार कपाट भेदि चले ब्रजपति तब सुर कुसुमनि बृष्टि करी—गोविं० ८।

ख. 'भादौं की राति अँधियारी'।
संख चक्र गदा पद्म बिराजत मथुरा जनमु लियो बनवारी।

वह विस्तृत नहीं है। सूरदास,[१७] कुंभनदास[१८] और छीतस्वामी[१९] ने एक-एक, दो-दो पदों में राधा के जन्मोत्सव का वर्णन किया है। चतुर्भुजदास[२०] और गोविंद स्वामी[२१] ने चार-चार, पाँच-पाँच पद इस प्रसंग में लिखे हैं। राधा के जन्मोत्सव की बात सुनकर चतुर्भुजदास के नंद, यशोदा और कुँवर कन्हाई फूले नहीं समाते[२२]। परमानंददास ने इस विषय का वर्णन अष्टछापी कवियों में सबसे विस्तार से किया है। उन्होंने राधा के जन्मोत्सव के साथ-साथ 'पलना के पद' भी लिखे हैं।

बोलि लिये बसुदेव देवकी बालक भयो परम रुचिकारी।
अब ले जाहु याहि तुम गोकुल अधम कंस कौ मोहि डरु भारी।
सोवत स्वान पहरुवा चहुँ दिसि खुले कपाट गई भौ न्यारी।
पाछें सिंह दहारत दूकत, आगे है कालिंदी भारी।
जब जिय सोच करत ठाड़े ह्वै अब बिधि कहा बिधाता ठानी।
कमलनैन कौ जानि महातम जमुना भई चरन तर पानी—गोविं० ११।

१७. आज बृषभान कें आनंद।
× × ×
'सूरदास' प्रगटी भुव ऊपर, भक्तनि के हित जोग।
—'सूर-निर्णय', पृ० २३० से उद्धृत।

१८. राधे जू सोभा प्रगट भई।
बृन्दाबन गोकुल गलियनि में सुख की लता छई—कुंभन० ७।

१९. सकल भुवन की सुंदरता बृषभानु गोप कें आई री—छीत० २।

२०.क. आनँद भवन बृषभान कें।
जाई सुता माई कीरति घर ऐसी कुँवरि नहिं आन कें—चतु० १४।
ख. रावलि राधा प्रगट भई।
श्री बृषभान गोप गरुवे कुल प्रगटी अति आनंदमई—चतु० १७।

२१.क. आजु बरसाने बजत बधाई।
कुँवरि भई जो मातु कीरति कें कीरति सब जग छाई—गोविं० १६।
ख. सुनियत रावलि होत बधाई।
प्रगट भई त्रैलोक-बंदनी रसिक जननि सुखदाई—गोविं० २०।
ग. बधाई बाजत रावलि माँझ।
श्री बृषभानु गोप कें प्रगटी मानों फूली साँझ—गोविं० २१।

२२. पंच सबद बाजे बाजत धुनि दिसनि दिसनि हरि छाई।
नंद जसोमति सब सुख राँच्यो फूले कुँवर कन्हाई—चतु० १५।

राधा की चरण-वंदना से उन्होंने विषय का आरंभ किया है[२३]। दूसरे-तीसरे पद में राधा का 'अवतार'[२४] शुक्ल पक्ष की अष्टमी को होने की बात उन्होंने कही है[२५]। उनकी यशोदा भी इस अवसर पर बधाई देती है[२६]।

अष्टछाप के सभी कवियों ने राधा के अपूर्व रूप का भी वर्णन किया है;[२७] तदनंतर 'कृष्ण-जन्मोत्सव' के समान ही 'राधाष्टमी' भी मनायी जाती है, तरह-के वाद्य बजते हैं और दानादि से याचकों को संतुष्ट किया जाता है।

ए. *गोपाष्टमी*—कार्तिक सुदी अष्टमी को 'गोपाष्टमी' का उत्सव होता है जो श्रीकृष्ण के प्रथम गोचारण दिवस के उपलक्ष में मनाया जाता है। अष्टछापी कवियों में सूरदास के श्रीकृष्ण पहली बार गोचारण के लिए माता की आज्ञा माँगते

२३. धन धन लाडिली के चरन।
अतिहि मृदुल सुगंध सीतल कमल के से बरन।
नख चन्द चारु अनूप राजत जोति जगमग करन।
नूपुर कुनित कुंज बिहरत परम कौतिक करन।
नंद - सुत मन मोद कारी बिरह-सागर तरन।
दास परमानंद छिन छिन स्याम ताकी सरन—परमा० १६०।

२४. आज रावल में जय जय कार।
प्रगट भयौ बृषभान गोप कें श्री राधा अवतार—परमा० १६३।

२५. राधा जू कौं जन्म भयो सुनि माई।
'सुकल पच्छ निसि आठें' घर घर होत बधाई।
अति सुकुमारी घरी सुभ लच्छन कीरति कन्या जाई—परमा० १६४।

२६. परमानंद नंदनंदन के आँगन जसुमति देति बधाई—परमा० १६४।

२७.क. प्रकटी सुता बृषभान गोप कें परम भावती जी की।
'जिन देखत त्रिभुवन की सोभा लागत है अति फीकी'—परमा० १६७।

ख. प्रगटी 'नागरि रूप-निधान'।
निरखि निरखि फूलति ब्रजबनिता 'नाहिंन उपमा कों आन'—कुंभन० ८।

ग. नहिं कमला नहिं सची, नहीं रति सुंदर रूप समान के—चतु० १४।

घ. 'उपमा नाहिं करी कोउ करता' कासौं करौं समताई—चतु० १६।

ङ. रूपरासि रसरासि रसिकिनी नव अंकुर अनुराग नई—चतु० १७।

च. कोटि रमापति रूप माधुरी ना आवै छबि समताई।
धन्य भाग बृषभानु गोप कौ सुता अलौकिक पाई—गोविं० १६।

माँगते हैं[२८] और पिता को भी सहमत करा देने की बिनती करते हैं[२९]। परमानंददास ने प्रथम गोचारण की बात अधिक विस्तार से कही है[३०]। माता-पिता के पैर छूकर बालक कृष्ण पहली बार गाय चराने जाता है और सारे व्रजवासी अपूर्व आनंद में मग्न हो अपनी-अपनी गैयाँ उन्हें सौंपते हैं[३१]। श्रीकृष्ण के साथ बन जाने के लिए 'सूथन-चोलना' पहनकर ग्वाल-बाल नंद-भवन में आते हैं। उनके साथ श्रीकृष्ण को गाय चराने जाते देख द्विजगण 'असीस' पढ़ते हैं और माता रोहिणी तथा यशोदा की छाती आनंद से उमड़ने लगती है[३२]। गोविंदस्वामी

२८. आजु मैं गाइ चरावन जैहौं।
बृन्दाबन के भाँति भाँति फल अपने कर मैं खैहौं—सा० ४११।

२९. मैया हौं गाय चरावन जैहौं।
'तू कहि महर नंद बाबा सौं', बड़ौ भयौ न डरैहौं।
रैता, पैता, मना, मनसुखा, हलधर संगहिं रैहौं।
वंसीबट तर ग्वालनि कैं सँग, खेलत अति सुख पैहौं—सा० ४१२।

३०. 'प्रथम गोचारन चले कन्हाई'।
माथे मुकुट पीताम्बर की छबि बनमाला पहराई—परमा० १२०।

३१. आज अति आनंद व्रजराय।
'धन्य दिवस बन चलत प्रथम ही' कान्ह चरावन गाय।
अपनो पीताम्बर लकुटि मुरलिका और सिर खौरि बनाय।
प्रीति सहित अवलोकि 'गहत हैं मात-पिता के पाँय'।
गोरोचन दूध - दधि माथे रोरी अच्छत लाय।
निरखि निरखि मुख अति आनंदित गोपीजन लेत बलाय।
ग्वाल बिमल बलैयाँ लेत परस्पर घर घर ते सब आय।
हेरी देत बजावत महुअरि उर आनँद न समाय।
'व्रजजन सब मिलि धेनुन सौंपत' नैन निरखि सुख पाय।
परमानंद प्रभु यहि बानिक ऊपर बलि बलि बलि बलि जाय—परमा० १२२।

३२. सोहत लाल लकुटी कर राती।
'सूथन कटि चोलना' अरुन रँग पीताम्बर की गाती।
'ऐसे गोप सबै बनि आए' जो सब स्याम सँगाती।
'प्रथम गोपाल चले' जु बच्छ लै 'असीस पढ़त द्विज जाती'।
निकट निहारत रोहिनी जसोदा आनँद उपज्यो छाती।
परमानंद नन्द आनंदित ह्वै दान देत बहु भाँती—परमा० २६६।

ने भी प्रथम गोचारण के दिन विविध वाद्यों के बजने और गोप-बधुओं के द्वारा मनोहर 'बानी' में गीत गाये जाने की बात लिखी है[३३]। उस समय माता यशोदा उनकी आरती उतारती हैं, चारों ओर मंगल शब्द होते हैं, गीत गाये जाते हैं और विविध वस्त्राभूषण धारण किये, रोली-तिलक लगाये, गायों को आगे कर गोचारण के लिए जाते हुए पुत्र पर से जननी 'राई-नोन' उतारती है[३४]।

ऐ. *पवित्रा*—'सूर-निर्णय' के अनुसार,[३५] 'यह नित्यलीला तथा वल्लभ-अवतार का उत्सव है। श्रा० शु० ११ को अर्द्धरात्रि को साक्षात् पुरुषोत्तम ने प्रकट होकर श्रीगोकुल के ठकुरानी गोविंदघाट पर श्रीवल्लभाचार्य जी को ब्रह्म-संबंध का उपदेश दिया था[३६]। तब आचार्य जी ने नित्य लीला के संबंध में उन पुरुषोत्तम को 'पवित्रा' धराया था। तबसे यह उत्सव प्रतिवर्ष संप्रदाय में मनाया जाता है'। 'पवित्रा' पहनने के दिन सूरदास के कृष्ण केसर-कुंकुम के रंग का 'बागा' धारण करते हैं[३७]। चतुर्भुजदास ने उनको गुंजा के मनोहर हार पहनाये

३३. 'प्रथम गोचारन कौ दिन' आज।
प्रातकाल उठि जसोदा मैया कीनों है सब साज।
'बिबिध भाँति बाजे बाजत हैं' रह्यो घोष सब गाज।
'गावति गीति मनोहर बानी' तजि गुरुजन की लाज—गोविं० ८१।

३४. 'प्रथम गोचारन चले गोपाल'।
जननि 'जसोदा करति आरती' मोतिनि भरि भरि थाल।
मंगल सब्द होत तिहिं औसर मिलि गावति ब्रजबाल।
विबिध सिंगार पहरि पट भूषन रोरी तिलक दै भाल।
सब समाज ले चले बृन्दाबन आगे कीनी गाइ।
'राई-लोन उतारति जननी' 'गोविंद' बलि बलि जाइ—गोविं० ८२।

३५. श्री द्वारकादास परीख तथा श्री प्रभुदयाल मीतल, 'सूर-निर्णय', पृ० २३०।

३६. श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरशः उच्यते—'सूर-निर्णय' से उद्धृत, पृ० २३०।

३७. 'पवित्रा' पहिरन कौ दिन आयौ।
केसर कुमकुम रँग रस बागौ, फुँदना हार बनायौ।
जै जै कार होत बसुधा पर सुर-मुनि मंगल गायौ।
'पहिरि पवित्रा' लिएँ नंद-सुत सूरदास जस गायौ॥
—'सूर-निर्णय' से उद्धृत, पृ० २३०।

हैं[३८]। 'पवित्रा' पहने छीतस्वामी के वनमालधारी श्रीकृष्ण अपनी छवि से तीनों लोक पवित्र करते हैं[३९]। ये कवि मास-दिवस आदि का उल्लेख नहीं करते; परमानंददास,[४०] कुंभनदास[४१] और गोविंदस्वामी[४२] ने अवश्य वैसा किया है। परमानंददास ने एक पद में केवल 'राजकुमारी' (राधा) के 'पवित्रा' पहनने की बात लिखी है[४३]। अन्यत्र उन्होंने[४४] और कुंभनदास ने[४५] राधिका जी के साथ 'पवित्रा' पहने श्रीकृष्ण का दर्शन कराया है। परमानंददास के अनुसार 'पवित्रा' के उत्सव पर व्रजवासी मंगल गाते हैं और नंद-यशोदा सबका स्वागत करते हैं[४६]।

३८. 'पवित्रा पहिरत गिरिवरधारी'।
   अरु गुंजा के हार मनोहर भामिनि हस्त सँवारी—चतु० १३३।

३९. 'पवित्रा' पहिरत गिरिधरलाल।
   तीनों लोक पवित्र किये हैं सुंदर नैन बिसाल।
   कहा कहौं अँग अँग की सोभा उर राजत बनमाल—छीत० ६६।

४०. 'पवित्रा पहिरत श्री गोकुलभूप'।
   'स्रावन सुक्ल एकादसी' मंगल को निज रूप—परमा० ७८०।

४१. 'सावन सुदी बिदित एकादसी' होत है मंगलचार।
   करि सिंगार सिंघासन बैठे सब बालक परिवार—कुंभन० १२४।

४२. 'पवित्रा पहिरे श्री गिरिधरलाल'।
   'सावन सुदी एकादसी' मंदिर बैठे नंद के लाल गोविं० २२६।

४३. 'पवित्रा पहिरति राजकुमारी'।
   तीन्यौ लोक पवित्र किए हैं श्री बिट्ठल गिरिधारी।
   अति ही पवित्र प्रिया बहु बिलसति निरखि मगन भयो भारी।
   'परमानंद' पवित्र की माला गोकुल की निज नारी—परमा० ७७६।

४४.क. बैठे हैं 'पहिरे पवित्रा दोऊ' निरखत नयन सिराने हो।
   राजत रचि-रचि कुंज भवन में कोटिक काम लजाने हो—परमा० ७८३।

ख. 'पवित्रा पहिरे श्री गिरिवरधारी'।
   बृषभान-नंदिनी सँग राजति अंग-अंग छबि न्यारी—परमा० ७८४।

४५.क. 'पवित्रा पहिरे श्री गिरिधरलाल'।
   बाम भाग बृषभान-नंदिनी बोलत बचन रसाल—कुंभन० १२२।

ख. 'पवित्रा पहिरे श्री गोकुलराइ'।
   स्याम अंग पर अमित माधुरी सोभा कहिय न जाइ।
   'बाम भाग बृषभान-नंदिनी' अंग-अंग रस है माइ—कुंभन० १२३।

४६. 'पवित्रा उत्सव कौ दिन आयो'।

गोविंदस्वामी ने इस अवसर पर ताल, पखावज, वेनु आदि के बजने और श्रीकृष्ण की आरती उतारे जाने का भी वर्णन किया है[४७]।

ओ. अक्षय तृतीया—बैशाख मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को 'अक्षय तृतीया' का उत्सव मनाया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में होने के कारण चंदन का शृंगार इस उत्सव की विशेषता है। चंदन के साथ 'अरगजा' आदि अन्य सुगंधित पदार्थों के उपयोग की बात भी सूरदास ने लिखी है[४८]। परमानंददास ने पाँच-छह पद इस प्रसंग में लिखे हैं जिनमें से एक में 'अक्षय सुहागवती' राधा को 'अक्षय तृतीया' के शुभ दिवस पर प्रियतम की चंदन से पूजा करने की प्रेरणा दी गयी है[४९]। दूसरे पद में गिरिधरलाल धोती पहने और अरगजा की सुगंध में बसा पीतांबर 'धारे' बताये गये हैं[५०]। कुंभनदास के दो पद 'अक्षयतृतीया' के संबंध में

ब्रजबासिनि मिलि मंगल गायो स्याम निरखि सचु पायो।
यह बल सहित मोहन आयो है संतन के मन भायो।
'नंद-जसोदा हँसि-हँसि भेंटति' मोतिनि चौक पुरायो—परमा० ७८५।

४७. 'पवित्रा श्री बिट्ठल पहिरावत'।
ब्रज जनेस गिरिधरन चंद को निरखि-निरखि सुख पावत!
कुंकुम तिलक लिलाट दिए ब्रजजन मंगल जस गावत।
'बाजत ताल पखावज बेनु' सुर मुनि चहुँ दिसि तें सब धावत।
हरखि-हरखि अवलोकि बदन छबि 'नीराजना उतारत'।
'गोविंद' प्रभु गोबर्धनवासी चरन-कमल चित लावत—गोविं० २१८।

४८. आजु बने नँदनंदन री नव चंदन अंग अरगजा लाये।
सरकत हार सुढार जलज मनि, गुंजत अलि अलकन समुदाये।
पीत बसन तन बन्यौ पिछौरा, टेढ़ी पाग तोर लटकाये।
'अक्षय तृतीया', अक्षय लीला, अक्षय सूरदास सुख पाये।
—'सूर-निर्णय' से उद्धृत, पृ० २२८।

४९. 'अक्षय भाग सुहाग राधे' को प्रीतम को दिन रतियाँ।
'चंदन पूजि प्रीतम सुख दीजै' रीझ-रीझ यहै कहों बतियाँ।
अक्षय सुजस कहाँ लौं भाखौ पार न पावत सेस मुख जतियाँ।
छूट्यो मान सहज परमानंद 'सुभ दिन नीको अक्षय तृतियाँ'—परमा० ७३३।

५०. आज 'धरे गिरिधर पिय धोती'।
अति ही नीको 'अरगजा भीनो पीतांबर' घन दामिनी जोती।

प्राप्त हैं। पहले में उन्होंने गिरिधरलाल के दर्शन 'स्वेत बागा, पाग' और पीतांबरधारी रूप में 'चंदन' पहनाकर, वस्त्राभूषण साजे राधा के साथ कराये हैं[५१] तथा दूसरे पद में ठीक दोपहरी में 'खस-खाने' के बीच उनके दर्शन होते हैं जहाँ वे 'खासे का पिछौरा' पहने, 'चंदन-भीजी कुलह' सँवारे विराजमान हैं। वृषभानदुलारी राधा उनके अंग-अंग में चंदन का लेप कर रही हैं एवं सुगंधों के फुहारे चारों ओर छूट रहे हैं[५२]।

नंददास ने 'अक्षयतृतीया' के दिन चंदन का शृंगार किये दंपति के दर्पण देख-देखकर रीझने की विशेष बात कही है[५३]। चतुर्भुजदास के कृष्ण का चंदन-चर्चित तन देखकर सखियाँ अत्यंत पुलकित होती हैं[५४]। गोविंदस्वामी ने 'अक्षय-

टेढ़ी पाग भृकुटी छबि राजत स्याम अंग अद्भुत छबि छाई।
मुक्तामाल फुली बन जाई परमानंद प्रभु सब सुखदाई—परमा० ७३४।

५१. चंदन पहिरत गिरिधरलाल।
कंचन वेलि प्यारी राधा के भुज बाम भाग गोपाल।
प्रथम ही चित्रित 'अछित तृतीया' बंदन भृकुटी भाल।
स्वेत तहाँ बागा, पाग लपेटी, पीताम्बर, लोचन बिसाल।
कुंकुम कुच-जुग हेम-कलस में कंठ दोई लर बनी मनि माल।
'कुंभनदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि बिलसत ब्रज की बाल—कुंभन० ८६।

५२. 'ठीक दुपहिरी में खस-खाने' रचे ता मधि बैठे लालबिहारी।
खासा कौ कटि बन्यौ पिछौरा 'चंदन-भीजी कुलह सँवारी'।
चंदन स्याम-तन ठौर-ठौर लेपन करति बृषभान-दुलारी।
बिबिध सुगंध के छुटत फुहारे कुसुमनि के बिजना ढोरत पिय प्यारी।
सघन लता द्रुम झरति मालती सरस गुलाब-माल गूँथति है प्यारी।
कुंभनदास लाल छबि ऊपर रीझि, अँकोरि देत तन मन वारी—कुंभन० ८७।

५३. 'अक्षय तृतीया अक्षय सुख निधि' पिय को पिया चढ़ावै चंदन।
तब ही प्रीय सिंगारी नारी अरगजा घोरि सुघर नँदनंदन।
'लै दरपन निरखें जु परस्पर' रीझि-रीझि रही जो बंदन।
नंददास प्रभु पिय रस भीजे जुवतिनि सुख बिरह दुख-कंदन।
—नंद०, भाग २, परि० ५०।

५४.क. आजु बने नँदनंदन री नव 'चंदन कौ तनु लेपु कियें'।
तामें चित्र धरे केसरि पुट सोभित हैं हरि सुभग हियें—चतु० १०७।

तृतीया' के अवसर पर शृंगार की सभी शीतल वस्तुओं की गणना एक ही पद में कर दी है[५५]।

ग. *अन्य पर्वोत्सव*—इस वर्ग के अंतर्गत संवत्सर, गनगौर, दान, साँझी, नवरात्र, व्रतचर्या, मकर-संक्रांति, ज्येष्ठाभिषेक आदि उत्सव तथा पर्व आते हैं जिनका वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। इनमें से प्रमुख हैं संवत्सर, गनगौर, सावनतीज और साँझी जिनका परिचय अष्टछाप-काव्य के आधार पर नीचे दिया जाता है।

अ. *संवत्सर*—चैत्र मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से हिंदुओं का नव-वर्षारंभ होता है जिसके उपलक्ष में 'संवत्सरोत्सव' मनाया जाता है। यों तो इस अवसर पर सूरदास के 'चक्र के धरनहार गरुड़ के असवार'[५६] वाले पद के गाये जाने की बात कुछ आलोचकों ने कही है[५७] तथापि अष्टछापी कवियों में केवल

ख. देखि सखी गोविंद कें 'चंदन सोभित साँवल अंग'।
नाना भाँति चित्र किए ता महिं केसरि बिबिध सुरंग—चतु० १०१।
ग. 'चंदन की खोर' किएँ मोतिनि की माल हिएँ।
'अरगजा अंग-अंग सोहत नँदलाल कें'—चतु० १०६।

५५. सीतल 'उसीर' गृह छिरको 'गुलाब नीर',
तहाँ बैठे पिय प्यारी केलि करत हैं।
'अरगजा' अंग लगाइ 'कपूर जल' अँचाइ
'फूल के हार' आछे हिए दरसत हैं।
'सीतल झारी बनाइ' 'सीतल सामिग्री धराइ'
'सीतल पान मुख बीरा' रचत हैं।
'सीतल सिज्या' बिछाइ 'खस के परदा लगाइ',
गोविंद प्रभु तहाँ छबि निरखत हैं—गोविं० १६४।

५६. पूरा पद इस प्रकार है—
चक्र के धरनहार, गरुड़ के असवार, नंद के कुमार मेरौ संकट निवारौ।
यमला-अर्जुन तारयौ, गजग्राह तें उबारयौ, नाग कौ नाथनहार मेरौ प्रान प्यारौ॥
गिरिवर कर धारयौ,इंद्र हू कौ गर्व गारयौ, ब्रज के रछनहार बिरद बिचारौ।
द्रुपद सुता की बेर, नैंकहूं ना कीनी देर, अब क्यों अबेर 'सूर' सेवक तिहारौ।
—'सूर-निर्णय, पृ० २१४-२५।

५७. सर्व श्री द्वारकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल, 'सूर-निर्णय', पृ० २२७।

परमानंददास के दो-तीन पदों में इस उत्सव का उल्लेख किया गया है और नव वर्ष की बात भी कही गयी है। उन पदों में 'प्रिय-प्रिया' का सामान्य शृंगार ही वर्णित है[५८]।

आ. *गनगौर*—चैत्र मास के शुक्लपक्ष की तृतीया को 'गनगौरोत्सव' होता है। व्रज में यह उत्सव मुख्यतः कन्याओं का माना जाता है जिसमें श्रीकृष्ण को पति-रूप में पाने की कामना रखनेवाली गोपियों का आदर्श लेकर[५९] 'गौर' या 'गौरों' देवी की पूजा की जाती है। अष्टछापी कवियों में परमानंददास और नंददास के एक-एक दो-दो पद इस विषय के मिलते हैं जिनमें राधा के 'गनगौर' पूजने का उल्लेख है[६०]।

इ. *सावन तीज*—सावन के शुक्ल पक्ष की तीज को मनाया जानेवाला यह उत्सव लड़कियों और स्त्रियों का होता है जिसमें वे गाती, बजाती और झूला झूलती हैं। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने नंदरानी के सावनतीज खेलने और गोपियों के

५८.क. 'चैत्र मास संवत्सर परिवा' बरस प्रवेस भयौ है आज।
कुंजमहल बैठे पिय प्यारी लाल तन हेरैं नौतन साज॥
आपु ही कुसुमहार गुहि लीने क्रीड़ा करत लाल मनभावत।
बीरी देत दासपरमानँद हरखि निरखि जस गावत—परमा० ३३६।

ख. 'बरस प्रबेस भयौ है आज'।
कुंजमहल में बैठे पिय प्यारी लालन पहरे नौतन साज—परमा० ७६१।

५९. शिव से विनय करती हुई गोपियों की कामना का वर्णन सूरदास ने इस पद में किया है—
सिव सौं बिनय करतिं कुमारि।
जोरि कर, मुख करतिं अस्तुति, बड़े प्रभु त्रिपुरारि॥
सीत भीत न करतिं सुंदरि, कृस भईं सुकुमारि।
छहौं रितु तप करतिं नीकैं, गेह नेह बिसारि॥
ध्यान धरि, कर जोरि, लोचन मूँदि इक-इक जाम।
बिनय अंचल छोरि रबि सौं, करतिं हैं सब बाम॥
हमहिं होहु दयाल दिन-मनि, तुम बिदित संसार।
काम अति तनु दहत दीजै, सूर हरि भरतार—सा० ७६७।

६०.क. श्रीराधे, कौन 'गौर' तैं पूजी—परमा०, कीर्तन-संग्रह, भाग १, पृ० २७२।
ख. छबीली राधे पूज लेनी 'गनगोर'—नंद० परि० ४७।

हिंडोला झूलने जाने का वर्णन किया है[६१]। परमानंददास के एक पद में भी सावनी तीज की चर्चा है जिसमें गोपियाँ नंद जी के 'दरबार' में 'हिंडोरा' झूलने जाती और कोकिल कंठ से गीत गाती हैं[६२]।

ई. *साँझी*—भादों मास में शुक्लपक्ष की पूर्णिमा से यह उत्सव प्रारंभ होता है। इसमें कहीं तो श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कंस-वध तक की समस्त लीलाएँ विविध रंगों से भूमि पर चित्रित की जाती हैं और कहीं रंग-बिरंगे फूलों आदि से दीवार पर साँझी 'चीती' जाती है। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने साँझी के उत्सव का वर्णन किया है जिसमें साँझी की पूजा के लिए सखियों के साथ राधिका सुमन बीनती और सखी-वेश में मोहन को साँझी पूजने के उद्देश्य से घर ले जाती है[६३]।

४. *त्यौहार*—

यों तो हिंदू जाति वर्ष भर त्योहार मनाया करती है, परंतु उसके चार वर्णों के अनुसार चार त्योहार प्रधान हैं—ब्राह्मणों का रक्षा-बंधन, क्षत्रियों का दशहरा,

६१. गोपी गोबिंद कैं 'हिंडोरैं झूलन आइ'।
रंगमहल मैं जहँ 'नंदरानी खेलैं तीज सुहाइ'॥
श्रीखँड खंभ मयारि सहित, सुसमर मरुव बनाइ।
तापर कितिक जु भ्रमत भँवरा, डाँड़ी जटित जराइ॥
सुठि हेम पटुली मध्य हीरा, पूरि लोचन लाइ।
सखी बिबिध बिचित्र राग मलार मंगल गाइ—सा० २८४२।

६२. आली री सावन तीज सुहाग।
× × ×
चली है बर 'हिंडोर झूलनि नंद के दरबार'।
× × ×
गावति सावन-गीत प्रमुदित कोकिल कंठ रसाल—परमा० काँक० १२७७।

६३. सखियनि संग राधिका बीनत, सुमननि बन माँह।
'साँझी पूजन कों' आतुर ही, ठाढ़े कदंब की छाँह॥
सखी भेष दै मोहन कों, लै चली आपुने गेह।
पूछी कीरति, यह को सुन्दरि ? तब कह्यौ मेरी सनेह।
'साँझी खेलि' बिदा करि सबकों, दोउ पौढ़े सेज मँझार।
सगरी राति सूर के स्वामी, बसि सुख कियौ अपार।
—सूरदास, 'कीर्तन-संग्रह', भाग १, पृ० १६१।

वैश्यों की दीपमालिका और शूद्रों की होली। अष्टछाप-काव्य में इन चारों लोक-त्योहारों का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है।

क. *रक्षा-बंधन*—श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को मनाया जानेवाला 'रक्षाबंधन' का त्योहार मुख्यतः ब्राह्मणों का होता है। इस दिन ब्राह्मण-वर्ग अन्य वर्गों के व्यक्तियों, विशेषकर अपने जिजमानों, के राखी बाँधकर आशीर्वाद देता है। इसी प्रकार कुछ परिवारों में 'रक्षाबंधन' के अवसर पर बहन अपने भाई की कलाई पर राखी बाँधती है। अष्टछापी कवियों में से किसी ने बहन के द्वारा राखी बाँधे जाने का उल्लेख नहीं किया है; हाँ, किसी ने ब्राह्मण अथवा पुरोहित द्वारा राखी बाँधे जाने की बात कही है और किसी ने माता द्वारा पुत्र के राखी बँधवायी है।

अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास[६४] और चतुर्भुजदास ने[६५] 'रक्षा-बंधन' का त्योहार श्रावण के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को मनाये जाने की बात कही है। 'रक्षा-बंधन' का त्योहार जन-साधारण में 'सलूनों' नाम से प्रसिद्ध है जिसका उल्लेख परमानंददास के एक पद में हुआ है[६६]। इसी प्रकार 'रक्षा-बंधन' के दिन बाँधी जानेवाली 'राखी' को कुंभनदास[६७] और गोविंदस्वामी ने[६८] 'रच्छा' कहा है। सूरदास राखी बाँधे हुए कृष्ण की प्रसन्नता देखकर ही इतना पुलकित हो जाते हैं कि राखी बाँधनेवाले का उल्लेख करने का जैसे उनको ध्यान ही नहीं रहता[६९]। परमानंददास ने दो पदों में तो नंद जी द्वारा गर्गादिक को बुलवाकर लाल के तिलक लगवाने और राखी बँधवाने की बात कही है,[७०] परंतु तीन-चार पदों में माता यशोदा

६४. 'स्नावन सुदी पून्यों' के सुने दिन रोरी तिलक बनायो—परमा० ७६८।

६५. 'स्नावन सुदि पून्यौ कौ' सुभ दिन तिलकु करति बिच भाल के—चतु० १३४।

६६. याही भाँति 'सलूनौं तुमकौं' गिरिधर नित नित आवै—परमा० ७६८।

६७. 'रच्छा बाँधति' जसुदा मइया—कुंभन० १२७!

६८. 'रच्छा बाँधति' जसोदा मैया—गोविं० २२०।

६९. 'राखी बँधावत मगन भए'।
दछिना बहुत द्विजनि कों दीनीं, गोप हँकार लए।
—'सूर-निर्णय' से उद्धृत, पृ० २४०।

७०.क. 'राखी बंधन नंद कराई'।
'गर्गादिक सब रिषिनि बुलाये लालहिं तिलक बनाई'—परमा० ७६६।
ख. 'रच्छाबंधन' करत गरग गुरु नंद महर कें आए।

द्वारा ही यह कार्य संपन्न कराया है[७१] और चौथे पद में तो माता यशोदा द्वारा पुत्र का तिलक करने, तंदुल देने और उसके दोनों हाथों में राखी बाँधने की बात कही गयी है[७२]। इसी प्रकार गोविंदस्वामी भी एक पद में तो 'द्विजवर' द्वारा 'राखी' बाँधे जाने की बात कहते हैं,[७३] परंतु दूसरे पद में माता यशोदा से ही 'रच्छा' बँधवाते हैं[७४]। नंददास ने अवश्य[७५] पुरोहित गर्ग द्वारा राखी बाँधे जाने की बात स्पष्ट शब्दों में कही है।

अष्टछाप के आराध्य श्रीकृष्ण को बाँधी जानेवाली 'राखी' भी साधारण नहीं है। परमानंददास ने उनके 'रतन खचित राखी' बँधवायी है[७६] तो कुंभनदास मोहन के मन को प्रिय लगनेवाली 'रत्नजटित' सुभग राखी ही बँधवाते हैं[७७]। नंददास की 'राखी' में हीरे, रत्नों और माणिक्यों के साथ-साथ मोती भी लगे हैं[७८]। गोविंदस्वामी की राखी 'पाट-डोरी' की होने पर भी परम विचित्र है[७९]। 'राखी' बाँधने के पश्चात् विप्रगण और गुरुजन आशीर्वाद देते और कुशल मनाते हैं जिससे माता-पिता को भी बहुत प्रसन्नता होती है[८०] और माता यशोदा 'नारिकेल, अंबर,

× × ×

दीनों तिलक रच्छा कर बाँधी बहुत प्रसन्न होत हैं राई—परमा० काँक० १२६८।

७१.क. 'राखी बाँधति जसोदा मैया'—परमा० ७६५ और ७६७।

ख. सब ग्वालिनि मिलि मंगल गायो।
'राखी बाँधति मात जसोदा' मोतिनि चौक पुरायो—परमा० ७६८।

७२. माता जसोदा तिलक प्रथम करि तंदुल दिये सुधारी।
अपने कर हरषि दोऊ हाथनि राखी बाँधि सँवारी—परमा० काँक० १२६७।

७३. सिंघ पौरि ठाढ़े मनमोहन द्विजवर 'रच्छा' बाँधत आनि—गोविं० २२१।

७४. 'रच्छा' बाँधति जसोदा मैया—गोविं० २२०।

७५. राखी बाँधत 'गर्ग' स्याम कर—नंद०, परि०, ८०।

७६. 'रतन खचित राखी' बाँधी कर पुनि पुनि लेत बलैया—परमा० ७६५।

७७. रत्न जटित की सुभग बनी अति मोहन के मनमानी—कुंभन० १२६।

७८. हीरा रत्न बिच बिच मानिक बिच बिच मुक्तनि भरन—नंद०, परि०, ८०।

७९. 'परम बिचित्र पाट डोरी' राखि रहे करपानि—गोविं० २२१।

८०.क. यह छबि देखि 'मगन नँदरानी' निरखि निरखि सचु पैया—परमा० ७६५।

ख. सब 'गुरुजन मिलि देत असीसे' चिरजीवहु ब्रजराई।
बड़ो प्रताप बड़ो ढोटा को प्रति दिन दिनहि सवाई।

आभूषण और मुक्तामाल'[८१] के साथ-साथ 'इँडुरि पिंडुरी वारकर' उनकी आरती करती हैं[८२]। राखी बाँधनेवाले 'द्विजवर' के साथ-साथ अन्य ब्राह्मणों को खूब दान-दक्षिणा दिये जाने की बात सूरदास,[८३] परमानंददास,[८४] कुंभनदास,[८५] नंददास,[८६] चतुर्भुजदास[८७] और गोविंदस्वामी[८८] ने कही है। एक अन्य पद में परमानंददास ने गर्ग जी को दक्षिणा में मुक्तामाल दिये जाने का उल्लेख किया है[८९]। 'रक्षा-बंधन' के त्योहार के अवसर पर विविध वस्त्राभूषणों से अपने आराध्य का शृंगार कराना भी परमानंददास[९०] और कुंभनदास[९१] नहीं भूले हैं। गोविंदस्वामी ने तो वस्त्राभूषणों

'आनंदे बृजराज जसोदा' मानो अधन निधि पाई—परमा० ७६६।

ग. बरस दिवस की कुसल मनावति 'बिप्रनि देत बधैया'।
चिरजीयौ मेरो कुँवर लाड़िलो परमानंद बलि जैया—परमा० ७६७।

घ. .... असीस देत गुरुजन सब द्विजबर—नंद०, परि०, ८०।

ङ. करत वेद मंगल धुनि हरखत दे आसीस सुभ जान।
'चिरजीओ नँदलाल कन्हैया' ब्रज जन जीवन प्रान—गोविं० २२१।

८१. 'नारिकेल अंबर आभूषन वारति' मुकता-माल के—छीत० ६७।

८२. 'इँडुरी पिंडुरी' वारति मुख पर जननी लेति बलैया।
'आरती उतारत मुख पर' गोविंद बलि बलि जैया—गोविं० २२०।

८३. 'दछिना बहुत द्विजनि को दीनी'—'सूर-निर्णय' से उद्धृत, पृ० २४०।

८४. 'नंद देत दछिना याइन सँग', मंगलचार बधायो—परमा० ७६८।

८५, 'बिप्र बुलाइ दई बहु दच्छिना—कुंभन० १२६।

८६. 'दक्षिना देत नंद' पाय लागत—नंद०, परि०, ८०।

८७.क. बिप्र बुलाइ दई बहु दच्छिना—चतु० १३४।
ख. बिप्रनि को दच्छिना बहु दीनी—चतु० १३५।

८८. हरषि हरषि कै 'देत बिप्रनि को हीरा मानिक दान'—गोविं० २२१।

८९. 'रच्छा बंधन करत गरग गुरु' नंद महर कें आए।
× × ×
मुक्ता माल अतिवर सुन्दर 'रच्छा बंधन' दच्छिना पाई—परमा० काँक० १२९८।

९०. बहु सिंगार सजे आभूषन गिरिधर हलधर भैया—परमा० ७६५।

९१.क. बसन बिबिध आभूषन साजें पीताम्बर बनमाल कें।
'मृगमद, अगर, घनसार, अरगजा लावति मदन गोपाल कें'।
कुंभनदास प्रभु गोबर्धनधर-उर राजत मनिमाल कें—कुंभन० १२५।
ख. 'बिबिध सिंगार' किए पट भूषन—कुंभन० १२७।

से अलंकृत करके उनको सोने के सिंहासन पर आसीन कराया है[६२]। इस अवसर पर ताल, किन्नरी, ढोल, दमामा, भेरि, मृदंग, शंख आदि बजाये जाने की बात परमानंददास[६३] और गोविंदस्वामी ने लिखी है[६४]।

माता का वात्सल्य त्योहार के शुभ अवसर पर पुत्र के लिए अनेक प्रकार के व्यंजन तैयार करने को प्रेरित करता है। परमानंददास और कुंभनदास की यशोदा भी भाँति-भाँति के व्यंजन, मेवा, पकवान आदि प्रस्तुत करके पुत्र से उनका स्वाद लेने का आग्रह करती हैं[६५]। इस प्रकार बड़े आनंद से 'रक्षाबंधन' का त्योहार संपन्न होता है और सब नंददास के स्वर में स्वर मिलाकर श्रीकृष्ण को आशीर्वाद देते हुए विदा होते हैं कि जब तक सूर्य, चंद्र और आकाश हैं तब तक वे सुखपूर्वक जीवित रहें[६६]।

ख. *दशहरा*—आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को मनाया जानेवाला यह त्योहार मुख्यतः क्षत्रियों का माना जाता है जिसका वर्णन सूरदास और छीत स्वामी को छोड़ कर सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। 'दशहरा'[६७] या 'दसेरा',[६८] 'दसमी',[६९] 'बिजय-दसमी',[३००] 'बिजय सुदिन'[१] आदि कहकर अष्टछापी कवियों

६२. सकल सिंगार बिचित्र बिराजत सँग सोभित बल भैया।
कनक रचित 'सिंघासन बैठे' तहाँ मिले गोप के छैया—गोविं० २२०।
६३. 'ताल किन्नरी ढोल दमामा भेरि मृदंग बजावो—परमा० ७६८।
६४. 'ताल मृदंग संख' धुनि बाजत सुनत ब्रज बधू छैया—गोविं० २२०।
६५.क. 'सकल भोग आगे धरि' राखे तनक जु लेहु कन्हैया—परमा० ७६५।
ख. 'मधु मेवा पकवान मिठाई आरोगो' प्रभु धैया—परमा० ७६७।
ग. नाना भाँति 'भोग आगै धरि' कहति जैंउ बल भइया—कुंभन० १२७।
६६. नंददास प्रभु जियो तहाँ लों ज्यों लों चंद सूरज मारुतधर—नंद०, परि०, ८०।
६७.क. आज 'दसहरा' सुभ दिन नीकौ—कुंभन० २४।
ख. आजु 'दसहरा' सुभ दिन आयो—चतु० २८।
६८. आजु 'दसेरा' परम मंगल दिन—गोविं० ५०।
६९. सरद रितु सुभ जानि अनूपम 'दसमी को दिन' आयो री—परमा० २०७।
३००.क. धनि दिन आजु 'बिजयदसमी' कौ—कुंभन० २५।
ख. 'बिजयादसमी' सुभ मंगल दिन—चतु० २९।
ग. 'बिजयदसमी' अरु बिजय महूरत—गोविं० ५१।
१. 'बिजय सुदिन' आनन्द अधिक छबि मोहन बसन बिराजत—परमा० २०५।

ने इस त्योहार का वर्णन किया है और परमानंददास के एक पद में तो इस त्योहार के 'सरद रितु' के आरंभ में मनाये जाने की बात कही गयी है[2] और दूसरे में तिथि, मास आदि का भी उल्लेख हुआ है[3]।

'दशहरे' या 'विजय-दशमी' के दिन नये वस्त्राभूषण पहनकर जौ के अंकुर या 'जबारे' धारण करने की बात अनेक कवियों ने कही है। परमानंददास की माता यशोदा 'केसर-सोंधी जल से पुत्र को अच्छी तरह स्नान कराती' और सुन्दर पाग, 'जरकसी' बाग आदि वस्त्र तथा अनेक आभूषण पहनाती हैं[4]। एक अन्य पद में परमानंददास ने श्रीकृष्ण के सर पर पाग, माथे पर तिलक और कानों में कुंडल, बायीं ओर लटकते हुए 'जबारे' और कमर में मणिमय छुद्रघंटिका का वर्णन करते हुए कहा है कि प्रिय पुत्र का यह मनोहारी रूप देखकर माता यशोदा बड़े दुलार से बलैया लेती हैं[5]। तीसरे पद में श्यामसुन्दर के 'शृंगारे' जाने की[6] और चौथे में बाग-पाग के साथ ललित आभूषण पहनाये जाने की तथा व्रजबालाओं और माता यशोदा की प्रसन्नता की बात भी परमानंददास कहते हैं[7]। कुंभनदास ने लाल पाग-

२. 'सरद रितु सुभ जानि' अनूपम दसमी कौ दिन आयौ री—परमा० २०७।

३.क. आस्विन मास सुभग दसमी सुक्ल पच्छ' घरी सुखकंद—परमा० २०८।

ख. 'आसौ मास सुभ मंगल दसमी'—परमा० काँक० ११७६।

४.क. 'केसर सौंधी घोरि' जननी प्रथम लाल अन्हवायो री।
नाना बिधि के भूखन अभरन अंग सिंगार बनायो री।
'पाग पिछौरा' और उबटना 'बागो' बिचित्र धरायो री—परमा० २०७।

ख. 'केसर सौंधी घोरि' जसोदा प्रथम न्हवाये कान्ह गोबिन्द।
नाना बिधि सिंगार 'पाग बनी जरकसी बागो' पहिरन छंद—परमा० २०८।

५. सीस 'पाग' रही बाम भाग पर लटकि 'जबारे' छाजत।
तिलक तरल द्वै रेख भाल पर कुंडल तजत न द्वै कानन।
मुख की सोभा कहाँ लौं बरनौं मगन होत मन मानन।
कटि पट 'छुद्र घंटिका' मनिमय सोहत जोहत मन मोहत।
परमानन्द निरखि नँदरानी लेत बलैया दोऊ हथ—परमा० २०५।

६. सबै सिंगारत स्याम सुंदर को तन-मन-धन सब वारे री—परमा० काँक० १७७६।

७. 'सुदिन सुमंगल जानि' जसोदा लाल को पहिरावत बागे।
अंग-अंग भूखन ललित मनोहर लटकनि 'बारे पागे'॥
ब्रज-सुंदरि निरखि मन हरखतिं मगन होतिं मन फूलत।

धारी श्रीकृष्ण के मृग-मद के टीके का वर्णन करते हुए अन्य ग्वाल-बालों के भी 'बनि-बनि' अर्थात् 'सज-धजकर' आने की बात कही है[८]। चतुर्भुजदास अपने आराध्य को श्वेत जरी का वह पाग पहनाते हैं जिसमें लाल 'कलँगी' लगी है। 'तनसुख का बागा' पहने, कुंडल आदि धारण किये श्रीकृष्ण के रूप-वर्णन में वे अपने को असमर्थ पाते हैं[९]। गोविंदस्वामी ने गिरिधर का शृंगार 'लाल सूथन', 'सेत चोलना', 'जरकसी कुलह' आदि से कराया है। पश्चात्, कुंकुम का तिलक लगाकर उनके सिर पर 'जव-अंकुर' रखे जाने की बात कही है[१०]। एक दूसरे पद में गोविंदस्वामी ने कुंकुम - तिलक और 'जवारे'-धारी श्रीकृष्ण को 'उतुंग अश्व' पर चढ़े बताया है[११]।

दशहरे के अवसर पर 'समी' वृक्ष की पूजा करने का भी माहात्म्य है। इसका उल्लेख अष्टछापी कवियों में केवल कुंभनदास ने किया है[१२]। अन्य त्योहारों के समान, दशहरे पर भी व्रजबालाओं द्वारा गीत या मंगलगान गाये जाने की बात

रूप रासि रस रसिक लाड़िलौ देखे तन मन लूलत ॥
'मैया देखति लेति बलैया' मुख चुंबति सचु पावति—परमा० २०६।

८. ग्वाल बाल सब बनि-बनि आए, नंद-नँदन तामें सोभित नीकौ।
'लाल पाग झीनी, रँगभीनी ता-मधि लसत मृग-मद कौ टीकौ'—कुंभन० २५।

९. 'स्वेतजरी सिर पाग' लटकि रही 'कलँगी तामें लाल'।
तनसुख कौ बागौ' अति राजत कुंडल झलक रसाल।
अंग-अंग छबि कहाँ लौ बरनों नाहिंन बरन्यो जात—चतु० ३०।

१०. 'बिजय दसमी अरु बिजै महूरत' श्री बिट्ठल गिरिधर पहिरावत।
करि सिंगार बिचित्र भाँति कौ निरखि निरखि नैननि सुख पावत।
'सूथन लाल अरु सेतु चोलना कुल्है जरकसी' अति मन भावत।
बिबिध भाँति भूषन अँग सोभित केकी गुंजा पहरावत।
साजि कनक नग धार हाथ लै कुंकुम तिलक लिलाट बनावत।
अच्छत दै जब अंकुर सिर पर निरखि निरखि मन मोद बढ़ावत—गोविं० ५१।

११. आजु दसेरा परम मंगल दिन धरें जवारे गोबर्धनधारी।
कुंकुम तिलक सुभाल बिराजै अच्छत सोभा लागत भारी।
अस्व उतुंग चढ़े नँदनंदन चले कुदावत महा सुखकारी—गोविं० ५०।

१२. कुंभनदास प्रभु बिट्ठलेस, 'पूजत बृच्छ समी को'—कुंभन० २५।

परमानंददास,[१३] चतुर्भुजदास[१४] तथा गोविंदस्वामी[१५] ने कही है। वस्त्राभूषणों से अलंकृत पुत्र की सुंदर छवि की आरती माता यशोदा स्वयं या व्रजबालाओं के साथ करके तन-मन वारती और मोतियों का हार निछावर करती हैं[१६]। त्योहार के इस शुभ अवसर पर लाड़ले पुत्र से जो 'मन भावे' सो खाने की बात बड़े दुलार से परमानंददास[१७] माता यशोदा से कहलाते हैं। गोविंदस्वामी ने भी 'बहुत भोग और बीरा' उनके आगे धरे जाने की बात लिखी है[१८]।

ग. *दीपावली*—हिंदुओं का तीसरा बड़ा त्योहार 'दीपावली' है जिसका संबंध मुख्यत: 'वैश्य' अर्थात् व्यापारी-वर्ग से है। 'दीपावली' का मुख्य त्योहार तो कार्तिक कृष्ण अमावस्या को होता है, परन्तु इसके विभिन्न उत्सवों का प्रारम्भ दो दिन पूर्व हो जाता है और दो दिन पश्चात् तक वे चलते रहते हैं। इस प्रकार पाँच दिन मनाया जानेवाला यह त्योहार कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को 'धनतेरस' से आरंभ होता है, दूसरे दिन को 'रूप-चतुर्दशी', 'नरकाचौदस' या 'छोटी-दीवाली' कहते हैं। अमावस्या को 'बड़ी दीपावली' होती है। उसके दूसरे दिन 'अन्नकूटोत्सव' होता है जिसका संबंध श्रीकृष्ण के गोवर्द्धन-धारण-प्रसंग से माना जाता है। पाँचवें दिन को 'भाई दूज' या 'यम-द्वितीया' कहते हैं। 'दीपावली' के इन पाँचों दिनों में से किसी का वर्णन छीतस्वामी ने नहीं किया है, शेष अष्टछापी कवियों में से प्राय: सबने एक-एक दो-दो पदों में उनकी चर्चा की है।

अ. *धनतेरस*—वर्षा ऋतु के पश्चात् होने के कारण 'दीपावली' के पूर्व ही घर-द्वार की सफाई और लिपाई-पुताई कर ली जाती है तथा 'धनतेरस' के दिन से

१३. परमानंद-प्रभु बिजयादसमी 'व्रजजन मंगल गायो री'—परमा० २०७।
१४.क. व्रजभामिनि मिलि 'मंगल गायो'—चतु० २८।
ख. 'मंगल गावति' सब व्रजनारी—चतु० २९।
१५. व्रजभामिनि मिलि 'मंगल गावतिं'—गोविं० ५१।
१६.क. मात 'जसोदा करति आरती', वारति हार देति मोतिनि कौ—कुंभन० २४।
ख. कनक थार कर लिएँ आरती व्रजभामिनि मिलि मंगल गायौ—चतु० २८।
ग. 'आरति करतिं देतिं न्यौछावर' मंगल गावतिं सब व्रजनारी—चतु० २९।
१७. कहति जसोदा सुनो मेरे लाला 'जोई जोई भावै तिहारे मन'।
'सोई सोई भोजन करो दोऊ भैया' गावत गुन तहँ परमानंद—परमा० २०८।
१८. 'बहोत भोग बीरा धरि आगे'—गोविं० ५१।

घर की सजावट शुरू हो जाती है, नयी-नयी वस्तुएँ खरीदी जाती हैं और बड़े उत्साह से 'दीपावली' के स्वागत का आयोजन किया जाता है। इस त्योहार का वर्णन परमानंददास और कुंभनदास ने अत्यंत संक्षेप में किया है। परमानंददास 'धनतेरस' के दिन का उल्लेख नहीं करते, परन्तु कुंभनदास ने 'कार्तिक बदि तेरस' के दिन इस त्योहार के होने की बात लिखी है[१९]। नंदरानी द्वारा 'धन धोवने' की बात कहकर दोनों कवियों ने 'धनतेरस' का वर्णन प्रारंभ किया है[२०]। कुंभनदास ने इसके अनंतर नंदरानी आदि के सोलहों शृंगार करने का उल्लेख किया है;[२१] परन्तु परमानंददास के अनुसार 'धनतेरस' के दिन गर्ग मुनि बुलाये जाते हैं, वेद-विधि से पूजा होती है और ठौर-ठौर पर 'घृत-दीप' सँजोये जाते हैं। पश्चात्, धूप-दीप-नैवेद्य अर्पित करके निष्ठापूर्वक त्योहार मनाया जाता है[२२]।

अ. *रूपचतुर्दशी*—कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को 'रूपचतुर्दशी' या 'नरका चौदश' कहा जाता है। इसका वर्णन-अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास ने किया है। दीपावली या 'दिवाली' से एक दिन पूर्व पड़ने के कारण उन्होंने इसे 'छोटी दिवाली' कहा है[२३]। यह दिन शारीरिक स्वच्छता से विशेष संबंध रखता है; इसीलिए 'रूपचतुर्दशी' को भली भाँति स्नान करके वस्त्राभूषण धारण किये जाते हैं। परमानंद-दास ने भी अपने आराध्य को दूध से स्नान कराने के पश्चात् उनका शृंगार कराया है और वे 'लाल बागे' के साथ 'जरकसी कुलह' धारण करते हैं[२४]। उनकी सुंदर छवि देखकर व्रजवासी अत्यंत मुदित होते और हृदय से उनको आशीर्वाद देते हैं[२५]।

१९. 'कातिक बदि तेरस' दिन उत्तम गावति मंगल बानी—कुंभन० ४८।
२०.क. 'धनतेरस रानी धन धोवति'—परमा० २५१।
ख. आज माई, 'धन धोवति नँदरानी'—कुंभन० ४८।
२१. 'नव सत साजि' सिंगार अनूपम आपु करति मनमानी—कुंभन० ४८।
२२. 'गर्ग बुलाइ बेद-बिधि पूजति' ठौर ठौर 'घृत दीप सँजोवति'—परमा० २५१।
२३. 'छोटी दिवारी' काल मनाये—परमा० २५२।
२४. 'दूध सौ सनान करौ मनमोहन' छोटी दिवारी काल मनाये।
करो सिंगार 'लाल तन बागो कुल्हे जरकसी' सीस धराये—परमा० २२५।
२५. वह छबि देखि देखि ब्रज जन ही 'देत असीस' आपनी मन भाये—परमा० २५२।

इ. *दीपमालिका*—कार्तिकी अमावस्या को मनाये जानेवाले इस त्योहार को सूरदास[२६] ने एक पद में तथा परमानंददास[२७] ने दो पदों में 'दीपमालिका' कहा है और एक में इसका लोक-प्रचलित नाम 'दिवारी' या 'दिवाली' दिया है[२८]। 'दीपक-पंक्ति' के अर्थ में भी 'दोपमालिका' का उल्लेख सूरदास के एक पद में हुआ है जो 'सरद' की कार्तिकी अमावस्या को मनायी जाती है[२९]। 'दीपक की पंक्ति' के अर्थ में 'दीपावलि' या 'दीपावली' की चर्चा यद्यपि छीतस्वामी के अतिरिक्त प्रायः सभी कवियों ने की है, तथापि 'दीपमालिका' दिवस के लिए प्रचलित 'दीपावलि' या 'दीपावली' नाम कदाचित् किसी के काव्य में नहीं मिलता। चतुर्भुजदास, नंददास और गोविंदस्वामी तो 'दीपक-पंक्ति' के वर्णन में भी मौन हैं; परन्तु 'हटरी' में बैठे अपने आराध्य के दर्शन सबने कराये हैं। वर्तमान काल में 'दीपावली' के त्योहार पर मुख्यतः 'लक्ष्मी-गणेश' का पूजन होता है; परन्तु अष्टछाप-काव्य में इसकी ओर कहीं संकेत नहीं किया गया है। हाँ, सूरदास ने 'दीपमालिका' के त्योहार का वर्णन 'दीपों' की उस 'पंक्ति' के साथ किया है जिसकी 'दीप्ति' 'कोटि रवि-चंद्र' जैसी है जिसके कारण निशि की कालिमा बिल्कुल मिट गयी है। सारा गोकुल जैसे मणियों से मंडित है; सभी भवनों पर मणियों-मुक्ताओं की झालरें लटक रही हैं और गजमोतियों तथा प्रवालों से 'चौक पुराये' गये हैं[३०]। परमानंददास अन्य त्योहारों के समान 'दीपमालिका' का वर्णन भी अधिक विस्तार से करते हैं। उनकी यशोदा पुत्र से चंदन-चोवा का लेप शरीर में करके समस्त वस्त्राभूषण धारण करने को कहती हैं[३१]। फिर वे पुत्र को पिता की आज्ञा लेकर बहुत से दीपक बालकर घर में

२६. आजु दीपति दिव्य दीपमालिका—सा० ८०६।
२७.क. आज 'कुहू की राति' माधौ 'दीपमालिका' मंगलचार—परमा० २६१।
ख. आज 'अमावस दीपमालिका' बड़ी परबिनी है गोपाल—परमा० २६२।
२८. आज 'दिवारी' मंगलचार—परमा० २५३।
२९. 'सरद-कुहू निसि जानि', दीपमालिका बनाई—सा० ८४१।
३०. आजु दीपति दिव्य दीपमालिका।
मनहु 'कोटि रबि-चंद्र' कोटि छबि मिटि जो गई निसि कालिका।
'गोकुल' सकल बिचित्र 'मनि मंडित' सोभित झाक झब झालिका।
'गज-मोतिनि के चौक' पुराये बिच बिच 'लाल प्रबालिका'—सा० ८०६।
३१. कहत जसोदा सुनो मनमोहन चन्दन लेप सरीर करो।

उजाला करने को प्रवृत्त करती है[३२]। मनमोहन ने माता की आज्ञा का पालन किया; कुछ ही देर में हीरे-मणियों के दीप चारों ओर जगमगाने लगे और रात्रि का घना अंधकार दूर हो गया[३३]। नंदकुमार के साथ व्रज की युवतियों के मंगल गाने और चौक 'पुराने' का वर्णन भी परमानंददास ने किया है[३४]।

कुंभनदास का दीप-वर्णन भी विशेषतायुक्त है। उनको गोकुल के दीपक आकाश के नक्षत्रों-से प्रतीत होते हैं जिनमें नंदराइ-रचित अगणित बत्तियाँ अद्भुत जुगति से जल रही हैं[३५]। कुंभनदास के अनुसार उन दीपकों का घृत भी सामान्य न होकर कपूर आदि की विविध सुगंधों से युक्त है[३६]। 'दीपमालिका' के अवसर पर सूरदास ने राधा के साथ-साथ समस्त व्रज-बालिकाओं के भी शृंगार का वर्णन करते हुए बताया है कि वे कंचन के थालों में झलमलाती ज्योतिवाले दीप तथा अन्य सामग्री लेकर गाती-बजाती नंद जी के द्वार जाती हैं और वहाँ अपूर्वानंद छा जाता है[३७]। कुंभनदास के अनुसार केवल नंद के द्वार पर ही नहीं, सारे 'घोष' में इतना

पान फूल चोवा दिव्य अंबर 'मारमिला' लै कंठ धरो—परमा० २६१।
'विशेष'—'मारमिला' एक आभूषण होता है—लेखिका।

३२. कहत जसोदा सुनो मनमोहन अपने 'तात की आग्या लेहु'।
'बारौ दीपक' बहुत लाड़िले करौ उजियारो आपुन गेहु—परमा० २६२।

३३.क. दीपावलि हीरा मनि राजत देखि 'हरख होत अति माई'—परमा० २६३।
ख. दीपदान दीपावलि देखौ 'हीरा दीप खंभ नग राजत'।
'जगमग जोति रही' चहुँ दिसि ते निबिड़ तिमिर अति भाजत—परमा० २६४।

३४. आजु दिवारी मंगलचार।
व्रज जुवतिजन मंगल गावतिं 'चौक पुरावत' नंदकुमार—परमा० २५३।

३५. देखो इन दीपनि की सुंदराई।
मानो 'उडुगन राजत नभ-मंडल', तम-निसि परम सुहाई।
'नंदराइ अगनित बाती रचि', अद्भुत जुगति बनाई—कुंभन० ५१।

३६. 'बिबिध सुगंध कपूर आदि मिलि घृत' परिपूरनताई—कुंभन० ५१।

३७. बर सिंगार बिरचि राधा जू चलीं सकल व्रज-बालिका।
'झलमल दीप समीप सौंज भरि' लै कर कंचन थालिका।
करी प्रगट मदनमोहन पिय थकित बिलोकि बिसालिका।
गावति हँसति गवाय हँसावति पटकि-पटकि करतालिका।
'नंद-द्वार आनंद बढ़्यौ' अति देखियत परम रसालिका—सा० ८०१।

आनंद है कि वह किसी के हृदय में नहीं समा पाता[३८]।

इसके अनंतर 'हटरी' का प्रसंग आता है जिसका वर्णन छीतस्वामी के अतिरिक्त सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। सूरदास ने बलराम के साथ श्रीकृष्ण को 'हटरी' में बैठाया है। 'पिस्ता, दाख, बादाम, छुहारा, खुरमा, खाजा, मठरी' आदि मेवा-मिठाई-पकवान उनके पास धरे हैं। घर-घर से आकर स्त्री-पुरुष, गोपी-ग्वाल वहाँ एकत्र हो गये हैं। श्रीकृष्ण उनका नाम ले लेकर बुलाते और मेवा, मिठाई, पकवान आदि देते हैं। व्रज की स्त्रियाँ उनको आशीर्वाद देती हैं और माता यशोदा सबको 'पट' आदि देकर अत्यंत प्रसन्न होती हैं[३९]।

परमानंददास के गिरिधर 'हटरी' या 'हटरिया' में मधु, मेवा, पकवान और मिठाई लेकर 'बेचने' बैठते हैं तथा व्रज की सुंदरियाँ वस्त्राभूषण से अलंकृत होकर 'सौदा' लेने आती हैं[४०]। प्रेम के आवेश में 'सौदा' खरीदनेवाली कोई सुंदरी उनसे मुस्कराती हुई कहती है—जरा सावधानी से 'सौदा' देना और पूरी 'तौल' तौलना[४१]। दूसरी भी हँसकर कहती है—मोहन, मेरी चीज कहीं कम न तौल देना[४२]। व्रज की उन सुन्दरी बालाओं की बात माता यशोदा को कुछ खटक जाती

३८. घर-घर घोष परम कौतूहल, आनंद उर न समाई—कुंभन० ५१।

३९. सुरभी कान्ह जगाय खरिकहि 'बल-मोहन बैठे हैं हटरी'।
पिस्ता दाख बदाम छुहारा खुरमा खाझा गूझा मटरी।
घर-घर तैं नर-नारि मुदित मन गोपी ग्वाल जुरे बहु ठट री।
टेरि-टेरि जब 'देति सबनि कौं' लै-लै नाम बुलाइ निकट री।
'देतिं असीस सकल ब्रज-भामिनि' जसुमति देति हरषि बहु पट री—सा० ८१०

४०.क. गिरिधर हटरी भली बनाई।
दीपावलि हीरा मनि राजत देखि हरख होत अति माई।
भाँति अनेक पकवान बनाये अति नौतन ब्यंजन सुखदाई।
सुन्दर भूखन पहिरे सुन्दरि 'सौदा करन लाल सों आई'—परमा० २६३।
ख. 'बैठे लाल हटरिया बेचत' मधु मेवा पकवान मिठाई।
देखि-देखि सोभा ब्रज-सुन्दरि 'सौदा लेन लाल सों' आई—परमा० २६४।

४१. 'सावधान ह्वै सौदा कीजै' जो 'दीजै तो तौल पुराई'।
राखो चित चंचल नहिं कीजै ग्वालिनि हँसि मुस्काई—परमा० २६३।

४२. मृदु मुसकाय कहत मोहन सों 'घटि जिन तोलौ' लाल—परमा० २६४।

है और वे उन्हें टोकती हैं—ये कैसी बातें कर रही हो तुम सब; लेकिन दूसरे ही पल उनके हार्दिक भाव को समझकर प्रीति से पुलकित हो जाती हैं[४३]। परंतु अंतर्यामी श्रीकृष्ण को प्रेमभरी ग्वालिनों की बात जरा भी बुरी नहीं लगती और वे सबकी इच्छा पूरी करते रहते हैं[४४]।

चतुर्भुजदास और गोविंदस्वामी द्वारा वर्णित 'हटरी'-प्रसंग भी कुछ-कुछ ऐसा ही है। उनके गिरिधर जब 'हटरी' में विराजमान हैं तभी व्रज-बालाएँ भाँति-भाँति की मेवा ले आती हैं। उधर रोहिणी और यशोदा 'डला' भर-भरकर पकवान लाती हैं और भारी भीड़ में से नाम लेकर सबको बुलाकर श्याम अपने हाथ से मिठाई देते हैं[४५]। गोविंदस्वामी के 'गोपाल' 'रतन-जटित' हटरी में बैठते हैं जिसमें मोतियों की झालरें लटक रही हैं। पास ही भाँति-भाँति के पकवान धरे हैं जिनके साथ पान-फूल भी 'नँदलाल' बाँट रहे हैं। जहाँ गोपाल की यह 'पैंठ' लगी है और वे 'बेंच' रहे हैं, वहीं व्रज की अनेक बालाएँ चितचोर के निकट प्रेम की 'पाल' में बँधी आ जाती हैं और उनका दर्शन करके संतुष्ट होती हैं[४६]।

नंददास के 'हटरी'-प्रसंग में कुछ विशेषता है। उनके व्रजनाथ अकेले नहीं,

४३. कैसी बोली बोलति ग्वालिनि कहत जसोदा माई।
परमानंद हँसी नन्दघरनी सबै बात मैं पाई—परमा० २६३।

४४. परमानंद प्रभु नँदनंदन बिहँसे और सब व्रज की बाल—परमा० २६४।

४५. गिरिधर 'बैठे हटरी' सोहत।
व्रज की बाल सबै ले आईं भाँति-भाँति कर 'मेवा तोलत'।
बहुत भाँति पकवान 'डला भरि' लै-लै रोहिनी जसुमति डोलति।
भीर भई कहुँ ठौर न पावत लै-लै नाम सबन कौ बोलत।
देत मिठाई स्याम अपने कर 'पितर रीति कों जानि अमोलत'—परमा० ४२।

४६. 'हटरी बैठे' श्री गोपाल।
रतन जटित की हटरी बनी है मोतिनि झालरि परम रसाल॥
ढरुराढरु कुली और कुल्हैया भरि-भरि धरे पकवान रसाल।
'पान फूल अरु सोंधे सहित' सब बाँटत हैं नंद के लाल॥
रामावलि प्रेमावलि ललिता चंद्रावलि व्रज मंगल बाल।
चलो सखी, जहाँ पैंठ लगी है बेंचत हैं गोकुल के गोपाल॥
सब सुंदरि घर-घर तें आईं निरखति नैन बिसाल।
गोविंद-प्रभु पिय चित चोर्यो तब 'बँधी हैं प्रेम की पाल'—गोविं० ६६।

सखाओं के संग मेवा, पकवान, मिठाई आदि बाँटते हैं जिसकी सूचना पाकर सखियाँ दर्शन करने चलने का परस्पर प्रस्ताव करती हैं। पश्चात्, वे उनकी आरती करके मन में अत्यन्त प्रफुल्लित होकर 'न्योछावर' भी देती हैं[४७]। इसी प्रकार नंददास के एक दूसरे पद में विविध वस्त्राभूषण पहनकर, माथे पर चंदन लगाकर श्रीकृष्ण पिता नंद के साथ 'हटरी' में बैठते हैं और मेवा, मिठाई आदि मँगा-मँगाकर बाँटते हैं[४८]।

ई. *अन्नकूट : गोवर्द्धन और गोधन-पूजा*—कार्तिकी अमावस्या को 'दीपमालिका' का त्योहार मनाने के 'पाँचक' दिन पहले सुरपति की पूजा का स्मरण होने पर[४९] 'अन्नकूट' का आयोजन किये जाने का वर्णन सूरदास ने किया है और उनकी यशोदा इंद्र से कृष्ण को अमर कर देने का वरदान माँगती हैं[५०]। श्रीकृष्ण के प्रयत्न से सुरपति के स्थान पर गोवर्द्धन की पूजा होती है और उस समय पर्वत के समान ही 'अन्नकूट' रचकर[५१] उसका भोग लगाया जाता है। ब्रजवासियों की उपेक्षा से अप्रसन्न होकर सुरपति सात दिन तक ब्रज पर प्रलय-जलदों के द्वारा वर्षा

४७. 'हटरी बैठे' श्री ब्रजनाथ।
अपने संग-सखा सब लीने, बाँटत मेवा हाथ।
भाँति-भाँति पकवान मिठाई, बिधि सौं धरे बनाइ।
चलौ सखी, देखन कौं जैयै, सुख सोभा अधिकाइ—नंद०, पदा०, पृ० ३३४।

४८. 'दीपदान दै हटरी बैठे नंद बाबा के साथ'।
नाना बिधि मेवा मँगाई, बाँटत अपने हाथ॥
बिबिध सिंगार पहिरि पट-भूषन औ चंदन दिये माथ।
'नंददास' प्रभु सगरिनि आगे, गिरिगोबर्धननाथ—नंद०, पदा०, पृ० ३३४।

४९. येई हैं कुलदेव हमारे।
× × ×
दीपमालिका के दिन पाँचक गोपिनि कहौ बुलाई।
× × × ×
सूरदास सुरपति की पूजा तुम सबहिनि बिसराई—सा० ८१२।

५०. 'अन्नकूट-बिधि करत लोग सब', नेम सहित करि-करि पकवान।
महरि 'बिनै कर जोरि इंद्र सौं', सूर अमर करि दीजै कान्ह—सा० ८१६।

५१.क. 'अन्नकूट ऐसौ रचि राख्यौ, गिरि की उपमा पाइ'—सा० ८३२।
ख. 'अन्नकूट जैसौ गोबर्धन', अरु पकवान धरे चहुँ कोदन—सा० ६०८।

कराता है; परंतु श्रीकृष्ण के गिरि गोवर्द्धन उठा लेने से उसकी एक नहीं चलती और अंत में वह अपनी धृष्टता के लिए उनसे सविनय क्षमा माँग लेता है[५२]। 'अन्नकूट' का उत्सव संभवतः उसी पौराणिक प्रसंग की स्मृति में आज भी मनाया जाता है।

परमानंददास ने इंद्र के स्थान पर गोवर्द्धन-पूजा के अवसर पर 'अन्नकूट' का वर्णन किया है[५३] जिसमें अनेक प्रकार के व्यंजन, पकवान आदि बनाये गये हैं[५४]। कुंभनदास ने इस अवसर पर विविध बाजे बजने, ग्वाल-मंडली के साथ 'ध्वजा', 'पताका', छत्र, चमर आदि होने की बात लिखी है[५५]। उनका गोप-वृन्द 'षटरस' व्यंजनों का भोग लगाकर, विविध उपहार चढ़ाकर प्रदक्षिणा भी करता है[५६]।

चतुर्भुजदास ने गोवर्द्धन-पूजा का वर्णन बड़े विस्तार से किया है। गिरिधर को गंगाजल से नहलाने, दूध चढ़ाने, अरगजा चरचने, धूप-दीप-नैवेद्य समर्पित करने, भोग लगाने, बीरा देने, आरती करने[५७] और प्रदक्षिणा के पश्चात् न्योछावर देने[५८] की बात उन्होंने कही है। गोवर्द्धन-पूजा के प्रसंग में परमानंददास, कुंभनदास,

५२. सुरपति चरन पर्यौ गहि धाइ—सा० ६७७।

५३.क. 'अन्नकूट बहु भाँति बनावत' रचि पकवानन की ढेरी—परमा० २५५।

ख. 'अन्नकूट धर्यौ भौन सो' काहे कौन बखाने।
बहु बिधि के पकवान बिबिध करि सम्मुख आने—परमा० २७२।

५४. 'परमानंद-सागर', पद २७२।

५५. ध्वजा, पताका, छत्र, चमर धरें करत कुलाहल ग्वाल—कुंभन० ५२।

५६. गोबर्धन पूजत परम उदार।
गोप-बृन्द मोहन-मोहन के सोभा बढ़ी अपार।
षटरस बिंजन भोग सकल लै धरत बिबिध उपहार।
'पूजा करि पाँइ लागि प्रदछिना देत दिवावत ग्वार'—कुंभन० ५४।

५७. बड़ेन कों आगें लै गिरिधर श्री गोबर्धन-पूजन आवत।
'मानसी गंगा न्हवाइ' नखसिख तें पाछें 'दूध धौरी कौ नावत'।
'बहुरि पखारि, अरगजा चर्चित, धूप, दीप, बहु भोग भरावत'।
'दै बीरा आरती करत हैं' ब्रजभामिनि मिलि मंगल गावत—चतु० ४३।

५८. परिकम्मा करि, बार-बार सब मुख निरखत है सब ही समाजु।
'आरती करत' देत न्यौछावरि मुदित फिरत है गोप समाजु—चतु० ४४।

चतुर्भुजदास और नंददास 'अन्नकूट' की चर्चा नहीं करते, परंतु सूरदास की तरह गोविंदस्वामी ने इस शब्द का प्रयोग अवश्य किया है[५९]। अपने दो-तीन पदों में 'गोवर्द्धन-पूजा' भी उन्होंने बड़े विधान से लिखी है। ताल, मृदंग, शंख, बीन आदि बजाते ग्वाल-बालों, और वस्त्राभूषणों से अलंकृत कोकिल कंठों से गीत गाती हुई व्रजबालाओं के साथ श्रीकृष्ण गोवर्द्धन-पूजा को जाते हैं। तदनंतर गंगाजल और दूध से गिरिवर को नहलाने एवं रोली-चंदन चढ़ाने के पश्चात् तुलसीमाल पहनाने, धूप-दीप-विधि करके पीतांबर उढ़ाने तथा पकवान, मिठाई आदि का भोग लगाने का वर्णन गोविंदस्वामी के एक पद में हुआ है[६०]। दूसरे पद में उन्होंने विविध व्यंजनों के विवरण के साथ-साथ पूजा के 'नीराजन' आदि अन्य आयोजनों का भी उल्लेख किया है[६१]।

गोवर्द्धन-पूजा का जैसा वर्णन अष्टछापी कवियों ने ऊपर किया है, लगभग उसी रीति से 'अन्नकूटोत्सव' आज भी मनाया जाता है। अंतर यह है कि गोवर्द्धन के स्थान पर कहीं तो उसकी गोबर की प्रतिमा बनाकर पूजा की जाती है और कहीं श्रीकृष्ण या ठाकुर जी अथवा देवता की। जितने प्रकार के व्यंजन, पकवान मिठाई, फल, मेवा आदि इस 'अन्नकूट' के दिन जुटाये जाते हैं, संभवतः उतने किसी भी दूसरे त्योहार में नहीं होते। खरीफ की फसल कटने के दिन होने के कारण यत्र-तत्र एकत्र अन्न-राशि का प्रतीक भी 'अन्नकूटोत्सव' माना जा सकता है।

गोवर्द्धन-पूजा-प्रसंग में परमानंददास ने एक पद में 'गोधन' की महिमा

५९. पाक साक 'बिंजन बहु अन्नकूट कीनो'—गोविं० ६८।
६०. गोबर्धन पूजा कों आए सकल ग्वाल किये संग।
बाजत ताल मृदंग संख धुनि बेला बीन उपंग॥
नव सत साजि सिंगार चलीं ब्रज-तरुनी अपने रंग।
गावत गीत मनोहर बानी उठत है तान तरंग॥
'अति पवित्र गंगाजल' लेकें ढारत गोकुलचंद।
ता ऊपर पुनि लै 'धौरी कौ पय डारत' आनंद॥
'रोरी चंदन चर्चन करि के तुलसी-माल पहिरावत'।
धूप-दीप बिधि सों सबै करि पीतांबर लै उनहिं ओढ़ावत॥
भोजन करि पकवान मिठाई लै-लै गिरि को भोग भरावत—गोविं० ६९।
६१. 'गोविंदस्वामी-पद-संग्रह', पद ७०।

का वर्णन करते हुए उसको माता, पिता, गुरु एवं कामनापूरक कामधेनु आदि कहा है[६२]। इसी 'गोधन' का पूजन और क्रीड़न दीपमालिका के दूसरे दिन किये जाने की बात परमानंददास ने लिखी है[६३]। उनके एक दूसरे पद में व्रजनाथ माता से धौरी आदि धेनुओं को सिंगारने की बात कहते हैं[६४]। मोहन ने धौरी धेनु और 'बडरे' वृषभ का शृंगार किया है।[६५]। कभी वे उनके सींग सोने से और पीठ 'पत्र' से मढ़वाकर 'घंटा-कठुला' पहनाते हैं,[६६] कभी अन्य रीतियों से सींग मढ़वा कर उनके गले में हार पहनाकर, घंटा बँधवाकर चरणों में नूपुर पहनाते हैं और इस प्रकार सजी-सजायी गैयाँ बड़ी भली लगती हैं[६७]। 'स्रवन'-पूँछ उचकाकर गैयों का भागना, गोपाल का उनको पकड़ना, चुमकारना, 'गुर-भेली' खिलाना आदि बातों का भी परमानंददास ने स्वाभाविक वर्णन किया है[६८]।

६२. गोधन पूजें गोधन गावैं।
 गोधन के सेवक संतत हम गोधन ही को माथों नावैं॥
 गोधन मात पिता गुरु गोधन, गोधन देव जाहि नित ध्यावैं।
 गोधन कामधेनु कल्पतरु गोधन पै माँगे सोई पावैं॥
 गोधन खिरक खोरि गिरि गहबर रखवारो घर बन जहँ धावैं।
 'परमानंद' भावतो गोधन, गोधन को हमहूँ पुनि भावैं—परमा० २७८।

६३. 'आज कुहू की राति' माधौ दीपमालिका मंगलचार।
 × × ×
 'गो क्रीड़न पुनि काल्हि होयगी' नंदादिक देखेंगे आय।
 परमानंददास संग लीने खिरक खिलावत धौरी गाय—परमा० २६१।

६४. हँसि ब्रजनाथ कहत माता सों 'धौरी धेनु सिंगारो' जाय।
 परमानंददास को ठाकुर जाहि भावत निसिदिनि गाय—परमा० २६२।

६५. 'धौरी धेनु सिंगारी मोहन बडरे बृषभ सिंगारे'।
 परमानंद प्रभु राई दामोदर गोधन के रखवारे—परमा० २५७।

६६. 'सोने सींग' घंटा अरु कठुला 'पीठ पत्र' समुदाई—परमा० २५४।

६७. स्याम खरिक के द्वार 'करावत गायन को सिंगार'।
 नाना भाँति सींग मंडित किये ग्रीवा मेले हार॥
 घंटा कंठ मोतिनि की पतियाँ पीठिन की आधै औधार।
 'किंकिनि नूपुर चरन बिराजत बाजत चलत सुढार'॥
 यह बिधि सबै गाय सिंगारी सोभा बड़ी अपार—परमा० २५८।

६८. सब गायनि में घूमरि खेली।

कुंभनदास, चतुर्भुजदास, नंददास और गोविंदस्वामी ने 'गो-क्रीड़ा' का वर्णन परमानंददास की तरह विस्तार से नहीं किया है। कुंभनदास के नंदनंदन की वाणी सुनकर 'धौरी' खेलने को अकुलाने लगती है[६९]। श्रीकृष्ण ने पैंजनी, मेंहदी और 'पुरट' या सोने से गैयों का जो श्रृंगार किया है उसका वर्णन कौन कर सकता है[७०] ? चतुर्भुजदास 'धौरी' की अकुलाहट का वर्णन तो कुंभनदास की तरह ही करते हैं;[७१] एक बात अवश्य उन्होंने नयी लिखी है। जब श्रीकृष्ण गाय 'खिलाने' जाना चाहते हैं तब गैयों की अपार भीड़ देखकर माता उन्हें जाने से रोक लेती है। श्रीकृष्ण के रुकते ही समाचार मिलता है कि बिना लाल के 'धूमरि' ने भी खेलना बंद कर दिया है और बार-बार 'हूँक' कर इधर-उधर दौड़ती है; तभी श्याम प्रफुल्लित होकर मुरली बजाने लगते हैं[७२]।

'स्रवन पूँछ उचकाइ' सूधि ह्वै ग्वाल भजावत फिरत अकेली।
पकरि लई गोपाल आप ही कंठ बनावत सेली।
चुम्बत मुख आटो भरि भेटी टेर कहत 'लाओ गुर-भेली'॥
'आप गोपाल खवाय खिलावत' सब गायन को हेली।
परमानंद देखे बनि आवै जब धौरी की बछिया झेली—परमा० २५६।

६९. खेलन को धौरी अकुलानी।
डाढ मेलि आतुर सनमुख ह्वै, नँद-नंदन की सुनि मृदु बानी—कुंभन० ४९।

७०. कियो है सिंगार धेनु सगरिनि कौ, करि सकै कौन बखान।
× × ×
पाँइ पैंजनी, मेंहदी राजति, पीठि पुरट के पान—कुंभन० ५०।

७१. खेलन कों धौरी अकुलानी।
डाढ मेलि आतुर सनमुख ह्वै स्याम सुंदर की सुनि मृदु बानी—चतु० ३७।
विशेष—यही पद कुंभनदास के नाम से भी मिलता है—देखिए 'कुंभनदास-पद-संग्रह', पद संख्या ४९—लेखिका।

७२. गाइ खिलायो चाहत गिरिधर 'बरजत हैं नँदराई'।
धेनु बहुत ठाढ़ी हैं मोहन! देखि हूक क्यों धाई॥
राखे हैं रखवार चहूँ दिसि ब्रजराजा न पत्याई।
जसोदा रानी और रोहिनी यह सिख भवन सिखाई।
'बिना लाल खेलति नहीं धूमरि' जब ऐसी सुधि पाई।
हूँकि-हूँकि कै ऊपर धावति लै लकुटी और हटाई॥
हँसि मुसिकाइ स्याम घन सुंदर मुरली मधुर सुनाई—चतु० ३९।

उ. *भाई-दूज*—'दीपावली' के तीसरे दिन का त्योहार भाई-दूज है जिसका वर्णन अष्टछापी कवियों में केवल गोविंदस्वामी ने किया है। माता यशोदा इस दिन बहन सुभद्रा को न्योता देकर बुलाती हैं। तब वे दोनों भाइयों को उबटन लगाकर नहलाती और नये वस्त्राभूषण पहनाती हैं। सुभद्रा तिलक करके दोनों की आरती उतारती है। पश्चात्, 'खीचरी', दही, भात आदि के थाल सामने रक्खे जाते हैं। भोजन के अंत में 'बीरी' दी जाती है। दोनों सुभद्रा को प्रणाम करते हैं और वह उन्हें 'असीस' देती है[७३]।

पाँच दिन तक मनाये जानेवाले इस 'दीपमालिका महामहोच्छव'[७४] पर जुआ या 'द्यूत' खेलने का भी चलन रहा है। अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास ने संकर्षन सहित नंदकुमार को 'द्यूत' खेलने का प्रोत्साहन दिया है[७५]।

घ. *होली*—फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनाये जानेवाले हर्षोल्लास से पूर्ण 'होली' के त्यौहार का वर्णन अष्टछाप - काव्य में सबसे विस्तार से हुआ है। सूरदास ने इस विषय को लेकर छोटे-बड़े लगभग सत्तर, कुंभनदास ने पंद्रह, नंददास ने बीस, चतुर्भुजदास और गोविंदस्वामी ने तीस-तीस पद लिखे हैं। परमानंददास और छीतस्वामी के तद्विषयक पदों की संख्या अवश्य कम है; प्रथम के केवल पाँच पद अलीगढ़ के 'परमानंदसागर' में दिये गये हैं और द्वितीय के केवल दो पद काँकरौली से प्रकाशित संग्रह में। खोजने पर इन कवियों से और पदों के मिलने की

७३. भाई-दूज जानिकैं जसुमति बहनि सुभद्रा न्योति बुलावति।
उबटि न्हवाये दोऊ भैया 'बागो अतलस लाल बनावति'।
'चीरा बाँधि हरो सिर ऊपर आभूषन बहु बिधि पहिरावति'।
'खीचरी दही भात थारनि धरि' रोहिनी पे सब साज मँगावति।
'कीनों तिलक सुभद्रा तबहीं नीराजन करि हरख बढ़ावति'।
जेंवत हैं बलराम प्रीति सों माँगि लेत जो मन में भावति।
'मुख पखारि बीरी हरि लेके' बहिनि पानि दे 'पुनि सिरु नावत'।
देत असीस सदा चिरुजीयो गोबिंद बिमल बिमल जसु गावत—गोविं० ८०।

७४.क. दीपमालिका 'महामहोच्छव' ग्वालनि लेहु बुलाई—परमा० २७६।
ख. दीपमालिका 'महामहोच्छौ' ग्वालनि लेहु बुलाइ—कुंभन० ५५।

७५. आज 'कुहू की राति' माधौ दीपमालिका मंगलचार।
'खेलौ द्यूत सहित संकर्षन' मोहन मूरति नंदकुमार—परमा० २६१।

आशा है। कृष्णदास का पूर्ण संग्रह प्रकाशित न होने के कारण होली-विषयक उनके पदों की निश्चित संख्या नहीं दी जा सकती।

होली का त्योहार पंद्रह दिन तक चलते रहने की बात सूरदास ने लिखी है और दो पदों में प्रत्येक तिथि को लेकर उसका विधिवत् वर्णन किया है[७६]। सूरदास की तरह गोविंदस्वामी ने भी होली की पंद्रहों तिथियों के खेल और विनोद के क्रम का वर्णन एक पद में बहुत विस्तार से किया है[७७]। 'सारावली' में भी होली का वर्णन दैनिक क्रम से मिलता है[७८]। इस त्योहार का प्रारंभ वसंतपंचमी से किया गया है और सूरदास ने इस ऋतु की शोभा का बहुत सुन्दर वर्णन कई पदों में किया है[७९]। परमानंददास वसंतपंचमी तिथि और उसके बुधवार का उल्लेख करते हैं[८०]। कुंभनदास ने 'श्रीपंचमी' के शुभ दिन, शुभ घड़ी और शुभ मुहूर्त में वृन्दावन में गुलाल के उड़ने और लाल के गाने की बात कही है[८१]। गोविंदस्वामी ने एक पद में 'वसंतपंचमी' को 'मनोज-महोच्छव' कहा है;[८२] परंतु विधिवत् होली के मनाये जाने का वर्णन करने की आवश्यकता उन्होंने संभवतः नहीं समझी। होली खेलने के पश्चात् स्नानादि का वर्णन भी अष्टछापी कवियों ने बहुत सामान्य रूप से किया है। वस्त्राभूषणों और भोजन के व्यंजनों की चर्चा भी इस प्रसंग में नहीं की गयी है; हाँ, दान और न्यौछावर की बात वे अवश्य कहते हैं जिसकी चर्चा पीछे की जा चुकी है। कुंभनदास ने वसंत की सुन्दरता का वर्णन दो पदों में किया

७६. देखिए 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद २६१४-१५।

७७. देखिए 'गोविंदस्वामी-पद संग्रह', पद ११८।

७८. देखिए 'सूर-सारावली', छंद १०५१ से छंद १०८५।

७९. देखिए 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद २८४३ से २८५५ तक।

८०. 'आज मदन-महोच्छव राधा'।
मदनगोपाल बसन्त खेलत हैं नागर रूप अगाधा।
'तिथि बुधबार पंचमी मंगल रितु कुसुमाकर आई'—परमा० ३३१।

८१. सुभ दिन, सुभ घरी, सुभ मुहूरत, साधि राधिका
'श्री पंचमी' सदा ही बधाई ब्रज-राज-लाल।
बृन्दाबन कुंज-धाम, बिहरत प्रिया-संग स्याम,
उड़त गुलाल, लाल गावत बेनु रसाल—परमा० ६५।

८२. 'पंचमी आजु मनोज-महोच्छव' मंगल चित्र बनावहीं—गोविं० १०४।

है[८३]। चतुर्भुजदास का भी वसंत-वर्णन कुछ पदों में मिलता है[८४]। उन्होंने 'हेमंत' बीतने और जाड़े का अंत होने पर 'वसंत' आने की बात कही है[८५]। छीतस्वामी की होली-चर्चा केवल दो पदों में है; फिर भी 'ऋतुराज' की सरस ऋतु का वर्णन करके रसिकवर और नवल नागरी के फाग का उन्होंने उल्लेख कर दिया है[८६]।

'सूरसागर' में 'होली' का आरंभ वसंत ऋतु का आगमन देख गोपियों के मन में 'फागु' खेलने की साध के उदय होने से हुआ है। व्रजबालाएँ अपनी 'साध' श्रीकृष्ण पर प्रकट करती हैं और वे भी अपना हर्ष व्यक्त करके जैसे उसकी स्वीकृति देते हैं[८७]। गोविंदस्वामी ने वसंत के आगमन पर मोहन के 'बेनु' बजाने की बात कही है जिसे सुनकर सखियाँ, राधा को मान छोड़कर और शृंगार करके प्रियतम से मिलने को उत्साहित करती हैं[८८]। उधर कृष्ण पिता के पास पहुँचते हैं और होली

८३. देखिए 'कुंभनदास पद-संग्रह', पद ६८-६६।

८४. देखिए 'चतुर्भुजदास-पद-संग्रह', पद ७० से ७२।

८५. 'आगम भयौ नई रितु कौ' सखि, जबतें बिदा भयौ हेमंत।
बिरहिनि के भागन तें सजनी! आवत है चल्यौ री! बसंत।
मन सिहाय पर-तीय भलें भरि भावरिं लियो ताहि कौ कंत।
चतुर्भुज प्रभु पिय तारी बजावत या 'जाड़े कौ आयो अंत'—चतु० ७३।

८६. रसिक फागु खेलैं नवल नागरी सों 'सरसबर रितु-राज की रितु आई'।
पवन मंद अरबिंद, मौर कुंद बिकसे बिसद चंद, पिय नंद-सुत सुखदाई।
मधुप-टोल मधु लोल संग संग डोल पिकनि बोल निरमोल स्तुतिनि चारु गाई।
रचित रास सों बिलास जमुना पुलिन में सघन बृन्दाबिपिन रही फूलि जाई।
—छीत० ५६।

८७.क. कुहू कुहू कोकिला सुनाई। सुनि सुनि नारि परम हरषाई।
बार-बार सो हरिहिं सुनावति। रितु बसंत आयौ समुझावतिं।
फागु-चरित-रस साध हमारैं। खेलहिं सब मिलि संग तुम्हारैं।
सुनि-सुनि सूर स्याम मुसुकाने। रितु बसंत आयौ हरषाने—सा० २८४३।
ख. आयौ आयौ पिय रितु बसंत। दंपति मन सुख बिरह अंत।
फागु खेलावहु संग कंत। हा हा करि तृन गहति दंत—सा० २८५१।

८८. चलो री, बृन्दाबन बसंत आयौ'। स्रवन सुनो हो आली मोहन बेनु बजायो।
'मान तजि' बेगि मिलो राधा रानी। करि सिंगार कबहुँ फिरि बोलो मधुरी बानी।
द्रुम प्रफुलित भए तहाँ कुसुम बेली। रोस छाँड़ि चलो संग किये जु सहेली।
—गोविं० १०५।

खेलने की आज्ञा चाहते तथा 'पिचकारी' माँगते हैं। नंद जी प्रसन्न होकर 'कंचन-रत्न' की अनेक 'पिचकारियाँ' गढ़वा देते हैं। यही नहीं, लगभग सहस्र मन केसर, कस्तूरी, अरगजा आदि भी वे मँगा देते हैं[८९]।

ब्रजबालाएँ 'बनठन' कर आती हैं[९०]। उन्होंने सुंदर साड़ी पहनी है, कंचुकी कसी है, नयनों में काजल दिया है[९१]। इस प्रकार उन्होंने नख-शिख तक सारा शृंगार किया है[९२]। सोलहों शृंगार किये अपने-अपने द्वार पर खड़ी ब्रजबालाएँ 'कुमुदिनी-कुमारी' सी जान पड़ती हैं[९३]। कुंभनदास ने भी गोपियों के 'बनठन और सजधज' कर होली खेलने आने का वर्णन किया है[९४]। नंददास की गोपियाँ भी 'ठाट' बनाकर होली खेलने जाती हैं[९५]। उनकी राधा को सखियाँ यह कहकर प्रोत्साहित करती हैं कि तेरे बिना न कुँवर कान्ह खेल रहे हैं और न गोपियों का दल ही अपने 'राजा' अर्थात 'रानी' या 'नेत्री' के बिना खेलना चाहता है। तब राधा हँसकर पिचकारी लेकर उसी तरह तैयार होती है जैसे कोई राजा

८९. खेलत मोहन फाग भरे रँग। डोलत सखा-समूह लिये सँग।
'नंदराइ सौं बिनती कीनी'। स्याम एक की आज्ञा लीन्ही।
'अगनित तब पिचकारि गढ़ाईं। कंचन रतन बबा पै पाईं।
'मन सहसक केसरि' लै दीन्हो। असित सुगंध अरगजा लीन्हौ—सा० २८६२।

९०. सब बनि ठनि आईं ब्रज की बाल—सा० २४४६।

९१. सारी पहिरि सुरंग, कसि कंचुकि, काजर दै दै नैन।
'बनि-बनि' निकसि-निकसि भईं ठाढ़ी, सुनि माधौ के बैन—सा० २८६०।

९२. सकल सिंगार कियौ ब्रज-बनिता नख-सिख लौं भल ठानि—सा० २८६१।

९३. सुनि सब नारि निकसि ठाढ़ी भईं, अपनैं अपनैं द्वारि।
'नवसत सजे प्रफुल्लित आनन, जनु कुमुदिनी कुमारि'—सा० २८६६।

९४.क. 'आइ बनि-बनि सकल घोष की सुन्दरी' पहिरें तन कनक नव चीर पट आभरन।
—कुंभन० ७०।

ख. देखि बसंत समै ब्रज-सुंदरि तजि अभिमान चली बृन्दाबन।
सुंदरता की रासि किसोरी नवसत साजि सिंगार सुभग तन—कुंभन० ७१।

ग. नव बसंत साजि आईं ब्रज की बाल साजें भूषन, बसन-अंग, तिलक भाल।
—कुंभन० ७३।

९५. उततैं सब सुंदरि जुरि आईं, करि करि अपनौ ठाट—नंद०, पृ० ३३६।

समर की ललकार सुनकर बैठा नहीं रह सकता[६६]। एक पद में नंददास ने कृष्ण के 'बनठन' कर, 'टिपारो' और मोरमुकुट धारण करके फाग खेलने जाने का वर्णन किया है[६७]। उनकी गोपियाँ भी किशोरी, गोरी, 'भोरी', 'प्रेम-रंग में बोरी' और 'एक डार की तोरी' सी हैं[६८]। चतुर्भुजदास की गोपियाँ भी नाना वेशों में सुशोभित होती हैं[६९]। उन व्रजबालाओं के शृंगार का बहुत विस्तार से वर्णन चतुर्भुजदास के दो पदों में मिलता है। पहले में उन्हें 'लाल अँगियाँ, झूमक सारी, और नवहार' पहने बताया गया है। उनके बड़े-बड़े बालों की वेणी नितंबों पर डोलती है, मृगमद की आड़ी रेखा ललाट पर सोहती है और आँखें आँजी हुई हैं। उनके पदों में 'जेहरी', कटि में 'किंकनी' और पदों में 'बिछुवे' हैं जिनकी झंकार गली-गली में सुनायी देती है। शीश पर रंग भरे और कंचन-कुंभ लिये वे नंदराइ के दरबार जाती हैं[४००]। दूसरे पद में गोपियों का शृंगार और भी विस्तार से वर्णित

९६. खेलति नहिं कोउ कान्ह कुँवर सौं जोहति तेरी बाट।
'बिन राजा दल कौन काज कौ', उठि छाँड़िये ऐंड़।
उमग्यौ निधि लौं नवल नंद कौ, रोकत रावरी मैंड़।
उठि बिहँसी बृषभान कुँवरि बर, कर पिचकारी लेत।
सहि न सकत कोउ महासुभट बर, सुनत समर संकेत—नंद०, पृ० ३३६।

९७. 'आज बनि-ठनि फाग खेलन निकस्यौ नंददुलारौ'।
फब्यौ है ललित भाल लाल के जटित लाल टिपारौ।
बड़रे बंक बिसाल, नयन छबि भरे इतराहीं।
बन्यौ है मंजुल मोर मुकुट, चलत देखत परछाहीं—नंद०, पृ० ३४०।

९८. 'उत बनी ब्रज नव किसोरी, गोरी रूप भोरी'।
'बोरी प्रेम रंग मैं, मानौं 'एक ही डार की तोरी'—नंद०, पृ० ३४०।

९९. जुवतीजन-समूह सोभित तहाँ पहिरे भूषन नाना भेस—चतु० ७१।

४००. गावत चलीं बसंत बँधावन नंदराइ - दरबार।
बानिक बनि चलीं चोख मोख सों ब्रजजन सब इकसार।
अँगिया लाल लसत तन सारी झूमक उर नव हार।
बेनी ग्रथित डुलति नितंबिनी कहा कहुँ बड़े बार।
मृगमद आड़ी बड़ेरी अँखियाँ आँजन अंजन पूरि।
प्रफुलित बदन हँसत दुलरावत मोहन जीवनमूरि।
पद जेहरि, केहरि कटि किंकिनी रह्यौ बिथकि सुनि मार।
घोष घोष प्रति गलिनि गलिनि प्रति बिछुवन के झंकार।

है। उसमें सुकुमारी राधा 'कंकन', किंकिनी, गज-मोती-हार, नकबेसरि, ताटंक, कंठश्री, चौकी, खुटिला आदि आभूषण पहने, सेंदुर तिलक दिये, केसर-आड़ बनाये, काजर लगाये और पान चबाये बतायी गयी है[1]। अन्य कवियों ने तो नंद या वृषभानु की पौरि पर रंग खेले जाने की बात लिखी है, लेकिन चतुर्भुजदास ने 'मनि-खचित' चौक में अद्भुत खेल मचने का उल्लेख किया है जो वस्तुतः देखने के योग्य था[2]।

इधर राधा, उधर गिरिधर; इधर गोपी, उधर ग्वाल; और 'फाग' का खेल आरंभ होता है[3]। 'फाग' खेलना वस्तुतः अंतर के अनुराग को ही प्रकट करना है[4]। 'कंचन' के कलश 'केसरि' से भरे गये हैं[5] और कंचन के 'माँटों' में सुगंध घोली गयी है[6]। तब नवलकिशोर, किशोरी राधिका और गोरी-गोरी गोपियों के साथ खेल

कंचन कुंभ सीस पर लीनें मदन सिंधु तें भरिकें।
ढाँपे हैं पीत बसननि जतन करि मौर मंजरी थरिकें—चतु० ७८।

१. स्रवन सुनत चली दौरि गृह-गृह तें ब्रजनारि।
तिनमें परम सुदेस श्रीराधा अति सुकुमारि।
बने चीर आभरन सब तन बिबिध सिंगार।
कंकन अरु किंकिनी उर गज-मोतिनि हार।
नकबेसरि ताटंक कंठसिरी अनुभाँति।
चौकी बनी जराइ दूरि करत रबि-काँति।
सेंदुर तिलक तँबोल खुटिला बने बिसेख।
सोहति केसरि-आड़ कुमकुम काजर रेख—चतु० ८०।

२. 'खेल मच्यौ मनि खचित चौक में' कहत कहा कहि आवै।
चत्रुभुज प्रभु गिरिधर नागर को देखत ही बनि आवै—चतु० ७८।

३.क. इत श्रीराधा उत श्रीगिरिधर, इत गोपी उत ग्वाल।
खेलत फागु रसिक ब्रज-बनिता, सुंदर स्याम तमाल—सा० २८५४।

ख. 'एक कोध गोबिंद ग्वाल सब, एक कोध ब्रजनारि—सा० २८६०।

ग. उतहिं संग 'सब ग्वाल लिये सुंदर नंदकुमार'।
'उत स्यामा नव जोबना' अंबुज लोचन चारु—सा० २८६७।

घ. 'इत गोपिनि कौ झुंड', 'उतहिं हरि-हलधर-जोरी'—सा० २८७०।

४. हरि-संग खेलति हैं सब फाग।
इहिं मिस करति प्रगट गोपी उर अंतर कौ अनुराग—सा० २८६०।

५. कनक कलस केसरि भरे—सा० २८६४।

६. कंचन माँट भराइ कै सौंधैं भरयौ कमोर—सा० २८६६।

में मग्न हो जाते हैं[७]। किसी के हाथ में अबीर है, किसी के चंदन, कोई 'रोली' लिये है और सब उमंग में भर-भरकर एक दूसरे पर रंग आदि छिड़कते हैं[८]। 'झूमक' गाती-गाती गोपियाँ नंद जी के द्वार पर इसलिए पहुँच जाती हैं जिससे हँसने-खेलने के इस पर्व पर श्रीकृष्ण के साथ मिलकर खूब आनंद मनाया जा सके[९]। नंद के द्वार पर श्रीकृष्ण के दर्शन न होने पर वे समझ जाती हैं कि 'रंग' के डर से वे घर में छिप गये हैं; तब वे उन्हें 'दरस दिखाने' के लिए 'नंद' जी की शपथ देती हैं[१०]। इसी समय छिपते हुए कृष्ण की एक झलक उनको मिल जाती है और राधा लपककर उन्हें 'अँकवारि' में भर लेती है। सब सखियाँ केसर के भरे हुए कनक-कलश लेकर दौड़ती और श्याम की 'पीत पिछौरी तथा पाग' रंग से सराबोर कर देती हैं[११] एवं उनकी प्रीति के वशीभूत होकर देह-गेह की सुधि भूल जाती हैं। पश्चात्, सब सखियाँ मिलकर महरि यशोदा के पास जाती हैं; होली के अवसर पर 'चार दिन' के लिए मोहन को 'माँगती' और कहती हैं कि उसके बाद अपने कृष्ण को ले लेना[१२]। श्याम के 'प्रकट' न होने और 'फगुआ' न मिलने पर जब वे 'गाली' गाने को तैयार होती हैं तब यशोदा उन्हें रोकती और कहती हैं—'गाली' मत दो और श्याम के 'बदले' में जो चाहो ले लो[१३]।

७. खेलत नवल किसोर किसोरी।
नंदनँदन बृषभानु-सुता चित, लेत परस्पर चोरी।
औरौ सखी जाल बनि सोभित, सकल ललित तन गोरी—सा० २८५८।

८.क. एक गुलाल अबीर लिये कर, इक चंदन इक रोरी।
उपरा उपरि छिरकि रस-रस भरि, 'कुल की परिमित फोरी'—सा० २८५८।

ख. माधव नारि नारि माधव कौं छिरकत चोवा-चंदन—सा० २८६१।

९. झुंडनि मिलि गावति चलीं, झूमक नंद-दुवार।
'आजु परब हँसि खेलियै', मिलि सँग नंदकुमार—सा० २८६४।

१०. 'मोहन, दरस दिखावहु, दुरहु तो नंद की आन'—सा० २८६४।

११. दुरत स्याम धरि पाइयो, राधा भरि अँकवारि।
कनक - कलस केसरि भरे, लै धाईं ब्रज-नारि।
भरहु भरहु सखि स्यामहीं, पीत पिछौरी पाग।
देह - गेह - सुधि बीसरी नँद - नंदन - अनुराग—सा० २८६४।

१२. सब 'सखियाँ मिलि गईं महरि पै, मोहन माँगैं देहु'।
'दिना चारि होरी कैं अवसर', बहुरि आपनौ लेहु—सा० २८६५।

१३. अब कहँ दुरे साँवरे ढोटा, फगुआ देहु हमारि।

नंददास ने राधा और उसकी सखियों के 'नंद-पौरि' पर होली खेलने की बात तो लिखी ही है,[१४] कृष्ण और उनके सखाओं का 'वृषभानु की पौरि' पर जाना भी बताया है। श्रीकृष्ण के आगमन की सूचना पाते ही किशोरियाँ दौड़ पड़ती हैं और राधा भी समाचार मिलते ही सखियों के साथ सोने की पिचकारियाँ लेकर भवन से निकल आती हैं[१५]। गोपगण दूध-दही से छके हुए, 'हो हो' बोलते, बगलों में पिचकारी दाबे, फेंट कसे और पाग सँवारे केसर के माट उड़ेलते फिरते हैं। छज्जों से छूटती हुई पिचकारियाँ 'बाखार-महल और अटारी' को रँगती हुई उन पर पड़ती हैं, तब नाना रंगों से रँग जाने पर बलदाऊ आदि को इधर-उधर भागते ही बनता है[१६]।

राधा ने नीलांबर और लाल कंचुकि धारण कर समवयस्क तरुणियों को साथ लिया और 'घन मध्य दामिनी-सी दमकती' सोलहों शृंगार किये सखियों के साथ सुशोभित हुई। सबके मुख में पान है, भाल पर बेंदी है और सुगंधित रंग भरे कनक कलश उनके साथ हैं। इस प्रकार वे व्रज की गलियों में घूमती हैं। घरों से निकल-निकलकर गोपियाँ उनके समूह में मिलती जाती हैं। उनके हाथों में तरह-तरह के रंगों से भरी पिचकारियाँ हैं। इसी समय सखाओं सहित श्रीकृष्ण से उनकी मुठभेड़ हो जाती है। बस, पिचकारियाँ चलने लगती हैं। कोई रंग छिड़कती है तो

'हँसि हँसि कहति जसोदा रानी, गारी मत कोउ देहु'।
सूरजदास स्याम के बदलैं, जो चाहौ सो लेहु—सा० २८६५।

१४. उत तैं सबै सखी जुरि आईं, प्रबल मदन के जोर।
खेल मच्यौ है नंद जू की पौरी, प्यारी राधा नंद किसोर—नंद०, पृ० ३३८।

१५. खेलत खेल जब 'रँगीलो लाल गये बृषभान की पौरि'।
जो हुती नवल किसोरी भोरी ते आईं आगे दौरि।
सुनि निकसी नव लाडिली श्रीराधा राज किसोरी।
ओलिन पोहोप पराग भरे रूप अनूपम गोरी—नंद०, पृ० ३६०।

१६. गारी होरी देत दिवावत। ब्रज मैं फिरत गोप-गन गावत।
दूध-दही के माते डोलैं। काहे न हो हो हो हो बोलैं।
बगलनि मैं दाबे पिचकारी। बाँधत फेटैं पाग सँवारी।
रुकि गए बाटनि नारे पैंड़े। नव केसरि के माट उलैंड़े।
'छज्जनि तैं छूटति पिचकारी। रँगि गईं बाखरि महल अटारी'।

कोई उसके लिए अवसर ताकती है। दौड़-धूप और धर-पकड़ होने लगती है। राधा और उसकी सखियाँ, कृष्ण और उनके सखाओं को देखकर 'बाँस' निकाल लेती हैं और 'मार' मच जाती है[१७]।

राधा अपनी सखियों के साथ कभी साधारण 'छरी' या बाँस लेकर 'कमल नयन' की ओर लपकती है[१८] और कभी सूरदास ने उनके सुकुमार हाथों के उपयुक्त 'कनक-लकुट' उन्हें दी है[१९]। गोपियों की 'मार' से हार कर गोप भागते

नाना रंग गए रँगि बागे। बलदाऊ इत उत ह्वै भागे—सा० २६०२।

१७.क. उतहिं सुनत बृषभानु सुता लई, तरुनि बोलि सब दिन थोरी की।
नीलांबर कंचुकि सुरंग तनु, अति राजति राधा गोरी की।
मनु दामिनि घन मध्य रहति दुरि, प्रगट हँसनि चितवनि भोरी की।
नख सिख सजि सिंगार ब्रज-जुवती, तनु डँड़िया कुँसुभी बोरी की।
पान भरे मुख चमकत चौका, भाल दिये बेंदी रोरी की।
कनक कलस कोटिक कर लीन्हे, भरि फुलेल रँग रँग घोरी की।
जुवतिबृन्द ब्रजनारि संग लै, जाइ गहनि ब्रज की खोरी की।
घर घर तें धुनि सुनि उठि धाईं, जे गुरुजन पुरजन चोरी की।
हाथनि लै भरि भरि पिचकारी, नाना रंग सुमन बोरी की।
कोउ मारति, कोउ दाउँ निहारति, अरस परस दौरा - दौरी की।
उतहिं 'सखा कर जेरी लीन्हे', गारी देहिं सकुच थोरी की।
इतहिं 'सखी कर बाँस लिये' बिच, 'मार मची' झोरा झोरी की।
—सा० २८७२।

ख. हरषत सब ग्वाल - बाल, अरस परस करत ख्याल,
इक मारत इक भाजत राजत बहु जोरी।
उततैं निकसी कुमारि, संग लिये बिपुल नारि,
कोउ कोउ नव जोबन भरी, कोउ कोउ दिन थोरी।
इत उत मुख दरस भयौ, पिय पूरन काम कयौ,
मानौ ससि उदै भयौ, आनंदित चकोरी।
उत जेरी धरे ग्वार, बाँसनि इत परी मार,
इहिं छबि नहिं बारपार, सोर झोर झोरी—सा० २८८६।

१८.क. 'लै लै छरी कुमारि राधिका' कमल नैन पर धाई—सा० २८५४।
ख. सुनत नारि मुसुकाइ 'बाँस लीने कर' धाई—सा० २८८१।

१९.क. 'कनक-लकुट करनि लिये', धाईं सब हरषि हिये,
ब्रज-ललना सूरज-प्रभु मन मन मिलि मोहन—सा० २८६०।

भी हैं[२०]। कृष्ण की होली-लीला से खीझ कर जब कोई गोपी उन्हें बाँस या लकुट से मारना चाहती हैं तब दूसरी उसे रोक कर कहती है—इन्हें मत मार; इनके सुकुमार शरीर पर चोट लग जायगी। इनकी माधुरी मूर्ति 'मारने' के लिए नहीं, 'अंचल' की ओट में रखने के योग्य है[२१]। ललिता और चंद्रावली पीछे से आकर हरि को पकड़ती और सब सखियाँ सिमटकर उन्हें घेर लेती हैं। कोई पीतांबर झटकती है, कोई मुरली छीन लेती है, कोई मुख से मुख मिलाती है और कोई उन्हें अंक में भर लेती है। कोई कहती है कि तुमने हमारे 'चीर' हरे थे; आज उसका बदला लेना है; इसीलिए राधा के पैर पड़ो, तभी तुम्हें छुटकारा मिलेगा[२२]।

इस प्रकार लाल-पीली अँगिया और साड़ी पहने, पान खाये, काजल लगाये ब्रज की गलियों में हरि के संग फाग खेलती और गाली गाती ब्रज-बालाएँ घूमती फिरती हैं[२३]। जब कभी वे श्याम को अपनी ओर आता देखती हैं, तब उन्हें पकड़ने की योजना बनाती हैं। ललिता एक 'खोरि' में छिप जाती है और श्याम के निकट आने पर दौड़कर पकड़ लेती है। तब वह उनसे कहती है—हमारे साथ अब तक तुमने जो ढिठाई की है, आज उसका फल जान लोगे। तब कोई गोपी मुरली छीनती है, कोई पीतांबर पकड़ती है, कोई उनके बाल गूँथकर बेनी बनाती है, कोई लोचन

ख. इत 'लिये कनक लकुटिया नागरि', उत जेरी धरे ग्वार—सा० २८६५।

२०. 'मारति बाँस' लिए उन्नत कर भागत गोप त्रियनि सौं हारी—सा० २८६३।

२१. खेलत में रिस ना करि नागरि, स्यामहिं लागै चोट।
मोहन हैं अति माधुरि-मूरति, राखिये अंचल-ओट—सा० २८६५।

२२. पाछे तैं ललिता चंद्रावलि, हरि पकरे भुज भरि कौरी की।
ब्रज जुवती देखतहीं धाईं, जहाँ तहाँ तैं चहुँ ओरी की।
इक पट पीतांबर गहि झटक्यौ, इक मुरली लई कर मोरी की।
इक मुख सौं मुख जोरि रहति, इक अंक भरति रति-पति ओरी की।
'तब तुम चीर हरे जमुना तट', सुधि बिसरे माखन चोरी की।
'अब हम दाउँ आपनौ लैहैं, पाइ परौ राधा गोरी की'—सा० २८७२।

२३. हरि सँग खेलन फागु चलीं।
चोवा चंदन अगरु अरगजा, छिरकति नगर-गलीं।
राती पीरी अँगिया पहिरे, नव तन झूमक सारी।
मुख तमोर, नैननि भरि काजर, देहिं भावती गारी—सा० २८७३।

आँजती है और इस प्रकार उनसे अपना 'बदला' लेती है[२४]। स्याम उसी समय 'चकमा' देकर भाग जाते हैं, तब गोपियाँ कहती हैं—आज भाग गये तो भाग जाओ; लेकिन हम अपना बदला जरूर लेंगी; तुमने हमें 'बेहाल' किया था, उसका 'फल' तुम्हें जरूर चखायेंगी। तुम भाग गये, नहीं तो तुम्हारा पीतांबर तभी मिलता जब 'हा-हा खाते' और पैर पड़ते।

उधर कृष्ण की 'वेणी' खोलते हुए सखा भी हँसी करते हैं—अपना पीतांबर गोपियों से लाते क्यों नहीं ? सखाओं के 'तानने' पर कृष्ण कहते हैं—अगर मैंने उनसे पीतांबर ले लिया तो मुझे क्या दोगे ? इतना कहकर उन्होंने एक 'सखा' को 'सखी' के वस्त्रादि पहनाकर गोपियों के बीच भेज दिया। उनकी भेजी हुई 'सखी' ने गोपियों से आकर कहा—देखो, पीतांबर मेरे पास सम्हालकर रखवा दो, कृष्ण को तब तक मत लौटाना जब तक अपना 'दाँव' न ले लो। गोपियों ने उस 'सखी' की बात से सहमत होकर ज्योंही उसे पीतांबर देना चाहा, त्योंही 'सखी' रूपी सखा झटककर पीतांबर ले गया और अपने दल में आकर कृष्ण को उसने वह सौंप दिया। गोपियाँ इस चतुरता पर चकित-सी रह गयीं[२५]।

२४. दुरि रही इक खोरि ललिता, उत तैं आवत स्याम।
धरे भरि अँकवारि औचक, धाइ आई बाम।
'बहुत ढीठौ दै रहे हो, जानबी अब आजु'।
राधिका दुरि हँसति ठाढ़ी, निरखि पिय मुख लाजु।
लियौ काहू मुरलि कर तैं, कोउ गह्यौ पट पीत।
सीस बेनी गूँथि, लोचन आँजि, करी अनीत—सा० २८७६।

२५. 'मोहन, गए आजु तुम जाहु दाँव हम लेहिंगी हो'।
'लालन हमहिं करे बेहाल, वहै फल देहिंगी हो'।
'आजुहिं दाँव आपनौ लेतीं, भले गए हौ भागि'।
'हा-हा करते पाइनि परते, लेहु पितंबर माँगि'।
बेनी छोरत हँसत सखा सँग, कहत लेहु पट जाइ।
सौंह करत हौं नंद बबा की, अपनी अपति कराइ।
'जो मैं लेहुँ पितांबर अबहीं कहा देहुगे मोहिं'।
इत उत जुवती चितवन लागीं, रहीं परस्पर जोहिं।
एक सखा हरि तिया-रूप करि, पठै दियौ तिन पास।
गयौ तहाँ मिलि संग तियनि कैं, हँसत देखि पट-बास।

परंतु राधा की सखियाँ भी कृष्ण के सखाओं से किसी प्रकार कम नहीं हैं। जिस प्रकार चालाकी दिखाकर कृष्ण ने उन्हें ठगा था, उसी प्रकार ठगने की योजना उन्होंने भी बनायी। एक गोपी ने नील पट ओढ़कर बलराम का वेश बनाया। अग्रज के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए जब कृष्ण 'साँकरी खोरी' में आये, तब बलराम-वेशधारिणी गोपी ने उन्हें पकड़ लिया और पलक झपकते ही सब सखियाँ भी वहाँ पहुँच गयीं। सबने अच्छी तरह कृष्ण को जकड़ लिया। इस प्रकार ठगे जाने पर श्याम के मुख का 'पानी' उतर गया; परंतु गोपियों ने इसकी ओर ध्यान न दिया और राधा रानी के पास उनको पकड़कर ले गयीं[२६]। पश्चात्, सब गोपियों ने मिलकर राधा के सामने ही कृष्ण को 'बधू' बनाया। लोचनों में अंजन लगाया, भाल पर बेंदी लगायी, बेनी गूँथी, माँग पारी, बार-बार 'बधू' कहकर बुलाया और बार-बार पैर पड़ाया। राधा उनका यह रूप देखकर हँसने लगी। उसने 'कुसुंभी सारी' अपने हाथ से 'प्रियतम' को पहना दी। तब किसी ने उनका हाथ पकड़ा, किसी ने 'चिबुक' पकड़कर मुख ऊपर उठाया, एक ने कोमल उँगलियों से अधर हिलाकर कहा—अब बोलते क्यों नहीं हो ? तभी किसी सखी ने उनकी गाँठ राधा से जोड़ दी। दूसरी ने अरगजे का कनक कलश उनके सर पर उँडेल दिया और सब सखियाँ ताली बजाकर हँसने लगीं। श्रीकृष्ण के इस प्रकार पकड़े और 'बनाये' जाने की बात जब नन्द जी को ज्ञात हुई तब उन्होंने यशोदा को

मोहिं देहु राखौं दुराइ कै, स्यामहिं जनि लै देहु।
लियौ दुराइ गोद मैं राख्यौ, दाँव आपनौ लेहु।
पीतांबर जनि देहु स्याम कौं, यह कहि चमक्यौ ग्वाल।
सूर स्याम पट फेरत कर सौं, चकित निरखि ब्रजबाल—सा० २८७७।

२६. 'एक सखी हलधर-बपु काछ्यौ'। चली नील पट ओढ़े आछौ।
स्याम मिलन ताकौं तहँ आए। अग्रज-कानि चले अतुराए।
मिले साँकरी ब्रज की खोरी। ढुकि रहीं जहाँ तहँ गोरी।
गह्यौ धाइ भुज दोउ लपटानी। दौरि परी सब सखी सयानी।
निरखि-निरखि तरुनी मुसुकानी। एक निलज, इक रही लजानी।
कहा रही करि सकुच दिवानी। अब इनकी जनि राखौ कानी।
गारि नारि सब देहिं सुहानी। नंद महर लौं जाति बखानी।
'उतर्यौ सूर स्याम-मुख-पानी। गईं लिवाइ जहँ राधा रानी'—सा० २८७८।

वहाँ भेजा। उन्होंने मेवा और वस्त्रादिक देकर राधा की सखियों से श्याम को छुड़ा लिया[२७]।

एक अन्य पद में सूरदास ने श्रीकृष्ण को पकड़ने के लिए गोपियों द्वारा बनायी गयी योजना का विस्तृत रूप दिया है कि किस प्रकार वे उनका 'घर' घेर लेती हैं; भीतर, बाहर, द्वारे, पिछवाड़े, सभी जगह वे एक-एक दो-दो छिपकर खड़ी होती हैं और तब अचानक धावा करके छिपे हुए कृष्ण को पकड़ लाती हैं। भाई को इस प्रकार 'बंदी' बनते देखकर भी बलराम कुछ नहीं बोलते और स्वयं अपने को बचाने के लिए चुपचाप सरक जाते हैं[२८]। पश्चात, श्रीकृष्ण की खूब 'दशा' बनायी जाती है, केसर-गुलाल मुख पर मला जाता है। पीले-लाल रंग भरे

२७. (ब्रज जुवती मिलि) नागरि, राधा पैं मोहन लै आई।
'लोचन आँजि, भाल बेंदी दै, पुनि-पुनि पाइ पराई'।
बेनी गूँथि, माँग सिर पारी, 'बधू-बधू' कहि गाई।
प्यारी हँसति देखि मोहन मुख, जुवती बनें बनाई।
स्याम-अंग कुसुंभी नई सारी, अपनैं कर पहिराई।
कोउ भुज गहति, कहति कछु कोऊ, कोउ गहि चिबुक उठाई।
'एक अधर गहि सुभग अँगुरियनि, बोलत नहीं कन्हाई'।
नीलांबर गहि खूँट-चूनरी, हँसि-हँसि गाँठि जुराई।
जुवती हँसति देति कर तारी, भई स्याम मन भाई।
कनक कलस अरगजा घोरि कै, हरि कैं सिर ढरकाई।
'नंद सुनत हँसि महरि पठाई, जसुमति धाई आई'।
पट-मेवा दै स्याम छुड़ायौ, सूरदास बलि जाई—सा० २८७९।

२८. एक द्यौस गोपी जुरि आईं। 'घरही मैं घेरे हरि जाई'।
इक भीतर इक रही दुवारैं। एक जाइ लागी पिछवारैं।
एक इहाँ चहुँ दिसि तें घेरे। एक पैठि मंदिर मैं हेरे।
एक लिये कर कमल बिराजै। पसरै किरनि कोटि ससि भ्राजै।
एक लिये सिर सौंधे गागरि। फेंट अबीर भरे बहु नागरि।
सारी सुभग काछ सब दिये। पाटंबर गाती सब हिये।
एकनि जाइ दुरे हरि पाए। सैन देइ राधिका बताए।
करत कुलाहल हरि गहि ल्याईं। फूलीं ज्यों निधनी धन पाई।
एक गहे कर दोऊ हरि के। 'हलधर देखि उतहिं कौं सरके'—सा० २८९२।

कलश उनके सिर से नाये जाते हैं और कोई तो उनके कान में ही पिचकारी छोड़े देती है[२९]।

कभी-कभी सखियाँ मोहन को पकड़कर उनका स्वाँग बनाने के साथ यहाँ तक उनसे हँसी-खेल करती हैं कि कोई उनके कपोल छूती है तो कोई उनका मुख चूमती है। कोई व्यंग्य करती है—बहुत गाल बजाया करते थे, अब कहो क्या कहते हो? दूसरी ताना मारती है कि हमारे वस्त्र-हरण करके तुमने कहा था, मेरा कोई क्या कर लेगा, आज उसी 'पाप' का फल इस प्रकार मिल रहा है। श्याम के सखा दूर पर खड़े अपने नायक की इस प्रकार बनायी जाती 'दशा' देख रहे हैं; परंतु उनसे कुछ करते-धरते नहीं बनता। इधर गोपियों ने उनका 'जुवती-स्वाँग' बनाया, पीतांबर आदि छीनकर साड़ी-कंचुकी पहनायी और 'नख-छत' की छाप बनाकर उनसे कहा—यह चिह्न भी लेते जाओ जिसे देख-देखकर तुम्हें हमारी याद आती रहे[३०]।

२९. केसरि अरु गुलाल मुख लायौं। पूरन चंद उदै करि आयौं।
पीत अरुन रँग नाए सिर तैं। चली धातु मनु साँवर गिरि तैं।
एक भरे पिचकारी ताके। देत स्रवन मैं नंदलला के—सा० २८९२।

३०. घेरि लई सब खोरि साँकरी, पकरे मदन गुपाल।
गह्यौ धाइ चंद्रावलि हँसि कै, 'कह्यौ, भले हो लाल'।
'जनि बल करौ, नैंकु रहौ ठाढ़े', जुरि आईं ब्रज-बाल।
'आईं हँसति कहति हरि येई, बहुत करत हे गाल'।
क्यों जू खबरि कहौ यह कीन्ही, करत परस्पर ख्याल।
'काहू तुरत आइ मुख चूम्यौ, कर सौं छुयौ कपोल'।
कोउ काजर, कोउ बंदन माँड़ति, हरषहिं करहिं कलोल।
कोउ मुरली लै लगी बजावन, मन भावन मुख हेरि।
किनहूँ लियौ छोरि पट कटि तैं वारत तन पर फेरि।
'स्रवननि लागि कहति कोउ बातैं, बसन हरे तेइ आप'।
'काल्हि कह्यौ, करिहौ कह मेरौ, प्रगट भयौ सोइ पाप'।
'कोउ नैननि सौं नैन जोरि कै, कहति न मो तन चाहौ'।
अबहीं तुम अकुलात कहा हौ, जानहुगे मन लाहौ।
घेरि रही सरधा की नाईं, करति सबै मन-लाह।
इक बूझति, इक चिबुक उठावति, बस पाए हरि नाह।

सखाओं ने श्याम का यह रूप देखा तो उन्हें भी विनोद सूझा; वे सब कृष्ण को पकड़कर, बलराम की सौंह दिलाकर, वैसे ही नंद जी के पास ले गये। पुत्र का 'युवती'-रूप देखकर नंद जी खूब हँसे। उन्होंने यशोदा को बुलाकर वह 'स्वाँग' दिखाया। यशोदा ने आकर पुत्र को गले लगाया और कुछ खीझ के साथ कहा—तेरा यह 'स्वाँग' किसने बनाया है ? फिर सारी बात समझकर वे हँसती हुई बोलीं—ये ग्वालिनें ऐसी ही हैं[३१]। जब गोपियाँ बलराम को पकड़कर बुरी तरह उनका स्वाँग बनाती हैं तब नँदरानी को उन्हें छुड़ाने के लिए मेवा आदि मँगाकर देना पड़ता है[३२]।

एक अन्य पद में तो गोपियाँ और भी आगे बढ़ जाती हैं। एक सखी झुँड से निकलकर किसी तरह हरि को पकड़ लेती है कि दस-बीस आकर उन्हें घेर लेती हैं और पीतांबर-मुरली आदि छीन ली जाती है। तब कोई मुख पर कुमकुमा मलती है, कोई गाली गाती है तथा राधा हँसकर उनकी आँख आँजती है। तभी कोई

पीतांबर मुरली लई तबहीं, जुवती स्वाँग बनाइ।
'देखत सखा दूरि भए ठाढ़े, निरखत स्याम लजाइ'।
नख-छत छाप बनाइ पठाए, जानि मानि गुन येहु।
सूर स्याम हमकौं जनि बिसरौ, चिन्ह यहै तुम लेहु—सा० २८९८।

३१. 'ग्वाल हँसे मुख हेरि कै, हलधर कौं लियौ टेरि'।
हो-हो करि-करि कहत हैं रहे चहूँघाँ घेरि।
'ऐसेहिं चलियै नंद पै, बल की सौंह दिवाइ'।
भुजा गहे तहँ लै गए, वह छबि बरनि न जाइ।
इत जुवती मन हरति हैं, उतहिं चले ह्वै भोर।
और सखी आईं तहाँ, करि-करि नैन चकोर।
'महर हँसे छबि देखि कै, सुनि जननी तहँ आइ'।
हँसि लीन्हौ उर लाइ कै, आनँद उर न समाइ।
कछुक खीझि कछु हँसि कह्यौ, किन यह कीन्हौ हाल।
लेति बलैया वारि कै, ये ऐसियै ब्रजबाल—सा० २८९९।

३२. दाऊ आजु भले बने, आए आँखि अँजाइ।
बहुरि सिमिटि ब्रज सुंदरी, (हो) पकरे गोकुलनाथ।
नव कुमकुम मुख माँड़ि कै, (हो) बेनी गूँथी माथ।
'तब नंदरानी बीच कियौ', (बहु) मेवा दियै मँगाइ—सा० २९००।

गोपियाँ कहती हैं—आज हम 'चीर-हरण' का बदला लेंगी; इसीलिए जिस प्रकार तुमने हमारे वस्त्र हरे थे, वैसे ही तुम्हें भी 'नंगा' करके छोड़ेंगी। कृष्ण यह बात सुनकर हँस पड़ते हैं; तब गोपी कहती है—इसे हँसी मत समझो; जब तक तुम 'हा हा' करके 'कुँवरि' के 'पाँइ' नहीं पड़ोगे, तब तक तुम्हें छुटकारा नहीं मिलेगा[३३]। यही बात सूरदास ने पुन: एक पद में विस्तार से लिखी है[३४]।

परमानंददास की गोपियाँ होली खेलने में सूरदास की गोपियों से पीछे नहीं हैं। कृष्ण के साथ होली खेलने का अवसर पाते ही उनको देह-दशा भूल जाती है। उनमें से कोई 'फगुवा' के लिए फेंटा गहती है, दूसरी ठठोली करती है, तीसरी आँख आँजकर भागती है और चौथी सखियों की लीलाएँ देखकर जरा मुँह मोड़कर हँसती है। पाँचवीं सखी मुरली छीन लेती है, छठी 'गारी' गाती है और सातवीं फुलेल, अरगजा, चोवा, कुंकुम आदि की गगरी से उनको नहला देती है[३५]। परमानंददास ने गोपियों के रूप और वेश का वर्णन भी बहुत विस्तार से करते हुए

३३. इक सखि निकसी झुंड तैं, तिनि पकरि लिये हरि हाथ।
बहुरि उठीं दस-बीस मिलि, धरि लिये आइ ब्रजनाथ।
इक पट पीतांबर गह्यौ, इक मुरली लई छँड़ाइ।
इक मुख मींड़हि कुमकुमा, इक गारी दै उठी गाइ।
प्यारी कर काजर लियौ, हँसि आँजति पिय की आँखि।
इहिं बिधि हरि कौं घेरि रही, ज्यौं घेरि रहीं मधु-माखि।
'अब तौ घात भली बनी, तब चीर हरे, जल तीर'।
'सो परिहस हम सारिहैं, सुनि लेहु ललन बलबीर'।
अब हम तुमहिं नँगाइहैं, मुसुकात कहा जदुराइ।
'की हमसौं हा हा करौ, की परहु कुँवरि कैं पाइ'—सा० १६०३।

३४. आँखि दिखावत हौ जु कहा तुम, करिहौ कहा रिसाइ।
'तब तुम अंबर हरे हमारे', कीन्हें कौन उपाइ।
'अब तौ दाउँ परयौ धरि पाए, छाँड़हिं तुमहिं नँगाइ'—सा० २६०७।

३५. मदन गुपाल लाल संग बिहरत देह दसा भूली भई बौरी।
एक गहत फेंटा फगुवा को एक करत ठाढ़ी जु ठठोरी।
एक जु आँखि आँजि कें भाजी एक बिलोकि हँसी मुख मोरी।
एकन लई छिनाय मुरलिका एक देति गारी मोहन कों सौंरी।
एक फुलेल अरगजा चोवा कुंकुम रस गगरीं सिर ढोरी—परमा० ३३३।

बताया है कि उनमें कोई गोरी है, कोई साँवली। कोई कुंडल पहने है तो कोई तिलक दिये है। किसी की 'चोली' अधखुली है तो किसी की चोली के बंद ही टूट चुके हैं। किसी की अलकावली बनी है तो किसी की लटें[३६]। ये गोपियाँ नाचती-गाती नंदजी के द्वार पर पहुँचती हैं[३७]।

चतुर्भुजदास ने भी गोकुल की नारियों के नंदराइ की पौरी पर 'जुरि आने' की बात कही है। उनके शृंगार का वर्णन भी कवि ने किया है। गोपियाँ 'कटाव की चोली' और 'झूमक सारी' पहने एवं कंठश्री, 'मखतूल', मोती और गजमोती के हार, कंकन, किंकिणी, नूपुर, खुटिला, खुभी, नकबेसरि आदि अनेक आभूषण धारण किये हैं। उनके मुख में पान, नैन में काजल और माँग में सेंदुर है। अलकावली और मृगमद की आड़ी रेखा से सुशोभित उनके मुखमंडल की सुंदरता का वर्णन करने में कवि अपने को असमर्थ पाता है[३८]। कनकवर्णी गोपियों के साथ होली खेलते गिरिधर छीतस्वामी को 'करिनी' संग 'गजराज'-से जान पड़ते

३६. खेलहिं ग्वालिनि ग्वारिया रसिक कान्ह सिरमौर।
'इक गोरी इक साँवरी एक चंदबदनी सोहे बाल'।
एकन कुंडल जगमगे एकन तिलक सुभाल।
'एकन चोली अधखुली एक रही बंद छूटि'।
एक अलकावलि उर धरे एक रही लट खूटि—परमा० ३३४।

३७. झुंडनि मिलि गावत चलीं झूमत नंद के द्वार।
नृत्य करें ब्रज-सुन्दरी मोहि लियो मन मार—परमा० ३३०।

३८. स्रवन सुनत सब गोकुल नारी, घर-घर तें उठि दौरी जू।
सजे समाज सबै जुरि आईं नंदराइ की पौरी जू।
पहिरें दिव्य 'कटाव की चोली', नौतन 'झूमक सारी' जू।
गुनियन बसे झूमक गावति परम भावती गारी जू।
बिबिध सिंगार बने सबहीं अँग भूषन नावें सीस जू।
'मुखहित बोल' नैन भरि काजर सेंदुर माँग सुदेस जू।
'कंठसिरी मखतूल' मोति अरु उर गज मोतिनि हार जू।
कर कंकन, कटि किंकिनी की छबि, पग नूपुर झनकार जू।
अलकावली आड़ मृगमद की बरनि सकै मुख भाँति जू।
खुटिला खुँभी रुचिर नकबेसरि दूरि करत रबि-काँति जू—चतु० ६२।

हैं[३९]। गोविंदस्वामी की गोपियाँ तनसुख की सारी, लाल कंचुकी, पीत 'अँतरोटा' आदि के साथ विविध आभूषण पहने हैं[४०]।

ग्वाल-बालों को अपनी ओर करके भी गोपियाँ कभी-कभी बड़ा काम निकालती हैं। एक दिन बलराम को अपनी ओर मिलाकर राधा उनसे कृष्ण को पकड़वा मँगवाती है। तब चंद्रावली लपककर कृष्ण का हाथ पकड़ती है, संभावली काजल ले आती है, ललिता लोचन आँजती है और चंद्रभागा मुरली ले भागती है। कोई कपोलों पर 'हरद' मलती है, कोई उसे पोंछती है, कोई 'चुंबन-दान' देती है और कोई उनका भुज अपने 'उर' पर रखती[४१] है।

गोपियों से छुटकारा पाकर मोहन भी भाई बलराम से अपना बदला लेते हैं और उन्हें गोपियों द्वारा पकड़ा कर कहते हैं—सब अपना मनभाया कर लो। गोपियाँ उनके नाक, नयन, मुख आदि में काजल लगाती और 'हरद कलश' उनके सिर से 'ना' देती हैं जिससे धौलागिरि से धातु बह चलने का दृश्य उपस्थित हो जाता है[४२]।

सूरदास के एक अन्य पद में मोहन और बलराम, दोनों के पकड़े और बनाये जाने का वर्णन किया गया है। पहले गोपियाँ श्रीकृष्ण को पकड़ने की योजना

३९. अंग कनक बरनी सु 'करिनी' बिराजैं गिरिधारन 'जुवराज गजराज राई'।
—छीत० ५६।

४०. तन 'तनसुख की सारी' पहिरैं लाल कंचुकी गात।
अध 'अँतरोटा पीत' बिराजत भूखन बिबिध सुहात—गोविं० ११५।

४१. राधा मिलि 'इक मंत्र उपायौ'। हलधर अपनी भीर बुलायौ।
कान लागि स्यामा समुझायौ। संकर्षन गहि स्यामहिं ल्यायौ।
हरि के हाथ गहे चंद्रावलि। कज्जल लै आई संभावलि।
ललिता लोचन आँजनि लागी। चंद्रभगा मुरली लै भागी।
इक लै लावति हरद कपोलनि। इक लै पोंछति ललित पटोलनि।
इक अवलंबति, इक अवलोकति। 'चुंबन दान देति इक दंपति'।
मगन भई अपबपु न सम्हारतिं। 'लालन भुज अपनै उर धारतिं—सा० २६०१।

४२. 'तब मोहन हलधर पकराए। करहु तरुनि अपने मन-भाए।
नाक नयन मुख काजर लायौ। हरद कलस हलधर सिर नायौ।
बहुत भरे बलराम सबनि गहि। धौलागिरि मनु धातु चलीं बहि—सा० २६०१।

बनाती हैं। एक सखी को बलराम का वेश बनाकर कृष्ण के समीप भेजा जाता है। भाई से मिलने के लिए ज्योंही कृष्ण आते हैं, त्योंही सखियाँ सिमटकर उन्हें घेर लेती हैं और उनको पकड़ कर कहती हैं—तुमने हमारे वस्त्र हरे थे, आज तुम्हारे वस्त्र हरकर हम अपना बदला लेंगी और 'हा हा' करने पर ही तुम्हें छोड़ेंगी। चारों ओर से घिरे कृष्ण को जब बचाव का कोई उपाय न सूझा तब सर झुकाकर खड़े रहने में ही उन्होंने अपनी कुशल समझी। इस पर एक सखी ने उनसे बदन उठाने को कहा, दूसरी ने आँख आँजने और माथे पर बेंदा लगाने का प्रस्ताव किया। तीसरी बोली—इन्हें नचाओ तो हम सब ताल दें। चौथी ने पीछे से आकर मोर-मुकुट उतार लिया, पाँचवी पीतांबर छीन ले गयी, छठी ने आँख आँजकर, मुख मसलकर गाल पर 'गुलचा' दिया। सातवीं ने सलाह दी—बलदाऊ को बुला लो जो तुम्हें आकर छुड़ा दें या किसी सखा को भेजकर यशोदा को ही बुलवा लो; अथवा राधा से ही विनती करो जो तुम्हें छुड़ा दे[४३]। इसी समय बलराम आते

४३. सखि इक बोलि लई अपनैं ढिग,'भेष जु बल कौ कीन्हौ'।
ताकौं मिलन चले उठि मोहन, काहूँ सखा न चीन्हौ।
नैंसुक बात लगाइ साँवरैं, पाछे तैं गहि लीन्हौ।
आईं सिमिटि सकल ब्रज-सुंदरि, मोहन पकरे जबहीं।
हम माँगति हीं यह बिधिना पै, दाँव पाइहैं कबहीं।
'तब तुम चीर हरे जु हमारे, हा हा खाई सबहीं।
'अब हम बसन छीनि करि लैहैं, हा हा करिहौ अबहीं'।
एक सखी कहै बदन उठावहु, हमहूँ देखन पावैं।
श्रीमुख-कमल नैन मेरे मधुकर, तन की तृषा बुझावैं।
एक सखी कहै, आँखि आँजि कै, माथैं बेंदा लावैं।
'एक सखी कहै इनहिं नचावहु, हम सब ताल बजावैं'।
एक सखी आई पाछे तैं, मोरपच्छ गहि लीन्यौ।
एक सखी त्यौं आइ अचानक, पीतांबर धरि छीन्यौ।
'एकै आँखि आँजि, मुख माँड्यौ, ऊपर गुलचा दीन्यौ'।
मानत कौन फाग मैं प्रभुता, मन भायौ सो कीन्यौ।
'एक कहै बोलौ बल भैया, तुमकौं आइ छुड़ावैं'।
'सखा एक पठवौ' कोउ घर कौं, जसुमति कौं लै आवै।
जानत हौ कल बल कै छूटैं, सो नहिं छूटन पावैं।
'राधा जू सौं करौ बीनती, वै बलि तुमहिं छुड़ावैं'—सा० २९१६।

दिखायी देते हैं। छल-बल करके सब सखियाँ उनको भी वहीं पकड़ लाती हैं और कृष्ण के पास ही उनको खड़ा करती हैं। पश्चात्, उन्होंने आँख आँजकर, मुख पर गुलाल आदि मसलकर उनका स्वाँग बनाना शुरू किया ही था कि राधा ने संकेत से मना कर दिया[४४]।

नंददास की गोपियाँ भी अपनी सखियों से मोहन और बलराम को पकड़वाकर उनकी मुरली और पिचकारी छीन लेने की योजना बनाती हैं[४५]। वृषभानु की पौरि पर जब कृष्ण ग्वाल-बालों के साथ पहुँचते हैं, तब छबीली कुँवरि मोहन को पकड़ लेती है और सखियाँ चारों ओर से आकर उन्हें घेरकर राधा के साथ उनकी गाँठ जोड़ देती हैं। पश्चात्, कोई सखी उन पर रंग डालती है, कोई पराग लेकर उनके कपोलों पर मलती है और कोई अंजन आँजती है। मोहन को इस प्रकार विवश देखकर वृषभानु की पत्नी वात्सल्य से प्रेरित होकर वहाँ आती हैं और ब्रज-बालाओं को 'बरज' कर कन्हाई को छाती से लगा लेती हैं। तदनंतर, बड़े स्नेह से वे अपने अंचल से उनका मुख पोंछती, बलैया लेती और गाँठ 'छोरती' हैं[४६]।

४४. दूरहीं तैं देख्यौ बल आवत, सखी बहुत उठि धाईं।
कल बल छल जैसैं तैसैं करि, उनहूँ कौं गहि ल्याईं।
किये आनि ठाढ़े इक ठौरहिं, बल मोहन दोउ भाई।
उनहुँ की आँखि आँजि मुख माँड्यौ, 'राधा सैन बुझाई'—सा० २९१६।

४५. नव बृषभान - नंदिनी आई, लीनो सखी बुलाई।
'ऐसौ मतौ करौ मेरी सजनी मोहन पकरौ जाई'।
मुरली लेहु स्याम के कर तैं, मृगमद बदन लगाई—नंद०, पदा०, पृ० ३३८।

४६. इतने माँझ छिपी 'छबीली कुँवरि पकरे हैं मोहन आन'।
छबि सों परस्पर झकझोरत कापैं परति बखान।
गुप्त प्रीति प्रगटित भई लाज तनक सी तोरी।
ज्यों मदमाते चोर भोर झलकत निकसी चोरी।
सखियनि सुख देखन के काज गाँठ दुहुनु की जोरी।
निरखि बलैयाँ लै सबै छबि न बढ़ी कछु थोरी।
कोउ छैल छबीले लाले छिरकत रंग अमोल।
कोउ कोउ कमल कर ले पराग परसत रुचिर कपोल।
बने हे पिया के कमल-लोचन जब गहि आँजे अंजन।
जानों अकुलात कमल-मंडल में बंदन फँदे युग खंजन।

चतुर्भुजदास की गोपियाँ लालन को पकड़वाकर 'तांडव' नाच करने को बाध्य करती हैं[४७]। उनके एक पद में पहले 'सुबल' को पकड़ा गया है और उसकी दशा बना कर कहा गया है कि हलधर को किसी प्रकार पकड़ा दो तो छुटकारा पा सकते हो[४८]। पश्चात्, हलधर और कृष्ण को पकड़कर उनकी 'दशा' भी बनायी जाती है[४९]। गोविंदस्वामी की गोपियाँ और भी चतुर हैं। वे 'सैना-बैनी' करके बलराम और कृष्ण को पकड़ लेती हैं और बड़े की आँख आँजकर तथा छोटे की मुरली छीन कर मनमाना फगुआ लेने के बाद ही छुटकारा देती हैं[५०]।

एक दूसरे पद में गोविंदस्वामी ने सब सखियों से सलाह करके मोहन को

देखि बिबस 'बृषभान घरनि हँसति हँसति तहाँ आई'।
बरजी आन नवल बधू भुज भरि लिये कन्हाई।
पोंछत मुख अपने अंचल पुनि पुनि लेत बलाय।
मुसकि मुसकि छोरत सुगाँठ छबि बरनी नहीं जाय—नंद०, परि०, पृ० ३९०।

४७. 'दीनी सैन सखी ललिता कों लालन गहि पकराए'।
हँसी ओट सारी दै सब मिलि तांडव नाच नचाए—चतु० ७४।

४८. जुवति-जूथ-दल पेलि कें छेकिं सुबल गहि लीनों।
कंठ उपरना मेलि कें खेंचि आपु बस कीनों।
'सुनहु सुबल साँची कहो तो भले पावौ'।
'छल-बल बानिक बानिके नेंकु हलधर कों पकरावौ'—चतु० ८१।

४९. बहुरि सिमिटि 'सब सुंदरी संकरषन मिलि घेरे'।
फेंट गही चंद्रावली उलटि सखनि तन हेरे।
सौंधे नावैं सीस तें एक काजर लै कर आई।
मोहन मुरि हँसि यों कह्यौ, देखो दाऊ आँखि आँजाई।
फिरि प्यारी नागरि राधिका तके स्याम जहाँ ठाढ़े।
'और सखीनि की ओट ह्वै गहे औचकाँ गाढ़े'।
देखि सखी चहुँ ओर तें दौरि आइ लपटानी।
अंग अंग बहु रंग सों करति बात मनमानी।
केसरि सों पट बोरि के श्रीमुख माँड्यौ रोरी।
तारी हाथ बजाइ कै बोलत हो हो होरी—चतु० ८१।

५०. 'सैना बैनी करि सबै' बलि राम कृष्न पकराई हो।
बल जू की आँखि जु आँजियो पिय की मुरली छीनी हो।
मन मान्यो फगुवा लियो पाछे जाइ वह दीनो हो—गोविं० १११।

पकड़ने की बात लिखी है। 'बंदी मोहन' की गाँठ 'प्यारी' से जोड़कर सखियाँ बलराम से कहती हैं कि जाकर ब्रजराज नंद से कह दो, आकर मोहन को छुड़ा लें[५१]। गोविंदस्वामी की ललिता तो सब गोपियों में आगे है जो 'गोकुल के राइ' से साफ-साफ कह देती है कि राधा प्यारी को सिर नवाने पर ही हम तुम्हें जाने देंगी[५२]।

श्रीकृष्ण की चतुरता भी गोपियों से कम नहीं है। वे उपवन में जाकर छिपते और कदंब की 'डार' पर बैठकर मुरली बजाते हैं। गोपियाँ उन्हें इधर-उधर खोजती हैं, पर पाती नहीं। जब श्रीकृष्ण उन्हें समीप आया देखते तब फिर छिप जाते हैं[५३]। पश्चात्, उन्होंने गोपियों को खिझाने का दूसरा उपाय सोचा। उन्होंने अपना रूप एक 'गोपी' का बनाया; सारी-कंचुकी पहनी, फूलों से शृंगार किया और गोपियों के बीच आकर खड़े हो गये। एक नयी गोपी को सामने देखकर राधा की सखियों ने परिचय पूछा तब नयी गोपी ने बताया—राधा मुझे पहचानती है। इसकी माता ने मुझे राधा के साथ रहने को भेजा है। इसके अनंतर सारी बात जानकर कृष्ण को पकड़ने का उसने एक नया उपाय भी सुझाया—तुम लोग एक साथ उन्हें ढूँढ़ती हो तो तुम्हारा कोलाहल सुनकर वे छिप जाते हैं। कहीं इस तरह उन्हें पकड़ा जा सकता है? दो-दो सखियाँ साथ हो जाओ, चुपचाप अलग-अलग उन्हें ढूँढ़ने निकलो और अचानक ही उन्हें पाकर पकड़ लो। गोपियों की समझ में नयी 'गोपी' की यह युक्ति आ गयी और दो-दो गोपियाँ साथ होकर कृष्ण को खोजने चलीं।

५१. 'सब सखियनि मिलि मतो मत्यो हो मोहन कों पकराई हो'।
छल-बल सों नहिं पाइये हो, किहिं मिसि पकरे आई हो।
ललिता आगें ले दौरी मोहन लीने घेरि हो।
पिय प्यारी गाँठि जोरि के हो हँसत बदन तन हेरी हो।
जाइ कहो ब्रजराज सों मोहन लेहु छिंड़ाई हो—गोविं० ११७।

५२. ललिता ललित बचन कहें। तुम सुनो हो गोकुल के राइ।
तो हम तुमकों जान देहिं। प्यारी राधा कों सिर नाइ—गोविं० १२५।

५३. तब हरि जाइ दुरे उपबन मैं। चली नाइका कुंज-सदन मैं।
करतिं कुलाहल ब्रज की नारी। देखत चढ़े कदंब बिहारी।
कबहुँक मुरली मधुर बजावैं। स्रवन सुनत जितहीं तित धावैं।
जब हरि जानी निकटहिं आईं। डर तैं तब वै रहे लुकाई—सा० २८९२।

इधर गोपी-रूपिणी कृष्ण ने राधा के साथ प्रणय-विहार के लिए 'कुंज' की राह ली[५४]।

चतुर्भुजदास के कृष्ण की उन्मत्तता या उद्दंडता का वर्णन एक गोपी ने किया है। वह कहती है कि होली खेलते-खेलते मोहन ने गुलाल, अबीर और कुमकुमा से मेरा बदन भर दिया। मेरे खीझने की कुछ चिंता न करके निकट आकर मेरा अंचल झटका और मुझे अंक में भरकर मेरे कपोल चूम लिये[५५]।

ग्वाल-बालों के परस्पर होली खेलने का वर्णन भी अष्टछापी कवियों ने किया

५४. 'तब हरि भेष धर्यौ जुवती कौं'। सुंदर परम भावतौ जी कौ।
सारी कंचुकि केसरि टीकौ। करि सिंगार सब फूलनि ही कौ।
कर राजति कंदुक नवला सी। छूटी दामिनि ईषद हाँसी।
सकल भूमि बन सोभा पाई। सुंदरता उमँगी न समाई।
ब्रजनारी ता सोभा सौं ही। रहीं ठगी सी रूप-बिमोही।
एक कहति हरि के से नैना। एक कहति वैसेई बैना।
बूझति एक कौन की नारी। बिधि की सृष्टि नहीं तू न्यारी।
'तब हरि कहत सुनहु ब्रजबाला'। बोलत हँसि हँसि बचन रसाला।
हम तुम मिलि खेलहिं सब जानतिं। 'राधा आली मोहिं पहिचानति'।
हौं हूं संग तिहारैं खेली। जानति हौं हूँ जान सहेली।
'अबही कीरति महरि पठाई। राधा इकली खेलन आई'।
अब इक बात कहौं हौ जी की। हौं जानति हौं छल हरि पी की।
सघन बिपिन ऐसैं कहँ पावहु। सब मिलि एक संग जनि धावहु।
सुनत सोर कत रहिहहिं नेरैं। कोटि करौ पावहु नहिं हेरैं।
द्वै द्वै न्यारी न्यारी डोलहु। तनक मूँदि कर मुख जनि बोलहु।
जाइ अचानक ही गहि ल्यावहु। सखी एक ज्यौं त्यौं करि पावहु।
राधा कौं भुज गहि कै लीन्ही। ऐसैं सब कौ द्वै द्वै कीन्ही।
मौन किये प्रबेस कियौ बन मैं। हरि कौ रूप राखि निज मन मैं।
'और सखी खोजति सब कुंजनि। राधा हरि बिहरत सुख पुंजनि'—सा० २८६२।

५५. मैया, मोहन ख्याल पर्यौ।
सुरँग गुलाल अबीर कुमकुमा, लै करि मानों मेरौ बदन भर्यौ'।
ज्यों ज्यों सतराति त्यों त्यों नियरैं आवत, 'झटकि अंचलु, मोहन अंक भर्यौ'।
चत्रभुज-प्रभु गिरिधर की ढिंग यों, 'चूँबि कपोलनि' लै जु उगार धर्यौ।
—परमा० ८७।

है। उनका परस्पर मारना, ताड़ना, भागना, गाजना, धाना, पकड़ना, हरषना, लड़खड़ाना, घात परखना, नेत्रों में गुलाल डालना, रंग ढरकाना, कभी एकत्र, कभी अलग-अलग फिरना, दाँव देने से बचना, गाना, नाचना, मृदंग आदि बजाना इत्यादि सभी कुछ उन कवियों ने लक्ष्य किया था[५६]।

युवतियों के साथ फाग खेलते हुए ग्वाल-बालों को 'होरि हो' 'होरि हो' कहते कुंभनदास ने भी सुना है[५७]। पिचकारियों से रंग छिड़कते और 'कीक' देते हुए वे सब व्रज की गलियों में घूमते हैं[५८]। नंददास के ग्वाल-बाल भी नायक कृष्ण के साथ 'हो हो हो हो होरी' बोलते हुए व्रज की गलियों में फिरते हैं[५९]। चतुर्भुजदास के ग्वाल-बाल नीले-पीले, सफेद और लाल वस्त्र पहने, अबीर-गुलाल फेंटों में भरे 'महा रस-माते' हो कृष्ण के साथ 'हो हो बोलते' गलियों का चक्कर लगाते हैं[६०]।

५६. खेलत हरि ग्वाल संग फागु-रंग भारी।
इक मारत इक तारत, इक भाजत इक गाजत,
इक धावत इक पावत इक आवत मारी।
इक हरषत इक लरखत, इक परखत घातहिं कौ,
लोचननि गुलाल डारि, सौंधैं ढरकावैं।
एक फिरत संग संग, इक इक न्यारे बिहरत।
डरत दाँव दीवे कौं वे ज्यौं नहिं पावैं।
इक गावत इक भावत, इक नाचत इक रौंचत।
इक कर मिरदंग ताल, गति जति उपजावैं।
—सा० २८८८।

५७.क. जुवति-जूथ-संग फाग खेलत नंदलाल, 'कुँवर होरि हो, होरि हो, होरि बोलना'।
गावत नट नारायन राग मुदित देत चैन फाग चहुँ दिसा जुरि ग्वाल-बाल-बृन्द टोलना
—कुंभन० ७४।

ख. खेलत फाग गोबर्धन-धारी 'हो होरी' बोलत ब्रज बालक संगे—कुंभन० ७६।

५८. कुमकुमा सुरंग छिरकत पिचकारी भरि भरि,
परस्पर 'देत कीक' ब्रज की खोरि-खोरि डोलना—कुंभन० ७४।

५९. 'हो हो हो हो होरी बोलैं', नंद कुँवर ब्रज बीथिन डोलैं।
नवल रँगीलौ सखा सँग लीने, राजत अँग अँग सब रँग भीने—नंद०,पदा०,पृ० ३३७।

६०. मुरली अधर धरें नँदनंदन 'हो हो होरी' बोलत जू।
लिएँ सखा सँग देत फूल सब ब्रज की पौरिनि डोलत जू।

गोविंदस्वामी के मदनमोहन भी कोलाहल करने में किसी से पीछे नहीं हैं[६१]। उनके अहीर 'कूकें' देते हुए प्रमदागण पर भी अबीर-गुलाल बरसाते हैं[६२]।

होली का यह खेल केवल नंद या वृषभानु की 'पौरी' या उनके भवनों के 'चौक' में ही नहीं होता; प्रत्युत गोकुल के 'चौहटे' और 'यमुना-तट' पर भी खूब होता है। सारी तैयारी करके श्रीकृष्ण अपने सखाओं के और राधा अपनी सखियों के साथ, सब 'चौहटे' पर आकर एकत्र होते हैं[६३]। सारा गोकुल ही जैसे इस समय चौराहे पर एकत्र है; यहाँ तक कि भवनों में कोई भी 'मनुष्य' नहीं रह जाता[६४]।

चतुर्भुजदास ने भी फाग खेलने के लिए श्रीकृष्ण और उनके सखाओं के 'चौहटे' पर आने की बात लिखी है[६५]।

कभी-कभी होली का खेल जमुना के किनारे भी होता है जब केसरि, कुमकुम, अबीर, मृगमद, चंदन, गुलाल आदि एक दूसरे पर डाला, छिड़का या उड़ाया जाता है[६६]। प्रभु हँसकर राधा पर 'गेंदुक' चलाते हैं और वह फुर्ती से बचा जाती है[६७]। ललिता दौड़कर मोहन को पकड़ती और उनका पीतांबर तथा उनकी मुरली

पहिरे 'बसन अनेक तन नील पीत सेत राते जू'।
सुरँग 'गुलाल अबीर फेंट भरि' फिरत महा रस माते जू—चतु० ६२।

६१. खेलत मदनमोहन पिय होरी।
लरिका संग सकल गोकुल के 'करत कुलाहल' ब्रज की खोरी—गोविं० ११२।

६२. एकनि कर बूका लिये एक गुलाल अबीर।
'प्रमदागन पर बरसहीं कूकें देत अहीर—गोविं० १२१।

६३.क. रसिक गुपाल नवल ब्रज बनिता 'निकसि चौहटैं आए'—सा० २८५४।
ख. 'या गोकुल के चौहटैं' हरि सँग खेलैं फाग—सा० २८६६।

६४. उमह्यौ मानुष-घोष यौं 'भवन रह्यौ नहिं कोइ'—सा० २८६७।

६५. रसमसे नंदकिसोर निकसे खेलन फागु।
मधुर बेनु कर में धरें 'गावत गौरी रागु'।
'आए ब्रज के चौहटैं' लिये सखा सब संग।
नव भूषन नव बसन सोहत साँवल अंग—चतु० ८०।

६६.क. पिय प्यारी 'खेलैं जमुन-तीर। भरि केसरि कुमकुम अरु अबीर।
घसि मृगमद चंदन अरु गुलाल। रँगभीने अरगज बस्त्र माल—सा० २८५६।
ख. 'जमुना कैं तट खेलति' हरि-सँग, राधा लिये सब गोपी—सा० २८६१।

६७. प्रभु हँसि कै गेंदुक दई चलाइ। सुख पट दै राधा गई बचाइ—सा० २८५६।

'छिड़ा लेती' है, तभी दूसरी सखी आकर उन्हें छुड़ाती है[६८]। इसी प्रकार कभी-कभी दस-पाँच सखियाँ आकर श्रीकृष्ण को अकेले पकड़ लेती हैं और अरगजा-अबीर भरे कनक-घट उनके सिर से उँडेलती, कुमकुमा छिड़कती और 'बंदन-धूरि' 'भुरकती हैं' जिससे श्रीकृष्ण की शोभा साँझ समय के बादलों-जैसी हो जाती है[६९]।

परमानंददास ने भी जमुना के पुलिन पर घनश्याम और राधा के दलों में होली खेले जाने की बात लिखी है[७०]। नंददास यमुना तीर पर 'अहीरों' सहित बलबीर के साथ 'युवतियों की भीर' के होली खेलने की बात लिखते हैं[७१]। गोविंदस्वामी के राधा-कृष्ण कालिंदी के तट या 'यमुना के तीर' पर होली खेलते हैं[७२]। साथ ही उनके कृष्ण तो पनघट की 'बाट' पर भी रंग खेलने पहुँचते हैं जहाँ वे गोपियों की 'गागरि' ढरका देते हैं और 'अचकाँ-अचकाँ' आकर राधा प्यारी उनके अरगजा-कुंकुम आदि लगाकर बदला ले लेती है[७३]।

६८. ललिता पट-मोहन गह्यौ धाइ। पीतांबर मुरली लई छिंड़ाइ।
हौं सपथ करौं छाँड़ों न तेहिं। स्यामा जू आज्ञा दई मोहिं।
इक निज सहचरि आई बसीठि। सुनि री ललिता तू भई ढीठि।
पट छाँड़ि दियौ तब नव किसोर। छबि रीझि सूर तृन दियौ तोर—सा० २८५६।

६९. 'मिलि दस अली चलीं कृष्नहिं, गहि लावतिं अचकाइ।
भरि अरगजा अबीर कनक घट, देतिं सीस तैं नाइ।
छिरकतिं सखी कुमकुमा केसरि, भुरकतिं बंदन - धूरि।
'सोभित है तनु साँझ समै घन, आए हैं मनु पूरि—सा० २८६०।

७०. नंदकुँवर 'खेलत राधा सँग जमुना पुलिन' सरस रँग होरी।
नव घन स्याम मनोहर राजत स्याम सुभग तन दामिनी गोरी।
केसरि के रँग कलस भरे बहु संग सखा हलधर की जोरी।
हाथनि लिये कनक पिचकाई छिरकी ब्रज की नवल किसोरी—परमा० ३३३।

७१. 'कुंज कुटीर मिली जमुना तीर खेलत होरी रस भरे अहीर'।
एक ओर बलबीर धीरि धरि एक ओर जुवतिनि की भीर—नंद०, परि०, पृ० ३८६

७२.क. छिरकत केसरि नवबंसीवट कालिंदी के तीर—गोविं० १०६।
ख. इततें श्रीहरि सकल सखा सँग आए जमुना तीर।
उततें श्रीराधा जू आईं नव जुवतिनि की भीर—गोविं० ११५।
ग. सुंदर सुभग 'तरनि तनया तट खेलत हैं हरि होरी हो—गोविं० १२४।

७३. खेलत खेलत तहाँ गए जहाँ पनिहारी की बाट।

चोवा, चंदन, अबीर, कुमकुमा आदि पिचकारियों में भर भर कर छिड़का जाता है[७४] और कभी उक्त पदार्थों के साथ-साथ टेसू के फूलों का रंग, रत्न-जटित पिचकारियों से डाला जाता है। साथ में अरगजा, 'बंदन-बूका', मृगमद, कुंकुम आदि भी छिड़का जाता है।[७५] चारों ओर अबीर-गुलाल उड़ रहा है[७६]। झोली भर भर कर अबीर का बूका उड़ाया जाता है[७७] जिससे बादल तक लाल हो जाते हैं और सारे 'अटा-अटारी' रँग जाते हैं[७८]। अबीर गुलाल के उड़ने से 'साँझ' का दृश्य हो जाने अथवा 'साँझ' फूलने की बात सूरदास[७९] और नंददास[८०] ने लिखी है। नंददास को उड़ता हुआ गुलाल 'उमड़ता हुआ अनुराग'-सा जान पड़ता है[८१]।

अबीर-गुलाल की झोलियाँ आदि सब ग्वाल-बालों ने कमर से कस रखी हैं[८२]। केवल अबीर-गुलाल ही नहीं, चंदन और कपूर का चूर्ण भी ग्वाल-बाल

गागरि ढोरैं सीस तें भरन न पावैं घाट।
अरगजा कुंकुम घोरि कें प्यारी लीनो उर लपटाइ।
अचकाँ अचकाँ आइकें भाजी गिरिधरलाल लगाइ—गोविं० १२६।

७४.क. चोवा चंदन अबिर कुमकुमा छिरकत भरि पिचकारी—सा० २८५४!
ख. चोवा चंदन और कुंकुमा मुख माँडति लै लै रोरी—परमा० ३३२।

७५. टेसू कुसुम निचोइ कै भरे परस्पर आनि।
चोवा चंदन अरगजा बूका बंदन सानि।
रत्न जटित पिचकारियाँ कर लिये गोकुलनाथ।
छिरकहिं मृगमद कुमकुमा जो राधे कैं साथ—सा० २८६७।

७६.क. 'उड़त गुलाल अबीर' जोति रबि दिसि दीपक उँजियारी—सा० २८५४।
ख. चोवा चंदन अरगजा 'उड़त अबीर गुलाल'—सा० २८६४।

७७. बूका सुरँग अबीर उड़ावत भरि भरि झोरी—सा० २८७०।

७८.क. उड़त गुलाल 'लाल भए बादर', 'रँगि गए सिगरे अटा-अटारी'—सा० २८७१।
ख. उड़त अबीरनि रँगी अटारी—सा० २८९६।
ग. उड़त गुलाल अरुन भए अंबर—सा० २९०१।
घ. उड़त बंदन, नव अबीर बहु कुककुमा—कुंभन० ७०।
ङ. उड़त गुलाल अबीर अरगजा—कुंभन० ७२।

७९. उड़त गुलाल अबीर कुमकुमा 'छबि छाई जनु साँझ'—सा० २९०७।

८०. घुमड़्यौ है अबीर गुलाल गगन मैं, 'मानौं फूली साँझ'—नंद०, पदा०, पृ० ३३६।

८१. उमड़्यौ है अबीर गुलाल, 'मानौ उनयौ अनुराग री'—नंद०, पदा०, पृ० ३३९।

८२. लाल गुलाल समूह उड़ावत फेंट कसे अबीर झोरी की—सा० २८७२।

'फेंटों' में भरे रहते हैं[८३]। हाथ से उड़ाया गया अबीर सूरदास और नंददास को आकाश में उड़ती हुई 'पंकज-धूरि' या पराग-सा जान पड़ता है[८४]। परमानंददास ने भी ग्वाल-बालों की कमर में गुलाल की 'झोरी' बँधी रहने की बात कही है और वे बराबर अबीर भी उड़ाते घूमते हैं[८५]। कुंभनदास की ललितादिक गोपियाँ भी अबीर-गुलाल उड़ाने में ग्वाल-बालों से पीछे नहीं हैं[८६]। पिचकारियों के छूटे हुए रंग से अटा-अटारी के रँग जाने की बात नंददास ने भी लिखी है[८७]। चतुर्भुजदास भी चोवा, चंदन, बूका-बंदन, अबीर, गुलाल आदि के उड़ाये जाने की बात लिखते हैं[८८]। उनके खिलाड़ियों द्वारा फेंका गया गुलाल गगन तक इस तरह छा गया है जैसे आँधी ने उसे सर्वत्र फैला दिया हो[८९]। छीतस्वामी के मोहन प्रात: काल से ही चोवा, चंदन, अगर, कुमकुमा, केसर, अबीर आदि झोली में भरकर होली खेलने निकलते हैं[९०]। गोविंदस्वामी ने भी झोली में भरे हुए चोवा, चंदन, अगर, कुमकुमा, गुलाल, अबीर आदि के उड़ाये जाने की बात कई पदों में कही है[९१]।

८३. चंदन कपूर चूर फेंटनि भराइ री—सा० २८८७।

८४.क. भरि कर-कमल अबीर उड़ावत, गोविंद निकट जाइ ढुरि चोरी।
मनहुँ प्रचंड बात हत पंकज-धूरि, गगन सोभित चहुँ ओरी—सा० २९०८।

ख. अँजुरी अबीर छुटत छबि पावै, पंकज मनौं पराग उड़ावै।
—नंद०, पदा०, पृ० ३३७।

८५. चारु अबीर उड़ावत नाचत कटि सों बाँधि गुलाल की झोरी—परमा० ३३३।

८६. 'अबीर, गुलाल उड़ाई ललिता सोभा बरनी न जाई'—कुंभन० ७९।

८७. पिचकारिनि रँग उछलत भारी, उड़ि गुलाल रँगे अटा अटारी।
—नंद०, पदा०, पृ० ३३७।

८८. चोवा चंदन बूका बंदन अबीर गुलाल उड़ाए—चतु० ७४।

८९. उड़त गुलाल परस्पर आँधी रह्यौ गगन लौं छाई—चतु० ९३।

९०. मोहन प्रात ही खेलत होरी।
चोवा चंदन अगर कुमकुमा, केसरि अबीर लिए भरि झोरी—छीत० ५८।

९१.क. चोवा चंदन अगर कुमकुमा उड़त गुलाल अबीर—गोविं० १०९।

ख. चोवा चंदन अगर अरगजा अबीर गुलाल भरि झोरी—गोविं० ११०।

ग. छिरकत कुमकुमा अरु अरगजा उड़त अबीर गुलाल—गोविं० ११४।

घ. उड़त गुलाल अबीर चहूँ दिसि—गोविं० ११५।

इस प्रकार होली खेलने पर श्याम का पीतांबर तथा अन्य वस्त्र विविध रंगों से रँगकर उनके श्याम शरीर पर अत्यंत शोभित होते हैं जिसका वर्णन सूरदास,[९२] कुंभनदास[९३] और चतुर्भुजदास[९४] ने किया है। राधा के गोरे शरीर पर तरह-तरह के रंगों से तर साड़ी और सुरंग-रँगी कंचुकी बहुत भली लगती है[९५]। श्याम के पीले वस्त्र अनेक रंगों में और राधा की कंचुकी तथा तनसुख की सारी पीत रंग से रँग गयी है[९६]। सब लोग नीले, लाल, सफेद, पीले आदि रंगों में रँगे वस्त्र पहने घूम रहे हैं[९७]।

ब्रज की गलियों में इतना रंग खेला गया है कि सर्वत्र उसकी 'कीच' मच गयी[९८] है। होली खेलने के लिए जो अबीर तैयार किया गया है, वह भी एक-दो रंगों का नहीं, पचासों रंगों का है और स्वयं ही उन गलियों में छिड़का गया है जिनसे होकर मोहन होली खेलने निकलते हैं[९९]। कुंकुम-कस्तूरी आदि की मिलावट से ब्रज की गलियों की कीच बहुत सुगंधित हो गयी है जिसका वर्णन सूरदास,[५००]

९२. सुरँग पीत पट 'रँगि रह्यौ', सुभग साँवरैं अंग—सा० २८६७।

९३. उड़त अबीर, कुमकुमा बंदन बिबिध भाँति रँग मंडित अंगे।
कुंभनदास-प्रभु त्रिभुवन-मोहत नवल रूप छबि कोटि अनंगे—कुंभन० ७६।

९४. बरन-बरन भए बसन अँगनि रहे लपटाइ।
क्रीड़ा रस बस मगन आनँद उर न समाइ—चतु० ८०।

९५. नील बसन भामिनि बनी कंचुकि कुसुम सुरंग—सा० २८६७।

९६.क. उन पट पीत किये रँग राते, इन कंचुकी पीत रँग बोरी—सा० २८६८।
ख. मोहन कौ पटपीत रँगि कें रँगी है सारी तनसुख की धौरी हो—गोविं० १२४।

९७. पहिरे बसन अनेक बरन तन नील अरुन सित पीत—२८६६।

९८.क. सौंधे कीच मची भली, खेलत ब्रज की खोरि—सा० २८८०।
ख. सौंधे अरगजा कीच, जहाँ तहाँ गलिनि बीच,
एक एक ऊँच नीच करत रंग झोरी—सा० २८९१।
ग. कुमकुम कीच मची अति भारी—सा० २८९६।
घ. कुमकुम कीच मची धरनी पर—सा० २९०१।
ङ. खेलि फाग अनुराग बढ्यो, धर मची अरगजा कीच—सा० २९०७।

९९. बरन पचासक अबिर सँवारे बीथिनि छिरकि तहाँ बिस्तारे।
मोहन चरन धरत तहँ आवैं—सा० २८९२।

५००. कनक-कलस कुमकुम भरि लीन्हौ, कस्तूरी तामैं घसि घोरी।
खेल परस्पर कीच मची धर, अधिक सुगंध भई ब्रज खोरी—सा० २९०८।

कुंभनदास,[१] नंददास,[२] चतुर्भुजदास[३] और गोविंदस्वामी[४] ने किया है।

श्रीकृष्ण अपने सखाओं के साथ घाट-बाट, गृह-बन, सबका मार्ग रोकते फिरते हैं और व्रज की कोई भी नारी उनके रंग-गुलाल के खेल से बच नहीं पाती। व्रज की जो बालाएँ श्याम के रंग में रँगी हैं, वे तो उनके साथ होली खेलने में पूरा आनंद लेती हैं; परंतु वहाँ अनेक वधुएँ ऐसी भी हैं जो सासु-ननद के डर से होली नहीं खेल सकतीं और कृष्ण से प्रार्थना करती हैं कि हम पर पिचकारी से रंग मत डालो। जब कृष्ण इस पर भी नहीं मानते तब वे नंद जी की दुहाई देती हुई कहती हैं—रंग उससे खेलो जो तुम्हारे लायक हो। हम कहाँ तुम्हारे योग्य हैं? कृष्ण इस पर उत्तर देते हैं—तुम 'अनलायक' कैसे हो जब हमारी ही तरह तुम भी 'नवल' हो? इतना सुनते ही ग्वालिनें हँस पड़ती हैं और कहती हैं—तुम बड़े गुन-भरे हो[५]।

१.क. गोकुल-विच कीच मची, सौरभ चहुँ ओर बढ़्यौ सब तनु अनुराग उमग्यौ रस अतोलना—कुंभन० ७४।

ख. होरी खेलत कुँवर कन्हाई।
चोवा चंदन, अगर कुमकुमा धरती कीच मचाई—कुंभन० ७६।

२.क. रँगीली भाँति रँगीलौ निकरयौ जहाँ, चोवा-चंदन कीच मचै तहाँ।
—नंद०, पदा०, पृ० ३३७।

ख. चोवा को ढोवा कर राख्यो केसर कीच घनी—नंद०, परि०, ८६।

३.क. कीच सँची व्रज खोरि—चतु० ८५।

ख. कीच धरनि पर बाढ़ी जू—चतु० ६२।

४. कुमकुम अरगजा कीच में पद थके चलीं चहुँ दिसि मोरी हो—गोविं० १२४।

५. 'लालन प्रगट भए गुन आजु', त्रिभंगी लालन ऐसे हौ।
रोकत घाट-बाट ग्रह बनहूँ निबहति नहिं कोउ नारि।
भली नहीं यह करत साँवरे, हम दैहैं अब गारि।
'फागुन मैं तौ लखत न कोऊ, फबति अचगरी भारि'।
दिन दस गए, दिना दस औरों, लेहु साध सब सारि।
'पिचकारी मोकौं जनि छिरकौ, झरकि उठी मुसुकाइ'।
'सासु-ननद मोकौं घर बैरिनि, तिनहिं कहौं कह जाइ'।
हा हा करि कही नंद दुहाई, कहा परी यह बानि।
तासौं भिरहु तुमहिं जो लायक, इहिं हेरनि मुसुकानि।

होली के खिलाड़ियों को दूसरों के मुख और नेत्रों में रंग और गुलाल डालने में विशेष आनंद आता है। श्रीकृष्ण और उनके सखाओं की 'बानि' भी ऐसी ही है जिसके कारण अनेक बार गोपियों को निवेदन करना पड़ता है कि हमारी आँखों में गुलाल मत भरो[६] और परस्पर बात करती हुई गोपियाँ भी नैनों में 'अबीर मारने' की कृष्ण की बान का उल्लेख करती हैं[७]। कुंभनदास के ग्वाल-बाल युवतियों के मिल जाने पर किसी की 'चारु चिबुक' का स्पर्श करते हैं, किसी की बेसरि, खुभी आदि देखते हैं, किसी की कंचुकी के बंद तोड़ते हैं, किसी के हार छीनते हैं, किसी की भुजा मरोड़ते हैं और किसी को खाली झकझोरते डोलते हैं[८]। और उनके नायक कृष्ण गोपियों के हार तोड़ने, चूड़ी फोड़ने, खुभी ले भागने, नेत्र ताक कर पिचकारी चलाने, नकबेसरि पकड़ने, चोली फाड़ने, बेनी गहने, कंठश्री झटकने आदि में सभी ग्वालबालों से आगे हैं[९]। गोविंदस्वामी की एक गोपी कृष्ण की उद्दंडता का उलाहना देने यशोदा के पास भी पहुँच जाती है और कहती है कि यमुना के तट पर मोहन ने मेरी बाँह मरोड़ दी, माला तोड़ दी, कंचुकी फाड़ दी, गाल स्पर्श किये,

अनलायक हम हैं, की तुम हौ, कहौ न बात उघारि।
'तुमहूँ नवल, नवल हमहूँ हैं', बड़ी चातुर हौ ग्वारि।
यह कहि स्याम हँसे, हँसी बाला, मनहीं मन दोउ जानि।
'सूरदास-प्रभु गुननि भरे हौ, भरन देहु अब पानि'—सा० २८८३।

६. हम तुम सौं बिनती करैं, 'जनि आँखिनि भरौ गुलाल'।
सह्यौ परत हम पैं नहीं, तेरौ निपट अनोखौ ख्याल—सा० २८८२।

७. नैननि अबीर मारैं काहू सौं न डरैं री—सा० २८८६।

८. काहू के चिबुक चारु परसि, काहू की बेसरि, काहू की खुभी,
काहू के करत कंचुकी के बंद खोलना।
काहू के लेत हार तोरि, काहू की गहत भुजा मरोरि
काहू कों पकरि छाँड़ि देत करि झँझोलना—कुंभन० ७४।

९. काहू कौ हार तोरै, काहू की चूरी फोरै होरी कौ है औसरु जिनि कोऊ रिस मानै,
काहू की खुँभी लै भाजै अरु अचानक काहू कौं पिचकाई नेत्रनि तकि तानै।
काहू की नक बेसरि पकरि काहू की चोली, काहू की बेनी गहे, अरु कंठसरी झटकि आनै।
कुंभनदास प्रभु इहि विधि खेलत, गिरिधर पिय सब रंगु जानै—कुंभन० ७५।

मुख पर गुलाल डाला और फिर भी पानी न भरने दिया[१०]।

होली के अवसर पर 'ग्वालिनों' की तुलना सूरदास ने 'मद्माती हथिनियों' से की है जो गिरिधर रूपी गज के निकट जाने में कुल का अंकुस नहीं मानतीं और 'वेद की साँकल' भी तोड़ देती हैं। प्रियतम को पाकर वे वृन्दावन की वीथियों में 'नागबेलि' चबाती घूमती हैं। सुगंध उनके मस्तकों से चू रही है, घुँघरू घंटों से बज रहे हैं, अंचल बैरख-सा फहर रहा है और वे प्रियतम पर कुंकुम, बंदन आदि छिड़कती हुई उनके साथ क्रीड़ा में रत हैं[११]। राधा तो 'गारी' गाते समय 'झुकि झुकि' पड़ती है[१२]। उन्मत्तता की अति तो उन नारियों के व्यवहार में देखने को मिलती है जिनके संबंध में कभी कुछ देखा-सुना भी नहीं गया था। वे ही आज पुरुषों से जरा भी नहीं लजातीं और 'कटि-वस्त्र' तक फाड़ने में संकोच नहीं करतीं[१३]। उन उन्मत्त गोपियों को जहाँ कहीं भी 'तपी, संयमी, धर्मी, आचारी'

१०. 'बरजो जसोमति अपनो लाल' जमुना तट ठाढ़ो करत ख्याल।
'मेरी बाँह मरोरी तोरी माल। अरु कंचुकी फारी परसि गाल।
भरन न देत जल श्रीगोपाल। मुख पर डारत ले जु गुलाल—गोविं० १३६।

११. मानौ ब्रज तैं 'करिनि चलि' गिरिधर गज पै जाइ,
'कुल अंकुस मानैं नहीं, साँकर-बेद तुराइ'।
अवगाहैं जमुना नदी, करतिं तरुनि जल-केलि,
चहुँ दिसि तैं मिलि छिरकहीं, सुंड दंड भुज पेलि।
बृन्दाबन बीथिनि फिरैं 'संग मदन गजपाल',
कबहुँ नैन कर दै मिलैं 'तैसियै गज गति चाल'।
नाग बेलि चाबति फिरैं मोदक माँझ कपूर।
सुगंध पुढ़े स्रवननि चुवै मंडित माँग सिंदूर।
केसरि लाई सानि कै घूँघुरू घंट घुमाइ,
उर पर कुच जुग घंट से मुक्ता माल रुराइ।
अंचल उड़त बखानियै, मन बैरख फहराइ,
जुगल हार मनु सुरसरी, जुगल प्रबाह बहाइ।
अँग अँग छिरकैं स्याम कौं, कुंकुम चंदन गारि।
सूरदास-प्रभु क्रीड़हीं, संग गोकुल की नारि—सा० २८६२।

१२. झुकि-झुकि परति है कुँवरि राधिका देति परस्पर गारि—सा० २८६५।

१३. जे कबहूँ देखीं नहीं कबहूँ सुनीं न कान,

आदि होने का पता लगता है, वे वहीं पहुँच जाती और उनके आवास पर धावा बोल देती हैं[१४]। 'होली' के अवसर पर उन्मत्तता को लक्ष्य करके ही सूरदास ने 'सठ और पंडित' तथा 'बेस्या और बधू' के 'इकसार' होने की बात कही है[१५]। 'साधु-असाधु' का ध्यान न करके 'बिकार-बचन' बोलना भी वस्तुतः उन्मत्तता का ही परिणाम है[१६]। उन्मत्तता के कारण 'लाज छूट जाने' और अपना 'तन भी न सम्हारने' की बात परमानंददास ने लिखी है[१७]। कुंभनदास भी होली के अवसर पर 'लाज' छोड़कर 'उघरि नाचने' की बात लिखते हैं[१८]। चतुर्भुजदास की सम्मति में तो लोक-मर्यादा छूटने में ऋतु का भी प्रभाव है जिसके फलस्वरूप मुनि और पंडितगण ही नहीं, 'शिव-विरंचि' तक बौरा गये हैं[१९]। अतएव चतुर्भुजदास की मदमाती तरुणियाँ 'कुल का अंकुस' भी नहीं मानतीं[२०]।

'होली' के अवसर पर 'कुल की परिमिति' फोड़ने'[२१] 'लोक-बेद-कुल-धर्म की कानि न मानने'[२२] के साथ-साथ फाग खेलते समय मोहन के अनुराग के कारण

ते कुल नारि निडर भई लागे लोग परान।
भस्म भरैं अंजन करैं, छिरकैं चंदन बारि,
मरजादा राखैं नही, कटि पट डारैं फारि—सा० २६१४।

१४. 'जहाँ सुनहिं तप-संजमी, धर्मधीर-आचार',
'छिरकहिं तहीं निसंक ह्वै पकरहिं तोरि किवार'—स० २६१४।

१५. 'सठ पंडित बेस्या बधू सबै भए इकसार'—सा० २६१४।

१६. 'साधु-असाधु न समुझहीं बोलहिं बचन बिकार'—सा० २६१४।

१७. छुटी लाज तब तन न सँभारति अति बिचित्र जोरी—परमा० ३३२।

१८. रस-गारी तारी दै गावैं अब तो उघरि नच्यौ है—कुंभन० ७८।

१९. सरस बसंत हँसत बृन्दाबन रितु-प्रभाव जनाए।
छूटि गई लोक लाज मरजादा फिरत सबै ही धाए।
'ज्ञान, ध्यान, जप, तप सब बिसरे आसन मुनिगन छाँड़े'।
आगम निगमनि के पंडित सब सिव-बिरंचि बौराए—चतु० ७४।

२०. 'छूटीं तरुनी महामद मातीं कुल अंकुस नहिं मानैं जू'—चतु० ६२।

२१. उपरा उपरि छिरकि रस सर भरि 'कुल की परिमित फोरी'—सा० २८५८।

२२.क. लोक-बेद-कुल धर्म केतकी नैंकु न मानतिं कान—सा० २८६१।
ख. 'छुटि गई लोक लाज-कुल संका' गनति न गुरु गोपिनि कौ को री—सा० २८६८।

गोपियाँ गुरुजन की लाज का ज़रा भी डर नहीं करतीं[२३]। सूरदास की गोपियाँ तो गुरुजन के सामने ही, उनको 'तृन' सम मानकर, 'चुंबन-दान' देती और लालन की भुज अपने उर पर धरती हैं[२४]। जिन गोपियों को गुरुजन की थोड़ी-बहुत लाज है, वे भी कृष्ण के साथ होली खेलने का कोई न कोई उपाय निकाल ही लेती हैं। अपने 'बैरी गुरुजनों' से छुटकारा पाने के लिए कोई तो बछड़ों को खोलकर बन में भगा देती है क्योंकि वह जानती है कि उनको पकड़ लाने के लिए वे मुझको अवश्य भेजेंगे और कोई भरी हुई 'गागरि' लुढ़काकर जमुना-जल लाने के बहाने कृष्ण से जा मिलने की योजना बनाती है[२५]। परमानंददास की गोपियाँ भी होली के अवसर पर 'कुल-लज्जा और मरजादा' तोड़ने से संकोच नहीं करतीं[२६]। चतुर्भुजदास के अनुसार बरसाने की ग्वालिनें फाग खेलते समय माता, पिता, सुत, कंत, किसी का भय नहीं मानतीं[२७]।

होली हिंदुओं का एक ऐसा पर्व है जिससे सहयोग और सामाजिकता की भावना के प्रचार में बड़ी सहायता मिलती है। इस त्यौहार के अवसर पर रंग खेलते समय धनी-निर्धन और बड़े-छोटे का भेद सर्वत्र भुला दिया जाता है। चतुर्भुजदास ने एक स्थान पर होली के खिलाड़ियों द्वारा किसी राजा-राय के कुछ न गिने जाने का उल्लेख किया है[२८]। होली खेलने का आवेश ऐसा होता है कि

२३. या गोकुल के चौहटैं हरि सँग खेलैं फाग,
'डरति न गुरुजन लाज कौं' मोहन के अनुराग—सा० २८६७।

२४. इक अवलंबति, इक अवलोकति, 'चुंबन दान देति इक दंपति'।
मगन भईं अप बपु न सम्हारति, 'लालन भुज अपनैं उर धारति'।
'गुरुजन खरे सबै मिलि देखैं, तिनकौं तरुनी तृन सम लेखैं'—सा २९०१।

२५. 'आवत बछरा मेलियै, बन कौं देहिं बिडारि'।
'वै दैहैं हमकौं पठै', देखैं रूप निहारि।
औंजत गागरि ढारियै, जमुना जल कैं काज'।
'इहिं मिस बाहिर निकसि कै', जाइ मिलैं ब्रजराज—सा० २९०४।

२६. अति अनुराग बढ़्यो तिहिं औसर कुल लजा मरजादा तोरी—परमा० ३३३।

२७. बरसाने की ग्वालिनी खेलति फागु बसंता हो।
'संक न मानें काहु की मात पिता सुत कंता हो'—चतु० ८४।

२८. मगन भए डोलत जित तित हो 'गिनत न राजा राए'—चतु० ७४।

किसी को तन-बदन की सुधि नहीं रहती। अबीर, गुलाल और रंग के डर से सब लोग मुख मूँदे रहते हैं। स्त्रियों की 'बेनी' ढीली हो जाती है, 'चिकुर' छूट जाते हैं,[२९] उनके केस बिखर जाते हैं, कंचुकी के बंद टूट जाते हैं और मोतियों की माला बिखर जाती है[३०]। स्वयं छबीलेलाल भी 'तनी की चोली' तोड़ने में बड़ा उत्साह दिखाते हैं। इस पर जब राधा खीझती है तो सखियाँ गले लगाकर उससे कहती हैं कि खेल में इस तरह कौन मान करता है[३१]। होली खेलने में गोपी-ग्वाल इस तरह दत्त-चित्त हैं कि, कुंभनदास के अनुसार, वे सब-कुछ भूल गये हैं, यहाँ तक कि न किसी को आभूषणों के टूटने का ध्यान है और न वस्त्रों के फटने का ही। समय बीतने का भी उन्हें पता नहीं चलता[३२]।

होली के अवसर पर गीत गाकर किये गये खेल-तमाशे 'चाँचरि' कहलाते हैं। अपने-अपने 'टोले' में व्रज के सब लोग 'चाँचरि' खेलते हैं[३३] और ग्वालिनें तो घर-घर फाग खेलती हैं[३४]। इस अवसर पर 'गधे' की सवारी में भी प्राय: संकोच नहीं होता। सूरदास के 'ग्वाल-बाल' भी 'गधों' पर सवार होकर और 'बरात' सजाकर चलते हैं[३५]। इस त्यौहार पर भाँग, मदिरा आदि के पान का चलन भी हो गया है। सूरदास के एक पद में गोपियों के लिए मिठाई-पान के साथ-

२९. बाल गोपाल लाल सँग खेलैं, मुख मूँदे हिय खोलैं।
चिकने चिकुर छुटे बेनी तैं, मिले बसन मैं डोलैं—सा० २८५७।

३०. छुटे केस बँद कंचुकी टूटी मोतिनि माल—सा० २८६४।

३१. नवल छबीले लाल, 'तनी चोली की तोरी'।
राधा चली रिसाइ, ढीठ सौं खेलै को री।
खेलत मैं कस मान, सुनहु बृषभानु-किसोरी।
सूर सखी उर लाइ हँसति, भुज गहि झकझोरी—सा० २८७०।

३२. टूटत हार, चीर फाटत गिरि जहाँ तहाँ धरनि धरी।
काहू नहीं सँभार क्रीड़ा-बस सब तन-सुधि बिसरी।
अति आनंद मगन नहिं जानत, बीतत जाम घरी—कुंभन० ६६।

३३. सूरदास सब 'चाँचरि' खेलैं अपने अपने टोलैं—सा० २८५७।

३४. गोकुल सकल गुवालिनी घर घर खेलत फाग—सा० २८६४।

३५. राते कवच 'बरात सजि, खरनि भए असवार'।
धूरि धातु रँग घट भरे, धरे यंत्र हथियार—सा० २९१४।

साथ 'कोटि कलस भर बारुनी' मँगाये जाने का उल्लेख हुआ है[३६]।

'चौहटे' पर एकत्र होकर आनंद से झूम-झूमकर मधुर बानी से 'गीत' और झूमके गाये जाते हैं[३७]। गोपों के 'धमार' गाने का वर्णन भी सूरदास ने किया है[३८]। कुंभनदास ने गोपियों के गाने और नृत्य करने का वर्णन किया है[३९]। उनके ग्वाल-बाल 'नटनारायन' राग गाते हैं[४०]। चतुर्भुजदास ने एक पद में तो यही बात कुंभनदास के ही शब्दों में लिखी है[४१] और दूसरे में 'झूमक' गाये जाने का वर्णन किया है[४२]। उन्होंने ब्रज में 'होरी' खेलते नंदकिशोर को 'गौरी' राग अलापते बताया है[४३]। एक दूसरे पद में चतुर्भुजदास ने 'धमार' गाये जाने की ओर भी संकेत किया है[४४]।

'तरुनी-बाल-सयानी', सभी के परस्पर 'गाली' गाने का वर्णन भी सभी अष्टछापी कवियों ने किया है[४५]। 'गाली' गाने में उन्हें किसी प्रकार का संकोच नहीं

३६. 'कोटि कलस भरि बारुनी' दई बहुत मिठाई पान—सा० २६०६।

३७.क. ....गावत गीत सुहाए।

× × × ×

झूमि झूमि 'झूमक सब गावतिं', बोलतिं मधुरी बानी—सा० २८५४।

ख. अति आनंद मनोहर बानी गावत उठति तरंग—सा० २८६०।

३८. जमुना-कूल मूल बंसीबट 'गावत गोप धमारि'—सा० २८९५।

३९. मधुर सुर गीत गावति सुघर नागरी, चारु नृत्यत मुदित कुनित नूपुर चरन।
—कुंभन० ७०।

४०. 'गावत नट नाराइन राग' मुदित देत चैन,
फाग चहुँ दिसा जुरि ग्वाल बाल-बृन्द टोलनौं—कुंभन० ७४।

४१. 'गावत नट नारायन रागु', जुवती जन खेलत फागु—चतु० ७७।

४२. 'गावहिं झूमक' चेत बीच सुहाई गारि—चतु० ८०।

४३.क. ब्रज में अति रस बढ़्यौ हो हो होरी खेलत नंद किसोर।
'गौरी राग अलापत', गावत, मधुर मधुर मुरली कल घोर—चतु० ८५।

ख. 'गौरी राग' मुरली धुनि थोरी—चतु० ९१।

ग. 'गौरी राग' सरस सुर गावत—चतु० ९७।

४४. 'गावत सरस धमारिनि' यों रँगु रसिक मंडली जोरें जू—चतु० ९२।

४५. 'देतिं परस्परि गारि' मुदित मन तरुनी बाल सयानी—सा० २८५४।

होता[४६]। हरि और वृषभानु-किशोरी, दोनों में कोई 'गाली' गाने में कम नहीं है[४७]। ग्वाल-बाल तो किसी भी व्रजबाला को देखते ही 'होरी' पढ़ने और 'गाली' गाने लगते हैं[४८]। गोपियाँ भी गाली गाने में ग्वाल-बालों से बढ़कर ही हैं। जब वे श्रीकृष्ण को पकड़ पाती हैं तब उनका स्वाँग बनाती हुई खूब 'गारी' गाती हैं[४९]। श्रीकृष्ण से तो उनका प्रेम-संबंध है; अतः उनके प्रति 'गाली' गाने में तो कोई 'हर्ज' नहीं है; लेकिन गोपियाँ इससे भी आगे बढ़कर नंद महर तक का 'बखान' करने लगती हैं[५०]। सूरदास ने एक पद में 'गाली' के आशय की ओर भी संकेत किया है। ग्वाल जब 'होली' पढ़ते हैं तब गोपियाँ श्रीकृष्ण के लिए 'गाली' गाती हुई कहती हैं—'तुम्हारी माता', यशोदा बड़ी 'गुनभरी' हैं। यों तो वे नंद जी की पत्नी हैं, परंतु तुम्हारे पिता नंद नहीं हैं। अपने 'कुलटापन' से तुम्हारी माता यशोदा ने नंदादिक अनेक व्यक्तियों का मन मोह रखा है और राधा के पिता वृषभानु की भी वे 'प्यारी' हैं[५१]। इसी प्रकार गोप भी 'बरसाने' का नाम ले लेकर 'गालियाँ' देते-दिलाते हैं[५२]। सामान्यतया होली की गालियाँ 'मीठी' और 'मन-भावनी' होती हैं[५३]। परमानंददास की गोपियाँ मर्यादा का इतना उल्लंघन नहीं करतीं। उन्होंने भी कृष्ण के लिए 'गाली' गायी है, परंतु उन्होंने कृष्ण को 'कारो', 'नटवा', 'लटुवा', 'मधुकर',

४६. 'छाँड़ि सकुच' सब देति परस्पर अपनी भाई गारि—सा० २८६० ।

४७. 'गावत दै दै गारि' परस्पर उत हरि, इत बृषभानु-किसोरी—सा० २८६८ ।

४८.क. 'पढ़त होरी' 'बोलि गारी' निरखि कै ब्रजबाल—सा० २८७६ ।
 ख. ग्वालनि जेरी हाथ 'गारि दै' तियनि सुनाई—सा० २८८१ ।

४९. लोचन काजर आँजि भाँति सौं 'गारी गाई'—सा० २८८१ ।

५०.क. 'गारि नारि सब देहिं सुहानी, नंद महर लौं जाति बखानी—सा० २८७८ ।
 ख. करति सबै रुचि की पहुनाई, 'नंद महर कौं गारी गाई'—सा० २९१० ।

५१. उत होरी पढ़त ग्वार, इत 'गारी गावत' ये,
 'नंद नाहिं जाये तुम, महरि गुननि भारी'।
 'कुलटी उनतैं को है, नंदादिक मन मोहै',
 'बाबा बृषभानु की वै, सूर सुनहु प्यारी'—सा० २८८९ ।

५२. जमुना कूल मूल बंसीवट, गावत गोप धमारि।
 लै-लै नाउँ गाउँ बरसानो, 'देत दिवावति गारि'—सा० २८९५ ।

५३. अति मीठी मनभावती, 'देहिं परस्पर गारि'—सा० २९०० ।

'खंजन' आदि कहकर ही प्रसंग समाप्त कर दिया है[५४] और अंत में यह भी कह दिया है कि 'फगुवा' पा जाने पर हम गाली नहीं देंगी[५५]। कुंभनदास भी 'रस-गारी' की चर्चा करना नहीं भूले हैं[५६]। नंददास की गोपियाँ मोहन के मन को मोहनेवाली गालियाँ गाती हैं[५७]। राधा उन गालियों को सुनकर कृष्ण की ओर देखकर लजा जाती है[५८]। चतुर्भुजदास ने गोपियों के द्वारा 'गाली' गाये जाने का वर्णन दो-एक पदों में किया है[५९] और गोविंदस्वामी की गोपियाँ भी इस प्रसंग में किसी से पीछे नहीं हैं[६०]।

होली पर 'झाँझ, झिली, निर्झर, निसान, डफ, भेरि, ताल, मृदंग, बीन, बाँसुरी, रबाब, रुंज, महुअरि, उपंग, झालरी, आउझ' आदि बाजे बजाये जाने की बात सूरदास ने अनेक पदों में लिखी है[६१]। परमानंददास भी उक्त बाजे बजाये जाने की

५४. तुम आवो री तुम आवो, 'मोहन जू कौं गारी सुनावौ'।
'हरि कारो' री हरि कारो, यह 'द्वै बापन' बिचवारौ।
'हरि नटवा' री हरि नटवा, राधा जी के आगे 'लटुवा'।
हरि 'मधुकर' री हरि मधुकर, रस चाखत डोलत घर-घर।
हरि 'खंजन' री हरि खंजन, राधा जू के मन कौ रंजन—परमा० ३३५।

५५. हम लैहैं री हम लैहैं, 'फगुवा लै गारी न दैहैं'—परमा० ३३५।

५६. 'रस-गारी तारी दै गावैं' अब तो उघरि नच्यौ है—कुंभन० ७८।

५७. मोहन मन की मोहिनी 'देत रँगीली गारी'—नंद०, परि०, पृ० ८४।

५८. 'गावन लागीं ग्वालिनि गारी' सुंदर ललहिं लगाय।
राधा जू गारिनि सुनि-सुनि हँसि-हँसि हरि तन हेरि लजाय—नंद०, परि०, ९१।

५९.क. 'गारी देति गोप कुँवरि' करि कलोलना—चतु० ७७।
ख. 'गावहिं' झूमकि चेत बीच 'सुहाई गारि'—चतु० ८०।
ग. झुंडनि आई झूमिके 'गावति मीठी गारि'—चतु० ८१।
घ. मंद-मंद मुसिकाइ कै 'देति परस्पर गारि'—चतु० ९०।
ङ. 'गावति' परम भावती 'गारी' जू—चतु० ९२।

६०.क. हँसति-हँसति सब आइयो 'गावत गारी' सुहाई हो—गोविं० १११।
ख. 'गावति गारी' मगन भरि गोपी मीठी परम रसाल—गोविं० ११४।
ग. गावति गीत सुहावने हँसि-हँसि 'देतऽब गारी' हो—गोविं० ११७।
घ. अति रसभरी ब्रज सुंदरी 'देति परस्पर गारी'—गोविं० १२१।
ङ. लिए गुलाल अबीर अरगजा 'गावति मीठी गारी'—गोविं० १२२।

६१.क. 'झाँझ झिली निर्झर निसान डफ भेरि' भँवर गुंजार—सा० २८५३।

बात कहते हैं[६२]। कुंभनदास ने बाजों की उक्त सूची में अधौटी बीना, शंख आदि और बढ़ा दिये हैं[६३]।

ख. 'ताल मृदंग बीन बाँसुरी डफ' गावत गीत सुहाए—सा० २८५४।
ग बाजै 'ताल मृदंग रबाब' घोर—सा० २८५६।
घ. 'डफ, बाँसुरी रुञ्ज अरु महुअरि' बाजत 'ताल मृदंग'—सा० २८६०।
ङ. 'झाँझ ताल सुर मंडले' बाजत मधुर 'मृदंग'।
तिनमैं परम सुहावनी 'महुवरि बाँसुरि चंग'—सा० २८६६।
च. 'डफ बाँसुरी' सुहावनी 'ताल मृदंग उपंग,
'झाँझ झालरी किन्नरी, आउझ वर मुहचंग'—सा० २८६७।
छ. 'बीन मुरज उपंग मुरली झाँझ झालरि ताल'—सा० २८७६।
ज. 'इक बीना इक किन्नरि, इक मुरली इक उपंग।
इक तुंबुर इक रबाब' भाँति सौं बजावै।
एक 'पटह' इक 'गोमुख', इक 'आउझ' इक 'झल्लरि'
एक 'अंमृतकुंडली, इक 'डफ' कर धारै—सा० २८८८।
झ. 'दुन्दुभि ढोल पखावज आवझ' बाजत 'डफ मुरली' रुचिकारी—सा० २८९३।
ञ. 'रुञ्ज मुरज डफ झाँझ झालरी, जंत्र पखावज तार'।
मदनभेरि अरु राइ 'गिरिगिरी', सुरमंडल झनकार—सा० २८९५।
ट. 'डिमडिम, पटह, ढोल, डफ, बीना, मृदंग चंग' अरु 'तार'—सा० २९०६।
ठ. बाजत 'ताल मृदंग, झाँझ, डफ, रुञ्ज, मुरज, बाँसुरि'-धुनि थोरी—सा० २९०८।
ड. बाजत 'बीन बाँसुरी महुवरि, किन्नरि औ मुहचंग'।
'अमृतकुंडली' औ 'सुरमंडल', 'आउझ' सरस 'उपंग'।
'ताल मृदंग झाँझ डफ' बाजै, सुर की उठति तरंग—सा० २९१६।

६२.क. बाजत 'चंग मृदंग अधोटी पटह झाँझ झालर' सिर धोरी।
'ताल रबाब मुरलिका बीना' मधुर सबद उघटत धुन थोरी—परमा० ३३३।
ख. 'ताल पाखवज' बाजही 'बीना बेनु रसाल'।
'महुवरी चंग' जो बाँसुरी बजावत गिरिधरलाल—परमा० ३३३।

६३.क. बाजत 'डफ, मृदंग, बाँसुरी', किन्नरि, सुर कोमल री।
तिनहिं मिलत सुघर नँदनंदन 'मुरली' अधर धरी—कुंभन० ६६।
ख. बाजत 'ताल, मृदंग, अधौटी बीना, मुरली', तान तरंग—कुंभन० ७२।
ग. तहाँ बाजत 'बेनु, मृदंग, ताल' बिच-बिच 'मुरली' अति रसाल—कुंभन० ७३।
घ. बाजत 'आवज उपंग, बाँसुरि', सुर, 'बेनु चंग'
'संख बंस', 'झाँझि, डफ, मृदंग, ढोलनों'।

नंददास के अधिकतर बाजे उक्त सूची के ही हैं;[६४] केवल मुरज, ढोल, टनक, सहनाई उन्होंने अधिक बजवाये हैं[६५]। चतुर्भुजदास ने सामान्य बाजों के[६६] साथ-साथ 'शृंग' और 'वेत्र' भी बजाये जाने की बात लिखी है[६७]। एक दूसरे पद में उन्होंने उक्त बाजों के साथ 'गिरिगिरी' के[६८] और तीसरे पद में 'डिमडिम' के बजाये

बजत सुर अनेक ताल सुघरराइ श्रीगोपाल।
'बेनु' मध्य गान करत होरि होलनाँ—कुंभन० ७४।

ङ. बाजत 'ताल, मृदंग, अघौटी', बाजत 'डफ, सुर, बीन उपंगे'।
अधर बिंब कूजै 'बेनु' मधुर धुनि, मिलत सप्त सुर तान तरंगे—कुंभन० ७६।

च. 'झाँझ, बीन, पखावज, किन्नरी, डफ, मृदंग' बजाइए—कुंभन० ७७।

६४.क. बाजत 'ताल, मृदंग, मुरज, डफ', कहि न परति कछु बात।
—नंद०, पदा०, पृ० ३३६।

ख. 'ताल पखावज बेनु बाँसुरी' राग रागिनी तान—नंद०, परि०, ८१।

ग. 'सुर मंडल डफ झाँझ ताल' बाजत मधुर 'मृदंग'।
तिनमैं परम सुहावनी 'महुवरी बाँसुरी चंग'—नंद०, परि०, ८४।

६५.क. 'ताल, मृदंग मुरज, डफ बाजै, ढोल टनक' नव घन ज्यौं गाजै।
—नंद०, पदा०, पृ० ३३७।

ख. बाजत 'ताल, मृदंग, झाँझ डफ, सहनाई' अरु 'ढोल'—नंद०, पदा०, पृ० ३३८।

ग. घट 'आवज' 'सुरबीन', अनाघात गति गाजहीं
'ताल, मृदंग, उपंग, रुञ्ज, मुरज, डफ' बाजहीं—नंद०, पदा०, पृ० ३३९।

६६.क. बाजत 'ताल, मृदंग, झाँझि, डफ, आवज, बीना किन्नरेस'—चतु० ७१।

ख. 'बीना बेनु तान' तरंग, बाजत मधुर 'मृदंग'
'भेरी महुवरि डफ झाँझि ढोलना—चतु० ७७।

ग. 'दुन्दुभि झाँझ मुरज डफ' बाजें, 'मृदंग उपंग' अरु 'तार'—चतु० ८५।

घ. 'ताल, पखावज, बंस धुनि' बाजत बिच 'मुरली' धुनि सहज सुहाई।
'ढोल, निसान, दुन्दुभी' बाजत 'मदन भेरि', आनक 'सहनाई'।
'रुञ्ज, मुरज अरु झाँझ झालरी', बाजत कर 'कठताल उपंगा'।
अरु 'पिनाक किन्नरी श्रीमंडल' मधुर जंत्र बाजत मुख 'चंगा'—चतु० ८६।

६७. 'सृंग वेत्र महुवरि' धुनि नीके सब्द सुनाए—चतु० ७४।

६८. बाजत 'ताल मृदंग आवज डफ मुख चंग'।
'मदन भेरि सुर बीन गिरिगिरी झाँझि उपंग—चतु० ८०।

जाने का उल्लेख किया है[६९]। छीतस्वामी[७०] और गोविंदस्वामी के बाजे भी उक्त सूची के ही हैं[७१]। बेना, अमृतकुंडली,[७२] दमामा, धौंसा[७३] आदि के नाम उन्होंने और लिखे हैं। इतने बाजे बजते हैं और इतना कोलाहल होता है कि कान पड़ी आवाज भी नहीं सुनायी देती[७४]।

'फगुआ' या 'फगुवा' का वर्णन भी प्रायः सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। श्रीकृष्ण जब 'होली' खेलने निकलते हैं तब साथ में अनेक ग्वाल-बाल रहते हैं जिनमें कोई गाता है कोई नाचता है और कोई तरह-तरह के रंग या स्वाँग करता है[७५]। सब सखाओं के साथ श्रीकृष्ण वृषभानु की 'पौरि' पर पहुँचते हैं। व्रज की समस्त किशोरियाँ भी दौड़कर आ जाती हैं और उन्हें घेरकर कहती हैं कि यदि तुम 'फगुआ' न दे सको तो राधा के पैर छुओ[७६]। मोहन जब भी सखियों द्वारा पकड़े

६९. बिबिध भाँति बाजे बजे 'ताल मृदंग उपंग'।
'दुन्दुभि डिमडिम झालरी आवज' कर मुख 'चंग'—चतु० ८१।

७०. बाजत ताल मृदंग अघोटी, बिच मुरली धुनि थोरी—छीत० ५८।

७१.क. 'ताल मृदंग झाँझ डफ महुवरि' बाजत अरु 'मुरली'—गोविं० १०३।
ख. 'ताल मृदंग उपंग झाँझ डफ ढोल भेरि सहनाई'—गोविं० १०६।
ग. 'ताल मृदंग रबाव झाँझ डफ मृदंग मुरली' धुनि थोरी—गोविं० ११०।
घ. बाजत 'ताल मृदंग झाँझ डफ' बिचबिच मोहन मुरली धुनि थोरी—गोविं० ११२।
ङ. बाजत सरस 'मृदंग झाँझ डफ बीना बेनु उपंग ताल—गोविं० ११४।
च. चहुँ दिसि तें बाजे बजैं 'रुञ्ज मुरझ डफ ताला' हो।
'दुन्दुभी डिमडिम झालरी' बिच बिच 'बेनु' रसाला हो—गोविं० ११७।
छ. 'डिमडिम पटह झाँझ डफ बीना मृदंग उपंग तार'—गोविं० १२६।

७२. 'बीन बेना अमृतकुंडली किन्नरी झाँझ' बहु भाँति आवत उपंगे—गोविंद० १०८।

७३. भेरि दमामा धौंसा' कोऊ काहु न सँभार—गोविं० ११८।

७४.क. 'कान परी सुनियै नहीं', बहु बाजत ताल मृदंग—सा० २७०७।
ख. जुवतिनि संग खेलत फाग हरी।
बालक बृन्द करत कोलाहल 'सुनत न कान परी'—कुंभन० ६६।

७५. खेलत स्याम ग्वालनि संग।
एक गावत, एक नाचत, इक करत बहु रंग—सा० २८७६।

७६. निकसि कुँवर खेलन चले मोहन नंदकिसोर।
× × ×

जाते हैं, तब छुटकारा 'फगुवा' मँगा देने पर ही मिलता है[७७]। फगुआ ले लेने पर ही गोपियाँ कृष्ण को छुटकारा देने का निश्चय हर बार करती हैं[७८]। कभी मोहन स्वयं भी फगुवा मँगा देते हैं[७९] जिसमें सामान्यतया 'पँचरँग सारियाँ' होती हैं जिनमें से युवतियाँ मनचाही छाँट लेती हैं[८०]। कभी माता यशोदा ब्रज की युवतियों को बुलवाकर रंग-रंग की 'पहिरावनी' देती हैं[८१]। गोविंदस्वामी की यशोदा को जब 'काम नृपति की जेल' में बलराम के बंदी बनाये जाने अर्थात् गोपियों द्वारा बलराम के पकड़े और स्वाँग बनाये जाने की सूचना मिलती है, तब वे 'फगुवा' देकर ही उन्हें छुटकारा दिला पाती हैं[८२]। इसी प्रकार नन्द और यशोदा, दोनों कृष्ण को छुड़ाने के लिए बहुत मेवा मँगाकर गोपियों को देते हैं[८३]। कभी बलराम बीच-बचाव करते हैं और 'फगुआ' देकर भाई को छुड़ाते हैं[८४]। इसी प्रकार बलराम के पकड़े जाने पर कृष्ण 'फगुआ' मँगा देने का प्रस्ताव करते हैं[८५]।

खेलत रँगीले लाल जू गए वृषभानु की पौरि।
जे ब्रज हुतीं किसोरिका ते सब आईं दौरि।
× × ×
फगुआ दियौ न जाइ, लागौ राधा पाइँ—सा० २८६६।

७७. सब सखियनि मिलि मारग रोक्यौ, जब मोहन पकरे।
अंजन आँजि दियौ अँखियनि मैं हा हा करि उबरे।
'फगुआ बहुत मँगाइ साँवरे, कर जोरे अरज करे'—सा० २८६७।

७८. 'एक कहैं फगुआ लै छाँड़ें'—२६०१।

७९. खेलि फाग मिलि कै मनमोहन, फगुवा दियौ मँगाइ'—सा० २८९५।

८०. 'फगुवा हमकौं देहु मँगाई। पँचरँग सारी' बहुत दिवाई।
तुरत सबै जुवतिनि पहिराई। लीन्ही जो जाकैं मन भाई—सा० २६१०।

८१. रँग-रँग पहिरावनि दई, जुवतिनि महरि बुलाइ—सा० २८९२।

८२. इकले कर पकरे बलदाऊ जुरि आईं सब छेलैं।
अंग बिचित्र बनाइ सबनि के नैंननि काजर मेलैं।
'छिड़ाइ लए फगुआ दै जसुमति काम नृपति की जेलैं'—गोविं० १२३।

८३. नंद जसोमति जानि हरखि जिय मँगाइ दई भरि बोरी हो।
मेवा बहुत मँगाइ भाँति के सखा सहित सब छोरी हो—गोविं० १२४।

८४. 'बल कियौ बीच' ग्वाल समुझाए। मोहन मेवा मोल मँगाए।
'फगुआ लै लालन छिटकाए'। हँसत गुपाल ग्वाल तहँ आए—सा० २६०१।

८५. 'बलभैया कौं छाँड़ऊ फगुआ देउँ मँगाइ'—सा० २६१५।

एक पद में तो 'फगुआ' देने का विचित्र प्रस्ताव या सुझाव दिया गया है। गोपियाँ मोहन को पकड़ लेती हैं और नन्द जी से कहती हैं—कृष्ण को छुड़ाकर संसार में यश लो। उनका संकेत यह है कि 'फगुवा' पा जाने पर हम कृष्ण को छोड़ देंगी, इसलिए तुरंत उसका प्रबंध कर दो और यदि 'फगुवा' का प्रबंध तुम न कर सको तो यशोदा को वृषभानु के यहाँ 'धर' दो, तब उसका प्रबंध सुगमता से कर सकोगे[८६]। इस पर यशोदा हँसकर राधा और उसकी सखियों को बुलाती तथा 'फगुवा'-रूप में मेवा, मिश्री, रत्नादि देकर संतुष्ट कर देती हैं[८७]। परमानन्ददास की गोपियाँ तो यहाँ तक कह देती हैं कि 'फगुवा' मिल जाने पर हम 'गाली' नहीं देंगी[८८]। नन्ददास और चतुर्भुजदास की गोपियाँ भी 'फगुवा' माँगती और न दे सकने पर राधा के पाँय लगने की बात कहती हैं[८९]। गोविंदस्वामी की गोपियाँ कभी तो बलराम और मोहन को पकड़कर 'फगुवा' पाने पर छुटकारा देती हैं[९०] और कभी उसके लिए उनकी 'मणि-माल' छीन लेती हैं[९१]। कुछ गोपियाँ तो कृष्ण का पीतांबर पकड़कर 'फगुवा' में 'गहने-मोती-हार' लेने का हठ करती हैं[९२]। 'भूषण, बसन और पिछौरी' फगुवा में दिये जाने की बात भी गोविंदस्वामी के एक पद में मिलती है[९३]।

८६. मोहन पकरे करि मतौ, मुरली लई छँड़ाइ।
राधा सौं करि बीनती, दीजै हमहिं मँगाइ।
'नंद, छिंडावहु स्याम कौ', या जग में जस लेहु।
'जसुमति धरि बृषभानु कैं, फगुआ हमरौ देहु'—सा० २९१५।

८७. जसुमति हँसि सब सखिनि स्यौं, राधे लीन्ही बोल।
मेवा मिस्री बहु रतन, दई सबनि भरि ओल—सा० २९१५।

८८. हम लैहैं री हम लैहैं, 'फगुवा लै गारी न दैहैं—परमा० ३३५।

८९.क. छोड़न न देहीं नवल बधू माँगैं कुँवर पैं फाग।
'जो पैं फगुवा दियो न जाय प्यारी राधा के पाय लाग'—नंद०, परि०, ८४।
ख. 'राधेहिं करहु जुहार हमारौ फगुवा देहु—चतु० ८०।

९०. 'मन मान्यो फगुवा लियो' पाछे जाइ उन दीनो हो—गोविं० १११।

९१. 'फगुवा मिसि गिरिधर गहिं आने' लीन्हीं उर मनि माल—गोविं० ११४।

९२. एक पीत पट गहि रही 'फगुवा देहु कुँमार'।
ऐसे हम न पतीजहीं 'गहने देहु मोतीहार'—गोविं० १२५।

९३. 'फगुवा दियो मँगाय' सबन कों भूषन बसन पिछोरी—गोविं० १३३।

मेवा, मिठाई, पकवान, वस्त्र आदि गोपियों को सब कुछ 'फगुवा' में मिल गया और वे उसे पाकर हर्षित भी हो गयी हैं; परंतु वास्तव में जो 'फगुवा' वे चाहती हैं, वह उससे सर्वथा भिन्न है। श्याम से उन्होंने कहा है—हम तुम्हारे रंग में रँगी हैं; कोई और रंग हमें नहीं सुहाता। अतएव तुम्हारे साथ नित्य होली खेलने का सौभाग्य हमें प्राप्त रहे, यही 'फगुवा' हम चाहती हैं; तुम हमारी यही मनोकामना पूरी कर दो[९४]।

होली खेलने के पश्चात् गोप-गोपी, सभी परस्पर 'अनुकूल' होकर यमुना में स्नान करने जाते हैं[९५]। सूरदास के एक पद में स्नान के समय जल-क्रीड़ा द्वारा गोपियों को सुख देने का भी वर्णन हुआ है[९६]। दूसरे पद में उन्होंने गोपियों के साथ जल-क्रीड़ा करते कृष्ण को 'गजिनी संग नहाते मदन-धुजिनी गज' जैसा कहा है[९७]। सूरदास के अतिरिक्त कृष्णदास, परमानंददास, कुंभनदास और नंददास इस प्रसंग में मौन हैं। चतुर्भुजदास[९८] और गोविंदस्वामी[९९] ने अवश्य फाग के

९४. स्याम तुम्हारैं रंग रँगी हैं, और न रंग सुहाइ।
नितही होरी खेलियै हो, तुम सँग जादवराइ।
'यह फगुवा हम पावहीं' हो, चितवनि मृदु मुसुकानि।
सूर स्याम ऐसैं करौ जू, तुम हौ जीवन-प्रान—सा० २८८२।

९५.क. न्हान चले जमुना कैं कूल, गोपी गोप भए अनुकूल—सा० २९०१।
ख. फाग खेलि अनुराग बढ़ायौ, सबकैं मन आनंद।
चले जमुन अस्नान करन कौं सखा, सखी, नँदनंद—सा० २९०७।
ग. ग्वाल-बाल सब संग मुदित मन, जाइ जमुन जल न्हाइ हिलोरी—सा० २९०८।

९६. अति स्रम जानि गए जल तीरा। ग्वाल ग्वालि हलधर हरि बीरा।
परम पुनीत जमुन-जल रासी। क्रीड़त जहाँ ब्रह्म अबिनासी।
धन्य धन्य सब ब्रज के बासी। बिहरत हैं हरि सँग करि हाँसी।
जल-क्रीड़ा तरुनिनि मिलि कीन्हौ। ब्रज नर-नारिनि कौं सुख दीन्हौ—सा० २९१०।

९७. करत जदुनाथ जलधि-जल केलि।
अबलनि कर लिये, अंबु अमृत किये, दिये नव नव सुख खेलि।
यौं राजत तिहिं काल लाल, ललना रसाल रस रंग।
'मानहुँ न्हात मदन-धुजिनी गज, सजनी गजिनी संग'—सा० २९११।

९८. सब सुख जीति चलीं ब्रज जुवती गईं जमुना के कूलनि जू—चतु० ९२।

९९.क. 'परिवा' सकल घोष जन भानु-सुता चले न्हान—गोविं० १२१।

युद्ध में जीतकर गोपियों के जमुना के कूल पर जाने का उल्लेख किया है। यह स्नान 'परिवा' को होता है[६००]।

'परिवा' को नहा-धोकर नये वस्त्र पहनने की बात अष्टछापी कवियों में केवल गोविंदस्वामी ने लिखी है[१]। स्नान करके कृष्ण जमुना से रथ पर लौटते हैं[२]। घर आने पर नये और कोरे वस्त्राभूषण पहने जाते हैं[३]। नंदरानी श्रीकृष्ण पर निछावर करके वस्त्रादि दान देती हैं[४]। विप्रसमाज उनका तिलक करता है और विप्रों के साथ बंदीजन को वे 'रत्न-कंचन की बोरी' दान में देती हैं[५]। द्वितीया के दिन श्रीकृष्ण सब वस्त्राभूषण धारण करके सिंहासन पर बैठते हैं[६]। नंद जी भी व्रज-सुंदरियों को नग-भूषण दान देते हैं[७]। कृष्णदास, परमानंददास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास और छीतस्वामी के पदों में यह प्रसंग वर्णित नहीं है। गोविंदस्वामी ने अवश्य एक पद में नँदरानी द्वारा कुँवर पर 'वार' कर विप्रों को बहुत दान दिये जाने की बात कही है[८]। द्वितीया के दिन पीतपटधारी श्याम के सिंहासन पर विराजमान होने का उल्लेख भी गोविंदस्वामी के एक पद में मिलता है जिसमें उन्होंने श्रीदामा को भी युवराज के निकट उपस्थित बताया है[९]।

ख. खरिक सकल सिमिटि ब्रजवासी', चले जमुन जल न्हाइ—गोविं० १२६।

६००. 'परिवा सिमिटि सकल ब्रजबासी', चले जमुन जल न्हान—सा० २६०६।

१. 'परिवा बसन जु साजियो' न्हाहिं धोइ आनंदा हो—गोविं० ११६।

२. भवन गवन यौ नंद सुवन तब, 'निकसि चढ़े रथ' कूल—सा० २६११।

३. नए बसन आभूषन पहिरत, अरुन, सेत पाटंबर फोरी—सा० २६०८।

४. 'वारि कुँवर पर पट नँदरानी, दियें बिप्रनि बहु दान'—सा० २६०६।

५. दुइज समाज-समेत करत द्विज तिलक, दूब-दधि रोचन रोरी।
सूर स्याम विप्रनि, बंदीजन, 'देत रतन कंचन की बोरी'—सा० २६०८।

६.क. द्वितीया पाट सिंहासन बैठे, चमर छत्र सिर ढार—सा० २६०६।

ख. द्वितिया सकल समाज सौं पट बैठे आनँद-कंद—सा० २६०६।

७. दान देत ब्रज सुंदरी नग भूषन नवनिधि नंद—सा० २६०६।

८. 'वारि कुँवर पर नँदरानी हो देत विप्रनि बहु दान'—गोविं० १२६।

९. दुतिया पाट सिंहासन बैठे छत्र चँवर सिरताज।
राजत सहित श्रीदामा बलि बलि बलि जुवराज।
स्याम सुभग तन अति राजत हैं अरगजा पीत सुवास—गोविं० १२६।

समीक्षा—विविध पर्वोत्सवों और त्योहारों का जो विवरण अष्टछाप-काव्य के आधार पर ऊपर प्रस्तुत किया गया है, उससे चार निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। पहली बात यह है कि आठों अष्टछापी कवियों ने सभी पर्वोत्सवों और त्योहारों का वर्णन नहीं किया और जिन्होंने उन विषयों को लेकर पद-रचना की भी उन्होंने उनको समान विस्तार नहीं दिया। सूरदास, नंददास, छीतस्वामी आदि कवि अनेक प्रसंगों में मौन रहे तो कुंभनदास, कृष्णदास और चतुर्भुजदास वर्ण्य विषयों को उतना विस्तार नहीं दे सके जितना परमानंददास या गोविंदस्वामी ने दिया है।

दूसरी बात यह कि किसी भी प्रसंग में सभी अष्टछापी कवियों के विचार यदि सामूहिक रूप से लिये जाते हैं तो वर्ण्य विषय का प्राय: सांगोपांग विवरण सामने आ जाता है। उदाहरण के लिए 'दीपमालिका' का पाँच दिन का उत्सव 'धनतेरस' से प्रारंभ होकर 'भाईदूज' को समाप्त होता है; परंतु 'धनतेरस' का वर्णन जहाँ केवल परमानंददास और कुंभनदास ने किया है, वहाँ 'भाई-दूज' का वर्णन अष्टछापी कवियों में केवल गोविंदस्वामी ने किया है। अतएव आठों कवियों के विचार इस प्रकार प्रत्येक विषय में 'पूरक' की उपयोगिता रखते हैं और सम्मिलित रूप से उनका अध्ययन करने पर ही वर्ण्य विषय का पूर्ण चित्र सामने आ सकता है।

तीसरी बात यह है कि अष्टछापी कवियों ने पर्वोत्सवों और त्योहारों की उन्हीं बातों की चर्चा मुख्य रूप से की है जिनका संबंध वे अपने आराध्य से स्थापित करने में सफल हो सके; अन्य विधानों या रीतियों को उन्होंने अधिक महत्व नहीं दिया। उदाहरण के लिए 'दीपावली' के त्योहार में नारियल के 'खोपड़े' के कोयले को दूध में घिसकर 'दिवाली' रखने का प्रचलन व्रज में आज भी है[१०] और कहीं-कहीं वैसा कोयला न मिलने पर साधारण कोयले से भी 'दिवाली' रखी जाती है। परंतु ऐसी बातों का निकट संबंध संभवत: श्रीकृष्ण से न होने के कारण अष्टछापी कवियों ने इनको महत्वपूर्ण नहीं समझा। सांस्कृतिक दृष्टि से अष्टछाप-काव्य के अध्येता को उन भक्त कवियों के इस आदर्श को बराबर ध्यान में रखना चाहिए।

१०. 'व्रज लोक-साहित्य', पृ० २४६।

अष्टछापी कवियों के उक्त पर्वोत्सव और त्योहार-वर्णन की एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने जितना ध्यान ऐसे अवसरों का हर्षोल्लास-वर्णन करने में लगाया है, उतना पूजा आदि विधियों का वर्णन करने में नहीं। उदाहरण के लिए पूर्णिमा की रात को 'होली' 'लगायं' या 'जलायं' जाने की चर्चा अष्टछापी कवियों द्वारा लिखे गये होली-विषयक लगभग दो सौ पदों में केवल गोविंदस्वामी के एक पद के साथ-साथ 'सूर-सारावली में मिलती है[११]। श्रीकृष्ण के रस अथवा आनंद-रूप के उपासक अष्टछापी कवियों के लिए यह स्वाभाविक भी था। फिर भी विभिन्न पर्वों और त्योहारों की पूजा आदि के संबंध में जो दो-चार संकेत उनके काव्य में मिलते हैं उनके आधार पर ही सोलहवीं शताब्दी में उन उत्सवों की रूपरेखा का अच्छा ज्ञान हो सकता है और जब हम अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित अनेक बातें आज भी ब्रज और उसके निकटवर्ती प्रदेश में प्रचलित देखते हैं तब हमें उन कवियों की सूझ-बूझ पर हर्ष-मिश्रित आश्चर्य होता है।

५. *लोकाचार और लोकव्यवहार*—

भारतीय समाज में पारस्परिक व्यवहार में आयु और पद के साथ-साथ कभी-कभी वर्ण का भी ध्यान रखना पड़ता है। यही कारण है कि यदि निम्न वर्ग का व्यक्ति आयु में बड़ा है, तब भी वह आयु में छोटे उच्चवर्गीय व्यक्ति के प्रति शिष्टाचार दिखाना अपना कर्तव्य समझता है। इसी प्रकार बड़ी आयु वाले स्वामी के लिए पद में अपने से बड़े परंतु आयु में छोटे का सम्मान करना वांछनीय समझा जाता है। ब्रह्मचारी, आचार्य अथवा ब्राह्मण-वर्ग के प्रति अन्य वर्गों की श्रद्धा के मूल में प्रथम, और स्वामी या प्रभु के प्रति दास के सम्मान के मूल में द्वितीय भावना काम करती है। अष्टछाप-काव्य में दोनों प्रकार के कुछ उदाहरण पौराणिक प्रसंगों में मिलते हैं। उदाहरणार्थ बटु-रूपधारी 'वामन' को देखते ही बलि का उनको 'जुहारी' करने[१२] और चरण धोकर 'चरनोदक' लेने[१३] आदि के मूल में छोटी आयु के उच्चवर्गीय व्यक्ति के प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन का सामाजिक शिष्टाचार ही है। इसी प्रकार

११.क. पूरन ससि निसि डहडही 'पून्यो होरी लगाइ'—गोविं० १२१।
ख. 'पून्यो' सुख पायौ ब्रजवासी 'होरी हरष लगाय'—सारा० १०८५।
१२. देखि स्वरूप सकल कृष्नाकृति कीनी 'चरन जुहारी'—सा० ८-१०।
१३. चरन धोइ 'चरनोदक लीन्हौ'—सा० ८-१३।

द्वारकाधीश श्रीकृष्ण भी पूर्व सहपाठी निर्धन ब्राह्मण सुदामा को 'विप्र' जानकर ही हाथ जोड़ते हैं;[१४] अस्तु। अष्टछाप-काव्य में लोकाचार और लोक-व्यवहार का वर्णन बहुत कम स्थलों पर हुआ है; जो थोड़े-बहुत उदाहरण उसमें वर्णित हैं उनको मुख्यतः चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—क. सम्मान-प्रदर्शन, ख. विनम्र व्यवहार, ग. आदरातिथ्य तथा घ. अन्य लोकाचार।

क. *सम्मान-प्रदर्शन*—सम्मान - प्रदर्शन के लिए जिन शब्दों का प्रयोग अष्टछाप-काव्य में किया गया है उनमें नमन-नमस्ते, नमस्कार, साष्टांग प्रणाम, पालागन, प्रनाम, जुहार आदि शब्द मुख्य हैं।

अ. *नमन-नमस्ते*—समाज में जिन पुरुषों के व्यक्तित्व में लोक-कल्याण-कारिणी असाधारणता होती है, सामान्यतया हर समझदार व्यक्ति का मस्तक उनके सामने झुक जाता है। वीतराग महापुरुष इसी वर्ग में आते हैं जिनके प्रति बड़े-बड़े सम्राटों के मुकुट झुकने की बात हमारे साहित्यकारों ने कही है। अष्टछाप-काव्य में वर्णित कुछ पौराणिक प्रसंगों में इस प्रकार के 'नमन' के उदाहरण मिलते हैं। उदाहरणार्थ युवावस्था में ही 'श्रीमद्भागवत' का अमूल्य उपदेश देकर अपने असाधारण व्यक्तित्व का परिचय देनेवाले श्रीशुकदेव जी के प्रति राजा परीक्षित 'नमो-नमो' कहकर ही अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं[१५]। परब्रह्म-रूप में श्रीकृष्ण की स्तुति करनेवाले 'वेद' भी 'नमो नमस्ते' कहकर ही उनके प्रति अपनी विनम्रता प्रदर्शित करते हैं[१६]।

आ. *नमस्कार*—सामान्यतया 'नमस्कार' शब्द का प्रयोग पद, मान आदि में बराबर वाले एक दूसरे से करते हैं, परंतु अष्टछाप-काव्य में एक स्थान पर श्रीकृष्ण द्वारा भेजे गये अक्रूर के मुख से पांडवों को अकारण दुख न देने का उपदेश सुनकर उत्तर में अपनी विवशता प्रकट करते हुए वयोवृद्ध अंधसम्राट कुरुपति ने 'पैर पकड़कर नमस्कार' कहलाया है[१७]।

१४. कर जोरे हरि बिप्र जानि कै हित करि 'चरन पखारे'—सा० ४२३०।
१५. 'नमो नमो' हे कृपानिधान।
चितवत कृपा-कटाच्छ तुम्हारैं, मिटि गयौ तम अज्ञान—सा० २-३३।
१६. 'नमो नमस्ते' बारंबार। मधुसूदन गोविंद मुरार—सा० ४३०१।
१७. (कुरुपति कह्यौ) 'नमस्कार' मेरौ जदुपति सौं कहियौ परि कै पायँ—सा० ४१६०।

इ. *साष्टांग अथवा दंडवत् प्रणाम*—भारतीय शिष्टाचार के अनुसार 'साष्टांग प्रणाम' ही अभिवादन की सर्वोत्तम विधि है। इसमें सिर, हाथ, पैर, हृदय, आँख, जाँघ, वचन और मन—इन आठ अंगों से भूमि पर लेटकर प्रणाम किया जाता है[१८]। इसे ही जनभाषा में 'दंडवत् प्रणाम' भी कहते हैं। इस विधि से प्रणाम सामान्यतया उन्हीं व्यक्तियों को किया जाता है जिनके प्रति व्यक्ति में पूज्य भाव रहता है। रावण की मृत्यु के पश्चात् अशोकवाटिका से वंदिनी सीता को ले जाने के लिए उनके देवर लक्ष्मण कुछ सहायकों के साथ आते हैं; तभी जामवंत, सुग्रीव और विभीषण उनको देखते ही 'दंडवत्' प्रणाम करते हैं[१९]।

ई. *पालागन*—वनवास के पश्चात् अपने सहायकों और सेवकों के साथ राम अयोध्या पहुँचते हैं। गुरुवर वशिष्ठ आदि के साथ भरत उनका स्वागत करने आते हैं। गुरुवर के दर्शन करते ही उनका परिचय देकर राम अपने सहायकों से उनको 'पालागन' करने को कहते हैं[२०]। 'प्रनाम' भी पालागन का एक रूप है। परमानंददास ने इसी अर्थ में *'पाँय लगने'* की बात कही है[२१]। नंद-यशोदा का संदेश लेकर आयी हुई पंथी राजरानी देवकी के *'पाँइ लगती'* है[२२]।

उ. *जुहार*—सामान्यतया ग्रामीण वर्ग में ही 'जुहार' शब्द अधिक प्रचलित है, यद्यपि कहीं-कहीं नागरिकों के प्रति भी इस शब्द के प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं। अष्छाप-काव्य में नंदजी द्वारा देवकी को 'जुहार' करने की बात पीछे लिखी जा चुकी है। राम-कथा-प्रसंग में सीता की खोज करते हुए हनुमान जब अशोकवाटिका में वंदिनी सीता का दर्शन करके अपरिचित होने के कारण चिंतित हो जाते हैं, तब आकाशवाणी द्वारा उनको आदेश मिलता है कि वैदेही यही हैं, इन्हें 'जुहार' करो[२३]। राजा के प्रति भी 'जुहार' करने का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है

१८. श्री रामचंद्र वर्मा, 'प्रामाणिक हिन्दी कोश', पृ० १३२२।
१९. जामवंत सुग्रीव बिभीषन 'करी दंडवत आइ'—सा० ९-१६१।
२०. ये बसिष्ठ कुल-इष्ट हमारे, 'पालागन' कहि सबनि सिखावत—सा० ९-१६७।
२१. 'पैयाँ तेरे लागौं' पंथी मेरे बीर।
ग्वालिनि एक सँदेसो दीनों ठाढ़ी भई जमुना के तीर—परमा० काँक० १०२१।
२२. हौं इहाँ गोकुल ही तैं आई।
देवकि माइ 'पाइँ लागति हौं', जसुमति मोहि पठाई—सा० ३१७८।
२३. सूर आकासबानी भई तबै, यही बैदेहि है, करु जुहारा—सा० ९-७६।

जिससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र के साथ-साथ सभ्य समाज में भी सविनय अभिवादन-सूचक यह शब्द प्रचलित हो गया था। कंस को मारने के पश्चात् उग्रसेन को सिंहासन पर बैठाकर श्रीकृष्ण उनको सविनय 'जुहार' करते हैं[२४]।

ख. विनम्र व्यवहार—सामान्यतया मनुष्य की वाणी और शारीरिक हाव-भाव द्वारा व्यक्त शालीनता में शब्दों की गंभीरता तथा उनके द्वारा अभिव्यक्त शिष्टता के भाव सन्निहित रहते हैं। कृष्ण, पांडव के दूत बनकर कौरवपति की सभा में जाते हैं, 'क्षेम-कुशल' और 'दंडवत्-प्रणाम' के बाद वे बड़ी शिष्टता से पांडवों की माँग रखते हैं[२५]। इसी प्रकार अर्जुन ने भी कृष्ण को अपने पक्ष में लाने के लिए 'कृपा' करने की बात कही है[२६]। अपनी तुच्छता दिखलाना और दूसरे की उदारता एवं महानता का बखान करना शालीनता का एक अंग है। माता यशोदा के द्वारा देवकी को भेजे गये संदेश में दीनता और करुणा के साथ-साथ विनम्रता की स्पष्ट छाप है[२७]। संबोधन के लिए प्रयुक्त होनेवाले शब्दों द्वारा भी मौखिक शिष्टाचार प्रकट होता है। रुक्मिणी एक ब्राह्मण द्वारा कृष्ण को पत्र भिजवाती है। उस ब्राह्मण के लिए प्रयुक्त 'देव' संबोधन इसी बात का परिचायक है[२८]। नंद और जशोदा के लिए क्रमशः प्रयुक्त होनेवाले शब्द, 'महर'[२९] और 'महरि'[३०] ब्रजवासियों की विनम्रता के द्योतक हैं।

२४. उग्रसेन बैठारि सिंहासन, 'आपु जुहार कियौ'—परमा० ५१२।
२५. पाँच गाउँ पाँचौ जननि, 'किरपा करि' दीजै—सा० १-२३८।
२६. अर्जुन कह्यौ, जानि सरनागत, 'कृपा करौ' ज्यौं पूर्व करी—सा० १-२६८।

× × ×

२७. सँदेसौ देवकी सौं कहियौ
'हौं तौ धाइ तिहारे सुत की', मया करत ही रहियौ—सा० ३१७५।
२८. 'अहो देव, द्विजदेव' पिया पै तुरत जाहु अब

× × ×

काहू नाहिं पतीजौ, बलि बलि एती कीजौ—नंद०, रुक्मिनी०, पृ० १४४।
२९.क. आजु गृह 'नंद महर' कैं बधाइ—सा० १०-३३।
ख. 'नंद महर' के पुत्र भयो है आनँद मंगल गाई—परमा० ३।
ग. 'नंद महर' घर ढोटा जायो पूरन परमानंद—गोविं० २।
३०.क. 'महरि जसोदा' ढोटा जायौ, घर-घर होति बधाई—सा० १०-६३६।

शारीरिक क्रिया द्वारा प्रदर्शित शिष्टता में हृदय की सम्मान-भावना और विनम्रता का व्यावहारिक रूप प्रस्फुटित होता है। पांडवों के दूत कृष्ण हाथ जोड़कर पांडवों का संदेश राजा दुर्योधन को सुनाते हैं[३१]।

समान आयु के व्यक्तियों में एक बार मित्रता का जो संबंध स्थापित हो जाता है, पद या अधिकार में उनके बढ़ जाने पर भी वह थोड़ा-बहुत बना ही रहता है, यद्यपि जिन व्यक्तियों की स्थिति वैसी ही बनी रहती है या गिर जाती है उनके मन में उन्नति कर जानेवाले के प्रति मित्रता के भाव में कुछ संकोच भी आ जाता है। ऐसे पूर्व परिचित मित्र या सुहृद जब बहुत समय बाद मिलते हैं, तब परस्पर अंकमाल देते या एक दूसरे को छाती से लगाते हैं। श्रीकृष्ण का सहपाठी निर्धन ब्राह्मण सुदामा जब वर्षों बाद, उनके अपूर्व ऐश्वर्य-संपन्न हो जाने की सूचना पाकर, उनसे मिलने के लिए द्वारका जाता है, तब वे 'अंकमाल देकर' उससे मिलते हैं[३२]। अपरिचित व्यक्तियों के प्रति अत्यंत स्नेह और आत्मीयता व्यक्त करने के लिए भी 'अँकवार भर भेंटा' जाता है। सीता की खोज में गये हुए हनुमान के लंका पहुँचने पर रावण का भाई विभीषण उन्हें 'अँकवार भरकर' भेंटता है[३३]।

ग. *अतिथि-सत्कार*—भारतीय संस्कृति में अतिथि-सत्कार का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। अपना घर छोड़ना मानव को कभी प्रिय नहीं लगता; परंतु शरीर, परिवार और समाज की कुछ ऐसी आवश्यकताएँ होती हैं जिनके लिए उसे इच्छा-अनिच्छा से प्रवास में जाना ही पड़ता है। किसी परिचित-अपरिचित परिवार में पहुँचने पर ऐसे लोग 'अतिथि' कहलाते हैं। इनमें सुख-संपन्न और दुख के मारे, दोनों प्रकार के व्यक्ति होते हैं। सामान्यतया सुख-संपन्न अतिथि का जितना स्वागत-सत्कार किसी परिवार में होता है, दुखी-पीड़ित का उतना नहीं, यद्यपि भारतीय संस्कृति दोनों का ही स्वागत-सत्कार करने की प्रेरणा बराबर देती रही है[३४]।

ख. झुलावै सुत को 'महरि' पालना कर लिये नवनीत—परमा० ४८।

ग. आजु बधाई नंद 'महर' घर—गोविं० ५।

३१. 'कर जोरे बिनती करी', दुरबल-सुखदाई—सा० १-२३८।

३२. 'अंकमाल दै मिले' सुदामा अर्धासन बैठारे—सा० ४२३०।

३३. राम भक्त निज जान बिभीषन 'भेंटे हरि अँकवार'—सारा० २७६।

३४. ऐसी प्रीति की बलि जाऊँ।

अतिथि-सत्कार में अतिथि के प्रति हृदय के उल्लास को प्रकट करने के दो प्रमुख साधनों का उल्लेख अष्टछापी कवियों ने किया है—अ. स्वागत-सत्कार और आ. सेवा।

अ. स्वागत-सत्कार—अनेक मांगलिक पदार्थों को लेकर अभ्यागत का स्वागत करने की परिपाटी भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता रही है। सूरदास ने ऊधव के व्रज आने पर गोपी-ग्वाल द्वारा 'कंचन कलस', 'दूब', 'दधि', 'रोचन' आदि से उनका सत्कार कराया है। अतिथि के तिलक लगाना और उसकी 'प्रदच्छिना' करना भी उनके स्वागत का एक अंग है[३५]। सुफलक-सुत अक्रूर श्रीकृष्ण के शुभागमन की सूचना पाते ही दौड़कर मार्ग में ही उन्हें मिलते हैं और सादर घर लिवा लाते तथा उनके चरण धोते हैं। उस जल को बारबार वे माथे से लगाते एवं विविध सुगंधित पदार्थ, वस्त्राभूषण आदि लाकर उनके सामने रखते हैं[३६]।

सिंहासन तजि चले मिलन कौं सुनत सुदामा नाउँ।
'कर जोरे हरि बिप्र जानि कै', हित करि चरन पखारे।
'अंकमाल दै मिले' सुदामा, अर्घासन बैठारे—सा० ४२३०।

३५. ब्रज घर घर सब होत बधाई।
'कंचन कलस दूब दधि रोचन, लै' बृन्दाबन आई।
मिलि ब्रजनारि 'तिलक सिर कीनौ', करि 'प्रदच्छिना' तासु—सा० ३४७६।

३६.क. भक्तबछल बसुदेवकुमार।
चले एक दिन सुफलक-सुत कै पांडव-हेत बिचार।
मिल्यौ सु आइ पाइ सुधि मग मैं, 'बार-बार परि पाइ'।
गयौ लिवाइ सुभग मंदिर मैं, प्रेम न बरन्यौ जाइ।
'चरन पखारि धारि जल सिर पर, पुनि पुनि दृगनि लगाइ'।
बिबिध सुगंध चीर आभूषन, आगैं धरे बनाइ।
धन्य धन्य मैं, धन्य गेह मम, धनि धनि भाग हमारे—सा० ४१६०।

ख. 'श्रीमद्भागवत' में भी श्रीकृष्ण के राजोचित स्वागत का इस प्रकार वर्णन हुआ है—'नगर के फाटकों, महलों के दरवाजों और सड़कों पर भगवान के स्वागतार्थ बंदनवारें लगायी गयी थीं। चारों ओर चित्र-विचित्र ध्वजा-पताकाएँ फहरा रहीं थीं जिनसे इन स्थानों पर घाम आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। उसके राजमार्ग, अन्यान्य सड़कें, बाजार और चौक झाड़-बुहार कर सुगंधित जल से सींच दिये गये थे और भगवान के स्वागत के लिए बरसाये हुए फल-फूल,

आ. *अतिथि-सेवा*—भारतीय संस्कृति में अतिथि को साक्षात् नारायण-स्वरूप माना गया है। अतः उसके आने पर तन-मन-धन से उसकी सेवा करना प्रत्येक गृही का कर्त्तव्य हो जाता है। सुदामा के आने पर द्वारकाधीश श्रीकृष्ण उनकी सेवा स्वयं करते हैं। उन्हें मलमल कर स्नान कराते हैं। चंदन, अगर, कुम-कुम, केशर और परिमल का लेप उनके शरीर में करके[३७] अपनी शालीनता का परिचय देते हैं।

घ. *अन्य लोकाचार*—समाज में प्रचलित आचारों को ही 'लोकाचार' की संज्ञा प्रदान की जाती है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति लौकिक आचारों का प्रसन्नता पूर्वक अथवा लौकिक मर्यादा की रक्षा के लिए विवशता के साथ निर्वाह करता है। अष्टछापी कवियों ने जिन लोकाचारों का वर्णन किया है, उनमें दो मुख्य हैं—एक है उपहार भेजना और दूसरा, शुभकामना करना।

अ. *उपहार भेजना*—अष्टछापी कवियों ने राजाओं के उपहार के साथ-साथ सामान्य जन की भी भेंट की चर्चा की है। गोपों के 'कमल' पुष्प लेकर आने पर कंस ने नंद के लिए उपहार में 'सिरोपाँव' (पाँचों कपड़े) भेजे थे[३८]। जन-साधारण में जब किसी मित्र अथवा संबंधी के घर कोई मिलने जाता था तो वह उपहार में कोई न कोई वस्तु अवश्य ले जाता था। सुदामा जब कृष्ण से मिलने गये तो दरिद्र होने पर भी उन्होंने इस प्रथा का पालन माँगे हुए कच्चे चावल ही भेंट में देकर किया था[३९]। इसके अतिरिक्त आनन्ददायी अवसरों पर भी उपहार भेजने की प्रथा प्रचलित थी। राजा दशरथ के यहाँ पुत्र-जन्म होने पर देश-देश से टीका आया जिसमें रत्न, मणि आदि बहुमूल्य पदार्थ थे[४०]। पुरवासी भी अपनी सामर्थ्य के

अक्षत-अंकुर चारों ओर बिखरे हुए थे। घरों के प्रत्येक द्वार पर दही, अक्षत, फल, जल से भरे हुए कलश, उपहार की वस्तुएँ और धूप-दीप आदि सजा दिये गये थे'—प्रथम स्कंध, अध्याय ११, पृ० ६६।

३७. आदर बहुत कियौ कमलापति, 'मर्दन करि अन्हवायौ'।
'चंदन अगर कुमकुमा केसर, परिमल अंग चढ़ायौ'—सा० ४२३२।

३८. 'दियौ सिरपाँव नृपराव ने महर कौं', आपु पहिरावने सब दिवाए—सा० ५८७।

३९. 'तंदुल माँगि जाँचि कै लाई सो दीन्हों उपहार'—सारा० २०६।

४०. रघुकुल प्रगटे हैं रघुबीर।
'देस-देस तें टीको आयौ रतन कनक मनि हीर'—सा० ९-२८।

अनुसार पान-फूल लेकर दसरथ के यहाँ जाते हैं[४१]।

आ. *शुभकामना*—घर से बाहर जाते समय व्यक्ति की कुशल-मंगल की कामना से प्रेरित होकर दही और रोली का टीका लगाने की प्रथा लोक में प्रचलित थी। कृष्ण जब कंस के निमंत्रण पर मथुरा जाने लगते हैं तो माता सुपारी और रुपये देकर दधि और रोचन का तिलक लगाकर[४२] उनके प्रति अपनी शुभकामना व्यक्त करती है।

६. *विश्वास और मान्यताएँ*—

प्रत्येक जाति की संस्कृति का घनिष्ठतम संबंध उसमें प्रचलित विश्वासों और मान्यताओं से रहता है। इसका मुख्य कारण यह है कि जातीय जीवन के संगठन और नियंत्रण में विश्वासों और मान्यताओं का बड़ा हाथ रहता है। जिस जाति की संस्कृति का इतिहास जितना दीर्घकालीन होता है उसमें प्रचलित विश्वास और मान्यताएँ भी उतनी ही विविध और बहुसंख्यक होती हैं। भारतवर्ष की आर्य जाति का सांस्कृतिक इतिहास दीर्घकाल व्यापी है; अतः भारतीय समाज में प्रचलित विश्वासों और मान्यताओं की संख्या स्वभावतया बहुत अधिक है। किसी भी युग की कथा लेकर काव्य-रचना करनेवाला भारतीय कवि यहाँ के समाज के विश्वासों और लोकमान्यताओं की ओर संकेत करने पर ही जातीय जीवन के यथार्थ चित्रण में सफल होता है। अष्टछापी कवियों के काव्य में भी इसी कारण भारतीय जन-समुदाय में प्रचलित विश्वासों और मान्यताओं का उल्लेख अनेक बार हुआ है। अध्ययन की सुविधा के लिए उनकी रचनाओं में उल्लिखित विश्वासों और मान्यताओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. पौराणिक विश्वास, ख. लोक विश्वास और मान्यताएँ एवं ग. कवि-प्रसिद्धियाँ।

क. *पौराणिक विश्वास*—भारतीय संस्कृति में पौराणिक विश्वासों का बड़ा महत्व है; क्योंकि वास्तव में पुराणों में ही उसका यथार्थ स्वरूप लक्षित होता है। अष्टछापी कवियों की पौराणिक विश्वास के प्रति पूर्ण आस्था रही है। उनके काव्य

४१. पान-फूल चोबा-चन्दन 'बहु उपहार लोग लै आये'—परमा० ३४०।

४२. 'दधि रोचन को तिलक कियो' सिर रूपा सहित सुपारी पाँच।
परमानंद-स्वामी चिरजीवहु तुम जिन लागहु ताती आँच—परमा० ४८९।

में वर्णित विविध पौराणिक विश्वासों को स्थूल रूप से नौ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—अ. चौबीस अवतार, आ. परब्रह्म के अवतार राम, इ. परब्रह्म के अवतार कृष्ण, ई. राम-कृष्ण की एकता, उ. परम शक्ति की अवतार सीता और राधा, ऊ. राम-कृष्ण की लीलाएँ देखने देवताओं का आना, ए. अन्य देवताओं-संबंधी पौराणिक प्रसंग, ऐ. अन्य पौराणिक प्रसंग और ओ. पौराणिक वृक्ष, पशु-पक्षी, वाहन आदि।

अ. चौबीस अवतार—'श्रीमद्‌भागवत' के अनुसार अगाध सरोवर से निकलनेवाली सहस्रों नालियों के समान ही भगवान के अवतार भी असंख्य हैं[४३]। 'सूरसागर' और 'सूर-सारावली में पृथ्वी के रज-कण और आकाश के नक्षत्रों के समान अवतारों की संख्या अगण्य बतायी गयी है[४४]। परंतु भारतीय मनीषी उनकी गणना का प्रयत्न बहुत पहले से करते आ रहे हैं। 'श्रीमद्‌भागवत महापुराण' के प्रथम अध्याय में भगवान के बाइस अवतारों का उल्लेख हुआ है—सनकादिक, सूकर, नारद, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञपुरुष, ऋषभदेव, पृथु, मत्स्य, कच्छप, धन्वंतरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, व्यास, राम, कृष्ण, बलराम, बुद्ध और कल्कि[४५]। अष्टछापी कवियों में सूरदास के अतिरिक्त किसी ने 'अवतारों' की संख्या का उल्लेख नहीं किया है। सूरदास ने अवश्य उक्त अवतारों में से दस अवतार प्रमुख माने हैं—मच्छ, कच्छ, वराह या सूकर, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, वासुदेव या कृष्ण, बुद्ध और कल्कि[४६]। इसी पद में उन्होंने चौदह अन्य

४३. अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः
—श्रीमद्‌भागवत, प्रथम स्कंध, तृतीय अध्याय, श्लो० २६।

४४.क. भूमि रेनु कोउ गनै, नछत्रनि गनि समुझावै।
कह्यौ चहै अवतार, अंत सोऊ नाहिं पावै—सा० २-३६।

ख. तब हरि कह्यो जन्म मेरे बहु बेद न पावैं पार।
भुव की रज नभ के सब तारे तितने हैं अवतार—सारा० ६०६।

४५. 'श्रीमद्‌भागवत', तृतीय अध्याय, श्लोक ६ से २५ तक।

४६. मच्छ, कच्छ, बाराह, बहुरि नरसिंह रूप धरि।
बामन, बहुरौ परसुराम, पुनि राम रूप करि।

अवतारों का भी उल्लेख किया है—सनकादिक, व्यास, हंस, नारायण, ऋषभदेव, नारद, धन्वंतरि, दत्तात्रेय, पृथु, यज्ञपुरुष, कपिल, मनु, हयग्रीव और ध्रुव[४७]। इस प्रकार 'श्रीमद्भागवत' में 'मोहिनी' और 'बलराम' की गणना भी अवतारों में की गयी है; परंतु सूरदास ने उनको हटाकर हंस, मनु, हयग्रीव और ध्रुव की अधिक चर्चा करके चौबीस अवतार-संबंधी भारतीय समाज का प्रसिद्ध पौराणिक विश्वास व्यक्त किया है।

आ. परब्रह्म के अवतार राम—भगवान के दस प्रमुख अवतारों में राम की गणना सभी पुराणों में की गयी है। अष्टछापी कवियों ने भी उनको परब्रह्म का अवतार माना है। सूरदास ने 'भू-भार उतारने' के लिए राम का अवतरित होना बताया है[४८]।

इ. परब्रह्म के अवतार कृष्ण—परब्रह्म के अवतार श्रीकृष्ण तो अष्टछापी-कवियों के आराध्य हैं ही, अतएव उनके दिव्य गुणों के परिचायक विविध नामों का वर्णन अष्टछाप-काव्य में बड़े विस्तार से हुआ है। सूरदास ने 'सूरसागर' में उन्हें 'पूरन ब्रह्म' का अवतार माना है[४९] और उनके लिए अशरण-शरण, 'अबिगत',

बासुदेव सोई भयौ, बुद्ध भयौ पुनि सोइ।
सोई कल्की होइहै, और न द्वितिया कोइ—सा० २-३६।

४७. ये दस हरि-अवतार, कहे पुनि और चतुरदस।
भक्तबछल भगवान, धरे तन भक्तनि कैं बस।
अज, अबिनासी, अमर प्रभु, जनमै-मरै न सोइ।
नट-वत करत कला सकल, बूझै बिरला कोइ।
सनकादिक, पुनि ब्यास, बहुरि भए हंस-रूप हरि।
पुनि नारायन, रिषभदेव, नारद, धनवंतरि।
दत्तात्रेयऽरु पृथु बहुरि, जज्ञपुरुष-बपु धार।
कपिल, मनू, हयग्रीव पुनि, कीन्हौ ध्रुव अवतार—सा० २-३६।

४८.क. आजु दसरथ कैं आँगन भीर।
'ये भूभार उतारन कारन प्रगटे' स्याम सरीर—सा० ९-१६।

ख. रघुकुल-कुमुद-चंद चिंतामनि, 'प्रगटे भूतल महियाँ'।
आए ओप देन रघुकुल कौं, आनँद-निधि सब कहियाँ—सा० ९-१९।

४९. आदि सनातन, हरि अबिनासी। सदा निरंतर घट-घट बासी।
'पूरन ब्रह्म, पुरान बखानैं'। चतुरानन, सिव, अंत न जानैं।
गुन-गुन अगम, निगम नहिं पावै। ताहि जसोदा गोद खिलावै—सा० १०-३।

'अबिनासी', उदार-उदधि, करुणामय, करुणानिधान, कला - निधान, जगत-गुरु, जगत-पिता, जगदीस, जगन्नाथ, जगपाल, 'जान-सिरोमनि', दीन-बंधु, दीनानाथ, पुरुषोत्तम, मधुसूदन, श्रीपति, सकल-गुन सागर, सुख-सागर आदि ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो प्रायः सभी पुराणों में परब्रह्म के लिए प्रयुक्त होते आये हैं[५०]। 'सारावली' में भी उन्हें 'अबिगत', आदि, अनंत, अनूपम, 'अलख' पुरुष, 'अबिनासी', 'पूरनब्रह्म', पुरुषोत्तम आदि कहा गया है[५१]। अष्टछाप के अन्य कवियों ने उनके लिए अंतर्यामी, 'अबिनासी', कमलाकांत, कमलापति, गोविंद, जगन्नाथ, त्रिभुवन-पति, 'दीनन-दुखहारी', परब्रह्म, पुरुषोत्तम, श्रीपति, सुखसागर आदि शब्दों का प्रयोग किया है[५२]।

५०.क. 'अबिगत' 'अबिनासी', पुरुषोत्तम, हाँकत रथ कै आन।
अचरज कहा पार्थ जौ बेधै, तीनि लोक इक बान—सा० १-२६६।
ख. प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ।
अति गंभीर 'उदार-उदधि' हरि, 'जान-सिरोमनि' राइ।
× × ×
भक्त-बिरह कातर 'करुनामय', डोलत पाछैं लागे—सा० १-८।
ग. सूरदास 'करुनानिधान' प्रभु, जुग-जुग भक्त बढ़ाए—सा० १-१३।
घ. 'कलानिधान' 'सकल गुन-सागर', गुरु धौं कहा पढ़ाए हो—सा० १-७।
ङ. बासुदेव की बड़ी बड़ाई।
'जगतपिता, 'जगदीस', 'जगतगुरु' निज भक्तनि की सहत ढिठाई—सा० १-३।
च. 'जगन्नाथ धरनीधरहिं' सूरज बलि जाई—सा० १०-१६२।
छ. अब धौं कहौ, कौन दर जाउँ ?
तुम 'जगपाल चतुर चिंतामनि, दीन-बंधु' सुनि नाउँ—सा० १-१६५।
ज. राख्यौ गोकुल बहुत बिघन तैं, कर-नख पर गोबर्धन धारी।
सूरदास प्रभु सब 'सुखसागर, दीनानाथ, मुकुंद मुरारी'—सा० १-२२।
झ. 'दीनबंधु' हरि, 'भक्त-कृपानिधि', बेद-पुराननि गाए (हो)—सा० १-७।
ञ. कंत सिधारौ 'मधुसूदन' पै सुनियत हैं वे मीत तुम्हारे—सा० ४२२६।
ट. सो 'श्रीपति' जुग-जुग सुमिरन बस, बेद बिमल जस गावै।
'असरन-सरन' सूर जाँचत है, को अब सुरति करावै—सा० १-१७।
५१. 'अबिगत आदि अनन्त अनूपम अलख पुरुष अबिनासी'।
'पूरन ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम' नित निज लोक बिलासी—सारा० १।
५२.क. सूर प्रभु 'अंतर्यामी' व्यापक द्वितीय साखि क्यों दीजै—परमा०, सोम० अष्ट०, ६।

कुंभनदास ने परब्रह्म के तीन रूपों, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तथा उनके कार्यों—उत्पत्ति, पालन और संहार—की बात कही है और यह तथ्य स्वयं कृष्ण अपने मुख से स्वीकार करते हैं[५३]। इसी पद में कुंभनदास के कृष्ण, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल में अपनी ही ठकुराई होने की बात कहते हैं[५४]। 'सूरदास' के नारद जी अपनी स्तुति में श्रीकृष्ण की सर्वश्रेष्ठता की स्पष्ट घोषणा करते हैं[५५]। वेदों ने भी उनके

ख. जद्यपि परब्रह्म 'अबिनासी' महतारी डरु माने—परमा०, सोम० अष्ट०, ३१।
ग. जापर 'कमलाकांत' ढरै—परमा०, सोम० अष्ट०, ३।
घ. बड़ी है 'कमलापति' की ओट—परमा०, सोम० अष्ट०, २।
ङ. 'गोबिंद' करत मोहन गान—कृष्ण०, सोम०, अष्ट०, १४।
च. 'जगन्नाथ' मन मोह लियो री—कृष्ण०, सोम० अष्ट०, ७।
छ. कमलापति 'त्रिभुवनपति' नायक भुवन चतुर्दस नायक सोई।
—परमा०, सोम० अष्ट०, १४।
ज. परमानंद कल्पतरु 'दीनन दुखहारी'—परमा०, सोम० अष्ट०, ६।
झ. बसुधा-भार उतारन आयो 'परब्रह्म' बैकुंठ-निवासी—परमा०, सोम० अष्ट०, १४।
ञ. कपट रूप छलिबे आयो 'पुरुषोत्तम' नहिं जान—छीत०, सोम० अष्ट०, १७।
ट. परमानंद दास 'श्रीपति' जस अधम भले बिसरावे—परमा०, सोम० अष्ट०, ६।
ठ. परमानंद स्वामी 'सुखसागर' चिते लई रति जोरि—परमा०, सोम० अष्ट०, २४।

५३. ब्रह्म-रूप उतपति करौं, रुद्र-रूप संहार।
बिष्नु-रूप रच्छा करौं, सो मैं हो नंदकुमार—कुंभन० २२।

५४. स्वर्ग मर्त्य पाताल सबै मेरी ठकुराई—कुंभन० २३।

५५. प्रभु, तुव मर्म समुझि नहिं परै।
जग सिरजत पालत संहारत, पुनि क्यों बहुरि करै।
ज्यौं पानी मैं होत बुदबुदा, पुनि ता माहिं समाइ।
त्यौंही सब जग प्रगटत तुम तैं, पुनि तुम माहिं बिलाइ।
माया जलधि अगाध महाप्रभु, तरि न सकै तिहिं कोइ।
नाम जहाज चढ़ै जो कोऊ, तुव पद पहुँचै सोइ।
पापी नर लोहे जिमि प्रभु जू, नाहीं तासु निबाह।
काठ उतारत पार लोह ज्यौं, नाम तुम्हारौ ताह।
पारस परसि होत ज्यौं कंचन, लोहपनौ मिटि जाइ।
त्यौं अज्ञानी जानहिं पावत, नाम तुम्हारौ गाइ।
अमर होत ज्यौं संसय नासे, रहत सदा सुख पाइ।
यातैं होत अधिक सुख भगतनि, चरन कमल चित लाइ।

सर्वव्यापी और अंतर्यामी रूप की वंदना की है[५६]। सूरदास के एक पद में हरि के विराट रूप की आरती का वर्णन करके अनंत ब्रह्मांड में व्याप्त उनके 'विराटत्व' की ओर संकेत किया गया है[५७]।

ई. *राम और कृष्ण की एकता*—अष्टछाप के कवि परब्रह्म श्रीकृष्ण को अपना आराध्य मानते हुए भी राम और कृष्ण की एकता में आस्था रखते हैं। सूरदास ने एक पद में इसकी चर्चा बड़े विस्तार से की है। इंद्रादि देवता पद के एक चरण में राम की और दूसरे में कृष्ण की स्तुति इस प्रकार करते हैं :—

जै गोबिंद माधव मुकुंद हरि। कृपा सिंधु कल्यान कंस अरि।
प्रनत - पाल केसव कमलापति। कृष्न कमल लोचन अगतिनि-गति।
रामचंद्र राजीव-नैन बर। सरन साधु श्री-पति सारँगधर।
बनमाली बामन बीठल बल। बासुदेव बासी ब्रज - भूतल।
खर-दूखन-त्रिसिरासुर खंडन। चरन-चिह्न-दंडक भुव मंडन।

थावर जंगम सब तुम सुमिरत, सनक सनंदन ताहीं।
ब्रह्मा सिव अस्तुति न सकैं करि, मैं बपुरा केहि माहीं—सा० ४३०२।

५६. नाथ तुम्हारी जोति अभास। करति सकल जग मैं परकास।
थावर जंगम जहँ लगि भए। जोति तुम्हारी चेतन किए।
तुम सब ठौर सबनि ते न्यारे। को लखि सकै चरित्र तुम्हारे।
स्वयं प्रकास तुम साच्छी सदा। जीव कर्म करि बंधन बँधा।
सर्बब्यापी तुम सब ठाहर। तुमहिं दूरि जानत नर बाहर।
तुम प्रभु सबके अंतरजामी। बिसरि रह्यौ जिव तुमकौं स्वामी—सा० ४३००।

५७. हरि जू की आरती बनी।
अति बिचित्र रचना रचि राखी, परति न गिरा गनी।
कच्छप अध आसन अनूप अति, डाँड़ी सहस फनी।
मही सराव, सप्त सागर घृत, बाती सैल घनी।
रबि-ससि-ज्योति जगत परिपूरन, हरति तिमिर रजनी।
उड़त फूल उडगन नभ अंतर, अंजन घटा घनी।
नारदादि सनकादि प्रजापति, सुर - नर - असुर - अनी।
काल कर्म - गुन ओर अंत नहिं, प्रभु इच्छा रचनी।
यह प्रताप दीपक सुनिरंतर, लोक सकल भजनी।
सूरदास सब प्रगट ध्यान मैं अति बिचित्र सजनी—सा० २-२८।

बकी - दवन बक-बदन बिदारन। बरुन - बिषाद नंद निस्तारन।
रिषि - मख-त्रान ताड़का - तारक। बन बसि तात-बचन-प्रतिपालक।
काली - दवन केसि-कर-पातन। अघ अरिष्ट धेनुक अनुघातन।
रघुपति प्रबल पिनाक बिभंजन। जगहित जनक-सुता मन - रंजन।
गोकुलपति गिरिधर गुन सागर। गोपी-रवन रास-रति नागर।
करुनामय कपि - कुल - हितकारी। बालि - बिरोधि कपट मृग-हारी।
गुप्त गोप - कन्या - ब्रत पूरन। द्विज - नारी - दरसन - दुख - चूरन।
रावन - कुंभकरन - सिर छेदन। तरुवर सात एक सर भेदन।
संख - चूड़ - चानूर - सँहारन। सक्र कहै मम रच्छा - कारन।
उत्तर क्रिया गीध की करी। दरसन दै सबरी उद्धरी।
जे पद सदा संभु हितकारी। जे पद परसि सुरसरी तारी।
जे पद रमा हृदय नहिं टारैं। जे पद तिहूँ भुवन प्रतिपारैं।
जे पद अहि-फन-फन-प्रतिधारी। जे पद बृन्दा बिपिन बिहारी।
जे पद सकटासुर संहारी। जे पद पांडव-गृह पग धारी।
जे पद-रज गौतम-तिय तारी। जे पद भक्तनि के सुखकारी।
सूरदास सुर जाँचत ते पद। करहु कृपा अपने जन पर सद।[५८]

उक्त पद इस बात का प्रबल प्रमाण है कि उदारमना अष्टछापी कवि राम और कृष्ण की एकता में पूर्ण विश्वास रखते और दोनों को परब्रह्म का अवतार मानते थे। हिंदी के समस्त भक्ति-साहित्य में इस प्रकार के पद अधिक नहीं मिलेंगे।

उ. *परमशक्ति की अवतार सीता और राधा की एकता*—राम और कृष्ण की एकता के समान ही सीता और राधा को भी अष्टछापी कवियों ने एक ही परमशक्ति का अवतार माना है। यही कारण है कि जिस प्रकार वे सीता को 'जगत-जननी' कहते हैं,[५९] उसी प्रकार राधा को भी 'सेस-महेस-गनेस, सुकादिक,

५८. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद ६८१।
५९. इहिं बिधि बन बसे रघुराइ।
डासि कै तृन भूमि सोवत, द्रुमनि के फल खाइ।
'जगत जननी' करी बारी, मृगा चरि चरि जाइ—सा० ६-६०।

नारदादि की स्वामिनी, जगत-जननी' आदि मानते हैं[६०]।

ऊ. *राम-कृष्ण की लीलाएँ देखने देवताओं का आना*—परब्रह्म का अवतार होने के कारण राम और कृष्ण सभी देवताओं के पूज्य हैं; अतएव उनकी लीलाएँ देखने के लिए देवता सदैव उपस्थित रहते हैं। राम-लक्ष्मण के विवाह में वे दुंदुभी बजाते हैं[६१] और आकाश में 'व्योम विमानों' की 'भीर' हो जाती है[६२]। श्रीराम के धनुष तोड़ते ही अमरगण 'जयजय' ध्वनि करते हैं[६३]। इसी प्रकार जब श्रीकृष्ण कालियनाग के नाथने में सफल होते हैं तब भी 'अमर' जयजय ध्वनि करके 'धन्य धन्य' कहते हैं[६४]। गोवर्द्धन-पूजा का कौतुक देखने के लिए भी देवगण आते हैं[६५] और 'जय' ध्वनि करके फूल बरसाते हैं[६६]। रासलीला का अद्भुत दृश्य देखकर तो देवगण के हर्ष की सीमा ही नहीं रहती। वे बार-बार फूल बरसाते, गोपी-ग्वाल और व्रजजन को ही नहीं, बंसीबट, जमुनातट, लता-तमाल, बृन्दावन,

६०. नीलांबर पहिरे तनु भामिनि, जनु घन दमकति दामिनि।
सेस, महेस, गनेस, सुकादिक, नारदादि की स्वामिनि।
× × ×
रूप-रासि, सुख-रासि राधिके, सील महा गुन-रासी।
कृष्न-चरन ते पावहिं स्यामा, जे तुव चरन उपासी।
'जग-नायक, जगदीस-पियारी, जगत-जननि जगरानी'।
नित बिहार गोपाल लाल-सँग, बृन्दाबन रजधानी।
अगतिनि की गति, भक्तनि की पति राधा मंगलदानी।
असरन-सरनी, भव-भय-हरनी, बेद पुरान बखानी—सा० १०५५।

६१. सूर भयौ आनंद नृपति-मन, 'दिवि दुन्दुभी बजाए'—सा० ६-२४।

६२. देखत मुदित चरित्र सबै सुर, 'व्यौम-बिमाननि भीर'—सा० ६-२६।

६३. 'जय जय धुनि सुनि करत अमरगन', नर नारी लवलीन—सा० ६-२६।

६४. 'जय जय धुनि अमरनि नभ कीन्हौ।
धन्य-धन्य जगदीस गुसाईं, अपनौ करि अहि लीन्हौ।
× × × ×
'अस्तुति करत अमर-गन बहुरे', गए आपनैं लोक—सा० ५७६।

६५. 'कौतुक देखन देवता आए' लोक बिसारि—सा० ८४१।

६६. 'अमर बिमान चढ़े नभ देखत', जै धुनि करि 'सुमननि बरसाई'—सा० ८३६।

सभी को 'धन्य' कहते हैं[६७]। इस अवसर पर वे 'नीसान' भी बजाते हैं[६८]। शिव, शारद, नारद आदि भी 'धन्य धन्य' कहने में उनका साथ देते हैं[६९]। चतुर्भुजदास ने भी रासलीला के अवसर पर 'व्योम विमानों का मुग्ध और थकित' हो जाना कहा है[७०]। परमानंददास के अनुसार 'घोष' के कौतूहल देखने के लिए देवता विमानों पर एकत्र होते हैं[७१]। केशी आदि दैत्यों के वध के अवसर पर भी देवतागण के 'पुहुप' बरसाने की बात अष्टछाप-काव्य में मिलती है[७२]।

इसी प्रकार राधा का अद्भुत सौन्दर्य और उनकी परम भावती लीलाएँ देखने के लिए 'रमा, उमा, शची और अरुंधती' प्रति दिन आती हैं[७३]। रासलीला के अवसर पर तो 'देव-ललना पति-गति बिसराकर' निहारती रह जाती हैं और उनसे अपने लोक लौटते नहीं बनता[७४]। इस अवसर पर उन्हें 'देव-वधू' होने का बड़ा दुख है और 'अमरपुर' को छोड़कर वृन्दावन में द्रुमलता होने का वरदान वे 'करता' से

६७.क. 'सुरगन चढ़ि बिमान नभ देखत'।
ललना सहित सुमनगन बरषत, धन्य जन्म ब्रज लेखत।
धनि ब्रज-लोग, धन्य ब्रज-बाल, बिहरत रास गुपाल।
धनि बंसीबट, धनि जमुनातट धनि धनि लता तमाल।
सब तै धन्य धन्य बृन्दाबन, जहाँ कृष्न कौ बास।
धनि धनि सूरदास के स्वामी, अदभुत रच्यौ रास—सा० १०४४।
ख. 'निरखि कुसुमगन बरसत सुरगन', प्रेम मुदित जस गावैं—सा० १०५५।
६८. नैन सफल अब भए हमारे।
'देवलोक नीसान बजाए, बरषत सुमन सुधारे—सा० १०४५।
६९. सिव-सारद-नारद यह भाषत, धनि-धनि नंद-दुलारे—सा० १०४५।
७०.क. चत्रभुज प्रभु स्याम स्यामा की नटनि देखि।
मोहे खग मृग बन 'थकित व्योम बिमान'—चतु०।
ख. चत्रभुज प्रभु बन-बिलास, 'मोहे सब सुर अकास'।
निरखि थक्यो चंद-रथहि पच्छिम नहिं खाँचे—चतु० ३६।
७१. 'चढ़ि बिमान देवता' गोकुल अमरावती बिसेषी।
परमानंद घोष कुतूहल जहाँ तहाँ अद्भुत छबि पेखी—परमा०, सोम०अष्ट०, १५।
७२. 'पुहुप बृष्टि देवनि मिलि कीन्हीं, आनँद मोद बढ़ाए—सा० १३६६।
७३. 'रमा, उमा, अरु सची अरुन्धती' दिन प्रति देखन आवैं—सा० १०५५।
७४. 'सुर-ललना पति-गति बिसराए', रहीं निहारि-निहारि।
जात न बनै देखि सुख हरि कौ, आईं लोक बिसारि—सा० १०४५।

माँगना चाहती हैं। ब्रज में 'दासी'-जीवन बिताना भी उन्हें स्वर्ग की 'देवी' होने से श्रेष्ठ प्रतीत होता है[७५]। मन में इस प्रकार विचार करती 'अमर ललनागण' स्व-लोक बिसारकर 'बिथकी'-सी रह जाती हैं[७६]।

ए. *अन्य देवताओं संबंधी पौराणिक प्रसंग*—ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये तीन देवता परब्रह्म के रूप कहे जाते हैं। इनमें से ब्रह्मा और महेश के संबंध में दो पौराणिक प्रसंग बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रथम है 'बाल-वत्स-हरण' प्रसंग जिसमें ब्रह्मा ब्रज के बाल-वत्सों का हरण करके ब्रह्मलोक पहुँचा देता है और परब्रह्म के अवतार कृष्ण उनकी पुनः सृष्टि करके उसका गर्व हरते हैं[७७]। ब्रह्मा वह नयी सृष्टि देखकर चकित होता, सुबुद्धि का उदय होने पर 'पुरुष-पुरान' को पहचानता, अपनी धृष्टता के लिए पश्चाताप करता और अपराध क्षमा कराने के लिए उनकी प्रार्थना करता है[७८]। अंत में माधव से वृन्दावन की रेणु ही कर देने की प्रार्थना करने पर उसे शांति

७५. 'हमकौं बिधि ब्रज-बधू न कीन्हीं, कहा अमरपुर बास भएँ'।
बार-बार पछिताति यहै कहि, सुख होतौ हरि संग रहैं।
कहा जनम जो नहीं हमारौ, फिरि-फिरि ब्रज अवतार भलौ।
बृन्दाबन द्रुम - लता हूजियै, करता सौं माँगियै चलौ।
यह कामना होइ क्यौं पूरन, 'दासी ह्वै बरु ब्रज रहियै'।
सूरदास प्रभु अंतरजामी तिनहिं बिना कासौं कहियै— सा० १०४६।

७६. धनि ब्रज-बास, आस यह पूरन, कैसैं होति हमारी।
'सूर अमर-ललना-गन अंबर, बिथकीं लोक बिसारी—सा० १०४७।

७७.क. 'बिधि मनहीं मन सोच परयौ'।
गोकुल की रचना सब देखत, अति जिय माहिं डरयौ—सा० ४३६।
ख. बालक-बच्छ ब्रह्म हरि लै गयौ, ताकौ गर्व नसावै—सा० ४८२।
ग. ब्रह्मा बालक-बच्छ हरे।
आदि अंत प्रभु अंतरजामी, मनसा तैं जु करे।
सोइ रूप वै बालक गोसुत, गोकुल जाइ भरे।
एक बरस निसि-बासर रहि सँग, काहु न जानि परे—सा० ४८३।

७८.क. वै तौ जे हरे हैं ते तौ सोवत परे हैं, ये करे हैं कौनैं आन अँगुरीनि दंत दै रह्यौ।
पुरुष पुरान आन कियो चतुरानन, कै सोई प्रभु पूरन प्रगट इहाँ ह्वै रह्यौ।
उतै देखि धावै, इत आवै, अचरज पावै, सूर सुरलोक ब्रजलोक एक ह्वै रह्यौ।
बिबस ह्वै हार मानी, आपु आयौ नकबानी, देखि गोप मंडली कमंडली चितै रह्यौ।
सा० ४८४।

मिलती है[७९]।

दूसरा प्रसंग शिव के मोह का है। कामारि शिव भगवान से उस मोहिनी-रूप का दर्शन कराने का निवेदन करते हैं जिसे देखकर सागर-मंथन के समय सुर और असुर मोहित हो गये थे। समझाने पर भी जब वे नहीं माने तब भगवान ने मोहिनी-रूप धरकर दर्शन देने का वचन दिया। उमा सहित शिव वन में जाकर उनकी प्रतीक्षा करने लगे। उसी समय सूर्य, चंद्र और चपला से भी अधिक कांतिवती ज्योति-स्वरूपिणी मोहिनी के दर्शन उनको हुए। उसे देखकर उमा तो मुग्ध हो ही गयीं, शिव भी इतने मोहित हुए कि लपककर उन्होंने उसे पकड़ लिया। तभी मोहिनी अपने को छुड़ाकर जब बड़े हाव-भाव से उनकी ओर देखती हुई आगे बढ़ी कि कामातुर शिव का वीर्य स्खलित हो गया। उमा की उपस्थिति में अपनी यह दशा देखकर शिव बहुत लज्जित हुए और मन में पश्चाताप करने लगे कि मैंने यह क्या किया। तभी भगवान ने दर्शन देकर उन्हें सांत्वना दी[८०]।

ख. तब हरि हरयौ बिधि कौ गर्ब।
बच्छ-बालक लै गयौ धरि, तुरत कीन्हें सर्ब।
ब्रह्मलोक दुराइ आयो, चरित देखन आप।
'बच्छ-बालक देखि कै, मन करत पस्चाताप'।
तब गयो बिधि लोक अपनैं, दृष्टि कै फिरि आइ।
जानि जिय अवतार पूरन, परयौ पाइनि धाइ।
'बहुत मैं अपराध कीन्हौ, छमा कीजै नाथ।'
जानि मैं यह नहीं कीन्हौं, जोरि कह्यौ दोउ हाथ।
बच्छ-बालक आनि सन्मुख, सरन सरन पुकारि।
सूर प्रभु के चरन गहि-गहि, कहत राखि मुरारि—सा० ४८५।

ग. 'बिनवै चतुरानन कर जोरे'।
तुव प्रताप जान्यौ नहिं प्रभु जू, 'करै अस्तुति लट छोरे'—सा० ४८८।

७९. 'माधौ मोहिं करौ बृन्दावन-रेनु।
जिहिं चरननि डोलत नँदनंदन, दिन-प्रति बन-बन चारत धेनु।
कहा भयौ यह देव-देह धरि, अरु ऊँचैं पद पाएँ ऐनु।
सब जीवनि लै उदर माँझ प्रभु महा प्रलय-जल करत हौ सैनु।
हमतैं धन्य सदा वै तृन-द्रुम, बालक-बच्छ-विषानऽरु बेनु।
सूर स्याम जिनकैं सँग डोलत, हँसि बोलत, मथि पीवत फेनु—सा० ४८९।

८०. 'पाइ सुधि मोहिनी की सदासिव चले', जाइ भगवान सौं कहि सुनाई।

भगवान के इन दोनों रूपों के अतिरिक्त, पौराणिक विश्वास के अनुसार, गोवर्द्धन-पूजा के प्रसंग में देवराज इंद्र का अभिमान नष्ट होने की चर्चा अष्टछाप-काव्य में मिलती है। ब्रह्मा और शिव से संबंधित उक्त पौराणिक प्रसंगों के प्रति तो सूरदास के अतिरिक्त अन्य कवियों ने अधिक रुचि नहीं दिखायी है, परंतु इंद्र की पराजय की चर्चा प्राय: सबने विस्तार से की है। मन ही मन श्रीकृष्ण की महिमा का गान करता हुआ इंद्र अपनी धृष्टता पर अत्यंत लज्जित होकर उनकी शरण आता है[८१]।

असुर अजितेंद्रि जिहिं देखि मोहित भए, रूप सो मोहिं दीजै दिखाई।
हरि कह्यौ, 'ब्रह्म व्यापक निराकार सौं मगन तुम, सगुन लै कहा करिहौ'?
पुनि कह्यौ, 'बिनय मम मानि लीजै प्रभो, उमा देख्यौ चहति कृपा धरिहौ'।
हँसि कह्यौ, 'तुम्हैं दिखराइहौं रूप वह, करौ बिस्राम इस ठौर जाई'।
बैठि एकांत जोहन लगे पंथ सिव, मोहिनी रूप कब दै दिखाई।
ह्वै अँतरधान हरि, 'मोहिनी' रूप धरि, जाइ बन माहिं दीन्हैं दिखाई।
सूर-ससि किधौं चपला परम सुंदरी, अंग-भूषननि छबि कहि न जाई।
हाव अरु भाव करि चलत, चितवत जबै, कौन ऐसौ जो मोहित न होई।
'उमा कौं छाँड़ि अरु डारि मृगचर्म कौं, जाइकै निकट रहे रुद्र जोई'।
रुद्र कौं देखि कै मोहिनी लाज करि, लियौ अंचल, रुद्र तब अधिक मोह्यौ।
उमाहूँ देखि पुनि ताहि मोहित भई, तासु सम रूप आपनौ न जोह्यौ।
'रुद्र तजि धीर जब जाइ ताकौं गह्यौ, सो चली आपु कौं तब छुड़ाई'।
'रुद्र कौ बीर्य खसि कै परयौ धरनि पर, मोहिनी रूप हरि लियौ दुराई'।
देखिकै उमा कौं रुद्र लजित भए, कह्यौ मैं कौन यह काम कीनौ।
इंद्रजित हौं कहावत हुतौ, आपु कौं समुझि मन माहिं ह्वै रह्यौ खीनौ।
चतुरभुज रूप धरि आइ दरसन दियौ, कह्यौ, सिव सोच दीजै बिहाई।
सम तुम्हारे नहीं दूसरो जगत मैं, कह्यौ तुम, रूप तब दियौ दिखाई।
—सा० ८-१०।

८१.क. सरन गए जो होइ सु होइ।
वे करता, वेई हैं हरता, अब न रहौं मुख गोइ।
ब्रज अवतार कह्यौ है श्रीमुख, तेई करत बिहार।
पूरन ब्रह्म सनातन वेई, मैं भूल्यौ संसार।
उनके आगैं चाहौं पूजा, ज्यौं मनि दीप प्रकास।
रबि आगैं खद्योत उज्यारी, चंदन संग कुबाँस।

ऐ. *अन्य पौराणिक प्रसंग*—इस वर्ग में पृथ्वी का कच्छप और शेषनाग पर स्थित होना',[८२] प्रलय,[८३] उससे संबंधित अक्षय वट जिसका नाश 'प्रलय'-काल में

'कोटि इंद्र छिनहीं मैं राचैं, छिन मैं करैं बिनास'।
'सूर रच्यौ उनहीं कौ सुरपति, मैं भूल्यौ तिहिं आस'—सा० ६७४।

ख. प्रगट भए ब्रज त्रिभुवन राइ।
जुग-गुन बीति त्रिगुन बुधि ब्यापी, 'सरन चल्यौ सुरपति अकुलाइ'—सा० ६७५।

ग. सुरगन सहित इंद्र ब्रज आवत।
धवल बरन ऐरावत देख्यौ उतरि गगन तैं धरनि धँसावत।
अमरा-सिव-रबि-ससि-चतुरानन, हय-गय बसह-हंस मृग जावत।
धर्मराज बनराज अनल दिव सारद नारद सिव-सुत भावत—सा० ६७६।

घ. सुरपति चरन परयौ गहि धाइ।
जुग गुन धोइ सेष-गुन जान्यौ, आयौ सरन राखि सरनाइ—सा० ६७७।

ङ. अब न छाँड़ौं चरन-कमल-महिमा मैं जानी।
सुरपति मेरो नाम धरयो लोक लोक अभिमानी—परमा० २८६।

च. छाँड़्यौ सब अभिमान अमरपति अपनो बिगारु जिय बिचारयौ।
कुंभनदास प्रभु सैल-धरन कें आइ परयौ पाइनु हारयौ—कुंभन० ५६।

छ. चत्रुभुज प्रभु गिरिधारी ब्रज राखि लियौ,
इंद्र खिसाइ आइ परयौ चरननि तर—चतु० ४८।

ज. मेरी बड़ी घात ब्रज पर तें सचि-पति भयो खिसानो।
कामधेनु आगैं करि आयो ऐसो बड़ो अयानो।
पाँइ परयौ कर जोरि कैं बिनती मैं महिमा नहि जान्यो।
करोऽभिषेक गोविंद ऐरावृत कर गंगा जल आन्यौ—गोविं० ६७।

झ. ले सचिपति सँग कामधेनु को करि अभिषेक प्रभु पाँइ परयौ—गोविं० ७४।

८२.क. हरि जू की आरती बनी।
× × ×
कच्छप अध आसन अनूप अति, डाँडी सहसफनी—सा० २-२८।

ख. गयौ कूदि हनुमंत जब सिंधु पारा।
सेस के सीस लागे कमठ-पीठि सौं, धँसे गिरिबर सबै तासु भारा—सा० ६-७६।

८३. चतुरमुख कह्यौ, संख असुर स्रुति लै गयौ, सत्यब्रत कह्यौ 'परलै दिखायौ'।
× × × ×
सातवैं दिवस दिखराइहौं 'प्रलय' तोहिं, सप्त-रिषि नाव मैं बैठि आवैं।
—सा० ८-१६।

भी नहीं होता,[८४] चंद्रमा का राहु द्वारा ग्रसा जाना,[८५] सागर-पुत्र होने के कारण पूर्ण चंद्र को देखकर सिंधु की लहरों का बढ़ना, चंद्रमा के रथ में मृगों का जुता होना,[८६] अमृत का देवेन्द्र के पास होना और उसकी वर्षा से लंका-युद्ध के मृतक भालु-कपियों तथा राम-पक्ष के अन्य वीरों का जी उठना[८७] आदि वे पौराणिक प्रसंग आते हैं जिनका वर्णन अष्टछापी कवियों में सूरदास ने विशेष रूप से किया है।

किन्नर, गंधर्व, विद्याधर आदि देवजातियों का राम-कृष्ण की लीलाओं से प्रसन्नता प्रकट करने और फूल बरसाने का उल्लेख भी अष्टछापी कवियों के पौराणिक विश्वास से संबंध रखता है। लंका के युद्ध के पश्चात् अमृत-वर्षा से मृतकों के जी उठने पर 'गंधर्वगण' 'जय-जय' ध्वनि उचारते हैं[८८]। कृष्ण-जन्म के अवसर पर

८४.क. कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत।

× × ×

सिव सोचत, बिधि बुद्धि बिचारत, बट बाढ़यौ सागर-जल झेलत।
बिडरि चले 'घन प्रलय जानि' कै, दिगपति दिग दंतीनि सकेलत।
मुनि मन भीत भए, भुव कंपित, सेष सकुचि सहसौ फन पेलत—सा० १०-६३।

ख. चरन गहे अँगुठा मुख मेलत।

× × ×

उछरत सिंधु, धराधर काँपत, कमठ पीठ अकुलाइ।
सेष सहसफन डोलन लागे, हरि पीवत जब पाइ।
बढ़्यौ बृच्छ बट, सुर अकुलाने, गगन भयौ उतपात।
'महा प्रलय के मेघ' उठे करि जहाँ तहाँ आघात—सा० १०-६४।

ग. 'महा प्रलय' हमरे जल बरसैं, गगन रहै भरि छाइ।
'अछै बृच्छ बट बचत निरंतर', कह ब्रज गोकुल गाइ—सा० ८५४।

८५. बारंबार बिसूरि सूर दुख, जपत नाम रघुनाहु।
ऐसी भाँति जानकी देखी, 'चंद्र गह्यौ ज्यौं राहु'—सा० ६-७५।

८६. 'दूरि करहि बीना कर धरिबौ।
'रथ थाक्यौ, मानौ मृग मोहे, नाहिंन होत चंद्र कौ ढरिबौ'—सा० ३३५७।

८७. सुरपतिहिं बोलि रघुबीर बोले।
'अमृत की बृष्टि रन-खेत ऊपर करौ', सुनत तिन अमिय भंडार खोले।
'उठे कपि भालु ततकाल जै-जै करत', असुर भए मुक्त, रघुबर निहारे।
—सा० ६-१६३।

८८. सूर प्रभु अगम-महिमा न कछु कहि परति, सिद्ध गंधर्ब जै-जै उचारे—सा० ६-१६३।

देवता जब आकाश में दुंदुभी बजाते हैं तब विद्याधर, किन्नर और गंधर्व अपनी प्रसन्नता नाच-गाकर प्रकट करते हैं[८९]। श्रीकृष्ण की गोवर्द्धन-लीला के अवसर पर भी गंधर्वादि मुग्ध हो 'धन्य-धन्य' कहते हैं[९०]। रासलीला के अवसर पर भी किन्नरों की 'जय-जय' ध्वनि अष्टछापी कवियों को सुनायी देती है[९१]।

'आकाशवाणी' और 'अनाहतवाणी' का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में हुआ है जो भारतीय समाज के तत्संबंधी पौराणिक विश्वास का ही परिचायक है। अशोक-वाटिका में सीता को न पहचानने पर हनुमान जब चिंतित बैठे हैं तब 'आकाशवाणी' से उन्हें सुनायी देता है कि सीता तुम्हारे सामने है, उन्हें 'जुहार' करो[९२]। इसी प्रकार कंस जब बड़े उत्साह से बहन देवकी का विवाह करके वसुदेव को बहुत दायज देकर विदा करने को प्रस्तुत होता है तभी 'अनाहतबानी' से उसे सूचना मिलती है कि इसकी 'कोखि' से उत्पन्न पुत्र तेरे प्राण हरेगा[९३]।

ओ. *पौराणिक पशु, पक्षी, वृक्ष, वाहन, सर्प आदि*—पौराणिक विश्वासों के अंतर्गत वे पशु, पक्षी, पशु-वाहन, सर्प आदि आते हैं जिनका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में स्फुट रूप से अथवा देव-वर्ग से संबंधित करके हुआ है। इनमें से उच्चैश्रवा, धवलबरन ऐरावत, कामधेनु अथवा सुरधेनु, गरुड़, तक्षक, वासुकि और कल्पद्रुम की

८९. आनंदै आनंद बढ़्यौ अति।
देवनि दिवि दुन्दुभी बजाई, सुनि मथुरा प्रगटे जादवपति।
'बिद्याधर-किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कंठ अमित गति'।
'गावत गुन गंधर्व' पुलकि तन, नाचतिं सब सुर-नारि रसिक अति—सा० १०-६।

९०. देखि थकित 'गनगंध्रब' सुर मुनि।
धन्य नंद कौ सुकृत पुरातन, 'धन्य कही करि जै-जै-जै धुनि'।
धन्य-धन्य गोबर्धन पर्बत, करत प्रसंसा सुर-मुनि पुनि-पुनि—सा० ८४९।

९१.क. 'जै जै धुनि किन्नर'- मुनि गावत, निरखत जोग बिसारे—सा० १०४५।
ख. मुनि 'किन्नर जय ध्वनि करैं'—सा० ११८०।

९२. सोच लाग्यौ करन, यहै धौं जानकी, कै कोऊ और, मोहिं नहि चिन्हारा।
'सूर आकासबानी भई तबै तहँ, यहै बैदेहि है करु जुहारा'—सा० ९-७६।

९३.क. 'समदत भई अनाहतबानी, कंस-कान भनकारा'।
'याकी कोखि औतरै जो सुत, करै प्रान परिहारा—सा० १०-४।
ख. 'बानी भई गगन मैं' गूढ़, रे-रे कंस! महा मति मूढ़।
'जाकौं तू भयौ जात है जंता, अठयौं गर्भ सु तेरौ हंता'—नंद०, दशम०, पृ० २०२।

चर्चा पीछे की जा चुकी है। उनके अतिरिक्त अष्टसिद्धि और नवनिधि[९४] तथा चिंतामणि[९५] की चर्चा भी पौराणिक विश्वासों के अंतर्गत ही मानी जानी चाहिए। देव-वाहनों के नाम गोवर्द्धन-प्रसंग में उद्धृत सूरदास के एक पद में पीछे दिये जा चुके हैं।

ख. *लोक-मान्यताएँ और सामान्य विश्वास*—इस वर्ग के अंतर्गत आनेवाली बातें मुख्यत: पाँच उपशीर्षकों में विभाजित की जा सकती हैं—अ. परंपरागत मान्यताएँ, आ. उपचार-संबंधी विश्वास, इ. शकुन, ई. अशकुन और उ. अन्य बिश्वास।

अ. *परंपरागत मान्यताएँ*—समाज-विशेष में प्रचलित वे बातें 'परंपरागत मान्यताएँ' मानी जाती हैं जिनकी सत्यता का अनुभव मानव-जाति परंपरा से करती आयी है। ऐसी मान्यताओं की पुष्टि पूर्व युगों के विविध ग्रंथों से तो होती ही है, परिवार या समाज के बड़े-बूढ़े भी अनेक आख्यानों-उपाख्यानों के द्वारा उनके प्रति विश्वास रखने की प्रेरणा दिया करते हैं। शताब्दियों तक प्रचलित रहने के कारण ऐसी मान्यताएँ किसी देश या समाज की संस्कृति का अभिन्न अंग बन जाती हैं। भारतीय संस्कृति से संबंधित जिन परंपरागत मान्यताओं का वर्णन अष्टछाप-काव्य में मिलता है, उनमें छह मुख्य हैं—१. भाग्यवाद, २. कर्मवाद, ३. पुनर्जन्मवाद, ४. ज्योतिष के प्रति मान्यता, ५. स्वस्तिवाचन के प्रति विश्वास और ६. भूत-प्रेतादि में विश्वास।

१. *भाग्यवाद*—अपनी शक्ति के सीमित होने का अनुभव मानववर्ग सृष्टि के आदि से ही करता आया है। अपनी अनेकानेक योजनाओं के क्षणमात्र में ही नष्ट हो जाने की निराशा भी जीवन में अनेक बार उसने अनुभव की है। इसी प्रकार असंभावित और अयाचित घटनाओं और कार्यों को प्रत्यक्षत: घटित और

९४.क. द्वार बुहारति फिरति 'अष्टसिधि', कौरनि सथिया चीतति 'नवनिधि'।
—सा० १०-३२।

ख. मागध मंगन जन लेत, मन भाइ कै।
'अष्ट सिद्धि नवो निद्धि' आगे ठाढीं आइकै—सा० ३०९२।

९५.क. कामधेनु, 'चिंतामनि', दीन्हौं कल्पबृच्छ तर छाउँ—सा० १-१६४।

ख. अनुदिन सुर-तरु पंच सुधा रस, 'चिंतामनि' सुर-धेनु—सा० ४८७।

संपादित होते भी उसने देखा है। इन सब बातों से मनुष्य का विश्वास 'भाग्यवाद' के प्रति सनातनकाल से दृढ़ होता आया है और भारतीय संस्कृति का तो यह परंपरा से प्रमुख अंग रहा है। 'भाग्यवाद' के मूल में जहाँ अपनी शक्ति के सीमित होने का विश्वास निहित है, वहीं दैव की अपरिमित सामर्थ्य के प्रति आस्था भी है। अतएव भारतीयों का सदा से यह विश्वास रहा है कि सृष्टि का प्रत्येक कार्य पूर्व निर्दिष्ट भाग्य-विधान के अनुसार ही होता है; उसमें परिवर्तन लाना मानव की क्षमता के वाहर की बात है।

अष्टछाप-काव्य में 'भाग्यवाद' के समर्थन में अनेक उक्तियाँ मिलती हैं जो भारतीय समाज की तत्संबंधी परंपरागत मान्यता ही सूचित करती हैं। सूरदास के अनुसार संसार में वही होता है जो गोपाल करना चाहते हैं। दुख-सुख, हानि-लाभ, सब कुछ उन्हीं की देन है; उनमें व्यक्ति का पुरुषार्थ मानना भूल है और ईश्वर की इच्छा के विपरीत कार्य करने में मनुष्य के साधन, जंत्र-मंत्र, उद्यम, बल, सब व्यर्थ ही सिद्ध होते हैं[९६]। सामान्य मनुष्य ही नहीं; सिद्ध, साधक, मुनि आदि भी 'रघुनाथ' के निश्चित कार्य को घटा-बढ़ा नहीं सकते[९७] और 'होनी' होकर ही रहती है[९८]।

'भाग्यवाद' के प्रति ऐसी आस्था रखने के मूल में दो उपयोगी भाव हैं। पहली बात तो यह है कि किसी कार्य या योजना में सफल होने पर व्यक्ति उस सफलता को भाग्य की देन समझता है, उसका श्रेय स्वयं न लेने से वह उस गर्व से बचा रहता है, जो उसके परमाराध्य को जरा भी नहीं भाता[९९]। दूसरी बात यह कि किसी योजना के पूरी न होने पर असफलता की स्थिति में हृदय पर जो

९६. 'करी गोपाल की सब होइ'।
जो अपनौं पुरुषारथ मानत, अति झूठौ है सोइ।
साधन, मंत्र, जंत्र, उद्यम, बल ये सब डारौ धोइ।
'जो कछु लिखि राखी नँदनंदन, मेटि सकै नहिं कोइ'।
दुख-सुख, लाभ-अलाभ समुझि तुम कतहिं मरत हौ रोइ—सा० १-२६२।

९७. 'होत सो जो रघुनाथ ठटै'।
पचि-पचि रहैं सिद्ध, साधक, मुनि, तऊ न बढ़ै घटै—सा० १-२६३।

९८. 'भावी काहू सौं न टरै'—सा० १-२६४।

९९. 'गरब गोबिंदहिं भावत नाहीं'—सा० २-२३।

भयंकर आघात होता है, उसको किसी सीमा तक सहन करने की शक्ति भी 'भाग्यवाद' पर विश्वास से मिलती है जिसके फलस्वरूप मानवीय ही नहीं, दैवी आपत्तियाँ तक व्यक्ति सहज ही सहन कर लेता है। बालि की असंभावित मृत्यु पर जब उसका पुत्र अंगद बहुत दुखी होता है तब उसको धीरज बँधाते हुए सूरदास के राम कहते हैं कि 'होनी' बड़ी प्रबल होती है; उसको मिटाया नहीं जा सकता[७००]। अशोकवाटिका में दु:खिनी सीता के प्रति 'निसिचरी' का भी कथन है कि 'बिधि-सँजोग' टाले नहीं 'टरता', नहीं तो जनक-जैसे राजा की पुत्री होकर तुम वन के कष्ट क्यों भोगतीं[१] ?

गोविंदस्वामी के कृष्ण सुरपति की पूजा का प्रसंग चलाये जाने पर पिता नंद तथा अन्यान्य व्रजवासियों को समझाते हैं कि जो तुम्हारे कर्म में लिखा है, वही मिलेगा; सुरपति तुम्हें आकर और क्या दे देगा[२] ? सूरदास की गोपियाँ भी दुख-सुख, कीर्ति आदि को 'भाग्य' की देन समझकर ही स्वीकार करने को कहती हैं[३]। कंस के बंदीगृह में अपने सात मृतक पुत्रों के साथ-साथ, चोरी-छिपे गोकुल पहुँचकर माता-पिता की छत्रछाया से बिछुड़कर जीवित रह सकनेवाले आठवें पुत्र कृष्ण को याद करके देवकी जब बहुत दुखी होने लगती है तब वसुदेव सुख-दुख को भाग्य की देन समझने की बात कह कर उसे धैर्य देते हैं[४]। गोस्वामी तुलसीदास के बसिष्ठ भी भरत को समझाते हुए 'हानि-लाभ जीवन-मरन जस-अपजस' का विधि के हाथ में ही होता कहकर धीरज देते हैं[५]। इसी प्रकार कंस के मारे जाने के पश्चात् देवकी जब बारह वर्ष के पुत्र श्रीकृष्ण को छाती से लगाकर बिलखती है कि मैंने

७००. पुनि अंगद कौं बोलि ढिग, या बिधि समुझायौ।
'होनहार सो होत है, नहिं जात मिटायौ'—सा० ६-७१।

१. तेरौ पिता जो जनक जानकी, कीरति कहौं बखानि।
'बिधि-संजोग टरत नहिं टारैं,' बन दुख देख्यौ आनि—सा० ६-७७।

२. 'कर्म लिखी सोई पुनि ह्वै है' सुरपति आइ कहा तुम दैहै—गोवि० ७०।

३. 'सुख-दुख कीरति भाग आपनैं आइ परै सो सहिए'—सा० १-६२।

४. यहै कहत बसुदेव—त्रिया, जनि रोवहु हो।
'भाग्य बिबस सुख दुःख सकल जग जोवहु हो'—सा० ३०६०।

५. सुनहु भरत, 'भावी प्रबल' बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
'हानि-लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ'—मानस०, अयो०, १७१।

गोद में नहीं खिलाया, तब कृष्ण उसे समझाते हुए कहते हैं कि भाग्य का लिखा कोई मेट नहीं सकता[६]।

२. *कर्मवाद*—प्राणी के जीवन में दुख-सुख, हानि-लाभ आदि का जो क्रम चला करता है उसके कारण सामान्यतया प्रत्यक्ष नहीं होते। ऐसी स्थिति में 'भाग्यवाद' का आश्रय लेने पर व्यक्ति को उत्तर तो मिल जाता है; परंतु यह उसके लिए अधिक उपयोगी नहीं होता। इस कारण भारतीय मनीषियों ने दुख-सुख, हानि-लाभ आदि को प्राणी के पाप-पुण्य का परिणाम बताकर[७] दोहरे उद्देश्य की सिद्धि का प्रयत्न किया है। पहला उद्देश्य तो यह है कि जब दुख, हानि आदि से बचा नहीं जा सकता, तब प्राणी उनके प्रति तिरस्कार की भावना रखते हुए भी उन्हें अपने ही कुकृत्यों का कुफल मानकर, और दूसरों के प्रति उपालंभ या खिन्नता का भाव न रखकर, भोगने को प्रवृत्त हो। दूसरी बात यह कि दुख, हानि आदि का एक बार कष्टदायी अनुभव करने के पश्चात् भविष्य में अपने कृत्यों को सुधारने के लिए भी वह प्रयत्नशील रहे जिससे सामाजिक जीवन अधिक सुख और शांतिमय हो सके; अस्तु। अष्टछापी कवियों की भी इस कर्मवाद के प्रति पूरी आस्था रही है और वे भी यह मानते हैं कि जैसा बोया जायगा, वैसा ही काटना होगा, बबूल बोकर दाख फल की आशा करना अपनी मूर्खता का ही परिचय देना है[८]।

यदि हानिकारिणी बातों को करने के लिए अपनी परवशता के कारण किसी को विवश होना पड़ता है, अथवा अनायास ही कोई ऐसी विपत्ति व्यक्ति पर पड़ जाती है जिसके कारण उसकी सर्वस्व-हानि होती है, तब भी वह अपने पुण्य कर्मों के क्षीण हो जाने अथवा पापों के उदय होने की ही बात कहता है।

६. बार बार देवै कहे, गोद खिलाए नाहिं।
द्वादस बरस कहाँ रहे, मातु पिता बलि जाहिं।
पुनि पुनि बोधत कृष्न 'लिखौ मेटै नहिं कोई'—सा० ३०९०।

७. 'पाप पुण्य कौ फल सुख-दुख है'—सा०१-१५१।

८. अब कैसैं पैयत सुख माँगे ?
जैसोइ बोइयै तैसोइ लुनिऐ, कर्मन भोग अभागे।
'बोवत बबुर, दाख फल चाहत, जोवत है फल लागे—सा० १-६१।

कंस के भेजे हुए अक्रूर जब बलराम और कृष्ण को मथुरा लिवा जाने को आते हैं तब विलाप करती हुई यशोदा अपने पूर्व कृत्यों के 'तिरछे' हो जाने अर्थात् पापों के उदय होने की बात कहती है[९]।

किसी असाधारण कष्ट के पड़ने पर भारतीय जन-समाज का ध्यान दैव या ईश्वर को दोष देने की ओर न जाकर सदैव अपने पापों की ओर जाता है। सूरदास के वसुदेव-देवकी जब-जब कंस द्वारा अपने सात पुत्रों के मारे जाने और आठवें अर्थात् कृष्ण को चोरी से भगाकर बचाने की बात सोचते हैं, तब-तब उनका ध्यान अपने 'पापों' की ओर ही जाता है[१०]। किसी कष्ट या विपत्ति से मुक्ति पाने पर भी भारतीय जन-समाज उसे पूर्व पुण्यों का ही सुफल समझता है। सूरदास के नंद जब वरुणपाश से मुक्त होकर सकुशल घर लौटते हैं तब यशोदा स्पष्ट शब्दों में कहती है कि पूर्व पुण्यों से ही तुम इस प्रकार सकुशल लौट सके हो[११]। कृष्ण के व्रजवास-काल में गोपियों को बहुत सुख मिला और उनकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो गयीं। वैसा असाधारण रूप से सुखी जीवन बिताने और श्रीकृष्ण द्वारा अपनाये जाने का कारण परमानंददास की गोपियाँ अपने पूर्व जन्मों के सुकृत्यों को ही मानती हैं[१२]। 'कर्मवाद' से संबंधित व्यक्ति की यह धारणा निश्चित हो जाती है कि मुझको अपने भले-बुरे कर्मों का सुफल या कुफल स्वयं ही भोगना होगा; मेरा कोई प्रियजन या आत्मीय इच्छा रखते हुए भी उसमें भाग नहीं बटा सकता[१३]। अतएव व्यक्ति को पिछले पापों का कुफल स्वयं भोगने के पश्चात् अपने भावी कर्म सुधारने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए[१४]।

९. यह अक्रूर क्रूर कृत रचिकै, तुमहिं लेन है आयौ।
'तिरछे भए करम कृत पहिले', बिधि यह ठाट बनायौ—सा० २६७५।

१०. दिए लाचन ढारि नारि पति परस्पर, 'कहा हम पाप करि जनम लीन्हौ'।
सात देखत बधे एक दुरि ब्रज बच्यौ, इते पर बाँधि हम पंगु कीन्हौं—सा० ३०८६

११. अब तौ 'कुसल परी पुन्यनि तैं'—सा० ६२५।

१२. 'पूरब संचित सुकृत रासि फल श्रीपति बाँह गही'—परमा० २३६।

१३. 'अपने करम साझी नही जो त्रिभुवन मानौ'।
परमानंद अंतर दसा जग जीवन जानौ—परमा० ८७०।

१४. 'पछिले कर्म सम्हारत नाहीं, करत नहीं कछु आगे'—सा० १-६१।

३. *पुनर्जन्मवाद*—भारतीय समाज की तीसरी मान्यता है पुनर्जन्म की। चौरासी लाख योनियाँ हमारे यहाँ मानी गयी हैं जिनमें से अनेक में अपने कर्मानुसार भटकने के पश्चात् जीव को सर्वश्रेष्ठ मानव-योनि प्राप्त होती है। अष्टछापी कवियों ने भी कभी तो जल, थल, आकाश की अनेक योनियों में भटकने की बात स्पष्ट रूप से लिखी है[१५] और कभी 'केतिक जनम' जैसे पदों का प्रयोग करके[१६] 'पुनर्जन्मवाद' के प्रति अपनी आस्था का प्रमाण दिया है।

४. *ज्योतिष के प्रति आस्था*—ज्योतिष के अनुसार प्रत्येक शुभ कार्य अथवा संस्कार आदि के लिए गुणी गणक या ज्योतिषी को बुलाकर शुभ मुहूर्त आदि जानने का प्रयत्न भारतीय समाज में सदा से होता आया है। सूरदास ने कृष्ण के 'अन्नप्राशन' के अवसर पर[१७] 'सुदिन' सोधे जाने और परमानंददास ने कनछेदन के अवसर पर 'दोष-रहित मुहूर्त' निकलवाये जाने का जो उल्लेख किया है, वह इसी विश्वास का परिचायक है[१८]। इस प्रकार के अन्य उदाहरण 'संस्कार'-वर्णन के अंतर्गत पीछे दिये जा चुके हैं।

१५.क. जिहिं जिहिं 'जोनि' जन्म धारयौ, बहु जोरयौ अघ कौ भार—सा० १-६८।
ख. 'जिहिं जिहिं जोनि' फिरयौ संकट-बस तिहिं तिहिं यहै कमायौ—सा० १-१११।
ग. माधौ जू, मोहिं काहे की लाज।
'जनम जनम' यौं हीं भरमायौ, अभिमानी, बेकाज।
'जल-थल जीव जिते जग', जीवन निरखि दुखित भए देव—सा० १-१५०।
घ. कोटिक कला काछि दिखराई 'जल-थल सुधि नहिं' काल—सा० १-१५३।
१६.क. किते दिन हरि सुमिरन बिनु खोए।
पर-निंदा रसना के रस करि, 'केतिक जनम' बिगोए—सा० १-५२।
ख. 'नहिं अस जनम बारंबार'।
पुरबलौ धौं पुन्य प्रगट्यौ, लह्यौ नर अवतार—सा० १-८८।
ग. 'जो तन दियौ ताहि बिसरायौ' ऐसौ नोन हरामी—सा० १-१४८।
घ. ऐसैं करत 'अनेक जन्म गए', मन संतोष न पायौ—१-१५४।
१७. कान्ह-कुँवर की करहु पासनी, कछु दिन घटि षट मास गए।
नंद महर यह सुनि पुलकित जिय, हरि अनप्रासन जोग भए।
'बिप्र बुलाइ' नाम लै बूझ्यौ, 'रासि सोधि इक सुदिन धरयौ'।
'आछौ दिन' सुनि महरि जसोदा, सखिनि बोलि सुभ गान करयौ—सा० १०-८८।
१८. गोपाल के बेध करन कौ कीजै।

५. *स्वस्तिवाचन के प्रति विश्वास*—प्रायः प्रत्येक शुभ कार्य का आरंभ 'स्वस्ति-वाचन' आदि के पश्चात् करना भारतीय समाज में मान्य रहा है। 'सारावली' में शिशु कृष्ण के प्रथम बार करवट लेने पर माता रोहिणी विप्र बुलाकर 'स्वस्ति-वाचन' कराती है[१९] और नंददास के नंद जी 'नामकरण' संस्कार के पूर्व 'स्वस्ति-वाचन' कर लेने का अनुरोध करते हैं[२०]।

६. *भूत-प्रेतादि के प्रति विश्वास*—भूत-प्रेत के अस्तित्व पर भी भारतीय समाज के कुछ भाग का विश्वास है, यद्यपि शिक्षित वर्ग वैसा मानने को प्रस्तुत नहीं है। जो हो, मानव की मृत्यु के पश्चात् यदि उसका अंत्येष्टि संस्कार न हो तो, सामान्य जन-विश्वास के अनुसार, वह 'भूत' बन जाता है। सूरदास ने एक पद में इस विश्वास की ओर संकेत भी किया है[२१]। दूध-जैसी सफेद चीज खाकर आने पर भूतादि की छाया जल्दी पड़ जाने का विश्वास भी स्त्रियाँ करती हैं। इसी से शव-यात्रा से लौट कर आज भी दूध-दही-जैसी सफेद चीजें खाने से मना किया जाता है। नंददास की रूपमंजरी को मूर्छित देख कर सखियाँ उस पर 'किसी' की छाया पड़ जाने की बात कहती हैं, क्योंकि वह घर से 'दूध-भात' खाकर आयी थी[२२]। इसी प्रसंग में 'भूतों के 'भूतों' का भी विनाश करनेवाले श्रीकृष्ण की चर्चा से

'गुरुबल तिथिबल नच्छत्र बार बलि सुभ घरी बिचार लीजै'।
'गनिक निपुन द्वै-चारि बैठिकै मतो बिचारयौ नीकौ'।
मुहूरत जामें दोसरहित सुखसागर है जी को—परमा० ५३।

१९. एक दिना हरि लई करोटी सुनि हरषी नँदरानी।
'बिप्र बुलाय स्वस्तिबाचन करि' रोहिनि नैन सिरानी—सारा० ४२१।

२०. 'तनक स्वस्ति-बाचन करि लीजै, लरिकन कछू नाउँ धरि दीजै।
—नंद०, दशम०, पृ० २२६।

२१. जा दिन मन-पंछी उड़ि जैहै।
× × ×
घर के कहत, 'सबारे काढ़ौ भूत होइ धरि खैहै'—सा० १-८६।

२२. फिरि गये नैंन मूरछा आई, सहचरि दौरि कै कंठ लगाई।
× × ×
'कह जानौं कछु छाया पाई, दूध-भात घर खाइ ही आई'—नंद०, रूप०, पृ० २१।

भी 'भूतों' के अस्तित्व में जन-विश्वास का परिचय मिलता है[२३]। रूपमंजरी की मूर्छा काफी समय तक रहने पर सबको 'भूतावेश' का विश्वास हो जाता है[२४]।

आ. उपचार-संबंधी विश्वास—इस वर्ग के अंतर्गत आनेवाली बातों की सत्यता की परख तो की या करायी नहीं जा सकती, परंतु उनके प्रति समाज के बड़े भाग का विश्वास अवश्य रहता है। आधुनिक शिक्षित वर्ग इस वर्ग की अधिकांश बातों को 'अंध-विश्वास' ही मानता है, परंतु कवि-वर्ग आज भी समाज के यथार्थ रूप का परिचय देने के लिए उनकी चर्चा अपने काव्य में करना आवश्यक समझता है। ऐसी बातें मुख्यतः नौ वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं १.—नजर लगना, २. डिठौना, ३. राई-नोन उतारना, ४. तिनका तोड़ना, ५. निछावर, ६. पानी उतार कर पीना, ७. सयानों से हाथ दिलाना, ८. टोना-टोटका और ९. तंत्र-मंत्र पर विश्वास।

१. नजर लगना—यों तो भारतीय समाज के विश्वास के अनुसार किसी भी अवस्था के व्यक्ति को दूसरों की 'नजर' लग सकती है, तथापि बच्चों को 'नजर' लगने का डर बहुत जल्दी रहता है। पिता का ध्यान इस ओर कम जाता है; परंतु माता सदैव इस विषय में सतर्क रहती है; क्योंकि उसका यह दृढ़ विश्वास रहता है कि स्वस्थ और सुन्दर बालकों को यदि कोई आँख भर देख ही ले तो उसे 'नजर' लग जाती है। हँसता-खेलता बालक यदि सहसा अनमना या 'निढाल' हो जाय, हँसना-खेलना और खाना-पीना छोड़ दे, या बार-बार रोने लगे, तब 'माता' को यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि उसको किसी की 'दीठि' लग गयी है। अभारतीय समाज की दृष्टि में इस प्रकार के विश्वास भले ही हास्यास्पद हों, परंतु भारतीय स्त्री-वर्ग की आज भी इनके प्रति पूर्ण आस्था है। इस बीसवीं शताब्दी में लिखे गये

२३. गोकुलनाथ कौ पूत हमारे, 'भूतन के भूतन धरि मारे'—नंद०, रूप०, पृ० २२।

२४. इक पहिले यौं अबुध ह्वै रही, पुनि निज मात बात अस कही।
जस कोउ मिरा-मत्त बक आही, 'तामैं भूत लगै पुनि ताही'।
बहुरि नारि निवारि सी लई, जननी निरखि ससंकित भई।
'भूतावेस अवसि है माई', दौरौ कछु इक करौ उपाई।
—नंद०, रूप०, पृ० २२।

'यशोधरा' काव्य में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'नजर' लगने का लक्षण 'खाना-पीना छूटना' बताया है[२५]।

सूरदास का बालक कृष्ण जब शाम से ही 'बिरुझाने' लगता है और सोते-सोते बार-बार चौंक पड़ता है, तब उसके खेलते समय किसी के 'दीठि' लगा देने की आशंका माता यशोदा को तत्काल हो जाती है[२६]। इसी प्रकार परमानंददास के बालक कृष्ण को 'निढाल' या 'अनमना' होते देखते ही माता यशोदा कहने लगती है कि किसी 'निरासी' ने दृष्टि लगायी है[२७]। एक दूसरे पद में बालक को 'दृष्टि' लगानेवाली नारी को 'निसिचरि' कह कर माता यशोदा अपने मन की खीझ निकालती है[२८]। राधा की माता कीर्ति जब पुत्री को अनमनी देखती है तब उसे भी 'टटकी नजरि' लग जाने की आशंका होती है[२९]।

नंददास की रूपमंजरी को भी कभी 'नीकी' और कभी 'मुरझाई' देखकर उसकी सखी कहती है कि अपने अनुपम रूप के कारण 'छिन छिन में इसे दृष्टि' लग जाती है[३०]। अच्छे खाते-पीते घराने के बालकों को हर आते-जाते के सामने खाने

२५. यही डीठ लगने के लच्छन—छूटे खाना - पीना।
कभी काँपना, कभी पसीना, जैसे-तैसे जीना।
—श्री मैथिलीशरण गुप्त, 'यशोधरा', पृ० ६८।

२६. जसुमति मन-मन यहै बिचारति।
'झझकि उठ्यौ सोवत हरि अबहीं', कछु पढ़ि-पढ़ि तन-दोष निवारति।
'खेलत मैं कोउ दीठि लगाई', लै-लै राई-लौन उतारति।
'साँझहिं तैं अतिहीं बिरुझानौ', चंदहिं देखि करी अति आरति—सा० १०-२००।

२७. चरन कमल की रैनु जसोदा ले-ले सीस चढ़ावै री।
× × ×
'कौन निरासी दृष्टि लगाई' लै लै आँचल झारै री—परमा० ७८।

२८. 'काहू निसिचरि दृष्टि लगाई' लै लै अंचर झारै—परमा० ६१।

२९. अबहीं खरिक गई आइ रही है जिय बिसरि।
'निसि के उनींदे नैन, तैसे रहे ढरि ढरि'।
'कीधौं कहुँ प्यारी कौं, लागी टटकी नजरि'—सा० ७५२।

३०. सखी कहै मोहिं दोस कछु नाहीं, निपट अनूप रूप इन माहीं।
'छिन-छिन माहिं दिष्टि ह्वै जाई,' छिन नीकी छिन ही मुरझाई।
—नंद०, रूप०, पृ० २३।

से इसी कारण रोका जाता है कि यदि दूसरा व्यक्ति उसकी ओर ललचायी दृष्टि से देख कर टोंक देगा या प्रसन्न होकर उसके रूप, गुण, क्रीड़ा आदि की सराहना ही कर देगा, तब भी उसको 'दीठि' लगने का भय बना रहता है। इसी आशंका से माता यशोदा कुँवर कन्हाई को माखन देते हुए कहती है कि मेरे आगे ही खा लो, बाहर जाकर कभी कुछ न खाना, नहीं तो किसी की 'डीठि' लग जायगो[३१]। नंददास के अनुसार, अनुपम सुन्दरी किशोरी रूपमंजरी की सखी तो नजर लग जाने के भय से उसके न तो सुगंध या फुलेल लगाती है और न उसे दर्पण ही देखने देती है[३२] कि कहीं उसे उसकी ही 'नजर' न लग जाय।

२. *डिठौना*—बच्चों को 'नजर लगने' से बचाने के लिए उनके माथे पर काजल का 'डिठौना' या 'दिठौना' लगा दिया जाता है। इसी कारण सूरदास की यशोदा श्रीकृष्ण के नहलाने-धुलाने और वस्त्राभूषण पहनाने के बाद 'मसिबिंदा' या 'डिठौना' लगाना कभी नहीं भूलती[३३]। गोस्वामी तुलसीदास ने भी 'गीतावली' में नहाये-धोये और वस्त्राभूषण पहने राम के माथे पर लगे 'मसि-बिंदु' का वर्णन किया है[३४]। आधुनिक युग के गुप्त जी की यशोधरा भी राहुल के 'डिठौना'

३१. तबहिं जसोदा माखन ल्याई।
मैं मथि कैं अबहीं धरि राख्यौ, तुम हित कुँवर कन्हाई।
माँगि लेहु याही बिधि मोसौं, मो आगैं तुम खाहु।
'बाहरि जनि कबहूँ कछु खैयै, डीठि लगैगी काहु सा० ६८७।

३२. 'सोंधौं याके अंग न लगाऊँ, फूल-फुलेल न मूड़ चढ़ाऊँ'।
'दरपन देखन देउँ न सौंही, डरौं आपनी डीठि तैं हौं ही।
—नंद०, रूप०, पृ० २३।

३३.क. ललन हौं या छबि ऊपर वारी।
बाल गोपाल लगौ इन नैननि, रोग-बलाइ तुम्हारी।
लट लटकनि, मोहन 'मसि-बिंदुका', तिलक भाल सुखकारी—सा० १०-६१।

ख लालन, वारी या मुख ऊपर।
माई 'मोरिहिं दीठि न लागै, तातैं मसि-बिंदा दियौ भ्रू पर'—सा० १०-६२।

ग. सिर चौतनी 'डिठौना दीन्हौ,' आँखि आँजि पहिराइ निचोल—सा० १०-६४।

घ. लटकन लटकत ललित भाल पर, काजर-बिंदु-भ्रुव ऊपर' री—सा० १०-६८।

ङ. लटकतिं ललित लटूरियाँ, 'मसि-बिंदु' गोरोचन—सा० १०-११६।

३४. चुपरि उबटि अन्हवाइ कै नयन आँजे, चिर रुचि तिलक गोरोचन को कियो है।

लगाती है[३५]।

३. *राई-नोन उतारना*—बच्चों पर से राई-नोन उतार कर आग में डाल देने का चलन आज भी कुछ घरों में है। इस विश्वास के मूल में दो उद्देश्य हैं। पहला तो यह कि ऐसा करने से बच्चों के 'नजर' लगती ही नहीं और दूसरा यह कि यदि किसी की 'नजर' उनको लग जाय तो 'राई-नोन' उतारने से 'नजर' भी 'उतर' जाती है। बालक कृष्ण पर से जब यशोदा 'राई-नोन उतारती' हैं तब उनके सामने भी उक्त दोनों उद्देश्य रहते हैं। कभी तो वे अच्छे वस्त्राभूषण पहनाते ही 'नजर' से बचाने के लिए राई-नोन उतारती हैं[३६] और कभी 'नजर' लग जाने पर उसके दोष से बालक को बचाने के लिए वैसा करती हैं[३७]। 'सारावली' में यमलार्जुन वृक्षों के गिरने पर उनके नीचे से बचकर निकल आनेवाले कृष्ण पर से 'राई-लोन' उतारे जाने की बात कही गयी है[३८]।

४. *तिनका तोड़ना*—किसी के अद्भुत रूप, गुण, कार्य अथवा असाधारण

भ्रू पर 'अनूप मसि बिंदु,' बारे बारे बार, बिलसत सीस पर, हेरि हरै हियो है।
—गीता०, बाल०, १०।

३५. कैसी डीठि? कहाँ का टौना।
मान लिया आँखों में अंजन, माँ, किस लिए 'डिठौना'।
—श्री मैथिलीशरण गुप्त, 'यशोधरा', पृ० ९८।

३६.क. कबहुँ अंग भूषन बनावति, 'राई-लोन उतारि'—सा० १०-११८।
ख. साँवरे बलि बलि बाल गोविंद। अति सुख पूरन परमानंद।
× × ×
जाकौ नाम कोटि भ्रम टारै, 'तापर राई-लोन उतारै'—सा० १०-१२६।

३७.क. जसुमति मन-मन यहै बिचारति।
झझकि उठ्यौ सोवत हरि अबहीं, कछु पढ़ि पढ़ि तन-दोष निवारति।
खेलत मैं कोउ दीठि लगाई, 'लै-लै राई-लौन उतारति'—सा० १०-२००।
ख. रसन दसन धरि बाल कृस्न पर, 'राई लौन उतारै'।
काहू निसिचरि दृष्टि लगाई लै लै अंचर झारै—परमा० ६१!
ग. ले उछंग मुख निरखन लागी 'राई लौन उतारे'।
कौन निरासी दृष्टि लगाई लै लै आँचल झारै—परमा० ७८।

३८. जसुमति धाय धाय उर लीन्हों 'राई लोन उतारो'।
लेत बलाय रोहिनी नीके सुंदर रूप निहारो—सारा० ४५७।

सुख को देखकर 'तृन' तोड़ देने से यह विश्वास किया जाता है कि वह सब अनिष्टों से बचा रहेगा। बालक कृष्ण को औटा हुआ दूध कनक-कटोरे में पीता देखकर माता रोहिणी और यशोदा का 'तृन' तोड़ना 'सारावली' में कहा गया है[३९]। राधा-कृष्ण की अद्भुत कुंज-लीला कुंज-रंध्रों से अवलोकती हुई सखियाँ भी 'सारावली' में 'तृन' तोड़-तोड़कर उन पर अपना तन-मन वारती हैं[४०]। श्रीकृष्ण के त्रिभंगी रूप की अद्भुत छवि देखकर भी 'तृन' तोड़े जाने की बात सूरदास ने लिखी है[४१]।

५. *निछावर करना*—बच्चों के ऊपर से रुपया-पैसा, वस्त्राभूषण आदि निछावर करके या 'वार' कर ब्राह्मणों या याचकों को दान कर देने के मूल में भी यही विश्वास है कि इससे उनके सब रोग-धोग या अनिष्ट आदि दूर हो जाते हैं। किसी के अद्भुत कार्य करने पर भी ऐसा करने का चलन भारतीय समाज में रहा है। श्रीकृष्ण की सुन्दर छवि देखकर माता सर्वस्व निछावर करने के पश्चात् सोचती है कि इसकी सुन्दर 'दँतुलियों' पर अब क्या निछावर करूँ[४२]। किसी भयानक विपत्ति से बालक के बच जाने पर भी धन, आभूषण आदि निछावर किया जाता है। तृणावर्त के आघात से श्रीकृष्ण के बच जाने पर गोपियाँ उन पर से वार-वारकर 'आभूषण' देती हैं[४३]।

६. *पानी उतारकर पीना*—माता की ममता सदैव यही मनाया करती है कि बालक के रोग-धोग मुझे भले ही लग जायँ, पर मेरा पुत्र सुखी रहे। दैवी विपत्तियों से बालक के बच जाने पर भी उस पर से 'पानी उतारकर' पिया जाता है। तृणावर्त के आघात से शिशु कृष्ण के बच जाने पर व्रज की युवतियाँ उन पर से

३९. औट्यौ दूध कपूर मिलायो प्यावत कनक कटोरे।
पीवत देखि रोहिनी जसुमति 'डारति हैं तृन तोरे'—सा० ४४२।

४०. कुंज-रंध्र अवलोकि सहचरी अपनो तन मन वारे।
निरखि निरखि दम्पति नेत्रनि 'सुख तोरि तोरि तृन डारे'—सारा० ८९६।

४१. सूर अंग त्रिभंग सुंदर छबि 'निरखि तृन तोर'—सा० वें० १३३५।

४२. सरबस मैं पहिलैं ही वार्यौ, नान्हीं-नान्हीं दँतुली दू पर।
'अब कहा करौं निछावरि,' सूरज सोचति अपनैं लालन जू पर—सा० १०-९२।

४३. 'देतिं अभूषन वारि वारि सब,' पीवतिं सूर वारि सब पानी—सा० १०-७८।

पानी 'उतार' कर पीती हैं[४४]। इसी प्रकार विशेष अवसरों पर भी पुत्र के ऊपर से 'पानी उतार कर' माता पी लेती है जिसके मूल में यही विश्वास है कि उसने बच्चे का सारा रोग-धोग अपने ऊपर ले लिया है और अब वह सुखी रहेगा। अद्भुत रूप-लावण्यवती रुक्मिणी से श्रीकृष्ण का विवाह होने पर, दोनों की मनोहर जोड़ी देखकर, माता देवकी उन पर से बार-बार पानी वारकर पीती है जिससे दोनों सदैव सुखी रहें[४५]।

७. *सयानों से हाथ दिलाना*—बच्चे को अनमना देखकर 'सयाने' या 'कुलगुरु' आदि से 'हाथ दिलाने' पर रोग-धोग से उसकी मुक्ति के प्रति भी भारतीय स्त्रियों का विश्वास रहा है। गोस्वामी तुलसीदास की कौशल्या बालक राम को 'भोर से ही अनरसे' देखकर कुलगुरु को बुलाकर 'हाथ दिलाती' है[४६]। सूरदास की यशोदा भी कृष्ण को 'अनमना' देखकर 'घर-घर हाथ दिवाते' डोलती हैं[४७]। बालक जब कोई अनहोनी बात करता है तब माता को उस पर किसी अपदेवता की छाया पड़ जाने की आशंका होती है और वह सयानों का 'हाथ दिलाने' को प्रवृत्त होती है। यशोदा जब पुत्र के मुख में तीनों लोक देखती हैं तब वे भयभीत होकर पुनः 'घर-घर हाथ दिलाती' घूमती हैं[४८]।

८ *झाड़-फूँक और टोना-टोटका*—भारतीय स्त्रियों का 'झाड़-फूँक और टोने-

४४. ब्रज-जुवतिनि उपवन मैं पाए, लयौ उठाय कंठ लपटानी।
× × ×
देतिं अभूषन वारि-वारि सब 'पीवतिं सूर वारि सब पानी'—सा० १०-७८।

४५. देवकी पियौ वारि पानी—सा० ४१८६।

४६. क. आजु अनरसे हैं भोर के, पय पियत न नीके।
× × ×
बेगि बोलि कुलगुरु, 'छुऔ माथे हाथ अमी के'—गीता०, बाल०, १२।
ख. 'माथे हाथ रिषि जब दियो' राम किलकन लागे—गीता०, बाल०, १३।

४७. देखौ री जसुमति बौरानी।
घर घर 'हाथ दिवावति' डोलति गोद लिए गोपाल बिनानी—सा० १०-२५८।

४८. हरि किलकत जसुमति की कनियाँ।
मुख मैं तीनि लोक दिखराए, चकित भई नँद-रनियाँ।
'घर-घर हाथ दिवावति डोलति', बाँधति गरैं बघनियाँ—सा० १०-८३।

टोटके' में भी विश्वास रहा है। तुलसीदास की कौशल्या जिस प्रकार राम को 'अनरसे' देखकर झाड़-फूँक कराती हैं,[४९] उसी प्रकार परमानंददास की यशोदा बालक को नजर लग जाने की आशंका से डरकर स्वयं अंचल से झाड़ती हैं[५०]। झाड़-फूँक द्वारा सर्प का विष उतारने की बात भी 'सूरसागर' में कही गयी है[५१]। सूरदास के एक अन्य पद में 'टोना-टामनि' करने की चर्चा है[५२]। अनिष्टाशंका से पुत्र के गले में 'बघनियाँ' आदि बाँधना भी एक प्रकार का 'टोना' ही है[५३]। इसी प्रकार बालक कृष्ण जब सकटासुर का वध करता है, तब भयभीत व्रजवासी, 'सारावली' के अनुसार, उसके हाथ पर 'बच्छ-पुच्छ' रखकर 'टोने-टोटके' में अपने विश्वास का प्रमाण देते हैं[५४]।

९ *जंत्र-मंत्र*—'टोटे-टोटके' की तरह 'जंत्र-मंत्र' के प्रति भी व्रजवासियों के विश्वास का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है[५५]। तुलसीदास के वशिष्ठ 'अनरसे' राम का उपचार 'नरसिंह मंत्र' पढ़कर करते हैं[५६]। अष्टछापी कवि यद्यपि इस प्रकार के किसी मंत्र का नाम नहीं लेते, यथापि सामान्य रूप से मंत्रोपचार का उल्लेख उनके काव्यों में कई स्थलों पर हुआ है। बालक कृष्ण को सोते-सोते चौंक पड़ते

४९. आजु अनरसे हैं भोर के, पय पियत न नीके।

× × ×

'ताहि झरावति' कौसिला ....—गीता०, बाल०, १२।

५०.क. काहू निसिचरि दृष्टि लगाई 'लै लै अंचर झारै'—परमा० ६१।

ख. कौन निरासी दृष्टि लगाई 'लै लै आँचल झारै'—परमा० ७८।

५१. कहूँ राधिका कारैं खाई, जाहु न आवौ 'झारि'—सा० ७५५।

५२. 'टोना-टामनि' जंत्र-मंत्र करि, ध्यायौ देव-दुआरौ री—सा० १०-१३५।

५३. घर-घर हाथ दिवावति डोलति 'बाँधति गरैं बघनियाँ'—सा० १०-८३।

५४. जहँ तहँ ते दौरे ब्रज-बासी स्यामहिं लियो उठाय।

'बच्छ-पुच्छ' लै दियो हाथ पर मंगल गीत गवायो—सारा० ४२५-४२६।

५५. टोना टामनि 'जंत्र मंत्र' करि, ध्यायौ देव-दुआरौ री—सा० १०-१३५।

५६. आजु अनरसे हैं भोर के, पय पियत न नीके।

× × ×

सुनत आइ 'रिषि' कुस हरे 'नरसिंह मंत्र पढ़े' जो सुमिरत भय भीके।

गीता०, बाल०, १२।

देखकर माता यशोदा स्वयं मंत्र पढ़कर उसके तन-दोष का निवारण करती हैं[५७]। इसी प्रकार जब बालक कुछ अनमना हो जाता है तब माता उसे मंत्राभिषिक्त जल पिलाकर स्वस्थ करना चाहती है[५८]।

साँप के काटने पर उसका विष मंत्र पढ़कर उतारने का विश्वास तो इस बीसवीं शताब्दी में भी किया जाता है। यह विश्वास राधा की माता कीर्ति को भी है। जब वह 'काले' से पुत्री के डसे जाने की बात सुनती है तब 'गारुड़ी' बुलाकर मंत्रों से उसका उपचार कराती और असफल होने पर श्रीकृष्ण को बुलाने पहुँचती है कि वे मंत्र पढ़कर 'काले' का विष उतारकर उसकी पुत्री की प्राण-रक्षा कर दें[५९]। नंददास की 'श्याम-सगाई' में भी 'नाग' द्वारा राधा के डसे जाने पर माता जल्दी उपाय करने की बात कहकर पछाड़ खाकर गिरती है, तब भी मनमोहन गारुड़ी को बुलाने की

५७. जसुमति मन-मन यहै बिचारति।
झझकि उठ्यौ सोवत हरि अबहीं, 'कछु पढ़ि-पढ़ि तन दोष निवारति'।
—सा० १०-२००।

५८. जाकौ नाउँ सक्ति पुनि जाकी, 'ताकौं देत मंत्र पढ़ि पानी'—सा० १०-२५८।

५९.क. सूर गारुड़ी गुन करि थाके, 'मंत्र न लागत' थर तैं—सा० ७४४।

ख. महरि, 'गारुड़ी कुँवर कन्हाई'।
एक बिटिनियाँ कारैं खाई, तात्रौं स्याम तुरतहीं ज्याई—सा० ७५४।

ग. 'नंद-सुवन गारुड़ी' बुलावहु।
× × ×
देखौ धौं यह बात हमारी, एकहि मंत्र जिवावै—सा० ७४६।

घ. डसी री स्याम भुअंगम कारे।
× × ×
'फुरै न मंत्र, जंत्र, गद नाहीं, चले गुनी गुन डारे'—सा० ७४७।

ङ. 'जंत्र-मंत्र' कह जानै मेरौ ?
यह तुम जाइ गुनिनि कौं बूझौ, इहाँ करति कत झेरौ—सा० ७५३।

च. कीरति महरि बुलावनि आई, जाहु न कुँवर कन्हैया।
'जंत्र-मंत्र कछु जानत हौ तुम,' सूर स्याम बनवारि—सा० ७५५।

छ. मैया, एक मंत्र मोहिं आवै।
बिषहर खाइ मरै जो कोऊ, मोसौं मरन न पावै—सा० ७५६।

ज. 'बड़ौ मंत्र कियौ कुँवर कन्हाई'—सा० ७६१।

बात कही जाती है[६०]। इसी प्रकार नंददास की रूपमंजरी को मूर्छित देखकर जब उस पर सबको 'भूतावेश' का निश्चय हो जाता है, तब भी मंत्र पढ़नेवालों को बुलाने का प्रस्ताव किया जाता है[६१] जिससे स्पष्ट है कि वैसी बातें भी मंत्रों द्वारा दूर किये जाने पर भारतीय समाज का विश्वास रहा है।

इ. *शकुन*—शरीर और प्रकृति के कुछ कार्यों और व्यापारों, यथा शरीर के विविध अंगों का फड़कना, स्वप्न देखना, विशेष पशु-पक्षियों का दिखायी देना या उनकी बोली सुनायी पड़ना आदि, से मनुष्य को आगामी सुख-दुख की पूर्व सूचना मिल जाती है[६२]। साहित्य में ऐसी बातों का वर्णन भावी घटनाओं की पूर्व सूचना देने के लिए होता है जिससे सामान्यतया पाठक उनके संबंध में उत्सुक हो जाता है। अष्टछाप-काव्य में भी भावी सुख-दुख सूचक व्यापारों का वर्णन इसी उद्देश्य से हुआ है। जो कार्य और व्यापार मंगल के सूचक होते हैं उनको 'शकुन' कहते हैं। भारतीय समाज की 'शकुन' के प्रति पूर्ण आस्था रही है और उनसे कार्य की सिद्धि अथवा किसी शुभ सूचना के मिलने की उसको पूर्ण आशा हो जाती है। इसी जन-विश्वास के आधार पर अष्टछापी कवियों ने शकुन के विविध रूपों का उल्लेख अपने काव्य में किया है। उनके द्वारा वर्णित शकुन-सूचक कार्यों और व्यापारों को, स्थूल रूप से, चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—१. मनःस्थिति, २. प्राकृतिक व्यापार, ३. शारीरिक व्यापार और ४. जीव-जंतुओं की शकुन-सूचक क्रियाएँ।

६०. 'नाग डसी' ! मैया सुनति, गिरी धरनि मुरझाइ।
बार-बार यौं भाखही, 'कोउ जलदी करौ उपाइ'।
सखी कहै समुझाइ, कहौ तौ गोकुल जाऊँ।
मनमोहन घनस्याम, तुरत वाकौं लै आऊँ—नंद०, स्याम०, पृ० ११८।

६१. जस कोउ मिरा-मत्त इक आही, तामैं भूत लगै पुनि ताही।
बहुरि नारि निवारि सी लई, जननी निरखि ससंकित भई।
भूतावेस अवसि है माई, 'दौरौ कछु इक करौ उपाई'।
सखि कहै, काहु बोलि किन आनौं, 'एक मंत्र अस हौंहूँ जानौं'।
—नंद०, रूप०, पृ० २२।

६२. निमित्तं लक्षणं स्वप्नं शकुनिस्वरदर्शनम्।
अवश्यं सुखदुःखेषु नराणां परिदृश्यते—३-५-२-२।
—'रामायणकालीन संस्कृति', पृ० ३७।

१ *शकुन-सूचक मनःस्थिति*—कभी-कभी अकारण ही स्त्री या पुरुष का चित्त प्रफुल्लित हो जाता है, उसे अतीव प्रसन्नता का अनुभव होता है और वह जैसे उल्लास और उत्साह से भर जाता है। यह अकारण हर्ष या उल्लास भावी शुभ कार्य अथवा आगामी सिद्धि का सूचक माना जाने से 'शकुन' के अंतर्गत आता है। श्रीकृष्ण के मथुरा-प्रवास के पश्चात् गोपियाँ जब उनके लिए दुखी होकर उनके लौटने की प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से कर रही हैं तभी एक दिन सहसा उनके मन में दुख और सुख का साथ-साथ उदय होता है जो आगे चल कर कृष्ण के न आने के दुख और उनका संदेश मिलने के सुख का सूचक है[६३]। इसी प्रकार सूर्य-ग्रहण के अवसर पर जब श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र पहुँचकर नंद, यशोदा तथा अन्य व्रज-वासियों को बुलाने के लिए दूत भेजते हैं तब भी गोपियों का मन अनायास 'गह-गहा' हो जाता है और उन्हें माधव से मिलने की पूर्व सूचना मिल जाती है[६४]। अष्टछाप-काव्य में इस प्रकार की शकुन-सूचक मनःस्थिति का उल्लेख बहुत कम स्थलों पर हुआ है।

२. *शकुन-सूचक प्राकृतिक व्यापार*—'रामायणकालीन संस्कृति' के अनुसार 'दिशाओं का प्रसन्न हो जाना, सूर्य का निर्मल जान पड़ना, शीतल, मंद और सुगंधित पवन का चलना, जल का मधुर और स्वच्छ होना, वनों का फलों और वृक्षों का पुष्पों से युक्त होना'[६५] आदि बातें शकुन-सूचक प्राकृतिक व्यापारों के अंतर्गत गिनायी गयी हैं। अष्टछाप-काव्य में उक्त प्राकृतिक व्यापारों में वन में वसंत छा जाने और वृक्षों में नये पात आ जाने की बात श्रीकृष्ण के कुरुक्षेत्र पहुँच कर व्रजवासियों को बुलाने के लिए दूत भेजने के प्रसंग में लिखी गयी है[६६]। इसी संबंध में बिना वायु के 'अंचल और ध्वज' डोलने लगना भी शकुन-सूचक प्राकृतिक

६३. 'कछु दुख कछु हिय हर्ष भई'—सा० ३१५३।

६४. माधौ आवनहार भए।
'अंचल उड़ि 'मन होत गहगहौ,' फरकत नैंन खए—सा० ४२७७।

६५. 'रामायणकालीन संस्कृति', पृ० ४१।

६६. माधौ आवनहार भए।
× × ×
'रितु बसंत फूलीं बन बेली, उलटे पात नए'—सा० ४२७७।

व्यापार ही है जिसका उल्लेख सूरदास के काव्य में हुआ है[६७]।

२. *शकुन-सूचक शारीरिक व्यापार*—पुरुषों के कुछ दाहिने अंगों और स्त्रियों के वामांगों का फड़कना शकुन-सूचक माना जाता है। इन अंगों में नयन और भुजा या बाहु मुख्य हैं। तुलसीदास ने भरत के 'दच्छिन नयन-भुज'[६८] और सीता के बाम 'बिलोचन-बाहु' फड़कने को[६९] शकुन-सूचक माना है। अष्टछाप-काव्य में भी इस प्रकार के शकुन-सूचक शारीरिक व्यापारों का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है। स्त्रियों के बायें नयन और भुज के साथ-साथ उनके 'उर और अधर' फड़कने को भी हमारे कवियों ने 'शकुन' ही माना है। 'श्रीमद्भागवत' में स्त्रियों की बायीं जाँघ का फड़कना भी शुभ कहा गया है[७०]। अशोकवाटिका में बंदिनी, सूरदास की सीता 'नैन और उर' फड़कने को 'सगुन' मानती है[७१]। इसी प्रकार उधर कुरुक्षेत्र में पहुँचकर श्रीकृष्ण व्रजवासियों को बुलाने के लिए दूत भेजते हैं और इधर गोपियों के 'कुच, भुज, नैन और अधर' फड़कने लगते हैं[७२]। इन शकुनों का शुभ फल बताती हुई सखी स्पष्ट शब्दों में राधा से कहती है कि आज श्याम से 'मिलावा' अवश्य होगा, इसलिए चिंता छोड़ कर प्रसन्न हो जाओ; विधाता ने हमारा सोया हुआ भाग्य जगा दिया है[७३]।

परमानंददास की गोपी भी भुजाओं के फड़कने और 'कंचुकि बंद के तड़कने' से प्रियतम अथवा उसके संदेशवाहक के आने के प्रति आश्वस्त हो जाती है[७४]।

६७. आजु मिलावा होइ स्याम कौ, तू सुनि सखी राधिका भोली।
कुच भुज नैन अधर फरकत हैं, 'बिनहिं बात अंचल ध्वज डोली'—सा० ४२७६।
६८. 'भरत नयन-भुज दच्छिन फरकत' बारहिं बार—मानस०, उत्तर०, दो० ४।
६९. 'फरकत' मंगल अंग 'सिय बाम बिलोचन बाहु'—रामाज्ञा० ५-२-५।
७०. 'श्रीमद्भागवत', दशम स्कंध, अध्याय ५३, श्लोक २७।
७१. इतनौ कहत नैन-उर फरके, सगुन जनायौ अंग।
आजु लहौं रघुनाथ सँदेसो, मिटै बिरह दुख संग—सा० ६-८३।
७२. कुच भुज नैन अधर फरकत हैं, बिनहिं बात अंचल ध्वज डोली—सा० ४२७६।
७३. आज मिलावा होइ स्याम कौ, तू सुनि सखी राधिका भोली।
× × ×
सोच निवारि करौ मन आनँद, मानौ भाग दसा बिधि खोली—सा० ४२७६।
७४. आजु कोउ नीकी बात सुनावे।

छीतस्वामी की गोपी तो 'सगुन' के संबंध में और भी भाग्यशालिनी है। जिस दिन श्रीकृष्ण से उसका मिलन होता है, उस प्रात:काल को उसकी नींद शुभांगों के फड़कने के साथ खुलती है और केसर घोलते समय तो उसकी भुजा 'फरफर फरकती' है[७५]। इसी प्रकार नंददास की रुक्मिणी के शुभ अंग भी उसी समय से फड़क कर उसके हृदय में मनोरथ-पूर्ति की आशा जगा देते हैं जिस समय श्रीकृष्ण द्वारका से, उसका पत्र पाकर, प्रस्थान करते हैं[७६]। 'श्रीमद्भागवत' में रुक्मिणी को बायीं जाँघ, बायीं भुजा और बायें नेत्र के फड़कने से कृष्ण के शुभागमन की पूर्व सूचना मिल जाती है[७७]।

प्रात:काल उठते ही अथवा किसी काम के लिए चलते समय किसी 'अच्छे' का मुख दिखायी दे जाना भी 'शकुन-सूचक' समझा जाता है यदि उस कार्य में सिद्धि मिल जाय अथवा विशेष लाभ हो जाय। इस सामान्य विश्वास के उदाहरण परमानंददास के काव्य में दो-तीन पदों में मिलते हैं। कोई ग्वालिनी किसी दिन कृष्ण का मुख देखकर दही बेचने जाती है; उसका सारा दही जाते ही बिक जाता है और दूना लाभ यह होता है कि घर में उसकी गाय काली बछिया ब्याती है। अतएव वह ग्वालिनी दूसरे दिन भी कृष्ण का मुख देखने आती है[७८]। एक दूसरे पद में कृष्ण का दर्शन सबेरे ही पा जानेवाली गोपी को बहुत लाभ होने की आशा होती है[७९]। तीसरी गोपी तो कृष्ण से ही स्पष्ट कह देती है कि प्रात:काल ही

भुज फरकति कंचुकि बँद तरकत नँदनंदन घर आवे।
कै मधुबन तैं नंदलाड़िलौ कोउ इक दूत पठावे—परमा०, हस्त० २०८।

७५. आज सबेरे हौं उठि बैठी कुचनि कंचुकी दरकी।
औ केसरि घोरत में मेरी फर-फर भुज दै फरकी—छीत० ५६।

७६. बाम भुजा लागी फरकनि, कंचुकि बँध लागे तरकन—नंद०, रुक्मिणी०, पृ० १६।

७७. एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविंदागमनं नृप।
वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन प्रियभाषिण:।
'श्रीमद्भागवत', दशम स्कंध, अध्याय ५३, श्लोक २७।

७८. 'लाल कौ मुख देखन को हौं आई'।
'काल्हि मुख देखि गई दधि बेचन जातहि गयौ बिकाई'।
'दिन तें दूनों लाभ भयौ घर काजरि बछिया जाई'—परमा० ४६।

७९. लाल को 'दरसन भयो सबेरो'।
'बहुत लाभ पाऊँगी' माई, दह्यो बिकैहै मेरो—परमा०, सोम० अष्ट०, पृ. १२६।

तुम्हारे शुभ दर्शन करने इसीलिए आयी हूँ कि मुझे खूब लाभ हो और मार्ग में भी सुख ही मिले[८०]।

४. *जीव-जंतुओं की शकुन-सूचक क्रियाएँ*—इस वर्ग में पशु, पक्षी तथा अन्य कीट-पतंगों की शकुन-सूचक क्रियाएँ आती हैं। शकुन-सूचक पशुओं में मुख्य हैं—गाय, मृग और 'लोवा' या लोमड़ी। 'रामचरित-मानस' में बछड़े को दूध पिलाती हुई गाय के दर्शन के साथ-साथ 'लोवा' या लोमड़ी का दिखायी देना और मृगों की टोली का घूम कर दाहिनी ओर को आ जाना शुभ बताया गया है[८१]। अष्टछापी कवियों ने उक्त पशुओं में से केवल मृगमाला के दाहिनी ओर दिखायी देने की बात 'शकुन' के अंतर्गत लिखी है। कंस की आज्ञा से जब अक्रूर, बलराम और कृष्ण को लेने गोकुल जाने लगते हैं, तब दोनों बालकों की रक्षा के लिए वे बहुत चिंतित हो जाते हैं। इसी समय उन्हें दाहिनी ओर मृगों का दर्शन होता है जिससे वे दोनों बालकों की ओर से निश्चिंत होकर इन शकुनों के फलस्वरूप शीघ्र ही गोपाल को भेंटने का सुअवसर पाने के सौभाग्य की बात सोचते-सोचते अत्यंत पुलकित हो जाते हैं[८२]।

शकुन-सूचक पक्षियों में 'रामचरित-मानस' में बायीं ओर चारा लेते चाषु या नीलकंठ, दाहिनी ओर खेत में कौए, बायीं ओर वृक्ष पर श्यामा आदि के दर्शनों की चर्चा की गयी है[८३]। अष्टछाप-काव्य में उक्त पक्षियों में से 'काग' की चर्चा अनेक

८०. हौं प्रभात समैं उठि आई 'कमलनयन देखन तुम्हरो मुख'।
गोरस बेचन चली मधुपुरी 'लाभ होइ मारग पाऊँ सुख'।
—परमा०, सोम० अष्ट०, ४७।

८१. 'लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा'। 'सुरभी सनमुख सिसुहिं पिआवा'।
मृगमाला फिरि दाहिनि आई'। मंगल गन जनु दीन्हि देखाई।
—मानस०, बाल०, ३०६।

८२.क. 'दच्छिन दरस देखि मृगमाला। अति आनंद भयौ तिहिं काला।
अबहीं बन मिलिहौं गोपाला। स्याम जलद तनु अंग रसाला—सा० २६४५।

ख. दाहिनैं देखियत मृग-माल'।
मानौ इहिं सकुन अबहिं इहिं बन आजु, इनहि भुजनि भरि भेंटौंगो गोपाल।
—सा० २६४६।

८३. 'चारा चाषु बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई'।

स्थलों पर विस्तार से मिलती है। स्त्री-वर्ग के विश्वास के अनुसार घर की छत पर 'कउए' का आकर बैठना और बोलना किसी आत्मीय जन के आगमन का सूचक होता है। राम-लक्ष्मण के आगमन की बात सोचती हुई कौशल्या राजभवन पर बैठे कौए को देख 'सगुन' जानना चाहती है। 'दोनों मुझे कब मिलेंगे' की बात कौशल्या के मुख से सुनकर जब कौआ हरी डार पर उड़कर बैठ जाता है, तब वह शीघ्र ही पुत्र-मिलन के संबंध में आश्वस्त हो जाती है और पुत्रों का दर्शन होने पर कौए को दूध - भात खिलाने तथा 'चोंच और पाँखि' सोने के पानी से मढ़ाने का वचन देती है[८४]। इसी प्रकार 'बायस' या कौए के द्वारा गोपियों को भी अनेक अवसरों पर शकुनों की सूचना मिलती है जिनके सम्बन्ध में 'प्राकृतिक जीवन' के अंतर्गत विस्तार से लिखा जा चुका है।

कीट-पतंगों में 'भौंरे' का कान के पास आकर बोलना अष्टछाप-काव्य में 'शकुन'-रूप में वर्णित है[८५]।

ई. *अशकुन*—भावी अनिष्ट, विपत्ति अथवा असफलता आदि की सूचना देनेवाले कार्य और व्यापार 'अशकुन' माने जाते हैं। जीवन के दैनिक व्यवहार में सभी व्यक्ति

'दाहिन काग सुखेत सुहावा'.................................।
'छेमकरी' कह छेम बिसेषी। 'स्यामा बाम सुतरु पर देखी'—मानस०, बाल०, ३०३।

८४. बैठी जननि करति सगुनौती।
लछिमन-राम मिलैं अब मोकौं', दोउ अमोलक मोती।
'इतनी कहत, सुकाग उहाँ तैं हरी डार उड़ि बैठ्यौ'।
अंचल गाँठि दई, दुख भाज्यौ, 'सुख जु आनि उर पैठ्यौ'।
जब लौं हौं जीवौं जीवन भर, सदा नाम तव जपिहौं।
'दधि-ओदन दोना भरि दैहौं', अरु भाइनि मैं थपिहौं।
अब कैं जौ परिचौ करि पावौं अरु देखौं भरि आँखि।
सूरदास 'सोने कैं पानी मढ़ौं चोंच अरु पाँखि'—सा० ६-१६४।

८५.क. जबहिं चले ऊधो मधुबन तैं, गोपिनि मनहिं जनाइ गई।
'बार-बार अलि लागे स्रवननि', कछु दुख कछु हिय हर्ष भई—सा० ३४५३।

ख. 'आजु कोउ नीकी बात सुनावै'।
कै मधुबन तैं नंद लाड़िलौ, कैऽब दूत कोउ आवै।
'भौंर एक चहुँ दिसि तैं उड़ि उड़ि, कानन लगि-लगि गावै'।
उत्तम भाषा ऊँचे चढ़ि चढ़ि, अंग अंग सगुनावै—सा० ३४५५।

अनेक रूपों में अशकुनों की चर्चा किया करते हैं। आनेवाले कष्ट या अनिष्ट की हानि या पीड़ा यद्यपि अशकुनों के द्वारा उनकी पूर्व-सूचना से किसी प्रकार कम नहीं हो जाती, तथापि इतना निश्चित है कि बार-बार अशकुनों की चर्चा से दुख या कष्ट का सामना करने को प्राणी तैयार अवश्य हो जाता है; और वैसी स्थिति में अनिष्ट की बात सर्वथा असंभावित नहीं जान पड़ती। काव्य में इनकी चर्चा से पाठक की सहज उत्सुकता बढ़ती है और पात्रों की गति-विधि को वह बहुत रुचि से लक्ष्य करता है; अस्तु। 'शकुन' के समान ही अशकुनों को भी चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—१. मनःस्थिति, २. प्राकृतिक-व्यापार, ३. शारीरिक व्यापार और ४. जीव-जंतुओं की अशकुन-सूचक क्रियाएँ।

१. *अशकुन-सूचक मनःस्थिति*—प्रफुल्लित चित्त का सहसा उदास हो जाना, मन में उत्साह की कमी होना, व्यक्ति का अकस्मात खिन्न हो जाना, किसी कार्य में ध्यान न लगना आदि बातें 'अशकुन-सूचक मनःस्थिति' के अंतर्गत आती हैं। अष्टछाप-काव्य में स्वतंत्र रूप से अशकुन सूचक मनःस्थिति का वर्णन नहीं मिलता; अन्य अशकुनों के उल्लेख के साथ ही उसकी भी चर्चा की गयी है।

२ *अशकुन-सूचक प्राकृतिक व्यापार*—प्रकृति के सामान्य व्यापारों का किसी प्रकार के उत्पातों में परिवर्तित हो जाना साधारणतया अशकुन-सूचक माना जाता है। उदाहरण के लिए जब अकारण ही भूमि काँपने लगे, पर्वत-शिखर थर्राने लगें, वृक्ष उखड़कर गिर पड़ें तब मानव को स्वभावतया किसी अनिष्ट की आशंका होने लगती है। अष्टछाप-काव्य में अशकुन-सूचक ऐसे प्राकृतिक व्यापारों की चर्चा भी दो-एक स्थलों पर ही की गयी है। उदाहरण के लिए अर्जुन को द्वारका पहुँचकर यादवों के क्षय होने का जब समाचार मिलता है, तभी युधिष्ठिर के यहाँ प्राकृतिक उत्पातों, यथा भुव का काँपना, वर्षा का न होना आदि, से उस 'शोक-समाचार' की पूर्व सूचना मिल जाती है[८६]। इसी प्रकार नंददास के कृष्ण जब कालीदह में कूद पड़ते हैं तब भी भूमि-कंप आदि प्राकृतिक उत्पात[८७] व्रजवासियों को शंकित कर देते हैं।

८६. 'कंपै भुव बर्षा नहिं होइ', भयो सोच नृप-चित यह जोइ—सा० १-२८६।

८७. 'व्रज मैं होन लगे उतपात, असुभ सूचने फरके गात।
'भूमि कंप नभ ते उड़ि गिरे, अवर असगुन निरखि थरहरे।
—नंद०, दशम०, पृ० २७६।

'श्रीमद्भागवत' में वर्णित आकाश में उल्कापात, पृथ्वी में भूकम्प आदि अशकुन भी इसी वर्ग में आते हैं[८८]।

३ *अशकुन-सूचक शारीरिक व्यापार*—कार्य-विशेष को जाते हुए स्वयं को 'छींक' आ जाना या किसी का बायीं ओर से 'छींक' देना 'अशकुन' का लक्षण माना जाता है। अष्टछाप-काव्य में पूर्वोक्त दोनों व्यापारों से अधिक विस्तार से अशकुन-सूचक इस क्रिया की चर्चा की गयी है। कंस कालीदह के फूल भिजवाने की आज्ञा नंद को दूत के द्वारा भेजता है। नंद जी को इस विपत्ति की सूचना घर के भीतर जाते समय बायीं ओर 'छींक' हो जाने से मिल जाती है[८९]। कृष्ण के कालीदह में कूदने और इस प्रकार विपत्ति में फँस जाने की आशंका भी पिता नंद को घर में घुसते ही बायीं ओर होनेवाली छींक से हो जाती है[९०]।

सामान्यतया यह विश्वास किया जाता है कि अशकुन-सूचक 'छींक' हो जाने पर यदि कुछ समय तक रुक लिया जाय या कुछ खाकर दो-एक घूँट पानी पी लिया जाय अथवा केवल पान ही खा लिया जाय तो 'अशकुन' का दोष मिट जाता है। अष्टछाप-काव्य में ऐसे जन-विश्वास का भी उल्लेख हुआ है। यशोदा जब रसोई के भीतर जाने लगती है तभी एक ग्वालि 'छींक' देती है। 'छींक' सुनते ही यशोदा द्वार पर ही ठिठक जाती और मन में सोचती हैं कि यह तो अच्छी बात नहीं जान पड़ती, फिर आँगन में एक बार आकर और इस प्रकार 'छींक' का दोष मिटाकर रसोई की ओर बढ़ती है[९१]। दान-लीला-प्रसंग में जब गोपियाँ कृष्ण के द्वारा घेर ली जाती हैं तब कहती हैं कि घर से हम 'छींकते' तो चली नहीं थीं; फिर यह 'विपत्ति' कहाँ से

८८. 'श्रीमद्भागवत', प्रथम स्कंध, अध्याय १४, श्लोक १०।

८९. नृपति दूत पठाइ दीन्हौ, चल्यौ ब्रज इहिं कार।
'महर पैठत सदन भीतर, छींक बाईं धार'।
सूर नंद कहत महरि सौं, आजु कहा बिचार—सा० ५२४।

९०. 'पैठत पौरि छींक भई बाएँ'—सा० ५४१।

९१. जसुमति चली रसोई भीतर, तबहीं ग्वालि इक छींकी।
ठठकि रही द्वारे पर ठाढ़ी, बात नहीं कछु नीकी।
आइ अजिर निकसी नँदरानी, बहुरी दोष मिटाइ—सा० ५४०।

आ गयी[९२] ? उनका यह वाक्य भी भारतीय समाज में 'छींक' का अशकुन-सूचक माना जाना ही सूचित करता है।

अशकुन-सूचक अन्य शारीरिक व्यापारों में पुरुषों के बायें नयन या बाहु का[९३] और स्त्रियों के दाहिने नेत्र, बाहु, अधर, 'उर' का फड़कना आदि आता है। अष्टछाप-काव्य में इन व्यापारों का स्वतंत्र वर्णन बहुत कम हुआ है। केवल नंददास ने दो-तीन स्थलों पर अशुभसूचक 'गात' के फड़कने का उल्लेख किया है[९४]।

असंभावित हानि होने या कष्ट मिलने पर प्रातःकाल किसी-किसी का मुँह देखना भी अशकुन-सूचक ही माना जाता है। दान-लीला-प्रसंग में श्रीकृष्ण द्वारा घेर लिये जाने की विपत्ति जब गोपियों के सामने आती है तब वे कहती हैं कि पता नहीं किसका मुँह आज सबेरे देखा था जो यह विपत्ति सामने आयी[९५]। उनके इस कथन से भारतीय समाज का यह विश्वास पुष्ट होता है कि प्रातःकाल किसी-किसी का 'मुँह देखना' भी कभी-कभी भावी कष्ट या विपत्ति का कारण हो जाता है।

४ *जीव-जंतुओं की अशकुन-सूचक क्रियाएँ*—पशुओं में बैल, घोड़े और हाथी का रोना, दिन में स्यार का बोलना, दाहिनी ओर गदहे का रेंकना, कुत्ते का द्वार पर कान फटकना, बिल्ली का रास्ता काट देना आदि बातें अशकुन-सूचक मानी गयी हैं। अष्टछापी कवियों ने कृष्ण के स्वर्गवास की सूचना युधिष्ठिर को अशकुन-सूचक अन्य बातों के साल-साथ बैल, घोड़े और हाथी के रोने तथा दिन में स्यार के बोलने से[९६] दिलायी है। कालीदह में कृष्ण के कूद पड़ने पर यशोदा को उसकी सूचना बायीं ओर 'खर' के बोलने से[९७] और नंद को द्वार पर कुत्ते के कान फटकने से मिलती है[९८]। इनके अतिरिक्त बिल्ली भी यशोदा का रास्ता बार-बार काटकर भावी अनिष्ट

९२. घर तें हम छींकत हूँ न आई—सा० १४८२।
९३. 'श्रीमद्भागवत', प्रथम स्कंध, अध्याय १४, श्लोक १३।
९४.क. ये दिखि 'फरकत मेरे गात', ब्रज मैं आहि कछू उतपात—नंद०, दशम०, पृ० २२०।
  ख. 'ब्रज मैं होन लगे उतपात', असुभ सूचने फरके गात—नंद०, दशम०, पृ० २७६।
९५. काकौ बदन प्रात ही देख्यौ—सा० १४८२।
९६. 'रोवैं बृषभ, तुरग अरु नाग। स्यार द्यौस' निसि बोलैं काग—सा० १-२८६।
९७. बाएँ काग 'दाहिने खर-स्वर' ब्याकुल घर फिरि आई—सा० ५४०।
९८. 'फटकत स्रवन स्वान द्वारे' पर—सा० ५४१।

की सूचना देती है[९९]।

पक्षियों में कौए और गररी की कुछ क्रियाओं को अष्टछापी कवियों ने अशकुन-सूचक माना है। श्रीकृष्ण का द्वारका में स्वर्गवास होने की सूचना अन्य अशकुनों के साथ रात में कौए के बोलने[८००] पर मिलती है[१]। 'श्रीमद्भागवत' में भी रात में कौए का बोलना अशुभ बताया गया है[२]। बायीं ओर कौए का बोलना[३] अथवा माथे पर से होकर उसका उड़ जाना[४] यशोदा को किसी अनिष्ट की सूचना दे देता है और पाठक जानता है कि वह अनिष्ट है कृष्ण का कालीदह में कूद पड़ना। नंद जी को इसकी सूचना पक्षियों में 'गररी' को लड़ते देखकर मिलती है[५]।

उ. *अन्य विश्वास*—इस वर्ग के अंतर्गत मुख्य रूप से चार बातें आती हैं—१. स्वप्न, २. शपथ, ३. शाप और ४. आशीर्वाद-संबंधी विश्वास।

१. *स्वप्न-संबंधी विश्वास*—मानव-वर्ग सोते समय प्रायः स्वप्न देखता है जिनमें से कुछ सत्य सिद्ध होते हैं और कुछ असत्य; कुछ का संबंध वह विगत या आगामी घटनाओं से जोड़ लेता है और कुछ को निरर्थक समझता है। अष्टछाप-काव्य में भी अनेक स्थलों पर स्वप्नों की चर्चा की गयी है जिनको स्थूल रूप से चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—य. आगामी सुख-सूचक स्वप्न, र. भावी दुख या अनिष्ट-सूचक स्वप्न, ल. भावी गति-विधि निर्देशक स्वप्न और व. अन्य स्वप्न।

य. *आगामी सुख-सूचक स्वप्न*—कष्ट और संकट में पड़ा हुआ व्यक्ति कभी तो स्वयं ऐसे स्वप्न देखता है और कभी उसके शुभचिंतक को वे दिखायी देते हैं जिनसे संकट या विपत्ति से शीघ्र ही मुक्ति मिलने की आशा हो जाती है। ऐसे स्वप्न आगामी सुख-सूचक समझे जाते हैं। अशोकवाटिका में बंदिनी सीता जब राम

९९. 'मंजारी आगे ह्वै आई', पुनि फिरि आँगन आई—सा० ५४०।
८००. आधी रात को कौओं का बोलना भारतीय समाज में बहुत समय से अशुभ माना जाता है—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्ष०, सां० अ०, पृ० १३५।
१. स्यार श्वौस 'निसि बोलैं काग'—सा० १-२८६।
२. 'श्रीमद्भागवत', प्रथम स्कंध, अध्याय १४, पृ० १११।
३. 'बाएँ काग' दाहिने खर-स्वर, व्याकुल घर फिरि आई—सा० ५४०।
४. 'माथे पर ह्वै काग उड़ान्यौ' कुसगुन बहुतक पाई—सा० ५४१।
५. फटकत स्रवन स्वान द्वारे पर 'गररी करत लराई'—सा० ५४१।

के विरह में अत्यंत दुखित होती है और अपनी मुक्ति के संबंध में निराश-सी हो जाती है, तभी उसका हित चाहनेवाली राक्षसी त्रिजटा रात में एक स्वप्न देखने की बात कहती है[६]। स्वप्न में उसने देखा कि सीता राघव के पास कुसुम-विमान पर बैठी है। राम के शीश पर श्वेत छत्र सूर्य की किरणों से दमक रहा है। दानव-कुल वाणों के भय से भाग चुका है। रावण का शीश पृथ्वी पर पड़ा है और मंदोदरी उसके निकट विलाप कर रही है। कुंभकरण कीचड़ से लथपथ पड़ा है और लंका विभीषण को मिल गयी है। राम का कपि-दल लंका में प्रवेश करता है और चारों ओर उनकी दुहाई फिर जाती है[७]।

भारतीय जन-समाज का सामान्य विश्वास यह है कि जो स्वप्न प्रातःकाल दिखायी देता है, वह अवश्य सत्य होता है। त्रिजटा भी उक्त सुस्वप्न प्रातःकाल ही देखती है[८]। इसी से बड़े विश्वास के साथ वह कहती है कि इस स्वप्न का भाव

६.क. त्रिजटा के इस स्वप्न की चर्चा वाल्मीकि रामायण में भी है।

—'रामायणकालीन संस्कृति', पृ० ४१।

ख. 'मानस' में भी त्रिजटा के ऐसे ही स्वप्न का उल्लेख है—

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका।
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहिं सेइ करहु हित अपना।
सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी।
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।
एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई।
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई।
'यह सपना' मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी—'मानस', सुंदर, ११।

७. कुसुम-बिमान बैठी बैदेही, देखी राघव पास।
स्वेत छत्र रघुनाथ-सीस पर, दिनकर-किरन प्रकास।
भयौ पलायमान दानवकुल ब्याकुल सायक त्रास।
पजरत धुजा, पताक, छत्र, रथ, मनिमय कनक-अवास।
रावन-सीस पुहुमि पर लोटत, मंदोदरि बिलखाइ।
कुंभकरन-तन पंक लगाई, लंक बिभीषन पाइ।
प्रगट्यौ आइ लंक दल कपि कौ, फिरी रघुबीर दुहाइ—सा० ६-८३।

८. सुनि सीता, 'सपने की बात'।
'रामचंद्र-लछिमन मैं देखे, ऐसी बिधि परभात'—सा० ६-८३।

कभी 'विफल' नहीं हो सकता[९]।

श्रीकृष्ण जब कंस को मारकर माता-पिता को बंदीगृह से छुड़ाने के लिए पहुँचने को होते हैं, तभी वसुदेव, देवकी से रात के स्वप्न में नृपति कंस द्वारा अक्रूर को भेज कर बलराम तथा कृष्ण को बुलाया जाना और उनके आने पर कंस का मारा जाना देखना बताते हैं[१०] एवं, स्वप्न के अनुसार, आज-कल में उनके आने की बात कहते हैं[११]। उनका यह स्वप्न संकटों से मुक्ति मिलने की शुभ सूचना देता है। अष्टछाप-काव्य में इस प्रकार के आगामी सुखसूचक स्वप्न अधिक नहीं दिखाये गये हैं।

२. *भावी अनिष्ट-सूचक स्वप्न*—अष्टछापी कवियों ने भावी अनिष्ट या दुख-सूचक स्वप्नों की चर्चा अपेक्षाकृत अधिक की है। कालीदह में कूदने की घटना के पूर्व की रात्रि को श्रीकृष्ण सहसा सोते से चौंक उठते हैं। माता दीपक जलाकर या उकसाकर उनके 'झझक' उठने का कारण जानना चाहती है तब कृष्ण अपना देखा हुआ स्वप्न बताते हैं—मैंने स्वप्न में देखा कि मुझे किसी ने जमुनादह में गिरा दिया है। पुत्र को इस प्रकार भयभीत देखकर माता उसे धीरज देती है[१२] और कहती है कि दिन में जमुना में नहाने की याद बनी रहने से ही तुझे ऐसा स्वप्न दिखायी दिया है; इसलिए डरने की कोई बात नहीं है[१३]। इसके पश्चात् बालक

९. 'या सपने कौ भाव सिया सुनि, कबहूँ बिफल नहिं जाइ'—सा० ६-८३।

१०. सुन्यौ बसुदेव दोउ नंदसुवन आए।
त्रिया सौं कहत कछु सुनति है री नारि, रातिहूँ 'सपन कछु ऐसे पाए'।
गए अक्रूर तिनि नृपति माँगे बोलि, तुरत आए, आइ कंस मारे—सा० ३०८९।

११. कबहुँ प्रगट वै होइँगे, कृष्न तुम्हारे तात।
'आजु काल्हि हरि आइहैं, यह सपने की बात।
अब जनि होई अधीर, कंस की आयु तुलानी।
देखत जाइ बिलाइ, झार तिनका करि जानी।
'ऐसौ सुपनौ मोहिं भयौ, त्रिया सत्य करि मानि'।
'त्रिभुवन-पति तेरौ सुवन है, तोहिं मिलैगौ आनि'—सा० ३०९०।

१२. सोवत झझकि उठे काहे तैं, दीपक कियौ प्रकास।
'सपनैं' कूदि परयौ जमुना-दह, काहूँ दियौ गिराइ'।
सूर स्याम सौं कहति जसोदा, जनि हो लाल डराइ—सा० ५१७।

१३. मैं बरज्यौ जमुना-तट जात।

तो सो जाता है, परंतु नंद-यशोदा उस दुःस्वप्न की ही चर्चा करते रहते हैं[१४]। दूसरे दिन जब श्रीकृष्ण के कालीदह में कूद पड़ने की सूचना माता यशोदा को मिलती है तब वे रात्रि के दुःस्वप्न के सत्य होने की बात सोच - सोचकर पछताती हैं[१५]।

अष्टछाप-काव्य में वर्णित अनिष्ट-सूचक स्वप्न का दूसरा उदाहरण कृष्ण के मथुरागमन प्रसंग में मिलता है। बलराम और कृष्ण को बुलाने के लिए इधर कंस अक्रूर को भेजता है और उधर नंद को स्वप्न दिखायी देता है कि बलराम तथा कृष्ण कहीं खो गये हैं या उन्हें कोई ले गया है। स्वप्न में उन्होंने ग्वाल-बालों को यह कहकर रोते भी सुना कि कृष्ण अभी तो हमारे साथ खेल रहे थे; अब कहीं नहीं दिखायी देते। कोई दूत उन्हें अपने साथ लिवाने आया; उसने उन पर न जाने कौन सी 'ठगौरी' की कि हम खड़े देखते ही रहे और बलराम तथा कृष्ण हमारे प्रति निष्ठुरता दिखा कर दूत के ही साथ हो गये[१६]। नंद, यशोदा, व्रज के समस्त गोपों और गोपियों तथा कृष्ण के सखा ग्वाल-बालों को भी उन्होंने रोते सुना। स्वप्न में इतना देखते ही धकधकाते हृदय से, और नेत्रों से आँसू बहाते हुए नंद जाग पड़े एवं पास सोये कृष्ण के शरीर पर हाथ फेरने लगे। यशोदा व्याकुल होकर उनकी इस दशा का कारण पूछने लगी, लेकिन उन्होंने स्वप्न में देखी हुई बात उसे

सुधि रह गई न्हात की तेरैं जनि डरपौ मेरे तात—सा० ५१८।

१४. 'सपनौ' सुनि जननी अकुलानी।
दंपति बात कहत आपुस मैं, सोवत सारँगपानी—सा० ५१६।

१५. 'सुपनौ परगट कियौ कन्हाई'।
सोवत ही निसि आज डराने, हमसौं यह कहि बात सुनाई—सा० ५४४।

१६. उत 'नंदहिं सपनौ भयौ', हरि कहूँ हिराने।
बल मोहन कोउ लै गयौ, सुनि कै बिलखाने।
ग्वाल सखा रोवत कहैं, हरि तौ कहुँ नाहीं।
संगहि सँग खेलत रहे, यह कहि पछिताहीं।
दूत एक सँग लै गयौ, बलराम कन्हाई।
कहा ठगौरी सी करी, मोहिनी लगाई।
वाही के दोउ ह्वै गए, हम देखत ठाढ़े।
सूरज प्रभु वै निठुर ह्वै, अतिहीं गए गाढ़े—सा० २६३५।

बताना उचित नहीं समझा;[१७] परंतु अगले दिन कंस के दूत के आने की बात सुनते ही रात्रि के 'दु:स्वप्न' का स्मरण करके वे अत्यंत त्रस्त हो जाते हैं[१८]।

उधर कंस को भी इसी अवसर पर दु:स्वप्नों से आगामी अनिष्ट की सूचना मिल जाती है। बलराम और कृष्ण को मथुरा बुलाने का निश्चय करके जब कंस सोता है तब उसको स्वप्न में भी वे दोनों बालक काल के समान सामने खड़े दिखायी देते हैं जिससे वह शंकित होकर जाग पड़ता है। उसके साथ ही सब रानियाँ भी जागती और व्याकुल होकर उसके अकुलाने का कारण पूछने लगती हैं। कंस उन रानियों से तो कुछ नहीं कहता, लेकिन उसका जी बराबर धड़कता रहता है[१९]। पति को निरुत्तर देख कर रानियाँ बार-बार उसकी चिंता का कारण जानना चाहती हैं, लेकिन वह कुछ नहीं कह पाता और प्रतिहार, पौरिया आदि को सावधान करके पुन: लेटता है; परंतु बलराम और कृष्ण के भय से उसकी पलक नहीं लगती[२०]।

१७. ब्याकुल नंद सुनत यह बानी।
धरनी मुरछि परी अति ब्याकुल, बिबस जसोदा रानी।
ब्याकुल गोप ग्वाल सब ब्याकुल, ब्याकुल ब्रज की नारि।
ब्याकुल सखा स्याम बल के जे, ब्याकुल तन न सँभारि।
धरनी परत, उठत पुनि धावत, 'इहिं अंतर नँद जागे'।
'धकधकात उर, नैन स्रवत जल, सुत-अंग परसन लागे'।
सिसकत सुनि जसुमति अतुराई, कहा महर भ्रम पायौ।
सूर नंद घरनी के आगैं, यह भ्रम नहीं सुनायौ—सा० २९३६।

१८. 'निसि सुपने कौं त्रस्त भए अति', सुन्यौ कंस कौ दूत—सा० २९५५।

१९. तुरत जाइ पलिका परयौ, पलकनि झपकानौ।
'स्याम राम सुपने खरे, तहँ देखि डरानौ'।
अति कठोर दोउ काल से, भरम्यौ अति झझक्यौ।
जागि परयौ तहँ कोउ नहीं, जियहीं जिय ससक्यौ।
चौंकि परयौ सँग नारि के, रानी सब जागीं।
उठीं सबै अकुलाइ कै, तब बूझन लागीं।
महाराज, झझके कहा, 'सपने कह ससके'।
सूर अतिहिं ब्याकुल भये, धर-धर उर धरके—सा० २९३४।

२०. महाराज, क्यौं आज हीं, 'सपने झझकाने'।
पौढ़े जबहीं आनि कै, देखे बिलखाने।

इस दु:स्वप्न का कंस पर इतना बुरा प्रभाव पड़ता है कि रात्रि का शेष भाग उसके लिए युग से भी 'भारी' हो जाता है। उसका सारा याम जागते ही बीतता है। उसे एक क्षण भर भी शांति नहीं मिलती; कभी उठता है, कभी बैठता है, कभी लेटता है और कभी अजिर में जा खड़ा होता है। इस प्रकार रात्रि का शेष समय उससे काटे नहीं कटता और वह बार-बार 'जोतिक' से 'घरी' पुछवाता है। 'जोतिक' के यहाँ गया हुआ एक आदमी लौट नहीं पाता कि उतावली में कंस दूसरा और भेज देता है[२१]।

परमानंददास ने इसी प्रसंग में श्रीकृष्ण के भी एक स्वप्न की चर्चा की है। जिस दिन व्रज में अक्रूर आने को हैं उस दिन कृष्ण अपने सखाओं के साथ-साथ भाई बलराम को भी सुनाकर कहते हैं—मैंने स्वप्न में देखा है कि हम सब मथुरा गये हैं। वहाँ मैंने कंस को मारकर रंगभूमि में डाल दिया है। पश्चात्, मैं अपने कुल के लोगों से मिलता हूँ[२२]।

ल. *भावी गति-विधि निर्देशक स्वप्न*—कभी-कभी ऐसे स्वप्न भी दिखायी दे जाते हैं जिनमें भावी गति विधि-संबंधी निर्देश रहता है। सामान्य व्यक्ति चाहे

कहा सोच ऐसौ परयौ, ऐसौ पुहुमी कौ।
काकी सुधि मन मैं रही, कहियै अप जी कौ।
रानी सब ब्याकुल भईं, कछु भेद न पावैं।
तब आपुन सहजहिं कह्यौ, वह नहीं जनावैं।
सावधान करि पौरिया, प्रतिहार जगायौ।
सूर त्रास बल-स्याम कैं, नहिं पलक लगायौ—सा० २६३४।

२१. एक जाम नृप कौं निसि, जुग तैं भइ भारी।
आपुन हूँ जाग्यौ, सँग जागीं सब नारी।
'कबहुँ उठत, बैठत पुनि, कबहुँ सेज सोवै'।
'कबहुँ अजिर ठाढ़ो ह्वै, ऐसैं निसि खोवै'।
बार-बार 'जोतिक' सौं, निसि-घरी बुझावै।
एक जाइ पहुँचै नहीं, अरु एक पठावै—सा० २६३७।

२२. अपने हाथ कंस मैं मारौ।
हँसि गोपाल कहत ग्वालन सौं रंगभूमि में डारयौ।
अहो बलराम अहो श्रीदामा 'आज रात कौ सपनौ'।
हम तुम सबनि गये मधुपुरी मिल्यौ जाति कुल अपनौ—परमा० ४७८।

ऐसे स्वप्नों पर विश्वास न करे, परंतु धर्म-भीरु हिन्दू-समाज उनकी सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सकता; विशेषकर उस समय जब स्वप्न में कोई देवता कार्य-विशेष का संपादन करने का आदेश दे। धर्म-प्राण जनता ऐसे आदेश का उल्लंघन करने का कभी साहस नहीं करती; क्योंकि वैसा करने पर उसे अनिष्ट होने की आशंका होती है। इंद्र की पूजा के अवसर पर सात वर्षीय कृष्ण जब स्वप्न में एक 'अवतारी पुरुष' के दर्शन होने और गिरि गोवर्द्धन की पूजा का उसके द्वारा आदेश मिलने की बात कहते हैं[२३] तब पहले तो कोई सुखी होकर उनकी बात मानने को कहता है और कोई इंद्र के भय से डरता है;[२४] अंत में सब गोवर्द्धन-पूजा के लिए सहमत हो जाते हैं।

व. *अन्य स्वप्न*—अष्टछाप-काव्य में वर्णित उक्त स्वप्न सामान्यतया ऐसे अवसर पर दिखायी देते हैं जब पात्रों को तत्संबंधी घटनाओं की सूचना नहीं है। इनसे भिन्न वर्ग में उन गोपियों के स्वप्न आते हैं जो विरहिणी होने के कारण प्रति-पल प्रियतम के ध्यान में लीन रहती हैं। प्रथम तीनों वर्गों के स्वप्न अष्टछापी कवियों ने सत्य होते दिखाये हैं; क्योंकि वे अकस्मात् दिखायी दिये हैं; परंतु गोपियों के स्वप्न उस प्रियतम से संबंध रखते हैं जिसका ध्यान वे कभी छोड़ती ही नहीं। अतएव इनके स्वप्नों की सत्यता-असत्यता के संबंध में अष्टछापी कवि प्रायः मौन रहे हैं। विरह की व्यथा के कारण पहले तो गोपियों को नींद ही नहीं आती कि स्वप्न दिखायी दें, पर यदि कभी जरा देर को उनकी आँख लगती है और उन्हें स्वप्न दिखायी देता है तो बीच ही में उनकी नींद टूट जाती है[२५]। कभी-कभी वे स्वप्न में प्रियतम के संयोग सुख का अनुभव भी करती हैं, परंतु उसी समय आँख खुल

२३. और महर-ढिग स्याम बैठि कै, कीन्हौ एक बिचार बनाई।
'सुपनैं आजु मिल्यौ मोकौं, इक बड़ौ पुरुष अवतार जनाई'।
कहन लग्यौ मोसौं ये बातैं, पूजत हौं तुम काहि मनाई।
गिरि गोबर्धन देवनि कौ मनि, सेवहु ताकौं भोग चढ़ाई—सा० ८१६।

२४. कोउ-कोउ कहत करौ अब ऐसेहिं, कोउ यह कहत कहै को माई।
सूरदास कोउ सुनि सुख पावत, कोउ बरजत सुरपतिहिं डराई—सा० ८२०।

२५. 'सोवत मैं सुपनैं सुनि सजनी, ज्यौं निधनी निधि पाई'।
गनतहिं आनि अचानक कोकिल, उपवन बोलि जगाई—सा० ३२५६।

जाने से उनकी 'हिलकी' रोके नहीं रुकती[२६]। पश्चात्, उनकी आँख फिर लगती नहीं और स्वप्न के संयोग-सुख से भी वे वंचित हो जाती हैं[२७]।

२. *शपथ पर विश्वास*—सभी देशों के निवासी यह विश्वास करते हैं कि जो बात 'शपथ' खाकर कही जायगी अथवा जिसके करने के लिए 'शपथ' खिला दी जायगी, सामान्यतया व्यक्ति उसका निर्वाह अवश्य करेगा। 'शपथ' के प्रति विश्वास का यह भाव वातावरण अथवा संस्कार के प्रभाव से बाल्यावस्था से ही अंकुरित हो जाता है। इसका एक बहुत रोचक उदाहरण अष्टछाप-काव्य में मिलता है; बालक कृष्ण माता से गाय चराने जाने की आज्ञा चाहता है; परंतु उसे भय है कि जमुना में मैं कहीं स्नान न करूँ, इस भय से माता मुझे जाने से रोक सकती है। अतएव वह पहले ही कह देता है कि तू मुझसे 'सौंह' या 'शपथ' ले ले, मैं जमुना में स्नान नहीं करूँगा[२८]।

'शपथ' या 'सौंह' का दूसरा उदाहरण 'दान-लीला-प्रसंग' में मिलता है। श्रीकृष्ण जब गोपियों को उनसे 'दान' लेने के लिए रोकते हैं और मुँह फेरकर भौंह 'मोरते' हैं तब गोपियाँ उनको नंद की, गोधन की, यशोदा की और बलदाऊ की 'सौंह' दिलाकर पूछती हैं कि 'भौंह सकोरने' का कारण सच-सच बता दो[२९]। उनके 'सौंह' दिलाने के मूल में भी यही विश्वास है कि अब कृष्ण झूठ नहीं बोलेंगे। कृष्ण ने हँसकर गोपियों की बात उड़ाते हुए श्रीदामा से कहा—जरा तुम्हीं इन्हें

२६. 'सुपनैं हरि आए हौं किलकी'।
नींद जु सौति भई रिपु हमकौं, सहि न सकी रति तिल की।
जौ जागौं तौ कोऊ नाहीं, 'रोके रहति न हिलकीं'—सा० ३२६१।

२७. बहुरौ भूलि न आँखि लगी।
'सुपनैंहू के सुख न सहि सकी, नींद जगाइ भगी'—सा० ३२६५।

२८. सूरदास है साखि जमुन-जल 'सौंह देहु जु नहैहौं'—सा० ४१२।

२९. कहा हँसत मोरत हौ भौंह।
सोई कहौ मनहिं जो आई, तुमहिं 'नंद की सौंह'।
और 'सौंह तुमकौं गोधन की, सौंह माइ जसुमति की'।
'सौंह तुमहिं बलदाऊ की है', कहौ बात वा मति की।
बार-बार तुम भौंह सकोरयौ, कहा आपु हँसि रीझे।
सूर स्याम हम पर सुख पायौ, की मनहीं मन खीझे—सा० १५७१।

समझाओ कि क्या ऐसी बातों में 'सौंह दिलाना' चाहिए[३०]। तब श्रीदामा ने गोपियों से समझाया—हँसी को ऐसी बातों में 'सौंह' नहीं दिलायी जाती। तुम सब भी परस्पर हँसी कर रहो हो, लेकिन हम तो तुम्हें 'सौंह' नहीं दिला रहे हैं[३१]। वास्तव में 'शपथ' खाना या खिलाना बहुत अच्छी बात नहीं समझी जाती; इसी से गुप्त जी ने उसे 'दुर्बलता का चिह्न' कहा है[३२]। श्रीदामा भी 'नान्हे' लोगों को ही 'सौंह' दिलाने के योग्य समझता है, श्रीकृष्ण-जैसे प्रभु को नहीं[३३]।

'शपथ' का तीसरा उदाहरण 'परमानंदसागर' में मिलता है। परमानंददास की चंद्रावली के पास 'हरि के उर का गजमोती' देखकर जब सखी उससे पूछती है कि यह तुझे कहाँ मिला, तब उसका उत्तर है—मुझे यह 'दधि के पलटे' में श्रीकृष्ण से मिला है; यदि तुझे इस पर विश्वास न हो तो 'सपथ' देकर उनसे पूछ ले[३४]। चंद्रावली का यह कथन भी सूचित करता है कि 'शपथ खा लेने' या 'खिला दिये जाने' पर कोई झूठ नहीं बोल सकता।

३. शाप या कोसने में विश्वास—मानवीय स्वभाव के अनुसार, जिस व्यक्ति से हमें कष्ट मिलता है, उसके प्रति शालीनतावश अपशब्द का प्रयोग हम भले ही न करें, फिर भी उसके लिए हृदय में 'शाप' देने-जैसी भावना अवश्य जाग्रत होती है

३०. हँसत सखनि सौं कहत कन्हाई।
मैया की बाबा की दाऊ जू की 'सौंह' दिवाई।
× × × ×
'ऐसी बातनि सौंह दिवावति', अधिक हँसी मोहिं आवति।
सूर स्याम कहैं श्रीदामा सौं तुम काहैं न समुझावत—सा० १५७२।

३१. श्रीदामा गोपिनि समुझावत।
हँसत स्याम के तुम कह जान्यौ, काहैं 'सौंह दिवावत'।
तुमहुँ हँसौ आपनै सँग मिलि, हम नहिं 'सौंह दिवावत'—सा० १५७३।

३२. 'दुर्बलता का ही चिन्ह-विशेष शपथ है—'साकेत', अष्टम-सर्ग, पृ० १७८।

३३. 'नान्हे लोगनि सौंह दिवावहु', ये दानी प्रभु सबके—सा० १५७३।

३४. यह हरि के उर को गजमोती।
चंद्रावली, कहाँ तैं पायौ, दूरि करत दिनमनि की जोती।
.... ।
.... मैं दधि कै पलटै है पायौ।
'जौ न पत्याहु तौ सपथ दै बूझहु', परमानंद ता दिन सँग आयौ—परमा० ४११।

जिसको प्रचलित भाषा में 'कोसना' कहते हैं। यद्यपि सभी जानते हैं कि हमारे 'शाप' या 'कोसने' में अन्यायी, अत्याचारी या पीड़क का प्रत्यक्ष या तत्काल अनिष्ट करने की सामर्थ्य नहीं होती, फिर भी कष्ट देनेवाले को 'कोसकर' जनसाधारण को एक प्रकार का संतोष होता ही देखा गया है। 'शाप' देने या 'कोसने' की बात वस्तुतः तब अधिक सामने आती है जब पीड़ित जन असहाय या असमर्थ होता है। कारण यह है कि यदि उसमें अत्याचारी का सामना करने की सामर्थ्य हो तब तो ईंट का जवाब पत्थर से देकर वह अपना बदला सहज ही ले सकता है। अष्टछाप-काव्य में इसके भी दो-एक उदाहरण मिलते हैं। सूरदास के वसुदेव-देवकी बंदीगृह में जब कंस द्वारा मरवाये गये सात पुत्रों का, और चोरी से भगाकर बचाये गये आठवें पुत्र कृष्ण का स्मरण करते हैं, तब उस नृशंस से बदला लेने में सर्वथा असमर्थ होने के कारण उसको कोसते हुए वे कहते हैं कि वह मर जाय, विधाता उसको 'निरबंस' करे और किसी भी तरह उसका जड़-मूल से नाश हो जाय[३५]।

कभी-कभी व्यक्ति को अनेक कारणों से ऐसे कार्य करने पड़ते हैं जिनसे यद्यपि उसकी प्रत्यक्ष हानि नहीं होती, परंतु हृदय से वह जिनको सर्वथा अनुचित समझता है। ऐसी स्थिति में भी अपनी परवशता के कारण वह आज्ञा देनेवाले को मन ही मन 'कोसने' लगता है। सूरदास के अक्रूर की स्थिति ऐसी ही है। कंस, अक्रूर को बलराम और श्रीकृष्ण को वृन्दावन जाकर मथुरा लिवा लाने की जो आज्ञा देता है, उसे अनुचित समझ कर वे भी उस हत्यारे के 'निर्वंश' होने की बात कहकर मन ही कोसते हैं[३६]।

अत्याचारी और अन्यायीजन कभी-कभी ऐसे अनुचित कार्य करते हैं जिनसे हमारी तो प्रत्यक्ष हानि नहीं होती, फिर भी जिन्हें हम बहुत बुरा समझते हैं। ऐसी स्थिति में हमारी सहानुभूति पीड़ित के साथ होती है और हम शक्ति भर उसकी रक्षा या सहायता करना चाहते हैं। परंतु यदि अपनी शक्ति या साधन-हीनता और परवशता के कारण हम वैसा करने में असमर्थ होते हैं, तब खीझकर अत्याचारी को कोसने लगते हैं। यही स्थिति मथुरा में बसनेवाली, सूरदास की वात्सल्यमयी

३५. 'मरै वह कंस, निरबंस बिधना करै', सूर क्यौंहू होइ वह निमूल्यौ—सा० ३०८९।

३६. सुफलक-सुत मन परयौ बिचार। 'कंस निर्बंस होइ हत्यार'—सा० २९४३।

उन नारियों की है जो अत्याचारी कंस के द्वारा बुलाये गये बलराम और कृष्ण को उसकी राजसभा की ओर जाते देखती हैं। नृपति कंस का विरोध करने की सामर्थ्य तो उनमें है नहीं, अतएव मोहन रूपधारी बालकों पर क्रोध करनेवाले कंस को 'निबंस' होने का शाप देकर और इस प्रकार उसे 'कोसकर' ही अपनी परवशता जनित खीझ व्यक्त करती हैं[३७]।

४. *आशीर्वाद में विश्वास*—'शाप' या 'कोसने' में जिस प्रकार अत्याचारी या अन्यायी का अनिष्ट होने की कामना रहती है, उसी प्रकार किसी को 'आशीर्वाद' या 'असीस' देने के मूल में उसकी मंगल-कामना का भाव रहता है। मानव में मोह-ममता की भावना इतनी प्रबल होती है कि आत्मीयजन के लिए उसके हृदय से सदैव 'आशीर्वाद' ही निकलता है; अतएव काव्य में उसकी चर्चा अधिक महत्व की नहीं होती। इसी प्रकार जिस व्यक्ति ने हमारे प्रति किसी प्रकार का उपकार किया है उसके लिए भी जो आशीर्वचन कहे जाते हैं, वे भी कृतज्ञता-जनित होने के कारण सामान्य महत्व के ही होते हैं। सबसे अधिक महत्व के आशीर्वचन तो वे होते हैं जो किसी ऐसे व्यक्ति के प्रति कहे गये हों जिससे हमारा कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है, जिसकी हानि से हमारी हानि अथवा जिसके लाभ से हमारा लाभ नहीं है; परंतु जिसके प्रति हमारी सहानुभूति मानवता के नाते ही हो जाती है।

अष्टछाप-काव्य में इसका एक बहुत सुंदर उदाहरण मथुरा की उन नारियों के आशीर्वचनों में मिलता है जो उन्होंने रूप-गुण-निधान बलराम और श्रीकृष्ण को, अत्याचारी कंस के बुलाने पर उसके दरबार की ओर जाता देखकर, वात्सल्य-भाव से प्रेरित होकर कहे हैं। कंस से दोनों बालकों को बचाना तो उन नारियों के हाथ की बात नहीं है, अतएव दोनों भाइयों का नाम ले-लेकर कोई तो बिधाता से उनकी कल्याण-कामना के लिए प्रार्थना करती और अशीर्वाद देती है कि दोनों सकुशल घर

३७. रथ पर देखि हरि-बलराम।
निरखि कोमल-चारु मूरति, हृदय मुक्तादाम।

× × ×

'कंस कौ निरबंस ह्वैहै', करत इन पर ताम—सा० ३०२६।

पहुँचे,[३८] कोई उन्हें जीवित रहने की 'असीस' देती है[३९] और कोई उनकी जीत मनाती है[४०]।

ग. *कवि-प्रसिद्धियाँ*—कवि-वर्ग में कुछ विश्वास परंपरा से प्रचलित रहते हैं जिनकी सत्यता की परख करने की आवश्यकता लोग नहीं समझते और जिनका प्रयोग निसंकोच किया करते हैं; यहाँ तक कि कुछ असंगत बातों का वर्णन भी कवि-वर्ग में असमीचीन नहीं माना जाता। इसका कारण बताते हुए डा० गुलाबराय ने लिखा है—'इन विश्वासों और प्रसिद्धियों का आधार चाहे प्राकृतिक सत्य न हो, परंतु उनके संबंध में सारा सहृदय समाज एकमत रहता है और एक परंपरागत बिना लिखा-पढ़ी का समझौता-सा बन जाता है कि कम से कम कविता में इन बातों का इसी प्रकार से वर्णन किया जाय'[४१]। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार भी 'कवि-समय' के अंतर्गत लोक और शास्त्र-विरोधी वे ही बातें आती हैं जिन्हें प्राचीन काल के पंडित सहस्र-शाख वेदों का अवगाहन करके, शास्त्रों का अवबोध करके, देशांतर और द्वीपांतर का परिभ्रमण करके निश्चित कर गये हैं। देश-कालवश उनका यदि व्यतिक्रम हो भी गया हो तो उन्हें अस्वीकार नहीं करना चाहिए;[४२] अस्तु। अष्टछाप-काव्य में जिन कवि-प्रसिद्धियों का वर्णन हुआ है, वे, मुख्य रूप से, पशु, पक्षी, कीट-पतंग, पुष्प और नक्षत्र से संबंधित हैं।

१. *पशुओं से संबंधित कवि-प्रसिद्धियाँ*—हाथी के मस्तक से एक प्रकार का मोती या मणि निकलना कवियों में प्रसिद्ध रहा है। गो० तुलसीदास ने 'गजमनि' या 'गजमुकुता' की चर्चा अपने काव्य में अनेक स्थलों पर की है[४३]। अष्टछाप-काव्य

३८. जननि कैसैं धरयौ धीरज, कहति सब पुर-बाम।
बोलि पठयौ कंस इनकौं, करै धौं कह काम।
जोरि कर 'बिधि सौं मनावति, आसिस दै दै नाम'—सा० ३०२६।

३९. सूर 'असीस देतिं सब सुंदरि, जीवहिं अपनी माँ के प्यारे री'—सा० ३०३१।

४०. 'होवे जीति बिधाता इनकी', करहु सहाइ सबारे।
सूरदास 'चिर जियहु दुष्ट दलि, दोऊ नंद-दुलारे'—सा० ३०३२।

४१. श्री गुलाबराय का 'पोद्दार-अभिनंदन-ग्रंथ' में प्रकाशित 'कवि-समय' शीर्षक लेख, पृ० ५५३।

४२. 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', पृ० २२५।

४३.क. 'गज मनि-माल' बीच भ्राजत कहि जाति न पदिक-निकाई—'विनय-पत्रिका', ६२।

में भी कई स्थलों पर इसका उल्लेख हुआ है। सूरदास ने बालकृष्ण को 'गजमनिया' धारण किये बताया है[४४] तो परमानंददास ने 'हरि के उर का गजमोती,' जिसकी कांति 'दिनमनि' की ज्योति से बढ़कर है, चंद्रावली के पास बताया है[४५]।

२. *पक्षियों से संबंधित कवि-प्रसिद्धियाँ*—चकई-चकवे का दिन में मिलन और रात में वियोग होने,[४६] चकोर और चकोरी का एकटक चंद्रमा की ओर निहारने[४७] तथा अंगार या उसकी चिनगी चुगने,[४८] चातक या पपीहे का 'पिउ पिउ' तो वर्ष भर रटने पर प्यास केवल स्वाती नक्षत्र की बूँदों से ही बुझाने,[४९] हंस का

ख. माल सुबिसाल चहुँ पास बनि 'गजमनी'—गीता० ७-५।
ग. अरुन कंज महँ जनु जुग पाँति रुचिर 'गजमोति'—गीता० ७-२१।
घ. 'गजमुकुता' हीरा मनि चौक पुराइय हो—'रामलला नहछू' ४।

४४. पहुँची करनि, पदिक उर हरि-नख, कठुला कंठ, मंजु 'गजमनियाँ'—सा० १०-१०६।

४५. यह हरि के उर को 'गजमोती'।
चन्द्रावली, कहाँ तैं पायो दूरि करत दिनमनि की जोती—परमा० ४११।

४६.क. चकई री चलि चरन-सरोवर जहाँ न प्रेम बियोग—सा० १-३३७।
ख. संपति चकई भरतु चक मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आस्रम पींजरा राखे भा भिनुसार—'मानस०', अयोध्या०, दो० २१५।
ग. पावस-निसि अँधियार में, रह्यौ भेद नहिं आन।
राति-द्यौस जान्यो परत, लखि चकई चकवान—'बिहारी-बोधिनी', ५६८।

४७.क. ज्यों चितवत ससि ओर चकोरी देखत ही सुख मान—सा० १०-१६८।
ख. ज्यौं चकोर चंदा तन चितवत, त्यों आली निरखत गिरिवरधर—परमा० ६७५।
ग. जो चकोर चाहत उडराजैं चंदभवन हू रही जोय—परमा० ७२६।
घ. तृषित 'लोचन चकोर मेरे, तुव बदन इंदु', किरनि पान दै री—गोविं० ४७।
ङ. अधिक सनेहँ देह भै भोरी, सरद ससिहिं जनु चितव चकोरी।
—'मानस', बाल०, दो० २३२।

४८.क. पद-नख चंद चकोर बिमुख मन खात अँगारमयी—सा० १-२६६।
ख. चिनगी चुगत चकोर यों भसम होइ यह अंग।
ताहि रमावें सिव तहाँ, मिलै पीउ ससि संग—अज्ञात।

४९.क. मन चातक जल तज्यौ स्वाति-हित एक रूप ब्रत धार्यौ—सा० १-२१०।
ख. सुनि परमिति पिय प्रेम की, चातक चितवन पारि।
घन आसा सब दुख सहै, अनत न जाँचै बारि—सा० १-३२५।
ग. सखि कहै बलि इक पंछी रहै, भाषा इहै जु पिउ पिउ कहै।

मोती चुगने[५०] अर्थात्, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, निर्मल जल पीने[५१] और नीर-क्षीर-विवेकी होने,[५२] कोयल का अपने अंडे स्वयं न से कर कौए के घोसले में रख आने और उसके बच्चों का वसंत ऋतु में अपने कुल में आकर मिल जाने[५३] आदि का जो वर्णन अष्टछापी कवियों के साथ-साथ हिन्दी के अन्य कवियों ने किया है, वह 'कवि-प्रसिद्धि' के ही अंतर्गत आता है। इस प्रसंग में विस्तार से उक्त पक्षियों की चर्चा करते समय पीछे लिखा जा चुका है।

३. *कीट-पतंग संबंधी कवि-प्रसिद्धियाँ*—कीट-वर्ग में सर्प या फनिग के पास मणि होना और यह उसे अत्यंत प्रिय भी होना;[५४] तथा पतंग-वर्ग में भ्रमर

× × ×

जब कबहूँ घन स्वाति न बरसै, तौ जरि जाइ चंचु जल परसै—नंद०, रूप०,पृ० १७

घ. चातक तुलसी के मतें स्वातिहुँ पिऐ न पानि।
प्रेम-तृषा बाढ़ति भली घटें घटैगी आनि—तुलसी०, दोहा०, २७६।
सुनु रे तुलसीदास प्यास पपीहहिं प्रेम की।
परिहरि चारिउ मास जो अँचवै जल स्वाति को—तुलसी०, दोहा०, ३०६।
जाँचै बारह मास पिऐ पपीहा स्वाति जल।
जान्यो तुलसीदास जोगवत नेही नेह मन—तुलसी०, दोहा०, ३०७।

५०.क. हंस उज्जल पंख निर्मल, अंग मलि मलि न्हाहिं।
मुक्ति मुक्ता अनगिने फल, तहाँ चुनि-चुनि खाहिं—सा० १-३३८।
ख. सूरदास मुक्ताफल भोगी हंस ज्वार क्यौं चुनिहैं—सा० वें० ३०५३।
ग. की हंसा मोती चुगै की भूखे रहि जाइ—लोकोक्ति।

५१. 'रसज्ञ-रंजन', पृ० ६०।

५२. जड़ चेतन गुन दोष मय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार—'मानस'०, बाल०, दो० ६।

५३. ज्यौं कोइल-सुत काग जियावै, भाव भगति भोजन जु खवाइ।
कुहुकि कुहुकि आऐं बसंत रितु, अंत मिलै अपने कुल जाइ—सा० ३५६१।

५४.क. हम तौ सब बातनि सचु पायौ।
गोद खिलाइ पिवाइ देह पय, पुनि पालनैं झुलायौ।
देखति रहीं फनिग की मनि ज्यौं, गुरुजन ज्यौं न भुलायौ—सा० ३५३५।
ख. तुलसी मनि निज दुति फनिसि ब्याधहि देउ दिखाइ।
बिछुरत होइ न आँधरो ताते प्रेम न जाइ—तुलसी०, दोहा०, ३१५।

का चंपे के फूल के निकट न जाना[५५] आदि कवि-वर्ग में प्रसिद्ध रहा है।

४. *पुष्प-संबंधी कवि-प्रसिद्धियाँ*—यों तो अशोक, कर्णिकार या कनेर, कुंद, कुमुद, कुरवक, चंदन, चंपक, तिलक, नीलोत्पल, पद्म या कमल, प्रियंगु, भूर्ज-पत्र, मंदार, मालती आदि कई वृक्षों और पुष्पों के संबंध में कवि-प्रसिद्धियाँ हैं,[५६] तथापि अष्टछाप-काव्य में इनमें से केवल 'कमल' के संबंध की कुछ 'प्रसिद्धियों' की ही विशेष रूप से चर्चा है; यथा कमल का सूर्य के दर्शन से विकसित होना और चंद्रमा को देख कर मुँद जाना[५७] तथा भौंरे का उसमें बंदी हो जाना[५८]। कुंद के लालिमा लिये हुए फूल को अष्टछापी कवियों का श्वेत मान कर दाँत से उसकी उपमा देना भी कवि-प्रसिद्धि के अंतर्गत माना जा सकता है[५९]।

५. *नक्षत्र-सम्बन्धी कवि-प्रसिद्धियाँ*—नक्षत्रों के सम्बन्ध में दो प्रकार की प्रसिद्धियाँ अष्टछाप-काव्य में मिलती हैं। पहली में शनि का वर्ण नील, शुक्र का श्वेत, वृहस्पति का पीला और भौम का लाल माना गया है[६०]। दूसरे, स्वाति नक्षत्र में बरसे जल के सम्बन्ध में प्रसिद्धि यह है कि सर्प के मुख में पड़ने पर विष,

५५. कूरम कँमल, कंमधुज हैं कदंम फूल, गौरहे गुलाब, रानाँ केतकी बिराज है।
पाँडरि पँवार, जूही सोहत है चंद्रावत, सरस बुँदेला सो चमेली साज-बाज है।
'भूषन' भनत मुचुकुंद बड़ गूजर हैं, बघले बसंत सब कुसुम समाज है।
लेइ 'रस एतेन कौ, बैठि न सकत अहै, अलि नबरंगजेब चंपा सिवराज है'।
—शिवा-बावनी, १६।

५६. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'हिंदी साहित्य की भूमिका', पृ० २३३ से २५२।

५७.क. जैसैं कमल होत अति प्रफुलित, देखत दरसन भान—सा० १-१६६।
ख. प्रफुलित कमल, निमिष नहिं ससि-डर, गुंजत निगम सुबास—सा० १-३३७।

५८. भौंरा भोगी बन भ्रमै, मोद न मानै ताप।
सब कुसुमनि मिलि रस करै, कमल बँधावै आप—सा० १-३२५।

५६. चिबुक मध्य मेचक रुचि उपजति राजति बिंब कुंद रदनी—सा० वें०, पृ० ३१६।

६०.क. 'नील, सेत अरु पीत, लाल' मनि लटकन भाल लुनाई।
'सनि, गुरु-असुर देवगुरु' मिलि मनु 'भौम' सहित समुदाई—सा० १०-१०८।
ख. मुक्ता-बिद्रुम-नील-पीत'-मनि, लटकत लटकन भाल री।
मानौं 'सुक्र-भौम-सनि-गुरु' मिलि, ससि कैं बीच रसाल री—सा० १०-१४०।
ग. बेसरि के मुक्ता में झाईं, 'बरन बिराजत चारि'।
मानौ 'सुरगुरु, सुक्र, भौम, सनि', चमकत चंद मँझारि—सा० २११८।

कदली पर पड़ने से कपूर और सीपी में पड़ने पर मोती बन जाता है[६१]। नंददास ने इन तीन बातों में से केवल प्रथम दो का ही वर्णन किया है[८६२]।

समीक्षा—भारतीय समाज में प्रचलित जिन विश्वासों और लोक-मान्यताओं की चर्चा ऊपर की गयी है, उनमें से प्रायः सभी के प्रति आज भी उस वर्ग की आस्था बनी हुई है जो अभी तक विदेशी संस्कृतियों से किसी सीमा तक अप्रभावित रहकर अपनी ही संस्कृति का पुजारी बना हुआ है। ग्रामीण वर्ग के तो सभी स्त्री-पुरुषों में, परंतु नगर में बसनेवाले पुरुषों में कम, घर की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों में विशेष रूप से, उन विश्वासों और मान्यताओं के प्रति श्रद्धा-भावना देखी जाती है। गीति काव्य में यद्यपि ऐसी बातों की चर्चा के लिए बहुत कम अवकाश रहता है, तथापि उनका वर्णन करनेवाले अष्टछापी कवियों की निस्संदेह यह उल्लेखनीय विशेषता है जो वे धर्मप्राण भारतीय जनता के हृदय को समझ सके और उसके मनोभावों को अपने काव्य में इस प्रकार चित्रित कर सके। काव्य-कला-संबंधी विशेषताओं को यदि छोड़ भी दिया जाय तब भी, केवल इस विशेषता के कारण ही, जन-जीवन के सांस्कृतिक पक्ष के अध्येता के लिए अष्टछाप-काव्य का महत्व सदैव बना रहेगा और भारतीय समाज में उसकी लोकप्रियता भी दिन-दिन बढ़ती जायगी।

६१. कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाँति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन—'रहीम-रत्नावली', २२।

८६२. स्वाँति बूँद अहि-मुख विष होई, कदली दल कपूर होइ सोई—नंद०, रूप०, पृ० १।

———

६ वाणिज्य, व्यवसाय तथा जीविका के साधन-रूप

वाणिज्य, व्यवसाय तथा जीविका-साधन की चर्चा ऐसा तथ्यात्मक विषय है जिसके लिए गीतिकाव्य में बहुत कम अवकाश रहता है। फिर जो गीतिकाव्य ग्रामीण जीवन को लेकर लिखा गया हो, उसमें तत्संबंधी वर्णन की संभावना और भी नहीं रह जाती, क्योंकि व्यापार आदि का संबंध मुख्यत: नागरिक जीवन से रहता है। स्वयं सूरदास ने एक पद में कहा है कि निर्गुण-जैसी बहुमूल्य वस्तुएँ मथुरा-जैसी बड़ी नगरी में ही बिक सकती हैं, वृन्दावन-जैसे ग्राम में नहीं[1]। इन्हीं दो कारणों से अष्टछाप-काव्य में वाणिज्य, व्यवसाय और जीविका-साधनों का उल्लेख बहुत कम हुआ है। कृष्णदास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी और गोविंदस्वामी ने तो उनकी चर्चा नहीं के बराबर की है, एवं परमानंददास के काव्य में तत्संबंधी कुछ स्फुट शब्द प्रयुक्त हुए हैं। केवल सूरदास के पदों में तद्विषयक उल्लेख अधिक मिलते हैं, यद्यपि वे भी क्रमबद्ध नहीं हैं; अस्तु। अष्टछाप-काव्य में वर्णित वाणिज्य, व्यवसाय तथा जीविका के साधन-रूप-वर्णन को, अध्ययन की सुविधा के लिए, पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—१. स्थान, रीति और वस्तुएँ, २. रूप और साधन, ३. विविध व्यवसाय और व्यवसायी, ४. जीविका के विविध साधन-रूप तथा ५. अन्य वर्ग।

१. व्यापारिक स्थान, रीति और वस्तुएँ—'वाणिज्य' के लिए अष्टछाप-काव्य में 'बनिज'[2] शब्द का प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं यह शब्द 'व्यापार की वस्तु या सामान' के अर्थ में भी आया है[3]। 'वाणिज्य' के लिए अष्टछाप-काव्य में 'ब्योपार'

१. यह निर्गुन निरमोल गाठरी, अब किन करत धरी।
   यह ब्यौपार उहाँ जु समातौ, हुती बड़ी नगरी—सा० ३६६३।
२.क. और 'बनिज' मैं नाहीं लाहा, होति मूल मैं हानि—सा० १-३१०।
   ख. या बन मैं तुम 'बनिज' करति हौ, नहिं जानति मोकौं घटवारौ।
   × × ×
   सूर 'बनिज' तुम करति सदाई, लेखौ करिहौं आज तिहारौ—सा० १५२४।
   ग. प्रीति करौ मोसौं तुम काहे न, 'बनिज' करति ब्रज-गाउँ—सा० १५६६।
३.क. हँसि बृषभानु-सुता तब बोली, कहा 'बनिज' हम पास—सा० १५२५।
   ख. हींग, मिरिच, पीपरि, अजवाइनि, ये सब 'बनिज' कहावैं—सा० १५२८।

शब्द भी मिलता है[४]। व्यापार करनेवाले को[५] सूरदास ने 'व्यापारी'[६] या 'ब्यौपारी'[७] कहा है और 'व्यापार की चीज' के लिए 'गथ',[८] 'माल',[९] 'वस्तु',[१०] 'सौंज'[११] आदि शब्दों का प्रयोग किया है। 'सौदा' शब्द आज दो अर्थों में प्रयुक्त होता है—एक 'खरीदी गयी चीज' के लिए और दूसरे, खरीदने के व्यवहार के लिए। परमानंददास के एक पद में 'सौदा' शब्द पहले अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[१२] और उनके तथा सूरदास के कुछ पदों में दूसरे अर्थ में[१३]। व्यापारी का माल खरीदनेवाले को सूरदास ने 'ग्राहक' कहा है[१४]। परमानंददास के कृष्ण को भी गोपियों द्वारा राधा के गोरस का 'अमोलो गाहक' कहा गया है[१५]। व्यापारी की विक्रय के योग्य वस्तु को 'गाहक' उचित मूल्य देकर 'मोल' ले सकता है[१६]। दान-लीला-प्रसंग में सूरदास ने गोपियों का 'बनिज' मोल लेने का प्रस्ताव किया है[१७]।

ग. कौन 'बनिज' कहि मोहिं सुनावति—सा० १५२६।
४.क. यह 'ब्यौपार' उहाँ जु समातौ, हुती बड़ी नगरी—सा० ३६६३।
ख. यह 'ब्यौपार' तुम्हारौ ऊधौ, ऐसैं ही धरयौ रैहै—सा० ३६६४।
५. 'ऋग्वेद' में व्यापारी के लिए 'वणिक्' शब्द आया है—१-१२२-११।
६. बाइबिडंग, बहेरा, हरैं, बेल, गोन 'व्यापारी'—सा० १५२८।
७.क. यह मारग चौगुनौ चलाऊँ, तौ पूरौ 'ब्यौपारी'—सा० १-१४६।
ख. आयौ घोष बड़ौ 'ब्यौपारी'—सा० ३६६५।
८. कहौ कान्ह कह 'गथ' है हमसौं—सा० १५२८।
९. तुम जानति मैं हूं कछु जानत, जो-जौ 'माल' तुम्हारैं—सा० १५२६।
१०. ऊधौ, तुम ब्रज मैं पैंठ करी।
लै आए हौ नफा जानि कै सबै 'बस्तु' अकरी—सा० ३६६३।
११. करि हियाव, यह 'सौंज' लादिकै, हरि कैं पुर लै जाहि—सा० १-३१०।
१२. देखि देखि सोभा ब्रजसुंदरि 'सौदा' लेन लाल सौं आई—२६४।
१३.क. सूर स्याम कौ 'सौदा' साँचौ—सा० १-३१०।
ख. सुंदर भूषन पहिरे सुंदरि 'सौदा करन' लाल सौं आई।
सावधान ह्वै 'सौदा' कीजै............................—परमा० २६३।
१४.क. होउ मन, राम नाम कौ 'गाहक'—सा० १-३१०।
ख. सूरदास 'गाहक' नहिं कोऊ, देखियत गरे परी—सा०३६६३।
१५. गोरस राधिका लै निकरी।
नंद को लाल अमोलो 'गाहक' ब्रज से निकसत पकरी—परमा० १८५।
१६. हमैं नँदनंदन 'मोल' लिये—सा० १-१७१।
१७. सुनहु सूर कछु 'मोल' लेहिंगे, कछु इक दान भराए—सा० १५२६।

व्यापार आरंभ करने के लिए धन की आवश्यकता होती है जिसे अष्टछाप-काव्य में 'मूल'[१८] कहा गया है। इसी अर्थ में, अर्थात् व्यापारी की सारी 'जमा-जथा' के लिए सूरदास ने एक पद में 'पूँजी' शब्द का प्रयोग किया है[१९]। किसी वस्तु को खरीद कर उसके बिकने के समय तक 'मूल' धन उसमें लगाये रहने और लाने, रखने, सजाने आदि के अपने श्रम और बौद्धिक कौशल के बदले में 'ग्राहक' से जो धन 'मूल' से अधिक मिलता है, वह उसका 'नफा'[२०] अथवा 'लाहा' या 'लाभ'[२१] कहलाता है और यही व्यापारी का चरम लक्ष्य होता है। जो व्यापारी ईमानदार नहीं होता, वह अधिक लाभ के लोभ से कभी-कभी कम भी 'तोल' देता है। इसी से परमानंददास की विनोदिनी गोपियाँ, 'हटरी'-प्रसंग में, कृष्ण से पूरी 'तोल' देने की बात कहती हैं[२२]। किसी वस्तु को बेचने पर यदि व्यापारी को स्थान-विशेष में 'मूल' से कम मिलता है तब वह उसे वहाँ न बेचकर अन्यत्र ले जाता है जहाँ उसे बेचने में लाभ हो सके। व्यापारी की इसी मनोवृत्ति को लक्ष्य करके गोपियों ने ऊधव को कभी तो मधुबन के बाजार में 'जोग' बेचने की सलाह दी है[२३] और कभी 'कासी' ले जाकर;[२४] क्योंकि वहाँ अधिक 'लाहु' होने की संभावना है और व्यापारी बिना 'नफा खाये' कभी कुछ बेचने को तैयार नहीं होता। अधिक 'नफे' के लोभ से व्यापारी-

१८.क. होतौ नफा साधु की संगति, 'मूल' गाँठि नहिं टरतौ—सा० १-२९७।
ख. और बनिज मैं नाहीं लाहा, होति 'मूल' मैं हानि—सा० १-३१०।

१९. समुझि सगुन लै चले न ऊधौ, यह तुम पै सब 'पुँजी' अकेली—सा० ३७२४।

२०. लै आये हो 'नफा' जानिकै—सा० ३६२३।

२१ और बनिज मैं नाहीं 'लाहा'—सा० १-३१०।

२२. सावधान ह्वै सौदा कीजै जो दीजै तो 'तोल पुराई'—परमा० २६१।

२३. ऊधौ, बेगि मधुबन जाहु।
जोग लेहु सँभारि अपनौ, बेचियै जहँ लाहु।
× × ×
तहीं दीजै मूल पूरै, 'नफौ तुम कछु खाहु'।
जो नहीं ब्रज मैं बिकानौ, नगर नारि बिसाहु—सा० ३५१७।

२४. जोग मोट सिर बोझ आनि तुम कत धौं घोष उतारी।
इतनिक दूरि 'जाहु चलि कासी, जहाँ बिकति है प्यारी'—सा० ३६२६।
विशेष—इस उदाहरण में प्रयुक्त 'प्यारी' शब्द पंजाबी भाषा का है जिसका अर्थ है 'महँगी'—लेखिका।

वर्ग कभी कभी 'अकरी' चीजें ले आते हैं जिससे ग्राहकों को खीझ होती है और साधारण लोग उसे खरीदने का साहस नहीं कर पाते जिससे वह 'अकरी' वस्तु बिना बिकी ही रह जाती है। व्यापारियों की इस चाल के संबंध में संकेत करते हुए गोपियों ने ऊधव की 'निर्गुन निरमोल गाठरी' के संबंध में कहा है कि ऐसी 'अकरी' वस्तु का यहाँ कोई 'गाहक' नहीं है; इसे तो मथुरा-जैसी 'बड़ी नगरी' में ले जाकर बेचो[२५]।

इसी प्रकार व्यापारी वर्ग कभी-कभी अधिक लाभ के लोभ से सामान्य वस्तु का भी अधिक मूल्य चाहते हैं। यदि वह वस्तु जीवन के लिए उपयोगी है तब तो ग्राहक अधिक मूल्य देकर भी उसे खरीदने को विवश होता है, परंतु यदि उसके बिना काम चल सकता है तो ग्राहक को वह चीज बहुत महँगी मालूम होती है और व्यापारी का 'माल' बिना बिके रह जाता है। सूरदास के एक पद में व्यापार की इस स्थिति की ओर भी संकेत किया गया है। ऊधव 'जोग ठगौरी' बेचने के लिए व्रज आये हैं जिसकी आवश्यकता गोपियों को है नहीं; अत: वे कहती हैं कि तुम्हारी 'जोग ठगौरी' तो मूली के पत्तों-जैसी है जिसके लिए 'मुक्ताहल' देने की मूर्खता कौन दिखायेगा ? अतएव तुम्हारा 'व्यापार' इस गाँव में नहीं चलेगा; यह तो जहाँ से लाये हो वहीं किसी के पेट में समा सकता है[२६]। यदि व्यापारी को किसी वस्तु का मूल्य 'मूल' से कम मिले तो उसकी 'हानि' होती है जिसका अर्थ है कि व्यापार में 'लाभ' तो हुआ नहीं, उल्टे 'गाँठ' का धन ही उसमें गया[२७] और 'हानि' उठाना अपने कार्य में व्यापारी के अयोग्य होने का प्रमाण है।

२५. ऊधौ, तुम ब्रज में पैंठ करी।
लै आए हौ 'नफा जानि कै, सबै बस्तु अकरी'।
× × ×
यह निर्गुन निरमोल गाठरी, अब किन करत धरी।
यह ब्यौपार उहाँ जु समातौ, हुती बड़ी नगरी।
सूरदास 'गाहक नहिं कोऊ, देखियत गरे परी'—सा० ३६६३।

२६. जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
'मूरी के पातनि के बदलैं, को मुक्ताहल दैहै'।
यह ब्यौपार तुम्हारौ ऊधौ, ऐसैं ही धरयौ रैहै।
'जिनपै तैं लै आए ऊधौ, तिनहिं के पेट समैहै'—सा० ३६६४।

२७.क. होतो नफा साधु की संगति 'मूल गाँठि नहिं टरतौ'—सा० १-२६७।

नगर में बड़े व्यापारी बाजार में दूकान सजाकर बैठते हैं। अयोध्या के ऐसे व्यापारियों, यथा 'बजाज, सराफ तथा बनिक', का वर्णन 'मानस' में मिलता है जिनको कुबेर के समान बताया गया है[२८]। बड़े बाजारों के ऐसे व्यापारियों के 'दलाल' भी घूमा करते हैं जो ग्राहकों को पटाकर उन्हीं दूकानदारों के पास ले जाते हैं जिनसे बिक्री से प्राप्त लाभ का कुछ अंश मिलने की बात तय रहती है। 'दलाल' को मिला हुआ यह धन 'दलाली' कहलाता है जिसका उल्लेख सूरदास के एक पद में हुआ है[२९]। अष्टछाप-काव्य में अयोध्या, मथुरा या द्वारका-जैसे बड़े नगरों के वर्णन की ओर कवियों का ध्यान न होने से ऐसे बाजार या व्यापारियों की चर्चा नहीं है। उसमें तो उन व्यापारियों की चर्चा है जो बैल,[३०] हाथी[३१] या अन्य किसी पशु पर माल लाद कर[३२] एक स्थान से दूसरे को जाया करते थे[३३]। जिस व्यापारी के पास जितने पशु हों, उन सबको एक बार माल से लादकर ले जाने को आज भी 'खेप' कहते हैं जिसका प्रयोग अष्टछापी कवियों में केवल सूरदास ने एक पद में किया है[३४]।

ऐसे व्यापारियों के पास सामान्यतया सुदूर प्रदेशों से आनेवाली वस्तुएँ ही रहती थीं। ये लोग जब 'घाट'-विशेष पर नदी पार करते थे तो इनको 'दान' अर्थात 'कर' या 'चुंगी' देनी पड़ती थी जिसको लेकर अष्टछापी कवियों ने

ख. और बनिज मैं नाही लाहा, 'होति मूल मैं हानि'—सा० १-३१०।

२८. बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।
जहँ भूप रमा निवास तहँ की संपदा किमि गाइए।
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते—'मानस', उत्तर०, २८।

२९. काम-क्रोध-मद-लोभ मोह तू सकल 'दलाली' देहि—सा० १-३१०।

३०. 'बैल' गोन ब्यापारी—सा० १५२८।

३१. तुम्हरौ 'गथ लाद्यौ गयंद पर'—सा० १५२९।

३२. करि हियाव यह 'सौंज लादि कै'—सा० १-३१०।

३३. व्यापारी के १० पथों की चर्चा पाणिनि ने की है—वारिपथ, स्थलपथ, करिपथ, अजपथ, शंकुपथ, राजपथ, सिंहपथ, हंसपथ और देवपथ (पिछले दो का संबंध वायुमार्ग से है)—'पाणिनिकालीन भारतवर्ष', पृ० २३५।

३४. आयौ घोष बड़ौ ब्यौपारी।
'खेप' लादि गुरु ग्यान जोग की, ब्रज में आन उतारी—सा० ३९६५।

'दान-लीला' का वर्णन किया है। 'दान' लेने का अधिकार शासन की ओर से मिलता था अर्थात् 'दानी' की नियुक्ति शासक की ओर से होती थी। सूरदास के कृष्ण ऐसे अधिकार को शासक की ओर से 'बीरा' दिया जाना कहते हैं और 'दान' आदि न लेने पर शासक की 'गारी' खाने की भी बात उन्होंने कही है[३५]। श्रीकृष्ण की इतनी बात से गोपियाँ समझती हैं कि उनका संकेत कंस नृपति की ओर ही हो सकता है[३६] जिससे 'दानी' की नियुक्ति शासक द्वारा ही होने की बात की पुष्टि होती है। गोविंदस्वामी की गोपी दान माँगने पर कृष्ण से पूछती है—तुम स्वयं ही 'दान' ले रहे हो या यह अधिकार किसी ने तुम्हें लिखकर दिया है[३७] ? उनके एक अन्य पद से जान पड़ता है कि दूध आदि उन वस्तुओं पर 'दान' नहीं लिया जाता था, जो 'खिरक' से दुहाकर लोग अपने-अपने 'भुवन' ले जाते थे; प्रत्युत लौंग-सुपारी-जैसी उन वस्तुओं पर 'दान' लेने का नियम था जो दूसरे स्थानों से व्यापार के लिए लायी जाती थीं[३८]। उनके कृष्ण जब खिरक से दुहाकर लाये गये

३५. तुम घर जाहु दान को दैहै।
'जिहिं बीरा दै मोहिं पठायौ', सो मोसौं कह लैहै।
तुम घर जाइ बैठि सुख करिहौ, 'नृप गारी को खैहै'।
अबहीं बोलि पठावैगो री, ता सनमुख को जैहै—सा० १५७५।

३६. कौन नृपति (पुनि) जाके तुम हौ।
ताकौ नाउँ सुनावहु हमकौं, यह सुनिकै अति पावति मौं।
इहिं संसार भुवन चौदह भरि 'कंसहिं तैं नहिं दूजौ औ'।
सो नृप कहाँ रहत सुनि पावैं, तब ताही कौं मानैं जौ।
कहा नाउँ, किहिं गाउँ बसत है, ताही के ह्वै रहियै तौ—सा० १५७८।

३७. 'आपुही लेत किधौं काहू लिखि दीनो' समुझायौ भौं तैसें—गोविं० २६।

३८.क. 'खिरक दुहाइ गोरस लिए जात अपने अपने भुवन जाकौं',
'दान माँगत जैसें काहू लादी हैं लौंग सुपारी'—गोविं० २५।
ख. गोरस लियें जाति री आपने भवन तापर इन बैठानी आन की आन—गोविं० २८।
ग. कहो जू दान लेहौ कैसौं।
'दूध दही गोरस कौ दान कबहुँ न सुन्यौ कान'।
अब मानों लौंग लादी काहू जैसें—गोविं० २६।
घ. खरिक दुहाए गोरस लिए जात अपने अपने भुवन।
जाको दान माँगत कहौंऽब कही उन सैयाँ—गोविं० ३४।

गोरस पर 'दान' माँगते हैं तब गोपियाँ खीझकर उन्हे 'अनोखे नए दानी' कहती हैं[३९]। एक अन्य पद में 'दूध-दही' पर 'दान' माँगने की बात को गोविंदस्वामी की गोपियाँ नयी चाल बताती हैं[४०] और संभवत: इसी कारण परमानंददास की गोपियाँ कृष्ण को 'अनोखे-दानी'[४१] और गोविंदस्वामी की 'अचगरौ दानी'[४२] कहती हैं। सामान्यतया घाट पर ही 'दान' लेने का नियम था जिसकी पुष्टि गोविंद-स्वामी के कृष्ण द्वारा चंद्रावली को घाट पर ही 'दान' वसूलने के लिए रोक लेने से होती है[४३]। यही नहीं, इसी कारण सूरदास के कृष्ण अपने को 'घटवारौ'[४४] और चतुर्भुजदास की गोपियाँ उनको 'गिरिघटिया' कहती हैं[४५]। 'दान' या 'चुंगी' आदि से बचने की मनोवृत्ति सदा से व्यापारी-वर्ग में रही है। कुंभनदास के 'गोबर्धनधारी', 'गुजरेटी' को चोरी से गोरस बेचनेवाली कहते हैं[४६]। गोविंदस्वामी के कृष्ण गोपियों से 'दान मार लेने' का उलाहना देते[४७] हुए कहते हैं कि आज दिन-दिन का 'दान' वसूल कर लूँगा[४८]। 'दानी' का कार्य 'कर', 'जगात' या 'जकात' वसूल करने का होता है। इसलिए सूरदास की गोपियों ने एक पद में उन्हे 'जगाती' भी कहा है[४९]।

३९. गोविंद प्रभु आए 'अनोखे नए दानी'—गोविं० २५।
४०. दूध दही कौ दान कबहु न सुन्यौ कान।
तुम 'यह नई चाल चलाई'—गोविं० ३६।
४१.क. यह गोरस लै रे 'अनोखे दानी'—परमा० १७५।
ख. 'अनोखे दानी' अबही भये हौ मारग रोकत आन—परमा० १६०।
४२. सखी हो, कान्ह 'अचगरौ दानी'—गोविं० ४३।
४३. 'जमुना घाट रोकी' हो रसिक चंद्रावलि—गोविं० ३६।
४४. माखन दधि कह करौं तुम्हारौ।
या बन मैं तुम बनिज करति हौं, नहिं जानति मोकौं 'घटवारौ'—सा० १५२४।
४५. 'गिरिघटिया' उठि भोर ही मारग रोकत आइ—चतु० २६।
४६. हमारो दान दै गुजरेटी !
'नित तू चोरी बेचति' गोरस आजु अचानक भेंटी—कुंभन० ११।
४७. 'दिन दिन दान मारि गई जु हमारो' तब कबहुँ पाले नहि परिया—गोविं० २६।
४८. गुजरिया बावरी भई केउ बेर गई दान मारि।
आजु गहन पाई नंद की सौं 'लैहौं दिन-दिन को निरुवारि'—गोविं० २७।
४९. सूर 'स्याम अब भए जगाती'—सा० १५०८।

माल लादकर लानेवाले व्यापारी गोकुल, वृन्दावन-जैसे गाँवों में 'पैठ करते'[५०] या दूकान लगाते थे और मथुरा, काशी-जैसे नगरों में भी माल बेचने ले जाते थे जैसा कि गोपियों द्वारा ऊधव को व्यापारिक 'सौंज' 'हरिपुर' अर्थात् मथुरा'[५१] और 'जोग मोट' काशी[५२] ले जाकर बेचने की सलाह से स्पष्ट होता है। जो व्यापारी एक स्थान से दूसरे और दूसरे से तीसरे स्थान पर जाकर माल बेचा करते हैं, कभी-कभी उनको मार्ग में लुट जाने का डर भी बना रहता है जिसकी ओर सूरदास के एक पद में संकेत किया गया है[५३]।

जिस स्थान पर व्यापारी बैठते हैं और ग्राहक क्रय-विक्रय के लिए पहुँचते हैं, उसे 'हाट' या 'पैंठ' कहा जाता है। जायसी के 'पद्मावत' में सिंघल के 'हाट' का[५४] और गोस्वामी तुलसीदास के 'मानस' में लंका के 'हट्ट' का[५५] उल्लेख हुआ है[५६]। अष्टछाप-काव्य में भी 'हाट'-विशेष में बड़े व्यापारी के समान स्थिरता से बैठकर नग-विशेष बेचे जाने की बात कही गयी है[५७]। परमानंददास के एक पद में 'बाजार' शब्द भी मिलता है जहाँ राम-जन्म के अवसर पर आनंदमंगल गानेवाली 'सखियों' को पहनाने के लिए राजा दशरथ 'सारी' खरीदने पधारते हैं[५८]।

थोड़ी पूँजी वाले छोटे व्यापारी, जिनके पास दूकान लगाने के साधन नहीं

५०. ऊधौ, तुम ब्रज मैं 'पैंठ करी'—सा० ३६६३।

५१. करि हियाव यह सौंज लादि कै 'हरि कै पुर लै जाहिं'—सा० १-३१०।

५२. जोग मोट सिर बोझ आनि तुम कत धौं घोष उतारी।
इतनिक दूरि जाहु 'चलि कासी', जहाँ बिकत है प्यारी—सा० ३९२९।

५३. 'घाट बाट कहूँ अटक होइ नहिं', सब कोउ देहि निबाहि—सा० १-३१०।

५४. पुनि देखिय 'सिंघल कै हाटा'—पदमा०, संजी० व्या०, ३७-१-१।

५५. चउहट्ट 'हट्ट' सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना।
—'मानस'०, सुंदर० ३, छंद १।

५६. 'पृथ्वीचंद्र-चरित्र', पृ० १२९, के अनुसार मध्यकालीन नगरों में चौरासी हाटों का वर्णन हुआ है—'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि', पृ० २३८।

५७. भक्तनि 'हाट बैठि स्थिर ह्वै' हरि-नग निर्मल लेहि—सा० १-३१०।

५८. गृह-गृह तैं सब सखी बुलाईं आनँद मंगल गायो।
दसरथ उठि 'बाजार पधारे' सारी सुरँग बसायो।
× × ×
जो जाके जैसौ मन भायो तैसौ ताहि पहरायो—परमा० ३३७।

होते, दैनिक उपयोग की वस्तुएँ लादकर 'फेरी' लगाते हैं। अष्टछाप-काव्य में यह शब्द इसी रूप में तो प्रयुक्त नहीं हुआ है, परंतु 'फेरी' लगाकर वस्तुएँ बेचने की बात अनेक पदों में कही गयी है। सूरदास की यशोदा किसी 'फेरी' करनेवाले से कृष्ण के लिए 'भौंरा-चक-डोरी' खरीद कर रखती हैं[५९]। इसी प्रकार परमानंद-दास ने 'बेर' और 'आम' बेचनेवालियों के साथ[६०] काछिन के भी 'फेरी' लगाकर माल बेचने का वर्णन किया है[६१]। सूरदास के एक पद में 'जोग-मोट' को 'बोझ' भी कहा गया है जिसे ऊधव सर पर लादकर ब्रज में ला उतारते हैं[६२]। ब्रज की ग्वालिनें तो दूध, दही, माखन और घृत के माट या मटुकी सर पर उठाकर बेचने के लिए नित्यप्रति ही मथुरा जाती हैं;[६३] क्योंकि वे जानतीं हैं कि 'गोरस' लोग

५९. दै मैया भौंरा चक डोरी।
जाइ लेहु आरे पर राख्यौ, 'काल्हि मोल लै राखे' कोरी—सा० ६६६।

६०.क. कोउ माइ, 'आँम बेचन आई'।
टेर सुनत मोहन उठि दौरे भीतर भवन बुलाई।
मैया, मोहि आम लै दे री संग सखा बल भाई—परमा० ६७३।

ख. कोउ माई, 'बेर बेचन आई'।
सुनी टेर नँद रावल में भीतर भवन बुलाई—परमा० ६७४।

६१. ब्रज में 'काछिनि बेचन आई'।
आन उतारी नंद गृह आँगन ड्योढ़ी फलन सुहाई—परमा० ६७२।

६२. 'जोग मोट' सिर बोझ आनि तुम, कत धौं घोष उतारी—सा० ३६२६।

६३.क. ब्रज जुवती मिलि करतिं बिचार।
'चलौ आजु प्रातहिं दधि बेंचन', नित तुम करतिं अबार—सा० १४९७।

ख. 'बेंचन चलीं दधि' ब्रजनारि।
सीस ब्रज के गईं ग्वैंड़े, हरष भईं सुकुमारि—सा० १४९९।

ग. जाइ सबै कंसहि गुहरावहु।
'दधि माखन घृत लेत छुड़ाए', आजु हजूर बुलावहु—सा० १५१३।

घ. 'गोरस बेचन जात मधुपुरी' आय अचानक बन में घेरी—परमा० १७६।

ङ. गोकुल की ब्रज-नारि 'दह्यो नित बेचन आवैं'—कुंभन० २३।

च. सवारें ह्याँ ई आइहौं।
× × ×
होति अबार चत्रुभुज प्रभु मोहि बहुरि घोष कब जाइहौं—चतु० २१।

प्रायःकाल ही खरीदते हैं[६४]। 'फेरी' लगानेवाला अपना माल तब तक सर पर लिये घर घर डोलता है, जब तक वह उचित मूल्य पर बिक नहीं जाता[६५]।

व्यापारी अपनी वस्तु अधिक से अधिक मूल्य पर बेचना चाहता है और ग्राहक उसका मूल्य कम से कम देना चाहता है। ऐसी स्थिति में 'मोल-तोल' होता है। परमानंददास और गोविंदस्वामी के कृष्ण गोपियों से स्पष्ट शब्दों में पूछते हैं कि अपने दूध-दही के ठीक ठीक 'दाम' या 'मोल' कह दो[६६]। कभी-कभी बेचनेवाले को प्रलोभन दिया जाता है कि यदि कुछ कम अथवा बिलकुल ठीक दाम बता दो तो सारी चीज खरीदी जा सकती है, और शीघ्र ही सारा माल बिक जाने के लोभ से प्रायः व्यापारी इस बात से सहमत भी हो जाते हैं। परमानंददास के कृष्ण व्यापारियों की इस प्रकृति से परिचित जान पड़ते हैं तभी तो उन्होंने 'उचित मोल' बता देने पर सगरी 'मटुकिया' खरीद लेने की बात कही है[६७]। कुंभनदास के कृष्ण और भी चतुर हैं जो माल के साथ उसकी मालकिन को भी घर ले चलने की घात लगाते हैं। वे ग्वालिनी से दही का मोल सच-सच बता देने की बात तो कहते हैं, पर उनके पल्ले है कुछ नहीं। इसलिए कभी तो सखाओं की 'साखी' दिला कर दही लेने को कहते हैं, कभी विश्वास कराने के लिए अपनी 'कंठसिरी' उसके पास रखना चाहते हैं और कहते हैं कि तेरे साथ घर चलकर सब दाम दे दूँगा[६८]।

माल खरीदने में साधारणतया ग्राहक ही ठगा जाता है, परंतु परमानंददास

६४.क. हमकौं जान देहु दधि बेंचन, पुनि कोऊ नहिं लैहै।
'गोरस लेत प्रातहीं सब कोउ', सूर धरयौ पुनि रैहै—सा० १५०६।
ख. कुंभनदास प्रभु 'दधि-बेचन की बिरियाँ जाति टरी'—कुंभन० २७।
६५. मुक्ति आनि मंदे मैं मेली।
× × ×
'धरे सीस घर-घर डोलत हौ', एकै मति सब भई सहेली—सा० ३७२४।
६६.क. 'दूध दही के दाम कहि दै' तैं छुवत कहा सतराति—परमा० १७२।
ख. 'कहि धौं मोल या दधि कौ' री ग्वालिनि—गोविं० ४१।
६७. 'उचित मोल कहि या दधि को लेहुँ मटुकिया सगरी'—परमा० १८५।
६८. आजु दधि देखौं तेरौ चाखि!
कहे धौं मोलु कितै बेचैगी, सत्य बचन मुख भाखि।
जोई तू कहै सोई हौं दैहौं, संग-सखा सब साखि।

की एक गोपी ने गोरस बेचते समय अपने 'ठगे' जाने की विचित्र बात कही है[६९]। कभी कभी 'दाम' के नाम पर व्यापारी और ग्राहक में झगड़ा भी हो जाता है। इसीलिए परमानंददास ने अपने कृष्ण को 'दाम का झगरी' बताया है[७०]।

व्यापारी-वर्ग में दिन की पहली बिक्री बड़े महत्व की समझी जाती है। इसी को उनकी भाषा में 'बोहनी' कहते हैं। प्रत्येक व्यापारी चाहता है कि उसकी 'बोहनी' अच्छी हो, क्योंकि उसका यह विश्वास होता है कि उस दशा में सारे दिन उसकी बिक्री अच्छी होगी। जब तक 'बोहनी' नहीं हो जाती, कोई व्यापारी न उधार देता है और न 'कर' या 'दान' आदि के रूप में कुछ बिना मूल्य के ही दे सकता है। इसी से श्रीकृष्ण के 'दान' माँगने पर सूरदास और परमानंददास की गोपियाँ साफ-साफ कह देती हैं कि बिना 'बोहनी' हुए हम दूध, दही आदि छूने भी नहीं देंगी,[७१] देना तो दूर की बात है।

कभी कभी बजार 'मंदा' हो जाता है; अर्थात् बिक्री के योग्य वस्तु की अधिकता या उसकी अनावश्यकता, ग्राहकों की कमी अथवा ऐसे ही अन्य किसी कारण से 'माल' के दाम इतने कम हो जाते हैं कि व्यापारी का परिश्रम तो व्यर्थ जाता ही है, उसका 'मूल' भी संकट में पड़ जाता है। ऐसी स्थिति में यदि व्यापारी सदैव की तरह अपने 'माल' का पूरा दाम चाहता है तो उसे कोई खरीदता नहीं और बिना बिका 'माल' व्यापारी के पास पड़ा रह जाता है। सूरदास की गोपियाँ भी ऊधव से कहती हैं कि तुम्हारी 'जोग ठगौरी' व्रज में न बिक सकेगी और तुम्हारा सारा व्यापार 'धरा' रह जायगा; क्योंकि तुम 'मूली के पत्तों'-जैसी सस्ती चीज का 'मुक्ताहल'-जैसा अत्यधिक मूल्य माँग रहे हो[७२]। 'मंदी' की ऐसी स्थिति में व्यापारी

जो न पत्याइ ग्वालिनी हमकों कंठसरी लै राखि।
लै सँग चले घर दाम देन कों, तबहिं जनायो कटाखि—कुंभन० १३।

६९. गोरस बेचत ही जु ठगी।
कहा करे आप बस नाही मनसा अनत लगी—परमा० १७३।

७०. नन्दराय कौ 'कुँवर लाड़िलो दधि के दाम कौं झगरी'—परमा० १८५।

७१.क. बिनु 'बोहनी' तनक नहिं दैहौं, ऐसैं छीनी लेहू बरु सगरौ—सा० १४६४।
ख. बिना 'बोहनी' छुअन नहिं देहौं यह सब छीन खाउ किन सगरो—परमा० १८६।

७२. जोग ठगौरी व्रज न बिकैहै।

के सामने दो ही मार्ग रहते हैं—वह 'घाटा' उठाकर माल बेच दे या अन्यत्र ले जाकर बेचने का यत्न करे। थोड़ी 'पूँजी' के व्यापारी के लिए दूसरा ही मार्ग कल्याणकारी है। इसी कारण सूरदास की गोपियाँ ऊधव से कहती हैं कि अपनी 'मुक्ति' को तुम ब्रज में बेचने तो आये हो, परंतु जान पड़ता है कि सगुन-सायत सोच-विचार कर नहीं चले थे। ब्रज में 'मुक्ति' का बाजार बहुत मद्दा है। उधर तुम्हारी सारी 'पूँजी' 'मुक्ति' खरीदने में लग चुकी है, इसलिए 'घाटा' उठाकर बेचना भी तुम्हारे लिए संभव नहीं है। अतएव तुम्हारे लिए सर्वोत्तम मार्ग यही है कि इसे अन्यत्र ले जाकर बेचो[७३]।

स्थान-विशेष में किसी चीज का उचित मूल्य न मिल सकने का एक अन्य कारण भी अष्टछाप-काव्य में बताया गया है। यदि सब ग्राहक 'एकमत' होकर वस्तु-विशेष को न खरीदने अथवा उसका अधिक मूल्य न देने का निश्चय कर लें, तब भी व्यापारी की वस्तु या तो बिकने से रह जायगी या उचित से कम मूल्य पर बिकेगी। सूरदास की गोपियाँ 'मुक्ति' को न खरीदने का निश्चय जब एकमत होकर कर लेती हैं तब 'घर-घर डोलने' पर भी ऊधव को उसका कोई ग्राहक नहीं मिलता[७४]।

जो वस्तु एक स्थान पर उचित मूल्य में नहीं बिकती; क्योंकि उसकी वहाँ किसी को चाह नहीं है, वह दूसरे स्थान पर अधिक लाभ से भी कभी-कभी बेची जा सकती है, यदि वहाँ के निवासियों को उसकी आवश्यकता हो अथवा उसकी उपयोगिता वे समझते हों। इसी तथ्य की ओर संकेत करती हुई गोपियाँ ऊधव से कहती हैं कि तुम्हारा 'जोग' ब्रज में नहीं बिक सका, क्योंकि यहाँ उसकी किसी को आवश्यकता नहीं थी; अतएव इसे तुम सम्हाल कर 'मधुबन' ले जाओ, वहाँ

मूरी के पातनि के बदलैं, को मुक्ताहल दैहै।
यह ब्यौपार तुम्हारौ ऊधौ, ऐसैं ही धरयौ रैहै—सा० ३६६४।

७३. मुक्ति आनि मंदे मैं मेली।
समुझि सगुन लै चले न ऊधौ, यह तुम पै सब पुँजी अकेली।
कै लै जाहू 'अनत ही बेंचौ' ....सा० ३७२४।

७४. धरे सीस घर-घर डोलत हौ, एकै मति सब भई सहेली—सा० ३७२४।

की नारियाँ इसे सुनते ही 'बिसाहु' लेंगी[७५]।

बड़े व्यापारी को अष्टछाप-काव्य में 'साहु' कहा गया है जिसके प्रतिनिधि या 'एजेंट' 'साहु' की 'छाप' से इधर-उधर माल बेचते फिरते हैं। ऐसे प्रतिनिधियों में कुछ ऐसे होते हैं जो अधिक लाभ के लोभ से अथवा ग्राहक को 'भोला' और 'अनाड़ी' जान कर उसे 'ठग' भी लेते हैं। वे अपने बहुत साधारण माल को किसी प्रसिद्ध 'साहू' के यहाँ का बताते हैं और उसके लिए 'भोले' और 'अनाड़ी' लोगों से बहुत अधिक मूल्य माँगते हैं। सूरदास की गोपियों ने ऊधव से कहे हुए एक पद में व्यापारियों की इस 'ठग-प्रवृत्ति' की आलोचना की है। ऊधव की 'ज्ञान-जोग की खेप' उनके लिए 'फाटक' के समान है जिसको वे श्रीकृष्ण-जैसे प्रतिष्ठित 'साहु' के यहाँ का बताकर, उस खोटे माल के बदले में 'हाटक' चाहते हैं। परंतु गोपियाँ स्पष्ट कह देती हैं कि हम इतनी 'अनाड़ी' नहीं हैं जो तुम्हारी यह चाल न समझें। यदि तुम्हारे कथन में सच्चाई है तो यहाँ जरा भी देर मत लगाओ, शीघ्र जाकर अपने 'साहु' को ही यहाँ लिवा लाओ, तब हम[७६] तुम्हें 'मुँहमाँगा' दाम देने को सहर्ष प्रस्तुत हो जायँगी।

अब प्रश्न आता है व्यापार की वस्तुओं का। जैसा पीछे कहा जा चुका है,

७५. ऊधौ बेगि मधुबन जाहु।
जोग लेहु सँभारि आपनौ, बेचियै जहँ लाहु।
× × ×
'जो नहीं ब्रज मैं बिकानौ, नगर नारि बिसाहु'।
सूर वै सब सुनत लैहैं, जिय कहा पछितातु—सा० ३५१७।

७६. आयौ घोष बड़ौ ब्यौपारी।
खेप लादि गुरु ज्ञान जोग की, ब्रज मैं आनि उतारी।
'फाटक दै कै हाटक माँगत, भोरौ निपट सुधारी'।
धुरही तैं खोटौ खायौ है, लिए फिरत सिर भारी।
इनकैं कहे कौन डहकावै, ऐसी कौन अनारी।
× × ×
ऊधौ जाहु सबारैं ह्याँतैं, बेगि गहरु जनि लावहु।
'मुँहमाँगौ पैहौ सूरज-प्रभु, साहुहिं आनि दिखावहु'—सा० ३६६५।

अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित व्यापार की वस्तुएँ दो वर्गों में आती हैं—एक, स्थानीय वस्तुएँ; और दूसरे, सुदूर प्रदेशीय वस्तुएँ।

क. *व्यापार की स्थानीय वस्तुएँ*—इस वर्ग में मुख्यतः वे वस्तुएँ आती हैं जो सामान्यतया दैनिक जीवन में अत्यावश्यक होती हैं; यथा दूध, दही, माखन, घी, फल, तरकारी आदि। अहीरों के जीवन की चर्चा करने के कारण दूध, दही, घी, माखन आदि बेचने की बात प्रायः सभी अष्टछापी कवियों ने लिखी है। आम, बेल आदि फल तथा तरकारियाँ बेचने आनेवाली 'काछिन' का उल्लेख अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास ने किया है। इन सभी वस्तुओं के बेचे जाने का उल्लेख जिन पंक्तियों में हुआ है, वे भी इसी परिच्छेद में पीछे उद्धृत की जा चुकी है[७७]।

ख. *सुदूर प्रदेश से आनेवाली वस्तुएँ*—ऐसी वस्तुओं में मुख्यतः नारियल, दाख आदि मेवे तथा लौंग, हींग, मिरिच, पीपरि, अजवाइनि, कूट, कायफल, सोंठ, सुपारी, चिरायता, कटजीरा, मजीठ, लाख, सेंदुर, बाइबिडंग, बहेड़ा, हरैं आदि मसाले और अन्य उपयोगी वस्तुएँ आती हैं जिनका उल्लेख 'दान-लीला-प्रसंग' के एक पद में सूरदास ने किया है[७८]।

२. *व्यापार के रूप और साधन*—व्यापारी की वस्तु को खरीदने के लिए उसका 'मूल्य' दिया जाना चाहिए। यह 'मूल्य' 'दाम' के रूप में तो दिया ही जाता है, कभी कभी दूसरी उपयोगी वस्तु के रूप में भी दिया जा सकता है[७९]।

७७. देखिए इस प्रबंध का पृष्ठ ४२५।

७८. कहौ कान्ह, कह गथ है हम सौं।
जा कारन जुवती सब अटकीं, सो बूझति हैं तुमसौं।
'लौंग, नारियर, दाख, सुपारी', कहँ लादे हम आवैं।
'हींग, मिरिच पीपरि, अजवाइन', ये सब बनिज कहावैं।
'कूट, कायफर, सोंठ, चिरइता, कटजीरा' कहुँ देखत।
'आलमजीठ, लाख, सेंदुर' कहुँ ऐसिहिं बिधि अवरेखत।
बाइबिडंग, बहेरा, हरैं', बैल गोन ब्योपारी—सा० १५२८।

७९.क. डा० राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार वस्तु-विनिमय की प्रथा ऋग्वेद-काल से ही प्रचलित रही है। १० गाय देकर इंद्र की एक प्रतिमा लेने की बात उसके एक मंत्र में आती है—'हिंदू सभ्यता', पृ० ७६।

ख. डा० प्रसन्नकुमार आचार्य ने भी ऋग्वेद-काल में व्यापारिक क्षेत्र में विनिमय-प्रथा

नगरों में तो आज पहली ही रीति सर्वत्र प्रचलित है, परंतु गाँवों में अब भी 'मूल्य' चुकाने के दोनों ढंग अपनाये जाते हैं। अष्टछाप-काव्य में ग्रामीण जीवन का ही प्रमुख रूप से चित्रण होने के कारण उक्त दोनों विधियों की चर्चा की गयी है। परमानंददास ने बेर बेचनेवाली को, बेरों के बदले में, आँगन में सूखते हुए धान 'अँजुली' भर दिये जाने की बात लिखी है[८०]। परंतु सस्ती या साधारण चीज को, मूल्यवान वस्तु के बदले में लेने की मूर्खता कोई 'अनाड़ी' भी नहीं दिखाना चाहता। इसीलिए गोपियाँ ऊधव से पूछती हैं कि क्या 'मूली के पत्तों' के बदले में कोई 'मुक्ताहल' दे सकता है[८१]? ग्राहक को जिस चीज की अवश्यकता नहीं है वह कितनी भी उपयोगी क्यों न हों उसके लिए 'फाटक' के समान है और ऊधव से गोपियाँ कहती हैं कि ऐसी वस्तु का मूल्य 'हाटक' के रूप में कोई 'अनाड़ी' भी कभी नहीं चुका सकता[८२]। बहुमूल्य वस्तुओं का 'मोल' 'हीरा' बताये जाने की बात गोविंदस्वामी के एक पद में मिलती है जिसमें वृषभानु-नंदिनी के 'निरमोलिक' दही का मोल 'स्याम हीरा' बताया गया है[८३]। परमा-नंददास ने भी 'दधि' का मोल 'कंचन' बताते हुए एक पद में उसके बदले में गोपी-विशेष को 'दुलरी' दिलायी है[८४]। परमानंददास की चंद्रावली के पास 'हरि

के प्रचलित होने की बात कही है।

—'भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता', पृ० ११५-११६।

ग. डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा के अनुसार पहले भारत में द्रव्य-विनिमय द्वारा व्यापार होता था—'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति', पृ० १३६।

८०. कोउ माई बेर बेचन आई।
सुनी टेर नंद रावल में भीतर भवन बुलाई।
'सूखत धान परयौ आँगन में कर अंजुली बनाई'।
× × ×
परमानंद जसुमति आन दिये फल खाये कुँवर कन्हाई – परमा० ६७४।

८१. जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
'मूरी के पातनि के बदलैं, को मुक्ताहल दैहै'—सा० ३६६४।

८२. 'फाटक दै कै हाटक माँगत', भोरी निपट सुधारी।
× × ×
इनकैं कहे कौन डहकावे, ऐसी कौन अनारी—सा० ३६६५।

८३. बृषभानु नंदिनी कौ निरमोलक दह्यो जाको मोल स्याम हीरा—गोविं० ४१।

८४. आजु दधि कंचन मोल भई।

के उर का गजमोती' देखकर कोई सखी उससे पूछती है—'यह तूने कहाँ से पाया' ? उत्तर में चंद्रावली उसको 'दधि के पलटे' में पाने की बात कहती है और विश्वास न होने पर शपथ धराकर पूछ लेने की सलाह देती है[८५]। उक्त सभी उदाहरण अष्टछापी कवियों के समय में 'वस्तु' के विनिमय में 'वस्तु' दिये जाने की रीति के प्रचलन की पुष्टि करते हैं।

व्यापारी की कोई वस्तु 'सेंतमेंत' अर्थात् बिना मूल्य चुकाये किसी को नहीं मिल सकती;[८६] उसके लिए तो वह मूल्य देना ही होगा जो व्यापारी लेने को सहमत हो जाय—वस्तु-विशेष का वह मूल्य चाहे दूसरी वस्तु, यथा अनाज, सोना, चाँदी, हीरा आदि के रूप में चुकाया जाय, चाहे शासक द्वारा प्रचलित 'सिक्कों' के रूप में। व्यापार के प्रथम अर्थात् 'वस्तु-विनिमय'-रूप की चर्चा ऊपर हो चुकी है; जहाँ वह 'रूप' नहीं चलता अथवा जहाँ व्यापारी वस्तु-विनिमय के लिए सहमत नहीं होता, वहाँ बिक्री की वस्तु का मूल्य सिक्कों के रूप में चुकाना पड़ता है। सभी देशों और कालों में व्यापार का यह रूप प्रचलित रहा है। अष्टछाप-काव्य में भी कुछ सिक्कों के नाम आये हैं, यद्यपि उनके संबंध में अधिक विस्तार से नहीं लिखा गया है। ऐसे सिक्कों में टका, दमड़ी, दाम, रूपा आदि उल्लेखनीय हैं।

अ. *टका*—उन्नीसवीं शताब्दी में 'टका' शब्द ताँबे के अधन्ने बराबर सिक्के के रूप में प्रचलित था;[८७] परंतु अष्टछापी कवियों के समय में यह चाँदी का एक

× × ×

'दधि के पलटैं दुलरी दीनी' जसुमति खबर भई।

—परमा०, कीर्तन०, भाग १, पृ० २३७।

८५. यह हरि के उर को गजमोती।
चन्द्रावली कहाँ तैं पायो दूरि करत दिनमनि की जोती।
× × × ×
अजहूँ तौ नृप कंस जीवत है, 'मैं दधि कै पलटै है पायो'।
जौ न पत्याहू तो सपथ दै बूझहू परमानँद ता दिन सँग आयो—परमा० ४११।

८६.क. कलुषी अरु मन मलिन बहुत मैं 'सेंत-मेंत' न बिकाउँ—सा० १-१२८।
ख. 'सेंत-मेंत' क्यों पाइए यह गोरस निरमोल—चतु० २४।

८७. श्रीरामचंद्र वर्मा, 'प्रामाणिक हिंदी कोश', पृ० ४६४।

सिक्का था[८८]। 'टका' का उपयोग अष्टछाप-काव्य में दो स्थलों पर विशेष रूप से हुआ है। राधा की माता ने पुत्री की खोई हुई 'मोतिसिरी' 'लाख टके' में लाने की बात एक पद में कही है। इस प्रकार वह 'मोतिसिरी' बहुमूल्य थी और कोई भी घर बैठे ही ऐसी 'निधि' पाकर अपना भाग्य सराहेगा[८९]। एक दूसरे पद में इस सिक्के का उल्लेख 'नेग'-रूप में दिये जाने के प्रसंग में हुआ है। कृष्ण-जन्म के अवसर पर माता यशोदा दाई का नेग 'लाख टके' देती हैं।

आ. दमड़ी—'आइने अकबरी' के अनुसार 'दाम' का आठवाँ भाग 'दमड़ी' होता था[९०]। अष्टछाप-काव्य में धन-द्रव्य के लोभी को 'दमरी कौ पूत' कहा गया है[९१]।

इ. दाम—'आइने अकबरी' में 'दाम' को ताँबे का सिक्का बताया गया है जो रुपए के चालीसवें भाग के बराबर होता था[९२]। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने इस सिक्के की चर्चा विशेष रूप से की है। राधा की माता ने पुत्री द्वारा खोई हुई 'मोतिसिरी' के एक-एक नग का मूल्य 'सत-सत दाम' बताया है[९३]। परमानंददास ने 'दाम' का प्रयोग 'सिक्के' के अर्थ में किया है[९४]।

ई. रूपा—अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित चौथा सिक्का 'रूपा' है जिसका

८८. डा० प्रेमनारायण टंडन, 'व्रजभाषा सूर-कोश', पृ० ६७२।

८९.क. जाहु तहीं मोतिसरी गँवाई।

× × ×

'इक इक नग सत सत दामिनि कौ, लाख टका दै ल्याई।

जाकैं हाथ परयौ सो भागी, घर बैठे निधि पाई—सा० १६७२।

ख. लाख टका अरु झूमका सारी दाइ कौं नेग—सा० १०-४०।

९०. 'आइने अकबरी', पृ० ५७।

९१.क. लंपट, धूत, 'पूत दमरी कौ', बिषय-जाप कौ जापी—सा० १-१४०।

ख. लंपट, धूत, पूत दमरी कौ', कौड़ी कौड़ी जोरै—सा० १-१८६।

९२. 'आइने अकबरी', पृ० ५७।

९३. जाहु तहीं मोतिसिरी गँवाई।

× × ×

'इक इक नग सत सत दामिनि कौ', लाख टका दै ल्याई—सा० १६७२।

९४. बिप्रनि देहु गाय और सोनों माटन रूपो दाम—परमा० १४।

अर्थ 'चाँदी' होने से स्पष्ट है कि यह चाँदी का सिक्का था। इसकी पुष्टि 'आइने अकबरी' से भी होती है जिसमें 'गोल' और 'वर्गाकार', दो प्रकार के रुपए चलने की बात कही गयी है[९५]। सूरदास ने 'रूपै' शब्द का प्रयोग सामान्य अर्थ में[९६] और परमानंददास ने 'रुपए' सिक्के के अर्थ में किया है[९७]।

ये तो हुए वे सिक्के जो 'टकसाल' में बनकर शासक की ओर से प्रचलित किये जाते थे। इनके अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में दो-एक स्थलों पर 'कौड़ी' का भी उल्लेख हुआ है जो सिक्के की तरह ही कुछ समय पूर्व तक भारत के अनेक प्रदेशों में व्यवहार में आती थी। हिसाब-किताब में 'कौड़ी' का तात्पर्य 'नाममात्र के मूल्य' से होता है जिसके लिए परिश्रम करनेवाले, सूरदास की सम्मति में, नितांत मूर्ख हैं[९८]। सूरदास के एक अन्य वाक्य से भी 'कौड़ी' की अत्यंत तुच्छता का पता चलता है जिसमें गोपियों की दृष्टि में, कृष्ण रहित गोकुल का मूल्य 'कौड़ी' के बराबर भी नहीं रह जाता[९९]। 'कौड़ी' का तात्पर्य 'अधीनस्थ राजाओं द्वारा सम्राट को दिये जाने वाले कर'[१००] से भी होता है। 'दानी' बन कर श्रीकृष्ण जब गोपियों से 'कौड़ी-कौड़ी' वसूल लेने की बात कहते हैं, तब उसका सामान्य अर्थ तो स्पष्ट है ही, कर-संबंधी विशेष अर्थ की ओर भी उसका संकेत लिया जा सकता है[१]।

सूरदास के एक पद में 'खोटे दाम' का प्रयोग मिलता है जिससे सूचित होता है कि राजकीय 'टकसाल' के बाहर 'खोटे सिक्के' भी बना लिये जाते थे जिनको न पहचान कर लोग ठगे जाने के कारण खीझते थे[२]। इसी प्रकार नंददास की 'श्याम-सगाई' नामक रचना में 'अरथ-द्रव्य' का प्रयोग हुआ है जिनका संकेत 'धन'

९५. 'आइने अकबरी', पृ० ५७।
९६. निर्भय 'रूपै' लोभ छाँड़ि कै, सोई बारिज राखै—सा० ११४२।
९७. बिप्रनि देहु गाय अरु सोनो माटन 'रूपो दाम'—परमा० १४।
९८. परम कुबुद्धि तुच्छ रस-लोभी 'कौड़ी' लगि मग की रज छानत—सा० १-११४।
९९. सूरदास स्वामी बिनु गोकुल 'कौड़ी' हूँ न लहै—सा० २७११।
१००. श्रीरामचंद्र वर्मा, 'प्रामाणिक हिंदी कोश', पृ० २८६।
१. अब तुमकौं मैं जान न दैहौं।
'दान लेउँ कौड़ा कौड़ी करि', बैर आपनौ लैहौं—सा० १५४५।
२. 'हरि कौ नाम, दाम खोटे लौं', झकि झकि डारि दयो—सा० १-६४।

के साथ-साथ 'टकसाली' सिक्कों की ओर भी है[३]।

३. *विविध व्यवसाय और व्यवसायी*—इस वर्ग में वे व्यवसायी आते हैं जो वस्तु-विशेष का स्वयं उत्पादन अथवा निर्माण करके समाज में उसकी बिक्री करते हैं। अष्टछाप-काव्य में वर्णित ऐसे व्यवसायियों को, स्थूल रूप से, सत्रह उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है—अहीर, कृषक, बनजारे या व्यापारी, पंसारी, महाजन, जौहरी, सर्राफ, बजाज, काछी, कुलाल, मनिहार, गंधी, चोलिनि, तमोली, तेली, पारधी और कसाई[४]।

क. *अहीर*—अष्टछापी कवियों के परम आराध्य जिन व्यक्तियों के यहाँ पले थे, वे अहीर थे। मथुरा की नारियों ने कृष्ण का परिचय परस्पर 'नंद अहीर के सुत' कहकर ही दिया है[५]। अष्टछाप-काव्य में 'अहीर' के लिए 'गोप' और 'ग्वाल' या 'ग्वार' तथा उनकी स्त्रियों के लिए 'अहीरिन', 'गोपी', 'ग्वालि' या 'ग्वारि', 'गुजरेटी' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। गाय पालना और उनका दूध दुहकर, उससे दही, माखन, घी आदि बना कर बेचना इस वर्ग का व्यवसाय रहा है। माट-मटुकी में दूध, दही, माखन आदि लिये मथुरा की ओर जाती हुई ग्वालियों के रोक लिये जाने पर इस वर्ग के व्यवसाय का स्पष्ट उल्लेख 'दान-लीला'-प्रसंग में हुआ है[६]। सूरदास और कुंभनदास की ग्वालिनें तो 'अहीर' जाति का धंधा

३. 'अरथ द्रब्य इच्छा नहीं' पान-पात नहिं लेउँ—नंद०, स्याम०, पृ० १२० ।

४. डा० प्रसन्नकुमार आचार्य ने 'यजुर्वेद', ३०-७, के अनुसार वैदिक काल में ही किसान, मछवाहे, कसाई, कुम्हार, सुनार, धोबी, नाई, जौहरी, डोलची बनानेवाले, रस्सी, रंग, रथ, बाग बनानेवाले आदि के व्यवसाय प्रचलित होने की बात कही है।
—'भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता', पृ० ११३ ।

५. एई सुत नंद अहीर के—सा० ३०६३ ।

६.क. बेंचन चलीं दधि ब्रजनारि।
सीस धरि-धरि माट मटुकी, बढ़ी सोभा भारि—सा० १४६६ ।

ख. ग्वालिनि यह भली नहिं करति।
दूध दधि घृत नितहिं बेंचति, दान देतैं डरति—सा० १५०४ ।

ग. गोकुल की ब्रज-नारि दह्यो नित बेंचन आवैं—कुंभन० २३ ।

घ. कहो किन कीनों दान दही कौ।
सदा सर्बदा बेचति इहिं ब्रज है मारग नित ही कौ—चतु० २० ।

ङ. गुजरिया गरब गहीली ऊतरु नाहीं देति—गोविं० २६ ।

ही दही आदि बेचना बताती हैं[७]। गोप-बालकों के साथ कृष्ण के गाय चराने की बात का उल्लेख तो सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। घर में ग्वालिनों के दही मथने की बात भी उन्होंने लिखी है[८]। स्वयं यशोदा का भी यही कार्य रहा है,[९] यहाँ तक कि 'पाहुनी' से भी दही मथने की बात कहने में वह संकोच नहीं करती[१०]। अहीरों के व्यवसाय का यह क्रम आज भी चल रहा है, यद्यपि उनकी स्त्रियों का दूध, दही आदि बेचना अब प्राय: बंद हो गया है।

वस्तुत: 'गोपालन' इस देश में सदैव से महत्वपूर्ण व्यवसाय रहा है। जो लोग दूध, दही नहीं बेचते थे, वे भी 'गोपालन' में सदैव रुचि लेते थे। ब्राह्मण-वर्ग के लिए भी यह कार्य महत्व का था। यज्ञों में ऋत्विजों को दक्षिणा में 'गायें' भी दी जाती थीं[११]। नंद जी भी ब्राह्मणों को दो-दो लाख गायें दान में देते हैं[१२]।

७.क. हम 'अहीर माखन दधि बेचैं'—सा० ३६६३।
ख. हम हैं जाति 'अहीर दह्यो नित बेचन आवैं'—कुंभन० २३।
८.क. 'मथति ग्वालि हरि देखी जाइ'—सा० १०-२९८।
ख. 'दधि लै मथति ग्वालि गरबीली'।
रुनुक झुनुक कर कंगन बाजै, बाँह डुलावति ढीली—सा० १०-२९९।
ग. देखी हरि 'मथति ग्वालि दधि ठाढ़ी'।
जोबन मदमाती, बेनि ढुरति कटि लौं छबि बाढ़ी।
× × ×
करषति है, दुहुँ करनि मथानी, सोभा-रासि भुजा सुभ काढ़ी—सा० १०-३००।
९.क. जसोदा कान्हहु तैं दधि प्यारो?
'डारि देहि कर मथत मथानी', तरसत नंददुलारौ—सा० ३७८।
ख. 'जसोदा ऊखल बाँधे स्याम।
× × ×
'दह्यौ मथति', मुख तैं कछु बकरति गारी दै लै नाम—सा० ३७९।
ग. अहो 'दधि मथन करै नँदरानी'।
बारे कन्हैया आर न कीजै छाँड़ि अब देहौ मथानी—परमा० ११५।
१०. 'पाहुनी, करि दै तनक मह्यौ'।
हौं लागी गृह-काज-रसोई, जसुमति बिनय कह्यौ।
आरि करत मन मोहन मेरो, अंचल आनि गह्यौ।
व्याकुल मथति मथनियाँ रीती, दधि भुव ढरकि रह्यौ—सा० १-१८२।
११. 'जातक-कालीन भारतीय संस्कृति', पृ० १८७।
१२. कामधेनु तैं नैंकु न हीनी, द्वै लख धेनु द्विजनि कौं दीनी—सा० १०-३२।

ख. कृषक—'कृषि' भारत का सर्वप्रमुख व्यवसाय है। परंतु अष्टछाप-काव्य के विषय से उसका निकट संबंध न होने के कारण उसमें कृषक-जीवन का वैसा विस्तृत वर्णन नहीं मिलता जैसा अहीरों के जीवन का मिलता है। सूर के अतिरिक्त प्रायः सभी अष्टछापी कवि तो इस संबंध में एक प्रकार से मौन हैं ही, स्वयं सूरदास ने भी कृषक और उसके व्यवसाय के संबंध में अधिक नहीं लिखा है। 'सूरसागर' के एक पद में, रूपक-रूप में, खेती की चर्चा अवश्य इस प्रकार की गयी है कि उससे कृषक की जीवन-चर्या पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। उसमें सूरदास कहते हैं—मैंने इस प्रकार खेती की कि 'बंजर' भूमि में, बिना उसको समतल किये ही, 'हल जोता'। काम और क्रोध मेरे 'बैल' थे, जिनको 'हाँकनेवाला' था मेरा मन और बैलों के कंधों पर रखा जानेवाला 'जुआ' था माया का। मेरी इंद्रियाँ 'किसान' बनीं जिन्होंने विषय-वासनाओं के शीघ्र उगनेवाले 'तृणों' के 'बीज' बोये जिनसे 'नयी लताएँ' उत्पन्न हुईं[१३]।

'खेती' के लिए 'वर्षा' ही जीवन है। अतएव उक्त पद के अंत में प्रभु से 'कृपा की वर्षा' करने की प्रार्थना भी कवि करता है[१४]। 'खेती' करनेवाले को 'खेतिहर' भी कहा जाता है जिसका उल्लेख सूरदास के एक अन्य पद में हुआ है। ग्रीष्म के बाद पहली वर्षा होते ही खेतों में उगती हुई घास आदि व्यर्थ के पौधे उखाड़कर ही नयी फसल के लिए 'खेतिहर' अपना खेत 'तैयार' करता है[१५]। 'खेत' के निचले या गड्ढेवाले भाग को 'खाल' कहते हैं जिसे पाटकर भूमि को समतल कर लेना भी वह आवश्यक समझता है जिससे वर्षा या बाढ़ का जल खेत में न भरा रहे[१६]।

१३. प्रभु जू, यौं 'कीन्ही हम खेती'।
 'बंजर भूमि, गाउँ हर जोते', अरु जेती की तेती।
 काम-क्रोध 'दोउ बैल बली' मिलि, रंज-तामस सब कीन्हौ।
 अति कुबुद्धि मन 'हाँकनहारे', माया 'जूआ' दीन्हौ।
 इंद्रिय - मूल - 'किसान' महातृन - अग्रज 'बीज बई'।
 जन्म-जन्म की बिषय-बासना 'उपजत लता नई'—सा० १-१८५।

१४. 'कीजै कृपा-दृष्टि की बरषा', जन की जाति लुनाई—सा० १-१८५।

१५. जन के उपजत दुख किन काटत ?
 जैसैं 'प्रथम असाढ़ आँजु तृन, खेतिहर निरखि उपाटत'—सा० १-१०७।

१६. पुनि पाछैं अघ-सिंधु बढ़त है, सूर 'खाल किन पाटत'—सा० १-१०७।

सूरदास ने किसी अनाज की खेती का विस्तृत वर्णन नहीं किया है। उनके केवल एक पद में बिना वर्षा के 'धान-अंकुर'[१७] के सूखने का उल्लेख अवश्य मिलता है[१८]। इसी प्रकार एक अन्य पद में उन्होंने 'धनिया, धान कुम्हाड़े या कुम्हड़ा' एक ही खेत में न उपज सकने की बात भी लिखी है[१९]। फसल काटने के बाद सारा अनाज खरिहान में जमा होता है जहाँ 'मँड़ाई' होती है। सूरदास के एक पद में 'खरिहान' का उल्लेख भी हुआ है[२०]। भूमि तैयार करने के बाद हल से उसमें नालियाँ बनाकर 'बीज' बोने और 'पानी' देने की बात सूरदास ने एक अन्य पद में लिखी है[२१] जिससे उनके तत्संबंधी सामान्य ज्ञान का पता लगता है।

अष्टछापी कवियों के समय में खेतों की सिंचाई, वर्षा के अतिरिक्त 'कुओं' में रहट लगाकर भी की जाती थी। इसका उल्लेख परमानंददास के एक पद में हुआ है जिसमें गोपियाँ अपने नयनों को 'रहटघरी' कहती हैं जो बार-बार भर आते और जल ढरका जाते हैं[२२]। सूरदास ने एक पद में 'ऊख पेरकर' गुड़ बनाये जाने की बात कही है[२३] और परमानंददास ने भी कोल्हू में 'ऊख पेरे जाने' की चर्चा उपमान-रूप में की है[२४] जिससे स्पष्ट होता है कि अष्टछापी कवि 'ऊख की खेती' से भली भाँति परिचित थे।

ग. *बनजारा*—घूम-घूमकर 'व्यापार' करनेवाले को 'बनजारा' कहा जाता था

१७. श्री प्रसन्नकुमार आचार्य के अनुसार भारतीय चावल, जौ, मकाई, मसूर, तिल आदि की खेती वैदिक काल में ही करने लगे थे।
—'भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता', पृ० ११०।

१८. 'सूखति सूर धान-अंकुर सी, बिनु बरषा ज्यौं मूल तुई'—सा० १८५५।

१९. सूरदास 'तीनौ नहिं उपजत, धनियाँ, धान, कुम्हाँड़े'—३६०४।

२०. 'माँड़ि-माँड़ि खरिहान' क्रोध कौ, पोता-भजन भरावै—सा० १-१४२।

२१. 'धर बिधंसि नल करत किरषि हल, बारि, बीज बिथरै'—सा० १-११७।

२२. 'नयना रहट की घरी रहाई'।
करि-करि सुरति मदन मोहन की 'भरि आवे ढहि जाहीं'—परमा० काँक० ६६७।

२३. 'रस लै-लै औटाइ करत गुर', डारि देत हैं खोई।
फिर औटाए स्वाद जात है, 'गुर तें खाँड न होई'—सा० १-६३।

२४. परमानंद स्वामी के बिछुरें 'बिरह कोल्हू भयौ, तन भयौ ऊख री'।
—परमा० काँक० १०३३।

जिनकी स्त्रियाँ 'बनजारिनि' कहलाती थीं। जायसी के 'पद्मावत' में भी 'बनिजारा' का उल्लेख हुआ है[२५]। सूरदास के एक पद में गोपियों के लिए 'दानी'-वेशधारी कृष्ण ने 'बनजारिनि' शब्द का प्रयोग किया है[२६]।

घ. *पंसारी*—मेवा, मसाले तथा उन सब सूखी वनस्पतियों आदि के बेचने वाले को आज 'पंसारी' कहते हैं जिनके नाम 'दान-लीला-प्रसंग' में व्यापारिक वस्तुओं के अंतर्गत पीछे गिनाये गये हैं[२७]। 'पंसारी' की स्त्री 'पंसारिनि' कहलाती है। इस शब्द का प्रयोग श्रीकृष्ण ने 'दानलीला'-प्रसंग में गोपियों के लिए किया है[२८]।

ङ. *महाजन*—व्यवसायी-वर्ग में 'महाजन' को इस कारण नहीं गिना जाना चाहिए कि वह कोई वस्तु बेचता नहीं; फिर भी इसकी चर्चा यहाँ इसलिए की जा रही है कि जिस प्रकार दूसरे व्यवसायी 'वस्तु' देकर 'ग्राहकों' से लाभ कमाते हैं; वैसे ही 'महाजन' अपना 'धन' दूसरों को देकर 'ब्याज'-रूप में लाभ उठाता है। इस प्रकार महाजन का व्यवसाय है रुपए का लेन-देन करना और 'ऋण' शब्द की प्राचीनता इस बात का प्रमाण है कि यह व्यापार बहुत प्राचीन काल से इस देश में प्रचलित रहा है[२९]। 'महाजनी' का व्यवसाय करनेवाला स्वभावतया धनी होना चाहिए। उसकी 'पूँजी' को सूरदास ने 'थाती' कहा है[३०] जिससे दूसरों को 'ऋण' दिया जाता है[३१]। महाजन से ऋण चाहनेवाले को कुछ 'जमानत' भी देनी पड़ती है[३२] जिसका तात्पर्य धन लौटाने के उत्तरदायित्व से होता है और जो 'ऋणी' के 'मुकर जाने' की स्थिति में काम आता है[३३]। यदि ऋण चाहनेवाले के घर में 'गथ' या 'पूँजी' नही होती, अर्थात् वह निर्धन होता है तो उसे 'जमानत' मिलने

२५. चितउर गढ़ के एक बनिजारा—पदमा०, संजी० व्या०, ७४-१।
२६. लीन्हे फिरति रूप त्रिभुवन कौ, री 'नोखी बनजारिनि'—सा० १४७३।
२७. देखिए इस 'प्रबंध' का पृ० ४३०।
२८. सूरदास ऐसौ गथ जाकैं, ताके बुद्धि 'पंसारिनि'—सा० १४७३।
२९. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि', पृ० २३८।
३०. 'थाती' प्रान तुम्हारी मोपै जनमत ही जो दीन्ही—सा० १-१९६।
३१. सबै कूर मोसों 'रिन' चाहत—सा० १-१९६।
३२. देह 'जमानति' लीन्ही—सा० १-१९६।
३३. 'मुकर जाइ' के दीन बचन सुनि जमपुर बाँधि पठावै—सा० १-१९६।

में बहुत कठिनाई होती है। ऐसी स्थिति में जिस महाजन का वह ऋणी है अथवा जिस ठाकुर का उसे 'कर' देना है, वह उसे लूट तक लेता है[३४]।

महाजन किसी को जो धन 'ऋण' के रूप में देता है, वह 'मूल' कहलाता है। कुछ अवधि के पश्चात् धन दिये जाने के बदले में 'ऋणी' से जो धन उसे 'मूल' के अतिरिक्त मिलता है वह 'ब्याज' कहलाता है और यही प्राप्त करना महाजन का चरम लक्ष्य होता है। डा० राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार 'ब्याज' पर रुपए देने का व्यवसाय वैदिक कार्य में ही आरंभ हो गया था और दस देकर ग्यारह रुपये उगाहने अर्थात् दस प्रतिशत ब्याज लिये जाने का भी उल्लेख उन्होंने किया है[३५]। अष्टछापी कवियों ने ब्याज की दर का कहीं उल्लेख नहीं किया है; हाँ, उनके काव्य से यह अवश्य ज्ञात होता है कि साधारण महाजन यह कार्य अपने प्रतिनिधियों से कराते हैं। इसी कारण सूरदास की गोपियों ने 'अक्रूर' को 'मूल' वसूल करने वाला और ऊधव को 'ब्याज उगाहनेवाला' कहा है[३६]। जब तक ऋण लेनेवाला ब्याज सहित महाजन का 'मूल' नहीं लौटा देता तब तक वह 'उऋण' नहीं होता और वैसी स्थिति में ऋणी को 'ऋण-दास'[३७] रहकर 'महाजन' की सेवा तक करनी पड़ती थी। यही बात सूरदास के कृष्ण ऊधव से कहते हैं कि गोपियों ने तन-मन-धन अर्पण करके मुझे अपना 'ऋणी' बना लिया है। तुम उन्हें उपदेश से संतुष्ट करके मुझे उनके 'ऋण' से 'उरिन' करो। परंतु यदि वे 'ब्याज'-रूप में दिये गये तुम्हारे उपदेश को अंगीकृत नहीं करेगी तो मैं उनका 'रिनदास' होकर, ब्रज में बस कर उनकी गायें ही चराया करूँगा[३८]। गोस्वामी तुलसीदास के लक्ष्मण ने

३४. घर मैं 'गथ नहिं' भजन तिहारौ, जौन दियैं मैं छूटौं।
धर्म 'जमानत मिल्यो न चाहै, तातैं ठाकुर लूटौ'—सा० १-१८५।

३५. 'हिन्दू सभ्यता', पृ० १२४।

३६. सूर मूर अक्रूर गये लै ब्याज निबेरत ऊधौ—सा० ३८६०।

३७. म० म० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने 'दास-प्रथा' के अंतर्गत 'ऋणदास' की चर्चा 'कर्ज में रखे हुए दास' के अर्थ में की है—'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति', पृ० ४८।

३८. सुनु सखा हित प्रान मेरे, नाहिंनै सम तोहिं।
'कैसैंहू कर उरिन कीजे, गोपिकनि सौं मोहिं'।
रैनि दिन मम भक्ति उनकैं कछू करत न आन।
'और सरबस मोहिं अरप्यौ तरुनि तन-धन-प्रान'।

विविध ऋणों से 'उरिन' होने की बात कहकर परशुराम से जो व्यंग्य किया है, वह भी 'महाजनों' के व्यवसाय से ही संबंध रखता है[३९]।

च. *जौहरी और सर्राफ*—हीरे, जवाहरात आदि बेचनेवाले को 'जौहरी' और सोने-चाँदी के आभूषण बेचनेवाले को 'सर्राफ' कहते हैं। अष्टछाप-काव्य में यद्यपि ये शब्द प्रयुक्त नहीं हुए हैं क्योंकि इन व्यवसायियों का संबंध मुख्यत: नगर से रहता है, ग्रामों में इनकी दूकानें नहीं होती; तथापि अनेकानेक जड़ाऊ आभूषणों की चर्चा होने से यह स्पष्ट है कि उक्त व्यवसाय भी समाज में अवश्य प्रचलित रहे होंगे। सूरदास के एक पद में राधा की माता कीर्ति पुत्री के लिए 'लाख टके' में एक 'मोतिसिरी' खरीद लाने की बात कहती है जिसमें सत-सत 'दामों' का एक-एक नग जड़ा था[४०]। निस्संदेह वह जड़ाऊ गहने बेचनेवाले किसी 'जौहरी' या 'सर्राफ' के यहाँ से खरीदा गया होगा।

छ. *बजाज*—कपड़ा बेचनेवाला 'बजाज' कहलाता है जिसकी स्त्री को सूरदास ने 'बजाजिनि' कहा है[४१]। अन्य अष्टछापी कवियों ने 'बजाज' या 'बजाजिनि' की चर्चा नहीं की है।

ज. *काछी*—फल, तरकारी आदि बेचनेवाले को 'काछी' कहते हैं जिसकी स्त्री 'काछिनि' कहलाती है। अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास ने यशोदा के यहाँ एक 'काछिन' के आने की बात लिखी है[४२]।

ब्याज मैं ये रतन दीन्हे, बृथा गोप-कुमारि।
× × ×
सोइ तुम उपदेसियौ जिहिं लहैं पद निर्वान।
'जौ न अंगीकृत करैं वै होइहौं रिन - दास'।
सूर गाइ चराइहौं मैं, बहुरि बसि ब्रजबास—सा० ३४३१।

३९. माता पितहिं उरिन भए नीकें। गुर-रिनु रहा सोच बड़ जी कें।
सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गए ब्याज बहु बाढ़ा।
अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली।
—मानस०, बाल०, दो० २७६।

४०. 'इक-इक नग सत-सत दामनि कौ लाख टका दै ल्याई'—सा० १९७२।

४१. 'बजाजिनि' ह्वै जाउँ निरखि नैननि सुख देउँ—सा० वें०, पृ० ३४६।

४२. ब्रज में 'काछिनि' बेचन आई।

झ. *कुलाल*—मिट्टी के बरतन बनाने और बेचनेवाले को 'कुलाल'[४३] या प्रचलित भाषा में 'कुम्हार' कहा जाता है। उसके व्यवसाय से संबंधित दो प्रमुख शब्द अष्टछाप-काव्य में मिलते हैं—एक है 'चाक' और दूसरा, 'आँवाँ। 'चाक' एक गोल पत्थर होता है जिसको घुमाकर वह हाथ के कुशल स्पर्श से मिट्टी के तरह-तरह के बर्तन बना डालता है। सूरदास और परमानंददास की विरहिणी गोपियों ने अपने चित्त को 'चाक चढ़ा-सा' कहकर हर समय उसके उड़े-उड़े फिरते रहने की बात कही है[४४]। घट आदि पात्र बनाने, उन पर तरह-तरह की चित्रकारी करने के उपरांत सुखाने, वर्षा से बचाने, 'आँवे' में ईंधन से आग जलाकर, उनको घुमा-घुमाकर सब ओर अच्छी तरह पकाने आदि कुम्हार के सभी कार्यों का विवरण सूरदास ने एक पद में विस्तार से दिया है जिसमें विधाता को 'कुलाल' मान कर रूपक बाँधा गया है[४५]।

ञ. *मनिहार*—चूड़ी बेचनेवाला 'मनिहार' कहलाता है। अष्टछाप-काव्य में इस शब्द का प्रयोग नहीं है, परंतु व्रजबालाओं के हाथ में 'चूड़ियाँ' सदैव पड़ी रहने की चर्चा हमारे कवियों ने की है[४६] और कृष्ण के उत्पातों से खीझ कर यशोदा

आन उतारी नंद गृह आँगन डयोढ़ी फलन सुहाई—परमा० ६७२।

४३.क. डा० राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार 'अष्टाध्यायी' ४-३-११८, में शिल्पकारों के अंतर्गत 'कुलाल' का भी उल्लेख है—'हिन्दू सभ्यता', पृ० १२४।

ख. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार 'अष्टाध्यायी' में 'कुलाल' तथा 'कुंभकार' शब्द प्रयुक्त हुए हैं और उसके द्वारा बनाये गये मिट्टी के पात्र 'कौलालक' कहे गये हैं—'इंडिया ऐज़ नोन टु पाणिनि', पृ० २३०।

४४.क. सदा रहत 'चित चाक चढ़यौ सो', गृह अँगना न सुहाई—सा० ३२००।

ख. सदा रहत 'चित चाक चढ़यौ' सो और न कछू सुहाय—परमा० ४४६।

४५. ऊधौ भली भई व्रज आए।
बिधि 'कुलाल कीन्हे काँचे घट' ते तुम आनि 'पकाए'।
'रँग दीन्हौ' हो कान्ह साँवरैं, 'अँग-अँग चित्र बनाए'।
यातैं 'गरे न नैन नेह तैं, 'अवधि अटा' पर छाए।
व्रज करि 'अँवा' जोग 'ईंधन' करि, सुरति 'आगि' सुलगाए।
फूँक उसाँस बिरह परजारनि सँग, ध्यान दरस सियराए—सा० ३७८१।

४६.क. किंकिनी कटि कुनित कंकन कर 'चुरी झनकार'—सा० वें०, पृ० ३४४।

ख. नवग्रह गजरा जगमगै नव पोहोंची चुरियन आगे—परमा० ६१६।

के पास उलाहना ले जानेवाली गोपियाँ 'गोद भर-भर फूटी चूड़ी' ले जाती हैं[४७]। परमानंददास की एक गोपी कृष्ण द्वारा चूड़ियाँ तोड़ दिये जाने पर खीझकर कहती है कि मैं तो अभी नयी चूड़ियाँ पहन कर आयी थी[४८]। निस्संदेह वे चूड़ियाँ किसी 'मनिहार' या 'मनिहारिनि' से ही खरीदी गयी होंगी।

ट. *गंधी*—तरह-तरह के इत्र-फुलेल आदि बनाने और बेचनेवाले को 'गंधी' और उसकी स्त्री को 'गंधिनि' कहते हैं। बिहारी ने जिस प्रकार स्पष्ट रूप से 'गंधी' के इत्र बेचने की बात कही है[४९] वैसा कोई उल्लेख अष्टछाप-काव्य में नहीं मिलता। सूरदास के एक पद में चंदन, अरगजा, केसर आदि लेकर दूलह कृष्ण के दर्शन करने जाने को 'गंधिनि' की कामना व्यक्त की गयी है[५०]। नंददास के अनुसार 'प्रेम' गंधी का वह सौदा नहीं जो जन-जन के हाथ बिकता है[५१]।

ठ. *तमोली और चोलिनी*—पान का 'बीड़ा' लगाकर बेचनेवाले को 'तमोली' और उसकी स्त्री को 'तमोलिनी' या 'चोलिनि' कहा जाता है। नंददास के एक पद में 'बीरी' खिलानेवाले 'तमोली' की चर्चा है,[५२] तो सूरदास ने कृष्ण-विवाह-प्रसंग में 'चोलिनि' के रूप में नंदनंदन को 'बीरा' देने जाकर उनके दर्शन की कामना व्यक्त की है[५३]।

ड. *तेली*—तिल, सरसों आदि को कोल्हू में पेरकर तेल निकालने और

४७. 'फूटी चुरी गोद भरि ल्यावैं', फाटे चीर दिखावैं गात—सा० १०-३३२।

४८. अबहीं नई पहिरि हौं आई चुरियाँ गईं सब फूट—परमा० ६३५।

४९.क. कर लै सूँघि, सराहि कै, रहे सबै गहि मौन।
गंधी, गंध गुलाब को, गँवई गाहक कौन—'बिहारी-बोधिनी' ६६३।

ख. करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
रे गंधी, मतिअंध तू, अतर दिखावत काहि—'बिहारी-बोधिनी' ६७६।

५०. चंदन अरगजा सूर केसरि धरि लेउँ।
'गंधिनि' ह्वै जाउँ निरखि, नैननि सुख देउँ—सा० १०७५।

५१. प्रेम एक इक चित्त सौं, एकहि संग समाइ।
'गंधी को सौदौ' नहीं जन-जन हाथ बिकाइ—नंद०, रूप०, पृ० १७।

५२. 'बीरी करि-करि मोहिं खवावै' लैयो संग 'तमोली'—नंद०, परि०, १०।

५३. नँदनँदन प्यारे कौं, 'बीरा करि लेउँ'।
'चोलिनि' ह्वै जाउँ निरखि, नैननि सुख देउँ—सा० १०७५।

बेचने का व्यवसाय करनेवाला 'तेली' कहलाता है। इसका मुख्य सहायक है वह 'बैल' या 'वृष' जो कोल्हू के चारों ओर दिन-रात घूम-घूमकर तेल पेरा करता है। अष्टछापी कवियों में केवल सूरदास ने 'तेली' की तो नहीं, उसके 'वृष' की चर्चा अवश्य की है[५४]।

ढ. *पारधी*—पक्षी पकड़ने और उनको बेचने का व्यवसायी 'पारधी' या 'ब्याध' कहलाता है। सामान्यतया यह जाल लगा कर पक्षियों को पकड़ता है, लेकिन सूरदास के अनुसार, वृक्षों की ऊँची डाल पर बैठे पक्षी को कभी-कभी बाण से घायल करके यह शिकार भी करता है[५५]। जाल में पक्षियों को फँसाने के लिए ब्याध एक स्थान पर उनके लिए 'चारा' या 'दाना' डालता है और स्वयं आड़ में छिपकर बैठ जाता है। उसके एक हाथ में 'लकुट' या लकड़ी रहती है जिसमें 'लासा' नामक एक चिपचिपा पदार्थ लगा रहता है[५६] और दूसरे में पतली तीलियों का बना 'काँपा' रहता है। दाने के लोभ से किसी पक्षी के वहाँ आने पर ज्योंही उसके पंख लासे से चिपकते हैं, वह उड़ने में असमर्थ हो जाता है। तब ब्याध काँपे से दबाकर उसे पकड़कर 'पिंजड़े' में बंद कर लेता है[५७]। 'पारधी' या 'ब्याध' के इस कार्य की चर्चा सूरदास की गोपियाँ कृष्ण के 'रूप-कन लोभी' अपने नेत्रों की स्थिति के वर्णन में करती हैं[५८]। ब्याध के जाल में फँसे हुए

५४. माधौ जू, मन सबहीं बिधि पोच।

× × ×

'तेली के बृष लौं नित भरमत', भजत न सारँगपानि—सा० १-१०२।

५५. अब कैं राखि लेहु भगवान।

हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम-डरिया, 'पारधि साधे-बान'—सा० १-९७।

५६. बाण ने बेलों पर 'लासा' लगाकर गौरैया आदि पक्षियों के पकड़े जाने का वर्णन किया है—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्ष०, सां० अ०, पृ० १८२।

५७. जायसी ने भी ब्याध के कार्य का वर्णन इससे मिलता-जुलता ही किया है।

—पद्मा०, संजी० व्या०, ६६, ७१, ७२, ७७ आदि।

५८.क. लोचन भए 'पखेरू' माई।

'लुब्धे' स्याम-रूप 'चारा कौं', अलक-'फंद परे जाई'।
मोर मुकुट 'टाटी' मानौ, यह 'बैठनि' ललित त्रिभंग।
चितवनि 'लकुट, लासा' लटकनि-प्रिय, 'काँपा' अलक तरंग।
'दौरि गहनि' मुख मृदु-मुसुकावनि, लोभ-'पींजरा' डारे।

पक्षियों को कभी-कभी सज्जन और पुण्यात्माजन छुड़ा भी देते हैं। उस समय पक्षियों को जैसी प्रसन्नता होती है, उसका अनुभव, सूरदास के अनुसार, जरासंध के मारे जाने पर उसके यहाँ बंदी राजा स्वतंत्र होने पर करते हैं[५९]।

ए. *कसाई*—पशुओं को मारकर उनका मांस बेचनेवाला 'कसाई' कहलाता है[६०]। अष्टछाप-काव्य में इसके व्यवसाय के संबंध में तो नहीं लिखा गया है, परंतु शिशु कृष्ण को मारने के लिए कंस के सामने स्वयं प्रस्तुत होनेवाले 'श्रीधर बाँभन' के कर्म को सूरदास ने 'कसाई' के कर्म-सा बताया है[६१]।

४. *जीविका के विविध साधन-रूप*—

अपने सीमित अर्थ में 'वाणिज्य-व्यवसाय' का संबंध शुद्ध व्यापारी-वर्ग से है जो मुख्यतः वस्तु-विशेष के उत्पादन अथवा क्रय-विक्रय के द्वारा धनार्जन करता है; परंतु इसके व्यापक अर्थ का संबंध समाज के उन सभी व्यक्तियों से है जो जीवकोपार्जन में समर्थ हैं और किसी भी प्रकार का कार्य करके जीवन-यापन और परिवार का भरण-पोषण करते हैं। यद्यपि भारतीय संस्कृति में आचार्य, वैद्य-जैसे वर्गों को व्यवसायी नहीं माना गया है और समाज का यथार्थ कल्याण भी इसी दृष्टिकोण को अपनाये रहने में है; परंतु इस आदर्श का

सूरदास मन-'व्याध' हमारौ, गृह-बन तैं जु बिसारे—सा० २२७२।

ख. कपट-'कन दरस खग' नैन मेरे।
'चुननि निरखनि तुरत आपुहीं उड़ि मिले', पर्‍यौ चारा पेट मंत्र केरे।
× × ×
मृदु हँसनि 'ब्याध', पढ़नि मंत्र बोलनि मधुर, स्रवन धुनि सुनत।
इत कौं न आवैं—सा० २२७३।

५९. 'बिषम जाल' बध बाँधि 'ब्याध लौं', नृप 'खग अवलि' बटोरी।
जनु सु अहेरी हति जादौपति, गुहा 'पींजरी तोरी'।
निकसे देत असीस एक मुख, गावति कीरति गोरी।
जनु उड़ि चले बिहंगम के गन, कटे कठिन पग डोरी—सा० ४२१६।

६०. श्री टी० डब्ल्यू० ह्राइस डेविड्स के अनुसार 'बौद्ध काल' में भी 'कसाई' की दूकानों की चर्चा अनेक स्थानों पर मिलती है—'बौद्ध भारत', पृ० ६५।

६१. 'श्रीधर बाँभन करम कसाई'। कह्यौ कंस सौं बचन सुनाई।
'प्रभु, मैं तुम्हरौ आज्ञाकारी'। नंद-सुवन कौं आवौं मारी—सा० १०-५७।

निर्वाह इस देश में भी, गुरुकुलों की संख्या घट जाने पर, न हो सका और कालांतर में ये वर्ग भी राज्य के वेतनभोगी हो गये। आरंभ में धनी-मानी वर्ग से धनार्जन करके समाज के सामान्य वर्ग की निःशुल्क सेवा के क्रम का निर्वाह आचार्य और वैद्य किया करते थे। यह बात किसी अतीत की नहीं, पचास-साठ ही वर्ष पहले की है। परंतु आज इनके कार्य शुद्ध 'व्यवसाय' ('प्रोफेशन') बन गये हैं जिसकी पराकाष्ठा इस बात में देखी जा सकती है कि समाज के कल्याण से अधिक ध्यान ये लोग अपनी आय के साधन जुटाने और उनको बढ़ाने की ओर देते हैं। इसी नवीन दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर जीविकोपार्जन में समर्थ समाज के विभिन्न वर्गों के व्यवसाय और उनकी जिविका के साधन-रूपों की चर्चा, अष्टछाप-काव्य के आधार पर यहाँ की गयी है। यद्यपि यह ठीक है कि शुद्ध व्यापारिक दृष्टि से किया गया विविध वर्गों का वर्गीकरण भारतीय सांस्कृतिक दृष्टिकोण रखनेवाले आलोचकों को कुछ खटक सकता है, तथापि अष्टछाप-काल में प्रचलित जीविका के भिन्न-भिन्न साधन-रूपों से एक साथ परिचय प्राप्त करने के लिए इसी प्रकार का विभाजन सुगम और सुबोध समझकर ही ऐसा करने के लिए इन पंक्तियों की लेखिका को बाध्य होना पड़ा है; अस्तु।

ऊपर जिन व्यवसायियों की चर्चा की गयी है, उनमें प्रायः सभी किसी न किसी वस्तु का व्यापार करते हैं। कोई दूसरों से कुछ खरीद कर अन्यत्र बेचता है, कोई स्वयं वस्तु का उत्पादन करके उसकी बिक्री का प्रबंध करता है। इनके अतिरिक्त समाज में अनेक व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो वस्तु-विशेष की खरीद या बिक्री तो नहीं करते, परंतु समाज की सेवा अपनी बुद्धि, योग्यता, कला-ज्ञान अथवा शारीरिक श्रम द्वारा करते हैं जिसके बदले में उन्हें 'धन' मिलता है। ऐसे जीविकोपार्जकों को, स्थूल रूप से, दो वर्गों में रखा जा सकता है—बुद्धिजीवी वर्ग और श्रमजीवी वर्ग।

क. *बुद्धिजीवी जीविकोपार्जक*—इस वर्ग में मुख्यतः वे जीविकोपार्जक आते हैं जिनके कार्य में बुद्धि और अभ्यास का अत्यधिक महत्व होता है। अध्ययन की सुविधा के लिए इस वर्ग के व्यक्तियों को पुनः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—मान्य वर्ग और सामान्य वर्ग।

अ. *मान्य वर्ग*—इस वर्ग में वे जीविकोपार्जक आते हैं जिनके जीवन का

अधिकांश भाग शास्त्रीय और व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते ही बीतता है। अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित इस वर्ग के जीविकोपार्जकों में आचार्य और वैद्य प्रमुख हैं।

य. *आचार्य*—अष्टछाप-काव्य में दो आचार्यों का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है; एक, संडामर्क का और दूसरे, संदीपन का। प्रथम की 'चटसार' में राजनीति पढ़ने के लिए प्रह्लाद को भेजा गया था[६२] और द्वितीय के तपोवन में कृष्ण विद्या पढ़ने गये थे[६३]। जिस रूप में हिरण्यकशिपु द्वारा संडामर्क के बुलाये जाने की चर्चा है, उससे जान पड़ता है कि वे राज्य की ओर से वेतनभोगी आचार्य थे; परंतु संदीपन गुरु से कृष्ण हाथ जोड़कर गुरु-दक्षिणा माँगने की प्रार्थना करते हैं[६४]।

र. *वैद्य*—रोगों का उपचार करके जीविकार्जन करनेवाला 'वैद्य' कहलाता है। अष्टछाप-काव्य में वैद्य की चर्चा आचार्य-वर्ग से कहीं अधिक है। सूरदास ने दो पौराणिक वैद्यों की चर्चा की है—एक हैं अश्विनीकुमार और दूसरे हैं सुखेन। प्रथम ने च्यवन ऋषि के नेत्रों का उपचार किया था[६५] और द्वितीय ने शक्ति लगने से लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने पर उन्हें जिलाया था[६६]। वैद्य सुखेन को लक्ष्मण के रोग का उपचार करने पर क्या मिला, इसकी चर्चा अष्टछाप-काव्य में नहीं है, परंतु अश्विनीकुमारों को च्यवन ऋषि ने अपने कराये गये यज्ञों में सदैव भाग देने का वचन दिया था[६७]।

६२. पाँच बरस की भई जब आइ। 'संडामर्कहिं लियौ बुलाइ'।
'तिनकैं सँग चटसार पठायौ'। राम नाम सौं तिन चित लायौ।
संडामर्क रहे पचि हार। राजनीति कहि बारंबार—सा० ७-२।

६३. अंतरजामी 'कुँवर कन्हाई'।
'गुरु गृह पढ़त हुते जहँ बिद्या', तहँ ब्रज-बासिनि की सुधि आई—सा० ३४११।

६४. गुरु सौं कह्यौ जोरि कर दोऊ, 'दछिना कहौ सो देउँ मँगाई।
गुरु-पतिनी कह्यौ पुत्र हमारे, मृतक भये सो देहु जिवाई।
आनि दिए गुरु-सुत जमपुर तैं, तब गुरुदेव असीस सुनाई—सा० ३४११।

६५. 'अस्विनि-सुत' इहिं अवसर आए। करि प्रनाम, यह बचन सुनाए।
जो कछु आज्ञा हमकौं होइ। छाँड़ि बिलंब, करैं अब सोइ।
'कह्यौ, दृगनि कौ करौ उपाय। तुरत नेत्र तिन दिए बनाइ'—सा० ६-३।

६६. कह्यौ तब हनुमत सौं रघुराई।
दौनागिरि पर आहि सँजीवनि, 'बैद सुषेन बताई'—सा० ६-१४६।

६७. कह्यौ, हम जज्ञ-भाग नहिं पावत। 'वैद्य' जानि हमकौं बहरावत।

वैद्यक विषयक अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग अष्टछापी कवियों ने ऊधव-गोपी-संवाद में किया है। ऊधव को अपनी ही बकते देखकर गोपियाँ व्यंग्यपूर्वक कहती हैं कि तुमको वात, पित्त और कफ के व्यक्तिक्रम से 'त्रिदोष' हो गया है तभी तुम इस प्रकार की बकवाद लगाये हो। अपने इस 'बड़े रोग' का मथुरा जाकर उपचार कराओ; क्योंकि इस गाँव में न तो 'मधु-रिपु जैसे बड़े बैद' हैं और न नाना भाँति के 'भेषज' ही हैं[६८]। 'सूरसागर' के हनुमान-रावण-संवाद में 'सन्निपात' रोग का उल्लेख हुआ है। इस रोग के होने पर रोगी बराबर बका करता है। रावण को भी बराबर बकते देखकर हनुमान कहते हैं कि तुझे 'सन्निपात' हो गया है[६९]। ऊधव-गोपी-संवाद में 'कफ' के व्यतिक्रम का 'राजरोग' होना एक पद में वर्णित है और गोपियाँ कहती हैं कि इस रोग में 'दही' खिलाना वैसी ही उल्टी बात है जैसी विरहिणियों को परमार्थ का उपदेश देना[७०]।

सूरदास के एक पद में पथिक द्वारा 'कालिंदी' के ज्वर-पीड़ित होने की सूचना हरि से कह देने का निवेदन किया गया है और इस प्रकार 'ज्वर' तथा उसके उपचार की चर्चा विस्तार से करने का अवसर कवि को मिल गया है। ज्वर की अधिकता से नायिका का 'काला' और दुर्बल हो जाना, हर समय तड़पन और बेचैनी होना, कभी-कभी पसीना बहना, वस्त्रों का मलिन, शरीर का कांतिहीन और बालों का रूखा-सूखा होना, चित्त का हर समय उड़ा-उड़ा फिरना, कभी-कभी उसका बकने लगना आदि सभी बातें कवि ने कालिंदी पर घटित की हैं। 'ज्वर के उपचार' के लिए 'चूर्ण'

रिषि कह्यौ, मैं करिहौं जहँ जाग। दैहौं तुमहिं अवसि करि भाग—सा० ९-३।

६८. समुझि न परति तिहारी ऊधौ।
ज्यौं 'त्रिदोष' उपजैं जक लागत, बोलत बचन न सूधौ।
'आपुन कौ उपचार करौ' अति तब औरनि सिख देहु।
'बड़ौ रोग उपज्यौ' है तुमकौं भवन सबारैं लेहु।
ह्याँ 'भेषज' नाना भाँतिनि के अरु मधुरिपु से 'बैद'—सा० ३५२९।

६९. जोइ सोइ मुखहिं कहत, मरन निज जान,
जैसैं नर 'सन्निपात भएँ' बुध बखानैं—सा० ९-९७।

७०. परमारथ 'उपचार' कहत हौ, बिरह - व्यथा है जाहि।
जाकौं 'राज रोग कफ' व्यापत, दह्यौ खवावत ताहि—सा० ३७२५।

की बात कहना भी वह नहीं भूला है[७१]। इसी प्रसंग में श्री जगन्नाथदास रत्नाकर का वह प्रसिद्ध पद भी स्मरण हो आता है जिसमें गोपियाँ अपने 'विषम-वियोग-ज्वर' से पीड़ित होने की बात कहकर प्रियतम के 'सुदर्शन' द्वारा उपचार न करने का उलाहना ऊधव से देती हैं; अस्तु[७२]। हित की बात कही जाने पर भी अहित की जान पड़ना—बुद्धि-भ्रम-जैसा भयंकर रोग बढ़ जाने पर रोगी की मृत्यु तक की आशंका होने लगती है। सूरदास की गोपियों को भी आशंका होती है कि ऊधव को यही भयंकर रोग हो गया है; अतएव वे उनको कोई 'सुबैद' शीघ्र ही खोज कर उपचार कराने की सलाह देती हैं[७३]। एक अन्य पद में सूरदास ने ज्ञान रूपी 'सुभेषज' के खाने से अज्ञान रूपी 'मूरछा' का मिटना बताया है[७४]।

७१. देखियति कालिंदी अति कारी।
अहौ पथिक, कहियौ उन हरि सौं, भई 'बिरह जुर जारी'।
गिरि प्रजंक तैं गिरति धरनि धँसि, तरँग तलफ तन भारी।
'तट बारु उपचार चूर', जल पूर प्रस्वेद पनारी।
बिगलित कच कुस काँस कूल पर, पंक जु काजल सारी।
भौंर भ्रमत अति 'फिरति भ्रमित मति', दिसि दिसि दीन दुखारी।
निसि दिन चकई पिय जु रटति है, भई मनौ अनुहारी—सा० ३९६१।

७२. 'रस के प्रयोगनि' के सुखद सुजोगनि के,
जेते 'उपचार' चारु मंजु सुखदाई हैं।
तिनके चलावन की चरचा चलावै कौन,
देत न 'सुदर्सन' हूँ यौं सुधि बिसराई हैं।
करत उपाय ना सुभाय लखि नारिनि कौ,
भाय क्यों अनारिनि कौ भरत कन्हाई हैं।
ह्याँ तौ 'बिषम ज्वर-बियोग' की चढ़ाई यह,
'पाती कौन रोग की पठावत दवाई' हैं—'ऊद्धव-शतक' ३४।

७३. ऊधौ तुम 'अपनौ जतन करौ'।
हित की कहत कुहित की लागति, कत बेकाज ररौ।
'जाइ करौ उपचार आपनौ', हम जु कहति हैं जी की।
'कछु वै कहत कछुक कहि आवत', धुनि दिखियत नहिं नीकी।
× × ×
मथुरा गहौ बेगि इन पाइनि, 'उपज्यौ है तन रोग'॥
सूर सु 'बैद बेगि टोहौ' किन, 'भए मरन के जोग'—सा० ३६११।

७४. सूर मिटै अज्ञान-'मूरछा', ज्ञान-'सुभेषज' खाएँ—सा० २-३२।

नेत्र के रोग-विशेष की चर्चा भी सूरदास ने की है जिसमें नेत्रों में 'बयारि' के भर जाने से वे हर समय खुले रहते हैं, कभी उनके पलक नहीं लगते। इस रोग में बड़ी पीड़ा होती है और किसी तरह कल नहीं पड़ती। इस रोग का उपचार 'सुअंजन आँजना' कवि ने बताया है[७५]। च्यवन ऋषि के नेत्रों का उपचार अश्विनी-कुमार ने किया था। अतएव विरह के कारण 'निमेष न लगने के अपने नेत्र-रोग' का उपचार कराने के लिए सूरदास की गोपियाँ ऊधव से अश्विनीकुमार रूपी कृष्ण से शीघ्र ही मिला देने का निवेदन करती हैं[७६]। परमानंददास ने 'रोग कुछ और उपचार' कुछ होना बहुत बुरा बताया है[७७]। वैद्य-विशेष या रसायनी[७८] द्वारा पारे की सहायता से सोने की भस्म बनाये जाने की चर्चा भी अष्टछाप-काव्य में हुई है[७९]।

आ. सामान्य वर्ग—इस वर्ग के जीविकोपार्जकों के कार्य में भी अभ्यास और अनुभव का स्थान यद्यपि कम आवश्यक नहीं होता, तथापि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को इनकी आवश्यकता पूर्व वर्ग की अपेक्षा कम ही होती है। हस्तकौशल की दृष्टि से इस वर्ग के व्यवसायियों को पुनः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—एक, कलाकार वर्ग और दूसरा, अन्य वर्ग।

य. कलाकार वर्ग—अष्टछाप-काव्य में वर्णित जीविकोपार्जकों में से इस वर्ग

७५. और सकल अंगनि तैं ऊधौ, अँखियाँ अधिक दुखारी।
'अतिहिं पिराति' सिराति न कबहूँ, बहुत जतन करि हारी।
मग जोवत 'पलकौ नहिं लावतिं', बिरह बिकल भईं भारी।
'भरि गइ बिरह बयारि' दरस बिनु, निसि दिन रहतिं उघारी।
ते अलि, अब ये ज्ञान 'सलाकैं', क्यौं सहि सकतिं तिहारी।
सूर 'सुअंजन आँजि' रूप रस, आरति हरहु हमारी—सा० ३५७०।

७६. अनुदिन नयन निमेष न लागत, 'भयौ बिरह अति रोग'।
मिलवहु 'कान्ह कुमार अस्विनी' मिटै सूर सब रोग—भ्रमर० १६७।

७७. जो पैं राम कृष्न ह्याँ नाहीं ज्ञान कहा लै कीजे।
औषद आन रोग आनें कुछ झूठो यह उपचार।
परमानंद स्वामी के बिछुरे ब्रज चाँप्यो दुख भार—परमा० २४४, हस्त० १०६।

७८. 'रसायन वैद्य' की चर्चा 'हर्ष-चरित' में भी है—हर्ष०, सां० अ०, पृ० २६।

७९. जैसैं 'हाटक लै रसाइनी, पारहिं आगि दई'।
जब मन लग्यौ दृष्टि तब बोल्यौ, सीसी फूटि गई—सा० ३२६६।

में चित्रकार, मूर्तिकार, वास्तु-कलाकार और स्वर्णकार को रखा जा सकता है जिनके कार्य का मूल्य उनके हस्तकौशल पर निर्भर करता है।

१. *चित्रकार*—अष्टछाप-काव्य में यद्यपि 'चित्रकार' का स्पष्ट उल्लेख नहीं है तथापि 'भीति बिना चित्र' या 'चित्र की पूतरी'-जैसे उल्लेखों से[८०] स्पष्ट है कि उनका ध्यान चित्रकार के व्यवसाय की ओर अवश्य था।

२. *मूर्तिकार*—'चित्रकार' के समान 'मूर्तिकार' की भी चर्चा अष्टछापी कवियों ने स्पष्ट रूप से नहीं की है; परंतु 'पाहन की पूतरी'-जैसे उनके उल्लेख[८१] मूर्तिकार के व्यवसाय का स्मरण करा देते हैं।

३. *वास्तु-कलाकार*—सभी अष्टछापी कवियों ने अनेक भव्य भवनों का उल्लेख अपने काव्यों में किया है जिससे वास्तुकलाकारों के व्यवसाय का स्पष्ट परिचय मिलता है।

४. *स्वर्णकार*—स्वर्ण या सोने के आभूषण आदि बनानेवाले को 'स्वर्णकार' कहते हैं[८२]। अष्टछाप-काव्य में इसके लिए 'सुनार' शब्द प्रयुक्त हुआ है[८३] और उसकी स्त्री को 'सुनारि' कहा गया है जो दूलह श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए भूषण गढ़कर ले जाने की कामना करती है[८४]। 'स्वर्णकार' या 'सुनार' के मुख्य दो कार्य हैं—गढ़ना और जड़ना। इसलिए 'गढ़ैया'[८५] और 'जड़ैया'[८६] का उल्लेख

८०.क. ऐसे कहैं नर-नारि।
'बिना भीति चित्रकारि' काहे को देखैं मैं कान्ह कहा कहौं सहिए—सा० वें०१२७३।
ख. जल बिनु तरँग 'चित्र बिनु भीतिहिं', बिनु चेतहिं चतुराई—सा० ३६३१।
ग. हम तौ भईं 'चित्र की पुतरी' सुन्न सरीरहिं दाहत—सा० ३६०६।

८१. ज्यौं 'ऊजर खेरे की पुतरी', को पूजै को मानै—सा० ४०४४।

८२. पाणिनि - काल का 'स्वर्णकार' स्वर्ण की परीक्षा करता था और उसे आग में तपा कर गहने गढ़ता था—'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि', पृ० २३४३।

८३.क. अनगढ़ सोना ढोलना (गढ़ि), ल्याए चतुर 'सुनार'—सा० १०४०।
ख. बिसकर्मा सूतहार, रच्यौ काम ह्वै 'सुनार'—सा० १०-४१।

८४. बृन्दाबन चंद कौं मैं, भूषन गढ़ि लेउँ।
ह्वै 'सुनारि' जाउँ निरखि, नैननि सुख देउँ—सा० १०७५।

८५. आनि धरयौ नंद - द्वार, अतिहीं सुंदर सुढार,
ब्रज-बधू कहैं बार-बार धन्य रे 'गढ़ैया'—सा० १०-४१

८६. पँचरँग रेसम लगाउ, हीरा मोतिनि मढ़ाउ,

सूरदास ने अलग-अलग किया है। इनके एक पद में 'कनक की कलई' का भी उल्लेख हुआ है जो कुछ समय पश्चात् उतर जाती है[८७]।

२. *अन्य व्यवसायी*—इस वर्ग में अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित दरजी, बढ़ई, रँगरेज, रजक आदि जीविकोपार्जक आते हैं जिनके कार्यों में उक्त कलाकार-वर्ग की तुलना में कम हस्तकौशल अपेक्षित होता है।

१. *दरजी*—वस्त्र सीने का व्यवसाय करनेवाला 'दरजी' होता है जिसका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में कृष्ण के मथुरा पहुँचने पर, धनुष-भंग लीला के पूर्व, उनके शरीर की नाप के वस्त्र पहनाने में हुआ है[८८]। 'दरजी' की स्त्री 'दरजिन' की कामना, सूरदास के एक पद में दूलह श्रीकृष्ण के उपयुक्त 'बागे' रचकर उनके दर्शन की बतायी गयी है[८९]। वस्त्र सीने के पूर्व 'दरजी' कपड़े का 'ब्योंत' लगाता है। सूरदास के एक पद में विरहिणी गोपियों ने 'तन' को 'ब्योंत' और विरह को 'दरजी' बताया है[९०]।

२. *बढ़ई*—काष्ठ-शिल्पी को 'बढ़ई' कहते हैं। इसको कृष्ण-जन्म पर 'बढ़ैया' कहकर सूरदास ने चंदन की लकड़ी को भली भाँति 'खरादकर' पालना गढ़ लाने की आज्ञा दिलायी है[९१]। उनके एक अन्य पद में इसे 'बाढ़ई' भी कहा गया है[९२]।

बहु बिधि जरि करि जराउ, ल्याउ रे 'जरैया'—सा० १०-४१।

८७. देखौ माधौ की मित्राइ।
आई 'उघरि कनक कलाई' सी, दै निज़ु गए दगाइ—सा० ३१८६।

८८. आइ 'दरजी' गयौ बोलि ताकौं लयौ सुभग अंग साजि उन बिनय कीन्हे—सा० ३०४६।

८९. अपने गोपाल के मैं बागे रचि लेउँ।
'दरजिनि' ह्वै जाउँ निरखि नैननि सुख देउँ—सा० १०७५।

९०. सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु 'तन भयौ ब्योंत बिरह भयौ दरजी'—सा० ३४०१।

९१. पालनौ अति सुंदर गढ़ि ल्याउ रे 'बढ़ैया'।
सीतल चंदन कटाउ, धरि खराद रंग लाउ,
बिबिध चौकरी बनाउ, धाउ रे बनैया—सा० १०-४१।

९२. गढ़ि गुढ़ि ल्यायौ बाढ़ई, धरनी पर डोलाइ, बलि हालरु रे।
इक लख माँगे 'बाढ़ई', दुइ लख नंद जु देहिं, बलि हालरु रे—सा० १०-४७।

३. *रँगरेज*—वस्त्र रँगने का कार्य करनेवाले को 'रँगरेज' और उसकी स्त्री को 'रँगरेजिनी' कहा जाता है। सूरदास की एक मानिनी गोपी कृष्ण की 'पाग' को 'जावक' से रँगी देखकर व्यंग्यपूर्वक पूछती है—क्या कोई 'रँगरेजिनी' मिल गयी थी जिसने जावक से पाग रँग दी है[९३]।

४. *रजक*—वस्त्र धोकर जीविकार्जन करनेवाला 'रजक' कहा जाता है। मथुरा पहुँचने पर कृष्ण की मुठभेड़ सबसे पहले कंस के वस्त्र धोते हुए 'रजक' से होती है[९४] जिससे वे वस्त्र माँगते हैं[९५] और उसके धृष्टतापूर्वक उत्तर देने पर[९६] उसको मारकर नृप के सब वस्त्र लुटा देते हैं[९७]। सूरदास और परमानंददास की गोपियाँ ऊधव से व्यंग्यपूर्वक कहती हैं कि दिगंबरपुर में 'रजक' का क्या कार्य रह जायगा[९८] ? अर्थात् वहाँ तो उसकी आवश्यकता ही नहीं होगी।

ख. *श्रमजीवी जीविकोपार्जक*—इस वर्ग के जीविकोपार्जकों को भी दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—सामान्य श्रमजीवी और विशेष श्रमजीवी।

अ. *सामान्य श्रमजीवी वर्ग*—इस वर्ग में कहार, केवट, नाई, बारी, माली, दाई, धाइ आदि वे पुरुष और स्त्री सेवक-सेविकाएँ आती हैं जो सामान्यतया स्वामी के यहाँ जाकर अपना कार्य करती हैं।

९३. ऐसी कहौ रँगीलेलाल।
'जावक सौं कहँ पाग रँगाई, रँगरेजिनी मिली कोउ बाल'—सा० २४८५।
९४. नृपति-'रजक' अंबर-नृप धोवत।
देखे स्याम राम दोउ आवत, गर्व सहित तिन जोवत—सा० ३०३७।
९५. नृपति पास हम जाहिंगे, अंबर कछु माँगे—सा० ३०३८।
९६. कंस पास ह्वै आइयै, कामरी ओढ़ैया।
बहुरि अरस तैं आइकै, तब अंबर लीजौ।
धोइ धरी करि राखिहैं, भावै सो कीजौ—सा० ३०३८।
९७.क. 'रजक' मारि हरि प्रथम ही, नृप-बसन लुटाए।
रंग रंग बहु भाँति के, गोपनि पहिराए—सा० ३०४२।
ख. रंगभूमि में मल्ल पछारे कंस बाहु बल मार्यौ।
हत्यो 'रजक' लीने नाना पट, पूरब बैर सम्हार्यौ—परमा० ५१२।
९८.क. सूरजदास दिगंबरपुर तैं 'रजक' कहा ब्यौसाइ—सा० ३६५७।
ख. परमानंद दिगंबरपुर में 'रजक' कहा ब्योसाय—परमा० हस्त० २३०।

य. *कहार*—यों तो आज घरों में 'कहार' पानी भरने, बर्तन माँजने आदि के सेवा-कार्य के साथ-साथ 'डोली', 'बहँगी' या 'काँवरि' उठाने का काम भी करते हैं, परंतु अष्टछाप-काव्य में उनके दूसरे कार्य का ही उल्लेख है। सूरदास ने जड़भरत की कथा में रहूगण नामक नृपति के 'सुखासन' को उठाकर चलनेवाले 'कहारों' का वर्णन किया है जिनमें से एक के कुछ 'दुख' पा जाने पर उसकी जगह 'जड़भरत' को 'सुखासन' उठाना पड़ता है। एक तो अनभ्यास और दूसरे, पथ के जीवों को बचाकर चलने के कारण अन्य 'कहारों' का साथ वे ठीक से नहीं दे पाते[९९]। गो० तुलसीदास ने भी 'कहारों' को 'काँवरि' ढोनेवाला कहा है[२००]।

र. केवट—नाव चलाकर जीविकार्जन करनेवाला, अष्टछापी कवियों के अनुसार, 'केवट',[१] 'खेवट',[२] 'धीवर',[३] 'कनधार'[४] 'मल्लाह'[५] आदि कहलाता है।

९९. चढ़ि सुख-आसन नृपति सिधायौ। तहाँ 'कहार' एक दुख पायौ।
भरत पंथ पर देख्यौ खरौ। वाकै बढ़लैं ताकौं धरौ।
तिहिं सौं भरत कछू नहि कह्यौ। 'सुख-आसन काँधे पर गह्यौ'।
भरत चलै पथ जीव निहार। चलै नहीं ज्यौं चलैं 'कहार'।
नृपति कह्यौ, मारग सम आह। चलत न क्यौं तुम सूधैं राह।
कह्यौ 'कहारनि', हमैं न खोरि। नयौ 'कहार' चलत पग भोरि—सा० ५-४।

२००. भरि भरि काँवरि चले 'कहारा'—मानस०, बाल०, दो० ३०५।

१. नौका हौं नाहीं लै आऊँ।
× × ×
कृपासिंधु पै 'केवट' आयौ, कंपत करत सो बात—सा० ९-४१।

२. खेवनहार न 'खेवट' मेरैं, अब मो नाव अरी—सा० १-१८४।

३. मेरी नौका जनि चढ़ौ त्रिभुवन - पति राई।
× × ×
बार बार श्रीपति कहैं, 'धीवर' नहिं मानै—सा० ९-४२।

४. कहौ कपि, कैसैं उतरे पार ?
दुस्तर अति गंभीर बारि-निधि, सत जोजन बिस्तार।
× × ×
राम-प्रताप, सत्य सीता को, यहै नाव-'कनधार'—सा० ९-८६।

५. जैसैं बिनु 'मल्लाह' सुंदरी, एक नाउ चढ़ई।
बूड़त देह थाह नहिं चितवत, मिलतहू पति न दई—सा० ३२९६।

'करिया', 'खेवइया', 'नाविक', 'माँझी' आदि शब्द भी उसी के लिए प्रयुक्त होते हैं। अष्टछाप-काव्य में जिस प्रकार 'केवट' के पर्यायवाची शब्दों की अधिकता है, उसी प्रकार इस व्यापार की चर्चा भी आलोच्य कवियों ने अधिक विस्तार से की है। 'केवट' अथवा उसकी 'नाव' की चर्चा अष्टछाप-काव्य में मुख्यत: चार रूपों में है। प्रथम पौराणिक प्रसंग राम, लक्ष्मण और सीता के गंगा पार जाने से संबंध रखता है जिसमें केवट, श्रीराम के चरण-स्पर्श से अहल्योद्धार की बात जानकर, अपनी नाव के भी 'बधू'-रूप हो जाने के भय से, बिना उनके चरण धोये नाव पर बैठाने को तैयार नहीं होता[६]। इसी प्रसंग में अपने वर्ग की निर्धनता और नाव द्वारा जीविकार्जन की बात भी केवट कहता है[७]। 'सेमर-ढाक' का 'बेड़ा' बना देने का प्रस्ताव भी उसने किया है[८]।

'केवट' को दिया जानेवाला पारिश्रमिक 'उतराई' कहा गया है[९]। केवल नदी में ही नहीं, समुद्र में भी नाव चलने का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में मिलता है। सीता जब हनुमान से पूछती हैं कि 'सत जोजन विस्तार' वाला समुद्र कैसे पार किया, तब हनुमान ने 'राम-प्रताप' और 'सीता-सत्य' को 'नाव और कनधार' बताकर क्षण भर में ही पार हो जाने की बात कही है[१०]।

६.क. नौका हौं नाहीं लै आऊँ।
× × ×
चरन परसि पाषान उड़त हैं, कत बेरी उड़ि जात ?
जो यह बधू होइ काहू की, दारु-स्वरूप धरै।
छूटै देह, जाइ सरिता तजि, पग सौं परस करै—सा० ६-४१।
ख. मेरी नौका जनि चढ़ौ त्रिभुवनपति राई।
मो देखत पाहन तरे, मेरी काठ की नाई—सा० ६-४२।
७.क. मेरी सकल जीविका यामैं, रघुपति मुक्त न कीजै—सा० ६-४१।
ख. मैं निरबल बितबल नहीं, जो और गढ़ाऊँ।
मो कुटुंब याही लग्यौ, ऐसी कहँ पाऊँ।
मैं निर्धन कछु धन नहीं, परिवार घनेरौ—सा० ६-४२।
८. सेमर ढाकहिं काटि कै, बाँधौं तुम बेरौ—सा० ६-४२।
९. लै भैया केवट 'उतराई'—सा० ६-४०।
१०. कहौ कपि, कैसैं उतरे पार ?
दुस्तर अति गम्भीर बारि-निधि, सत जोजन बिस्तार।

दूसरा प्रसंग यमुना में 'खेवट' बनकर श्रीकृष्ण के नाव चलाने का है जो अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास की कल्पना है जिसमें 'उतराई' लेने की बात भी कही गयी है[११]। नाव खेते समय श्रीकृष्ण 'वृषभानुनंदिनी' की प्रतीक्षा भी करते हैं और दोनों की छवि देखकर 'सरिता-पानी' भी 'विथकित' हो जाता है[१२]।

'केवट'-संबंधी तीसरा उल्लेख सूरदास के विनय-पदों में मिलता है जिनमें 'भवसागर' में बिना 'खेवट' के अपनी असहाय अवस्था का वर्णन कवि करता है[१३]। उनके एक दूसरे पद में हरि-नाम को 'नौका' बताया गया है; भवसागर में डूबता हुआ व्यक्ति पारिवारिक मोह-ममता में फँसे रहने के कारण जिस पर चढ़ नहीं पाता[१४]।

चौथा प्रसंग गोपियों से संबंधित है। सूरदास के एक पद में गोपी-विशेष 'बढ़ी हुई नदी' में पलक रूपी 'पथिक' द्वारा धैर्य रूपी 'नाव' पकड़े न जा सकने की बात कहती है[१५]। उनके एक अन्य पद में अपने अश्रुओं से बाढ़ पर आयी हुई जमुना

राम-प्रताप, सत्य सीता को, यहै नाव-कनधार।
तिहिं अधार छिन मैं अवलंघ्यौ, आवत भई न बार—सा० ६-८६।

११. 'बैठे घनस्याम सुन्दर खेवत हैं नाव'।
आज सखी मोहन सँग खेलिबे को दाव।
जमुना गंभीर नीर अति तरंग लोलैं।
गोपिनि प्रति कहन लागे मीठे मृदु बोलैं।
पथिक, 'हम खेवट तुम लीजिए उतराई'—परमा० ७४४।

१२. 'जमुना जल खेवत हैं हरि नाव।
बेगि चलौ बृषभान-नन्दिनी अब खेलन को दाव।
नीर गंभीर देखि कालिन्दी पुनि-पुनि सुरत करावै।
बार बार तुव पंथ निहारत नैननि में अकुलावै।
सुनि के बचन राधिका दौरी आइ कंठ लपटानी।
परमानँद प्रभु 'छबि अवलोकत बिथक्यो सरिता पानी'—परमा० ७४५।

१३. खेवनहार न 'खेवट' मेरैं, अब मो नाव अरी—सा० १-१८४।

१४. अब कैं नाथ, मोहिं उधारि।
मगन हौं भव अंबुनिधि मैं, कृपासिंधु मुरारि।
× × ×
नाहिं चितवन देत सुत-तिय, 'नाम-नौका' ओर—सा० १-९९।

१५. चितवनि रोकैं हूं न रही।

को पार करके श्रीकृष्ण के ढिग जाने के लिए सेज को 'घर-नाँव' बनाने की बात विरहिणी को सूझती है[१६]।

ल. *नाई*—बाल काटकर जीविकार्जन करनेवाला 'नाई' कहलाता है जिसका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में नहीं है। 'नाई' जाति की स्त्री 'नाइनि' कहलाती है जो धनी परिवारों की महिलाओं की सेवा करती है। सूरदास के एक पद में 'नाइनि' को 'महावर' लगाने के लिए बुलाये जाने की बात कही गयी है[१७]।

व. *बारी*—दोने-पत्तल आदि बनाने-बेचने का व्यवसाय करनेवाला 'बारी' कहलाता है जिसकी स्त्री 'बारिनि' कृष्ण-जन्म पर 'बंदनवार' बाँधती बतायी गयी है[१८]।

श. *माली*—वाटिका अथवा उद्यान के रख-रखाव का कार्य और फूलों का व्यवसाय करनेवाला 'माली' कहलाता है। सूरदास ने कंस के 'माली' की चर्चा की है जो कृष्ण को देखते ही उनके चरणों पर गिरता और पुहुपमाला पहनाता है[१९]। 'सारावली' में इस 'माली' का नाम 'सुदामा' बताया गया है[२०]। 'माली' की स्त्री 'मालिनि' कहलाती है। कृष्ण-जन्म के अवसर पर 'बारिनि' की तरह सूरदास ने लक्ष्मी-सी सजी-धजी 'मालिनि' को भी 'बंदनमाला'[२१] और 'तोरना' बाँधते बताया है[२२]। कृष्ण-राधा-विवाह के प्रसंग में 'मालिनि', सूरदास के अनुसार, दूलह कृष्ण

स्याम सुंदर-सिंधु-सनमुख, सरित उमँगि बही।

× × ×

थके पल पथ, 'नाव-धीरज, परति नहिंन गही'—सा० १७६२।

१६. जब मैं पनघट जाउँ सखी री, वा जमुना कैं तीर।
भरि-भरि जमुना उमड़ि चलति है, इन नैनन कैं नीर।
इन नैननि कैं नीर सखी री, सेज भई घर-नाउँ।
चाहति हौं ताही पै चढ़ि कै, हरि जू कै ढिग जाउँ—सा० ३२७५।

१७. 'नाइनि' बोलहु नवरंगी 'ल्याउ महावर बेग'—सा० १०-४०।

१८. 'बारिनि बंदनबार बँधाई'—सा० १०-१९३।

१९. बीच 'माली' मिल्यौ, दौरि चरननि पर्यौ—सा० ३०५१।

२०. आगे मिल्यो 'सुदामा माली' फूल माल पहिराई—सा० ५०१।

२१. 'लछिमी-सी जहँ मालिनि बोलैं। बंदन-माला बाँधत डोलैं—सा० १०-३२।

२२. 'मालिनि बाँधै तोरना'—सा० १०-४०।

के लिए माला गूँथकर ले जाने की कामना रखती है[२३]।

ब. *दाई*—बच्चा जनाने का कार्य करनेवाली सेविका को 'दाई' कहा जाता है। कृष्ण-जन्म के अवसर पर 'दाई' के कभी 'कल साँझ' से[२४] और कभी 'अर्द्धरात्रि' से ही आ जाने का वर्णन सूरदास ने किया है। प्रौढ़ावस्था में पुत्र-जन्म बड़ी प्रसन्नता का अवसर माना जाता है; इसलिए दाई भी कभी 'कंचन-हार' के लिए[२५] और कभी 'मोतियों भरे थार' के लिए झगड़ा करती है[२६]। दाई यदि 'नार' काटने का कार्य शीघ्र ही न करे तो उसमें 'बयारि' भर जाने का डर रहता है[२७]। इसी-लिए उसकी सभी माँगें शीघ्र ही पूरी कर दी जाती हैं और वह 'नार' काट कर माता-पिता आदि को बधाई देती है[२८]।

स. *धाय*—जन्म के पश्चात् माता से किसी भी कारण बिछुड़ जानेवाले शिशु को जो स्त्री पालती है, सामान्यतया उसे 'धाय' कहते हैं। इसीलिए सूर-दास की यशोदा, देवकी के पास संदेशा भेजते समय अपने को कृष्ण की 'धाइ'

२३. (दूलह देखौंगी जाइ) उतरे संकेत बटहिं किहिं मिसि लखि पाउँ।
फूल गूँथि माला लै 'मालिनि' ह्वै जाउँ—सा० १०७५।

२४.क.दीजै बिदा, जाउँ घर अपनैं, 'काल्हि साँझ' की आई—सा० १०-१६।
ख.पूत भयौ जसुमति रानी कैं, 'अर्ध राति' हौं आई—सा० १०-१८।

२५.क.जसुदा, नार न छेदन दैहौं।
'मनिमय जटित हार ग्रीवा कौ, वहै आजु हौं लैहौं।
× × ×
बहुत दिननि की आसा लागी, झगरिनि झगरौ कीनौ।
मन मैं बिहँसि तबै 'नँदरानी हार हिये कौ दीनौ'—सा० १०-१५।
ख. झगरिनि, तैं हौं बहुत खिझाई।
'कंचन-हार दिएँ नहिं मानति', तुहीं अनोखी दाई—सा० १०-१६।

२६. हरि कौ नार न छीनौं माई।
पूत भयौ जसुमति रानी कैं, अर्धराति हौं आई।
अपने मन कौ भायौ लैहौं, 'मोतिनि थार भराई'।
यह औसर कब ह्वैहै फिरि कै, पायौ देव मनाई।
'उठी रोहिनी परम अनंदित हार रतन लै आई'—सा० १०-१८।

२७. बेगिहिं नार छेदि बालक को 'जाति बयारि भराई'—सा० १०-१६।

२८. 'नार छीनि तब सूर स्याम कौ, हँसि-हँसि देति बधाई'—सा० १०-१८।

कहती हैं[२९]।

आ. *विशेष श्रमजीवी वर्ग*—इस वर्ग में सारथी, महावत आदि वे सेवक आते हैं जिनकी सेवा का लाभ विशेष वर्ग ही उठा सकता है, सामान्य वर्ग नहीं। कृष्ण[३०] के अतिरिक्त रथ के हाँकनेवाले किसी अन्य 'सारथी' का वर्णन अष्टछाप-काव्य में दो - एक स्थलों पर ही है[३१]। हाथी के महावत का उल्लेख उसमें तीन रूपों में हुआ है। एक, कंस के यहाँ 'कुबलया' नामक हाथी के 'महावत' का[३२] जिसे 'गजपाल' भी कहा गया है[३३]। दूसरे, पावस-प्रसंग में गोपियों को चारों ओर उमड़ते हुए घन मदन के मत्त हाथी से जान पड़ते हैं जिनको पवन रूपी 'महावत' भी अपने 'अंकुस' से वश में नहीं कर पाता[३४]। तीसरे प्रसंग में विरहिणी गोपियों ने अपने मन को मत्त गज कहा है जिसका 'महावत', 'सतगुरु'; 'अंकुस', ज्ञान; और 'साँकर', 'सत्संग' को बताया गया है[३५]।

२६. सँदेसौ देवकी सौं कहियौ।
हौं तौ 'धाइ' तिहारे सुत की, मया करत ही रहियौ—सा० ३१७५।

३०. पारथ के 'सारथी' हरि आप भए हैं।
× × ×
बाएँ कर बाजि-बाग दाहिनि हैं बैठे।
हाँकत हरि हाँक देत गरजत ज्यौं ऐंठे—सा० १-२३।

३१. आपने बान सौं काटि ध्वज रुक्म कौ अस्व अरु 'सारथी' तुरत मारे—सा० ४१८३।

३२.क सुनिहि 'महावत' बात हमारी।
बार बार संकर्षन भाषत, लेत नहिं ह्याँ तैं गज टारी—सा० ३०५२।
ख. बात सुनत रिस भरयौ 'महावत', तुमहिं कहा इतनौ रे गारौ—सा० ३०५३।
ग. 'महावत' मत करही हाथी हातो—परमा० ५०५।

३३.क. क्रोध 'गजपाल' कैं ठठकि हाथी रह्यौ, देत अंकुस मसकि कह सकान्यौ।
—सा० ३०५४।
ख. क्रोध गजराज 'गजपाल कीन्हौ—सा० ३०५५।

३४. देखियत चहुँ दिसि तैं घन घोरे।
मानौ मत्त मदन के हथियनि, बल करि बंधन तोरे।
× × ×
रुकत न पवन महावतहूँ पै, मुरत न अंकुस मोरे—सा० ३३०३।

३५. माधौ, मन मरजाद तजी।

५. *अन्य वर्ग*—

इस वर्ग में आनेवाले व्यक्तियों को मुख्य रूप से पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है—गुणी, मन-रंजनकारी, प्रशस्तिगायक, याचक और तिरस्कृत वर्ग।

क. *गुणी*—इस वर्ग में आनेवाले जीविकोपार्जकों में प्रमुख है—'गारुड़ी' जिसका उल्लेख अष्टछापी कवियों में सूरदास और नंददास ने विशेष रूप से किया है; क्योंकि उनके परमाराध्य ही 'गारुड़ी' का अभिनय कर रहे हैं। 'गारुड़ी' का मुख्य कार्य है साँप का विष उतारना। 'मुझे काले ने डस लिया',[३६] राधा के मुख से इतना सुनते ही सखियाँ उसे लेकर घर आती और तत्काल गुनी 'बुलाने' को कहती हैं[३७]। नगर से बड़े-बड़े 'गुनी' अर्थात् 'गारुड़ी' बुलाये जाते हैं। वे सब अपना 'गुन' दिखा-दिखाकर थक गये, परंतु किसी के मंत्र से उसका विष नहीं उतरा[३८]। जब सब गारुड़ी हारकर चले जाते हैं[३९] तब श्याम को 'बेगि ही' बुलाने को कहा जाता है[४०]। राधा की माता, कृष्ण को लिवाने जाती है;[४१] क्योंकि उसको

ज्यौं गज मत्त जानि हरि तुमसौं, बात बिचारि सजी।
माथैं 'नहीं महावत सतगुरु, अंकुस ज्ञानहुँ टूट्यौ'।
धावत अघ-अवनी आतुर तजि, साँकर सतसँग छूट्यौ—सा० ४०३७।

३६. यह बानी कही सखियनि आगैं, मोकौं कारैं खाई—सा० ७४२।
३७. स्याम भुअंग डस्यौ हम देखत, ल्यावहु गुनी बुलाई—सा० ७४३।
३८. औरै दसा भई छिन भीतर, बोले गुनी नगर तैं।
सूर 'गारुड़ी गुन करि थाके', मंत्र न लागत थर तैं—सा० ७४४।
३९.क. चले सब 'गारुड़ी' पछिताइ।
नैंकहूँ नहि मंत्र लागत, समुझि काहु न जाइ—सा० ७४५।
ख. फुरै न मंत्र, जंत्र, गद नाहीं, चले 'गुनी गुन डारे'।
× × ×
निर्बिष होत नहीं कैसै हूँ, बहुत 'गुनी पचि हारे'—सा० ७४७।
४०.क. रोवति जननि कंठ लपटानी, सूर 'स्याम गुनराई'—सा० ७४३।
ख. सूर 'स्याम गारुड़ी' बिना को, जो सिर गाढ़ उतारै—सा० ७४७।
ग. 'ल्यावौ गुनी जाइ गोविंद कौं', बाढ़ी अतिहिं लहरि—सा० ७५०।
४१. बृषभानु की घरनि जसोमति पुकार्यौ।
× × ×
सुनी यह बात, मैं आई अतुरात, 'ह्याँ गारुड़ी बड़ौ है सुत तुम्हारौ'—सा० ७५१।

बताया गया है कि कृष्ण ने काले की डसी हुई एक 'बिटिनिया' को तुरंत जिला दिया था[४२]। यशोदा कृष्ण को बुलाकर राधा का विष झाड़ आने की बात कहकर पूछती हैं कि क्या तुझे कुछ जंत्र-मंत्र भी आता है[४३] ? श्याम स्वीकारात्मक उत्तर देते हुए कहते हैं कि मुझे तो ऐसा मंत्र आता है कि कैसे भी विषधर ने डसा हो, मैं जिला लूँगा[४४]। राधा के घर आकर उसका विष उतारने का अभिनय करते हुए कृष्ण कभी कुछ पढ़ते हैं, कभी उसके अंगों का स्पर्श करते हैं[४५] और तब राधा नेत्र उघारकर माता से पूछती है—यह सब क्या है[४६] ? पश्चात्, राधा की माता कृष्ण को कंठ से लगाकर, मुख चूमकर घर भेज देती है[४७]।

नंददास ने इस प्रसंग का वर्णन कुछ विशेषता के साथ किया है। राधा की सखियाँ उसे सिखाती हैं कि तू माता से 'नाग के काटने' की बात कहना, तब हम श्याम को बुला लायँगी[४८]। मूर्छित राधा को लेकर जब सखियाँ घर पहुँचती हैं तब वह दो घड़ी में आँख खोलकर वैसा ही कहती है जिससे माता तत्काल कोई

४२. महरि, 'गारुड़ी कुँवर कन्हाइ'।
'एक बिटिनियाँ कारैं खाई, ताकौं स्याम तुरतहीं ज्याई'—सा० ७५४।

४३. कहूँ राधिका कारैं खायौ जाहु न आयौ झारि।
'जंत्र-मंत्र कछु जानत हौ तुम', सूर स्याम बनवारि—सा० ७५५।

४४. मैया एक मंत्र मोहिं आवै।
बिषहर खाइ मरै जो कोऊ, मोसौं मरन न पावै—सा० ७५६।

४५. कछु पढ़ि-पढ़िकर, अंग परस करि, बिष अपनौ लियौ झारि।
सूरदास-प्रभु बड़े गारुड़ी, सिर पर डारी गारि—सा० ७५९।

४६. लोचन दए कुँवरि उघारि।
× × ×
बात बूझति जननि सौं री कहा है यह आज—सा० ७६०।

४७. बड़ौ मंत्र कियौ कुँवर कन्हाई।
बार-बार लै कंठ लगायौ, मुख चूम्यौ दियौ घरहिं पठाई—सा० ७६१।

४८. सखी कहै सुनि कुँवरि ! तोहि इक जतन बतावैं।
चुप रहि कै सुनि लेहु, उठौ अब घर लै जावैं।
कहियौ काटी नाग नैं, जौ पूँछे तो माइ।
हम हैं मीत गुपाल की, लैहैं तुरत बुलाइ—नंद०, श्याम०, पृ० ११८।

उपाय करने की बात कहते कहते स्वयं मूर्छित हो जाती है[४९]। तब एक-एक करके कई सखियाँ यशोदा के पास पहुँचती और सारी बात बताती हैं[५०]। यशोदा कृष्ण को बुलाकर तत्काल राधा के यहाँ जाकर उसका उपचार करने को कहती हैं[५१]। परंतु कृष्ण सहसा वहाँ जाने को सहमत नहीं होते और सखियों से इस प्रकार पूछते और बात कहते हैं जैसे वृषभानु और उनकी 'कुँवरि' राधा को जानते ही न हों[५२]। जब सखियाँ राधा का परिचय देती हैं तब कृष्ण अपने पारिश्रमिक का प्रश्न उठाते हैं। सामान्य 'गारुड़ी' अपने कार्य के बदले में 'अर्थ-द्रव्य' या 'पान-पात' पाकर संतुष्ट हो जाता है, परंतु कृष्ण को यह सब नहीं चाहिए। वे स्पष्ट कहते हैं कि राधा को 'जिलाने' के बदले में मुझे 'अर्थ-द्रव्य' या 'पान-पात' की अभिलाषा नहीं है। मैं तो यह चाहता हूँ कि राजा वृषभानु एक 'डोल' गढ़ाकर मुझे उस पर राधा के साथ बैठालें और सब सखियाँ हम दोनों को झुलावें। यदि मेरी यह बात मानी जाय तो मैं चल सकता हूँ[५३]। वृषभानु के यहाँ उनके पहुँचते ही राधा की माता ने पौरि तक आकर उनका स्वागत किया और सिंहासन पर बैठाकर पुत्री का हाथ दिखाया। तब कृष्ण ने 'दरस और फूँक' का अभिनय करके सारा विष हर

४९. गईं घरी द्वै बीति, लड़ैती नैन उघारे।
लै लै बड़े उसास, डसी मैया, मोहिं कारे।
'नाग डसी'! मैया सुनत, गिरी धरनि मुरझाइ।
बार-बार यौं भाखहीं, कोउ जलदी करौ उपाइ—नंद०, श्याम०, पृ० ११८।

५०. एक चली, द्वै-चार चलीं, गोकुल मैं आईं।
जसुमति बैठी जहाँ, बैठि तहँ बात चलाईं—नंद०, श्याम०, पृ० ११९।

५१. जित बरसानौ गाँउ, ग्वालिनी तित तैं आई।
एक कुँवरि बृषभान की, कारैं डसी कुठोर।
ब्याकुल ह्वै धरनी परी, नैन-पूतरी मोर
लाल तहँ जाइए—नंद०, श्याम०, पृ० ११९।

५२. को राजा बृषभानु हैं? कित बरसानौ गाम?
कौन तुम्हारी कुँवरि है? हौं जानत नहिं नाम—नंद०, श्याम०, पृ० १२०।

५३. वह राजा बृषभान, 'एक ही डोल गढ़ावै'।
मोहिं राधे बैठारि, सखिनि पै झोंटा द्यावै।
'अरथ-द्रव्य इच्छा नहीं, पान-पात नहिं लेउँ'।
जौ इतनौ कारज करैं, कुँवरि भली करि देउँ—नंद०, श्याम०, पृ० १२०।

लिया[५४]। इसके अनंतर ही 'लड़ैती' ने नेत्र खोल दिये[५५]।

ख. मनरंजनकारी जीविकोपार्जक—इस वर्ग में नट या बाजीगर, गनिका आदि नर-नारियों का वह समुदाय आता है जो अपनी कला आदि के प्रदर्शन से समाज अथवा व्यक्ति-विशेष का मनोरंजन करके, उनको सुख पहुँचाकर, जीविका का उपार्जन करता है।

अ. नट या बाजीगर—तरह-तरह के खेल करके जन-समाज का मनोरंजन करनेवालों में 'नट' और 'बाजीगर' का प्रमुख स्थान है। अष्टछापी कवियों ने 'नट' के 'कला दिखाने' की बात लिखी है[५६] और 'नट' का सहयोगी 'बाजीगर' को बताया है[५७]। 'नट' की स्त्री 'नटी' या 'नटिनी' स्वयं तो नाचती ही है, 'लकुट' लेकर 'कपि' को भी नचाती है। सूरदास की गोपियाँ कुब्जा को, 'नटिनी' के समान 'लकुटिया' लेकर 'कपि' को नचानेवाली ही कहती हैं[५८]। उनके एक पद में 'माया' को 'नटी' बताया गया है जो कपि की भाँति 'जीव' को 'कोटिक नाच' नचाती है[५९] और दूसरे में 'मृत्यु' को 'नटी' कहा गया है जो 'माया-रस-लंपट' जीव के 'मूँड़' पर चढ़कर नाचती है[६०]।

आ. गनिका—पुरुषों का मनोरंजन करनेवाली वारविलासिनी का उल्लेख भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से होता आया है। नगरों में 'गणिका संघों' की स्थापना की चर्चा तो उसमें मिलती ही है,[६१] सेना के साथ भी 'वारविलासिनियों'

५४. तब रानी उठि दौरि, पौरि तैं मोहन लाई।
सिंघासन बैठाइ, हाथ गहि कुँवरि दिखाई।
'दरस-फूँक दै बिष हर्यौ', निज सनमुख बैठाइ।
बहु धन वारति है सखी, मुदित कुँवरि की माइ—नंद०, श्याम०, पृ० १२१।

५५. सुनत बचन ततकाल, लड़ैती नैन उघारे—नंद०, श्याम०, पृ० १२१।

५६. ज्यौं बहु कला काछि दिखरावै, लोभ न छूटत 'नट' कैं—सा० १-२६२।

५७. कै कहुँ रंक, कहूँ ईस्वरता, 'नट-बाजीगर' जैसैं—सा० १-२६३।

५८. 'नटिनी' लौं कर लिए लकुटिया, कपि ज्यौं नाच नचावै—सा० ३६३६।

५९. 'माया नटी' लकुटि कर लीन्हें कोटिक नाच नचावै—सा० १-४२।

६०. मगन भयौ माया-रस लंपट, समुझत नाहिं हटी।
ताकैं मूँड़ चढ़ी नाचति है 'मीचऽति नीच नटी'—सा० १-६८।

६१. 'पाणिनि के सूत्र' ४.२.४० पर 'कात्यायन के वार्तिक और महाभाष्य' से पता

के होने की बात 'हर्षचरित' में कही गयी है[६२]। अष्टछापी कवियों ने 'गनिका' का वर्णन तीन प्रसंगों में विशेष रूप से किया है। प्रथम प्रसंग में वह 'शरीर का व्यापार' करनेवाली बतायी गयी है जिसके पुत्र की शोभा समाज में इस कारण नहीं होती कि उसके पिता का पता नहीं होता[६३]। परमानंददास के अनुसार ऐसी 'गनिका' धनी का ही आदर करती है[६४]। दूसरे, 'गनिका' की चर्चा होली-प्रसंग में की गयी है और प्रफुल्लित लताओं के सुमनों का रस-पान करते हुए भ्रमर 'गनिका' के गात का स्पर्श करते हुए 'बिट' अर्थात् कामुक पुरुष-से बताये गये हैं[६५]। इसी प्रसंग में सूरदास ने उसके लिए 'बेस्या' शब्द का प्रयोग किया है और होली के उन्माद में 'सठ - पंडित - बेस्या - बधू', सभी का एक-सा निर्लज्ज हो जाना कहा है[६६]। तीसरे, 'गनिका' का उल्लेख उस पौराणिक प्रसंग को लेकर किया गया है जिसमें 'सुवा' पढ़ाते समय उसके तर जाने की बात आती है[६७]। इस प्रसंग को लेकर परमानंददास ने व्यंग्य किया है कि वह 'गनिका' किस राजा की पुत्री थी जो उस पर इतनी कृपा की गयी[६८] ? जायसी ने 'गनिका' के लिए 'पतुरिया' शब्द का भी प्रयोग किया है[६९]।

इ. *प्रशस्तिगायक जीविकोपार्जक*—इस वर्ग में चारण, सूत, भाट, मागध आदि वे बंदीजन आते हैं जो राजा, स्वामी अथवा अन्य प्रतिष्ठित जन की प्रशस्ति गाकर अपनी जीविका का अर्जन करते हैं। इनका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में साम-[७०]

चलता है कि उनके समय में नगरों में गणिका-संघों की स्थापना हो चुकी थी।
—'प्राचीन भारतीय मनोरंजन', पृ० ९६।

६२. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्ष०, सां० अ०, पृ० १७८।

६३. 'गनिका-सुत सोभा नहिं पावत, जाके कुल कोऊ न पिता री'—सा० १-३४।

६४. 'गनिका आदरु करति पुरुष कौं देखति द्रव्य भरयौ'—परमा० काँक० १०५१।

६५. प्रफुलित लता जहाँ-जहँ देखत तहाँ-तहाँ अलि जात।
मानहुँ बिट सबहिनि अवलोकत, परसत 'गनिका गात'—सा० २८५३।

६६. 'सठ पंडित बेस्या बधू सबै भए इकसारि'—सा० २९१४।

६७.क. कीर पढ़ावत 'गनिका' तारी—सा० १-६७।
ख. सुवा पढ़ावत 'गनिका' तारी—सा० १-८९।

६८. कौन 'नृपति की हुती कुल बधू गनिका' को कहा पवित्र हियौ—परमा० ८९०।

६९. 'पतुरिनि' नाचैं किहें सो पीठीं—पदमा०, संजी० व्या०, ५२९-१।

७०.क. 'मंगध-बंदी-सूत लुटाए', गो-गयंद-हय चीर।

और कृष्ण-जन्मों[७१] के अवसरों पर यश-गान करने, दान पाने और आशीस देनेवालों के रूप में हुआ है। सूरदास के अनुसार 'रुक्मिणी-विवाह' के अवसर पर भी 'भाट' 'बिरद बोलते' हैं[७२]।

ई. *याचक वर्ग*—इस वर्ग में 'ढाढ़ी', 'जगा' और 'भिखारी' आते हैं जो हर्ष के अवसरों पर परिवार की कुशल मनाकर धन, वस्त्र आदि की याचना करते हैं।

१. ढाढ़ी—अष्टछाप-काव्य में 'ढाढ़ी' और उसकी स्त्री 'ढाढ़िनि' का उल्लेख श्रीराम आदि के जन्म के शुभ अवसरों पर नहीं, केवल कृष्ण-जमोत्सव-प्रसंग में हुआ है जो 'हुरके' या 'ढाढ़' बजाकर नाचते, बधावा गाते और नवजात शिशु की कल्याण-कामना करते हुए धन, वस्त्र आदि की याचना करते हैं[७३]।

देत असीस सूर, चिरजीवौ रामचंद्र रनधीर—सा० ९-१८।

ख. आज सखी रघुनन्दन जाये।

× × ×

'गुनि गंधर्व चारन जस बोलैं' भुवन चतुर्दस आनन्द पाये—परमा० ३४०।

७१.क. 'मागध-बंदी-सूत अति करत कुतूहल बार'।
आए पूरन आस कै, सब मिलि देत असीस—सा० १०-२७।

ख. 'मागध, सूत, भाट', धन लेत जुरावत रे—सा० १०-२८।

ग. 'आनंदित बिप्र, सूत, मागध, जाचकगन', उमँगि असीस सब हित हरि के।
—सा० १०-३०।

घ. 'बंदीजन अरु भिच्छुक सुनि-सुनि' दूरि-दूरि तैं आए।

× × ×

ते पहिरे कंचन-मनि-भूषन नाना बसन अनूप—सा० १०-३५।

ङ. घर-बाहर माँगैं सबै (हो), 'ठाढ़े मागध-सूत'—सा० १०-४०।

च. पर्बत सात तिलनि को कीन्हों रतननि ओघ मिलायो।
'मागध सूत और बंदीजन' ठौर-ठौर जस गायौ—सारा० ३६३।

छ. 'बंदी सूत' नंदराय घर-घर सबहिनि देत बधाई—परमा० ३।

ज. गुनी गनक 'बंदीजन मागध' पायो अपनो लाग—परमा० ५।

७२. 'भाट' बोलैं बिरद—सा० ४१८६।

७३.क. 'ढाढ़ी औ ढाढ़िनि गावैं, ठाढ़े हुरके बजावैं',
हरषि असीस देत मस्तक नवाइ के —सा० १०-३१।

सूरदास[७४] और नंददास ने[७५] अपने को नंदराय का 'ढाढ़ो' बताया है। चतुर्भुजदास ने दान में मिला सामान 'ढाढ़ी' को 'गयंद' पर लादकर ले जाते कहा है[७६]।

२. *जगा*—कृष्ण-जन्म के अवसर पर 'बृषभानु' के 'जगा' का नंदराय के यहाँ आना और 'लाल का झगा' बधाई में पाने की याचना करना सूरदास ने लिखा है। 'बकसीस' में 'कंचन-तगावाली झगुली' पाकर 'जगा', नंदराय के आँगन में नाचने लगता है[७७]।

३. *भिखारी*—अष्टछाप-काव्य में 'भिखारी' का उल्लेख एक तो सामान्य रूप से हुआ है[७८] और दूसरे, राम[७९] और कृष्ण-जन्म के अवसरों पर सूत, मागध

ख. 'ढाढ़िनि मेरी नाचै-गावै, हौंहूँ ढाढ़ बजाऊँ'।
हमरौ चीत्यौ भयौ तुम्हारैं, जो माँगौं सो पाऊँ।
× × ×
हँसि ढाढ़िनि ढाढ़ी सौं बोली, अब तू बरनि बधाई—सा० १०-३७।

ग. 'हौं ढाढ़िनि' ब्रजराज की ब्रज तैं आई—चतु० ७।

७४.क. 'हौं तौ तेरे घर कौ ढाढ़ी, सूरदास मोहिं नाऊँ'—सा० १०-३५।

ख. 'मैं तेरे घर कौ हौं ढाढ़ी', मो सरि कोउ न आन।
× × ×
'हौं तेरौ जनम-जनम कौ ढाढ़ी, सूरजदास कहाउँ'—सा० १०-३६।

ग. 'हौं तौ तुम्हरे घर कौ ढाढ़ी', नाउँ सुनैं सचु पाऊँ।
गिरि-गोबर्धन बास हमारौ, घर तजि अनत न जाऊँ—सा० १०-३७।

७५. जन्म-जन्म काहूँ नहीं जाँच्यो फिरि नहिं माँडौं झोली।
'नंददास नँदराय को ढाढ़ी भयो अजाचिक' ढोली—नंद०, परि०, १०।

७६. ढाढ़ी 'गयंद' लदाइ चल्यो चित चाढ़िलौ—चतु० ७।

७७. नंद-उदौ सुनि आयौ हो, 'बृषभानु कौ जगा'।
दैबे कौं बड़ौ महर, देत न लावै गहर, लाल की बधाई पाऊँ लाल कौ झगा।
प्रफुलित ह्वै कै आनि, दीनी है जसोदा रानि झीनीयै झगुलि तामैं कंचन तगा।
'नाचै फूल्यौ अँगनाइ, सूर बकसीस पाइ', माथे कै चढ़ाइ लीनौ लाल कौ बगा।
—सा० १०-३६।

७८. जो राजा-सुत होइ 'भिखारी', लाज परे ते जाइ बिकाने—सा० १-२१७

७९. देत दान राख्यौ न भूप कछु महा बड़े नग हीर।
'भए निहाल सूर सब जाचक जे जाँचे रघुबीर'—सा० १-१६।

आदि के साथ 'याचक' रूप में[८०]। स्पष्ट है कि प्रथम रूप में भीख माँगकर जीवन-यापन करनेवालों की चर्चा है और दूसरे में सामान्य याचक के रूप में जो हर्ष के अवसरों पर याचना करते हैं।

ङ. *तिरस्कृत वर्ग*—उचक्का, गाँठिकटा, चोर, ठग, बटपारी, लठबाँसी आदि नामों से पुकारा जानेवाला वर्ग किसी प्रतिष्ठित व्यवसाय के द्वारा नहीं, दूसरों का धन हड़पकर, चुराकर या छीनकर जीवन-यापन करता है। अतएव समाज में यह वर्ग सदैव हीन दृष्टि से देखा जाता है। अष्टछापी कवियों में केवल सूरदास और परमानंददास ने इनकी चर्चा विशेष रूप से की है। स्वयं कवि ने अपने अवगुणों की सूची गिनाते हुए अपने को 'बटपारी ठग, चोर, उचक्का, गाँठिकटा और लठबाँसी' कहा है[८१]। इनमें से 'ठग' या 'बटपारी' का उल्लेख सूरदास ने तीन प्रसंगों में विशेष रूप से किया है। प्रथम में उन्होंने 'पाँचों' को 'ठग' बताकर उनकी 'ठगौरी' की चर्चा की है[८२]। द्वितीय में श्रीकृष्ण के रूप पर लुब्ध गोपियों ने अपने नेत्रों को 'बटपारी' बताया है, तथा कपट-नेह दिखाकर पथिक को गुरुजन से अलग कर लेना, विषैले लड्डू देना, साथ-साथ लगे रहना, 'फाँस' गले में डालकर सारी संपदा लूट लेना आदि उनकी करतूतों का वर्णन रूपक-रूप में किया है[८३]। आगे भी एक पद में सूरदास की गोपियाँ, श्रीकृष्ण द्वारा मुसकाकर

८०.क. आनंदित बिप्र, सूत, मागध, 'जाचक-गन', उमँगि असीस देत सब हित हरि के।
—सा० १०-३०।

ख. बंदीजन अरु 'भिच्छुक' सुनि-सुनि दूरि-दूरि तैं आए—सा० १०-३५।

८१. प्रभु जू, हौं तो महा अधर्मी।
'बटपारी, ठग, चोर, उचक्का, गाँठि-कटा, लठबाँसी'—सा० १-१८६।

८२. 'पाँचौ' देखि प्रगट ठाढ़े ठग, हठनि 'ठगौरी' खाई—सा० १-१८७।

८३. नैना हैं री ये 'बटपारी'।
'कपट-नेह' करि-करि इन हमसौं, गुरुजन तैं करी न्यारी।
स्याम दरस 'लाड़ू' कर दीन्हौं, प्रेम-'ठगौरी' लाइ।
मुख परसाइ हँसनि-माधुरता, 'डोलत संग लगाइ'।
मन इनसौं मिलि 'भेद बतायौ', बिरह-'फाँस' गर डारी।
कुल लजा-'संपदा हमारी लूटि लई इन सारी'—सा० २२९०।

कहे गये बचनों का प्रभाव 'ठग-मोदक'-जैसा बताती हैं[८४]। तीसरा प्रसंग दान-लीला का है जिसमें कृष्ण ने गोपियों को 'ठगिनी', 'फँसिहारिनि', 'बटपारिनि' आदि कहा है[८५]। 'बिषलाडू' खिलाकर और मूर्छित हो जाने पर गले में फंदा डालकर मारने की ठगों की क्रिया इसी प्रसंग में फिर दोहरायी गयी है[८६]।

चोर को सदा से दंड दिया जाता रहा है। माखन-चोरी करने पर कृष्ण को बाँधे जाने का दंड मिलना तो प्रसिद्ध ही है। सूरदास की एक गोपी मन-माखन की चोरी करनेवाले 'चोरों के राजा' को विशेष रूप से बाँधकर दंड देने की विचित्र योजना बनाती है[८७]।

८४. चलत चितै मुसकाइ कै, मृदु बचन सुनाए।
तेई 'ठग मोदक' भऐ, धीरज छिटकाए—सा० ३३६७।

८५.क. ठगति फिरति 'ठगिनी' तुम नारि।
× × ×
'फँसिहानिनि, बटपारिनि' हम भईं आपुन भए सुधर्मा भारि—सा० १५८१।

ख. ब्रज-नारी 'बटपारिनि' हैं सब, चुगली आपुहिं जाइ लगायौ।
× × ×
'फँसिहारिनि' कैसैं तुम जानी, हम कहँ नाहिंनि प्रगट दिखायौ।
× × ×
'फंदा-फाँसि, धनुष, 'बिष-लाडू', सूर स्याम हमहीं न बतायौ—सा० १५८२।

८६. 'फंदा-फाँसि' बतावौ जौ।
× × ×
'बिष लाडू' दरसावति लै पुनि, देह-दसा सुधि बिसरत ज्यौं।
ता पाछैं 'फंदा गर डारति, इनि भाँतिनि करि मारति हौ—सा० १५८३।

८७.क. 'चोरी के फल' तुमहिं दिखाऊँ।
कंचन खंभ, डोर कंचन की, देखौ तुमहिं 'बँधाऊँ'।
'खंडौं' एक अंग कछु तुम्हरौ, चोरी नाउँ मिटाऊँ।
जो चाहौं सोइ सब लैहौं, यह कहि 'डाँड़ मनाऊँ'।
बीच करन जो आवै कोऊ ताकौं सौंह दिवाऊँ।
सूर स्याम चोरनि के राजा, बहुरि कहाँ मैं पाऊँ—सा० १६३७।

ख. रही री लाज नहिं काज आजु हरि पाए पकरन चोरी।
मूसि-मूसि लै गए मन-माखन, ज्यौं मेरैं धन हो री।
'बाँधौं' कंचन खंभ कलेवर, उभय भुजा दृढ़ डोरी।

परमानंददास ने चोरी करनेवाले के लिए 'तसकर'[८८] और 'बटपारी' वर्ग के लिए 'बटकुटन' शब्दों का प्रयोग किया है और विरहिणी गोपियों को आभूषण-रहित देखकर उन्होंने 'बटकुटन' द्वारा उनके लूटे जाने की कल्पना की है[८९]। ऐसे अपराधियों को, परमानंददास की सम्मति में, लोक में अपयश मिलता है और उनका परलोक नष्ट हो जाता है[९०]।

समीक्षा—अष्टछाप-काव्य में प्राप्त वाणिज्य, व्यवसाय और जीविका-साधन-संबंधी उक्त विवरण से स्पष्ट है कि उन कवियों ने अहीर, कृषक, कुम्हार आदि ग्रामीण व्यवसायियों की चर्चा जितने विस्तार से की है जौहरी, सर्राफ, बजाज आदि के नागरिक व्यवसायियों की उतने विस्तार से नहीं, यहाँ तक कि नगर में प्रचलित अनेक व्यवसायों का तो नाम मात्र उनके काव्य में मिलता है, विवरण नहीं। इस प्रसंग में यह भी कहा जा सकता है कि अनेक व्यवसायों या व्यवसायियों का स्पष्ट उल्लेख न मिलने पर भी अष्टछाप-काल में उनका प्रचलित होना या विद्यमान रहना, परोक्ष रूप से तो, सूचित होता ही है। उदाहरण के लिए 'हीरे', 'मोती', 'मणि-माणिक्य', 'स्फटिक' आदि की चर्चा अष्टछाप-काव्य में सर्वत्र मिलती है, अतएव स्पष्ट है कि खान, समुद्र आदि से इनके निकालने, साफ करने, काटने, गढ़ने आदि के व्यवसाय भी निश्चय ही उस युग में प्रचलित रहे होंगे। इसी प्रकार नंद-यशोदा के भवनों के अतिरिक्त अयोध्या, मथुरा, द्वारका तथा अन्यान्य स्थानों के राजभवनों का निर्माण करनेवाले शिल्पियों के साथ-साथ मूर्तिकारों, चित्रकारों आदि के

'चापौं' कठिन कुलिस-कुच-अंतर, सकै कौन धौं छोरी।
'खंडौं' अधर भूलि रस गोरस हरैं न काहू कौ री।
'दंडौं' कामदंड पर-घर कौ नाउँ न लेइँ बहोरी—सा० १६३८।

८८. चोरी पूँजी हरै ज्यों 'तसकर'—परमा० हस्त० १६८।

८९. ब्याकुल बार न बाँधति छूटे।
जबतें हरि मधुपुरी सिधारे उर के हार रहत सब टूटे।
× × ×
बिरह बिहाल सकल गोपीजन 'अभरन मनहुँ बटकूटन लूटे'—परमा० ५५८।

९०. बाट पारि घर मूसि बिरानो पेट भरै अपराधी।
जेहि परलोक जाय अपकीरति सोई अबिद्या साधी—परमा० ६०६।

व्यवसाय तो मुगल काल में अत्यंत उन्नति पर थे ही जिसका प्रमाण उस युग की वास्तु, मूर्ति और चित्रकला के नमूनों से मिलता है।

इसी प्रकार अनेक व्यक्ति राजकर्मचारियों के रूप में भी जीविकार्जन करते रहें होंगे जैसा कि 'दानलीला-प्रसंग' में नृपति द्वारा श्रीकृष्ण के 'दानी' नियुक्त किये जाने के, गोपियों के प्रश्न से, जान पड़ता है। सूरदास ने 'लिखहार'[२९१] आदि कर्मचारियों की भी चर्चा की है। मल्ल भी राजा के वेतनभोगी सेवक ही होंगे। इन सबके संबंध में विस्तार से 'राजनीतिक जीवन-चित्रण' में लिखा जायगा। वस्तुतः गीति-काव्य में किसी प्रकार की विस्तृत व्यावसायिक चर्चा के लिए स्थान होता भी नहीं, अतएव, प्रसंगवश, तत्संबंधी जो कुछ भी विवरण उनके काव्य में मिल जाता है, वही बहुत समझना चाहिए। उसको क्रमबद्ध-रूप में प्रस्तुत करके अष्टछाप-कालीन व्यवसाय और वाणिज्य की रूपरेखा का ज्ञान तो हो ही जाता है जिसका श्रेय भी उन कवियों में सबसे अधिक सूरदास को ही दिया जाना चाहिए, क्योंकि उनके काव्य में तद्विषयक उल्लेख सबसे अधिक हैं।

२९१. साँचौ सो 'लिखहार' कहावै—सा० १-१४२।

---

७ राजनीतिक जीवन-चित्रण

अष्टछापी कवि राज्य के प्रलोभनों से दूर थे; इसलिए उनके काव्य में राजनीतिक जीवन-संबंधी विशिष्ट तथ्यों के उल्लेख की आशा नहीं की जानी चाहिए। फिर भी यह देख कर बड़ा आश्चर्य होता है कि उन कवियों ने अपने काव्य में यत्र-तत्र राजनीति से संबंध रखनेवाली अनेक उपयोगी बातों की चर्चा की है। अध्ययन की सुविधा के लिए उसको पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—१. राज-वर्ग का संगठन और उद्देश्य, २. शासन-व्यवस्था, ३. सेना और युद्ध, ४. राजस्व और ५. राजनीति-संबंधी अन्य बातें।

१. राजवर्ग का संगठन और उद्देश्य—

अष्टछाप-काव्य में 'राजा' या 'शासक' के लिए 'छत्रपति', 'नरपति', 'नृप', 'नृपति', 'नृपराज', 'भुवाल', 'भूप', 'भूपति', भूपाल', 'महाराजा', 'महीपति', 'राइ', 'राउ', 'राजा' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है[१]। ये शब्द महाराज दशरथ, रावण

१.क. भए 'छत्रपति' मधुबन-वासी, अब काहैं कौं गाइ चरावैं—परमा० काँक० १०३६।
ख. सस्त्र धन छाँड़ि कै भाजि 'नरपति' गये—सा० ४१८३।
ग. जरासंध सिसुपाल आदि 'नृप' पाछे लागे साथ—सारा० ६३६।
घ. 'नृप' बिदर्भ की कन्या रुक्मिनि अनुचर गनियै—नंद०, रुक्मिनी०, पृ० १४७।
ङ. रुकुम यह सुनि चल्यौ सौंह करि 'नृपति' सौं—सा० ४१८२।
च. देस देस के 'नृपति' जुरे सब भीष्म 'नृपति के धाम—सारा० ६२८।
छ. दुष्ट 'नृपति' को मान मथन करि चले द्वारिकानाथ—सारा० ६३६।
ज. कहा धौं बात चालति है नागरि 'नृपति' कंस के आगै—परमा० ४७६।
झ. देत दान 'नृपराज' द्विजनि को सुरभी हेम अपार—सारा० १६३।
ञ. नारद कह्यो समुझाइ कंस 'नृपराज' कौं—सा० ५८६।
ट. करुवौ बचन स्रवन सुनि मेरौ, अति रिस गही 'भुवाल' —सा० ६-१०४।
ठ. सो बृषभान 'भुवाल' के द्वार बुहारन हार—नंद०, पृ० ६४।
ड. देत दान राख्यौ न 'भूप' कछु महा बड़े नग हीर—सा० ६-१६।
ढ. बड़ कुल बड़े 'भूप' दसरथ—सा० ६-४४।
ण. आये 'भूप' देस देसन कें जुरी सभा अति भारी—सारा० २१५।
त. गये ब्रजराज द्वार 'भूपति' के बहु उपहार दिवाये—सारा० ५०६।

और कंस-जैसे बड़े राजाओं के लिए तो प्रयुक्त हुए ही हैं, नंद और वृषभानु-जैसे व्यक्तियों के लिए भी आये हैं, राज-व्यवस्था की दृष्टि से जिनकी वास्तविक स्थिति साधारण ही थी। नंद को इन कवियों ने 'ब्रजराइ', 'ब्रजराज'[२] आदि भी लिखा और कृष्ण को यदुवंशी होने के कारण 'जादौकुलराई'[३] अथवा उसके किसी पर्याय से संबोधित किया है। 'राउ', 'राजा' आदि का प्रयोग सूरदास ने अपने लिए भी किया है[४]। एक पद में उन्होंने अन्य पतितों को 'राजा' और अपने को 'सुलतान'[५] कहा है जिससे कवि का संकेत उन मुगल सुल्तानों की ओर जान पड़ता है जिन्होंने अनेक हिंदू राजाओं को परास्त करके अपना राज्य स्थापित कर लिया था।

'दिग्विजय' करनेवाले पौराणिक राजाओं के कृत्यों[६] का स्मरण करके सूरदास ने अपने को 'दिग्विजयी' कहा है[७] और पांडवों के उस 'राजसूय' यज्ञ की भी चर्चा की है जिसमें चारों भाइयों ने चारों दिशाओं के जिन राजाओं को जीता था, वे उपहार लेकर आये थे[८]।

थ. सब में कौन बड़ो 'भूपति' है—सारा० ७३६।
द. काको भरोसो करत 'भूपति', बैरु करत किहि माँगै—परमा० ४७६।
ध. वा 'भूपति' के भवन कोउ दीप न बारत साँझ—नंद०, रूप०, पृ० ४।
न. कहौ न जाइ उताल, जहाँ 'भूपाल' तिहारो—सा० १६१८।
प. 'महाराज', तुम सरि को ऐसौ, जाकी जग यह चलति कहानी—सा० २६३२।
फ. फागुन मदन 'महीपती'—सा० २६१४।
ब. ब्रज में अति आनन्द बढ़्यौ हो नंद 'राइ' के द्वार—गोविं० १२।
भ. मोहिं प्रतीत कंस की नाहीं सोमबंस को 'राउ'—परमा० ४८३।
म. महाभाग्य 'राजा' दसरथ कौं जिहिं घर रघुपति जनमही आवे—परमा० ३४०।
य. सुनि रे 'राजा' कंस तेरी बहुत सहै—परमा० ४७६।
२.क. ब्रजजन देत असीस हैं जियो ढोटा 'ब्रजराज'—कुंभन० ३।
ख. महाभागि 'ब्रजराज' तुम्हारै—गोविं० ६।
३. जनम लियौ 'जादौकुल राइ'—गोविं० १३।
४.क. हरि, हौं सब पतितनि कौ 'राजा'—सा० १-१४४।
ख. हरि, हौं सब पतितनि कौ 'राउ'—सा० १-१४५।
५. और हैं आजकल के 'राजा', मैं तिनमैं 'सुलतान'—सा० १-१४५।
६. करि दिग्बिजय-बिजय को जग में भगत पच्छ करवायो—सारा० ८४१
७. गज अहँकार चढ़्यो 'दिगबिजयी' लोभ छत्र करि सीस—सा० १-२४४।
८.क. कियो बिचार जज्ञ को राजा 'राजसूय' जिय जानि।

'राजा' की पत्नी के लिए 'रानी' शब्द अष्टछाप-काव्य में आया है[९] और एक राजा के यदि कई 'रानियाँ' हों तो प्रमुख को 'पटरानी' कहा गया है। सूरदास की गोपियाँ कुब्जा पर कृष्ण की कृपा का समाचार पाकर व्यंग्य से उसको 'पटरानी' कहती हैं[१०]। श्रीकृष्ण की आठ 'पटरानियाँ' कही गयी हैं जिनके लिए 'सारावली' में 'सकल पटरानी' शब्द प्रयुक्त हुआ है[११]।

राज्य के जिस नगर में राजा रहता है, उसे अष्टछापी कवियों ने 'रजधानी' या 'राजधानी' कहा है और 'मथुरा' नगर के लिए बराबर 'रजधानी' शब्द का प्रयोग किया है; क्योंकि वही शौरसेन-जनपद का शासन-केंद्र था और वहीं राजा कंस रहता भी था[१२]। परमेश्वर श्रीकृष्ण के नित्य लीला-केंद्र वृन्दावन को भी उन्होंने 'रजधानी' कहा है[१३]। राजा का निवास-स्थान 'महल' कहा गया है। कंस ने सुफलक-सुत को 'महल' में ही बुलाया है[१४]। रानियों और राजकुल की स्त्रियों के रहने का स्थान 'अंत:पुर'[१५] कहा गया है और उनके विलासगृह को 'सारावली' में 'रत्नमहल'[१६]

कृष्नचंद्र को बेगि बुलावो संग सकल पटरानि—सारा० ७३२।

ख. चारों भात चारि दिसि जीत्यो भारत कही बखान।
ठौर-ठौर के नृप सब आये लै उपहार प्रमान—सारा० ७३४।

९.क. कोऊ हुती कंस की दासी कृपा करी भइ 'रानी'—सा० ३६३६।
ख. कहति है दुख अकुलानी 'रानी'—नंद०, रूप०, पृ० २२।
ग. तब 'रानी' उठि दौरि पौरि तें मोहन लाई—नंद०, स्याम०, पृ० १२१।

१०. कुबिजा को 'पटरानी' कीन्हों हमैं देत बैराग—सा०३६५२।

११. कृष्नचंद्र को बेगि बुलावो संग सकल 'पटरानि'—सारा० ७३२।

१२.क. अब दिन चारि चलहु गोकुल में सेवहु आइ बहुरि 'रजधानी'—सा० ३६३७।
ख. रंगभूमि रमनीक मधुपुरी, 'रजधानी' ब्रज की सुधि कीजो—सा० ४२६५।
ग. संग तिहारैं अब लैहुँगी रजधानी—परमा० ४६१।

१३.क. छाँड़ौं नहीं स्याम-स्यामा की 'बृन्दाबन रजधानी'—सा० १-८७।
ख. माया मोह लोभ के लीन्हें जानी न 'बृन्दाबन रजधानी'—सा० १-१४६।

१४. सुनत बुलाइ 'महल' ही लीन्हौ, सुफलक-सुत गए धाइ—सा० २६२८।

१५.क. नृप सुनि मन आनन्द बढ़ायौ, 'अन्त:पुर' मैं जाइ सुनायौ—सा० ४-६।
ख. चौदह सहस जुवति 'अन्त:पुर' लैहैं राघव चाहि—सा० ६-७५।
ग. 'अन्त:पुर' महलनि रानी के—सा० ६८४।

१६. कबहुँक 'रतनमहल' चितसारी सरद निसा उजियारी।
बैठे जनक-सुता सँग बिलसत मधुर केलि मनुहारी—सारा० ३१२।

बताया गया है जिसे कुंभनदास ने 'रंगमहल'[१७] कहा है।

राजा जिस स्थान पर उपशासकों, मंत्रियों और अन्य कर्मचारियों के साथ बैठकर शासन-प्रबंध संबंधी विविध समस्याओं पर विचार करता है, उसके लिए 'सभा',[१८] 'राजसभा'[१९] और 'दरबार' शब्द अष्टछाप-काव्य में प्रयुक्त हुए हैं। इनमें से अंतिम शब्द विदेशियों के संपर्क की देन है और मुख्य रूप से परब्रह्म, श्रीराम, नंदराय आदि की 'आश्रयदायिनी सभा' के रूप में प्रयुक्त हुआ है[२०]। दरबार में बैठे सभासदों को 'दरबारी' कहा गया है[२१]। विदेशी शासन के फलस्वरूप तत्संबंधी जो विभाषीय शब्द उस युग में प्रचलित हो गये थे उनका एक बहुत रोचक उदाहरण, 'सभा' या 'दरबार' के अर्थ में, सूरदास के एक पद में मिलता है। 'दानलीला'-प्रसंग में गोपियों से दूध, दही, माखन आदि का 'दान' उगाहनेवाले कृष्ण को सशक्त शासन का भय दिखाती हुई गोपियाँ जब कहती हैं कि हमारा इस प्रकार मार्ग रोक रहे हो, क्या तुम नहीं जानते कि राज्य कंस का है[२२]? उत्तर में कृष्ण कहते हैं—'जाकर कंस से फरियाद करो कि वह हमें 'हजूर' में बुला ले, अर्थात् 'सभा' या 'दरबार' में बुलाकर उचित दंड दे[२३]। यहाँ 'सभा' या 'दरबार' के लिए

१७. 'रंगमहल' में रतन सिंघासन, राधारवन पियारौ—कुंभन० ३७७।

१८.क. उठत 'सभा' दिन मधि, सैनापति-भीर देखि, फिरि आऊँ—सा० ६-१७२।

ख. नरपति 'सभा' मध्य मनों ठाढ़े, जुगल हंस मति धीर—सा० ६-२६।

ग. सकल 'सभा' मैं बैठि दुसासन अंबर आनि गह्यौ—सा० १-२४७।

घ. आगे चले 'सभा' में पहुँचे जहँ नृप सकल समाज—सारा० ५१३।

ङ. बैठी 'सभा' सकल भूपनि की भीषम, द्रोन करन ब्रतधारी—सा० १-२४८।

१९.क. जब गहि 'राजसभा' मैं आनी—सा० १-२५०।

ख. ये कहा जानैं 'राजसभा' कौं—सा० २६६८।

२०.क. राग रंग रँगि मँगि रह्यौ नंदराइ-'दरबार'—सा० २६०४।

ख. जहाँ राखौ तहाँ रहूँ चरन तर पर्यो रहूँ 'दरबार'—परमा० ८७५।

ग. गृह-गृह तें गोपनि सबै आए राइ 'दरबार'—कुंभन ३।

घ. जाति-पाँति कोउ पूछत नाहीं, 'श्रीपति कैं दरबार'—सा० १-२३१।

२१. दास ध्रुव कौ अटल पद दियौ, राम दरबारी—सा० १-१७६।

२२. नाहिंन राज कंस कौ जानत, मारग रोकत फिरत पराए—सा० १५१२।

२३. जाइ सबै कंसहि गुहरावहु।
दधि माखन घृत लेत छुड़ाए, आजु 'हजूर' बुलावहु—सा० १५१३।

प्रयुक्त 'हजूर' शब्द-जैसे प्रयोग हिंदी साहित्य में अधिक नहीं मिलेंगे। सभा में राजा 'सिंहासन'[२४] या 'राजसिंहासन'[२५] पर बैठता है जिसे 'कनकसिंहासन'[२६] या 'रतनसिंहासन'[२७] भी कहा गया है।

सिंहासन पर सामान्यतया 'छत्र' भी लगा बताया गया है[२८] जिसके भीतरी भाग लिए 'आतपत्र' शब्द प्रयुक्त हुआ है[२९]। परमानंददास ने एक पद में परमेश्वर के विराट् रूप का वर्णन करते हुए पृथ्वी को 'सिंहासन' और आकाश को उसका 'छत्र' बताया है[३०]। सिंहासनासीन राजा पर 'चमर'[३१] या 'चँवर'[३२] डुलाये जाने की बात अष्टछापी कवियों ने लिखी है। राजसभा या राजमहल के ऊपर, या राजा की यात्रा के समय, 'ध्वजा-पताका' साथ रहना भी अष्टछापी कवियों ने सर्वत्र लिखा है[३३]। राजा का यश-गान करनेवाले 'बंदी', 'मागध' या 'सूत' कहे गये हैं[३४]। राजा के द्वार पर, सामान्य रीति से और हर्षावसरों पर विशेष रीति से,

२४.क. उग्रसेन बैठारि 'सिंहासन' आपु जुहार कियौ—परमा० ५१२।
  ख. दृढ़ बिस्वास कियौ 'सिंहासन', तापर बैठे भूप—सा० १-४०।
२५. बैठे राम 'राजसिंहासन' जग में फिरी दुहाई—सारा० ३०२।
२६. 'कनक सिंहासन' बैठिहैं—सा० २६१४।
२७. रंगमहल में 'रतन-सिंघासन', राधा-रवन पियारौ—कुंभन० ३७७।
२८.क. स्वेत 'छत्र' फरहरात सीस पर मनो लच्छि को बंध—सा० ६-७५।
  ख. तिहूँ लोक परताप, 'छत्र' सिंघासन सोहै—सा० ६-१६०।
२९.क. 'आतपत्र' मयूर चंद्रिका, लसत है रवि ऐन—सा० ३२२७।
  ख. सीतल 'आतपत्र' की छाया कर अंबुज सुखकारी जू—परमा० ८७२।
३०. जाके 'छत्र' अकास सिंहासन बसुधा अनुचर सहस अठासी—परमा० ८८०।
३१. चारु चक्र मनि खचित मनोहर चंचल 'चमर' पताका—सा० २५६६।
३२.क. बैठति कर पीठि ढीठि, अधर-'छत्र'-छाँहि।
  राजति अति 'चँवर' चिकुर, सरद सभा माँहि—सा० ६५३।
  ख. उग्रसेन को राज देउँ, कर 'चँवर' दुराऊँ—कुंभन० २३।
३३.क. गरजत रहत मत्त गज चहुँ दिसि छत्र 'धुजा' चहुँ दीस—सा० ६-७५।
  ख. टूटत 'धुजा पताक' छत्र रथ—सा० ६-१६०।
३४.क. निंदा जग उपहास करत, मग 'बंदीजन' जस गावत—सा० १-१४१।
  ख. हरि, हौं सब पतितनि कौ राजा।
  × × ×
  मोह-मया 'बंदी' गुन गावत, 'मागध' दोष अपार—सा० १-१४४।

'निसान', 'नौबत', 'दुंदुभी' आदि बजना भी कहा गया है[35]। राजा की घोषणा के साथ, या विशेषाधिकार दिये जाने पर, 'डौंड़ी' बजायी जाने की बात अष्टछापी कवियों में सूरदास ने लिखी है[36]।

राजसभा और राजमहल के सेवकों में प्रमुख 'छरीदार', 'दरबान', 'द्वारपाल', 'पौरिया' और 'प्रतिहारी' कहे गये हैं[37]। राजा का निजी सेवक 'खवास' कहा गया है[38]। श्रीकृष्ण को बुलाने का कार्य अक्रूर को सौंपता हुआ कंस 'खवास' से ही उनके लिए 'सिर-पाँव' मँगाता है[39]। परमेश्वर के 'खवास' का कार्य, अर्थात् उनकी 'खवासी' करनेवाले, 'शंकर' कहे गये हैं[40]। राजा की सेविकाओं को 'चेरी', 'दासी' और 'लौंडी' कहा गया है।[41] दहेज-रूप में भी 'दासियों' के दिये जाने

३५.क. हठ, अन्याय, अधर्म, सूर नित 'नौबत' द्वार बजावत—सा० १-१४१।
ख. हरि, हौं सब पतितनि कौ राजा।
निंदा पर-सुख पूरि रह्यौ जग, यह 'निसान' नित बाजा—सा० १-१४४।
ग. नौमी के दिन 'नौबत' बाजै कौसल्या सुत जायौ—परमा० ३३७।
घ. जाके जनमत अमर-नगर में, 'दुंदुभि' बाजी बगर-बगर में।
—नंद०, दशम०, पृ० २०२।
ङ. गल गरजो गोकुल में बैठे गरज 'निसान' बजाइ—परमा० ८६७।
३६. लौंडी के घर 'डौंडी बाजी' जब बढ़्यो स्याम अनुराग—सा० ३०६५।
३७.क. 'छरीदार' बैराग बिनोदी झिरकि बाहिरै कीन्हैं—सा० १-४०।
ख. पौरि पाट टूटि परे भागे 'दरबाना'—सा० ६-१३६।
ग. मोदी लोभ, खवास मोह के, 'द्वारपाल' अहँकार—सा० १०-१४१।
घ. बुद्धि बिबेक बिचित्र 'पौरिया'—सा० १-१४०।
ङ. मंत्री काम कुमति दीबै कौं, क्रोध रहत 'प्रतिहारी'—सा० १-१४४।
च. सावधान करि पौरिया, 'प्रतिहार' जगायौ—सा० २६३४।
३८. हरि, हौं सब पतितनि-पतितेस।
× × ×
मोदी लोभ, 'खवास' मोह के, द्वारपाल अहँकार—सा० १-१४१।
३९. कहि 'खवास' कों सैंन दै सिर-पाँव मँगायौ—सा० २४७६।
४०. इंद्रादिक की कौन चलावै संकर करत 'खवासी'—सा० ३०८६।
४१.क. 'दासी' तृष्ना भ्रमत टहल हित, लहत न छिन बिस्राम—सा० १-१४१।
ख. जाके कमला 'दासी' पाय पलोटै—परमा० ८८०।
ग. इक तौ सहजहि हुती नृसंस, पुनि 'चेरी' करि प्रेरी कंस।
—नंद०, दशम०, पृ० २२१।

की बात नंददास ने लिखी है[४२]।

राजा का संदेश-वाहक सेवक 'दूत' कहलाता है। 'दूत' ही दशरथ के मरण का संदेश देकर भरत को लिवाने जाता है[४३]। कंस ने दूत के द्वारा ही कालीदह के फूल भेजने की आज्ञा नंदराय के पास भिजवायी है[४४]। कुंभनदास ने दूत को 'बसीठ' और उसके कार्य को 'बसीठी' कहा है[४५]।

राजा के राज्य में बसनेवाला जनसमुदाय 'प्रजा' कहा जाता है। भारत में राजतंत्र का प्रचलन बहुत समय तक रहने के कारण भारतीय प्रजा-वर्ग की रुचि सामान्यतया राजनीति की विशेष बातों या शासन-संबंधी जटिल समस्याओं की ओर नहीं रही; जिसका परिचय गो० तुलसीदास की प्रसिद्ध उक्ति, 'कोउ नृप होउ हमहिं का हानी'[४६] से भी मिलता है। प्रजा तो केवल सुख-शांति से जीवन-यापन करना चाहती है। सूरदास ने जन-साधारण की इस मनोवृत्ति को लक्ष्य किया था और बड़े सरल ढंग से उन्होंने इसका परिचय भी दिया है। उनकी गोपियाँ ऊधव से कहती हैं—राजा का धर्म, हमारी सम्मति में, केवल इतना ही है कि प्रजा किसी प्रकार सतायी न जाय[४७]। अन्य अष्टछापी कवियों ने भी प्रजा-वर्ग का प्रतिपालन[४८]

घ. बरबस रोकत मोकों, करिहो कहा रिसाय, को है बाबा की 'लौंडी'।
—नंद०, कीर्तन-सं०, भाग १, पृ० २३४।

४२. बर बरुनी, तरुनी रँग भीनी, 'दासी' बीनि दोइ सत दीनी।
—नंद०, दशम०, पृ० २०२।

४३. पठवौ 'दूत' भरत कौं ल्यावन—सा० ६-४७।

४४.क. कंस बुलाइ 'दूत' इक लीन्हौं।
कालीदह के फूल मँगाए पत्र लिखाइ ताहि कर दीन्हौ—सा० ५२३।

ख. यह सुनि 'दूत' तुरत ही धायौ तब पहुँच्यो ब्रज जाइ।
सूर नंद-कर पाती दीन्ही 'दूत' कह्यौ समुझाइ—सा० ५२५।

४५. अब ए नैनाँई करत 'बसीठी'—कुंभन० २४६।

४६. 'मानस', अयोध्या०, दो० १६।

४७. हरि हैं राजनीति पढ़ि आए।
× × ×
राजधर्म सुनि इहै सूर जिहिं 'प्रजा' न जाहिं सताए—सा० ३६६१।

४८. 'शुक्र-नीति' में बताये गये राजा के आठ 'वृत्त' कर्तव्यों में 'प्रजा-परिपालन' भी है—डा० राजबली पांडेय, 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास', भाग १, पृ० ७०।

राजा का प्रमुख कर्तव्य बताया है जिसकी शिक्षा चित्रकूटवासी राम, अनुज भरत को देते हैं[४९]। सूरदास के एक अन्य पद में राम ने भरत को 'गाइ-बिप्र प्रतिपालन' के साथ-साथ 'प्रजा' के हेतु या 'कल्यान' के कार्य करने का भी उपदेश दिया है[५०]। नंददास ने 'धर्म-धरन के काज' धर्मधीर नामक राजा के प्रकटने की बात कही है[५१] जिससे स्पष्ट है कि अपनी श्रद्धानुसार प्रजा को धर्म-कर्म करते रहने देने की सुविधा का प्रबंध करना भी राजा का कर्तव्य समझा गया है।

इसी प्रकार प्रजा अपने राजा से न्याय और सुरक्षा की सर्वदा कामना करती है। शासक कैसा भी अन्यायी या अत्याचारी हो, प्रजा को विश्वास रहता है कि आवश्यकता पड़ने पर वह हमारी रक्षा अवश्य करेगा; कम से कम दूसरों को हम पर अत्याचार तो नहीं ही करने देगा। प्रजा के ऐसे विश्वास का उदाहरण परमानंददास की उस ग्वालिनि के कथन में मिलता है जो कंस को अन्यायी और अत्याचारी जानते हुए भी, कृष्ण से कहती है कि यदि तुमने बरबस 'दान' माँगने की आदत न छोड़ी तो 'राव जू' के आगे जाकर कहूँगी, अर्थात् कंस के दरबार में फरियाद करूँगी[५२]। इसी प्रकार प्रजा पर किसी प्रकार का अत्याचार किये जाने पर अभियोग लगाकर उसको राजा के दरबार या न्यायालय में बुलवाने का अधिकार भी पीड़ितजन शासकीय संरक्षा-संबंधी उक्त विश्वास के फलस्वरूप ही समझता है। परंतु दूसरी ओर यदि अत्याचारी विशेष अधिकार रखता है अथवा स्वयं इतना सबल है कि शासक से किसी तरह नहीं दबता, तब वह स्वयं कहता है कि हम

४९. राम यौं भरत बहुत समुझायौ।
× × ×
कीजै यहै बिचार परसपर, राजनीति समुझायौ।
सेवा मातु, 'प्रजा-प्रतिपालन', यह जुग जुग चलि आयौ—सा० ९-५५।

५०. बंधू, करियौ राज सँभारे।
राजनीति अरु गुरु की सेवा, 'गाइ-बिप्र प्रतिपारे'।
× × ×
गुरु बसिष्ठ अरु मिलि सुमंत सौं, 'परजा-हेतु बिचारे'—सा० ९-५४।

५१. 'धर्मधीर तहँ कर बड़ राजा', प्रगट्यो धर्म-धरन के काजा—नंद०, रूप०, पृ० ३।

५२. बरबस दान दही कौ माँगत बृन्दाबन की ठौर।
कहिहौं जाय 'रायजू' के आगे करिहैं और सों और—परमा० १९८।

किसी के दबैल नहीं हैं, तुम जिससे चाहो जाकर हमारी शिकायत कर दो। सूरदास के कृष्ण भी गोपियों का दूध, दही, माखन, घी आदि छीनकर उनसे कहते हैं कि जाकर कंस से 'फरियाद' करो जिससे वह हमें 'हजूर' में बुला ले, अर्थात् दरबार में बुलाकर दंड दे[५३]। इस प्रकार के उदाहरण, परोक्ष रूप से, राज-वर्ग के संगठन के उद्देश्य पर भी प्रकाश डालते हैं।

शक्ति और साधन-हीनता के कारण प्रजा को अन्याय और अत्याचार कितना भी सहना पड़े, किसी न किसी रूप में वह उसको व्यक्त अवश्य कर देती है। उदाहरण के लिए ऊधव से कही हुई गोपियों की एक उक्ति है जिसमें 'कुब्जा' पर 'चाम के दाम' चलाने की अनीति का अभियोग उन्होंने लगाया है[५४]। इतिहास में 'चाम के दाम' चलाने का प्रयत्न निजाम भिश्ती ने किया था[५५]। तभी से 'अन्याय और अनीति' करने के अर्थ में यह कहावत प्रसिद्ध हो गयी जान पड़ती है जिसके माध्यम से प्रजा-वर्ग अपने युग के अन्यायी और अनीतिकारी शासकों के व्यवहार की ओर संकेत करता आया है।

राजा के कर्तव्यों का इस प्रकार वर्णन करना उस युग में विशेष आवश्यक भी था, कारण कि उस समय के शासकों में अधिकता उनकी थी जिनका मुख देखने में भी सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास आदि को 'दुख लगता' था; परंतु विवशता यह थी कि उनको 'राजा-राय' कहकर 'प्रणाम' करना पड़ा था[५६]।

२. *शासन-व्यवस्था*—

राजा को निरंकुश होने से रोकने[५७] और शासन की व्यवस्था सुचारु रूप से

५३. जाइ सबै कंसहि गुहरावहु।
दधि माखन घृत लेत छुड़ाए, आजु 'हजूर' बुलावहु—सा० १५१३।

५४. सिर पर सौति हमारे कुबिजा 'चाम के दाम' चलावै—सा० ३६३६।

५५. 'चाम के दाम' से संकेत निजाम भिश्ती के चलाये हुए सिक्के की ओर जान पड़ता है। इस भिश्ती को, हुमायूँ को डूबने से बचाने के बदले में, आधे दिन की बादशाहत मिली थी। 'चाम के दाम' का लक्ष्यार्थ 'व्यभिचार की कमाई' है।
—'बृहत् हिंदी कोश', पृ० ४२२।

५६.क. जिनकौ मुख देखत दुख उपजत, तिनकौं राजा-राय कहै—सा० १-५३।
ख. जिनको मुख देखत दुख लागे तिनसों राजा-राय कहे—परमा० ८४५।
ग. जाकौ मुख देखत दुख उपजै ताकों करनी परी प्रनाम—कुंभन० ३९७।

५७. म० म० गौरीशंकर हीराचंद ओझा के अनुसार, मंत्रि-परिषद के कारण ही मध्य

करने के लिए कुछ राजकीय कर्मचारियों की नियुक्ति सदा से होती आयी है जिनकी मंत्रणा से ही सामान्यतया राज-कार्य होता है। ऐसे राजकीय कर्मचारियों में 'मंत्री' प्रधान होता है। इनकी संख्या कहीं सैंतीस बतायी गयी है[५८] और कहीं दस[५९]। सूरदास ने रावण के मंत्रियों के लिए बहुवचन-सूचक 'मंत्रिनि' शब्द का प्रयोग किया है[६०] जिससे स्पष्ट है कि उसके कई मंत्री थे। अन्यत्र सूरदास ने कहीं एक मंत्री का उल्लेख किया है[६१] और कहीं दो का[६२]। मंत्री के लिए विदेशी संपर्क के कारण 'उजीर' या 'वजीर' शब्द का भी प्रयोग अष्टछाप-काव्य में दो-एक स्थलों पर मिलता है जिसमें 'पाप' को शरीर-रूपी राज्य का 'उजीर' बताया गया है[६३]। 'मंत्री' का ही समकक्ष अधिकारी होता है 'दीवान' जिसके अधीन 'कर और मालगुजारी' अर्थात् 'राजस्व' विभाग रहता था[६४]। 'वजीर' यदि 'दीवान' भी होता तो 'राजस्व' विभाग का भी अधिकारी हो जाता है;[६५] अस्तु। 'दीवान' शब्द का प्रयोग सूरदास ने ध्रुव के लिए किया है[६६] तो परमानंददास ने 'जसुदानंदन' को ही 'ठाकुर' और 'दीवान', दोनों कह डाला है[६७]। 'मंत्री' आदि की नियुक्ति का वास्तविक उद्देश्य, जैसा कि राम ने भरत को समझाया है, 'प्रजा के हेतु' पर विचार करना बताया गया है,[६८] यद्यपि सूरदास के अनुसार कभी-कभी ज्ञान-स्वरूप मंत्री ऐसे भी होते हैं जो निरंकुश शासक को उचित परामर्श देने का या तो अवसर ही

कालीन भारतीय राजा सर्वेसर्वा नहीं थे—'मध्य कालीन भारतीय संस्कृति', पृ० ११६।

५८. 'हिंदू सभ्यता', पृ० १४४।
५९. 'हिंदी-साहित्य का बृहत् इतिहास', प्रथम भाग, पृ० ७४।
६०. 'मंत्रिनि' नीको मंत्र बिचारयौ—सा० ६-६८।
६१. 'मंत्री' काम कुमति दीबे कौं, क्रोध रहत प्रतिहारी—सा० १-१४४।
६२. 'मंत्री' काम-क्रोध निज 'दोऊ' अपनी अपनी रीति—सा० १-१४१।
६३. पाप 'उजीर' कह्यो सोइ मान्यौ, धर्म सुधन लुटयौ—सा० १-६४।
६४. 'मनूची', भाग २, पृ० २१८।
६५. श्री सेठी और महाजन, 'मुगल कालीन भारत का इतिहास', पृ० २१३।
६६. भक्त ध्रुव कौ अटल पदवी, राम के 'दीवान'—सा० १-२३५।
६७. साँचौ 'दिवान' है री कमलनयन।
तू मेरो ठाकुर जसुदानंद, कै तू है जगत जीवन—परमा० ८८०।
६८. 'गुरु बसिष्ठ' अरु मिलि सुमंत सों परजा हेतु बिचारै—सा० ६-५४।

नहीं पाते या सच्ची बात कहते सकुचाते हैं[६९]।

सुशासित राज्य में मंत्री के बाद राजपुरोहित का स्थान होता था,[७०] यद्यपि उसकी गणना राजकीय कर्मचारी में नहीं की जानी चाहिए। कंसादि अत्याचारी शासकों के राजपुरोहितों की चर्चा अष्टछाप-काव्य में नहीं है। केवल सूरदास के श्रीराम ने चित्रकूट में भरत को मंत्रियों के साथ-साथ राजपुरोहित वशिष्ठ के सत्परामर्श से ही प्रजा-हेतु विचारने की शिक्षा दी है[७१]।

अन्य राजकीय कर्मचारियों में 'अमीन', 'मुस्तौफी', 'काजी', 'कोतवाल', 'अह्दी', 'मुजमिल', 'मोहरिल', 'सिकदार', 'जासूस' आदि का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में मिलता है। 'अमीन' का मुख्य कार्य प्रजा से 'अमल' अर्थात् राजकर आदि जमाकर राज-कोष की वृद्धि करना था[७२] जिसकी ओर सूरदास ने भी संकेत किया है[७३]। 'मुस्तौफी' संभवतः आय-व्यय-परीक्षक कर्मचारी था जो 'वजीर' की सलाह से काम करता था[७४]। सूरदास ने 'चित्रगुप्त' को 'मुस्तौफी' का कार्य सौंपा है[७५]। 'काजी' का काम न्याय करने का था;[७६] परंतु जब अभियोग लगानेवाला और अभियुक्त, दोनों एक हों तो 'काजी' कुछ नहीं कर सकता; इसी कारण सूरदास ने कहा है कि दो 'मन मिलानेवाले' जब एक हैं तो काजी उनका क्या कर सकता है[७७]? 'काजी' कौन-कौन दंड दे सकता था, इस बात की चर्चा तो अष्टछाप-काव्य में नहीं है, परंतु कुछ 'दंडों' का उल्लेख उसमें अवश्य हुआ है; जैसे 'चोरी' करने

६९. 'मंत्री' ज्ञान न अवसर पावै, कहत बात सकुचातौ—सा० १-४०।

७०. कौटिल्य ने राजमंत्री के बाद राजपुरोहित, फिर सेनापति और तब युवराज का स्थान बताया है—'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि', पृ० ४०१ से ४०४।

७१.क. 'गुरु बसिष्ठ' अरु मिलि सुमंत सौं, परजा-हेतु बिचारे—सा० ९-५४।

ख. 'गुरु बसिष्ठ' अरु मिलि सुमंत सौं, अतिही प्रेम बढ़ावै—सा० ९-५५।

७२.क. श्री एम० आर० शर्मा, 'मुगल इंपायर इन इंडिया', पृ० ३१०।

ख. 'आइने अकबरी', पृ० ९।

७३. नैन 'अमीन' अधर्मिन कैं बस, जहँ को तहाँ छयौ—सा० १-६४।

७४. 'आइने अकबरी', पृ० ८।

७५. चित्रगुप्त सु होत 'मुस्तौफी', सरन गहूँ मैं काकी—सा० १-१४३

७६. 'आइने अकबरी', पृ० ९।

७७. सूर मिलै मन जाहि जाहि सौं ताको कहा करै काजी—सा० वें० २६७८।

पर 'बाँधा जाना', 'अंग' का 'खंडन' करना, 'डाँड' वसूलना[७८] आदि। 'फाँसी' और 'सूली' की चर्चा भी अष्टछापी कवियों ने की है[७९]।

'कोतवाल' नामक पदाधिकारी अष्टछाप-कालीन शासन-व्यवस्था में बहुत महत्व का था;[८०] परंतु सूरदास ने 'दगाबाज कुतवाल' की चर्चा की है जिससे यह संकेत होता है कि जब यह कर्मचारी अपने दायित्व का ध्यान नहीं रखता, तब प्रजा का सर्वस्व तक लूट लेता था[८१]। अष्टछाप - काव्य में उल्लिखित 'अहदी'[८२] मुहासिब,[८३] 'मोदी',[८४] मोहरिल',[८५] 'पटवारी',[८६] 'जासूस'[८७] आदि अन्य

७८.क. चोरी के फल तुमहिं दिखाऊँ।
कंचन-खंभ, डोर कंचन की, देखौ तुमहिं बँधाऊँ।
खंडौं एक अंग कछु तुम्हरौ, चोरी नाउँ मिटाऊँ।
जो चाहौं सोई सब लैहौं, यह कहि डाँड़ मनाऊँ—सा० १६३७।
ख. रही री लाज नहिं काज आजु, हरि पाए पकरन चोरी।
मूसि-मूसि लै गए मन-माखन, जो मेरैं धन हो री।
बाँधौं कंचन-खंभ कलेवर, उभय भुजा दृढ़ डोरी।
चाँपौं कठिन कुलिस-कुच-अंतर, सकै कौन धौं छोरी।
खंडौं अधर भूलि रस गोरस हरैं न काहू कौ री।
दंडौं काम-दंड पर-घर कौ नाउँ न लेइँ बहोरी—सा० १६३८।
७९.क. बधिक न छोरत 'फाँसी'—सा० ३४४६।
ख. कौन पाप मैं ऐसौ कियौ, जातैं मोकौं 'सूली' दियौ।
× × ×
ताहि सूल पर 'सूली दियौ—सा० १-३८६।
८०. 'मुगल इंपायर इन इंडिया', पृ० ३०७।
८१.क. दगाबाज 'कुतवाल' काम रिपु सरबस लूटि लयौ—सा० १-६४।
ख. पवन बुहारत द्वार सदा संकर करत कुतवारी—सा० वें०, पृ० ३५८।
८२. धरयौ आइ कुटुम-लसकर मैं, जम 'अहदी' पठयौ—सा० १-६४।
८३. सूर आप गुजरान 'मुहासिब' लै जवाब पहुँचावै—सा० १-१४२।
८४. 'मोदी' लोभ, खवास मोह के, द्वारपाल अहँकार—सा० १-१४१।
८५. 'मोहरिल' पाँच साथ करि दीने, तिनकी बड़ी बिपरीति—सा० १-४३।
८६. अहंकार 'पटवारी' कपटी, झूठी लिखत बही—सा० १-१८५।
८७.क. ऊधौ मधुप 'जसूस' देखि गहौ टूटयौ धीरज पानि—सा० ४२६७।
ख. आए सुनियत बाग में एलान भयो।
तब लगि मदन गोपाल देखन कौ 'जासूस' गयो—परमा० ४६२।

राजकीय कर्मचारी थे। सूरदास के एक पद में यशोदा ने नंद को 'ब्रज परगन सिकदार' कहा है[८८] जिससे स्पष्ट होता है कि अष्टछाप-काव्य-काल में 'जिला' कई 'परगनों' में बँटा होता था और इनका प्रधान अधिकारी 'शिकदार' कहलाता था[८९]। 'लिखने-पढ़ने' अथवा 'आय-व्यय' का लेखा आदि रखनेवाला 'लिखहार' कहा गया है[९०] और उसके कार्यालय को परमानंददास ने 'दफ्तर' कहा है[९१]।

३. सेना और युद्ध—

देश की सुरक्षा के लिए 'सेना' की आवश्यकता होती है जिसका प्रमुख कार्य आक्रमणकारी शत्रुओं से उसकी रक्षा करना होता है। राज्य-विस्तार के उद्देश्य से दूसरे देशों को जीतने के लिए भी 'सेना' चाहिए। दूसरों पर आक्रमण किया जाय, अथवा दूसरों के आक्रमण से रक्षा की जाय, दोनों स्थितियों में सेना 'युद्ध' करती है। अष्टछाप-काव्य में यद्यपि पौराणिक प्रसंगों में 'दिग्विजय' की चर्चा है, परंतु उन उदार और शांतिप्रिय कवियों ने उक्त उद्देश्य से किये गये किसी युद्ध की चर्चा नहीं की है। उन्होंने तो मुख्यत: ऐसे युद्धों की चर्चा की है जो आक्रमणकारियों या अन्यायियों के अत्याचार और अन्यायपूर्ण प्रयत्नों को असफल करके अपनी शक्ति से उनके दाँत खट्टे करने के लिए उनके आराध्य को करने पड़े थे।

'सेना' के लिए अष्टछाप - काव्य में 'कटक', 'चमू', 'दल', 'फौज', 'लश्कर', 'सैना' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं[९२]। पौराणिक प्रसंगों में 'अक्षौहिणी

८८. ब्रज परगन 'सिकदार' महर, तू ताकी करत नन्हाई—सा० १०-३२६।

८९. डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने 'परगने' या 'माहाल' को मुगल कालीन शासन की निम्नतम प्रशासकीय एवं वित्तीय इकाई और उसके चार अधिकारियों में 'शिकदार' को प्रमुख बताया है—'मुगल कालीन भारत', पृ० २२५।

९०. साँचौ सो 'लिखहार' कहावै।
काया ग्राम मसाहत करि कै, जमा बाँधि ठहरावै—सा० १-१४२।

९१. 'दफतर' लिखैं सारदा गनपति रवि ससि न्याउ बिचारैं—परमा० ८८०।

९२.क. कर कपि 'कटक' चले लंका को छिन में बाँध्यौ सेत—सारा० २८८।
ख. बल मोहन छिन माँझ सँवारे करि बिन 'चमू' पठायौ—सारा० ५६७।
ग. कौरो 'दल' नासि नासि कीन्हौं जन भायौ—सा० १-२३।

सेना'[93] का उल्लेख हुआ है। महाभारत के युद्ध में तो केवल अठारह अक्षौहिणी सेना होने की बात प्रसिद्ध है,[94] परंतु 'सारावली' में जरासंध का साठ 'अक्षौहिणी' सेना लेकर श्रीकृष्ण से लड़ने आना और अष्टछाप के परमाराध्य का क्षण मात्र में सबका संहार कर देना लिखा गया है[95]। 'सारावली' में जरासंध के सहायक 'कालयवन' की सेना में तीन 'कोटि भट' बताये गये हैं[96]। राम की सेना में 'पदुम-कोटि' योद्धा होने की बात सूरदास ने लिखी है[97]। 'सेना' में गज, अश्व, रथ और पदाति या पैदल अथवा 'पायक'[98] होने से उसे 'चतुरंगिणी' कहा गया है[99]। सेना के वीरों को अष्टछापी कवियों ने 'योद्धा', 'भट', 'सुभट', 'सूरमा' आदि कहा है[100]।

'सेना' के नायक को अष्टछापी कवियों ने 'सेनापति' और 'फौजपति'[1]

घ. मागध देस देस ते आयो, साजे 'फौज' अपार—सारा० ६०२।
ङ. मारि 'फौज' सबही मागध की जरासंध उर बारे—सारा० ६०४।
च. घेरयो आइ कुटुम 'लसकर' मैं—सा० १-६४।
छ. जाकैं हित 'सैना' सजि आए, राम लखन दोउ भाई—सा० ९-११७।

९३. अक्षौहिणी सेना में १०९३५० पैदल, ६५६१० घोड़े, २१८७० रथ और २१८७० हाथी होते थे—चतुरसेन शास्त्री, 'भारतीय संस्कृति का इतिहास', पृ० ३४५।

९४. जुरे नृपति 'अच्छौहिनि अठारह' भयो जुद्ध अति भारी—सारा० ७७९।

९५. 'तीन बीस अच्छोहिनि' लै दल जरासंध तहँ आयो।
'बल मोहन छिन माँझ सँहारे' करि बिनु चमू पठायो—सा० ५९७।

९६. यह सुनि जमन तुरत ही धायो जिय में अति अकुलाय।
'तीन कोटि भट जमन' संग लै मथुरा पहुँच्यो जाय—सारा० ६०१।

९७. 'पदुमकोटि' जिहि सैना सुनियत, जंतु जु एक पठायौ—सा० ९-१२५।

९८.क. 'पायक' मन, बानैत अधीरज, सदा दुष्टमति दूत—सा० १-१४१।
ख. धुरवा धूरि उड़ति रथ 'पायक' घोरनि की खुरतार—सा० ३३१३।

९९. मनो चलत 'चतुरंग चमू', नभ बाढ़ी खुर खेह—सा० ३३०५।

१००.क. तीनि कोटि 'भट' जनम संग लै मथुरा पहुँच्यौ जाय—सारा० ६०१।
ख. तृष्णा देसऽरु 'सुभट' मनोरथ इंद्री खड्ग हमारी—सा० १-१४४।
ग. रह्यौ अहंकार सुखेत 'सूरमा' सकति रही उर सालि—सा० ३३१३।

१.क. 'सेनापतिनि' सुनाइ बात यह, नृप मन भयौ उदास—सा० १०-६०।
ख. मुहाँचुही 'सेनापति' कीन्हीं, सकटैं गर्व बढ़ायौ—सा० १०-६१।
ग. ब्रज पर सजि पावस दल आयौ।

× × ×

कहा है जो निस्संदेह मुगलकालीन 'फौजदार' से भिन्न अधिकारी था[२]।

युद्ध के लिए सजते समय सभी सैनिक शरीर की रक्षा के लिए 'कवच' या 'सनाह'[३] पहनते थे और सिर की रक्षा के लिए 'शिरस्त्राण' लगाते थे[४]। सेना का प्रत्येक सैनिक अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित रहता है जिनको अष्टछाप-काव्य में 'आयुध' 'हथियार' और 'शस्त्र' आदि कहा गया है[५]। जिन शस्त्रों का उसमें उल्लेख हुआ है, उनमें 'असि', 'करवार' या 'तरवारि', 'छुरी', 'नेजा', 'बरछी', 'भाला' या 'भालि' 'सांग', 'सूल' या 'त्रिशूल', 'शक्ति', 'सेल्ह' आदि प्रमुख हैं[६]। अस्त्रों में, अष्टछापी

निधरक भयौ चल्यौ ब्रज आवत, अग्र 'फौजपति' मैन—सा० ३३०४।

२. श्री राहुल सांकृत्यायन के अनुसार मुगल काल में 'फौजदार' आज के जिला मैजिस्ट्रेट के समान अधिकारी होता था—'अकबर', पृ० २६४।

३.क. घन तन दिव्य 'कवच' सजि करि अरु कर धारयौ सारंगा—सा० ६-१५८।
  ख. मनु बने सुभट सजि 'कवच' अंग—सा० २८४७।
  ग. मारू मार करत भट दादुर पहिरे बिबिध 'सनाह'—सा० ३३१३।
  घ. हरे 'कवच' उघरे दिखियत हैं—सा० ३३१३।

४. टूटत धुजा पताक छत्र रथ चाप चक्र 'सिर-त्रान'—सा० ६-१५८।

५.क. अंतरिच्छ ते द्वै रथ उपजै 'आयुध' तुरँग समेत—सारा० ५६६।
  ख. धरे यंत्र 'हथियार'—सा० २६१४।
  ग. डारि 'सस्त्र' सर सेज्या सोये हरि चरननि चित लायो—सा० वें० ७८६।

६.क. ठौर-ठौर अभ्यास महाबल करत कुंत 'असि' बान—सा० ६-७५।
  ख. दामिनि कर 'करबाल', बूँद सर, इहिं बिधि साजै सैन—सा० ३३०४।
  ग. तुम्हारी प्रीति किधौं 'तरवारि'—सा० ३६६१।
  घ. प्रीति करि दीन्हीं गरे 'छुरी'—सा० ३१८५।
  ङ. नखनि छत घात 'नेजा' सम्हारै—सा० २१२६।
  च. सुनि सौं भगवान कैं आइ सनमुख कियौ भयौ सारथी और 'बरछी' चलाई।
  —सा० ४२२१।
  छ. हबकत हाथ परै नाहीं गहि, रहे नाटसल 'भालि'—सा० ३३१३।
  ज. 'सांग' की झलक चहुँ दिसा चपला चमक—सा० ४१८३।
  झ. उड़ति धूरि धुरवा चहूँ दिसि 'सूल-शक्ति' जलधार—सा० ४१६२।
  ञ. इंद्रजीत लीन्ही तब 'सक्ती, देवनि हहा करयौ—सा० ६-१४४।
  ट. चमक बीजु 'सेल्ह' कर मंडित, गरज निसान बजायौ—सा० ३३२८।

कवियों ने 'आगर', 'गदा', 'मुग्दर', 'मूसल' आदि का उल्लेख किया है[७]। श्रीकृष्ण का 'सुदर्शन चक्र' भी इसी वर्ग में समझना चाहिए[८]।

'धनुष' नामक 'अस्त्र' का अष्टछाप-काव्य में सबसे अधिक उल्लेख हुआ है और उसके लिए 'कमान', 'कोदंड', 'चाप', 'धनु,' 'धनुहियाँ', 'पिनाक' आदि अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं[९]। 'धनुष' चलानेवाला 'धनुषधर' कहा गया है[१०]। 'धनुष' से छोड़े जानेवाले 'तीर' के लिए 'बान', 'सर', 'सायक' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं[११]।

अष्टछाप-काव्य में अनेक ऐसे अस्त्रों की भी चर्चा है जो मंत्र की शक्ति से चलाये जाते थे। इस वर्ग के अस्त्रों में उन्होंने 'दिव्य बान', 'ब्रह्मास्त्र' या 'ब्रह्मबान' आदि की चर्चा की है[१२]। 'ब्रह्मफाँस' और 'नागफाँस' की भी गणना मंत्राभिषिक्त

७.क. 'आगर' इक लौह जटित लीन्ही बरिबंड—सा० ६-६६।
ख. 'गदा' युद्ध सल्व कीन्हों बहुत बेर लौं—सा० ४२२१।
ग. आपुन ही 'मुगदर' लै धायौ करि लोचन बिकराल—सा० ६-१०४।
घ. राम हल 'मूसल' सँभारि धारयौ—सा० ४१८३।
८.क. 'चक्र' सुदरसन जारौं—सा० १-२७२।
ख. सीतल भई 'चक्र' की ज्वाला जब सिर तिलक निहारो—सारा० ७८३।
ग. गोविंद कोपि 'चक्र' कर लीन्हौ—सा० १-२०३।
९.क. कुबुधि 'कमान' चढ़ाइ कोप करि—सा० १-६४।
ख. मनु मदन धनु-सर सँधाने, देखि घन 'कोदंड'—सा० १-३०७।
ग. करुनामय जब 'चाप' लियो कर—सा० ६-२६।
घ. कटि तट पट पीताम्बर काछे, धारे 'धनु' तूनीर—सा० ६-४४।
ङ. राम 'धनुष' अरु सायक साँधे—सा० ६-५८।
च. करतल सोभित बान 'धनुहियाँ'—सा० ६-१६।
छ. जिनि रघुनाथ 'पिनाक' पितागृह तोर्यौ निमिष महीं—सा० ६-६१।
१०. ऐसो कोउ 'धनुषधर' नाहिं—सा० ४३०६।
११.क. स्याम बलराम सुधि जाइ सन्मुख भए, 'बान' बरषा लगे करन सारे—सा० ४१८३।
ख. जिन रघुनाथ हाथ खर दूषन हरे 'सर हीं'—सा० ६-६१।
ग. धर अंबर दिसि बिदिसि बढ़े, अति 'सायक' किरन समान—सा० ६-१५८।
१२.क. देख्यौ जब दिव्यबान निसिचर कर तान्यौ—सा० ६-६६।
ख. 'ब्रह्मबान' कानि करी, बल करि नहिं बाँध्यौ—सा० ६-६७।
ग. अस्वस्थामा अस्त्र चलायौ अर्जुन हूँ 'ब्रह्मास्त्र' पठायौ—सा० १-२८६।
घ. इंद्रजीत बलनिधि जब आयो 'ब्रह्मअस्त्र' उन डारे—सारा० २८४।

आयुधों में की जानी चाहिए; प्रथम से मेघनाद ने हनुमान को[१३] और दूसरे से राम-लक्ष्मण को बाँधा था[१४]।

उक्त अस्त्र-शस्त्रों के अतिरिक्त 'पलीता' लगाकर छोड़े जानेवाले 'गोलों' की भी चर्चा अष्टछापी कवियों ने की है। यद्यपि ऐसे अस्त्रों का उल्लेख 'शुक्रनीति' में भी पाने की बात कुछ विद्वानों ने लिखी है,[१५] तथापि इतिहासकारों ने अकबर के 'तोपखाने' का वर्णन किया है[१६]। जो हो, अष्टछापी कवि इनसे परिचित अवश्य थे और उन्होंने 'कमान' में 'दारू' भरकर 'पलीता' लगाये जाने की बात स्पष्ट शब्दों में लिखी है जिससे भयंकर 'गर्जन' करता हुआ 'गोला' छूटता है, और पल भर में 'गढ़' जीत लिया जाता है[१७]।

वाह्य आक्रमणकारियों से देश की सुरक्षा के लिए 'दुर्ग' या 'गढ़' बनाये जाते थे जिनकी रक्षा सेना करती थी और 'दुर्ग' का पतन होने पर राज्य 'विजित' समझ लिया जाता था। 'दुर्ग' या 'गढ़' को अधिक से अधिक सुरक्षित और दृढ़ बनाने का प्रयत्न अष्टछाप-काल में किया जाता था और अनेक दुर्ग उस समय ऐसे थे जो 'अजेय' समझे जाते थे। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने दो दुर्गों का वर्णन विशेष रूप से किया है। पहला है लंका का दुर्ग जो नगर के चारों ओर बना था अर्थात् दुर्ग के मध्य में नगर इस तरह बसा था कि वह सब तरह से सुरक्षित था[१८]। लंका का दुर्ग 'अभेद्य' समझा जाता था और उसमें 'वज्र के किवाड़' लगे थे[१९]।

१३.क. देख्यौ जब 'दिव्यबान' निसिचर कर तान्यौ।
छाँड्यौ तब सूर हनू 'ब्रह्मतेज' मान्यौ—सा० ६-६६।
ख. 'ब्रह्म फाँस' उन लई हाथ करि, मैं चितयो कर जोरि—सा० ६-१०४।

१४. हँसि-हँसि 'नाग-फाँस' सर साँधत, बंधु-समेत बँधायौ।
नारद स्वामी कह्यौ निकट ह्वै, गरुड़ासन काहैं बिसरायौ?
× × ×
सुमिरन ध्यान जानि कै अपनौ, 'नाग फाँस तैं' सेन छुड़ायौ—सा० ६-१४१।

१५. 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास', पृ० ६२।

१६. डा० ईश्वरी प्रसाद, 'भारतवर्ष का इतिहास', पृ० १७५।

१७. जलद 'कमान' बारि 'दारु' भरि, तड़ित 'पलीता' देत।
गरजन अरु 'तड़पन' मनु 'गोला', पहरक मैं 'गढ़ लेत'—सा० ४२६७।

१८. 'चहुँ दिसि लंक दुर्ग' दानव दल कैसे पाऊँ जान—सा० ६-७५।

१९. 'लंक गढ़ माँहि' आकास मारग गयौ चहुँ दिसि लगे 'बज्र किवारा'—सा० ६-७६।

दुर्ग के चारों ओर समुद्र जैसी गहरी और चौड़ी खाई थी जिसके कारण रावण सदा निश्चिंत रहता था। उसकी इस निश्चिंतता को लक्ष्य करके ही विभीषण कहता है कि अपने दुर्ग की दुर्गमता और समुद्र-जैसी खाई देखकर गर्व मत करो, चार-पाँच दिन में ही 'लंका' दूसरे की हो जायगी[३०]।

सूरदास द्वारा वर्णित दूसरा दुर्ग 'द्वारका' का है जिसका निर्माण श्रीकृष्ण ने कराया था। सागर के तीर पर बसे हुए कंचन के इस 'कोट' के चारों ओर 'गोमती-जैसी' खाई थी[३१]।

शत्रु के आक्रमण करने पर अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित सेना दुर्ग आदि की रक्षा के लिए युद्ध करती है। अष्टछापी कवियों ने 'युद्ध' के लिए 'जुद्ध', 'रन', 'लराई', 'समर', 'संग्राम' आदि शब्दों का प्रयोग किया है[३२]। कभी-कभी तो युद्ध का निर्णय एक ही दिन में हो जाता था और कभी कई-कई दिन तक युद्ध चला करते थे। महाभारत का युद्ध अठारह दिन तक चलना तो प्रसिद्ध ही है जिसमें सूरदास के अनुसार, भीष्म ने दस दिन तक युद्ध किया था[३३]।

सामान्य मानवीय रीति के युद्ध के अतिरिक्त अष्टछापी कवियों में सूरदास ने 'मायावी' युद्धों का भी वर्णन किया है। साल्व और दंतवक्र के युद्ध में इसके उदाहरण मिलते हैं जिसमें कभी तो युद्धकर्ता विराट् रूप धारण करता है और कभी अत्यंत लघु रूप; कभी प्रकट हो जाता है, कभी अलक्षित;[३४] कभी कोई योद्धा रण-

३०. 'लंक सौ कोट' देखि जनि गरबहि, अरु 'समुद्र-सी खाई'।
आजु-काल्हि, दिन चारि-पाँच मैं, लंका होति पराई—सा० ६-११७।

३१. सुनियत कहूँ द्वारिका बसाई।
दच्छिन दिसा तीर सागर कैं, 'कंचन कोट गोमती खाई—सा० ४२६२।

३२.क. आये रुद्र पच्छ करि ताको 'जुद्ध' करन हरि साथ—सारा० ७०२।
ख. गहि सारँग 'रन' रावन जीत्यौ लंक बिभीषन परयौ दुहाई—सा० १-२४।
ग. उन दोउन सों भई 'लराई', अर्जुन तब दोउ लिये बुलाई—सा० १-२८६।
घ. करि रिपु हानि 'समर' सब जीत्यो राम कृष्न थर आये—सारा० ६२१।
ङ. ब्रह्मादिक आरूढ़ बिमाननि, देखत हैं 'संग्राम'—सा० ६-१५५।

३३. 'दस दिन लरे बली गंगासुत' स्याम प्रतिज्ञा 'जानी।
सत्य बचन हरि कियो भक्त को निगम झूठ करि बानी—सारा० ७८२।

३४. असुर विद्या समर बहुरि लाग्यौ करन, कबहुँ लघु कबहुँ दीरघ सु होई।

क्षेत्र में अंधकार करने के लिए 'तिमिर बान' छोड़ता है तो दूसरा उसको नष्ट करने के लिए 'दीप्तिबान';[२५] कभी विपक्ष के सैनिकों को भयभीत करने के लिए युद्ध-क्षेत्र में अकस्मात् बाण-वर्षा के साथ अग्नि-वर्षा होने लगती है;[२६] एवं कभी रक्त और मांस की[२७]। इसी प्रकार सैनिकों को भ्रम में डालने के लिए मायावी युद्ध करनेवाले कभी-कभी 'थल' को 'जल' और 'जल' को थलवत् दिखाकर विपक्षी-दल को विचलित करने की योजना बनाते हैं[२८]।

सामान्यतया आक्रमणकारी, सेना के नष्ट हो जाने पर, लौट जाया करते थे; जैसे साठ अक्षौहिणी सेना नष्ट हो जाने पर जरासंध लौट जाता है[२९]। परंतु जब आक्रमणकारी जीत जाता था तब विपक्षी के राज्य पर उसका अधिकार हो जाता था। रावण की मृत्यु पर विभीषण उसके राज्य खोने की बात स्पष्ट रूप से कहता है[३०]। ऐसी स्थिति में पराजित के राज्य में जेता की 'दुहाई' फेरी जाती थी। रावण को समझाता हुआ विभीषण कहता है कि यदि तू सावधान नहीं होगा, तो राम-लक्ष्मण सेना सजा कर आ गये हैं; लंका पर शीघ्र ही उनका अधिकार हो जायगा और नगर में उनकी दुहाई फिर जायगी[३१]।

रणक्षेत्र के लिए 'खेत' शब्द का प्रयोग 'जरासंध-युद्ध'-प्रसंग में हुआ है[३२]।

गुप्त ह्वै कबहूँ, कबहूँ परगट देखियै, कबहुँ थर कबहूँ नभ बसैं सोई—सा० ४२२१।

२५. 'तिमिर को बान' तब साल्व मारयौ फटकि, प्रद्युम्न 'बान दीपति' चलायौ।
मिट्यौ अँधकार तब बान बरषा करी, तुरँग सारथी स्यौं गिरायो—सा० ४२२१।

२६. 'अगिनि' कबहुँ, कबहुँ 'बारि' बरषा करैं—सा० ४२२१।

२७. 'रुधिर और मांस की लग्यौ बरषा' करन—सा० ४२२३।

२८. 'जल में थल, थल में जल देख्यो स्याम' दूरि करि दीन्हीं—सारा० ७८२।

२९. तीन बीस अच्छोहिनि लै दल जरासंध तहँ आयो।
बल मोहन छिन माँझ सँहारे करि बिन चमू पठायो—सारा० ५६७।

३०. लीन्हे गोद बिभीषन रोवत, कुल-कलंक ऐसी मति ठानी।
चोरी करी, 'राजहूँ खोयौ', अल्प मृत्यु तब आइ तुलानी।
कुंभकरन समुझाइ रहे पचि, दै सीता, मिलि सारँगपानी।
सूर सबनि कौं कह्यौ न मान्यौ, त्यौं 'खोई अपनी रजधानी'—सा० ६-१६०।

३१. जाकैं हित सैना सजि आए, राम लखन दोउ भाई।
सूरदास प्रभु लंका तोरैं, 'फेरैं राम-दुहाई'—सा० ६-११७।

३२. कहत गोपाल सुनहु संकरषन आजु मारिहौं 'खेत'—परमा० काँक० ११४४।

युद्धक्षेत्र के भयंकर विनाश की ओर भी अष्टछापी कवियों ने कहीं-कहीं संकेत किया है। ध्वजा, पताका, रथ-चक्र आदि के टूटने; योद्धाओं के हाथ, पैर, सिर आदि के कटने; कबंधों के गिरने आदि के दृश्यों में रुचि न रहने पर भी दो-एक स्थलों पर वे ऐसी बातों उल्लेख करते हैं[३३]। युद्ध-क्षेत्र में रक्त की भयंकर कीच के बीच घायल पड़े वीरों के अर्द्धमृतक एवं मृतक शरीरों का स्यार, गिद्ध आदि के द्वारा खाया जाना भी अष्टछाप-काव्य में वर्णित है[३४]।

४. राजस्व—

राजपरिवार, राजकीय कर्मचारी, सेना के पदाधिकारी आदि के वेतन तथा प्रशासकीय व्यवस्था आदि के लिए जो धन चाहिए, वह विविध 'करों' के रूप में प्रजा से लिया जाता है। कालिदास के अनुसार प्रजा के उपकार के लिए ही राजा उससे 'कर' लेता है जैसे सूर्य सहस्र गुणा दान के लिए ही पृथ्वी से जल लेता है[३५]। 'कर'-रूप में राजा को प्राप्त होनेवाला धन राज्य का 'अंश' कहलाता था। कृष्ण और बलराम को लिवाने आये हुए अक्रूर से इसी तथ्य की ओर संकेत करती हुई माता यशोदा कहती है कि राजा को दिया जानेवाला अंश 'दूना' ले लो, परंतु सुतों को देकर मैं क्या करूँगी[३६] ?

३३.क. टूटत धुजा-पताक-छत्र - रथ, चाप चक्र - सिरत्रान।
जूझत सुभट जरत ज्यौं द्रुम बिनु साखा बिनु पान।
स्रोनित छिंछ उछरि आकासहिं, गज-बाजिनि-सिर लागि।
मानौ निकरि तरनि रंध्रनि तैं, उपती है अति आगि।
परि कबंध भहराइ रथनि तैं, उठत मनौ झरि जागि—सा० ९-१५८।

ख. रघुपति अपनौ प्रन प्रतिपारयौ।
तोरयौ कोपि प्रबल गढ़, रावन टूक-टूक करि डारयौ।
कहुँ भुज, कहुँ धर, कहुँ सिर लोटत मानौ मद मतवारौ।
भभकत, तरफत स्रोनित मैं तन नाहीं परत निहारौ—सा० ९-१५९।

३४.क. 'फिरत सृगाल' सज्यौ सब काटत चलत सो सिर लै भागि—सा० ९-१५८।
ख. सो रावन रघुनाथ छिनक मैं 'कियौ गीध कौ चारौ'।
सिर सँभारि लै गयौ उमापति, 'रह्यौ रुधिर कौ गारौ'—सा० ९-१५९।

३५. 'रघुवंश', १-१८।

३६. 'राज कौ अंस' लिखि लेहु दूनौ देहुँ, मैं कहा करौं सुत दुहुँनि दैकै—सा० २९६७।

यों तो राज्य की आय कई विभागों से होती है[३७] तथापि भारत-जैसे कृषि-प्रधान देशों में 'भूमिकर' या 'लगान' ही राज्य की 'आय' का प्रमुख साधन है[३८]। अष्टछाप-काव्य में भी अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा 'कर' दिये जाने का स्पष्ट उल्लेख कई स्थलों पर मिलता है। चतुर्भुजदास और कुंभनदास की गोपियाँ 'दान' माँगनेवाले कृष्ण से व्यंग्यपूर्वक कहती हैं कि बाप तो राजा कंस को 'कर' देकर उसके अधीन है और बेटा स्वयं 'जगाती' अर्थात् कर उगाहनेवाला बना घूमता है[३९]। नंददास के अनुसार 'कर' देने का दिन निश्चित रहता था और करदाता को 'कर' जमा करने स्वयं जाना पड़ता था। कृष्ण के जन्म के कुछ ही दिन बाद 'कर' जमा करने का दिन आ जाने पर नंद जी विवश होकर उसके लिए मथुरा जाते हैं[४०]। परमानंददास के अनुसार निश्चित दिन के भीतर 'कर' न पहुँचने पर राजा या उसका अधिकारी दूत भेजकर 'कर' मँगवा लेता था[४१]।

उक्त 'कर' के अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में 'दान-लीला'-प्रसंग में 'चुंगी'-जैसे 'कर' का वर्णन है जो प्राय: ऐसे मसालों आदि पर लिया जाता था जो दूर के स्थानों से लाये जाते थे। गोविंदस्वामी के कुछ पदों में 'लौंग-सुपारी' पर इस प्रकार के कर लिये जाने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है[४२]। 'कर' उगाहनेवाले को 'जगाती',[४३]

३७. 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति', पृ० १५५ में उद्धृत 'वाटर्स आन युवनच्वांग्स ट्रैविल्स', जिल्द १, पृ० १७६-७७।

३८. 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास', पृ० ८१।

३९.क. 'बाप देत कर कंस राजा को, पूत जगाती डोलत मैंड़े।
—चतु०, कीर्तन०, भा० १, पृ० २१०।

ख. 'बाप देत कर कंस रजा को'—कुंभन० १६।

४०. ऐसे माँझ महा दुख पायौ, 'कंस को कर देनौ दिन आयौ'।
रच्छक राखि घोष मैं भले, मथुरा नगर नंद जू चलै।
तुरत जाइ नृप कौं कर दियौ, ब्रजपति ब्रज चलिबै को भयो।
—नंद०, दशम०, पृ० २१६।

४१. कालिह दूत आवन चाहत है, राम कृष्न को लैन।
नन्दादिक सब ग्वाल बुलायै 'अपनो वार्षिक लैन'—परमा० ४७५।

४२.क. दान माँगत जैसे काहू लादी है लौंग सुपारी—गोविं० २५।

ख. 'दूध-दही गोरस कौ दान कबहूँ न सुन्यौ कान' अब मानों लौंग लादी काहू जैसें।
—गोविं० २६।

४३. बाप देत कर कंस रजा को पूत 'जगाती' डोलत मैंडे।
—चतु०, कीर्तन०, भाग १, पृ० २१०।

'दानी' आदि कहा गया है। ऐसे अधिकारियों को शासक की ओर से लिखित आज्ञा पत्र या प्रमाणपत्र मिलता था। इसी से गोविंदस्वामी की गोपियाँ 'दान' माँगने वाले कृष्ण से पूछती हैं कि तुम स्वयं ही 'दानी' बन गये हो या तुम्हें किसी ने नियुक्त किया है[४४]। 'पोता', 'बट्टा', 'दस्तक', 'अवारजा', 'फरद', 'तगीरी' आदि शब्द भी 'राजस्व' से संबंधित हैं जिनका प्रयोग केवल सूरदास ने किया है[४५]।

५. *राजनीति-संबंधी अन्य बातें*—

अष्टछाप-काव्य में यत्र-तत्र ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे उसके रचयिताओं के राजनीति-संबंधी विचारों पर कुछ प्रकाश पड़ता है। उदाहरणार्थ, राजनीति के नियमानुसार 'दूत' अबध्य समझा जाता था। रावण जब हनुमान के कार्यों से क्षुब्ध होकर इनको मार डालने की आज्ञा अपने सेवकों को देता है तब मंत्रीगण उसको यह कहकर ही रोकते हैं कि भला किसी राजा ने दूसरे के 'दूत' को मारा है[४६] ?

सूरदास के एक पद में ऊधव से गोपियाँ कहती हैं कि कृष्ण ने 'राजपदवी' पायी है और तुम उनके सहायक, सखा, सभी कुछ हो। तुम्हें तो ऐसे अवसर का लाभ उठा कर कुछ 'कमा' लेना चाहिए था, इधर-उधर उपदेश देते फिरकर क्यों व्यर्थ अवसर खो रहे हो[४७] ? स्पष्ट है कि अष्टछाप-काल में भी अवसर से लाभ उठानेवाले लोगों की कमी नहीं थी।

कंस की कपटपूर्ण नीति के संबंध में भी सूरदास ने एक रोचक संकेत किया

४४. आपु ही लेत किधौं काहू लिखि दीनो—गोविं० २६।
४५.क. माँड़ि माँड़ि खरिहान क्रोध कौ, 'पोता' भजन भरावै—सा० १-१४२।
ख. 'बट्टा' काटि कसूर भरम कौ—सा० १-१४२।
ग. सूरदास की यहै बीनती 'दस्तक' कीजै माफ—सा० १-१४३।
घ. करि 'अवारजा' प्रेम प्रीति कौ, असल तहाँ खतियावै—सा० १-१४२।
ङ. बट्टा काटि कसूर भरम कौ, 'फरद' तले लै डारै—सा० १-१४२।
च. सुनी 'तगीरी' बिसरि गई सुधि मो तजि भए नियारे—सा० १-१४३।
४६. मंत्रिनि नीको मंत्र बिचारयौ।
राजन कहौ, दूत काहू कौ, कौन नृपति है मारयौ—सा० ६-६८।
४७. ऊधौ, क्यों आये ब्रज धावते।
'सहायक सखा राजपदवी मिलि दिन दस कछुक कमावते'—सा० वें०, पृ० ४७२।

है। उसकी योजना अक्रूर के द्वारा बलराम और कृष्ण को बुलवाने की है; अतएव प्रात:काल जब अक्रूर कंस के भवन में जाते हैं तब नृपति 'खवास' को सैन करके 'सिरोपाँव' मँगाता है और अपने हाथ से लेकर अक्रूर को देता है[४८]। इसी प्रकार अपनी आज्ञा का पालन कर दिये जाने पर उसने 'बकसीस' देने की बात भी कही है। कंस ने अक्रूर से कहा है कि कृष्ण उरग-पीठ पर कमल लाद कर ले आये थे, तो अब मैं उन्हें 'बक्सीस' दूँगा[४९]।

समीक्षा—अष्टछाप-काव्य में चित्रित राजनीतिक जीवन का जो परिचय ऊपर दिया गया है, उसके संबंध में दो बातें ध्यान में रखने की हैं। एक तो यह कि अष्टछापी कवि स्वभाव और परिस्थिति, दोनों कारणों से राजनीतिक संपर्क से सदैव दूर रहे। 'भक्त कौ कहा सीकरी काम'[१५०] जैसी उनकी उक्तियों से इस कथन की पुष्टि भी होती है। अतएव तद्विषयक जीवन के संबंध में उन्होंने जो कुछ लिखा है वह सामान्य रूप से उनकी बहुज्ञता की ही देन है, घनिष्ठ संपर्क द्वारा अर्जित ज्ञान के प्रकाशन की प्रवृत्ति का फल नहीं है। राजनीतिक जीवन-विषयक उनकी जानकारी जागरूक नागरिक जैसी है जिसके लिए उस क्षेत्र से सर्वदा दूर रहनेवाले अष्टछापी कवियों की प्रतिभा पर पाठक को हर्ष-मिश्रित आश्चर्य होता है।

दूसरी बात यह है कि अष्टछाप-काव्य में प्रयुक्त 'राजनीति'-संबंधी शब्दावली में, जैसा पीछे कहा जा चुका है, अनेक शब्द अरबी-फारसी के हैं जिनका प्रचलन भारत में अष्टछाप-काल तक, लगभग तीन सौ वर्षों तक विदेशी शासन रहने के कारण, हो चुका था। ऐसे अनेक शब्द 'आइने अकबरी'-जैसे तत्कालीन ग्रंथों में और उस युग को लेकर लिखे गये आधुनिक इतिहासों में भी मिलते हैं। अतएव इतिहास के अध्येता को अष्टछाप-काव्य में प्रयुक्त वैसे शब्दों में अध्ययन की पर्याप्त रोचक सामग्री मिल सकती है।

४८. कहि खवास कौं सैन दै, 'सिरोपाँव मगायौ'।
'अपनैं कर लै करि दियौ', सुफलक-सुत लीन्हौं—सा० २६३६।
४९. कमल जब तैं उरग-पीठि ल्याये सुने, वहै 'बकसीस' अब उनहिं देहौं—सा० २६३०।
१५०. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० २३३।

८ भक्ति और धर्म-संबंधी विचार

अष्टछापी कवि वल्लभ-संप्रदायी भक्त थे। अतएव उनके काव्य में भक्ति और धर्म-संबंधी जो विचार मिलते हैं वे प्रमुख रूप से महाप्रभु वल्लभाचार्य के तत्संबंधी सिद्धांतों से प्रभावित हैं। साथ-साथ व्रजप्रदेश के जन-समाज के तद्विषयक परंपरागत विचारों का भी उन्होंने परिचय दिया है। अतएव अष्टछाप-काव्य में वर्णित भक्ति और धर्म-संबंधी विचारों का अध्ययन तीन शीर्षकों के अंतर्गत करना उचित जान पड़ता है—१. सांप्रदायिक विचार और भक्ति के विविध रूप, २. सामान्य धार्मिक विचार और ३. धार्मिक कृत्य।

१. सांप्रदायिक विचार और भक्ति के विविध रूप—

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भगवान के प्रति माहात्म्य-ज्ञानपूर्वक परम सुदृढ़ स्नेह को[1] 'भक्ति' कहा है[2] और उसको केवल प्रभु के अनुग्रह द्वारा ही साध्य बताया है[3]। यही 'पुष्टिमार्गीय' भक्ति है जिसमें प्रीति और करुणा का महत्व सर्वोपरि है। इसी से इसको 'रागानुगा' भक्ति[4] भी कहा गया है और यही संक्षेप में 'पुष्टि संप्रदाय' में मान्य भक्ति का स्वरूप है[5]। 'प्रभु-अनुग्रह' की पात्रता आने पर भक्त सदैव के लिए निश्चिंत हो जाता है; क्योंकि इसके अनंतर परमाराध्य ही भक्त के समस्त कार्यों का नियामक रहता है[6]। प्रभु का प्रेम और अनुग्रह पाने तथा अविद्या इत्यादि नाना प्रकार के दोषों का नाश करने के लिए महाप्रभु ने दृढ़ विश्वास-पूर्वक श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन

१. 'श्री आचार्य जी के मारग को स्वरूप कहा है। जो माहात्म्य ज्ञानपूर्वक दृढ़ स्नेह सो सर्वोपरि है सो ठाकुरजी को बहुत प्रिय है, परंतु जीव माहात्म्य राखे। सो काहे ते। जो माहात्म्य बिना अपराध को भय मिट जाय तासों प्रथम दशा में माहात्म्य-युक्त स्नेह आवश्यक कहिए'—श्री हरिराय, 'अष्टछाप-वार्ता', पृ० १८।
२. 'तत्वदीप निबंध', शास्त्रार्थ-प्रकरण, श्लोक ४६।
३. 'अणुभाष्य', चतुर्थ अध्याय, चतुर्थपाद, सूत्र ६।
४. 'भक्ति-रसामृत-सिंधु', पूर्व विभाग, लहरी २, श्लो० ६२।
५. 'अणुभाष्य', पृ० ११०४।
६. 'सिद्धांत मुक्तावली', 'षोडश ग्रन्थ', भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लो० १८, पृ० ३१।

अंगोंवाली नवधा-भक्ति[७] करने का उपदेश दिया है[८]। ऐसा करने से प्रेम की वह पूर्णता आती है जिससे भगवद्धर्म प्रादुर्भूत होते हैं[९]। कारण यह है कि सूरदासादि ने भगवान को प्रेममय ही माना है जो राव-रंक, नर-नारी, सभी के प्रेम को स्वीकार करता है और केवल प्रेम के कारण ही जन्म लेता तथा अनेक लीलाएँ करता है[१०]। उनकी सम्मति में, प्रेम केवल प्रेम से ही उपजता है। सच्चे प्रेम में ही संसार बँधा है, उसी से परमार्थ, और यहाँ तक कि, गोपाल भी मिल जाते हैं[११]। नंददास ने भी प्रेम की अनन्यता पर बल देते हुए कहा है कि वह एक के प्रति ही होता है, गंधी के सौदे की तरह जन-जन के हाथ नहीं बिकता[१२]।

७. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥
—'श्रीमद्भागवत', सप्तम स्कंध, अ० ५, श्लो० २३, २४।

८.क. 'तत्वदीप निबंध', शास्त्रार्थ प्रकरण, श्लो० ५३।
ख. 'चतुःश्लोकी', 'षोडश ग्रन्थ', भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लो० ४।
ग. 'बाल-बोध', 'षोडश ग्रन्थ', भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लो० १६।

९. 'जलभेद', 'षोडश ग्रन्थ', भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लो० १०।

१०.क. प्रीति-बस स्याम है राव रंक कोउ, पुरुष कै नारि नहिं भेदकारी।
प्रीति-बस देवकी-गर्भ लीन्हौ बास, प्रीति कैं हेत ब्रज बेष कीन्हौं!
प्रीति कैं हेतु जसुमति-पय पान कियौ, प्रीति कैं हेतु अवतार लीन्हौ।
प्रीति कैं हेतु बन धेनु चारत कान्ह, प्रीति कैं हेतु नँद-सुवन नामा।
प्रीति कैं हेतु सूरज-प्रभुहिं पाइयै, प्रीति कैं हेतु दोउ स्याम स्यामा—सा० २०१७।

ख. प्रीति के बस्य ये हैं मुरारी।
प्रीति के बस्य नटवर सुभेषहिं धरयौ, प्रीति बस कारज गिरिराजधारी।
प्रीति के बस्य ब्रज भए माखन चोर, प्रीति के बस दाँवरि बँधाई।
प्रीति के बस्य गोपी-रमन नाम प्रिय, प्रीति के बस्य बन-धाम कामी—सा० २०१८।

११. प्रेम प्रेम तैं होइ, प्रेम तैं पारहिं जइयै।
प्रेम बँध्यौ संसार प्रेम परमारथ लहियै।
साँचौ निहचै प्रेम कौ, जीवन मुक्ति रसाल।
एकै निहचै प्रेम कौ, जबै मिलैं गोपाल—सा० ४०६५।

१२. प्रेम एक इक चित्त सों, एकहिं संग समाइ।
गंधी को सौदो नही जन जन हाथ बिकाइ—नंद०, रूप०, पृ० १७।

भक्ति के उक्त नौ प्रकारों में से प्रथम छह 'कृत्य' हैं और अंतिम तीन हैं 'भाव'। 'कृत्यों' में प्रथम तीन का संबंध ईश्वर के नाम और लीला-रूपों से, और अंतिम तीन अर्थात पाद-सेवन, अर्चन और वंदन का संबंध उनके विग्रह-स्वरूपों से है। दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन भावों के साथ-साथ वात्सल्य और मधुर भावों से भी भगवान की उपासना का वल्लभ-संप्रदाय में महत्व है जिसको सम्मिलित रूप से 'प्रेमरूपा' या 'प्रेमलक्षणा' भक्ति कहा गया है। 'सारावली' में भक्ति के इन दसों प्रकारों का उल्लेख है[१३] और 'परमानंदसागर' में श्रवण में परीक्षित, कीर्तन में शुकदेव, स्मरण में प्रहलाद, पाद-सेवन में कमला, अर्चन में पृथु, वंदन में सुफलक-सुत, दास्य में हनुमंत, सख्य में अर्जुन, आत्म-समर्पण में बलि और प्रेमासक्ति में गोपियों को आदर्श-स्वरूप बताकर 'दसधा' भक्ति का उल्लेख किया गया है[१४]। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भक्ति के प्रथम नौ प्रकारों से अधिक महत्व 'प्रेम-लक्षणा' का मान कर उसकी आदर्शस्वरूपा गोपियों को 'प्रेम की ध्वजा'[१५] कहा है। सूरदास की सम्मति में, बिना हरि-कृपा के 'प्रेमाभक्ति' नहीं होती[१६] और नंददास का मत है कि भगवान अतुलित प्रेमभाव से ही वश में होते हैं[१७]। नवधा

१३. स्रवन, कीरतन, स्मरन, पादरत, अरचन, बंदन, दास।
सख्य और आत्मा-निवेदन प्रेम लच्छना जास—सारा० ११६।

१४. तातें 'दसधा' भक्ति भली।
जिन जिन कीनी तिनके मन तें नेकु न अनत चली।
'स्रवन' परीक्षित तरे राजरिषि 'कीर्तन' करि सुकदेव।
'सुमिरन' करि प्रह्लाद निर्भय भयो कमला करी 'पद सेव'।
प्रथु 'अरचन', सुफलक-सुत 'बंदन', 'दास भाव' हनुमंत।
'सखा भाव' अर्जुन बस कीने श्री हरि श्री भगवंत।
बलि 'आत्म समर्पन' करि हरि राखे अपने पास।
'अविरल प्रेम' भयो गोपिनि को बलि परमानंददास—परमा० हस्त० ३१४।

१५. 'गोपी प्रेम की ध्वजा'।
जिन गोपाल कियो बस अपने उर धरि स्याम भुजा—परमा० ८२५।

१६. प्रेम भक्ति बिनु कृपा न होई, सर्व सास्त्र हम देख्यौ जोइ—सा० ४२९८।

१७.क. सबै बस्तु जग मैं तुलित, अतुलित एकै प्रेम।
ऐसैं प्रभु बस होत जिहिं, सुनहु प्रेम की बात—नंद०, दशम०, पृ० ३२६।

भक्ति के विविध रूप इस 'प्रेमलक्षणा भक्ति' की प्राप्ति के ही साधन हैं जिनके संबंध में अष्टछापी कवियों के विचार नीचे दिये जाते हैं।

क. *श्रवण*—'श्रवण' भक्ति से तात्पर्य है परमाराध्य के गुण, नाम, चरित्र आदि का सुनना-सुनाना[१८]। सूरदास ने 'श्रवण' भक्ति की महिमा बताते हुए कहा है कि प्राणी के श्रवणों की सार्थकता ईश्वर की सरस कथा का सुधा-रस सदा-सर्वदा पान करने में है[१९]। इसी प्रकार हरि-लीला सुनने-सुनाने का फल 'हरि-भक्ति की प्राप्ति' और भवसागर से मुक्ति आदि बताया गया है[२०]। अपने परमाराध्य के गुण सुनना सूरदास को सदैव ही अत्यंत प्रिय लगता है[२१]। एक पद में सूरदास ने हरि-लीला सुनने-सुनाने की तुलना में अष्टसिद्धि और नवनिधि की प्राप्ति को भी तुच्छ बताया है[२२]। परमानंददास भी 'नाउँ उचार' को मंगलकारी[२३] कहकर कथा-श्रवण के रस का वरदान चाहते हैं[२४]। नंददास ने 'श्रवण-रस' में 'मस्त' लोगों को अमृतपान-सा आनंद मिलने की बात कही है[२५] और 'रास-लीला' के सुनने-सुनाने से प्रेमभक्ति पाने का स्पष्ट उल्लेख किया है[२६]। कृष्णदास भी लाल की लीला गाने-सुनने में

ख. नित्य आत्मानंद, अखंड सरूप उदारा।
केवल प्रेम सुगम्य, आगम्य अवर परकारा—नंद०, सिद्धांत०, पृ० १६१।

१८. 'श्रीहरि-भक्ति-रसामृत-सिंधु', पूर्व विभाग, लहरी २, श्लो० ३२।

१९. स्रवननि की जु यहै अधिकाई, सुनि हरि-कथा सुधा-रस पावै—सा० २-७।

२०.क. जो यह लीला सुनै-सुनावै, सो हरि-भक्ति पाइ सुख पावै—सा० वें०, पृ० ६६।
ख. जो पद स्तुति सुनै-सुनावै, सूर सो ज्ञान-भक्ति को पावै—सा० वें०, पृ० ५६५।
ग. सूर कह्यौ श्री मुख उचार, कहै-सुनै सो तरै भव पार—सा० वें०, पृ० ५६५।

२१. अंग-अंग-प्रति-छबि तरंग-गति सूरदास क्यौं कहि आवै—सा० १-६६।

२२ रास-रस-लीला गाइ सुनाऊँ।
यह जस कहै, सुनै मुख स्रवननि, तिहि चरननि सिर नाऊँ।
कहा कहौं बक्ता स्रोता-फल, इक रसना क्यौं गाऊँ।
'अष्टसिद्धि नवनिधि सुख-संपति, लघुता कर दरसाऊँ'—सा० ११७८।

२३. मंगल माधौ नाउँ उचार—परमा० ५८७।

२४. यह माँगौं संकरषन बीर।
स्रवन देउ तो हरि-कथा-रस ध्यान देहु तो स्याम सरीर—परमा० ६००।

२५. अभी जहाँ कान्हर-कथा मत्त रहत सब लोग—नंद०, मान०, पृ० ६५।

२६. जो यह लीला गावै, चित दै सुनै-सुनावै।

परम सुख मिलने की बात कहते हैं[२७]।

ख. कीर्तन—'कीर्तन' से तात्पर्य है इष्टदेव के नाम, गुण, उसकी लीला आदि का उच्च स्वर से गान करना[२८]। 'श्रीमद्भागवत' में इस प्रकार की भक्ति का बड़ा माहात्म्य बताया गया है[२९]। अष्टछापी कवि भी अपने आराध्य की लीला का गान करने की ही बात कहते हैं जिसमें उन्हें परम सुख मिलता है[३०]।

ग. स्मरण—'स्मरण' से आशय है भगवान के रूप, गुण, क्रीड़ा आदि के ध्यान और चिंतन से[३१]। इससे भक्त का मन हर समय प्रभु में ही लीन रहता है। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने 'स्मरण' भक्ति की आवश्यकता बताते हुए उसकी महिमा का बखान किया है[३२]। परमानंददास यशोदानंदन का साँझ-सबेरे चिंतन

प्रेम भक्ति सो पावै, अरु सब के जिय भावै—नंद०, रास०, पृ० १८२।

२७. लीला लाल गोबर्धन धर की।
गावत सुनत अधिक सुख उपजै रसिक कुँवरि पिय राधावर की—कृष्ण० हस्त० ११।

२८. 'श्रीहरि-भक्ति-रसामृत सिंधु', पूर्व विभाग, लहरी २, श्लो० २६।

२९.क. अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते।
—'श्रीमद्भागवत', तृतीय स्कंध०, अ० ३३, श्लो० ७।

ख. कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्॥
—'श्रीमद्भागवत', द्वादश स्कंध, अध्याय ३, श्लो० ५१।

३०.क. जो सुख होत गुपालहिं गाऐं।
सो सुख होत न जप-तप कीन्हैं, कोटिक तीरथ न्हाऐं—सा० २-६।

ख. माई! गिरिधर के गुन गाऊँ।
मेरे तो ब्रत एई है निसिदिन और न रुचि उपजाऊँ—कुंभन० २२६।

ग. हरि जू की लीला काहि न गावत।
राम कृष्न गोविंद छाँड़ि मन और बकै कहा पावत—परमा० ८६६।

घ. जाहि बिस्वंभर दाहिनो सो काहे न गावै—परमा० ८७०।

ङ. मेरे तो गिरिधर ही गुन गान—कृष्ण० हस्त० १५२।

च. गाऊँ गुन गोपाल लाल के अष्ट व्याधि तें डरिए—गोविं० ५५४।

३१. 'श्रीहरि-भक्ति-रसामृत-सिन्धु', पूर्व विभाग, लहरी २, श्लो० ३३।

३२.क. हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। आधे पलकहुँ जनि बिस्मरौ—सा० ६-१।

ख. नरहरि, नरहरि, सुमिरन करौ। नरहरि-पद नित हिरदय धरौ—सा० ७-२।

करने[३३] और सदैव उनकी मनमोहिनी मूर्ति तथा परम सुखदायिनी लीलाओं की सुधि आने की बात कहते हैं[३४]। कुंभनदास[३५] और गोविंदस्वामी के नयनों से प्रियतम की मूर्ति कभी नहीं टलती[३६]। छीतस्वामी भी गोपाललाल का स्मरण करने का आदेश देते हैं[३७]।

नवधा भक्ति के प्रथम तीन रूपों अर्थात श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण के लिए भगवान के 'नाम' की आवश्यकता होती है जिसे सूरदास ने संसार-सागर से पार जाने की 'नौका' बताया है[३८] और परमानंददास 'नाम' को कल्पद्रुम-सा वरदायक कहते हैं[३९]।

घ. *पाद-सेवन*—'पाद-सेवन' का तात्पर्य आराध्य की चरण-सेवा से है। अतः स्वामी के लिए श्रद्धाभाव से समर्पित किये गये सेवक के व्यवहार 'पाद-सेवन' के अंतर्गत आते हैं[४०]। इसी से सूरदास ने नंदनंदन के चरणों का आश्रय लेने का उपदेश दिया है[४१] और परमानंददास माधव के महल में उनकी टहल करते रहने में ही जीवन की सफलता समझते हैं;[४२] क्योंकि उनकी दृष्टि में मदनगोपाल की

ग. हरि हरि हरि, सुमिरौ सब कोई। हरि हरि सुमिरत सब सुख होई।
हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोई, बिन हरि सुमिरन मुक्ति न होई—सा० वें०, पृ० ३६।

३३. जहिं जहिं चरन-कमल माधौ के तहीं तहीं मन मोर।
चिंतन करौं जसोदा-नंदन मुदित साँझ अरु भोर—परमा० ८४६।

३४. हरि तेरी लीला की सुधि आवै।
कमलनैन मनमोहन मूरति के मन मन चित्र बनावै—परमा० ५६४।

३५. कहा करौं उह मूरति मेरें जिय तें न टरई।
सुंदर नंद-कुँवर के बिछुरें निसि-दिन नींद न परई—कुंभन० २१४।

३६. मोहन नैंनन तें नहीं टरत।
बिनु देखें तलाबेली सी लागत देखत मन जु हरत—गोविं० ३४६।

३७. सुमिरि मन गोपाललाल सुंदर अति रूप-जाल—छीत० १३२।

३८. भव-अंबोधि, 'नाम-निज नौका', सूरहिं लेहु चढ़ाइ—सा० १-१५५।

३९. भगत-बछल ऐसो 'नाम-कल्पद्रुम बरदायक' परमानन्ददास—परमा० ५७४।

४०. 'सिद्धांत रहस्य', 'षोडश ग्रन्थ', भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लो० ७, ८।

४१. इहिं बिधि कहा घटैगौ तेरौ ?
नँदनंदन करि घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहु चेरौ—सा० १-२६६।

४२.क. बने माधौ के महल।

सेवा मुक्ति से भी मीठी है[४३]। नंददास, छीतस्वामी आदि अष्टछापी कवियों ने भी गुरु की चरण-सेवा की कामना व्यक्त की है[४४]।

ङ. *अर्चन*—'अर्चन' से आशय श्रद्धापूर्वक आराध्य की परिचर्या, सेवा, पूजा आदि से माना जाता है[४५]। देव-विग्रह को स्नानादि कराने के पश्चात्, चंदन, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य समर्पित करके, परिक्रमा करना आदि 'अर्चन' भक्ति के अंग हैं[४६]। इनका संपादन करने पर लौकिक संपत्तियों के साथ-साथ स्वर्ग तथा मोक्ष की भी प्राप्ति संभव है[४७]। अष्टछापी कवियों में सूरदास का भगवान के विराट रूप की आरती,[४८] परमानंददास का मंगला आरती[४९] और छीतस्वामी का यशोदा द्वारा की गयी 'लाल' की आरती[५०] का वर्णन 'अर्चन' भक्ति से ही संबंध रखता

परमानन्ददास तहाँ 'करत फिरत टहल'—परमा० ७४६।

ख. 'करत महल में टहल' निरंतर जाम जाय सब बीति—परमा० ८४८।

४३. 'सेवा मदन गोपाल की' मुक्तिहू तें मीठी—परमा० ८५३।

४४.क. प्रात समय श्रीबल्लभ-सुत को पुन्य पवित्र बिमल जस गाऊँ।
रहौं सदा चरनन के आगे महाप्रसाद उच्छिष्ट पाऊँ।
नंददास यह माँगत हौं श्रीबल्लभ-कुल को दास कहाऊँ—नंद०, परि०, १६७।

ख हम तौ श्रीबिट्ठलनाथ-उपासी।
सदा सेवौं श्रीबल्लभ-नंदन कहा करौं जाइ कासी—छीत० ४३।

४५.क. 'श्रीहरि-भक्ति-रसामृत-सिन्धु', पूर्व विभाग, लहरी २, श्लो० २७।

ख. 'भक्ति-वर्द्धिनी', 'षोडश ग्रन्थ', भट्ट रमानाथ शर्मा, पृ० ७२।

४६. पूजा के 'षोडसोपचार' ये हैं—आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्राभूषण, यज्ञोपवीत, गंध, पुष्प, नैवेद्य, तांबूल, परिक्रमा और वंदना।

४७. स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम्।
सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम्।
'श्रीमद्भागवत', दशम स्कंध : उत्तरार्द्ध, अध्याय ८१, श्लो० १६।

४८. हरि जू की आरती बनी।
अति बिचित्र रचना रचि राखी, परति न गिरा गनी—सा० २-२८।

४९. मंगल आरती कर मन मोर, भरम निसा बीती भयो भोर।
मंगल बाजत झालर ताल, मंगल रूप उठे नँदलाल।
मंगल धूप दीप कर जोर, मंगल सब गावत ओर।
मंगल उदयो मंगल रास, मंगल पल परमानँददास—परमा० ५६०।

५०.क. आरती करति जसुमति मुदित लाल कों।

है। गोवर्द्धन-पूजा-जैसे प्रसंगों में प्राय: सभी अष्टछापी कवियों ने 'अर्चन' या पूजन के 'षोडस उपचारों' का विस्तार से वर्णन किया है[५१]।

च. वंदन—'वंदन' से तात्पर्य आराध्य की सविनय स्तुति करके उनको प्रणाम करने से है जो 'षोडसोपचारों' की ही एक क्रिया है। सूरदास,[५२] परमानंद-दास,[५३] कृष्णदास,[५४] छीतस्वामी[५५] आदि प्राय: सभी अष्टछापी कवियों ने अपने इष्टदेव की वंदना की है। नंददास की वंदना का उल्लेख उनके कई ग्रंथों में हुआ

दीप अद्भुत जोति, प्रगट जगमग होति,
वारि वारति फेरि अपनें गोपाल कों—छीत० १३३।

ख. आरती करति जसुमति निरखि ललन मुख, अति ही आनंद भरि प्रेम भारी।
कनक थारी, जटित रत्न, मुक्ता खचित, दीप धरि हुलसि मन बारि वारी।
—छीत० १३४।

५१. बड़े गोप आये सबै बृषभान गोप सँग लाय।
बिप्र बुलाये नन्द जू पूजन कौं गिरिराय।
पूजन को आरम्भ कियो 'षोडस उपचारें'।
धौरी दूध अन्हाय बहुरि यों गंगाजल डारें।
केसर चंदन चरचहीं उबटन कियो बनाय।
मानसी गंगा नीर सों स्नान कराये नँदराय।
कुंकुम अच्छत तिलक दियो माला पहिराय।
पीताम्बर उर हार गोबर्धन तबही उढ़ाय।
कुनवारो आगे धरयौ धूप दीप तहि बार।
सुखसागर सबहिंनि भयो उमँगे करि बलिहार।
करवाय आचमन सुगंध बीरा जु धराये।
बार बार करि आरती गीत मंगल जु गवाये—परमा० २७२।

५२. चरन कमल बंदौं हरि राई—सा० १-१।

५३.क. चरम-कमल बंदौं जगदीस के—परमा० १।

ख. माधौ हम उरगाने लोग।
प्रात समै उठि नाऊँ चरन, मँह पाऊँ उचित उपभोग।
× × ×
अपने चरन-कमल की सेवा इतनो कृपा मोहि कोजै—परमा० ८७५।

५४. जय जय तरुन घनस्याम बर—कृष्ण० हस्त० ७२।

५५. नवाऊँ सीस रिझाऊँ लालै—छीत० हस्त० ५२।

है[५६] और कुंभनदास तो कृष्ण के साथ-साथ उनके पीतांबर, वृन्दावन-विहरण आदि की भी स्तुति करते नहीं अघाते[५७]।

छ. *दास्य*—दीनतापूर्वक स्व-दोषों को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करके परमप्रभु से शरण और संरक्षण में ले लेने की सविनय याचना करना आदि 'दास्य भक्ति' है[५८]। सूरदास को जब कृष्ण का 'दास' कहा जाता है तब उन्हें बहुत प्रसन्नता होती है[५९]। प्रभु को सर्वव्यापी सभी मानते हैं; परंतु उनको संबोधित करके, अपने दोषों का उद्घाटन करते हुए, अपने को 'पाप का जहाज',[६०] 'पतितनि सिरताज'[६१]

५६.क. नमो-नमो आनन्दघन, सुन्दर नंदकुमार।
रसमय, रस-कारन, रसिक, जग जाके आधार—नंद०, रस०, पृ० ३६।
ख. तन्नमामि पद परम गुरु, कृष्न कमल-दल नैन।
जगकारन, करुनार्नव, गोकुल जिन कौ ऐन—नंद०, मान०, पृ० ६१।
ग. जु प्रभु जोति-मय, जगतमय, कारन, करन, अभेव।
बिघन-हरन, सब सुभ-करन, नमो नमो तिहिं देव—नंद०, अनेका०, पृ० ६८।
घ. प्रथमहिं प्रनऊँ प्रेममय, परम जोति जो आहि।
रूप-उपावन, रूपनिधि, नित्य कहत कवि ताहि—नंद०, रूप०, पृ० १।
ङ. जै जै जै श्रीकृष्न, रूप, गुन, कर्म अपारा।
परमधाम, जग-धाम, परम अभिराम उदारा—नंद०, दशम०, पृ० १८३।
च. बंदन करौं कृपानिधान, श्रीसुक सुभकारी।
सुद्ध जोतिमय रूप, सदा सुंदर अबिकारी—नंद०, रास०, पृ० १५५।

५७. जयति-जयति श्री हरिदास बर्य-धरने,
बारि-बृष्टि निवारि, घोष-आरति टारि देव-पति-अभिमान भंग करने।
जयति पट पीत दामिनि रुचिर, बर मृदुल अंग साँवल सजल जलद बरने।
कर अधर बेनु धरि, गान कलरव सुसब्द, सहज ब्रज-जुवतिजन-चित्त हरने।
जयति बृन्दाबिपिन-भूमि डोलनि, अखिल लोक-बंदिनि अंबुरूह चरने।
तरनि-तनया-बिहार नंद गोप-कुमार, दासकुंभन नवय तवसि सरने।
—कुंभन० १।

५८. 'कृष्णाश्रय', 'षोडश ग्रंथ', भट्ट रमानाथ शर्मा, पृ० ६८-६६।

५९. सब कोउ कहत गुलाम स्याम कौ, सुनत सिरात हिये—सा० १-१७१।

६०. बिनती करत मरत हौं लाज।
नख-सिख लौं मेरी यह देही है 'पाप की जहाज'—सा० १-६६।

६१. पाछैं भयौ न आगैं ह्वै है, सब 'पतितनि सिरताज'—सा० १-६६।

आदि कहने का साहस सूर को ही है। इसी प्रकार उन्होंने अपने को 'पतितनि कौ टीकौ',[६२] 'पतित सिरोमनि',[६३] 'महापापी',[६४] 'पतितनि-पतितेस',[६५] 'पतितनि को राजा'[६६] 'पतितनि कौ राउ',[६७] 'महापतित'[६८] आदि भी कहा है। परमानंददास ने भी प्रभु का 'पतित-पावन' विरद सुनकर उनकी शरण जाना बताया है[६९] और उनके द्वार पर 'दाद' न मिलने पर दुख व्यक्त किया है[७०]। अन्य अष्टछापी कवियों के दास्यभक्ति-संबंधी पद अभी प्रकाश में नहीं आये हैं।

ज. *सख्य*—आराध्य के प्रति अंतरंग सखा-जैसा परम प्रेममय, परंतु निस्वार्थ भाव रखना 'सख्य-भक्ति' है। श्रीकृष्ण के प्रति यही सखा या मित्रभाव, नंद, गोपादिकों में था जिसके लिए 'श्रीमद्भागवत्' में उनको 'धन्य' कहा गया है[७१]। स्वयं अष्टछापी कवि भी 'कृष्ण-सखा' माने जाते रहे हैं। सूरदास को कृष्ण सखा,[७२] परमानंददास को 'तोक',[७३] कुंभनदास को 'अर्जुन',[७४] कृष्णदास को

६२. प्रभु, हौं सब 'पतितनि कौ टीकौ'।
और पतित सब दिवस चारि कै, हौं तौ जनमत ही कौ—सा० १-१३८।
६३. हौं तौ 'पतित-सिरोमनि' माधौ—सा० १ १३९।
६४. माधौ जू, 'मोतैं और न पापी'।
घातक, कुटिल, चबाई, कपटी, महाकूर, संतापी—सा० १-१४०।
६५. हरि, हौं 'पतितनि-पतितेस'—सा० १-१४१।
६६. हरि, हौं सब 'पतितनि कौ राजा'—सा० १-१४४।
६७. हरि, हौं सब 'पतितनि कौ राउ'—सा० १-१४५।
६८. हरि, हौं 'महापतित' अभिमानी—सा० १-१४६।
६९. तातैं तुम्हरो मोहिं भरौसौ आवै।
'दीनदयाल पतित-पावन जस बेद-उपनिषद गावै'—परमा० ८३२।
७०. अभय दीवान प्रगट प्रभु साँचो बिरद कहावै।
कारन कौन दास परमानँद द्वारैं 'दाद न पावै'—परमा० ८३३।
७१. अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्
—'श्रीमद्भागवत', दशम स्कंध, अध्याय १४, श्लो० ३२।
७२. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ३।
७३. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ११०।
७४. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० १९९।

'ऋषभ',[७५] चतुर्भुजदास को 'विशाल',[७६] नंददास को 'भोज',[७७] छीतस्वामी को 'सुबल'[७८] और गोविंदस्वामी को 'श्रीदामा'[७९] कहा गया है। 'वार्ताओं' में इन अष्ट सखाओं का, अपने आराध्य के साथ विविध क्रीड़ाओं में भाग लेने का उल्लेख भी विस्तार से मिलता है।

अष्टछाप-काव्य में कृष्ण की सख्य भक्ति का रूप चार प्रसंगों में विशेष रूप से वर्णित है। प्रथम प्रसंग है कृष्ण का सखाओं के साथ तरह-तरह के खेल और विनोद का उल्लेख करना जिसका प्रायः सभी अष्टछापी कवियों ने विस्तार से वर्णन किया है। बालसखाओं में जिस प्रकार परस्पर होड़ का भाव रहता है, उसका चित्रण इन कवियों ने विशेष रूप से किया है। सखाओं के साथ खेलते हुए सूरदास के कृष्ण 'श्रीदामा' को अपना प्रतिद्वंद्वी समझते हैं और बलराम के मना करने पर भी दौड़ में उसको हराना चाहते हैं[८०]। श्रीदामा भी उनसे दबनेवाला नहीं है और चुनौती देकर उनसे दौड़ने को तैयार है। तब दोनों की दौड़ होती है और श्रीदामा उन्हें जाकर छू लेता है। इस पर कृष्ण, सखा से झगड़ा करने लगते हैं[८१]। इसी प्रकार आँखमिचौनी खेलते हुए श्रीकृष्ण माता द्वारा भाई बलराम के छिपने का पता बता दिये जाने पर भी उन्हें 'चोर' नहीं बनाते और श्रीदामा को 'छूने' दौड़ते हैं, क्योंकि उसीसे उनकी प्रतिद्वंदिता है[८२]। श्रीदामा यद्यपि यह जानता है कि 'नंद के पूत' होने के कारण वे 'गुसैयाँ' हैं, परंतु खेल में कौन किसका 'गुसैयाँ'—उसमें तो सभी बराबर हैं। कृष्ण के झगड़ा करने पर वह साफ-साफ कह भी देता है कि जाति-पाँति में तुम हमसे बड़े नहीं हो, न हम तुम्हारी 'छाँह' में ही बसते हैं; कुछ गैयाँ अवश्य तुम्हारे यहाँ ज्यादा हैं, शायद इसी से 'अधिकार जता' रहे हो, सो यहाँ हम तुमसे दबनेवाले नहीं हैं। 'रुहठि' करनेवाले

७५. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ३३० ।
७६. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ४५७ ।
७७. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ५२५ ।
७८. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ५६२ ।
७९. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ६२३ ।
८०. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद २१३ ।
८१. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद २१३ ।
८२. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद २४० ।

के साथ कौन खेलना चाहेगा ? इतना कहकर सब सखा जहाँ-तहाँ बैठ गये और अंत में हारकर कृष्ण को दाँव देना पड़ा[८३]।

इसी प्रकार गेंद खेलते हुए कृष्ण से जब श्रीदामा की गेंद कालीदह में जा गिरती है तब भी यह लपककर श्याम की 'फेंट' पकड़ता और कहता है कि मेरी गेंद लाकर दो; मुझको कोई दूसरा सखा न समझना जो तुमसे दब जाऊँगा[८४]। सब सखाओं के बीच में इस तरह 'फेंट' पकड़ी जाने पर कृष्ण को बहुत बुरा लगता है और वे श्रीदामा से कहते हैं कि 'तनक' सी बात के लिए 'रार' क्यों बढ़ा रहे हो ? तुम्हारी गेंद गयी तो बदले में मेरी ले लो। मेरी बाँह क्यों पकड़ते हो ? जरा छोटे-बड़े का तो ध्यान करो ! कहाँ तुम कहाँ मैं[८५] ! पर श्रीदामा 'फेंट' नहीं छोड़ता। वह कहता है कि तुम 'बड़े नंद के पूत हो', तुम्हारी बराबरी मैं क्या करूँगा ? परंतु तुम बड़े 'धूत' हो गये हो; सो छुटकारा तुम्हें गेंद देने पर ही मिलेगा[८६]। कृष्ण को सब सखाओं के सामने इस प्रकार 'धूत' कहा जाना और भी बुरा लगता है। तब रिस से काँपते हुए वे कहते हैं कि तू मुँह सम्हाल कर बात नहीं करता, मेरी बराबरी करना चाहता है ! अभी तुझे इस धृष्टता का फल मिलेगा[८७]। इतना सुनते ही श्रीदामा जरा सकपकाया कि कृष्ण ने फेंट छुड़ा ली और दौड़कर कदम पर चढ़ गये[८८]।

बाल-लीला-प्रसंग का ही दूसरा चित्र वह है जिसमें कृष्ण अपने सखाओं के साथ बन में दोपहर को 'छाक' खाने बैठते हैं जिसका वर्णन अष्टछाप-काव्य में बड़े विस्तार से हुआ है[८९]। ऐसे अवसर पर कृष्ण को अपने सामने रखे हुए

८३. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद २४५।
८४. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद ५३५।
८५. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद ५३६।
८६. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद ५३६।
८७. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद ५३७।
८८. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद ५३९।
८९.क. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद ४६४।
ख. जोरि मंडली जेमन लागे बैठि कदम की छाँह—परमा० ६३६।
ग. बरखा रितु बन छाँहन लीजै भोजन संग बिरादर—परमा० ६३७।

'षटरस के पकवान' नहीं भाते और सखाओं के प्रति अपनी प्रीति दिखाने के लिए वे उनके हाथ से कौर छीन-छीनकर उनका जूठा खाने में बड़ा सुख मानते हैं[९०]। कृष्ण के सखा भी परस्पर दूध, फल और 'चबेने' के लिए झगड़ते हैं[९१]। परमानंद-दास के सखा इसी प्रसंग में कृष्ण से कहते हैं कि तुम्हारा 'झूँठा' दही मुझे बहुत अच्छा लगता है। कृष्ण सब सखाओं को दोनों में दही बाँट देते हैं और कहते हैं कि जिन्हें न मिला हो मेरी 'हथेली चाट लें'। अपने प्यारे सखा के व्यवहार से

घ. स्याम सुनि, हरी भूमि सुखकारी।
 ब्यंजन बाँटि सबनि कों दीजै बिनती लाल हमारी—परमा० ६३८।

ङ. स्याम ढाक तर मंडल जोरि-जोरि बैठे अब छाक खात दधि ओदन।
 —परमा० ६४५।

च. कर पर पात भात ता ऊपर बिच-बिच बिंजन धर राखे।
 बालकेलि सुंदर ब्रजनायक ग्वालनि देत आपही चाखे—परमा० ६५०।

छ. बाँटत छाक गोबर्धन ऊपर बैठत नाना बहु बिधि चौर।
 हँसि हँसि भोजन करत परस्पर चाखि लै माँगत कौर—चतु० १६५।

ज. गोपीग्वाल सबै मिलि जेंवत मुखहिं सराहत जाहीं।
 बाँटत बल मोहन दोउ भइया कर दोना अति सोहैं—कुंभन० १७५।

झ. भोजन करत नंदलाल, संग लिए ग्वाल-बाल करत बिबिध ख्याल, बंसीबट-छैयाँ।
 पातनि पै धरत भात, दधि सिखरन लिए हाथ नाँचत मुसिकात जात, साँवरो
 कन्हैया—छीत० ७७।

ञ. गोबर्धन गिरि खिंग सिलन पर बैठेऽब छाक खात दधि ओदन।
 आसपास ब्रज-बालक मंडली मधिऽब हो बल मोहन बैठेऽब खात खवात
 प्रेम प्रमोदन—गोविं० २८८।

९०.क. ग्वालनि कर तैं कौर छुड़ावत, मुख लै मेलि सराहत जात—सा० ४६६।

ख. जेंवतऽरु गावत हैं सारँग की तान कान्ह, सखनि के मध्य छाक लेत कर छीने।
 —सा० ४६७।

ग. ग्वालनि कर तैं कौर छुड़ावत।
 जूठौ लेत सबनि के मुख कौ, अपनैं मुख लै नावत।
 षटरस के पकवान धरे सब, तिनमैं रुचि नहिं लावत।
 हा-हा करि-करि माँगि लेत हैं कहत मोहिं अति भावत—सा० ४६८।

घ. यह सुख स्याम तिहारे सँग बिन और अनत कहुँ नाय।
 धन्य धन्य ग्वाल-बाल हरि जिनके कौरें लै लै खाय—परमा० ६३६।

९१. एक दूध, फल, एक झगरि चबेना लेत—सा० ४६७।

परम संतुष्ट हो सखा कहते हैं कि ऐसा स्वाद हमें कभी नहीं मिला[९२]। कुंभनदास ने अघाकर भोजन करने के पश्चात् सब सखाओं में साथ-साथ 'बीरा' बाँटे जाने की भी बात कही है[९३]।

सख्य-भक्ति-संबंधी दूसरा प्रसिद्ध प्रसंग विप्रवर सुदामा का है जिसका वर्णन अष्टछापी कवियों में सूरदास ने विस्तार से किया है। सुदामा की पत्नी अपने पति के कृष्ण-जैसे सखा और 'मीत' होने की बात जानकर उन्हें द्वारका जाने की प्रेरणा देती है[९४]। और कृष्ण अपने 'बालमीत' और 'बालसखा' को पहचानकर आतुरता से मिलते हैं[९५]। घर लौटने पर पत्नी उनसे पूछती है कि तुम्हारे 'बाल-सँघाती', तुम्हारे 'कुचील' बसनधारी 'छीन गात' को देखकर तुमसे कैसे मिले[९६]? उत्तर में सुदामा कृष्ण की 'मित्रई' के आदर्श व्यवहार की प्रशंसा करते नहीं थकता[९७] और तभी कवि सूर भी भावविभोर हो अपने आराध्य की सखा के प्रति

९२. आज दधि मीठो मदन गोपाल।
'भावत मोहिं तिहारो झूँठो' चंचल नयन बिसाल।
आने पात बनाये दोना दिये सबनि को बाँट।
'जिन नहि पायो सुनो रे भैया, मेरी हथेरी चाट'।
बहुत दिननि हम बसे कुमुदबन कृष्न, तिहारे साथ।
ऐसो स्वाद हम कबहुँ न चाख्यौ सुन गोकुल के नाथ—परमा० ६४३।

९३. सुबल, तोष, मधुमंगल-परिवृत अर्जुन, भोज, बाहु सहित
हरि समीप श्रीदामा कौरि भरि।
'बाँटत हैं बीरा' ग्वाल गोबर्धन-धरन लाल
कुंभनदास बरखा-रितु बरसत झरि—कुंभन० १७६।

९४.क. 'जाके सखा स्यामसुंदर-से', श्रीपति सकल सुखनि के दात—सा० ४२२५।
ख. कंत, सिधारौ मधुसूधन पै सुनियत हैं 'वे मीत तुम्हारे'।
'बाल-सखा' अरु बिपति-बिभंजन, संकट-हरन मुकुंद मुरारे—सा० ४२२७।

९५.क. मन मैं अति आनंद कियौ हरि, 'बाल-मीत पहिचान'।
धाए मिलन नगन पग आतुर, सूरज प्रभु भगवान—सा० ४२२७।
ख. दूरहिं तैं देख्यौ बलबीर।
अपने 'बाल सखा जु सुदामा', मलिन बसन अरु छीन सरीर—सा० ४२२८।

९६. कैसैं मिले पिय 'स्याम सँघाती'।
कहियै कंत, कौन बिधि परसे, बसन कुचील छीन अति गाती—सा० ४२४०।

९७.क. ऐसैं और कौन पहिचानै।

प्रीति देखकर गा उठता है कि ऐसी प्रीति पर मैं 'बलि' जाता हूँ[९८]। नंददास ने भी सुदामा और उनकी पत्नी की तरह, कृष्ण का भजन करने पर सुखी होने की बात लिखी है[९९]।

सख्य-भक्ति का तीसरा उदाहरण अर्जुन की भक्ति में मिलता है। स्वयं श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि तेरी भक्ति से संतुष्ट होकर, तेरा हित करने के लिए ही, मैं तेरा रथ हाँकता हूँ[१००]। सूरदास के दो-एक विनय पदों में भी, सख्य-भक्ति की झलक मिलती है जिनमें 'सात पीढ़ियों का पतित' अपने आराध्य को चुनौती

सुनु सुंदरि, वा दीनबंधु बिन, 'कौन मित्रई माने'।
कहँ हम कृपन, कुचील, कुदरसन, कहँ जदुनाथ गुसाईं।
भेंटे हृदय लगाइ अंक भरि, उठि अग्रज की नाईं।
निज आसन बैठारि परम रुचि, निज कर चरन पखारे।
पूछी कुसल स्याम-घन-सुंदर, सब संकोच निवारे—सा० ४२४१।

ख. हरि बिनु कौन दरिद्र हरै।
कहत सुदामा सुनि सुंदरि, 'हरि-मिलन न मन बिसरै'—सा० ४२४२।

ग. और को जानै रस की रीति।
कहँ हौ दीन कहाँ त्रिभुवनपति, 'मिले पुरातन प्रीति'—सा० ४२४३।

घ. बिनु गुपाल और मोहिं, ऐसो को सँभारे।
आपु हँसत दौरि मिले, उर तैं नहिं टारे।
छीन अंग जीर्न बसन, दीन मुख निहारे।
मम तन रज पथहिं लगी, पीतपट सु झारे।
सुखद सेज आसन दै, स्व-हथ पग पखारे—सा० ४२४४।

९८. 'ऐसी प्रीति की बलि जाउँ'।
सिंहासन तजि चले मिलन कौं, सुनत सुदामा नाउँ।
अंकमाल दै मिले सुदामा, अर्धासन बैठारे—सा० ४२३०।

९९. बहु बिभूति हरि द्विज को दीनी, दया भक्ति पतिनी सुभ कीनी।
ऐसैं जो कोऊ हरि कों भजै, हरि उदारता तैं सुख सजै।
—नंद०, सुदामा०, परि०, पृ० ४५४।

१००. हम भक्तनि के, भक्त हमारे।
सुनि अर्जुन परतिज्ञा मेरी, यह ब्रत टरत न टारे।
देखि बिचारि भक्त-हित-कारन, हाँकत हौं रथ तेरौ—सा० १-२७२।

देकर ललकारता है और उनको 'बिरद बिनु' करने का दम भरता है[1]। ऐसे पदों में सख्य-भक्ति का चौथा रूप देखा जा सकता है।

ङ. *आत्मनिवेदन*—अनन्य भाव से परमाराध्य की प्रार्थना करना और उसकी शरण में जाना 'आत्मनिवेदन' है जिसके लिए 'प्रपत्ति' शब्द भी प्रयुक्त होता है। 'प्रपत्ति' के कहीं छह अंग, यथा अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल का त्याग, गोप्तृत्ववरण अर्थात् प्रभु की अनंत गुप्त और समर्थ शक्तियों से अपने को अंगीकार कर लेने की प्रार्थना करना, रक्षा में विश्वास, आत्मसमर्पण और कार्पण्य;[2] तथा कहीं सात, यथा दीनता, गर्व-त्याग, भय-दर्शन अर्थात् विभिन्न कारणों से भयभीत होकर प्रभु की शरण जाना, मन की भर्त्सना, मनोराज्य में विचरण का सुख, आश्वासन और विचारणा अर्थात स्व-पापों का स्मरण और पश्चाताप[3] बताये गये हैं। अष्टछापी कवियों के काव्य से उक्त सभी भावों के उदाहरण निकाले जा सकते हैं; विशेषकर सूरदास के काव्य में उनके अनेक उदाहरण मिलते हैं[4]। परमानंददास ने उक्त

१. आजु हौं एक-एक करि टरिहौं।
कै तुमहीं कै हमहीं माधौ, अपने भरोसैं लरिहौं।
हौं तौ पतित सात पीढ़िनि कौ, पतितै ह्वै निस्तरिहौं।
अब हौं उघरि नच्यौ चाहत हौं, तुम्हें बिरद बिन करिहौं—सा० १-१३४।

२. आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूलस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।
—'पांचरात्र लक्ष्मीतन्त्र संहिता' से, 'कल्याण' के 'साधनांक' में उद्धृत, पृ० ६०।

३. डा० मुंशीराम शर्मा, 'भारतीय साधना और सूर-साहित्य', पृ० १०६।

४.क. जब-जब दीननि कठिन परी।
जानत हौं, करुनामय जन कौं तब-तब सुगम करी—सा० १-१६।

ख. जाकौं दीनानाथ निवाजैं।
भवसागर मैं कबहुँ न भूकै, अभय निसाने बाजैं—सा० १-३६।

ग. कहा कमी जाके राम धनी।
मनसा-नाथ मनोरथ-पूरन, सुख-निधान जाकी मौज घनी।
अर्थ, धर्म अरु काम, मोक्ष, फल, चारि पदारथ देत गनी—सा० १-३९।

घ. अब कैं राखि लेहु भगवान।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम-डरिया, पारधि साधे बान—सा० १-९७।

भावों में से कुछ का ही वर्णन किया है[५] और अष्टछाप के अन्य कवियों ने उक्त भावों में से एक-दो का ही वर्णन करके 'आत्मनिवेदन'-भक्ति का निर्वाह कर लिया है[६]।

ञ. *वात्सल्य-भक्ति*—प्रभु को वत्स-भाव से देखना 'वात्सल्य-भक्ति' है जिसके प्रति महाप्रभु वल्लभाचार्य का विशेष आकर्षण था। शिशु को यों तो सभी वयस्क संबंधी वत्स-भाव से देखते हैं, परंतु उसका जैसा शुद्धतम और आवेशपूर्ण अनुभव माता का हृदय करता है, वैसा अन्यों का नहीं। अष्टछापी कवि भी इस तथ्य से भली-भाँति अवगत जान पड़ते हैं। इसी से उनके काव्य में यशोदा के मातृहृदय में उमड़नेवाले वात्सल्य-भाव का जितना विशद चित्रण मिलता है, उतना अन्य संबंधियों, यहाँ तक कि पितृहृदय के भाव का भी नहीं मिलता। 'वात्सल्य

ङ. जौ पै तुमहीं बिरद बिसारौ।
तौ कहौ कहाँ जाइ करुनामय, कृपिन करम कौ मारौ—सा० १-१५७।

च. रे मन मूरख जनम गँवायौ।
करि अभिमान बिषयरस गीध्यौ स्याम-सरन नहिं आयौ—सा० १-३३५।

छ. दीन कौ दयाल सुन्यौ, अभयदान-दाता।
साँची बिरुदावलि, तुम जग के पितु-माता—सा० १-१२३।

५.क. तुम्हारो भजन सब ही को सिंगार।
जे कोऊ प्रीति करै पद-अंबुज उर मंडत निर्मोलक हार—परमा० ८४४।

ख. तुम तजि कौनि सनेही कीजै।
सदा एकरस को निबहत है जाकी चरन-रज लीजै—परमा० ८५६।

ग. जाकौ माधौ करै सहाइ।
हस्त-कमल की छाया राखै बार न बाँको जाइ—परमा० ८६७।

घ. जब गोबिंद कृपा करैं तब सब बनि आवै।
सुख संपति आनन्द घनो घर बैठे पावै—परमा० ८६९।

ङ. बड़ी है कमलापति की ओट।
सरन गए ते पकरि न आये कियो कृपा को कोट—परमा० ८७४।

६.क. तुम-बिनु को ऐसी कृपा करै ?
लेत सरन ततछिन करुनानिधि त्रिबिध संताप हरै—कुंभन० ४०१।

ख. समुझि न परति मोहिं या मन की।
एते मान बिषय-रस राँच्यौ निसि दिन चित्त रहति पर-धन की—चतु० ३५४।

ग. श्रीनाथ सुमिरि मन ! मेरे।
भए निहाल सकल सचु पाए जा पर कृपा-दृष्टि करि हेरे—छीत० २०१।

भक्ति' के दो पक्ष हैं—संयोग और वियोग। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने तो दोनों का चित्रण बड़े विशद रूप में किया है, पर अन्य कवियों ने प्रथम की ओर ही ध्यान दिया है और वह भी सूरदास की तरह अत्यंत भावावेश में नहीं; अस्तु।

अ. *वात्सल्य-भक्ति का संयोग-पक्ष*—सूरदास के काव्य में वात्सल्य-भक्ति के अनेक मनोहर उदाहरण मिलते हैं। शिशु के जन्म पर ही माता की उमंग का अंग में न समाना,[७] उसका 'सिसु-बदन' देखकर अपने 'पुन्यों' का स्मरण करना,[८] उसकी छवि पर बड़ी प्रसन्नता से 'बलि' जाना,[९] उसके घुटनों चलने, दूध के दाँत देखने, कमल-मुख के बोल सुनने आदि की कामना करना,[१०] उसके कल्याण के लिए कुल-देवता को मनाना, पुत्र के सब रोग-धोग अपने ऊपर लेने को सदा प्रस्तुत रहना[११]

७. आनंद भरी जसोदा उमँगि अंग न माति—सा० १०-३०।

८. जसुमति अपनौ पुन्य बिचारै। बार-बार सिसु बदन-निहारै—सा० १०-४६।

९. जननी देखि छबि, बलि जाति—सा० १०-७१।

१०.क. नंद-घरनि आनंद भरी, सुत स्याम खिलावै।
कबहिं घुटुरुवनि चलहिंगे, कहि बिधिहिं मनावै।
कबहिं दँतुलि द्वै दूध की, देखौं इन नैननि।
कबहिं कमल-मुख बोलिहैं, सुनिहौं उन बैननि—सा० १०-७४।

ख. नान्हरिया गोपाल लाल, तू बेगि बड़ो किन होहि।
इहिं मुख मधुर बचन हँसिकै धौं, जननि कहै कब मोहिं।
यह लालसा अधिक मेरैं जिय जो जगदीस कराहिं।
मो देखत कान्हर इहिं आँगन, पग द्वै धरनि धराहिं।
खेलहिं हलधर संग रंग रुचि, नैन निरखि सुख पाऊँ।
छिन-छिन छुधित जानि पय कारन, हँसि-हँसि निकट बुलाऊँ—सा० १०-७५।

ग. जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरौ लाल घुटुरुवनि रेंगै, कब धरनी पग द्वैक धरै।
कब द्वै दाँत दूध के देखौं, कब तोतरैं मुख बचन झरै।
कब नंदहिं बाबा कहि बोलै, कब जननी कहि मोहिं ररै।
कब मेरौ अँचरा गहि मोहन, जोइ सोइ कहि मोसौं झगरै।
कब धौं तनक-तनक कछु खैहै, अपने कर सौं मुखहिं भरै।
कब हँसि बात कहैगौ मौसौं, जा छबि तैं दुख दूरि हरै—सा० १०-७६।

११. ललन हौं या छबि ऊपर वारी।
बाल गोपाल लगौ इन नैननि, रोग-बलाइ तुम्हारी—सा० १०-९१।

आदि ऐसे प्रसंग हैं जिनसे मातृहृदय के वात्सल्य-भाव का स्पष्ट परिचय मिलता है।

इसी प्रकार परमानंददास की यशोदा भी पुत्र पर 'बलि जाती',[१२] उसका मुख-कमल देखकर अपना 'पुन्य बिचारती',[१३] पुत्र के मुख से 'मैया' पुकारे जाने, व्रज की गलियों में उसके घूमने, गाय दुहने के लिए बछड़ा खोलने और ग्वाल-बालों के साथ खेलने की कामना करती हैं[१४]। परमानंददास के एक दूसरे पद में यशोदा ने सखियों से अपनी अभिलाषा व्यक्त करते हुए कहा है कि कब मैं अपने लालन को भूमि पर पैर रखते देखूँगी, 'मैया' पुकारते सुनूँगी, कब वे गोरज-लिपटे तन से दूध-दही के लिए मुझसे दौड़कर मिलेंगे। कब वे स्वयं गाय दुहेंगे और कब नंदराय उन्हें गैयाँ चराने का काम सौंपेंगे[१५]। इस प्रकार अभिलाषा करनेवाली माता यशोदा पुत्र की 'बलाय' स्वयं लेने को तत्पर रहती है[१६]।

चतुर्भुजदास की यशोदा भी सखियों से कहती हैं कि पुत्र की जो इच्छा हो, ले लेने दो, बदले में मुझसे चौगुना दही-माखन ले लो। कुलदेव की बड़ी आराधना

१२. हालरौ दुलरावै माता। बलि-बलि जाउँ घोष सुखदाता—परमा० ४२।

१३. जसुमति अपनो पुन्य बिचारै, बार-बार मुख कमल निहारै—परमा० ४२।

१४. जा दिन कन्हैया मोसों मैया कहि बोलैगो।
ता दिन अति आनंद गिनोंरी माई, रुनक झुनक व्रज गलिनि में डोलैगो।
प्रात ही खिरक गाय दुहिवे कौ धाई बंधन बछरुवा के खोलैगो।
परमानंद प्रभु नवल कुँवर मेरो ग्वालनि के संग वन में किलोलैगो
—परमा० ६८।

१५. एक समय जसुमति सखियनि सों बात कहत मुसकाय।
मो देखत कब धौं मेरे लालन भूमि धरैंगो पाँय।
पुनि मैया मोसों कब कहिकै कुँवर कछुक हँसि आय।
भरि दै दूध-दही के कारन तन गोरज लपटाय।
खरिक दुहावन मोय जात ही आप मिलेंगे धाय।
कह्यो, द्यौस होइगो कबहूँ ललन दुहैंगे गाय।
सौंपिहैं सुत चरावन गैयाँ सुनि सजनी नँदराय।
यह अभिलाष करति जसुमति जिय परमानँद बलि जाय—परमा० ६२।

१६. तेरी लाल की मोहि लागो बलाय।
बाल गोपाल छगुनवा मेरे चलो अंगन धाय—परमा० ७१।

से पालने में झूलता बालक देखने का सौभाग्य मुझे मिला है; उन्हीं की कृपा से घुटनों भी चलेगा। जो मेरे लाल को चलना सिखा देगा, उसको मैं सर्वस्व देने को तैयार हूँ। और मेरी बड़ी अभिलाषा मोहन को धेनु चराता देखने की है[१७]। अन्य अष्टछापी कवियों ने बाल-लीला का सामान्य रूप से वर्णन किया है; मातृहृदय-चित्रण का उपर्युक्त-जैसा प्रयास नहीं किया है।

आ. वात्सल्य-भक्ति का वियोग-पक्ष—ऊपर जो कुछ कहा गया है वह वात्सल्य के संयोग-पक्ष से संबंध रखता है जब पुत्र माता के सामने होता है। वात्सल्य का दूसरा पक्ष है वियोग का जिसमें दुख की चरमावस्था होने पर आंतरिक जगत में प्रति पल प्रियजन का ही ध्यान बना रहता है। यही कारण है कि यशोदा, नंद, गोपी आदि की वियोगावस्था के दुख की कामना वल्लभ-संप्रदायी भक्तजन किया करते हैं[१८]। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने वियोग-वात्सल्य का जितना मार्मिक चित्रण किया है उतना अन्य कवियों ने नहीं। उनकी यशोदा अक्रूर के साथ कृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात् विलाप करती हुई कहती हैं कि लोग लाख समझाते हैं, परंतु मोहन के मुख के योग्य माखन देखते ही मुझे उनका स्मरण हो आता है। मेरी इतनी ही कामना है कि दिन-रात उन्हें छाती से लगाये खिलाती रहूँ[१९]।

ट. *मधुर भक्ति*—**परमाराध्य को 'प्रियतम' मानकर उपासना करना 'मधुर-भाव' की भक्ति है जिसका वर्णन अष्टछापी कवियों ने बड़े विस्तार से किया है।**

१७. माई, लैन देहु जो मेरे लालहिं भावै।
 दधि-माखन चौगुनों देउँगी या सुत के लेखैं जाकौ जितौ आवै।
 पलना झूलत कुलदेव अराध्यौ जतन-जतन करि घुटुरुनु धावै।
 सर्बसु ताहि देऊँगी जो मेरे नान्हरे गोविंद पाँ-पाँ चलन सिखावै।
 इहै अभिलाख होत दिन-दिन प्रति कब मेरौ मोहन धेनु चरावै।
 चत्रभुजदास गिरिधर पिय इहि रस निरखि-निरखि उर नैन सिरावै—चतु० १४५।

१८. 'निरोधलक्षण', 'षोडश ग्रन्थ', भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लो० १।

१९. जद्यपि मन समुझावत लोग।
 सूल होत नवनीत देखि मेरे मोहन के मुख जोग।
 निसि-बासर छतिया ले लाऊँ, बालक लीला गाऊँ।
 वैसे भाग बहुरि कब ह्वै हैं, मोहन मोद खिलाऊँ—सा० ३१६६।

वल्लभ-संप्रदाय में जिस प्रकार वे आठों कवि 'सखा'-रूप में प्रसिद्ध थे, उसी प्रकार 'सखी' के रूप में भी; यथा सूरदास को 'चंपकलता';[२०] परमानंददास को 'चंद्र-भागा',[२१] कुंभनदास को 'विशाखा',[२२] कृष्णदास को 'ललिता',[२३] चतुर्भुजदास को 'विमला',[२४] नंददास को 'चन्द्रावली',[२५] छीतस्वामी को 'पद्मा'[२६] और गोविंद स्वामी को 'भामा'[२७] माना गया है। फलस्वरूप वे सभी कवि मधुर-भाव के प्रमुख क्षेत्र की निकुंज की समस्त मधुर लीला का सहज ही अनुभव कर सके; अस्तु। मधुर-भक्ति के भी दो पक्ष हैं—संयोग और वियोग। अष्टछापी कवियों ने दोनों का वर्णन विस्तार से किया है।

अ. *मधुर-भक्ति का संयोग-पक्ष*—व्रज की गोपियाँ कृष्ण के अनुपम रूप-गुण पर अत्यंत मुग्ध होकर उनके प्रति आकृष्ट होती हैं और जहाँ-तहाँ उनका दर्शन करके तो उनकी आसक्ति बहुत बढ़ जाती है। कृष्ण के प्रेम में विभोर राधा को घर-बार नहीं सुहाता और वह कभी हँसती है, कभी बिलखने लगती है[२८]। यही दशा कृष्ण का दर्शन करनेवाली प्रत्येक गोपी की है। नयनों में कृष्ण की मूर्ति समा जाने पर किसी को तन-बदन की सुधि नहीं रह जाती[२९]। हरि-चितवन

२०. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ३।
२१. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ११०।
२२. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० १६६।
२३. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ३३०।
२४. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ४५७।
२५. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ५२५।
२६. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ५६२।
२७. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ६२३।
२८. नागरि मन गई अरुझाइ।
अति बिरह तनु भई ब्याकुल, घर न नैंकु सुहाइ।
स्याम सुंदर मदन मोहन, मोहिनी-सी लाई।
चित्त चंचल कुँवरि राधा, खान-पान भुलाई।
कबहुँ बिहँसति, कबहुँ बिलपति, सकुचि रहत लजाइ—सा० ६७८।
२९. नैंकु तन की सुधि न ताकौं, चली ब्रज-समुहाइ।
स्याम सुंदर नैन भीतर, रहे आनि समाइ।
जहाँ-जहँ भरि दृष्टि देखै, तहाँ-तहाँ कन्हाइ—सा० १४०७।

मर्म पर 'भाली' सी लगने पर 'स्याम-मोहिनी' की 'घाली' हर बाला मन हर लिये जाने का अनुभव करती है[३०] और तब उसका सारा कार्य 'ठग-मूरी' खानेवाली-जैसी नारी का होता है[३१]। हरि के 'हाथ बिकी' ग्वालिनी 'धकधकाते' उर से उन्हीं की ओर टकटकी लगाये रहती है, उसके मुख से बात नहीं निकलती[३२]। कृष्ण की सुन्दर बानी सुनते और रूप देखते ही श्रवणेंद्रिय और नेत्रेंद्रिय में इतनी सजगता आ जाती है जैसे सारा शरीर श्रवण या नेत्रमय ही हो गया हो। ऐसी स्थिति में वह चित्र-लिखी-सी रह जाती है और उसको पल भर भी चैन नहीं पड़ती[३३]।

परमानंददास की गोपी भी 'साँवरो बदन' देख कर उन्हीं के संग 'लग' जाती है[३४] और उसको 'तन की सँभार' नहीं रह जाती[३५]। यही दशा नंददास की गोपी की भी है जो 'कृष्ण' नाम सुनते ही 'बावरी' हो जाती है, उसे 'भवन' की सुधि नहीं रह जाती, उसके नेत्र बार-बार भर आते हैं, चित्त को चैन नहीं पड़ती

३०. री 'हौं स्याम मोहिनी घाली'।
अबहिं गई जल भरन अकेली, हरि चितवनि उर साली'।
कहा कहौं कछु कहत न आवे, लगी मरम की भाली।
सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हौ, बिबस भई हौं आली—सा० १४०८।

३१. काहू तोहिं ठगौरी लाई।
बूझति सखी सुनति नहिं नैंकुहुँ, तुहीं किधौं ठग-मूरी खाई—सा० १४११।

३२. मैं उन तन, उन मो तन चितयौ, तबहीं तैं उन हाथ बिकानी।
उर धकधकी, टकटकी लागी, तन ब्याकुल, मुख फुरति न बानी—सा० १४१२।

३३. सुंदर बोलत आवत बैन।
ना जानौं तिहिं समय सखी री, सब तन स्रवन कि नैन।
रोम रोम मैं सब्द सुरति की, नख-सिख लौं चख ऐन।
इते मान बानी चंचलता, सुनी न समुभी सैन।
तब तकि जकि ह्वै रही चित्र सी, पल न लगत चित चैन।
सुनहु सूर यह साँच कि संभ्रम, सुपन किधौं दिठरैन—सा० १८०४।

३४. साँवरौ बदन देखि लुभानी।
चले जात फिरि चितयौ मो तन तब तें संग लगानी—परमा० १३२।

३५. जब नंदलाल नयन भरि देखे।
एकटक रही सँभार न तन की मोहन मूरति पेखे—परमा० १४१।

और तन की दशा 'कुछ और' हो जाती है[३६]। प्रभु के प्रति उसकी ऐसी गाढ़ी प्रीति हो जाती है कि न तो हार टूटने और चीर फटने की ओर उसका ध्यान जाता है एवं न पनघट और कलश की ही उसे सुधि रह जाती है[३७]। कृष्णदास की गोपी श्याम द्वारा 'टोना-सा' डाले जाने की[३८] और चतुर्भुजदास की गोपी मधुर गान द्वारा चित्त हरे जाने की[३९] बात कहती है। व्रज-बालाओं की यही दशा कुंभनदास,[४०] छीतस्वामी[४१] और गोविंदस्वामी[४२] ने भी बतायी है।

३६. कृष्न नाम जब तैं स्रवन सुन्यौ री आली, भूली री भवन हौं तौ बावरी भई री।
भरि भरि आवैं नैंन, चितहू न परै न चैन, तनकी दसा कछु औरै भई री।
—नंद०, पदा०, पृ० ३४१।

३७. टूटे हार फाटे चीर नयननि बहत नीर। पनघट भई भीर सुध न कलस की।
नंददास प्रभु सों ऐसी प्रीति गाढ़ी। बाढ़ी फेल परी चायन सरस की।
—नंद०, परि०, १४५।

३८. लागी रे लगनियाँ मोहना सों।
सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन नंद जू को छैल चिकनियाँ।
कछु टोना सौ डार गयो री कैसे भरन जाऊँ पनियाँ।
कृष्नदास की प्यास बुझै जब निरखों गिरि के धरनियाँ—कृष्ण० हस्त० १२३।

३९. बेनु धरयौ कर गोबिंद गुन-निधान।
जाति हुती बन काज सखिनि सँग रही ठगी धुनि सुनत कान।
मोहत सहज सकल मृग खग पसु बहु बिधि सप्तक सुर बंधान।
चत्रभुजदास गिरिधर तनु मनु चोरि लियो करि मधुर गान—चतु० १७२।

४०.क. कहा करौं उह मूरति मेरे जिय तें न टरई।
सुंदर नंद-कुँवर के बिछुरैं निसिदिन नींद न परई—कुंभन० २१४।

ख. इनि ढोटा हौं डहकी री मेरी माई।
चितवनि में कछु टोनों कीनों मोहन मंत्र पढ़ाई।
बिकल भई मन लीनैं डोलति बिनु देखैं न रहाई।
बाट-घाट पुर-बन-बीथिनि में लोक कहैं बौराई।
मगन भयौ मन स्याम-सिंधु में खोजत ही गहराई—कुंभन० २२७।

४१. निरखत रूप ठगौरी लागी उत कौं डग भरि चल्यौ न जाइ।
छीतस्वामी गिरिधरन कृपा करि मो तन चितए मुरि मुसिकाइ—छीत० १०६।

४२.क. नैंकु चितैं चले री लालन सखी ले जु गए चित चोरि।
तब ते हौं द्वारे ठाढ़ी चितवति ही प्रीतम की मुसिकानी मुख मोरि—गोविं० २९६।

प्रेम की चरमावस्था में प्रेमी को पारिवारिक मर्यादा, सामाजिक विधि-नियम और लोक-लाज का ध्यान नहीं रह जाता। सभी अष्टछापी कवियों की ब्रज-बालाएँ कुल-कानि, माता-पिता का डर, लोक-लाज आदि की सर्वथा उपेक्षाकर श्याम की प्रीति में पड़कर 'श्याममय' ही हो जाती और उनसे नाता जोड़कर दूसरे सारे नाते तोड़ देती हैं[४३]। इन सब व्यवधानों को पार करते ही गोपियों का अपने प्रियतम से मिलन होता है और वे संयोग के उस परम सुख का अनुभव करती हैं कि उनको मोक्ष-प्राप्ति की भी कामना नहीं रह जाती। अष्टछापी कवियों ने रास-लीला और कुंज-लीला, दोनों अवसरों पर प्रियतम और प्रियाओं के परस्पर मिलने, हँसने-बोलने तथा अनेक प्रकार की विलास-क्रीड़ाएँ करने का वर्णन बड़े विस्तार से

ख. लालन सिर घाली हो ठगौरी।
सुंदर मुख जौ लौं नहीं देखियत भई रहत तौ लों बौरी—गोविं० ३०५।

४३.क. 'लोक सकुच कुल-कानि तजी'।
जैसैं नदी सिंधु कौं धावै, वैसैंहिं स्याम भजी।
मातु पिता बहु त्रास दिखायौं, 'नैकुँ न डरी, लजी'।
हारि मानि बैठे, नहिं लागति, बहुतै बुद्धि सजी।
'मानति नहीं लोक-मरजादा, हरि कैं रंग मजी'।
सूर स्याम कौं मिलि, चूनौ-हरदी ज्यौं रंग रजी—सा० १६३१।

ख. मैं अपनो मन हरि सों जोर्‌यो 'हरि सों जोरि सबनि सो तोर्‌यो'।
नाच नच्यो तब घूँघट कैसो 'लोक लाज डर फटकि पछोर्‌यो।
आगे पाछें सोच मिट्यो जिय बाट माँझ मटुका लै फोर्‌यौ।
कहनो होय सो कहो सखी री कहा भयो काहू मुख मोर्‌यो।
नवल लाल गिरिधरन पिया सँग प्रेम रंग यह मो तन बोर्‌यो।
परमानंद प्रभु 'लोग हँसन दै लोक बेद तिनुका सो तोर्‌यो'—परमा० ४६३।

ग. हिलगनि कठिन है या मन की।
जाके लयें देखि मेरी सजनी! 'लाज जात सब तन की'।
'धर्म जाउ अरु हँसो लोक सब अरु आवौ कुल-गारी'—कुंभन० २१३।

घ. कृष्नदास धन्य धन्य राधिका 'लोक-लाज सब पटकी'—कृष्ण० हस्त० १४४।

ङ. 'बिसरी लोक-लाज' गृह-कारज बंधु पिता अरु माइ—चतु० २८१।

च. हमहिं ब्रज लाडिले सों काज।
'जस अपजस कौ हमें डर नाहीं' कहनो होइ सौ कहि लेउ आज—गोविं० ५७३।

किया है[४४]।

आ. *मधुर-भक्ति का वियोग-पक्ष*—संयोग की स्थिति में व्यक्ति को अपने प्रियजन की ओर से जितनी निश्चिंतता होती है, विरह की अवस्था में वह उसके लिए उतना ही अधिक विकल रहता है। अतएव विरह की स्थिति ऐसी कसौटी मानी जाती है जिससे सच्ची प्रति की सहज ही परख हो सकती है। इसी कारण

४४.क. परसपर मिलि हँसत रहसत, हरषि करत बिलास।
उमँगि आनँद सिंधु उछल्यौ, स्याम कै अभिलाष।
मिलति इक-इक भुजनि भरि भरि, रास रुचि जिय आनि।
तिहिं समय सुख स्याम-स्यामा, सूर क्यौं कहै गानि—सा० १०३६।

ख. गति सुधंग नृत्यति ब्रजनारि।
हाव-भाव नैननि-सैननि दै, रिझवति गिरिवर धारि।
दुरि निरखत अँग, रूप परस्पर दोउ मनहीं मन रीझत।
हँसि हँसि बदन बचन रस बरषत, अंग स्वेद जल भीजत।
गान करति नागरि, रीझे पिय, लीन्हीं अंकम लाइ।
रस-बस ह्वै लपटाइ रहे दोउ, सूर सखी बलि जाइ—सा० १०५७।

ग. रस-बस स्याम कीन्ही ग्वारि।
अधर रस अँचवत परस्पर, संग सब ब्रजनारि।
काम आतुर भजीं बाला, सबनि पुरई आस—सा० १०६२।

घ. स्यामा स्याम करत बिहार।
कुंज गृह रचि कुसुम सज्जा, छबि बरनि को पार।
सुरति-सुख करि अंग आलस, सकुचि बसन सम्हारि—सा० १६७६।

ङ. गोपाल लाल सों नीकैं खेलि।
बिकल भई सँभार न तन की सुन्दरि, छूटे बार सकेलि।
× × ×
बाहु कंध परिरंभन चुम्बन महा महोच्छब रास बिलास—परमा० २३३।

च. आनँद मगन रहत प्रीतम संग द्यौस न जानी राती।
परमानंद सुधाकर हरि मुख पीवत हू न अघाती—परमा० ६०७।

छ. फूलनि माल बनाइ, लाल पहिरत-पहिरावत।
सुमन सरोज सुँघावत, ओज मनोज बढ़ावत।
उज्ज्वल मृदु बालुका, पुलिन अति सरस सुहाई।
जमुना जू निज कर तरंग करि आप बनाई।
बिलसत बिबिध बिलास, हास नीबी कुच परसत।

सूरदास कभी तो कहते हैं कि विरह-दुख का अनुभव न होने तक प्रेम उपजता ही नहीं[४५] और कभी विरह को ही प्रीति का उद्दीपक, उसका बढ़ाने या रंग गहरा करने वाला मानते हैं[४६]। परमानंददास भी विरह के बिना प्रीति की 'खोज' नहीं मानते[४७]। नंददास की सम्मति में, विरह, समाधि की वह स्थिति है जिसमें ध्यानावस्था में प्रियतम मिल जाता है[४८]। 'रूपमंजरी' में वे विरह-सुख को मिलन-सुख से भी अधिक बताते हुए कहते हैं कि संयोग की स्थिति में प्रियतम से मिलन केवल एक स्थान पर होता है, परंतु विरह की स्थिति में सर्वत्र उसी के दर्शन होते हैं[४९]।

यों तो सभी अष्टछापी कवियों ने 'मधुर-भक्ति' के वियोग-पक्ष की महत्ता सिद्ध करते हुए अनेक पद लिखे हैं, तथापि सूरदास और उनके पश्चात् परमानंददास तथा कुंभनदास के तद्विषयक पदों में विरह की बड़ी मर्मस्पर्शी व्यंजना है। वियोग की दशों दशाओं, यथा अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण; के साथ-साथ प्रवास-विरह की दसों स्थितियों, यथा मलिनता, संताप, पांडुता, कृशता, अरुचि, अधृति, विवशता, तन्मयता, उन्माद और मूर्च्छा का मार्मिक वर्णन और चित्रण अष्टछापी कवियों ने अपने

सरसत प्रेम अनंग, रंग नव घन ज्यौं बरसत—नंद०, रास०, पृ० १६६।

ज. लालन मेरे ही आये, आजु सुहावनी रात।
तन मन फूली अंग न समावत, कुंजन करत बधाये—कृष्ण० हस्त० ११७।

झ. स्याम धाम कमनीय बरन तन ससि मानों तरुन घन तरु तमाल को।
जुवती लता गात अरुझानी पानु करत मधुप मधु माल को।
—कृष्ण० हस्त० १।

४५. बिरह दुख जहँ नाहिं नैकहुँ, तहँ न उपजै प्रेम—सा० ३४१३।

४६. ऊधौ बिरहौ प्रेम करे।
× × ×
सूर गुपाल प्रेम-पथ चलि करि, क्यौं दुख सुखनि डरै—सा० ३९८६।

४७. बिरह बिनु नहिंन प्रीति की खोज—परमा० हस्त० १९३।

४८. प्रेम बुद्धि जौ कीनौ चहौ, तौ तुम मोतैं न्यारी रहौ।
बिरह मैं चित्त समाधि लाइहौ, तुरतहि तब मोकहुँ पाइहौ—नंद०, दशम०, पृ० ३०४।

४९. हौं जानौं पिय मिलन तैं, बिरह अधिक सुख होइ।
मिलते मिलियै एक सौं, बिछुरे सब ठौं सोइ—नंद०, रूप०, पृ० २३।

काव्यों में किया है[५०]। इस वर्णन की विशेषता यह है कि व्रजबालाएँ या तो प्रियतम से मिलन की उत्कृष्ट अभिलाषा करती हैं या, सूरदास के शब्दों में, 'विरहिणी' ही रहकर प्रियतम के रूप पर 'परवाने'-जैसा जीवन बिताने की तीव्रतम कामना रखती हैं[५१]। विरह की इस चरमावस्था में प्रियतम के ध्यान में लीन

५०.क. अति मलीन बृषभानु-कुमारी।
हरि स्रम-जल भीज्यौ उर-अंचल, तिहिं लालच न धुवावति सारी।
अधमुख रहति अनत नहिं चितवित, ज्यौं गथ हारे थकित जुवारी।
छूटे चिकुर बदन कुम्हिलाने, ज्यौं नलिनी हिमकर की मारी—सा० ४०७३।

ख. देखी मैं लोचन चुवत अचेत।
मनहुँ कमल ससि त्रास ईस कौं, मुक्ता गनि गनि देत।
कहुँ कंगन कहुँ गिरी मुद्रिका, कहूँ टाड़ कहुँ नेत।
चेतति नहीं चित्र की पुतरी, समुझाई सौ चेत।
द्वार खरी इकटक मग जोवति, ऊर्ध उसाँसनि लेत।
सूरदास कछु सुधि नहिं तिनकी, बँधी तिहारैं हेत—सा० ४११५।

ग. कहौ री जो कहिबे की होइ।
प्राननाथ बिछुरे की बेदन, और न जानै कोइ।
× × ×
बिरह-बिथा अंतर की बेदन, सो जानै जिहिं होइ—सा० ३३८०।

घ. ऊधौ, नाहिंन परति कही।
जबतें हरि मधुपुरी सिधारे बहोतहि बिथा सही।
सुमिरि सुरति वा स्याम की बिरहा अनल दही।
निकसत प्रान अटकि में राखे अब धौं जान रही—परमा० ५३६।

ङ. ब्याकुल बार न बाँधति छूटे।
जब तें हरि मधुपुरी सिधारे उर के हार रहत सब टूटे—परमा० ५५८।

च. कहा करौं उह मूरति मेरे जिय तें न टरई।
सुंदर नंद कुँवर के बिछुरें निसि-दिन नींद न परई—कुंभन० २१४।

छ. ऊधौ जू! कहत न कछू बनै।
हरि बिछुरैं हू कठिन बिरह के सहति बान जितनै—चतु० ३४८।

ज. नैननि निर्झर झरत सुमिरि माधौ! वे पहिली बतियाँ।
नहिं बिसरात निरंतर सींचत बिरहानल प्रबल भयौ घतियाँ—चतु० ३४९।

५१. मधुकर कौन मनायौ मानै।
× × ×

विरहिणी व्रजबालाएँ उन्हीं में तन्मय होकर उस परमानंद का अनुभव करती हैं जो समस्त भक्तों का परम काम्य है।

भक्ति के विविध रूप—भक्ति-संबंधी उक्त विचारों के अतिरिक्त तद्विषयक अन्य अनेक बातें अष्टछाप-काव्य में मिलती हैं और भक्ति के बिना वे भगवान को पाना दुर्लभ बताते हैं[५२]। संस्कारवश भक्तों का स्वभाव भिन्न रहता है जिससे उनकी भक्ति का स्वरूप और उसका लक्ष्यादर्श भी भिन्न रहता है। 'श्रीमद्भागवत्' में इसी कारण भक्त की स्वाभाविक वृत्तियों के अनुसार भक्ति के चार विभेद—तामसी, राजसी, सात्विकी और निर्गुण या निष्काम भक्ति—कहे गये हैं[५३]। इसी का आधार लेकर सूरदास ने तमोगुणी भक्त को शत्रु-नाश, रजोगुणी को धन-कुटुम्ब-अनुरक्ति और सात्विकी को मुक्ति की कामना रखनेवाला कहा है। चौथी अर्थात् निर्गुण या निष्काम भक्ति को सूरदास ने 'सुधाकर भक्ति' कहा है और ऐसी भक्ति रखनेवाला उक्त तीनों बातों में से किसी की कामना न रखकर, भगवद्दर्शन में ही परम सुख मानकर, मन, वचन और कर्म से केवल ईश्वर की सेवा करता है[५४]।

सिखवहु जाइ समाधि जोग रस, जे सब लोग सयाने।
'हम अपनैं व्रज ऐसेहिं रहिहैं, बिरह बाइ बौराने'।
'जागत सोवत सपन रैन दिन, उहै रूप परवाने'।
बालमुकुंद किसोरी लीला, सोभा - सिंधु समाने।
जिनके तन-मन-प्रान सूर सुनि, मृदु मुसुकानि बिकानैं।
परी जु पयोनिधि अल्प बूँद जल, सु पुनि कौन पहिचानै—सा० ३८४०।

५२. भक्ति बिनु भगवंत दुर्लभ—सा० १-३०६।

५३. 'श्रीमद्भागवत', तृतीय स्कंध, अध्याय २६, श्लो० ७ से १४ तक।

५४.क. माता, 'भक्ति चारि परकार। सत रज तम गुन, सुद्धा सार'।
भक्ति एक, पुनि बहु बिधि होइ। ज्यौं जल रँग मिलि रँग सु होइ।
'भक्त सात्विकी, चाहत मुक्ति। 'रजोगुनी', धन-कुटुँबऽनुरक्ति।
'तमोगुनी' चाहै या भाइ। मम बैरी क्यौंहूँ मरि जाइ।
'सुद्धा भक्त' मोहिं कौं चाहै। मुक्ति हुँ कौं सो नाहैं अवगाहै—सा० ३-१३।

ख. 'तमोगुनी' रिपु मरिबौ चाहै। 'रजोगुनी' धन कुटुँबऽवगाहै।
'भक्त सात्विकी' सेवै संत। लखै तिन्हैं मूरति भगवंत।
'भक्त-मनोरथ मन मैं ल्यावै। मम प्रसाद तैं सो वह पावै।
'निर्गुन' मुक्तिहुँ कौं नहिं चहै। मम दरसन ही तैं सुख लहै—सा० ३-१३।

आदर्श भक्त—भगवान से प्रेम करने पर, अष्टछापी कवियों के अनुसार, वही अपने भक्त की सदैव चिंता करता है। अतएव ईश्वर के ऐसे अनुग्रह के प्रति श्रद्धापूर्ण विश्वास रखनेवाला ही आदर्श भक्त है। सूरदास के अनुसार भक्ति-पंथ पर चलनेवाले को न तो पुत्र-कलत्र का ध्यान रहता है, न वह अपने असन-वसन की ही चिंता करता है; क्योंकि जग का पालनकर्ता विश्वम्भर उसकी उसी प्रकार हित-कामना करता है जिस प्रकार सहृदय व्यक्ति द्वार पर बँधे अपने पालतू पशु की[५५]। एक दूसरे पद में हरि को भक्त के भोजन, वस्त्र आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए इसके साथ इस प्रकार लगे रहनेवाला कहा गया है जैसे बछड़े के साथ गाय लगी रहती है[५६]।

सेवा—'भक्ति'-प्रसंग का अंतिम उपशीर्षक है परमाराध्य की 'सेवा'। महाप्रभु वल्लभाचार्य के अनुसार सेवा तन, वित्त और मन से करनी चाहिए[५७]। इनमें तृतीय प्रकार की सेवा को सर्वोत्तम मानकर कृष्ण की 'मानसी' सेवा करने को कहा गया है[५८]। अष्टछापी कवियों ने भी 'सेवा'-भाव पर बल दिया है। कविवर सूरदास ने रसना की हरि-गुण गाने में, नयन की उनके दर्शन में, चित्त की उन्हीं में अनुरक्त होने में, श्रवण की कथा सुनने में, हाथ की सेवा-पूजा में लगे रहने में, चरण की वृन्दावन-जैसे परम धाम जाने में; अर्थात् शरीर के समस्त अवयवों की, किसी न किसी रूप में, परमाराध्य की सेवा में ही सार्थकता मानी है[५९]।

५५. भक्ति-पंथ कौं जो अनुसरै। सुत-कलत्र सौं हित परिहरै।
असन-बसन की चिंत न करै। बिस्वंभर सब जग कौं भरै।
पसु जाके द्वारे पर होइ। ताकौं पोषत अह-निसि सोइ—सा० २-२०।

५६. हरि सौं ठाकुर और न जन कौं।
जिहिं जिहिं बिधि सेवक सुख पावै तिहिं बिधि राखत मन कौं।
भूख भए भोजन जु उदर कौं, तृषा तोय, पट तन कौं।
लग्यौ फिरत सुरभी ज्यौं सुत सँग, औचट गुनि गृह बन कौं—सा० १-६।

५७. 'सिद्धांत मुक्तावली', 'षोडश ग्रन्थ', भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लो० २, पृ० २३।

५८. 'सिद्धांत मुक्तावली', 'षोडश ग्रन्थ', भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लो० १, पृ० २३।

५९. सोइ रसना, जो हरि-गुन गावै।
नैननि की छबि यहै चतुरता, जौ मुकुंद मकरंदहिं ध्यावै।
निर्मल चित्त तौ सोई साँचौ, कृष्न बिना जिहिं और न भावै।

परमानंददास ने सेवा को मुक्ति से भी मीठा मानकर[६०] अपने प्रभु से चरण-सेवा का अवसर देने की याचना की है[६१]।

२. *सामान्य धार्मिक विचार*—

भक्ति-विषयक उक्त विशिष्ट विचारों के अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में ऐसी अनेक बातों की चर्चा की गयी है जिनका संबंध सामान्य धर्म से माना जा सकता है। ऐसे सामान्य विचारों में से अधिकांश का उल्लेख केवल अष्टछाप-काव्य में नहीं, उस युग के समस्त धार्मिक साहित्य में हुआ है। इनमें से परब्रह्म के विभिन्न अवतारों के प्रति अष्टछापी कवियों के विचार 'पौराणिक विश्वास' के अंतर्गत पीछे दिये जा चुके हैं,[६२] शेष विचारों में से प्रमुख को, अध्ययन की सुविधा के लिए, चार उपशीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—क. ज्ञान और योग, ख. वैराग्य या अनासक्ति, ग. गुरुमहिमा और घ. सत्संग-संबंधी विचार।

क. *ज्ञान और योग*—ब्रह्म के निर्गुण और सगुण, दो रूप भारतीय परंपरा में मान्य रहे हैं। वल्लभ-संप्रदायी अष्टछापी कवियों ने भी सगुण के साथ-साथ ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप का अस्तित्व स्वीकार किया है। निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति के लिए ज्ञान और योग-मार्ग माना जाता है और सगुण के लिए भक्ति-मार्ग। परंतु प्रथम मार्ग क्लेशप्रद[६३] और द्वितीय सुगम बताया गया है। अष्टछापी कवियों ने भी ज्ञान और योग की साधना को भक्ति-मार्ग की तुलना में कठिन बताया है; उसका खंडन नहीं किया है। सूरदास 'अबिगत गति को' 'मन-बानी' के लिए 'अगम-अगोचर' बताकर ही सगुण-लीला का गान करने में प्रवृत्त होते हैं[६४]। उनकी

स्रवननि की जु यहै अधिकाई, सुनि हरि-कथा सुधा-रस पावै।
कर तेई जे स्यामहिं सेवैं, चरननि चलि बृन्दाबन जावैं।
सूरदास जैयै बलि वाकी, जो हरि जू सौं प्रीति बढ़ावै—सा० २-७।

६०. सेवा मदन गुपाल की मुक्तिहूं तें मीठी—परमा० ८५३।

६१. चरन-कमल की सेवा दीजै—परमा० ६००।

६२. देखिए इसी प्रबंध के पृष्ठ ३६०-६१।

६३. क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते—'श्रीमद्‌भगवतगीता', १२.५।

६४. अबिगत-गति कछु कहत न आवै।
× × ×

गोपियाँ ऊधव से यही कहती हैं कि 'रूप-रेख-बरन-बपु-रहित' निर्गुण ब्रह्म से नेह किस प्रकार निभ सकता है[६५] ? स्वयं उनके कृष्ण भी स्पष्ट शब्दों में कर्म-धर्म-योग-यज्ञ आदि की ओर ध्यान न देकर, भक्त के भाव के अधीन रहने की बात कहते हैं[६६] । परमानंददास भी ज्ञान-योग-साधना में शरीर को कष्ट देने से, भजन के सरल मार्ग को अपनाना ही उपयुक्त समझते हैं[६७] । इसी प्रकार नंददास, भक्ति के;[६८] और गोविंदस्वामी, प्रीति के द्वारा ही 'प्रीतम' को पाने की बात कहते हैं[६९] ।

परंतु अष्टछाप-काव्य में कहीं-कहीं यौगिक क्रियाओं की भी चर्चा मिलती है । उदाहरण के लिए सूरदास के एक पद में 'अष्टांग योग' की चर्चा करके उसके आठों अंग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—

मन-बानी कौं अगम अगोचर, सो जानै जो पावै ।
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगुति बिनु निरालंब कित धावै ।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै—सा० १-२ ।

६५. कह लै कीजै बहुत बड़ाई ।
अति अगाध स्तुति बचन अगोचर, मनसा तहाँ न जाई ।
जाकैं रूप न रेख बरन बपु, संग न सखा सहाई ।
ता निरगुन सौं नेह निरंतर, क्यौं निबहै री माई—सा० ३९३१ ।

६६. भक्त हेतु अवतार धरौं ।
कर्म-धर्म कैं बस मैं नाहीं, जोग जज्ञ मन मैं न करौं ।
× × ×
भाव अधीन रहौं सबही कैं, और न काहू नैंकु डरौं ।
× × ×
सूर स्याम तब कही प्रगटही, जहाँ भाव तहँ तैं न टरौं—सा० १५२२ ।

६७. हरि के भजन में सब बात ।
ग्यान करम सौं कठिन करि कत देत हौ दुख गात—परमा० ८६५ ।

६८. यहि बिधि कहत ग्यान है जोई, भक्ति बिना सोउ सिद्ध न होई ।
तुम्हरी भगति अमीरस-सरवर, मोच्छादिक जाके बस निर्झर ।
तिहिं तजि जे केवल बोध कौं, करत कलेस चित्त सोध कौं ।
तिन कहुँ छिन ही छिन स्रम बढ़ै, और कछू न तनक कर चढ़ै ।
—नंद०, दशम०, पृ० २६१ ।

६९. प्रीतम प्रीति ही तैं पैए—गोविं० ३४३ ।

भी गिनाये गये हैं[७०]। हाँ, पद के अंतिमांश में उन्होंने 'उपाधि' का मिटना भजन करने पर ही संभव बताया है। इसी प्रकार सूरदास की गोपियाँ ऊधव से कहती हैं कि हमारा प्रेम-योग तुम्हारे योग से किस प्रकार कम है जब हम माता-पिता का प्रेम और निगम-पथ छोड़कर सुख-दुख, मान-अपमान आदि सहन कर रही हैं। हमारा मन दृढ़तापूर्वक श्रीकृष्ण में लगा है और जगतवंद्य मानकर हम उनकी वंदना करती रही हैं। संकोच हमारा आसन है, गुरुजन की कानि रूपी अग्नि में हम तपी हैं, उपहास-धूम का हमने पान किया है, शरीर की सुधि भुलाना हमारी समाधि है, अपलक दृष्टि से कृष्ण की रूप-माधुरी का अंतर्दर्शन करना रात्रि का जागरण है, हमारे नेत्रों का कृष्ण के नेत्रों से लगना ही त्रिकुटी तथा त्राटक-दर्शन की साधना है, मुरली-ध्वनि सुनना अनहदनाद सुनना है, उनके वचन सुनने की रुचि जैसे रस बरसना है और उनकी संगति की कामना आनंद-लीनता के समान है। मनजात अर्थात् कामदेव से हमें प्रेम-मंत्र मिला है तथा हमारा ध्यान सदैव हरि में ही लगा रहता है[७१]।

७०. भक्ति - पंथ कौं जो अनुसरै। सो 'अष्टांग जोग' कौं करै।
यम, नियमासन, प्रानायाम। करि अभ्यास होइ निष्काम।
प्रत्याहार धारना ध्यान। करै जु छाँड़ि बासना आन।
क्रम-क्रम सौं पुनि करै समाधि। सूर स्याम भजि मिटै उपाधि—सा० २-२१।

७१. हम अलि गोकुलनाथ अराध्यौ।
मन, क्रम, बच हरि सौं धरि पतिब्रत, 'प्रेम जोग तप साध्यौ'।
मातु पिता हित, प्रीति, निगम पथ तजि, दुख सुख भ्रम नाख्यौ।
मानऽपमान परम परितोषी, सुस्थल थिति मन राख्यौ।
सकुचासन कुल सील करषि करि, जगतबंद्य करि बंदन।
मौनऽपवाद पवन आरोधन, हित क्रम काम निकंदन।
गुरुजन-कानि अगिनि चहुँ दिसि, नभ तरनि ताप बिनु देखे।
पिवत धूम उपहास जहाँ तहँ, अपजस स्रवन अलेखे।
सहज समाधि सारि बपु बानक निरखि, निमेष न लागत।
परम ज्योति प्रति अंग माधुरी, धरति यहै निसि जागत।
त्रिकुटि संग भ्रू-भंग, तराटक, नैन-नैन लगि लागैं।
हँसनि प्रकास सुमुख कुंडल मिलि, चंद सूर अनुरागैं।
मुरली अधर स्रवन धुनि सो सुनि, सबद अनाहद कानैं।

इसी प्रकार सूरदास के एक अन्य पद में योग की कष्ट-साधना की भी चर्चा की गयी है। गोपियाँ ऊधव से कहती हैं कि जिस योग का तुम उपदेश दे रहे हो उसकी साधना तो हम कर ही रही हैं। हमारे केश, 'सेली' हैं; कर्णफूल, 'मुद्रा' हैं; विरह के कारण शरीर की मलिनता, भस्म है; चीर, कंथा है; हृदय, शृंगी बाजा है; मुरली का स्वर, नाद है और नेत्र, 'कृष्ण-दरस-भिक्षा' माँगने के खप्पर हैं[७२]। परंतु जो ज्ञान भक्ति के लिए भूमि तैयार करता है, जीव को भ्रम से छुड़ाता और उसके मोहांधकार को दूर करता है, उसकी अष्टछापी कवियों ने सर्वत्र प्रशंसा की है[७३]।

ख. वैराग्य या अनासक्ति—अष्टछाप-काव्य में अनेक अवतरण ऐसे मिलते हैं जिनमें उन कवियों ने पुत्र-कलत्र, स्वजन-परिजन आदि को परम स्वार्थी, उनसे मिलनेवाले सुख को क्षणभंगुर और गृहस्थ-जीवन को कष्टदायी बताया है[७४]। परंतु सामान्यतया घर-बार से मुक्ति पा जाना सबके लिए सुलभ भी नहीं होता।

बरषत रस रुचि वचन संग सुख, पद आनंद समानैं।
मंत्र दियौ मन जात भजन लगि, ज्ञान ध्यान हरि ही कौं—सा० ३५३०।

७२. ऊधौ करि रहीं हम जोग।
कहा एतौ बाद ठान्यौ, देखि गोपी भोग।
सीस सेली केस मुद्रा, कान-बीरी बीर।
बिरह भस्म चढ़ाइ बैठीं, सहज कंथा चीर।
हृदय सिंगी टेर मुरली, नैन खप्पर हाथ।
चाहतीं हरि-दरस-भिच्छा देहिं दीनानाथ – ३६६४।

७३.क. सूरदास तबहीं तम नासै, ज्ञान-अगिनि-झर फूटै—सा० २-१६।
ख. सूर मिटै अज्ञान मूरछा, ज्ञान सुभेषज खाएँ—सा० २-३२।

७४.क. सुत-सनेहि तिय सकल कुटुँब मिलि, निसि दिन होत खई—सा० १-२६६।
ख. सुख संपति, दारा-सुत, हय-गय, छूट सबै समुदाइ।
छनभंगुर यह सबै स्याम बिनु, अंत नाहिं सँग जाइ—सा० १-३१७।
ग. जब लगि डोलत, बोलत, चितवत, धन-दारा हैं तेरे।
निकसत हंस, प्रेत कहि तजिहैं, कोउ न आवै नेरे—सा० १-३१६।
घ. सुत-बित-बनिता प्रीति लगाई, झूठे भरम भुलानौ—सा० ३२६।
ङ. दार, गार, सुत, पति इन करि कहौ कौन आहि सुख।
बढ़ैं रोग सम दिन-दिन, छिन-छिन देहिं महा दुख।
—नंद०, सिद्धांत०, पृ० १८८।

इसीलिए महाप्रभु ने लौकिक विषयों से मुक्ति पाना कठिन बताकर उनमें रमने वाले मन को परमाराध्य में लगाने का उपदेश दिया है[७५]। परमानंददास ने एक पद में आहार-विहार और देह-सुख छोड़कर घर में 'बटाऊ' की भाँति बसने की बात कही है[७६]। वैराग्य अथवा अनासक्ति के संबंध में अन्य अष्टछापी कवियों का भी यही आदर्श समझना चाहिए।

ग. *गुरु-महिमा*—भगवान की भक्ति-साधना या सेवा-संबंधी - निर्देश भक्त को जिससे प्राप्त होते हैं और जो भक्ति तथा सेवा के क्षेत्र में उसका पथ-प्रदर्शक होता है, उसे 'गुरु' कहते हैं। उसकी आज्ञा का पालन, महाप्रभु वल्लभाचार्य के अनुसार, एक प्रकार से ईश्वर-सेवा ही है[७७]। कबीर ने जिस प्रकार 'सतगुरु' की महिमा का बखान किया है[७८] और नाभादास ने भगवंत और गुरु को एक बताया है,[७९] उसी प्रकार अष्टछापी कवि भी गुरु को ईश्वर-रूप ही मानते रहे हैं। सूरदास ने परमाराध्य के लीला-गान को 'आचार्य-यश-वर्णन' के समकक्ष बताया है[८०] और दोनों को एकरूप मानते हुए गुरु की प्रसन्नता से हरि को प्रसन्नता और गुरु के दुख से, हरि को खिन्नता होने की बात कही है[८१]। यही भाव उनके

---

७५. 'तत्वदीप निबंध', सर्वनिर्णय-प्रकरण, श्लो० २४६-२५० ।

७६. छाँड़ि अहार बिहार सुःख यह और न चाहत काऊ।
परमानंद बसत है घर में जैसे रहत बटाऊ—परमा० ४६८ ।

७७. 'नवरत्न', 'षोडश ग्रन्थ', भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लो० ७ ।

७८.क. गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय—'कबीर-बचनावली', ३०० ।

ख. कबिरा ते नर अंध हैं गुरु को कहते और।
हरि रूठै गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर—'कबीर-बचनावली', ३०८ ।

ग. गुरु पारस गुरु परस है चंदन बास सुबास।
सतगुरु पारस जीव को दीन्हों मुक्ति निवास—'कबीर बचनावली', ३१० ।

७९. भक्त भक्ति, भगवन्त, गुरु, चतुर नाम बपु एक।
इनके पद - बंदन किये, नासहिं बिघ्न अनेक—'भक्तमाल', दो० १ ।

८०. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० १०५ ।

८१. हरि-गुरु एक रूप नृप, जानि। यामैं कछु संदेह न आनि।
गुरु प्रसन्न, हरि परसन होइ। गुरु कैं दुखित, दुखित हरि जोइ—सा० ६-५ ।

साथ-साथ अन्य अष्टछापी कवियों का भी रहा है[८२]। गुरु की कृपा होने पर ही हरि-गान की प्रेरणा मिलना भी उन्होंने स्वीकार किया है[८३] और गुरु की सेवा न कर पाने पर वे जीवन को व्यर्थ समझते हैं[८४]। संत-समागम न होने पर वे जीवन को भार-स्वरूप[८५] और व्यर्थ ही बीत जानेवाला मानते हैं[८६]। कारण यह है कि वे गुरु को ज्ञान-दीपक हाथ में लेकर अविद्या-माया का नाश करके जीव का उद्धार करने में समर्थ समझते हैं[८७] और, उनकी सम्मति में, 'सत्गुरु' का उपदेश हृदय में धारण

८२.क. बहुरि यहै तनु धरि कहाँ, बल्लभ-बेष मुरारि री।
परमानँद स्वामी के ऊपर सर्वस दैहौं वारि री—परमा० हस्त० ६५।

ख. तन्नमामि पद परम गुरु, कृष्न कमल-दल-नैन।
जगकारन, करुनार्नव, गोकुल जिन कौ ऐन—नंद०, मान०, पृ० ६१।

ग. ब्रजपति बल्लभ एक ही जानो भेद नहीं है नमो-नमो।
—कृष्ण० 'कीर्तन०-सं०', भाग २, पृ० २३६।

घ. सदा ब्रज ही में करत बिहार।
तबकैं गोप-भेष अबकैं प्रगटे द्विजवर-अवतार।
तब गोकुल में नंद-सुवन, अब बल्लभ-राजकुमार—चतु० ५७।

ङ. हम तौ श्री बिठ्ठलनाथ-उपासी।
× × ×
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीबिट्ठल-बानी निगम-प्रकासी—छीत० ४३।

च. जो पै श्रीबिट्ठल रूप न धरते।
तो कैसेक घोर कलिजुग के महापतित निस्तरते—गोविं० ६३।

८३. धनि सुक मुनि भागवत बखान्यौ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तब रसना कहि गान्यौ—सा० ११७३।

८४. जनम तौ बादिहिं गयौ सिराइ।
हरि सुमिरन नहिं गुरु की सेवा, मधुबन बस्यो न जाइ—सा० १-१५५।

८५. थोरे जीवन भयौ तन भारौ।
कियौ न संत-समागम कबहूँ, लियौ न नाम तुम्हारौ—सा० १-५२।

८६. ना हरि भक्ति, न साधु-समागम, रह्यौ बीचहीं लटकैं—सा० १-२९२।

८७. गुरु बिनु ऐसी कौन करै ?
माला-तिलक मनोहर बाना, लै सिर छत्र धरै।
भव-सागर तैं बूड़त राखै, दीपक हाथ धरै।
सूर स्याम गुरु ऐसौ समरथ, छिन मैं लै उधरै—सा० ६-६।

करनेवाला, सहज ही सभी भ्रमों से मुक्ति पा जाता है[८८]।

घ. *सत्संग-महिमा*—जीवन के दैनिक व्यवहार में जिस प्रकार सच्चरित्र व्यक्तियों के संपर्क से मन में सद्विचारों का उदय होता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में सत्संग से भक्ति-साधना की प्रेरणा आदि अनायास ही प्राप्त हो जाती है। परंतु 'सत्संग' मिलता उसी को है जिस पर ईश्वर की कृपा होती है[८९]। सूरदास ने भी साधु-संगति को बड़े भाग्य से पाने की बात लिखी है[९०]। एक अन्य पद में उन्होंने साधु-दर्शन को कोटि तीर्थ-स्नान के फल जैसा बताया है[९१]। कारण यह है कि उनकी संगति में रहने से जन्म-मरण के क्रम से सहज ही मुक्ति मिल जाती है[९२]। इसी से नंददास उसको 'पारस' के समान उत्तम मानते हैं जो लोहे को भी सोना बना देता है[९३] और परमानंददास उसकी कामना करते हैं[९४]। सूरदास को जिस प्रकार एक साधु-संगति का ही आधार है,[९५] उसी प्रकार छीतस्वामी को भी हरि-भक्तों के बल का विश्वास है[९६]। सूरदास ऐसे साधुओं की सेवा में ही जीवन

८८. सतगुरु कौ उपदेस हृदय धरि, जिन भ्रम सकल निवारयौ।
हरि भजि, बिलँब छाँड़ि सूरज सठ, ऊँचैं टेरि पुकारयौ—सा० १-३३६।

८९.क. 'नारद भक्ति-सूत्र', ३९।
ख. 'नारद भक्ति-सूत्र', ४०।

९०. सूरदास साधुनि की संगति, बड़े भाग्य जो पाऊँ—सा० १-३४०।

९१. जा दिन संत पाहुने आवत।
तीरथ कोटि सनान करैं फल जैसौ दरसन पावत—सा० २-१७।

९२. संगति रहैं साधु की अनुदिन, भव-दुख दूरि नसावत।
सूरदास संगति करि तिनकी, जे हरि-सुरति करावत—सा० २-१७।

९३. पुनि कहै सब तैं साधु-सँगति उत्तम है भाई।
पारस परसैं लोह-मात्र कंचन ह्वै जाई—नंद०, भँवर०, पृ० १३९।

९४.क. सब सुख सोई लहै जाहि है कान्ह पियारो।
करि सतसंग बिमल जस गावै रहे जगत तैं न्यारो—परमा० ८६०।
ख. संग देहौ तौ हरि भगतनि को, बास देहु श्री जमुना तीर—परमा० ९००।

९५. एक अधार साधु संगति कौ, रचि पचि मनि सँचरी—सा० १-१३०।

९६. मोकों बल है दोऊ ठौर कौ।
इक बल मोकों हरि-भक्तनि कौ दूजै नंदकिसोर कौ—छीत० १८९।

की सार्थकता समझते हैं[९७]।

२. *धार्मिक कृत्य*—अष्टछापी कवियों ने अपनी रचनाओं में उन अनेक कृत्यों का भी यत्र-तत्र वर्णन किया है जिनको हिंदू समाज सदा से 'धर्म' का अंग मानता आया है। स्थूल रूप से, ऐसे कृत्यों को नौ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—पूजा, व्रत, तीर्थयात्रा, तीर्थस्नान, दान, तप, यज्ञ, श्राद्ध और कथा-श्रवण।

क. *पूजा*—यद्यपि भारतवर्ष में सदैव से बहुदेवोपासना प्रचलित रही है तथापि उनमें से ईश्वर के पाँच स्वरूपों, यथा विष्णु, सूर्य, शिव, देवी और गणपति, की उपासना का महत्व बहुत प्राचीन काल से रहा है। अष्टछाप-काव्य में इन पंच देवों के अतिरिक्त इष्टदेवता, कुलदेवता, इंद्र और गोवर्द्धन की पूजा का भी उल्लेख हुआ है। इन सबकी पूजा का विवरण अष्टछाप-काव्य के आधार पर नीचे दिया जाता है—

अ. *इष्टदेवता की पूजा*—प्रत्येक आस्तिक हिंदू का कोई न कोई इष्टदेवता होता है जिसको अर्पण करके ही सांसारिक भोग भोगने का सामान्य विधान है; यहाँ तक कि नित्यप्रति का भोजन भी उसको भोग लगाकर ही ग्रहण किया जाता है। 'सूरसागर' में महराने से आया हुआ पाँडे खीर तैयार होने पर पहले इष्टदेव का ध्यान करके भोग लगाता है[९८]। अशोकवाटिका में फल खाने के पूर्व हनुमान भी पहले मानसिक रूप से प्रभु को अर्पण कर देते हैं[९९]।

नंद जी का इष्टदेव, सूरदास ने, शालग्राम को बताया है और उनकी पूजा

९७. जनम तौ बादिहिं गयौ सिराइ।

× × ×

आनि भक्ति करि, हरि-भक्तनि के कबहूँ न धोए पाइ—सा० १-१५५।

९८.क. घृत, मिष्टान्न, खीर मिस्रित करि परुसि कृष्न हित ध्यान लगायौ।

नैन उघारि बिप्र जौ देखै, खात कन्हैया देख न पायौ—सा० १०-२४८।

ख. पाँड़े नहिं भोग लगावन पावै।

× × ×

वह अपने ठाकुरहिं जिंवावै, तू ऐसैं उठि धावै—सा० १०-२४९।

९९. अगनित तरु-फल सुगंध मृदुल-मिष्ट-खाटे।

मनसा करि प्रभुहिं अर्पि, भोजन करि डाटे—सा० ९-९६।

का उल्लेख केवल 'सूरसागर' में मिलता है। सूरदास के नंद जी यमुना में स्नान करके झारी भर जमुनाजल और बहुत से कंज-सुमन लाते हैं। घर आने पर हाथ-पैर धोकर वे मंदिर में पधारते, स्थल लीपते, पात्र माँजते-धोते तथा शालग्राम-पूजन के अन्य कृत्य विधिवत् करते हैं[२००]। तभी बालक कृष्ण वहाँ आकर, नन्द जी का घंटा बजाकर शालग्राम को स्नान कराना, चंदन चढ़ाना, 'पट का अंतर' देकर भोग लगाना, आरती करना आदि देखता है[१]। भोग लगाने पर भी थाल की सामग्री ज्यों की त्यों देखकर बालक कृष्ण कहता है कि बाबा, तुमने भोग लगाया, पर तुम्हारे ठाकुर ने तो कुछ खाया ही नहीं[२]। भोले बालक की इस जिज्ञासा में भी पिता ने देव-अवज्ञा समझी और उससे 'देवता' को हाथ जोड़ने को कहा[३]। सूरदास ने 'शालग्राम' को ही नंद जी का इष्टदेवता कहा है, क्योंकि पिता को ध्यान-समाधि में लीन देखकर पुत्र ने जब शालग्राम की बटिया को मुख में रख लिया,[४] तब वे 'मेरे इष्टदेव कहाँ गये', कहकर ही उनकी खोज करते हैं[५] और बालक के मुख से 'देवता' को पाकर वे बहुत खीझते हैं[६]। पश्चात्, देव-स्नानादि के अनंतर, वे

२००. करि अस्नान नंद घर आए।
लै जल जमुना कौ झारी भरि, कंज सुमन बहु ल्याये।
पाइँ धोइ मंदिर पग धारे, प्रभु-पूजा जिय दीन्ह।
अस्थल लीपि, पात्र सब धोए, काज देव के कीन्ह।
बैठे नंद करत हरि पूजा, विधिवत औ बहु भाँति—सा० १०-२६०।

१. नंद करत पूजा, हरि देखत।
घंट बजाइ देव अन्हवायौ, दल चंदन लै भेंटत।
पट अंतर दै भोग लगायौ, आरति करी बनाइ—सा० १०-२६१।

२. कहत कान्ह, बाबा तुम अरप्यौ, देव नहीं कछु खाइ—सा० १०-२६१।

३. चितै रहे तब नंद महरि-मुख सुनहु कान्ह की बात।
सूर स्याम देवनि कर जोरहु, कुसल रहै जिहिं गात—सा० १०-२६१।

४.क. पूजा करत नंद रहे बैठे, ध्यान समाधि लगाई।
चुपकहिं आनि कान्ह मुख मेल्यौ, देखौं देव-बड़ाई—सा० १०-२६२।

ख. एक समय पूजा के अवसर, नंद समाधि लगाई।
सालिग्राम मेलि मुख भीतर, बैठि रहे अलगाई—सा० १०-२६३।

५. खोजत नंद चकित चहुँ दिसि तैं अचरज सौं कछु भाई।
कहाँ गए मेरे इष्टदेवता, को लै गयौ उठाई—सा० १०-२६२।

६. मुख कत मेलि देवता राख्यौ, घाले सबै नसाई—सा० १०-२६२।

पुनः इष्ट-देव का पूजन करते हैं।

आ. कुलदेवता इन्द्र की पूजा—प्रत्येक हिंदू के लिए 'इष्टदेवता' के साथ-साथ 'कुलदेवता', 'ग्राम-देवता' आदि की पूजा का शास्त्रीय विधान माना जाता है[७]। इस प्रकार भारतीय समाज में वर्ग-विशेष के प्रत्येक कुल का एक 'कुलदेवता' होता है जिसकी पूजा प्रत्येक मंगलकार्य के आदि में तथा वर्ष के अन्य प्रमुख अवसरों पर की जाती है और उसी को समस्त लौकिक श्री-समृद्धि तथा मंगल का दाता माना जाता है। अष्टछाप-काव्य में जिन व्रज-वासियों की चर्चा है उनका 'कुलदेवता' इंद्र बताया गया है जिसकी कृपा से ही यशोदा व्रज में कुशलपूर्वक रहने, समस्त सुख, दूध-दही, अन्न-धाम के साथ-साथ धन-सम्पत्ति और 'नवोंनिधि' पाने की बात कहती है[८]। 'कुलदेवता' की पूजा भूल जाने पर भावी अनिष्ट की शंका से नंदरानी का हृदय काँप जाता है और तुरंत ही वे क्षमा-याचनापूर्वक[९] विनय करती हैं कि तुम्हारे समान दूसरा देव नहीं है; तुम्हीं कृष्ण पर दया करो[१०]। पुत्र के पूछने पर कि तुम किसकी पूजा करती हो, माता उत्तर देती है कि इंद्र हमारे कुलदेव हैं, उनसे ही सांसारिक 'बड़ाई' हमें मिली है और तुम्हारे कल्याण के लिए हम उनकी पूजा करती हैं[११]। नंददास के कृष्ण भी पिता नंद से पूछते हैं कि यह

७. 'कल्याण' के 'हिन्दू-संस्कृति' अंक में प्रकाशित 'हिंदुओं के मुख्य देवता' शीर्षक लेख, पृ० ७८०।

८.क. नंद महर सौं कहति जसोदा, सुरपति की पूजा बिसराई।
जाकी कृपा बसत व्रज-भीतर, जाकी दीन्ही भई बड़ाई।
जाकी कृपा दूध-दधि-पूरन, सहस मथानी मथति सदाई।
जाकी कृपा अन्न-धन मेरैं, जाकी कृपा नवौं निधि आई।
जाकी कृपा पुत्र भए मेरैं, कुसल रहौ बलराम कन्हाई—सा० ८११।

ख. येई हैं कुलदेव हमारे।
काहूँ नहीं और मैं जानति, व्रज-गोधन रखवारे—सा० ८१२।

९. छमा कीजौ मोहिं, हो प्रभु तुमहिं गयौ भुलाइ—सा० ८१४।

१०. और नहीं कुलदेव हमारैं, कै गोधन, कै ये सुरपति बर।
करति बिनय कर जोरि जसोदा, कान्हहिं कृपा करौ करुनाकर।
और देव तुम सम कोउ नाहीं सूर करौं सेवा चरननि-तर—सा० ८१७।

११. बार-बार हरि बूझत नंदहिं, कौन देव की करत पुजाई।
इंद्र बड़े कुल-देव हमारे, उनतैं सब यह होति बड़ाई।

पूजा 'शास्त्र' से तुमने पायी है या परंपरा से अथवा यह 'लोक-रूढ़' है[१२]। उत्तर में नंद जी इन्द्र-पूजा के 'परंपरा' से चले आने की बात कहते हैं[१३]।

व्रज में कुलदेवता इंद्र की पूजा का यह चलन 'गोवर्धन-पूजा' के पूर्व तक प्रचलित बताया गया है। उसकी पूजा का सारा आयोजन बड़ी धूम-धाम से किया जाता है। स्त्रियाँ मंगल-गान करती, भाँति-भाँति के पकवान आदि बनाती और श्याम के छूने के डर से सम्हाल कर रखती जाती हैं[१४]। नटखट कृष्ण की ओर से इतनी सतर्कता बरतने पर भी वे निश्चिंत नहीं हो पातीं और उसे सारी सामग्री से दूर रखने के लिए डराती हुई कहती हैं कि यहाँ मत आना, यह देवता लड़कों को डराता है। इतना सुन कर पुत्र को आँगन में ही ठिठक कर रह जाते देख माता मन ही मन हँसती है[१५]। एक देवता के लिए बहुत-सा 'भोग' बनता देख सहज जिज्ञासा-भाव से जब कृष्ण पूछता है कि क्या तुम्हारा देवता प्रत्यक्ष होकर इतना सब भोजन खा लेगा,[१६] तब माता यशोदा पुत्र की अविनय पर खीझती और कुलदेवता के हाथ जोड़कर पुत्र का अपराध क्षमा कराती हैं[१७] और पुनः स्वीकार

सूर स्याम तुम्हरे हित कारन, यह पूजा हम करत सदाई—सा० ८१८।

१२. यह करनी तुम सास्त्र तैं पाई, ऐ किधौं परंपरा चलि आई।
कैधौं लोकरूढ़ है तात, मोसौं कहौ कहा यह बात।
—नंद, दशम०, पृ० ३०६।

१३. परंपरा चलि आयौ धर्म, अहो तात नहि अब कौ कर्म—नंद०, दशम०, पृ० ३०६।

१४.क. गावतिं मंगलाचर महर घर।
जसुमति भोजन करति चँड़ाई, नेवज करि करि धरति स्याम डर।
देखे रहौ न छुवै कन्हैया, कह जानै वह देव काज पर—सा० ८१७।

ख. बहु-बहु भाँति करतिं पकवानैं। नेवज करि धरि साँझ बिहानैं।
छुवत नहीं देवकाज सकानैं। देव-भोग कौं रहत डरानै—सा० ८६१।

१५. महरि सबै नेवज लै सैंतति। स्याम छुवै कहुँ ताकौं डरपति।
कान्हहिं कहति, इहाँ जनि आवै। लरिकनि कौं यह देव डरावै।
स्याम रहे आँगनहिं डराई। मन-मन हँसति मातु सुखदाई—सा० ८६३।

१६. मैया री, मोहिं देव दिखैहै। इतनौ भोजन सब वह खैहै—सा० ८६३।

१७. यह सुनि खीझति है नँदरानी। बार-बार सुत सौं बिरुझानी।
ऐसी बात न कहौ कन्हाई। तू कत करत स्याम लँगराई।
कर जोरति अपराध छमावति। बालक कौ यह दोष मिटावति—सा० ८६३।

करती हैं कि मेरा सारा गोधन, धन-धाम, पुत्रादिक कुलदेव की कृपा से ही है[१८]।

इ. *गोवर्द्धन पूजा*—कुलदेवता इंद्र के स्थान पर गोवर्द्धन की पूजा कृष्ण द्वारा चलाये जाने की बात अष्टछापी कवियों ने लिखी है। माता-पिता जब सुरपति की पूजा का सोत्साह आयोजन करते हैं तब कृष्ण स्वप्न में एक 'अवतारी पुरुष' के दर्शन होने और गोवर्द्धन-पूजा की आज्ञा दिये जाने की बात कहते हैं[१९]। साथ ही वे यह प्रलोभन भी देते हैं कि गोवर्द्धन-पूजा में गोसुत बढ़ेंगे, खूब दूध-दही होगा और जब तुम्हें मुँहमाँगी बातें मिल जायँ तभी तुम मुझे मानना[२०]। पश्चात्, कृष्ण की बात मानकर बड़े उत्साह से गोवर्द्धन-पूजा का आयोजन किया जाता है जिसका विस्तृत वर्णन 'दीपावली' त्योहार के प्रसंग में पीछे किया जा चुका है[२१]।

ई. *विष्णु की पूजा*—अष्टछाप-काव्य में विष्णु की विधिवत् पूजा का उल्लेख नहीं है; अष्टछापी कवियों के परमाराध्य होने के कारण कुछ स्फुट पदों में उनको 'देवाधिदेव' कहकर उनकी सेवा-उपासना करने की बात अवश्य कही गयी है जो श्रीकृष्ण से भी संबंधित है[२२]।

१८. उनकी कृपा गऊ गन घेरे। उनकी कृपा धाम-धन मेरे।
उनकी कृपा पुत्र-फल पायौ। देखहु स्यामहिं खीझि पठायौ—सा० ८९४।

१९. सुपनैं आजु मिल्यौ मोकौं इक बड़ौ पुरुष अवतार जनाई।
कहन लग्यौ मोसौं ये बातैं, पूजत हौ तुम काहि मनाई।
गिरि गोबर्धन देवनि कौ मनि, सेवहु ताकौं भोग चढ़ाई—सा० ८१९।

२०. मेरौ कह्यौ सत्य करि जानौ।
जौ चाहौ ब्रज की कुसलाई, तौ गोबर्धन मानौ।
दूध-दही तुम कितनौ लैहौ, गोसुत बढ़ैं अनेक।
× × ×
मुँहमाँगे फल जौ तुम पावहु, तौ तुम मानहु मोहिं—सा० ८२१।

२१. देखिए इसी प्रबंध के पृ० ३०१ से ३०४।

२२. मोहिं भावै देवाधिदेवा।
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन गोकुलनाथ एक हैं मेवा।
× × ×
संख चक्र सारंग गदाधर रूप चतुर्भुज आनन्द-कन्दा।
गोपीनाथ राधिका-बल्लभ ताहि उपासत परमानंदा—परमा० ८७६।

उ. *सूर्य की पूजा*—अष्टछापी कवियों ने यशोदा और व्रज-बालाओं के द्वारा सूर्य की उपासना किये जाने की चर्चा की है। सूरदास की यशोदा राधा और श्याम की सुन्दर 'जोटी' देखकर, दोनों के कुशल से रहने और परस्पर संबंध-सूत्र में बँधने की कामना से 'सविता' से बिनती करती हैं[२३] जिसका उल्लेख राधा ने अपनी माता से भी किया है[२४]।

श्रीकृष्ण को पति या 'भरतार'-रूप में पाने की कामना रखनेवाली गोपियाँ भी सूर्य की पूजा करके अपना मनोरथ पूर्ण होने का वरदान चाहती हैं[२५] और जब उनकी मनोकामना पूर्ण हो जाती है तब भी अत्यंत कृतज्ञ-भाव से वे 'सविता' को 'पय-अंजलि' समर्पित करती हैं[२६]। अशोकवाटिका में बैठी सीता हनुमान के मुख से लक्ष्मण के पालागन की बात सुनकर 'तरनि सम्मुख' हो असीस देती हैं[२७]। 'सारावली' में कवि ने श्रीकृष्ण द्वारा सूर्य को अर्घ्य दिलाया है[२८]। अन्य अष्टछापी कवि इस संबंध में मौन हैं।

ऊ. *शिव-पार्वती की पूजा*—'सूर्य' की भाँति 'शिव-पार्वती'[२९] की पूजा भी

२३. देखि, महरि मनहीं जु सिहानी।

× × ×

सूर महरि सविता सौं बिनवति, भली स्याम की जोटी—सा० ७०२।

२४. मो तन चितै, चितै ढोटा तन, कछु सविता सौं गोद पसारी—सा० ७०८।

२५.क. ध्यान धरि, कर जोरि, लोचन मूँदि, इक-इक जाम।
बिनय अंचल छोरि रबि सौं, करति हैं सब बाम।
हमहिं होहु दयाल दिन-मनि, तुम बिदित संसार।
काम अति तनु दहत दीजै, सूर हरि भरतार—सा० ७६७।

ख. रवि सौं बिनय करतिं कर जोरे—सा० ७६८।

२६. बिनय करतिं सविता, तुम सरि को, पय अंजलि, कर जोरी।
सूर स्याम पति तुम तैं पायौ, यह कहि घरहिं बहोरी—सा० ७६८।

२७. लछिमन पालागन कहि पठयौ, हेत बहुत करि माता।
दई असीस तरनि-सन्मुख ह्वै चिरजीवौ दोउ भ्राता—सा० ६-८७।

२८. कतहूँ अर्घ्य देत सूरज को—सारा० ६७८।

२९. वाण ने भी शिव की विधिवत् पूजा किये जाने का वर्णन विस्तार से किया है।
—हर्ष०, सां० अध्य०, पृ० ५६-५७।

पति और पुत्र पाने की कामना से किये जाने की बात अष्टछापी कवियों ने लिखी है। सूरदास की यशोदा स्पष्ट शब्दों में कृष्ण को गोद में खिलाने का सौभाग्य शिव-गौरि की कृपा का फल बताती हैं[३०]। उनकी गोपियाँ मनवांछित वर और सौभाग्य की कामना से गौरीपति शिव की पूजा का नेम-धर्म-सहित विधान करती हैं और उनसे नंदकुमार को पति-रूप में प्राप्त करने का वरदान चाहती हैं[३१]। गोपियों को पूर्ण विश्वास है कि महादेव की कृपा से उनकी मनोकामना अवश्य पूर्ण हो जायगी; अतः वे निरंतर उनकी पूजा 'कमल-पुहुप, मालूर-पत्र-फल' और अन्य सुगंधित सुमनों से करती हैं[३२]। अन्त में जब उनकी मनोकामना पूर्ण हो जाती है और श्रीकृष्ण को वे पति-रूप में प्राप्त कर लेती हैं, तब महादेव के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हुई वे सविनय निवेदन करती हैं कि तुम धन्य हो; तुम्हारी कृपा से ही हमारी मनोकामना पूर्ण हुई है[३३]। 'सारावली' में 'त्रिपुरारि' की पूजा स्वयं श्रीकृष्ण के करने की बात कही गयी है[३४]।

मनवांछित वर-प्राप्ति के लिए जिस प्रकार गो० तुलसीदास की जानकी 'भवानी' की पूजा और प्रार्थना करती हैं,[३५] वैसे ही सूरदास की रुक्मिणी 'गौरी' की

३०. पाऊँ कहाँ खिलावन कौ सुख, मैं दुखिया, दुख कोखि जरी।
जा सुख कौं सिव-गौरि मनाई, तिय-ब्रत नेम अनेक करी।
सूर स्याम पाए पैंड़े मैं, ज्यौं पावै निधि रंक परी—सा० १०-८०।

३१.क. गौरी-पति पूजतिं ब्रजनारि।
नेमधर्म सौं रहित क्रिया जुत, बहुत करतिं मनुहारि।
यहै कहतिं, पति देहु उमापति गिरिधर नंदकुमार—सा० ७६६।

ख. सिव सौं बिनय करतिं कुमारि।
जोरि कर, मुख करतिं अस्तुति, बड़े प्रभु त्रिपुरारि—सा० ७६७।

३२. कमल पुहुप मालूर-पत्र-फल नाना सुमन सुवास।
महादेव पूजतिं मन बच करि सूर स्याम की आस—सा० ७६६।

३३. सिवसंकर हमको फल दीन्हौ।
पुहुप, पान, नाना फल मेवा, षटरस अर्पन कीन्हौ।
पाइ परीं जुवतीं सब यह कहि, धन्य धन्य त्रिपुरारि।
तुरतहिं फल पूरन हम पायौ, नंद सुवन गिरिधारि—सा० ७६८।

३४. कहुँ पूजत त्रिपुरार—सारा० ६७८।

३५. 'रामचरित-मानस', बालकांड, दोहा २३५-३६।

विधिवत् पूजा करती और प्रसाद पाकर ही 'अंबिका-मंदिर' से बाहर आती हैं[३६]। नंददास की रुक्मिणी भी, विवाह के पूर्व, कुलरीति का पालन करने के लिए 'अंबिका' की पूजा करने जाती और विधिवत् अर्चना के पश्चात् प्रार्थना करती हैं कि देवि ! तुम सब प्रकार से समर्थ हो और अंतर्यामिनी होने के कारण मेरे हृदय की बात भी जानती हो। अतएव श्रीकृष्ण को पति-रूप में प्राप्त करने की मेरी मनोकामना पूर्ण कर दो[३७]। और देवि अंबिका उन पर प्रसन्न होकर श्रीमुख से गोविंदचंद्र को ही पति-रूप में पाने का आशीर्वाद देती हैं[३८]।

ए. *देवी की पूजा*—अष्टछापी कवियों में नंददास ने 'कात्यायनी' अर्थात् दुर्गा देवी की पूजा का वर्णन किया है। कृष्ण को पति-रूप में पाने की कामना रखनेवाली व्रजबालाएँ हिम ऋतु के प्रथम मास में ही अपने मनोरथ की पूर्ति के लिए 'कात्यायनी' की पूजा का संकल्प करती हैं। पहले वे मौन धारण कर यमुना में स्नान करती, फिर तट पर बालू की मूर्ति बनाकर उसे दिव्य वस्त्राभूषण पहनाती और चंदन, तंदुल, फूल आदि समर्पित करके उनके 'पाइनि' पड़ती हैं। तदनंतर, विनय करती हैं कि हे गौरि, ईश्वरी, महामाया, दया करके नंद-सुवन को ही हमारा पति बनाओ[३९]। व्रजबालाओं की पूजा से संतुष्ट होकर महामाया उनको मनोरथ

३६. रुकमिनि देवी-मंदिर आई।
धूप दीप पूजा सामग्री, अली संग सब ल्याई
× × ×
कुँवरि पूजि गौरी बिनती करी बर देउ जादवराई।
मैं पूजा कीन्हीं इहिं कारन, गौरी सुनि मुसुकाई।
पाइ प्रसाद अंबिका मंदिर, रुकमिनि बाहर आई—सा० ४१८१।

३७. बिधिवत् देवी अरचि-चरचि, बहु बंदन करिकै।
बिनती कीनी कुँवरि, गवरि-पद-पंकज धरिकै।
अहो देवि अंबिका, ईस्वरी ! तुम सब लाइक।
महामाइ, बरदाइ, सु संकर तुमरे नाइक।
तुम सब जिय की जानति, तुम सौं कहा दुराऊँ।
गोकुलचंद, गोबिंद, नंदनंदन पति पाऊँ—नंद०, रुक्मि०, पृ० १५१।

३८. ह्वै प्रसन्न अंबिका कहति, सुनि रुकमिनि सुंदरि।
पैहै अब गोबिंदचंद, जिय जिनि बिषाद करि—नंद०, रुक्मि०, पृ० १५१।

३९. नंददास, 'दशम स्कंध', पृ० २६७-६८।

पूर्ण होने का आशीर्वाद देती हैं; और गोपियाँ देवी से वर पाकर अत्यंत प्रफुल्लित होकर जल-विहार में मग्न हो जाती हैं;[४०] क्योंकि उन्हें कात्यायनी के आशीर्वाद में पूरी आस्था है। 'सारावली' में कृष्ण द्वारा भी दुर्गा देवी की पूजा किये जाने का उल्लेख मिलता है[४१]।

गोविंदस्वामी के एक पद में कदंब-बनदेवी-पूजन का उल्लेख हुआ है जो सबकी भाव-भक्ति स्वीकार करती हैं, किसी की 'बलि' नहीं चाहतीं और सबकी मनोकामना पूर्ण कर देती हैं[४२]।

ऐ. *गणपति और शारदा की पूजा*—गणपति और शारदा की विधिवत् पूजा का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में नहीं है। सूरदास के केवल एक पद में श्रीकृष्ण की छठी के अवसर पर 'सोहिलो' के आदि में 'गौरि' के साथ-साथ 'गनेस्वर' और 'देवि सारदा' की बिनती का उल्लेख भर हुआ है[४३]। 'सारावली' में श्रीकृष्ण प्रथम पुत्र के विवाह के अवसर पर गणेश की पूजा करते हैं[४४]।

ख *व्रत*—'व्रत' का उद्देश्य चाहे स्वास्थ्य की रक्षा हो, चाहे स्वर्ग की प्राप्ति, भारतीय समाज में इनका 'पालन' या 'निर्वाह' अब धार्मिक कृत्य के रूप में ही किया जाता है। यों तो 'व्रतों' की भी संख्या आज बहुत बढ़ गयी है, परंतु अष्टछाप-काव्य में केवल दो मुख्य व्रतों की चर्चा है—एक है 'चांद्रायण' और दूसरा है 'एकादशी' का व्रत। प्रथम अर्थात् 'चांद्रायण' व्रत[४५] के संबंध में किसी अष्टछापी

४०. बोली बचन देवि रस भारे, पूर्न मनोरथ होहुँ तुम्हारे।
कात्यायनि तैं यौं बर पाइ, बहुरि धँसी जमुना जल आइ।
—नंद०, दशम०, पृ० २६८।

४१. कहुँ इक दुर्गा देवि जानिकै जोरि बिप्र निज धाम।
करत होम बहु भाँति वेद-धुनि सब बिधि पूरन काम—सारा० ६७६।

४२. पूजन चलो हो कदंब बन देवी, आओ हमारे कोऊ संग।
भाव-भगति मानति सबहिनि की, बलि न काहु की कछु लेवी।
पुजवति सकल घोष की कामना, सीतल सुखद सरस सुर-सेवी—गोविं० २५७।

४३. गौरि गनेस्वर बीनऊँ (हो), देवी सादर तोहिं।
गावौं हरि कौ सोहिलौ (हो), मन-आखर दै मोहिं——सा० १०-४०।

४४. प्रथम पुत्र को ब्याह जानि कै पूजत कहूँ गनेस—सारा० ६८०।

४५. वाण ने जैन साधुओं द्वारा 'चांद्रायण' व्रत किये जाने का उल्लेख किया है।
—हर्ष०, सां० अध्य०, पृ० १०७।

कवि ने विस्तार से नहीं लिखा है[४६]। केवल सूरदास ने एक पद में सौ बार 'चंद्रायन' करने पर भी बिना भगवंत-भजन के यमदूतों से मुक्ति न मिलने की बात कही है[४७]।

'एकादशी' के व्रत का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में दो प्रसंगों में किया गया है। प्रथम प्रसंग है अंबरीष का जो एकादशी को निराहार व्रत करके द्वादशी को आहार लेता है[४८]। द्वितीय प्रसंग में नंद जी द्वारा किये गये 'एकादशी' के व्रत का अपेक्षाकृत विस्तृत वर्णन सूरदास ने किया है। 'एकादशी' को वे विधिवत् निराहार और निर्जल व्रत रखते हैं, सारे दिन केवल नारायण में ध्यान लगाते और रात्रि में जागरण करने का निश्चय करते हैं। 'दिवि' मंदिर में पाटंबर छाकर पुहुप-मालाओं से 'मंडली' बनायी जाती है, चंदन से देव-महल लिपाया जाता है, चौका देकर 'बैठकी' बनायी जाती है जिस पर शालग्राम को बैठाकर धूप-दीप-नैवेद्य चढ़ाया जाता है। पश्चात्, आरती करके नंद जी माथ नवाते हैं। इस प्रकार रात्रि के तीन पहर व्यतीत करके द्वादशी को 'पारन' करने के विचार से, नंद जी धोती, झारी आदि लेकर स्नान के लिए जमुना-तट जाते हैं[४९]। नंददास ने नंद जी के 'एकादशी' व्रत की चर्चा आधी पंक्ति में ही समाप्त कर दी है[५०]।

ग. *तीर्थ*—प्रमुख धार्मिक कृत्यों में 'तीर्थयात्रा' भी है जिससे सत्संग-लाभ के साथ-साथ विभिन्न महापुरुषों की लीलाभूमि के दर्शन से उनके असाधारण कृत्यों की ओर भी धर्मप्राण व्यक्ति का ध्यान जाता है। अष्टछाप-काव्य में जिन तीर्थों के नाम आये हैं, अकारक्रम से वे ये हैं—अयोध्या, कुरुक्षेत्र या कुरुमंडल, केदार, गया, गोकुल, द्वारका, नीमसार, प्रयाग, बानारस या 'बारानसी', मथुरा, वृन्दावन,

४६. 'चांद्रायण' व्रत महीने भर का होता है जिसमें चंद्रमा के घटने-बढ़ने के अनुसार भोजन और कौर घटाये-बढ़ाये जाते हैं—लेखिका।

४७. सहस बार जौ बेनी परसौ, 'चंद्रायन कीजै सौ बार'।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, जम के दूत खरे हैं द्वार—सा० २-३।

४८. एकादसी करैं निरहार। द्वादसि पोषै लै आहार—सा० ६-५।

४९. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद ९८४।

५०. परमानँद मूरति जो नंद, अरु घर मैं सुत सब सुख कंद।
सो एकादसि व्रत आचरै, हरि इच्छा बिन क्यौं अनुसरै।
—नंद०, दशम०, पृ० ३१८।

व्रज और 'हिवार'। इनमें 'अयोध्या' की महिमा का बखान करते हुए स्वयं श्रीराम ने श्रीमुख से कहा है कि इसकी तुलना में मैं सुरपुर में भी नहीं रहना चाहता और यदि विधाता के विधान में अंतर न पड़े तो मैं अयोध्या छोड़कर बैकुंठ भी न जाना चाहूँगा'[५१]।

'कुरुक्षेत्र' में श्रीकृष्ण ने, सूर्यग्रहण के अवसर पर, स्नान का बड़ा महत्व बताया है[५२]। परमानंददास ने भी कुरुमंडल में 'सूर्यग्रहण' के अवसर पर पाहुनों के मिलने की बात लिखी है[५३]। गया, बनारस और केदार तीर्थों के संबंध में सूरदास का मत है कि वहाँ किये गये अश्वमेध आदि यज्ञों का विशेष फल मिलता है[५४]। 'बनारस' या 'बारानसि' तीर्थ को उनके एक पद में 'मुक्ति-क्षेत्र' कहा गया है[५५]। 'नीमसार' या 'नैमिषारण्य' अनेक ऋषियों का वास-स्थान होने के कारण प्रसिद्ध तीर्थ रहा है[५६]। 'बेनी' या त्रिवेणी, प्रयाग का प्रसिद्ध तीर्थ है जहाँ स्नान बहुत फलदायक माना जाता है'[५७] और 'हिवार' हिमालय का कोई तीर्थ जान पड़ता है जहाँ तन 'गारने' का विशेष माहात्म्य बताया गया है[५८]।

शेष रहे गोकुल, द्वारका, मथुरा, वृन्दावन और व्रज नामक तीर्थ जिनका संबंध अष्टछापी कवियों के आराध्य की लीलाओं से है। जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है, मथुरा और द्वारका से संबंधित कृष्ण के ऐश्वर्य-रूप के प्रति अष्टछापी कवियों का वह आस्था-भाव नहीं था जो गोकुल-वृन्दावन के रस-रूप के प्रति था।

५१. 'सूरसागर', नवम स्कंध, पद १६५।
५२. बड़ौ परब रवि-ग्रहन, कहा कहौं तासु बड़ाई।
५३.क. जब रबि-ग्रहन भयो 'कुरुमंडल' तब सब कोउ आयो—परमा० काँक० ११६६।
  ख. सूरज पर्व भयो 'कुरुमंडल' सब कोउ आयो जात—परमा० काँक० ११६५।
  ग. चलौ सकल 'कुरुखेत', तहाँ मिलि न्हैयै जाई—सा० ४२६५।
५४. अस्वमेध जज्ञहु जो कीजै, 'गया, बनारस अरु केदार'—सा० २-३।
५५. बन 'बारानसि मुक्ति-क्षेत्र' है, चलि तोकौं दिखराऊँ—सा० १-३४०।
५६.क. सो पुनि 'नीमसार' मैं आयौ। तहाँ रिषिनि कौ दरसन पायौ—सा० १-२२८।
  ख. 'निमिषारन' आये बल जू जब सकल बिप्र सिर नायो—सा० ८२६।
५७.क. सहस बार जौ बेनी परसौ, 'चंद्रायन' कीजै सौ बार—सा० २-३।
  ख. 'तीरथराज प्रयाग' प्रकट भई जमुना बेनी संगे—परमा० ५८६।
५८. राम नाम-सरि तऊ न पूजै, जौ तनु गारौ जाइ 'हिवार—सा० २-३।

अतएव उन कवियों ने 'गोकुल', 'वृन्दावन' और 'व्रज' की ही महिमा का उपर्युक्त सभी तीर्थों से बढ़कर गान किया है। सूरदास ने 'वृन्दावन' को मनोरथ पूर्ण करने में 'कल्पवृक्ष' और 'कामधेनु' से बढ़कर बताया है[५९]। इसी से भक्त सूर सांसारिक 'डर' से 'वृन्दावन' नहीं छोड़ना चाहता[६०]। 'सारावली' में 'वृन्दावन' की महिमा का कारण कृष्ण का नित्य विहार-स्थल होना बताया गया है[६१]। सूरदास की चरम कामना 'वृन्दावन' की रेणु होकर सदैव वहीं वास करने की रही है[६२]। अष्टछाप के परमाराध्य श्रीकृष्ण को 'वृन्दावन' के प्रथम दर्शन से ही परम सुख होना कहा गया है[६३] और वे स्वयं भी इस बात को सखाओं से स्वीकारते हुए कहते हैं कि इसके सामने मैं बैकुंठ के सुख भी भूल जाता हूँ[६४]। 'वृन्दावन' में बजायी गयी श्रीकृष्ण की मुरली की ध्वनि सुनकर बैकुंठवासी नारायण अपनी शक्ति कमला से 'वृन्दावन' को 'धन्य' बताते हुए कहते हैं कि वहाँ का-सा सुख त्रैलोक्य में नहीं है[६५]।

परमानंददास ने 'वृन्दावन' को घनश्याम का नित्य विहार-स्थल बताया है[६६]। नंददास की सम्मति में, जिस 'वृन्दावन'-सी रेणु बैकुंठ में भी नहीं है[६७] उसका वर्णन

५९. धनि यह बृन्दाबन की रेनु।

× × ×

सूरदास यहाँ की सरवरि नहिं कल्पबृच्छ सुरधेनु—सा० ४९१।

६०.क. छाँड़ि न करत सूर सब भव-डर 'बृन्दाबन' सौं ठाम—सा० १-७६।

ख. बंसीबट, 'बृन्दाबन', जमुना तजि बैकुंठ न जावै—सा० २-६।

६१. जहँ 'बृन्दाबन' आदि अजिर जहँ कुंजलता बिस्तार।

'तहँ बिहरत प्रिय प्रीतम दोऊ' निगम भृङ्ग गुंजार—सारा० २।

६२. करहु मोहि ब्रज-रेनु 'देहु बृन्दाबन बासा'।

माँगौं यहै प्रसाद, और नहिं मेरे आसा—सा० वैं०, पृ० १५८।

६३. 'बृन्दाबन' देख्यौ नँद-नंदन, अतिहिं परम सुख पायौ—सा० ४१५।

६४. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद ४४९।

६५. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद १०६४।

६६. श्री घनस्याम मनोरथ मूरति करत बिहार नित्य बृन्दाबन।

—'परमा०, कीर्तन-संग्रह', भाग २, पृ० १७९।

६७. 'जो रज ब्रज बृन्दाबन माहीं, बैकुंठादि लोक में नाहीं।

—नंद०, पंचमंजरी, रूप०, पृ० २४०।

अनंत मुखों में अनंत रसना होने पर भी नहीं किया जा सकता[६८]। 'रासपंचाध्यायी' में नंददास ने 'वृन्दावन' को 'सकल सिद्धिदायक' कहा है[६९] जिसकी छवि का वर्णन हो ही नहीं सकता[७०]। 'सिद्धांत-पंचाध्यायी' में नंददास ने 'वृन्दावन' के 'छिन छिन घन छवि पाने' के साथ-साथ उसको नंदसुवन का नित्य-सदन बताया है[७१] जिसका दर्शन केवल अधिकारी जनों को ही हो सकता है[७२]।

'वृन्दावन' के संबंध में ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह सब 'ब्रज' की महिमा का ही वर्णन समझना चाहिए; अष्टछापी कवियों ने दोनों के माहात्म्य का बखान साथ-साथ किया भी है[७३]। 'बाल-वत्स-हरण'-प्रसंग में सूरदास के ब्रह्मा कभी तो 'वृन्दावन-रेनु' करने का वरदान माँगते हैं[७४] और कभी ब्रज-'बीथिनि' में बसने का[७५]। इससे भी उक्त कथन की पुष्टि होती है। वास्तव में वृन्दावन उस 'ब्रज' मंडल के अंतर्गत ही है जिसकी परिक्रमा द्वारा पाप नष्ट करने की बात स्वयं

६८. जो मुख होयँ अनंत सखि, रसना ताहि अनंत।
'बृन्दाबन गुन-कथन को तऊ न पहुँचे अंत—नंद०, पंच०, रूप०, पृ० २३८।

६९. अब सुंदर 'श्री बृन्दाबन' कौ गाइ सुनाऊँ।
सकल सिद्धि-दाइक नाइक पै सब बिधि पाऊँ—नंद०, रास०, पृ० १५७।

७०. 'श्री बृन्दाबन' चिद्‌घन कछु छबि बरनि न जाई—नंद०, रास०, पृ० १५७।

७१. 'श्री बृन्दाबन' चिद्‌घन, छन छन घन छबि पावै।
नंद-सुवन कौ नित्य-सदन, स्रुति-स्मृति जिहिं गावै—नंद०, सिद्धांत०, पृ० १८४।

७२. 'बिनु अधिकारी भये, नहिंन बृन्दाबन सूझै'।
रेनु कहाँ तैं सूझै, जब लगि बस्तु न बूझै—नंद०, रास०, पृ० १८२।

७३.क. 'बृन्दाबन ब्रज कौ महत कापै बरन्यौ जाइ'—सा० ४६२।
ख. करहु मोहिं ब्रज-रेनु देहु बृन्दाबन बासा—सा० ४६२।

७४.क. माधौ, मोहिं 'करौ बृन्दाबन-रेनु।
जिहिं चरननि डोलत नँदनंदन, दिन प्रति बन बन चारत धेनु—सा० ४८६।
ख. 'धनि यह बृन्दाबन की रेनु'।
नंदकिसोर चरावत गैयाँ, मुखहिं बजावत बेनु—सा० ४६१।

७५. 'ऐसैं बसिऐ ब्रज की बीथिनि'।
ग्वारनि के पनवारे चुनि-चुनि, उदर भरीजै सीथिनि।
पैंड़े के सब बृच्छ बिराजत, छाया परम पुनीतनि।
कुंज-कुंज-प्रति लोटि-लोटि, 'ब्रज-रज लागै रँग रीतिनि'—सा० ४६०।

श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा से कही है[७६]। सूरदास को 'व्रज'-जैसा सुख संसार में नहीं दिखायी देता[७७] तो परमानंददास भी इसीलिए बैकुंठ नहीं जाना चाहते कि नंद, यशोदा, गोपी, ग्वाल, गाय, यमुना, कदंब-कुंज आदि जो कुछ व्रज में है, वह वहाँ कुछ भी नहीं है[७८]। इसी प्रकार 'गोकुल' के लोगों को बड़भागी बताकर परमानंददास ने उसे भी व्रज के समकक्ष स्थान प्रदान किया है[७९]।

घ. *तीर्थस्नान*—यों तो स्नान का महत्व स्वास्थ्य के लिए सर्वविदित है, परंतु विशेष अवसरों पर विशेष नदी या तीर्थ में स्नान को भारतीय समाज धार्मिक कृत्य मानता है। यद्यपि रामायण-काल में ही गंगा, यमुना, तमसा, गोदावरी, सरयू, माल्यवती आदि सभी नदियों को भारतीय संस्कृति में दिव्य पद प्रदान किया गया था,[८०] तथापि गंगा का महत्व, जन-विश्वास के अनुसार, सर्वोपरि है; यहाँ तक कि उसे भगवान का ही स्वरूप बताया गया है[८१]। सूरदास ने गंगा में स्नान करनेवाले का हरिपुर जाना बताकर[८२] उक्त जन-विश्वास ही की पुष्टि की है। उन्होंने गंगा के जल को अमृत के समान बताया है जिसकी कामना नाग, नर, पशु, सभी करते

७६. श्री मुख बानी कही बिलँब अब नैंकु न लावहु।
'ब्रज परिकर्मा करहु देह कौ पाप नसावहु'—सा० ४९२।

७७. 'कहाँ सुख ब्रज कौ सौ संसार'।
कहाँ सुखद बंसीबट जमुना, यह मन सदा बिचार।
कहँ बन धाम, कहाँ राधा सँग कहाँ संग ब्रज बाम।
कहँ रस-रास बीच अंतर सुख, कहाँ नारि तन ताम।
कहाँ लता तरु-तरु प्रति बूझनि, कुंज-कुंज नवधाम।
कहाँ बिरह-सुख बिन गोपिनि सँग, सूर स्याम मन काम—सा० ३४१६।

७८. 'कहा करूँ बैकुंठहि जाय'।
जहाँ नहिं नँद जहाँ जसोदा, नहिं गोपी - ग्वाल नहिं गाय।
जहँ न जल जमुना को निरमल और नहीं कदमनि की छाय।
परमानँद प्रभु चतुर ग्वालिनी 'ब्रज-रज तजि मेरी जाय बलाय'—परमा० ८५१।

७९. श्री 'गोकुल के लोग बड़भागी'।
नित उठि कमलनयन-मुख निरखत चरन-कमल अनुरागी—परमा० ८४७।

८०. 'रामायण-कालीन संस्कृति', पृ० २५५।

८१. 'संप्रदाय प्रदीपालोक', अनु० श्री कंठमणि शास्त्री, पृ० ६२।

८२. 'गंग-प्रवाह' माहिं जो न्हाय। सो पवित्र ह्वै हरिपुर जाइ—सा० ९-९।

हैं[८३]। गंगा-जल के स्पर्श से यम-सेना को जीतने की क्षमता जीव में आ जाती है और उसका नाम लेने मात्र से सांसारिक कष्ट दूर हो जाते हैं[८४]। एक अन्य पद में सूरदास ने गंगा को 'मुक्ति की दाता',[८५] 'त्रिभुवन-हार'[८६] आदि बताया है। परमानंददास ने भी गंगा की महिमा का इसी प्रकार बखान किया है[८७]।

परंतु 'अष्टछाप' के आराध्य श्रीकृष्ण का संबंध जिस वृन्दावन से है वह यमुना के किनारे बसा है। इसलिए अष्टछापी कवियों ने गंगा से भी अधिक विस्तार से 'यमुना' की महिमा का गान किया है। सूरदास ने 'यमुना' में स्नान करनेवाले के पाप नष्ट होने और उसके सामने यमराज के भी हाथ जोड़े खड़े रहने की बात कही है[८८]। कृष्णदास यमुना को 'परम पुनीत' और 'जग-पावनी' कहकर[८९] उसको पाना 'सकल निधि' पाने के समान मानते हैं[९०] और 'यमुना' का नाम लेने से

८३. अमृत हूँ तैं अमल अति गुन, स्रवत निधि - आनंद।
परम सीतल जानि संकर, सिर धरयौ ढिग चंद।
नाग-नर-पसु सबनि चाह्यौ 'सुरसरी कौ बुंद'—सा० ६-१०।

८४. सोभित अंग तरंग 'त्रिसंगम', धरी धार अति पैनी।
जा परसैं 'जीतैं जमसैनी', जमन, कपालिक, जैनी।
एकै नाम लेत सब भाजैं, पीर सो भव-भय सैनी—सा० ६-११।

८५. 'अतिहिं पुनीत' बिष्नु पादोदक, महिमा निगम पढ़त गुनि चैन।
'परम पवित्र, मुक्ति की दाता', भागीरथहिं भव्य बर दैन—सा० ६-१२।

८६. 'त्रिभुवन हार सिंगार भगवती', सलिल चराचर जाके ऐन—सा० ६-१२।

८७.क. 'गंगा, तीन लोक उद्धारक'।
ब्रह्म कमंडल तें तुम प्रगटीं सकल बिस्व की तारक।
दरसन परसन पान किये तैं तुम कीने जीव कृतारथ—परमा० ५८४।

ख. गंगा पतितनि की सुख देनी।
सेवा करि भागीरथ लाये पाप काटन कों पेनी—परमा० ५८५।

ग. 'परमेस्वरी' देवी मुनि वंद्ये पवित्रे देवि गंगे।
बामन चरन-कमल-नख रंजित सीतल बारि तरंगे।
मज्जन-पान करत जे प्रानी त्रिबिध ताप दुख भंगे—परमा० ५८६।

८८. भक्त 'जमुने' सुगम अगम औरैं।
प्रात जो न्हात, अघ जात ताके सकल, ताहि जमहू रहत हाथ जोरैं—सा० १-२२२।

८९. नमो 'तरनि-तनया परम पुनीत जग पावनी'—कृष्ण०, सोम०, पृ० ८०।

९०. तुम जु पाये ते सकल निधि पावहीं—कृष्ण०, सोम०, पृ० ८१।

सभी पापों के दूर होने की बात कहते हैं[९१]। परमानंददास भी जमुना की महिमा गाते नहीं अघाते[९२]।

गंगा और जमुना के अतिरिक्त 'सारावली' में कुरुक्षेत्र, अयोध्या, मिथिला के साथ-साथ प्रयाग में त्रिवेणी-स्नान का भी महत्व बताया गया है तथा इन तीर्थों के अतिरिक्त 'सतरुद्र', चंद्रभागा और गंगा में भी स्नान करने की बात कही गयी है[९३]। कपिल मुनि के प्रसंग में उनका 'गंगासागर' में भी नहाना 'सारावली' में बताया गया है[९४]। 'सूरसागर' में सूर्य-ग्रहण[९५] के अवसर पर कुरुक्षेत्र तीर्थ में स्नान करने की महिमा का बखान स्वयं श्रीकृष्ण ने श्रीमुख से किया है[९६]।

९१. यमुना के नाम अघ दूर भाजे—कृष्ण०, सोम०, पृ० ८१।

९२.क. स्रम जल हरत न्हात अति रस भर जल क्रीड़ा सुखकारी—परमा० ५७६।

ख. अति मंजुल जल प्रवाह मनोहर सुख अवगाहत राजत अति तरनिनंदिनी।
स्याम बरन झलकत रूप लोल लहर बर अनूप सेवित संतत मनोज वायु मंदिनी।
—परमा० ५७७।

ग. श्री जमुना यह प्रसाद हौं पाऊँ।
तुम्हरे निकट रहौं निसिबासर रामकृष्न गुन गाऊँ।
मज्जन करूँ बिमल जल पावन चिंता कलह बहाऊँ।
तिहारी कृपा तें भानु की तनया हरि-पद प्रीति बढ़ाऊँ—परमा० ५७८।

घ. तू जमुना गोपालहिं भावै।
'जमुना जमुना' नाम उच्चारत धर्मराज तरकी न चलावै।
जो जमुना कौ दरसन पावै अरु जमुना जल पान करै।
सो प्रानी जमलोक न देखै चित्रगुप्त लेखौ न धरै।
जे जमुना को जान महातम बार बार परनाम करै।
ते जमुना अवगाहन मज्जन चिंता ताप तन के जु हरे—परमा० ५७९।

९३. सुभ कुरुछेत्र अजोध्या मिथिला प्राग त्रिबेनी न्हाये।
पुनि 'सतरुद्र और चंद्रभागा गंगा ब्यास' न्हवाये—सारा० ८२८।

९४. जल को रूप तुरत ह्वै गई वह हरि के रूप समाय।
चले मगन ह्वै ब्रह्मध्यान कर गंगासागर न्हाय—सारा० ५६।

९५. सूर्यग्रहण के अवसर पर 'बर्नियर' ने भी गंगा, सिंधु, यमुना आदि नदियों के साथ-साथ थानेश्वर के तालाब पर भी हिंदुओं के नहाने की बात लिखी है—'ट्रैविल्स इन दि मुगल इंपायर', पृ० ३०२।

९६. बड़ौ परब रबि-ग्रहन, कहा कहौं तासु बड़ाई।
चलौ सकल कुरुखेत, तहाँ मिलि न्हैयै जाई—सा० ४२७५।

ङ. *दान*—शुभ कार्यों अथवा पर्वोत्सवों में याचकों को प्रसन्नता से दिया जानेवाला 'दान' वस्तुतः धार्मिक कृत्य नहीं है जिसका वर्णन अष्टछाप-काव्य में हर्ष के सभी अवसरों पर, बड़े विस्तार से, किया गया है। इसी प्रकार किसी विपत्ति आदि से मुक्ति पाने पर दिया जानेवाला दान भी सामान्य कोटि का ही है; उदाहरणार्थ वरुणपाश से मुक्ति पाने पर यशोदा का नंद से दान देने को कहना[९७] कृतज्ञता-सूचक ही माना जायगा। अतएव धार्मिक कृत्य तो केवल वह 'दान' है जो पुण्यार्जन के उद्देश्य से दिया जाता है। ऐसे 'दान' का महत्व तीर्थ, व्रत आदि के समकक्ष बताया गया है जिसके न करने पर सुख की आशा करना व्यर्थ ही है[९८]। अष्टछापी कवियों ने धार्मिक कृत्य के अंतर्गत आनेवाले 'दान' की चर्चा अधिक नहीं की है।

च. *तप*—सामान्यतया साधकों में 'तप' के दो रूप प्रचलित रहे हैं। प्रथम का संबंध, पंचाग्नि में तपने-जैसी घोर कष्टदायी बातों से है और द्वितीय का अहिंसादि महाव्रतों का पालन करते हुए, भोग-सामग्रियों का परित्याग करके, संयम-नियम से जीवन बिताने से। अष्टछापी कवियों ने 'जरत-ज्वाला' कहकर प्रथम प्रकार के तप की ओर संकेत किया है[९९] और द्वितीय के बिना जीवन को व्यर्थ बताया है[३००]। उनकी गोपियाँ कृष्ण को पति-रूप में प्राप्त करने के लिए इसी प्रकार का तप करती हैं। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि ऐसे तप, व्रत आदि की साधना से 'पाषाण' तक द्रवित हो जाते हैं[१]। अतएव जिस प्रकार शिव की प्राप्ति के लिए पार्वती ने तप किया था,[२] वैसा ही घोर तप, शीत-घाम आदि के शारीरिक कष्टों की चिंता छोड़कर,

९७. अब तौ कुसल परी पुन्यनि तैं द्विजनि करौ कछु 'दान'—सा० ९८५।

९८. अब कैसैं पैयत सुख माँगे ?

× × ×

तीरथ-ब्रत कछुवै नहिं कीन्हौ, 'दान' दियौ नहिं जागे—सा० १-६१।

९९. जरत ज्वाला, गिरत गिरि तैं, स्व-कर काटत सीस—सा० १-१०६।

३००. बिरथा जन्म लियौ संसार।

जज्ञ, जप, तप नाहिं कीन्हौ, अल्प मति बिस्तार—सा० १-२९४।

१. जप, तप, ब्रत, संजम, साधन तैं, द्रवित होत पाषान—सा० ७६५।

२. कालिदास, 'कुमारसंभव', पंचम सर्ग, श्लो० २२ से २९।

वे छहों ऋतुओं में करती हैं[3]। इस प्रकार के तप के प्रति अष्टछापी कवियों की आस्था का प्रमाण यह है कि उन्होंने गोपियों की तप-साधना से उनकी मनोकामना का पूर्ण होना बड़े उल्लास से लिखा है। स्वयं उनके आराध्य गोपियों के तप से संतुष्ट होकर उनकी मनोकामना पूर्ण करने की योजना बनाते हैं[4]। केवल श्रीकृष्ण ही नहीं, देवी भी व्रजबालाओं के वर्ष भर के तप से संतुष्ट होकर 'बर' देती है[5]।

छ. *यज्ञ*—अष्टछाप-काव्य में चार प्रकार के 'यज्ञों' का उल्लेख हुआ हुआ है। प्रथम अश्वमेध[6] और राजसूय[7] - जैसे यज्ञ राजा-महाराजाओं के कृत्य हैं। द्वितीय वे यज्ञ हैं जिनमें पशुओं की बलि दी जाती है[8]। तीसरे प्रकार का यज्ञ उन ब्राह्मणों का धार्मिक कृत्य समझना चाहिए जिनके पास श्रीकृष्ण ने गोप बालकों को भोजन लेने भेजा था[9] और जिन्होंने 'यज्ञ की रसोई' पहले गोप बालकों को देना अस्वीकार कर दिया था[10]। चौथे प्रकार के यज्ञ संस्कारादि अवसरों पर किये जाते हैं जिनकी चर्चा उसी प्रसंग में पीछे की जा चुकी है। सूरदास के एक पद में यज्ञादि कृत्य न करना धर्महीनता कही गयी

३.क. सीत भीत न करतिं सुंदरि, कृस भईं सुकुमारि।
छहौं रितु तप करतिं नीकैं, गेह नेह बिसारि—सा० ७६७।
ख. अति तप करति घोषकुमारि।
× × ×
सरद ग्रीषम डरति नाहीं, करति तप तनु गारि—सा० ७८१।
ग. सीत-भीत नहिं करतिं छहौं रितु, त्रिबिधकाल जल खोरैं।
गौरीपति पूजतिं, तप साधतिं, करत रहतिं नित नेम।
भोग-रहित निसि जागि चतुर्दिसि, जसुमति-सुत कैं प्रेम—सा० ७८२।

४. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद ७८३।

५. यह ब्रत हित धरि देवी पूजी। है कछु मन अभिलाष न दूजी।
दीजै नंद - सुवन पति मेरैं। जौ पै होइ अनुग्रह तेरैं।
तब करि अनुग्रह बर दियौ, जब बरष जुवातिनि तप कियौ—सा० १०७२।

६. अस्वमेध जज्ञहु जौ कीजै, गया, बनारस अरु केदार—सा० २-३।

७. राजसूय मैं चरन पखारे स्याम लिये कर पानौ—सा० १-११।

८. हम तौ भईं जज्ञ के पसु ज्यौं, केतिक दुख सहियै—सा० ३२६३।

९. हरि कह्यौ, जज्ञ करत तहँ बाह्मन। जाहु उनहिं ढिग भोजन माँगन—सा० ८००।

१०. जज्ञ हेत हम करी रसोई। ग्वालनि पहिलैं देहिं न सोई—सा० ८००।

है[११]। 'सारावली' में स्वयं श्रीकृष्ण यज्ञ, होम आदि धार्मिक कृत्य करते बताये गये हैं[१२]।

ज. *श्राद्ध*—दो प्रकार के श्राद्धों की चर्चा अष्टछाप-काव्य में है। प्रथम प्रकार के 'नांदीमुख' आदि वे श्राद्ध हैं जो पुत्र-जन्मादि अवसरों पर किये जाते हैं; जैसा कि सूरदास ने नंद जी द्वारा किया जाना बताया है[१३]। दूसरे प्रकार का 'श्राद्ध' धार्मिक कृत्य है जिसका न किया जाना समाज की अधार्मिक स्थिति का परिचायक है[१४]। ऐसे श्राद्ध को 'सारावली' में 'धार्मिक कृत्य' कहा गया है जिसका संपादन करते और ब्राह्मणों को दक्षिणा देते स्वयं श्रीकृष्ण नारद को दिखायी देते हैं[१५]।

झ. *कथा-श्रवण*—अंतिम धार्मिक कृत्य है 'कथा-श्रवण'। 'सूरदास' ने 'भागवत' की कथा न सुनने पर जीवन को व्यर्थ ही बताया है[१६]। अपनी लिखी कुछ कथाओं के अंत में उन्होंने उनके सुनने से होनेवाला पुण्य भी बताया है। उदाहरणार्थ यमलार्जुन-उद्धार की लीला सुनने से, उनकी सम्मति में, समस्त ताप दूर हो जाते हैं;[१७] 'यज्ञपत्नी'-प्रसंग से हरि-भक्ति की प्राप्ति होती है;[१८] 'ज्योनार'-प्रसंग से भक्ति के साथ अभय पद मिलता है[१९]। इसी प्रकार नंददास ने कथा-श्रवण द्वारा कृष्ण का भी वश में हो जाना कहा है[२०]। अपने 'दशम स्कंध' के प्राय: सभी

११. जज्ञ, सराध न कोऊ करै। कोऊ धर्म न मन मैं धरै—सा० १-२६०।

१२. करत होम बहु भाँति वेद-धुनि सब बिधि पूरन काम—सारा० ६७६।

१३. तब न्हाइ नंद भए ठाढ़े, अरु कुस हाथ धरे।
नांदी मुख पितर पुजाइ, अंतर सोच हरे—सा० १०-२४।

१४. जज्ञ सराध न कोऊ करै। कोऊ धर्म न मन मैं धरै—सा० १-२६०।

१५. कतहूँ स्राद्ध करत पितरनि को तर्पन करि बहु भाँति।
कहुँ बिप्रनि को देत दच्छिना कहुँ भोजन की पाँति—सा० ६७२।

१६. नर तैं जनम पाइ कह कीनों ?
श्री भागवत सुनी नहिं स्रवननि, गुरु गोबिंद नहिं चीनौ—सा० १-६५।

१७. सूरदास यह लीला गावै। कहत सुनत सबकैं मन भावै।
जो हरि चरित ध्यान उर राखै। आनंद सदा दुखित-दुख नाखै—सा० ३९१।

१८. यह लीला सुनि गावै जोई। हरि की भक्ति सूर तिहिं होई—सा० ८००।

१९. यह ज्यौनार सुनै जो गावै। सो निज भक्ति अभै पद पावै—सा० १२१३।

२०. हो सज्जन-जन रसिक ! सरस मन कै यह सुनियै।

प्रमुख अध्यायों के श्रवण से होनेवाले लाभ उन्होंने बताये हैं[२१]। सूरदास ने एक पद में कहा है कि जहाँ हरि की कथा होती है वहाँ गंगा, जमुना, सिंधु, सरस्वती, गोदावरी, सभी नदियाँ आ जाती हैं और सभी तीर्थों का वहाँ 'बासा' हो जाता है। तात्पर्य यह कि सभी पुण्यसलिला नदियों में स्नान और सभी तीर्थों की यात्रा से जो धर्म-लाभ होता है, वह केवल हरि-कथा सुनने से सहज ही प्राप्त हो जाता है[३२२]।

समीक्षा—उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अष्टछाप-काव्य में, तत्कालीन जन-समाज में प्रचलित धर्म के सैद्धांतिक और व्यावहारिक, दोनों पक्षों के सम्बन्ध में विचार मिलते हैं। परंतु पुष्टिमार्गीय भक्त होने के कारण वे कवि ईश्वर के अनुग्रह-लाभ

सुनि-सुनि पुनि आनंद ह्वदै ह्वै नीके गुनियै।
सकल सास्त्र-सिद्धांत, परम एकांत, महारस।
जाके रंचक सुनत-सुनत, श्रीकृष्न होत बस—नंद०, रास०, पृ० १६५।

२१.क. नंद जथामति कै तथा, बरन्यौ प्रथम अध्याइ।
जाके रंचक सुनत सब, कर्म कषाय नसाइ—नंद०, दशम०, पृ० २०५।

ख. गर्भ स्तुति हरि अर्भ की, सुनै जु द्वितीय अध्याइ।
सो न परै फिरि गर्भ-मल, नर निर्मल ह्वै जाइ—नंद०, दशम०, पृ० २०६।

ग. इहि प्रकार पंचम अध्याइ, जो कोउ सुनै तनक मन लाइ।
दीपमान सो मुक्ति न गहै, और छुद्र सुख की को कहै—नंद०, दशम०, २२०।

घ. यह जु पूतना-चरित्र बिचित्र, छठे अध्याइ सु परम पवित्र।
जो इहि हित सौं सुनै सुनावै, सो गोबिंद बिषय-रति पावै—नंद०, दशम०, २२४।

ङ. 'नंद' जथामति कथित यह, दसम-दसम अध्याइ।
सुनै जु स्तुति-रंध्रन कोऊ, बंधन सब मिटि जाइ—नंद०, दशम०, पृ० २४२।

च. सुनै जु कोउ हरि-चरित, उनबिंसत अध्याइ।
पाप न परसै नंद तिहिं, पदमिनि-दल-जल-न्याइ—नंद०, दशम०, पृ० २८६।

छ. सुनै जो कोउ मन-क्रम-बचन, उनतीसौं अध्याइ।
ध्वंसनि कलि-मल-बंस कहुँ, नंद न अवर उपाइ—नंद०, दशम०, पृ० ३२७।

२२. हरि की कथा होइ जब जहाँ। गंगाहू चलि आवै तहाँ।
जमुना, सिंधु, सरस्वति आवै। गोदावरी बिलंब न लावै।
सब तीर्थनि कौ बासा तहाँ। सूर हरि कथा होवै जहाँ——सा० १-२२४।

को जितना महत्व देते हैं, उतना तीर्थयात्रा, तीर्थ-स्नान, यज्ञ, श्राद्ध आदि को नहीं देते। भक्ति की सैद्धांतिक बातों में भी वे ही उनको विशेष रुचिकर रही हैं जिनका सम्बन्ध भाव से अधिक है। सच तो यह है कि सरल और भावुक अष्टछापी कवि भाव की ही संपन्नता को भक्ति का सबसे बड़ा साधन मानते हैं जिस पर उनका आराध्य रीझ सकता है और इस दृष्टि से निस्संदेह उनका सन्देश अत्यंत उदार है।

---

९ दार्शनिक विचार

आत्मा, परमात्मा और प्रकृति के स्वरूप तथा संबंध का विवेचन, स्थूल रूप से, 'दर्शन' का प्रमुख प्रतिपाद्य है। सामान्यतया ऐसे विवेचन में सफलता मिलती है चिंतनशील व्यक्ति को और गद्य का माध्यम अपनाने पर उसका कार्य और भी सुगम हो जाता है। इसके विपरीत, अष्टछापी कवि भावुक भक्त थे और उनकी भावाभिव्यक्ति का माध्यम था गीतिकाव्य जिसमें किसी भी जटिल, दुर्बोध या नीरस प्रसंग के लिए अवकाश नहीं रहता। ऐसी स्थिति में यदि अष्टछाप-काव्य में 'दर्शन' के अंतर्गत आनेवाले प्रमुख विषयों, यथा—ब्रह्म, जीव, जगत और संसार, माया, मोक्ष, गोपी तथा रास—के संबंध में क्रमबद्ध विवेचन मिल जाता है तो उसके लिए हमें उनकी प्रतिभा की सराहना करते हुए उनका कृतज्ञ ही होना चाहिए।

१. *ब्रह्म—*

अष्टछापी कवियों ने श्रीकृष्ण को परब्रह्म माना है जो आदि, अनादि, अनुपम, अखंडित और रस-रूप हैं; अच्युत, अव्यक्त, अविनाशी और अनंत हैं[1]। यह रस-रूप परब्रह्म अपनी इच्छा से ही सृष्टि के विविध तत्वों को और उनसे चौदहों लोकों को उत्पन्न करता है। इस प्रकार परब्रह्म ही इस सृष्टि का निमित्त और उपादान-कारण है एवं अपने विराट रूप में चौदहों लोकों में व्याप्त है[2]। 'सूरसागर' में

१.क. अबिगत अबिनासी पुरुषोत्तम—सा० १-२६६।
ख. आदि सनातन, हरि अविनासी। सदा निरंतर घट-घट बासी।
पूरन ब्रह्म, पुरान बखानैं। चतुरानन, सिव, अंत न जानैं—सा० १०-३।
ग. अबिगत आदि अनन्त अनूपम अलख पुरुष अबिनासी।
पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक बिलासी—सारा० १।
घ. सदा एक रस एक अखंडित आदि अनादि अनूप—सारा० १०६६।
ङ. सब घट अंतरजामी स्वामी परम एक रस।
नित्य आत्मानंद, अखंड सरूप उदारा—नंद०, सिद्धांत०, पृ० १६१।
२.क. तिन प्रथमहिं महतत्व उपायौ। तातैं अहंकार प्रगटायौ।
अहंकार कियौ तीनि प्रकार। सत तैं मन सुर सातऽरुचार।
रजगुन तैं इंद्रिय बिस्तारी। तमगुन तैं तन्मात्रा सारी।

'अलख' रूप के वर्णन की असमर्थता का प्रसंग उठाकर स्वयं हरि के मन में सबको अपना स्वरूप लखाने का विचार आना कहा गया है। पश्चात्, उन्होंने तीनों लोकों का विस्तार करके जिस ज्योति का प्रकाश फैलाया, वही आज घर-घर में दिखायी देती है[३]। अष्टछापी कवि परब्रह्म के निर्गुण और सगुण, दोनों रूपों को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार 'निर्गुण' ब्रह्म मनसा, वाचा और कर्म से अगोचर,[४] गुण बिना गुणी और रूप-रहित होकर भी स्वरूपवाला है[५]। परब्रह्म के विराट

× × ×

चौदह लोक भए ता माँहिं। ज्ञानी ताहिं बिराट कहाहिं—सा० ३-१३।

ख. कारन करन दयालु दयानिधि—सा० १-११७।

ग. खेलत खेलत चित में आई सृष्टि करन बिस्तार—सारा० ५।

घ. आनंद की निधि नंदकुमार।
प्रगट ब्रह्म नर भेष नराकृत जगमोहन लीला अवतार—परमा० २६।

ङ. तन्नमामि पद परम गुरु, कृष्न कमल दल नैन।
जग-कारन, करुनार्नव, गोकुल जिनकौ ऐन—नंद०, मान०, पृ० ६१।

च. जु प्रभु जोति-मय, जगत-मय, कारन, करन अभेव।
बिघन-हरन, सब सुभ-करन, नमो नमो तिहि देव—नंद, अनेकार्थ०, पृ० ६८।

छ. अखिल, अंड-व्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी—नंद०, रास०, पृ० १५८।

ज. परम पुरुष सब ही के कारन, प्रतिपारन, तारन, संघारन।
व्यक्त-अव्यक्त जु बिस्व अनूप, बेद बदत प्रभु तुम्हरौ रूप।
तुम सब भूतन कौ बिस्तार, देह, प्रान, इंद्री, अहँकार।
काल तुम्हारी लीला श्रीधर, तुम ब्यापी, तुम अब्यय ईश्वर।
तुमहीं प्रकृति, पुरुष, महतत्व, धर, अंबर, आडंबर सत्व।
—नंद०, दशम०, पृ० २४१।

३. अलख रूप कछु कह्यौ न जाई। देवनि कछु बेदोक्त बताई।
हरि जू कैं हिरदै यह आई। देउँ सबनि यह रूप दिखाई।
तीन लोक हरि करि बिस्तार। अपनी जोति कियौ उजियार।
जैसैं कोऊ गेह सँवारि। दीपक बारि करै उजियार।
त्यौं हरि जोति अपनी प्रगटाई। घट घट में सोई दरसाई।
तीनिहु लोक सगुन तन जानौ। जोति सरूप आतमा मानौ—सा० ४३००।

४. ब्रह्म अगोचर मन-बानी तैं, अगम अनंत प्रभाव—सा० २-३४।

५. मनसा-बाचा-कर्म अगोचर सो मूरति नहिं नैन धरी।
गुन बिन गुनी, सुरूप रूप बिन, नाम बिना श्री स्याम हरी—सा० १-११५।

रूप[६] और उसकी आरती का वर्णन भी उन्होंने किया है[७]।

अष्टछापी कवियों के अनुसार वेद, उपनिषद आदि में जिस ब्रह्म को 'निर्गुण' और मन-बानी से अगम-अगोचर कहा गया है अथवा जिसके संबंध में 'नेति' कहकर अपनी बुद्धि या समझ की परिमिति स्वीकार की गयी है, वही भक्तों के वश होकर, उनकी इच्छा की पूर्ति के लिए या रक्षा करने के उद्देश्य से सगुण-रूप में अवतार लेता है[८]। सूरदास की सम्मति में जब सगुण ब्रह्म के अद्भुत चरित्र ही समझ में नहीं आते, तब उसके 'निर्गुण' रूप को कैसे देखा-समझा जा सकता है[९] ?

६. नैननि निरखि स्याम-स्वरूप।
रह्यौ घट-घट व्यापि सोई, जोति-रूप अनूप।
चरन सप्त पताल जाके, सीस है आकास।
सूर-चन्द्र-नछत्र-पावक सर्व तासु प्रकास—सा० २-२७।

७. 'सूरसागर', द्वितीय स्कंध, पद २८।

८.क. बेद-उपनिषद जासु कौं, निरगुनहिं बतावैं।
सोइ सगुन ह्वै नंद की दाँवरी बँधावैं—सा० १-४।

ख. भक्त-बछल भगवान, धरे तन भक्तनि कैं बस।
अज, अबिनासी, अमर प्रभु, जनमै मरै न सोइ।
नट-वत करत कला सकल, बूझै बिरला कोइ—सा० २-३६।

ग. पहिलै हौं ही हो तब एक।
अमल, अकल, अज, भेद-बिबर्जित सुनि बिधि बिमल बिबेक—सा० २-३८।

घ. अलख निरंजन निराकार अच्युत अबिनासी।
सेवत जाहि महेस सेस, सुर माया दासी।
धर्म - स्थापन हेत पुनि, धारयौ नर औतार—सा० ४२१०।

ङ. तुम्हैं बेद ब्रह्मन्य बखानत। तातैं हमरी अस्तुति ठानत।
हम सेवक तुम जगत अधार। नमो नमो तुम्हैं बारंबार।
तुम परब्रह्म जगत करतार। नर-तनु धरयौ हरन भुव-भार—सा० ४२९८।

च. मोहन नन्दराय कुमार।
प्रकट ब्रह्म निकुंज नायक भक्त हित अवतार।
× × ×
दास परमानन्द प्रभु हरि 'निगम बोलत नेत'—परमा० ५७।

छ. निर्गुन ब्रह्म सगुन धरि लीला ताहिऽब सुत करि माने—परमा० हस्त० १७।

९. अद्भुत सगुन चरित्र तुम्हारे। जे करि कै भू-भार उतारे।
तिनकौ समुझि सकत नहिं कोइ। निरगुन रूप लखै क्यौं सोइ—सा० ४३००।

श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व स्वीकार करते हुए उनसे ही नारद ने, 'सूरसागर' में, कहा है कि तुम अज हो, अनंत हो और, तुम्हारे समान तुम्हीं होने के कारण, अनुपम भी हो[१०]। जरासंध के बंदीगृह से छूटे हुए राजा, कृष्ण को 'माता', 'पिता', 'सहोदर', 'बंधु', यहाँ तक कि, 'जगद्गुरु' भी कहते हैं[११]। सूरदास के कृष्ण 'दानलीला-प्रसंग' में 'भक्त-हेत' विचारकर और 'दीन-गुहारि सुनकर' अवतार धरने की बात कहते और 'ब्रह्म से कीट' तक अपनी व्यापकता बताते हैं[१२]। 'सूरसागर' के एक पद में अपना परब्रह्मत्व घोषित करते हुए वे स्वयं कहते हैं कि मैं सर्वव्यापक हूँ, वेद मेरा ही यश गाते हैं, मैं ही कर्ता हूँ और मैं ही भोक्ता[१३]। ब्रह्मा, विष्णु और शिव मुझ परब्रह्म की ही शक्तियाँ हैं। दक्ष-प्रजापति के प्रसंग में यज्ञ पुरुष-रूपधारी परब्रह्म[१४] और 'दान-लीला'-प्रसंग में कुंभनदास के कृष्ण भी यही स्वीकार करते हैं[१५]।

परब्रह्म के दो अवतार प्रमुख हैं—एक, राम का और दूसरा, कृष्ण का। डा० गुप्त के अनुसार, 'राम का अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम का है और कृष्ण का अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम और पुष्टि-पुरुषोत्तम रसेश, दोनों का है। ब्रह्म का विष्णु-रूप वेद-मर्यादा की रक्षा तथा सात्विक धर्म के संस्थापन के लिए समय-समय

१०. तब नारद कर जोरि कह्यौ, तुम अज अनंत हरि।
तुमसे तुम्हईं ईस नहीं द्वितीया कोउ तुम सरि—सा० ४२१०।

११. तुम माता तुम पिता जगत गुरु, तुमहिं सहोदर बंधु हरे—सा० ४२१८।

१२. भक्त-हेत अवतार धरौं।
कर्म धर्म कैं बस मैं नाहीं, जोग जज्ञ मन मैं न करौं।
दीन-गुहारि सुनौं स्रवननि भरि, गर्व बचन सुनि हृदय जरौं।
भाव अधीन रहौं सबहीं कैं, और न काहू नैंकु डरौं।
ब्रह्म कीट आदि लौं व्यापक, सबकौं सुख दै दुखहिं हरौं—सा० १५२२।

१३. मैं व्यापक सब जगत, बेद चारौ मोहिं गायौ।
मैं करता मैं भोगता, मो बिनु और न कोइ।
× × ×
मैं करता मैं भोगता, नहिं यामैं कछु संदेह—सा० ४२१०।

१४.क. बिष्नु, रुद्र, बिधि एकहिं रूप। इन्हैं जानि मति भिन्न स्वरूप—सा० ४-५।
ख. जब प्रभु प्रगट दरसन दिखायौ।
बिष्नु-बिधि-रुद्र मम रूप ये तीनहूँ, दच्छ सौं बचन यह कहि सुनायौ—सा० ४-६।

१५. सिव, बिरंचि, सनकादि निगम मेरौ अंत न पावैं—कुंभन० २३।

पर अवतार लेता है। धर्म-संस्थापन के लिए भगवान का जो अवतार होता है वह चतुर्व्यूहात्मक है। संसार को केवल आनन्द देने के लिए जो अवतार होता है वह उनका रस-रूप है। कृष्णावतार में श्रीकृष्ण ने अपने दोनों रूपों से चतुर्व्यूहात्मक तथा रसात्मक, अवतार लिया था। विष्णु-अवतार देवकीनंदन-रूप से उन्होंने लोक-रक्षा और धर्म की संस्थापना की। वासुदेव-रूप मोक्षदाता है, संकर्षण-रूप दुष्टों का संहारकारी है, प्रद्युम्न-रूप सृष्टि का रक्षक, काम और गृहस्थ-रूप है तथा अनिरुद्ध-रूप धर्म-रक्षक और धर्मोपदेशक है। अपने रसात्मक रूप से कृष्ण ने अनेक रसात्मक तथा लोक-रंजनकारी लीलाएँ कीं। इस प्रकार श्रीकृष्ण के अवतार-रूप में दो रूप वल्लभ-सम्प्रदाय में मान्य हैं—एक, लोक-वेद प्रथित पुरुषोत्तम और दूसरा, लोक-वेदातीत पुरुषोत्तम। मथुरा, द्वारका तथा कुरुक्षेत्र में लीला करनेवाले तथा व्रज में दुष्टों का संहार करनेवाले कृष्ण का रूप लोक-वेद-प्रथित धर्म-संस्थापक वेद-रक्षक-रूप है तथा बाल-रूप से यशोदा और नन्द को मोहनेवाले, वृन्दावन में ग्वाल-बालों के साथ गाएँ चरानेवाले तथा वृन्दा विपिन में गोपियों के साथ रास करनेवाले कृष्ण का रूप रसात्मक है। देवकीनन्दन वासुदेव धर्म-रक्षक रूप हैं और यशोदा और नन्द-नन्दन रस-रूप हैं'[१६]।

अष्टछापी कवि कृष्ण के रस या आनंद-रूप के उपासक थे। सूरदास की गोपियाँ ऊधव से स्पष्ट शब्दों में कहती हैं कि हम सब गोपाल की उपासिका हैं; वे हमें तज गये हैं, फिर भी उनके चरणों में ही हमारी प्रीति है। समझ में नहीं आता कि हमारे किस अपराध से वे योग का संदेश देकर हमको 'प्रेम-भक्ति' की ओर से उदासीन करना चाहते हैं; परंतु हममें से कोई भी उनकी विरहिणी प्रेमिका ऐसी नहीं है जो उनको छोड़ कर कभी मुक्ति की कामना करेगी[१७]। परमानंददास ने

१६. डा० दीनदयालु गुप्त, 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय', भाग २, पृ० ४०४।

१७. गोकुल सब गोपाल उपासी।

× × ×

जद्यपि हरि हम तजीं अनाथ करि तऊ रहति चरननि रस-राती।

× × ×

किहिं अपराध जोग लिखि पठवत प्रेम-भक्ति तें करत उदासी।
सूर स्याम सो कौन बिरहिनी माँगि मुक्ति छाँड़ै गुनरासी—सा० वें०, पृ० ५४७।

केवल कृष्ण को ही नहीं, नंद, यशोदा, गोपी, ग्वाल, गाय के साथ-साथ 'गोकुल' को भी आनंद-स्वरूप कहा है और उनका ध्यान, उनकी भक्ति या उपासना करनेवाले सुर, मुनि, संत आदि भी सदैव आनंदित रहते हैं[१८]। इसी प्रकार, एक दूसरे पद में, उन्होंने नँदनंदन को 'रसिक-शिरोमणि' कहकर उनके नेत्र, चितवनि, बात, गान, मिलन, वेणु, सभी में 'रस' बताया है[१९]। नंददास ने अपने आराध्य को 'रसमय', 'रसकारण' और 'रसिक' बताकर कहा है कि संसार के समस्त रस के आधार तुम्हीं हो। जगत का सारा रूप, प्रेम और रस तुम्हारा ही है[२०]। कृष्णदास ने रस-रूप श्रीकृष्ण की प्रिया राधिका को परम 'रसिकिनी' कहकर दोनों के अंगों को 'रसमय' बताया है[२१]।

१८. आनन्द की निधि नंदकुमार।
× × ×
स्रवननि आनँद, लोचन आनँद, मन में आनँद आनँद-मूरति।
गोकुल आनँद, गाइनि आनँद, नंद जसोदा आनँद पूरति।
सब दिन आनँद, धेनु चरावन बेनु बजावन आनँदकंद।
खेलत हँसत कुतूहल आनँद राधापति बृन्दाबन चंद।
सुक मुनि आनँद, भक्तनि आनँद, निसि दिन आनंद बिलास—परमा० २६।

१९. रसिक-सिरोमनि नँदनंदन।
रसमय रूप अनूप बिराजत गोप बधू उरु सीतल चंदन।
नैननि में रस चितवनि में रस बातनि में रस ठगत मनुज पसु।
गावनि में रस, मिलवनि में रस, बेनु मधुर रस प्रगट पावन जसु—परमा० ४५६।

२०. नमो नमो आनंदघन, सुंदर नंदकुमार।
रसमय, रस-कारन, रसिक, जग जाके आधार।
है जु कछुक रस इहि संसार, ताकौ प्रभु तुमहीं आधार।
ज्यौं अनेक सरिता जल बहै, आनि सबै सागर मैं रहै।
जग मैं कोउ कवि बरनौ काही, सो जस-रस सब तुम्हरौ आही।
ज्यौं जलनिधि तैं जलधर जल लैं, बरखैं, हरखैं अपने कर लैं।
अग्नि तैं अनगन दीपक बरैं, बहुरि आनि सब तामैं ररैं।
ऐसैं ही रूप प्रेम रस जो है, तुमतैं है तुमहीं करि सोहै।
रूप-प्रेम-आनंद रस, जो कछु जग मैं आहि।
सो सब गिरिधर देव कौ, निधरक बरनौं ताहि—नंद०, रस०, पृ० ३६।

२१. रसिकिनी राधा रस-भीनी।
मोहन रसिक लाल गिरिधर पिय, अपनि कंठमनि कीनी।

कुंभनदास[२२] जहाँ कृष्ण को 'रसिक' कहते हैं, वहाँ गोविंदस्वामी उनके साथ[२३] राधा की जोड़ी को भी 'सरस' बताते हैं[२४]। चतुर्भुजदास ने रसिक-प्रवर गोपाल की प्रकृति बताते हुए स्पष्ट कहा है कि वे 'रस' से ही रीझते हैं; राधा ने भी उन्हें 'रस' से ही वश में किया है[२५]।

मथुरा और द्वारका के ऐश्वर्य-रूप कृष्ण के प्रति अष्टछापी कवियों की गोपियों में प्रीति की वह भावना नहीं है जो रस-रूप के प्रति है। यही कारण है कि 'सूरदास' की विरहिणी गोपियाँ पथिक के साथ द्वारका नहीं जाना चाहतीं, क्योंकि वे जानती हैं कि वहाँ उन्हें न तो निकुंज-लीलाकारी रसिकप्रवर के दर्शन होंगे और न मुरलीधारी किशोर कृष्ण के ही[२६]। अन्य अष्टछापी कवियों ने भी व्रज के लीला-

रसमय अंग अंग रस रसमय, रसिक रसिकता चीन्हीं।
उभय स्वरूप कीरति न्योछावरि, कृष्नदास को दीनी—कृष्ण० हस्त० ५६।

२२.क. रसिक रास सुख-बिलास, तरनि-तनया तीर रच्यौ नंदलाल संग कोटि कामिनी।
—कुंभन० ४५।

ख. गाऊँ साँवल-सुजसु-रस नैंकु सुस्वाद रस, परम हरषित नित चँवर कर टारौं
—कुंभन० १६१।

२३.क. कहि न परे हो रसिक कुँवर की कुँवराई—गोविं० ४२८।

ख. रसिक-सिरोमनि राग कल्यान गावै—गोविं० ४२४।

२४. जहाँ रसिक गिरिधर सब्द उघटत ग्र ग्र थुंग थुंग गति थोरी।
गोविंद प्रभु बनी नवल नागरी राधा स्याम सरस जोरी—गोविं० ६३।

२५. रस ही में बस कीन्हे कुँवर कन्हाई।
रसिक गोपाल रसिक रस रिझवति रसही में तासों रिस तजि री माई।
प्रिय कौ प्रेम रिस सों न होइ रसीली राधे! रस ही में बचन स्रवन सुखदाई।
चत्रुभुज प्रभु गिरिधर रस बस भए तासों कुरस कत, मिलि रहै हिरदै लपटाई।
—चतु० २६६।

२६. हौ कैसैं के दरसन पाऊँ।
सुनहु पथिक उहिं देस द्वारिका जौ तुम्हरैं सँग जाऊँ।
× × ×
अब बन बसि निसि कुंज रसिक बिनु कौनैं दसा सुनाऊँ।
स्रम कै सूर जाउँ प्रभु पासहिं, मन मैं भलैं मनाऊँ।
नव किसोर मुख मुरलि बिना इन नैननि कहा दिखाऊँ—सा० ४२५५।

धारी आनंद-रूप श्रीकृष्ण को ही अपना परमाराध्य या इष्टदेव घोषित किया है[२७]। मुरली, मोरपखौवा, घुँघुँचिनि-हार आदि धारण करके धेनु के पीछे-पीछे चलनेवाले, रेणु-मंडित शरीरवाले और रात-दिन सखाओं के साथ खेलते रहनेवाले श्रीकृष्ण के अतिरिक्त उनको कहीं सुख नहीं मिलता[२८]।

अष्टछापी कवियों के ब्रह्म-संबंधी कुछ विचार 'पौराणिक विश्वास' के अंतर्गत पीछे भी दिये जा चुके हैं[२९]।

२. *जीव—*

अष्टछापी कवियों ने 'जीव' की उत्पत्ति ईश्वर के अंश से और उसी की इच्छा से मानी है। सूरदास के परब्रह्म स्वयं ही कहते हैं कि सर्वप्रथम अकेला मैं ही अमल, अकल, अज, भेद-विवर्जित रूप में था। पश्चात्, मैं ही अनेक भाँति के जीवों की उत्पत्ति करके नाना रूपों में सुशोभित हुआ[३०]। नंददास ने समस्त व्यक्त-अव्यक्त

२७.क. जहिं जहिं चरन कमल माधौ के तहीं तहीं मन मोर।

× × ×

इष्टदेवता सब बिधि मेरे जे माखन के चोर—परमा० ८४६।

ख. जयति बृन्दा बिपिन-भूमि डोलनि अखिल लोक-बंदिनि अंबुरूह चरने।
तरनि-तनया-बिहार नंद-गोप-कुमार, दास कुंभन नवय तवसि सरने।
—कुंभन० १।

ग. मोहनलाल गोवर्धन-धारी कृष्नदास प्रभु आनँद कंदहिं—कृष्ण० हस्त० १०४।

घ. एकहि आँक जपै गोपाल।

× × ×

गह्यौ नेमु तिनु तोरि जबै हँसि चितए नैन बिसाल।
चत्रुभुजदास अटल भए उर घट परसे गिरिधरलाल—चतु० २३५।

ङ. मेरी अँखियनि देख्यौ गिरिधर भावै—छीत० ११०।

२८. हरि जू वै सुख बहुरि कहाँ।
जदपि नैन निरखत वह मूरति, फिरि मन जात तहाँ।
मुख मुरली सिर मोर-पखौवा गर घुँघुचिनि कौ हार।
आगैं धेनु रेनु तन मंडित, तिरछी चितवनि चारु।
राति दिवस सब सखा लिए सँग, हँसि मिलि खेलत खात—सा० ४२८६।

२९. देखिए इस 'प्रबंध' के पृष्ठ ३५६ से ३७४।

३०.क. पहिलैं हौं ही हो तब एक।

विश्व और समस्त जीवों को परम पुरुष का रूप और विस्तार कहा है और प्रकृति, पुरुष, धर, अंबर, जीवन, जीव, सभी में उसे ही व्याप्त बताया है[३१]। उनके अनुसार, परब्रह्म से सबकी उत्पत्ति, उसी प्रकार होती है जिस प्रकार अग्नि से चिनगारियों की[३२] जिसका स्पष्ट संकेत यह है कि जीव में भी, अग्नि की चिनगारी के समान, अपने परम मूल के सभी गुण विद्यमान रहते हैं। नंददास का यह कथन, महाप्रभु के विचार से[३३] प्रभावित होते हुए भी, बहुत सार्थक है। इस प्रकार सभी जीवों में परब्रह्म की ही समान शक्ति होना अष्टछापी कवि मानते हैं[३४]। यह शक्ति सब जीवों में उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार ऊख में रस[३५] अथवा सूर्य की प्रभा का अगणित घटों में होना[३६] सर्वविदित है।

अमल, अकल, अज भेद बिबर्जित सुनि बिधि बिमल बिबेक।
सो हौं एक अनेक भाँति करि, सोभित नाना भेष—सा० २-३८।

ख. थावर-जंगम मैं मोहिं जानै—सा० ३-१३।

ग. रह्यौ घट-घट ब्यापि सोई, जोति रूप अनूप—सा० २-२७।

३१. परम पुरुष सब ही के कारन, प्रतिपारन, तारन, संघारन।
ब्यक्त-अब्यक्त जु बिस्व अनूप बेद बदत प्रभु तुम्हरौ रूप।
तुम सब भूतन कौ बिस्तार, देह, प्रान, इंद्री अहँकार।
काल तुम्हारी लीला श्रीधर, तुम ब्यापी, तुम अब्यय ईश्वर।
तुमहीं प्रकृति, पुरुष, महतत्व, धर, अंबर, आडंबर, सत्व।
तुमहीं जीवन, तुमहीं जीव, सब ठाँ तुम, कोउ अवर न बीय।
—नंद०, दशम०, पृ० २४१।

३२. तुम तैं हम सब उपजत ऐसैं, अगिनि तैं बिस्फुलिंग गन जैसैं।
—नंद०, दशम०, पृ० २०८।

३३.क. 'तत्व-दीप-निबंध', शास्त्रार्थ प्रकरण, श्लोक० ३२।

ख. 'अणुभाष्य', अध्याय २, पाद २, सूत्र ४३, पृ० ७५२।

३४. अभिद अछेद रूप मम जान। जो सब घट है एक समान।

× × ×

करत इंद्रिनिनि चेतन जोइ। मम स्वरूप जानो तुम सोइ—सा० ३-१३।

३५. हरि-स्वरूप सब घट यौं जान्यौ। ऊख माहिं ज्यौं रस है सान्यौ।
खोई तन, रस आतम सार। ऐसी बिधि जान्यौ निरधार—सा० ३१३।

३६. चेतन घट-घट है या भाइ। ज्यौं घट-घट रवि-प्रभा लखाइ।
घट उपजै, बहुरौ नसि जाइ। रवि नित रहै एकहीं भाइ—सा० ३-१३।

परब्रह्म का चेतन अंश होने पर भी जीव 'सत्स्वरूप' को भूल जाता है, ठीक वैसे ही जैसे मृग अपनी ही नाभि की कस्तूरी को नहीं जान पाता[३७]। अष्टछापी कवियों ने इसका कारण जीव का ही भ्रम या अज्ञान बताया है जिसके फलस्वरूप वह देहधर्म को प्रधान समझने लगता है। यही तथ्य राजा रहूगण को समझाते हुए सूरदास के जड़भरत कहते हैं कि सुख-दुख, संपत्ति-विपत्ति का भाव देह के साथ ही है, ब्रह्म के अंश जीव के साथ नहीं। क्षय और नाश भी देह के ही धर्म हैं; 'चेतन' तो नित्य और अनश्वर है[३८]। अज्ञानी व्यक्ति यह रहस्य न समझ कर विविध कर्म करके अनेक दुख भोगता[३९] और विविध तन पाकर उन्हीं के सुख-दुख में भूला रहता है[४०]। इन्द्रिय-सुख की कामना से विषय-वासनाओं में फँसे ऐसे व्यक्ति की तुलना सूरदास ने मरु-जल के पीछे विकल होकर भागते प्यासे मृग से और सुस्वादु फल की आशा लगाये, सेमर के फूल के निकट बैठे, शुक से की है। ऐन्द्रिक और सांसारिक सुख-लोभ से ही जीव को, कपि की तरह, बंधन में पड़कर द्वार-द्वार नाचना पड़ता है[४१]। ज्ञानी इस रहस्य को समझता है और तन के भेद को महत्व न देकर

३७.क. रे मन, आपु कौं पहिचानि।
सब जनम तैं भ्रमत खोयौ, अजहुँ तौ कछु जानि।
ज्यौं मृगा कस्तूरी भूलै, सु तौ ताकैं पास।
भ्रमत हीं वह दौरि ढूँढ़ै, जबहिं पावै बास—सा० १-७०।

ख. जौ लौं सत-सरूप नहिं सूझत।
तौलौं मृग मद नाभि बिसारे, फिरत सकल बन बूझत—सा० २-२५।

३८.क. संपति बिपति, बिपति तैं संपति, देह कौ यहै सुभाइ।
तरुवर फूलै, फरै, पतझरै, अपने कालहिं पाइ—सा० १-२६५।

ख. तन स्थूल अरु दूबर होइ। परमातम कौं ये नहिं दोइ।
तनु मिथ्या, छनभंगुर जानौ। चेतन जीव, सदा थिर मानौ।
जिय कौं सुख-दुख तन सँग होइ। जौ बिचरै तन कैं सँग सोइ।
देहऽभिमानी जीवहिं जानै। ज्ञानी तन अलिप्त करि मानै—सा० ५-४।

३९. यह सब मेरीयै आइ कुमति।
अपनैं ही अभिमान-दोष दुख पावत हौं मैं अति —सा० १-३००।

४०. झूठे ही लगि जनम गँवायौ।
भूल्यौ कहा स्वप्न के सुख मैं, हरि सौं चित न लगायौ—सा० १-३०१।

४१. धोखैं ही धोखैं डहकायौ।

उसमें स्थित अजन्मा और अविनाशी ब्रह्मांश आत्मा को ही जानना चाहता है[४२]। अष्टछापी कवियों के अनुसार, जीव का यह भ्रम भगवंत को 'चीन्हने' पर ही जाता है[४३]।

जीव के अज्ञान का दूसरा कारण है उसका 'अहम्' जो उसे समस्त कार्यों का कर्त्ता-धर्ता मानने को प्रेरित करता है। यद्यपि उसके जीवन में संकट के अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब केवल उसकी ही नहीं, उसके समस्त शुभचिंतकों और हितैषियों की सम्मिलित शक्ति और बुद्धि भी उसका उद्धार नहीं कर पाती, तथापि उसका 'अहम्' अधिक समय तक अपनी तुच्छता का ध्यान नही रखता और पुन: अनेक रूपों में अपनी क्षमता, योग्यता, चतुरता, रूप-गुण-अधिकार-संपन्नता[४४] आदि का विज्ञापन करने के अपने स्वभाव को ग्रहण कर लेता है[४५]।

परब्रह्म का अंश होते हुए भी 'जीव' एक बात में उससे भिन्न है। वह यह कि जहाँ जीव काल, कर्म और माया के अधीन होने के साथ विधि-निषेध और पाप-पुण्य

समुझि न परी, बिषय-रस गीध्यौ, हरि-हीरा घर माँझ गँवायौ।
ज्यौं कुरंग जल देखि अवनि कौ प्यास न गई चहूँ दिसि धायौ।
जनम-जनम बहु करम किए हैं, तिनमैं आपुन आपु बँधायौ।
ज्यौं सुक सेमर सेव आस लगि, निसि-बासर हठि चित्त लगायौ।
रीतौ परयौ जबै फल चाख्यौ, उड़ि गयौ तूल, ताँवरौ आयौ।
ज्यौं कपि डोरि बाँधि बाजीगर, कन-कन कों चौहटैं नचायौ—सा० १-३२६।

४२. जीव कर्म करि बहु तन पावै। अज्ञानी तिहिं देखि भुलावै।
ज्ञानी सदा एक रस जानै। तन कैं भेद भेद नहिं मानै।
आत्म, अजन्म सदा अबिनासी। ताकौं देह-मोह बड़ फाँसी—सा० ५-४।

४३. भरम ही बलवंत सब मैं, ईसहू कैं भाइ।
जब भगत भगवंत चीन्है, भरम मन तैं जाइ—सा० १-७०।

४४.क. धन-जोबन-अभिमान अल्प जल, काहे कूर आपनी बोरी—सा० १-३०३।
ख. धन-जोबन-मद ऐंड़ौ-ऐंड़ौ, ताकत नारि पराई।
लालच-लुब्ध स्वान जूठनि ज्यौं, सोऊ हाथ न आई—सा० १-३२८।

४५. मैं तौ अपनी कही बड़ाई।
× × ×
जीव न तजै स्वभाव जीव कौ, लोक बिदित दृढ़ताई—सा० १-२०७।

मानने को बाध्य हो जाता है वहाँ परब्रह्म इन सबसे परे रहता है[४६]। ऐसे जीवों को सचेत करते हुए कभी तो अष्टछापी कवि परब्रह्म की 'सर्वशक्तिमानता' की घोषणा करते[४७] और कभी स्वयं उनका परब्रह्म सृष्टि और उसके समस्त व्यापारों का कर्ता-धर्ता अपने को बताकर जीव को 'अहम्' भाव का परित्याग करने का अवसर प्रदान करता है। जीव की यह अज्ञानता, अष्टछापी कवियों के अनुसार, दो उपायों से छूट सकती है। पहला उपाय है 'सतगुरु' की शरण जाना और उसका कृपा-भाजन बनने की पात्रता अपने में लाना; क्योंकि उसकी कृपा से अज्ञानता दूर होने पर जीव सहज ही अपने 'चेतन' स्वरूप को जान सकता है[४८]। दूसरा उपाय है सच्चे और अनन्य भाव से परब्रह्म या परमाराध्य की शरण जाना जिनकी कृपा से भ्रम या अज्ञान से मुक्ति पाकर वह अपने 'सत्स्वरूप' को सुगमता से जानकर अभय-पद पा सकता है[४९]।

४६.क. काल, करम, माया अधीन, ते जीउ बखाने।
बिधि-निषेध, अरु पाप-पुन्य, तिन मैं सब साने।
परम धरम ब्रह्मन्य, ग्यान-बिग्यान - प्रकासी।
ते क्यौं कहियै जीउ सदस, स्रुति-सिखर-निवासी—नंद०, सिद्धांत०, पृ० १८४।
ख. निपट निकट ज्यौं घट मैं अंतरजामी आही।
बिषय-बिदूषित इंद्री, पकरि सकै नहिं ताही—नंद०, रास०, पृ० १८२।

४७.क. धर्म-पुत्र, तू देखि बिचार। कारन करनहार करतार।
नर के किएँ कछू नहिं होइ। करता-हरता आपुहिं सोइ—सा० १-२६१।
ख. करी गोपाल की सब होइ।
जो अपनौ पुरुषारथ मानत, अति झूठौ है सोइ—सा० १-२६२।
ग. होत सो जो रघुनाथ ठटै।
पचि-पचि रहैं सिद्ध, साधक, मुनि, तऊ न बढ़ै-घटै—सा० १-२६३।
घ. भावी काहूँ सौं न टरै—सा० १-२६४।

४८. अपुनपौ आपुन ही मैं पायौ।
सब्दहि सब्द भयौ उजियारौ, सतगुरु भेद बतायौ।
ज्यौं कुरंग-नाभी कस्तूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायौ।
फिरि चितयौ जब चेतन ह्वै करि, अपनैं ही तन छायौ—सा० ४-१३।

४९.क. जिन जिनहीं केसव उर गायौ।
तिन-तिन तुम पै गोबिंद गुसाईं, सबनि अभै पद पायौ—सा० १-१६३।

३. जगत और संसार—

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने 'जगत' की उत्पत्ति भगवान के द्वारा और 'संसार' की जीव के द्वारा होना बताया है[५०]। अष्टछापी कवि, जैसा पीछे 'ब्रह्म'-संबंधी विचारों के परिचय में कहा जा चुका है, 'जगत' को परब्रह्म द्वारा उसी से उत्पन्न होकर पुनः उसी में वैसे ही समा जाना मानते हैं जैसे पानी से बना हुआ बुलबुला, फिर उसी में विलीन हो जाता है[५१]। उनकी सम्मति में, 'जगत' के भिन्न नाम-रूपवाले अंगों में ब्रह्म उसी प्रकार व्याप्त है जैसे कंकण, किंकणी, कुंडल आदि भिन्न आभूषणों में स्वर्ण तत्व समान है[५२]। इससे जान पड़ता है कि जीव की तरह 'जगत' को भी वे ब्रह्मांश-स्वरूप, अतएव 'सत्य', मानते हैं; यद्यपि उनके अनेक पदों में 'जग' का प्रयोग सामान्य अर्थ में भी हुआ है[५३]।

अष्टछापी कवियों ने 'संसार' को, अनेक स्थलों पर, 'सेमर-सा' निस्सार, मिथ्या, स्वप्न-स्वरूप, अंधकारमय, विष-सागर[५४] आदि तो कहा है, परंतु उसकी

ख. मन-बच-क्रम मन, गोबिंद सुधि करि।
सुचि-रुचि सहज समाधि साधि सठ, दीन-बंधु करुनामय उर धरि।
मिथ्याबाद - बिबाद छाँड़ि दै, काम-क्रोध-मद-लोभहिं परिहरि।
चरन-प्रताप आनि उर अंतर, और सकल सुख या सुख तरहरि।
—सा० १-३१२।

५०. 'तत्वद्वीप-निबंध', शास्त्रार्थ प्रकरण, श्लो० २६।

५१. ज्यौं पानी मैं होत बुदबुदा, पुनि ता माहिं समाइ।
त्यौंही सब जग प्रगटत तुमतैं, पुनि तुम माहिं बिलाइ।—सा० ४३०२।

५२. एकै बस्तु अनेक ह्वै, जगमगात जगधाम।
जिमि कंचन तैं किंकिनी, कंकन, कुंडल नाम—नंद०, अनेकार्थ०, पृ० ६८।

५३.क. जाकौं मनमोहन अंग करै।
ताकौ केस खसै नहिं सिर तैं, जौ 'जग' बैर परै—सा० १-३७।

ख. कलिमल दूरि करन के काजैं, तुम लीन्हौं 'जग' मैं अवतार—सा० १-४१।

ग. अपनैं सुख कौं सब 'जग' बाँध्यौ, कोउ काहू कौ नाहीं—सा० १-७६।

घ. देखि नीर जु छिलछिलौ 'जग', समुझि कछु मन माहिं—सा० १-३३८।

ङ. जौ मरिहौं तौ सुरपुर जैहौं। जीते 'जगत' माहिं जस लैहौं—सा० ६-५।

च. इहाँ कोउ काहू कौ नाहीं। रिन-संबंध मिलन 'जग' माहीं—सा० ७-२।

५४.क. यह 'संसार' सुवा-सेमर ज्यौं, सुंदर देखि लुभायौ—सा० १-३३५।

उत्पत्ति जीव द्वारा होने का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख उनके काव्य में नहीं मिलता और परमानंददास के एक पद में तो अपने 'अंश की मुक्ति' तजकर 'संसार' माँगने की बात भी लिखी गयी है[५५] जिससे स्पष्ट है कि उस काव्य में 'संसार' शब्द से उनका तात्पर्य जीव के अज्ञान-जन्य 'संसार' से नहीं है; अस्तु। इससे जान यही पड़ता है कि अष्टछापी कवियों ने 'जगत' और 'संसार' के दार्शनिक विवेचन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

४. *माया*—

अष्टछापी कवियों ने माया के दो रूपों का वर्णन किया है—एक है विद्या-माया और दूसरी, अविद्या-माया। माया के द्वितीय रूप का कार्य जीव को संसार और सांसारिकता से जकड़े रहने का रहता है तथा प्रथम अर्थात् विद्या-माया, परब्रह्म की इच्छानुसार, सृष्टि की रचना अथवा उसका नाश करने के साथ-साथ ईश-प्रेरणा से जीव को अविद्या-माया के बंधन से मुक्त भी करती है। अष्टछाप-काव्य में माया के इन दोनों रूपों का वर्णन है—प्रथम का संक्षेप में और द्वितीय का विस्तार से।

विद्या-माया का जितना स्पष्ट वर्णन नंददास ने किया है, उतना किसी अन्य अष्टछापी कवि ने नहीं। उनकी सम्मति में, पंच महाभूत, दस इन्द्रियाँ, अहंकार, महत्व, त्रिगुण आदि विद्या-माया के ही विकास हैं; अर्थात् विद्या-माया परब्रह्म की इच्छानुसार इस सृष्टि की रचना, इसका प्रतिपालन तथा संहार करती है और मृगी-सदृश सदैव उनके ही अधीन रहती है[५६]। अन्यत्र नंददास ने योग-माया के समान

ख. .... स्वप्न-स्वरूप सकल 'संसार।
सोयौ होइ सो इहिं सत मानै। जो जागै सो मिथ्या जानै—सा० ६-५।

ग. मिथ्या यह 'संसार' और मिथ्या माया—सा० वे०, पृ० १५८।

घ. बहे जात 'संसार'-धार जिय फंदे फंदन—नंद०, सिद्धांत०, पृ० १८४।

ङ. जे 'संसार' अँधियार गार में मगन भए परि—नंद०, रास०, पृ० १५६।

च. अरु 'संसार' असार अपार, सहजहि भयौ जु ताके पार—नंद०, दशम०, पृ० ३१८।

छ. बिष-सागर 'संसार' बिषम अति बिमुख संग तें डरिए—गोविं० ५५४।

५५. अपने अंस की मुकुति राजी है माँगि लियौ 'संसार'।
परमानँद गोकुल मथुरा में बन्यौ न यहै बिचार—परमा० ६०५।

५६. महाभूत पुनि आगि, पवन, पानी, अंबर, धर।
दस इंद्रिय अरु अहंकार, महतत्व, त्रिगुन, मन।

'मुरली' को अघटित घटनाओं के घटित करने में चतुर बताते हुए अगम, निगम, नाद-ब्रह्म की जननी विद्या-माया के ही कार्य की ओर संकेत किया है[५७]।

अष्टछापी कवियों में अविद्या-माया का सबसे विस्तृत वर्णन सूरदास ने किया है। प्राणी को ईश्वर की ओर से विमुख करके सांसारिकता में फँसाये रखना अविद्या-माया का मुख्य कार्य है जिसके लिए वह काम, क्रोध, मद, लोभ, अज्ञान आदि अनेक मानसिक दुर्बलताओं के सहयोग से प्राणी को सत्पथ से दूर भटकाये रहती है। इस अविद्या-माया के हाथ में पड़े प्राणी की स्थिति वैसी ही पराधीनता की रहती है जैसी नटी के बंधन में पड़े कपि की जिसे लकुट के भय से 'कोटिक नाच' नाचने पड़ते हैं। अविद्या-माया-जनित लोभ के कारण प्राणी नाना स्वाँग बनाने की निर्लज्जता दिखाता है। अनेक मिथ्या अभिलाषाओं में फँसाकर, यह माया उसकी शांति हर लेती है और स्वप्न में धन-ऐश्वर्य का प्रलोभन देकर उसको 'बौरा' देती है। यह महामोहिनी है जो प्राणी को मुग्ध करके उसको पाप में लगाती है जैसे दूती कुल-बधू को प्रलोभन देकर उसको पर-पुरुष की ओर आकृष्ट करती है[५८]।

एक अन्य पद में सूरदास ने 'माया' की वेश-भूषा का वर्णन करके उसकी 'अकथ कथा' कही है। उनके अनुसार 'राती चूनरी', 'सेत उपरना', 'नीला लहँगा'

यह सब माया कर बिकार, कहैं परमहंस गन।
सो माया जिनके अधीन नित रहत मृगी जस।
बिस्व-प्रभव, प्रतिपाल, प्रलैकारक, आयस बस—नंद०, सिद्धांत०, पृ० १८।

५७. तब लीनी कर-कमल, जोगमाया-सी मुरली।
अघटित घटना चतुर, बहुरि अधरा सब जुरली।
जाकी धुनि तैं निगम अगम प्रगटे बड़ नागर।
नाद-ब्रह्म की जननि, मोहिनी, सब सुख-सागर—नंद०, रास०, पृ० १६०।

५८. माया नटी लकुटि कर लीन्हे कोटिक नाच नचावै।
दर-दर लोभ लागि लिये डोलति, नाना स्वाँग बनावै।
तुम सौं कपट करावति प्रभु जू, मेरी बुधि भरमावै।
मन अभिलाष-तरंगनि करि-करि, मिथ्या निसा जगावै।
सोवत सपने मैं ज्यौं संपति, त्यौं दिखाइ बौरावै।
महा मोहिनी मोहि आतमा, अपमारगहिं लगावै।
ज्यौं दूती पर-बधू भोरि कै, लै पर-पुरुष दिखावै।
मेरे तो तुम पति, तुमहीं गति, तुम समान को पावै—सा० १-४२।

और 'चोली-अँतरौटा' पहने हुए 'माया', चतुरानन, अमरगन, असुर-समाज, शिव, आदि को मुग्ध और मद-मत्त करती फिरती है और इसके डर से शुक-सनकादिक भागते फिरते हैं[५९]। जिस 'माया' ने देव, दनुज, ऋषि-मुनि, ब्रह्मा, महादेव आदि की यह दशा कर रखी है, उससे सामान्य पुरुष-वर्ग कैसे उबर सकता है ? उनके साथ तो यह और भी कौतुक करती है—किसी को सुख-नींद से जगाती, किसी को दर्शन से ठगती और किसी के साथ हास-विलास करती है। माया ने जल-थल-नभ के सारे जीवों को भुलावे में डाल रखा है। संसार में जिसकी ओर भी यह जरा सा मुस्कराकर देख लेती है, उसी का मन हर लेती है। इस प्रकार माया ने जल-थल-नभ के जीवों को भुलावे में डालकर[६०] सारे जग को अपने वश में कर रखा है;[६१] अर्थात् कौन ऐसा है जो इसके भ्रम में नहीं फँसा[६२] ? मन जब अविद्या-माया के वश में हो,[६३] तब भजन भी नहीं हो पाता;[६४] फिर जो माया के हाथ बिक ही गया

५९. पहिरे राती चूनरी, सेत उपरना सोहै (हो)।
कटि लहँगा नीलौ बन्यौ, को जो देखि न मोहै (हो)।
चोली चतुरानन ठग्यौ, अमर उपरना राते (हो)।
अँतरौटा अवलोकि कै, असुर महा मदमाते (हो)।
नैंकु दृष्टि जहँ परि गई, सिव-सिर टोना लागे (हो)।
जोग-जुगुति बिसरी सबै, काम-क्रोध-मद जागे (हो)।
लोक-लाज सब छुटि गई, उठि धाए सँग लागे (हो)।
सुनि याके उतपात कौं, सुक सनकादिक भागे (हो)—सा० १-४४।

६०. बहुत कहाँ लौं बरनिऐ, पुरुष न उबरन पावै।
भरि सोवै सुख-नींद मैं, तहाँ सु जाइ जगावै।
एकनि कौं दरसन ठगै, एकनि के सँग सोवै।
अकथ कथा याकी कछू, कहत नहीं कहि आई।
छैलनि कै सँग यौं फिरै, जैसैं तनु सँग छाई।
इहिं बिधि इहिं डहकै सबै, जल-थल-नभ जिय जेते—सा० १-४४।

६१. (गोपाल) तुम्हरी माया महाप्रबल, जिहिं सब जग बस कीन्हौ।
नैंकु चितै, मुसक्याइ कै, सब कौ मन हरि लीन्हौ—सा० १-४४।

६२. हरि, तुव माया को को न बिगोयौ ?—सा० १-४३।

६३. माधो जू, मन माया बस कीन्हौ—सा० १-४६।

६४. हरि, तेरौ भजन कियौ न जाइ।
कह करौं, तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ—सा० १-४५।

हो, उसकी दशा तो बंधन में पड़े पशु-सी ही हो जाती है[६५] और उससे न 'हरि-हित' हो पाता है, न 'तू-हित' हो[६६] तथा माया के झूठे प्रपंचों के कारण प्राणी का रत्न-सा जन्म व्यर्थ हो जाता है[६७]।

सूरदास ने इस माया को 'विषम-भुजंगिनि' भी कहा है जिसका विष 'गुरु-गारुड़ी' के उतारने से उतर सकता है या उन साधुओं की संगति से कुछ लाभ हो सकता है जिन्होंने 'कृष्ण' रूपी संजीवनी' को पा लिया है[६८]।

५. *मुक्ति*—

संसार में प्राणी को जो कष्ट मिलता है, उसका कारण ऊपर अविद्या-माया को बताया गया है। उस अविद्या-माया के प्रभाव से जीव को मुक्ति मिल जाय तो वह सुखी हो सकता है। इसी कारण सूरदास अपनी अविद्या-रूपी गाय माधव को सौंपते हुए कहते हैं कि यदि आप इसे अपने 'गोधन' में मिला लेंगे तो मैं सुख से सोऊँगा और जन्म-मरण की ओर से निश्चिंत हो जाऊँगा[६९]। सांसारिक कष्टों से इस प्रकार मुक्ति पाना मोक्ष का एक रूप है। मुक्ति का दूसरा रूप है ईश्वर के दर्शन, भजन, तनजा, वित्तजा और मानसी सेवा तथा गुण-लीला-गान में उस परम सुख

६५. अब हौं माया-हाथ बिकानौ।
परबस भयौ पसू ज्यौं रजु-बस, भज्यौ न श्रीपति रानौ—सा० १-४७।

६६. माया देखत ही जु गई।
ना हरि-हित, ना तू-हित, इनमैं एकौ तौ न भई—सा० १-५०।

६७. इहिं माया झूठी प्रपंच लगि, रतन सौ जनम गँवायौ—सा० २-३०।

६८. अजहूँ सावधान किन होहि।
'माया बिषम भुजंगिनि' कौ बिष, उतर्यौ नाहिंन तोहिं।
कृष्न सुमंत्र जियावन मूरी, जिन जन मरत जिवायौ।
बारंबार निकट स्रवननि ह्वै, गुर गारुड़ी सुनायौ।
बहुतक जीव देह-अभिमानी, देखत ही इन खायौ।
कोउ कोउ उबर्यौ साधु-संग, जिन स्याम-सँजीवनि पायौ—सा० २-३२।

६९. हित करि मिलै लेहु गोकुलपति, अपने गोधन माहँ।
सुख सोऊँ सुनि बचन तुम्हारे, देहु कृपा करि बाँह।
निधरक रहौं सूर के स्वामी, जनम न जानौं फेरि—सा० १-५१।

का अनुभव करना[७०] जो 'परम स्वाद' है, निरंतर है और अमित तोषदायी है[७१]। अष्टछापी कवियों ने इस सुख को बैकुंठ के सुख से भी श्रेष्ठ बताया है और जिसको इस सुख का अनुभव हो जाता है वह चारों पदार्थों को तो ग्रहण करता ही नहीं, तीनों लोकों को भी तृणवत् समझता है[७२]।

मुक्ति की उक्त दोनों स्थितियों में प्रथम को 'जीवन्मुक्त' और दूसरी को 'स्वरूपानंद' मुक्ति कहते हैं जिनमें प्राणी का शरीर तब तक नष्ट नहीं होता जब तक वह कर्मों का फल भोग नहीं लेता अथवा परब्रह्म अपनी कृपा से उनका 'शमन' नहीं कर देता। शरीर छूटने पर परमात्मा के कृपा-पात्र के लिए मुक्ति के चार रूप रहते हैं—'सालोक्य' अथवा भगवान के लोक की प्राप्ति, 'सामीप्य' अथवा भगवान के समीप रहने का भाव, 'सारूप्य' अथवा भगवान का रूप प्राप्त करना और 'सायुज्य' अथवा भगवान में मिल जाना। इनमें से प्रथम प्रकार की मुक्ति के सुख की ओर संकेत करते हुए सूरदास ने कहा है कि परमाराध्य के लोक-रूपी सरोवर पर पहुँचने पर[७३] फिर अन्यत्र नहीं उड़ना पड़ता[७४]। 'सामीप्य' मुक्ति के सुख का वर्णन करते हुए सूरदास ने एक पद में मन-रूपिणी चकई को संबोधित करके कहा है कि प्रभु के चरण-सरोवर वाले उस सुख-लोक को चल जहाँ न भ्रम-रूपी रात्रि होती है और न प्रियतम से कभी वियोग ही होता है[७५]। परमाराध्य के अवतार से दुर्लभ

७०. भजनानंद हमैं अलि प्यारौ, ब्रह्मानंद सुख कौन बिचारौ—सा० ४०६४।

७१. परम स्वाद सबही जु निरंतर अमित तोष उपजावै—सा० १-२।

७२. जो सुख होत गुपालहिं गाऐं।
सो सुख होत न जप-तप कीन्हैं, कोटिक तीरथ न्हाऐं।
दिऐं लेत नहिं चार पदारथ, चरन-कमल चित लाऐं।
तीनि लोक तृन-सम करि लेखत, नँदनंदन उर आऐं—सा० २-६।

७३. 'गीता' में भी कहा गया है कि मेरे धाम में पहुँचने पर फिर लौटना नहीं होता—
न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम—अध्याय १५, श्लो० ६।

७४. चलि सखि, तिहिं सरोवर जाहिं।
× × ×
सूर क्यौं नहिं चलै उड़ि तहँ, बहुरि उड़िबौ नाहिं—सा० १-३३८।

७५. चकई री, चलि चरन-सरोवर, जहाँ न प्रेम-वियोग।
जहँ भ्रम-निसा होति नहिं कबहूँ, सोइ सायर सुख जोग—सा० १-३३७।

मुक्ति के सुलभ हो जाने और उनके चरणों के सान्निध्य अथवा सामीप्य से मोक्ष या मुक्ति के अधिकारी हो जाने की बात नंददास भी कहते हैं[७६]।

तीसरी अर्थात 'सारूप्य' मुक्ति के सुख का आभास सूरदास के उन पदों में मिलता है जहाँ ऊधव श्रीकृष्ण से कहते हैं कि व्रज में आज भी सखा आदि अपने को तुम्हारा ही रूप मानकर तुम्हारी ग्वालवत् की गयी लीलाएँ करने में ही मग्न रहते हैं[७७]। ऊधव को व्रजवासियों की इस रस-रीति के सामने सब कुछ फीका लगता है[७८]।

'सायुज्य' मुक्ति का उदाहरण परब्रह्म श्रीकृष्ण के नित्य-रास में गोपी-भाव से प्रवेश होने में मिलता है जिसका वर्णन सूरदास[७९] ने कई पदों में किया है। नंददास की रूपमंजरी भी शरीर त्यागकर कृष्ण में उसी प्रकार जा मिलती है जैसे

७६. ये अद्भुत अवतार जु लेत, बिस्वहिं प्रतिपालन के हेत।
अरु अपने भक्तनि के हेतु, दुर्लभ मुकुति सुलभ कर देत।
तव पद-पंकज-नौका करि कै, पार परे भवसागर तरि कै।
× × ×
पद-पंकज के सन्निधि मात्र, तबहीं भये मुक्ति के पात्र—नंद०, दशम०, पृ० २०८।

७७. माधौ जू सुनियै ब्रज-व्यवहार।
× × ×
एक ग्वाल गोसुत ह्वै रेंगत, एक लकुट कर लेत।
एक मंडली करि बैठारत, छाक बाँटि इक देत।
एक ग्वाल नटवर बपु लीला, एक कर्म गुन गावत।
निसिबासर ये ही ढँग सब ब्रज, दिन दिन नव तन प्रीति—सा० ४१४५।

७८. सूर सकल फीकौ लागत है, देखत वह रस-रीति—सा० ४१४५।

७९.क. जो रस-रास-रंग हरि कीन्ह्यौ, बेद नहीं ठहरान्यौ।
सुर-नर-मुनि मोहित भए सबहीं, सिवहु समाधि भुलान्यौ।
सूरदास तहँ नैन बसाए, और न कहूँ पत्यान्यौ—सा० ११७३।

ख. मैं कैसैं रस रासहिं गाऊँ।
× × ×
नव निकुंज बन-धाम-निकट इक, आनँद-कुटी रचाऊँ।
सूर कहा बिनती करि बिनवै, जनम जनम यह ध्याऊँ—सारा० ११७४।

सूर्य की गरमी, किरणों से होकर, पुनः उसी में समा जाती है[८०]। रासलीला के इस सुख को अष्टछापी कवियों ने अष्टसिद्धि और नवनिधि की प्राप्ति के सुख से भी बहुत ऊँचा बताया है[८१]।

मुक्ति के दो लयात्मक रूप और माने जाते हैं—प्रथम में भक्त, परमाराध्य के अवयवों का, वस्त्राभूषणादि अथवा परमधाम गोकुल, वृन्दावन या व्रज का, अंग-विशेष बनने की कामना करता है। सूरदास वृन्दावन की धूल, लता, गाय अथवा वहाँ का सलिल, द्रुम, गेह, ग्वाल, भृत्य आदि कुछ भी बन जाने की कामना[८२] करते हैं। परमानंददास भी वृन्दावन के मोर, गुंजा, बन-बेली, कृष्ण की वंशी, मकराकृत कुंडल आदि न होने पर पछताते हैं[८३]।

लयात्मक मुक्ति का दूसरा रूप है, विरहासक्ति की अवस्था में भक्त का

८०. तजत भई तिय सम तन सोई, ज्यों जीरन पट त्यागत कोई।
ज्यों रवि औ रवि की गरमाई, किरन माँझ हो रवि में जाई।
सखी जब बृन्दाबन ढिंग गई, बिपिन बिलोकि चकित अति भई।
× × ×
सुधि न रही एही छबि मोहन, राग मई किधौं प्रेम मई बन।
—नंद०, रूपमंजरी, पंचमंजरी, पृ० २३५-३६।

८१. रास-रस-लीला गाइ सुनाऊँ।
यह जस कहै, सुनै मुख स्रवननि, तिहिं चरननि सिर नाऊँ।
कहा कहौं बक्ता - स्रोता फल, इक रसना क्यौं गाऊँ।
अष्टसिद्धि नवनिधि सुख-संपत्ति, लघुता कर दरसाऊँ—सा० ११७८।

८२.क. माधौ, मोहिं करौ बृन्दाबन-रेनु—सा० ४८६।
ख. करहु मोहिं ब्रज - रेनु देहु बृन्दाबन बासा।
माँगौं यहै प्रसाद और मेरैं नहिं आसा।
जोइ भावै सोइ करहु तुम, लता सिला द्रुम, गेहु।
ग्वाल गाइ कौ भृत करौ, मानि सत्य ब्रत एहु—सा० ४९२।

८३. बृन्दाबन क्यों न भए हम मोर।
करत निवास गोबर्धन ऊपर निरखत नंदकिसोर।
क्यों न भए बंसी-कुल सजनी अधर पीवत घनघोर।
क्यों न भए गुंजा बन-बेली रहत स्याम जू की ओर।
क्यों न एभ मकराकृत कुंडल स्याम स्रवन झकझोर—परमा० ७६६।

परमाराध्य में तल्लीनता का अनुभव करना। अष्टछापी कवियों ने इस तल्लीनता का एकांगी वर्णन न करके भगवान का भी भक्त में व्याप्त हो जाना कहा है। भक्त और भगवान की यह तल्लीनता ठीक वैसी ही है जैसे जल से उत्पन्न लहरों में जल का व्याप्त रहना और लहरों का पुनः उसी में विलीन हो जाना[८४]।

मुक्ति के उक्त सभी रूपों का वर्णन अष्टछाप-काव्य में होने पर भी आलोच्य कवि सगुण ब्रह्म की सेवा को ही सबसे बढ़कर मानते हैं, क्योंकि, जैसा सूरदास की गोपियाँ ऊधव से कहती हैं, उस स्थिति में सालोक्य, सायुज्य, सामीप्य आदि सभी मुक्तियों के सुखों का प्रत्यक्ष अनुभव होता रहता है[८५]। परमानंददास को भी मदनगोपाल की सेवा मुक्ति से मीठी जान पड़ती है[८६]। परमाराध्य के चरण-कमल में तन अर्पण करने के प्रसंग को सर्वोपरि मानते हुए[८७] वे पुनः कहते हैं कि मेरे मन को मुरली का नाद रुचा है। मेरा मन उनके चरण-कमलों के पास रहता है और मैं श्याम के रंग में रँग गया हूँ; अतएव मुझे योग के विविध अंग, मुक्ति, धर्म-मार्ग आदि कुछ भी नहीं चाहिए[८८]।

८४. आँखिनि मैं बसै, जिय मैं बसै हिय मैं बसत निसि-दिवस प्यारौ।
तन मैं बसै, मन मैं बसै, रसना हू मैं बसै नँदवारौ ?
सुधि मैं बसै, बुधिहू मैं बसै, अँग अंग बसै मुकुट - वारौ।
सूर बन बसै, घरहू मैं बसै, संग ज्यौं तरंग जल तैं न न्यारौ—सा० १६१६।

८५. ऊधौ, सूधैं नैंकु निहारौ।
× × ×
निरगुन कहौ कहा कहियत है, तुम निरगुन अति भारी।
सेवत सुलभ स्याम सुंदर कौं, मुक्ति लही हम चारी।
हम सालोक्य, सरूप, सायुज्यौ, रहतिं समीप सदाई।
सो तजि कहत और को औरै, तुम अलि बड़े अदाई।
× × ×
तुम अज्ञान कतहिं उपदेसत, ज्ञान - रूप हैं हमहीं।
निसि दिन ध्यान सूर प्रभु कौ अलि, देखत जित तितहीं—सा० ३६००।

८६. सेवा मदन गोपाल की मुक्तिहुँ तें मीठी—परमा० ८५३।

८७. यह तन अरपन हरि कौं कीनो वह सुख कहाँ लहूँ।
परमानंद मदनमोहन के चरन - सरोज गहूँ—परमा० ४७२।

८८. मेरो मन गह्यौ माई, मुरली कौ नाद।

६. रास—

'रास' से तात्पर्य 'रस'-रूप कृष्ण और उन्हीं में लीन गोपियों के उस नृत्य से है जिसमें विशेष मानसिक रस का अनुभव हो[८९]। रास के मुख्य दो रूप हैं—पहला, 'अवतरित या नैमित्तिक रास' वह है जो रस-रूप श्रीकृष्ण ने द्वापर में गोपियों के साथ किया था। दूसरा है 'नित्य रास' जो वृन्दावन में परब्रह्म श्रीकृष्ण रस-स्वरूपा गोपियों के साथ 'नित्य' करते हैं। वल्लभाचार्य जी के सिद्धांतानुसार, "लीला के लिए जब भगवान इस भू-तल पर लीला-परिवार के साथ अवतीर्ण होते हैं, तब 'व्यापी बैकुंठ' गोकुल के रूप में तथा द्वादश शक्तियाँ श्रीस्वामिनी, चंद्रावली, राधा, यमुना आदि आधिदैविक रूप में प्रकट होती हैं। भगवान के साथ रस-कल्लोल का सद्य: आस्वादन करने के निमित्त ही वैदिक ऋचाएँ गोपिकाओं के रूप में अवतीर्ण हुई हैं। वृन्दावन-विहार नित्य विहार है। आचार्य की मान्यता है कि श्रीकृष्ण व्रज को छोड़कर एक डग भी बाहर नहीं जाते और आचार्य के प्रमुख शिष्य सूरदास जी ने भी 'गोपिनि मंडल मध्य बिराजत निसि दिन करत बिहार' के द्वारा श्रीकृष्ण के व्रज-विहार को नित्य लीला का ही अंग माना है";[९०] अस्तु। अष्टछापी कवियों ने यद्यपि वर्णन तो 'अवतरित या नैमित्तिक रास' का किया है; परंतु वैसा करते समय उनकी दृष्टि बराबर 'नित्य रास' पर रही है[९१]। सूरदास ने इस 'रास-रस' को सुर-नर-मुनि, यहाँ तक कि शिव को भी, समाधि में मिलनेवाले सभी 'रसों' से बढ़कर बताया है[९२]। उनकी सम्मति में, सामान्य लौकिक बुद्धि से न इस 'रास-रस-रीति' का वर्णन हो सकता है और न अनुभव ही। अगम-निगम से मिला हुआ ज्ञान भी बिना ईश्वर

आसन पौन ध्यान नहिं जानौं कौन करै अब बाद-बिबाद।
मुकुति देहु संन्यासिनि कौं हरि, कामिनि देहु काम की रास।
धरमिनि देहु धरम कौ मारग मो मन रहै पद-अंबुज पास।
जो कोऊ कहै जोति सब यामें सपनेहुँ छियौ न तिहारो जोग।
परमानन्द स्याम रँग-रातो सबै सहौं मिलि इक अँग लोग—परमा० २११।

८९. 'सुबोधिनी', फल प्रकरण, अध्याय ५, श्लो० २ की टीका।
९०. डा० राजबली पांडेय, 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास', भाग १, पृ० ५४८।
९१. नित बिहार गोपाल लाल सँग बृन्दाबन रजधानी—सा० १०५५।
९२. जो रस-रास-रंग हरि कीन्ह्यौ, बेद नहीं ठहरान्यौ।
सुर-नर-मुनि मोहित भए सबहीं, सिवहु समाधि भुलान्यौ—सा० ११७३।

की विशेष कृपा के इसकी प्राप्ति में सहायक नहीं हो सकता। इसका यथार्थ अनुभव तो वे ही भक्तजन कर सकते हैं जिनमें भ्रम से सर्वथा रहित परम भक्ति-भाव है[९३]। इस रस की प्राप्ति के लिए बैकुंठ-लोक-वासी विष्णु भी ललचाते हैं और इसकी अधिकारिणी भाव-भक्ति-स्वरूपा गोपियों के परम भाग्य की सराहना करते हैं[९४]। शारदा के साथ समस्त देव, किन्नर, मुनि, शिव, नारद आदि 'रास-लीला-धाम' वृन्दावन और अद्भुत रास रचानेवाले श्रीकृष्ण को 'धन्य' कहते और फूल बरसाते हैं[९५]। सुर-ललनाएँ भी 'ब्रज-बधू' होने का सौभाग्य न पाने के कारण बार-

९३. रास-रस-रीति नहिं बरनि आवै।
कहाँ वैसी बुद्धि, कहाँ वह मन लहौं, कहाँ यह चित्त जिय भ्रम भुलावै।
जो कहौं, कौन मानै, जो निगम-अगम कृपा बिनु नहीं या रसहिं पावै।
भाव सौं भजै, बिनु भाव मैं ये नहीं भाव ही माहिं ध्यानहिं बसावै।
—सा० १००६।

९४.क. मुरली धुनि बैकुंठ गई।
नारायन-कमला सुनि दंपति, अति रुचि हृदय भई।
सुनौ प्रिया, यह बानी अदभुत, बृन्दाबन हरि देखौ।
धन्य-धन्य श्रीपति मुख कहि-कहि, जीवन ब्रज कौ लेखौ।
रास-बिलास करत नँदनंदन, सो हमतैं अति दूर।
धनि बन-धाम, धन्य ब्रज धरनी, उड़ि लागै जौ धूरि।
यह सुख तिहूँ भुवन मैं नाहीं, जो हरि-सँग पल एक।
सूर निरखि नारायन इकटक, भूले नैन निमेष—सा० १०६४।
ख. यह अपार रस रास उपायौ, सुन्यौ न देख्यौ नैन।
नारायन धुनि सुनि ललचाने, स्याम अधर रस बैनु।
कहत रमा सौं सुनि-सुनि प्यारी, बिहरत हैं बन स्याम।
सूर कहाँ हमकौं वैसौ सुख, जो बिलसतिं ब्रज-बाम—सा० १०६६।

९५.क. सुरगन चढ़ि बिमान नभ देखत।
ललना सहित सुमनगन बरसत, धन्य जन्म-ब्रज लेखत।
धनि ब्रज-लोग, धन्य ब्रजबाला, बिहरत रास गुपाल।
धनि बंसीवट, धनि जमुनातट, धनि-धनि लता तमाल।
सबतैं धन्य-धन्य बृन्दाबन, जहाँ कृष्न कौ बास।
धनि-धनि सूरदास के स्वामी, अद्भुत राच्यौ रास—सा० १०४४।
ख. जै-जै धुनि किन्नर-मुनि गावत, निरखत जोग बिसारे।
सिव-सारद-नारद यह भाषत, धनि-धनि नंद - दुलारे—सा० १०४५।

बार पछताती हैं[९६] अस्तु। नंददास ने श्रीकृष्ण तथा गोपियों को 'नित्य' बताकर उनके रास-रस को भी 'नित्य' तथा अद्भुत कहा है जिसका वर्णन शेष सहस्र मुखों से करने पर भी पार नहीं पाता[९७]। 'सिद्धांत-पंचाध्यायी' में उन्होंने 'रास-रस' को सकल शास्त्र-सिद्धांतों का सार-स्वरूप 'महारस' कहा है[९८]।

सूरदास और नंददास ने इस लीला के वर्णन को बहुत विस्तार दिया है, अन्य कवियों ने उसकी संक्षिप्त चर्चा से ही संतोष किया है। कुम्भनदास, चतुर्भुज-दास और गोविंदस्वामी ने अद्भुत रास-लीला देखकर सुर, नर, मुनि के साथ-साथ पशु-पक्षी-पवन आदि के भी मुग्ध होने की बात कही है[९९] यहाँ तक कि, उनके अनुसार, चंद्रमा भी अपनी चाल भूल जाता है[१००]।

९६.क. सुर ललना पति-गति बिसराए, रहीं निहारि निहारि।
जात न बनै देखि सुख हरि कौ, आईं लोक बिसारि—सा० १०४५।
ख. हमकौं बिधि ब्रज-बधू न कीन्ही, कहा अमरपुर बास भएँ।
बार-बार पछितातिं यहै कहि, सुख होतौ हरि संग रहैं—सा० १०४६।
९७. नित्य रास रमनीय, नित्य गोपीजन-बल्लभ।
नित्य निगम यौं कहत, नित्य नव तन अति दुर्लभ।
यह अद्भुत रस-रास, कहत कछु कहि नहिं आवै।
सेस सहस मुख गावै, अजहूँ अंत न पावै—नंद०, रास०, पृ० १८१।
९८. सकल सास्त्र-सिद्धांत, परम एकांत, महा रस—नंद०, सिद्धांत०, पृ० १६५।
९९.क. थकित सुर, मुनि, पवन, पसु, खग, सुधि न रही तिहिं काल—कुंभन० ३०।
ख बिमोही ब्रज-नारि, पसु पंखि सुनैं दै धरि कान।
चर स्थिर हो फिरत चल, सब की भई गति आन।
तजि समाधि जु मुनि रहे, थके ब्योम बिमान।
कुंभनदास सुजान गिरिधर रची अद्भुत ठान—कुंभन० ३१।
ग. बृन्दाबन सोभा बढ़यौ, ता पर ब्योम बिमाननि सों मढ़यौ।
दुंदुभि देव बजावैं, फूलनि अंजुलि बहु बरसावैं।
बरखैं जु फूलनि अंजुली बहु अंबर घन कौतुक पगे—कुंभन० ४३।
घ. चत्रभुज प्रभु स्याम स्यामा की नटनि देखि, मोहे खग मृग बन थकित ब्योम बिमान।
—चतु० ३१।
१००.क. देखि कौतुक चंद भूल्यौ, तजी पच्छिम चाल—कुंभन ३०।
ख. रास रस गति निरखि उडपति तजी पच्छिम चाल—चतु० ३३।
ग. चत्रभुज प्रभु बन बिलास, मोहे सब सुर अकास,

७. *गोपी*—

वल्लभ-संप्रदाय में 'राधा' और 'गोपियों' के मान्य स्वरूप का परिचय देते हुए डा० दीनदयालु गुप्त ने लिखा है—'एक से अनेक होनेवाले भगवान की इच्छा-शक्ति द्वारा उनके अक्षर-ब्रह्म रूप से सत्-रूप जगत और चिद्रूप जीव, देवता आदि की उत्पत्ति हुई और स्वयं आनंद-स्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम-रूप से गो, गोप-गोपी आदि गोलोक की आनंद-रूप शक्तियों की उत्पत्ति हुई। पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का रस-रूप बिना उनकी रसात्मक शक्यों के अपूर्ण है। कृष्ण धर्मी हैं और गोपिकाएँ उनका धर्म हैं। दोनों अभिन्न हैं। सिद्ध-शक्ति राधा और कृष्ण का संबंध चन्द्र और चाँदनी का है। गोपियाँ उस चाँदनी का प्रसार करनेवाली किरणें हैं। राधा भगवान की आदि रस-शक्ति है और गोपिकाएँ इस रस-शक्ति के भिन्न-भिन्न रूप हैं। इसीलिए भगवान की रस-शक्तियों के बीच रस की सिद्ध-शक्ति राधा स्वामिनी-स्वरूपा है। भगवान रस-शक्तियों के बीच पूर्ण रस-शक्ति-स्वरूपा राधा के वश में रहते हैं[1]।

अष्टछापी कवियों ने भी 'गोपियों' का वर्णन परब्रह्म की 'आनंदमयी शक्ति' के रूप में ही किया है। सूरदास भी 'राधा' को, 'पुरुष' कृष्ण की 'प्रकृति' कहकर दोनों की एकता या अभिन्नता बताते हैं,[2] 'शेष, महेश, गणेश, शुकादिक, नारदादि की स्वामिनी' कहकर ब्रजधनी श्रीकृष्ण को 'सुबस' करने की बात कहते हैं[3] और

निरखि थक्यो चंद-रथहिं पच्छिम नहिं खाँचें—चतु० ३६।

घ. थक्यो चंद मोहे खग - मृगगन प्रति छिनु अमित आन गति लावै।
चत्रभुज प्रभु गिरिधर नट नागर सुर नर मुनि गति मति बिसरावै—चतु० ३४।

ङ. सिव बिरंचि मोहे सुर सुनि सुनि सुर-नर-मुनि गति भंगे—गोविं० ५७।

१. डा० दीनदयालु गुप्त, 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय', भाग २, पृ० ५०६।

२ ब्रजहिं बसैं आपुहिं बिसरायौ।
'प्रकृति पुरुष एकहि करि जानहु', बातनि भेद करायौ।
जल-थल जहाँ रहौं तुम बिनु नहिं बेद-उपनिषद गायौ।
'द्वै तन जीव एक हम दोऊ', सुख कारन उपजायौ।
ब्रह्म-रूप द्वितिया नहिं कोऊ, तब मन तिया जनायौ—सा० १६८७।

३. नीलांबर पहिरे तनु भामिनि, जनु घन दमकति दामिनि।
सेस, महेस, गनेस, सुकादिक, नारदादि की स्वामिनि।

'जगत-जननि', 'जगरानी', 'अगतिनि की गति', 'भक्तनि की पति' आदि कहकर उनकी वंदना करते हैं[४]। आगे उन्होंने 'राधा' से कृष्ण-भक्ति देने की प्रार्थना भी की है[५]। परमानंददास कई पदों में 'राधा' के श्रीचरणों की वंदना करते हैं[६]। अतएव यह स्पष्ट है कि अष्टछापी कवि 'राधा' को परब्रह्म की परमानंद-स्वरूपा शक्ति के ही रूप में मानते हैं। कृष्ण का उनसे गंधर्व-विवाह भी अष्टछापी कवियों ने कराया है[७]।

श्रीकृष्ण के प्रति अन्य गोपियों के भी अनन्य भाव का वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। गोपियों में कुछ विवाहिता हैं जो कुल-कानि, लोक-लाज और

× × ×

सहज माधुरी अंग - अंग-प्रति, सुबस किये धनी।
अखिल लोक - लोकेस बिलोकत, सब लोकनि के गनी—सा० १०५५।

४. जग नायक, 'जगदीस-पियारी', 'जगतजननि जगरानी'।
नित बिहार गोपाललाल सँग, बृन्दाबन रजधानी।
'अगतिनि की गति, भक्तनि की पति राधा मंगल-दानी'।
'असरन-सरनी, भव-भय हरनी', वेद पुरान बखानी—सा० १०५५।

५. कृष्नभक्ति दीजै श्रीराधे सूरदास बलिहार—सा० १०५५।

६.क. धनि-धनि लाडिली के चरन।
अतिहि मृदुल सुगंध सीतल कमल के से बरन।
× × ×
नंद-सुत-मन मोदकारी बिरह - सागर तरन।
दास परमानंद छिन-छिन स्याम ताकी सरन—परमा० १६०।

ख. धनि यह राधिका के चरन।
हैं सुभग सीतल अति सुकोमल कमल के से बरन—परमा० ८२७।

७.क. जाकौं 'ब्यास बरनत रास'।
है गंधर्व बिवाह चित दै सुनौ बिबिध बिलास।
× × ×
धरी लगन जु सरद-निसि की, सोधि करि गुरु रास।
मोर मुकुट सुमौर मानौ, कटक कंगन भास।
× × ×
फिरत भाँवरि करत भूषन, अग्नि मनौ उजास—सा० १०७१।

ख. श्रीलाल गिरिधर नवल दूलह, दुलहिनि श्री राधिका—सा० १०७२।

पति-पुत्र आदि का संबंध त्याग कर, 'जार'-भाव से श्रीकृष्ण को भजती हैं[८]। शेष गोपिकाएँ कुवाँरेपन से ही श्रीकृष्ण के प्रति आकृष्ट होतीं, उनको पति-रूप में पाने के लिए जप-तप करतीं, नेम-धर्म से रहती और शिव तथा सूर्य से यह मनोकामना पूर्ण कर देने की प्रार्थना करती हैं। इस कथन की पुष्टि 'पूजा' शीर्षक के अंतर्गत पीछे दिये गये उदाहरणों से होती है।

गोपियों के उक्त दोनों वर्गों की मधुर भाव-प्रधान भक्ति की प्रशंसा सभी अष्टछापी कवियों ने की है। परमानंददास ने उन्हें 'प्रेम की ध्वजा' कहा है जिनकी प्रशंसा शुक, व्यास और ऊधव, सभी करते हैं[९]। एक दूसरे पद में, नंददास के स्वर में स्वर मिलाकर वे उन्हें 'निर्मत्सर संतों की चूड़ामणि' कहते हैं[१०]। नंददास ने 'रास-पंचाध्यायी' में पंचभूतों से निर्मित प्राणी से भिन्न, शुद्ध प्रेममय और जग की 'उजियारी' कहकर उनकी प्रशंसा की है[११]।

समीक्षा—अष्टछाप-काव्य के रचयिता प्रमुख रूप से परम 'रसिक' और 'रसकिनी' के गायक भावुक भक्त थे और गौण रूप से कवि। सामान्यतया इन दोनों वर्गों की रुचि दर्शन और दार्शनिक विषयों की ओर नहीं होती। इसी कारण

८.क हम अहीरि गृह-नारि लोक-लज्जा के जेरी।
ता दिन हम भई बावरी, दियो कण्ठ तें हार।
तब तें घर घैरा चल्यो, 'स्याम तुम्हारो जार'—सा० वें०, पृ० २५३।
ख. धरम करम लोक-लाज सत-पति तजि आई—चतु० १८४।

९. 'गोपी प्रेम की ध्वजा'।
जिन गोपाल कियो बस अपने उर धरि स्याम भुजा।
सुक मुनि व्यास प्रसंसा कीनी, ऊधौ संत सराहीं।
भूरि भाग्य गोकुल की बनिता अति पुनीत भव माँहीं—परमा० ८२५।

१०.क. ये हरि रस ओपी सब गोप तियनि तें न्यारी।
कमल-नयन गोविंदचंद की प्रानहु तें प्यारी।
'नरमत्सर जे संतत अहहिं चूड़ामनि गोपी'।
निरमल प्रेम प्रबाह सकल मरजादा लोपी—परमा० ८२६।
ख. 'निरमत्सर जे संत तिनकी चूड़ामनि गोपी'—नंद०, रास०, पृ० १७०।

१११. सुद्ध प्रेममय रूप, पंचभौतिक तैं न्यारी।
तिनहिं कहा कोउ गहै, 'जोति सी जग उजियारी'—नंद०, रास०, पृ० १६०।

अष्टछाप-काव्य में दार्शनिक प्रसंगों की चर्चा अथवा उनका विवेचन अधिक नहीं है। तत्संबंधी जो थोड़े-बहुत उल्लेख उसमें मिलते हैं, वे एक तो इस कारण कि उन कवियों में से कुछ ने 'श्रीमद्भागवत' के विशेष स्थलों को लेकर पद अथवा स्वतंत्र ग्रंथ रचे और कुछ इस कारण की महाप्रभु वल्लभाचार्य के विचारों की छाया उनकी रचनाओं पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पड़ी। प्रथम प्रभाव के उदाहरण सूरदास और नंददास के क्रमशः पौराणिक प्रसंगों और 'दशम स्कंध' के कुछ स्थलों पर मिलते हैं और द्वितीय के प्रायः सभी कवियों के स्फुट पदों में। ऐसी स्थिति में सभी अष्टछापी भक्त कवियों की रचनाओं के आधार पर दार्शनिक विषयों के कुछ ही पक्षों का सामान्य परिचय मिलता है, क्रमबद्ध और सांगोपांग विवेचन नहीं, यद्यपि, जैसा कि ऊपर दिये गये विवरण से स्पष्ट है, कहीं-कहीं उनके कथन बहुत महत्व के हैं जिनसे वल्लभ-संप्रदायी विचारों पर भी प्रकाश पड़ता है। सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से अष्टछापी कवियों के ऐसे ही कथन महत्वपूर्ण हैं और मुख्यतः इन्हीं की चर्चा ऊपर की गयी है।

---

१० साहित्य, कला और विज्ञान-संबंधी विचार

अष्टछापी कवियों के साहित्य, कला और विज्ञान-संबंधी विचारों का अध्ययन करने के लिए उनको इन्हीं तीन उपशीर्षकों में विभाजित कर लेना उचित जान पड़ता है।

१. साहित्य-संबंधी विचार—

वल्लभ-संप्रदाय में चार प्रमाण माने गये हैं—१. बेद, २. गीता, ३. श्रीमद्-भागवत और ४. वेदांत-सूत्र[1]। अष्टछापी कवियों ने इनमें से प्रथम तीन प्रमाणों का उल्लेख श्रद्धा के साथ किया है। इनके अतिरिक्त संहिता, श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, आदि वेदांगों के साथ-साथ पुराण, महाभारत, शास्त्र, तंत्र, वाल्मीकि रामायण, अमरकोश आदि का भी उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है।

क. *वेद और वेदांग*—वेद चार हैं—१. ऋग्, २. यजुः, ३. साम और ४. अथर्व। इस संख्या की ओर सूरदास ने संकेत किया है[2]। वेदों की उत्पत्ति ब्रह्मा द्वारा मानी गयी है और 'सारावली' में यह भी कहा गया है कि शंखासुर ने जब चारों वेदों का हरण किया तब हरि ने 'हयग्रीव' रूप धरकर, उसका हनन करके, वेदों का उद्धार किया[3]। वेदों का विषय 'ब्रह्म' बताया गया है जिसके संबंध में बहुत-कुछ लिखने के पश्चात् 'नेति' लिखे जाने की बात नंददास की गोपियाँ कहती हैं[4]। सूरदास ने वेदों में प्रभु का 'पतित-पावन' विरद होना कहा

१.क. गो० ब्रजभूषण जी महाराज, 'काँकरौली का इतिहास', पृ० २७।
  ख. श्री कंठमणि शास्त्री का 'पोद्दार-अभिनंदन-ग्रंथ' में प्रकाशित 'पुष्टिमार्गीय सिद्धांत की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि', शीर्षक लेख, पृ० २१८।
२.क. 'चारों' बेद चतुर्मुख ब्रह्मा जग गावत है ताकौ—सा० १-११३।
  ख. जती, सती, तापस आराधैं 'चारों' बेद ररैं—सा० १-२६३।
३. ब्रह्म सभा में जज्ञ कियों जब करन 'बेद' उचार।
  प्रगट भये 'हयग्रीव' महानिधि परब्रह्म अवतार।
  'चार बेद ले गयौ सँखासुर' जल में रह्यो छुपाय।
  धरि हयग्रीव रूप हरि मार्‌यौ 'लीन्हें बेद छुड़ाय'—सारा० ८६-९०।
४. जौ उनके गुन होहिं, 'बेद क्यौं नेति बतावैं—नंद०, भँवर०, पृ० १२७।

है[५] और अनेक कथनों की पुष्टि में 'वेद' को साक्षी-रूप बताया है[६]। 'सारावली' में 'ब्रजमोहन' का चरित्र ऋग्, साम और यजुर्वेदों में वर्णित होना कहा गया है[७]। शुभ कार्यों के अवसर पर ब्राह्मणों द्वारा 'सामवेद' आदि का पाठ किये जाने की बात प्रायः सभी अष्टछापी कवियों ने लिखी है[८]। गो० विट्ठलनाथ के जन्म के अवसर पर गोविंदस्वामी ने उन्हें वेद-धर्म प्रकटाकर धार्मिक पाखंड आदि दूर करने वाला कहा है[९]।

'वेदों' के पर्याय-रूप में, अष्टछाप-काव्य में, 'निगम' शब्द भी प्रयुक्त हुआ हैं जिनके लिए, सूरदास के अक्रूर की सम्मति में, पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण 'गम्य' नहीं हैं[१०]। 'निगम-छंद' का पाठ कृष्ण-जन्म पर किये जाने की बात गोविंदस्वामी ने कही है[११]।

वेद के चार भाग किये जाते हैं—संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद् और सूत्र। इनका

५. पतित-उधारन बिरद बुलावैं, 'चारौ बेद-पुकारैं'—सा० १-१८३।

६.क. सूरदास प्रभु की महिमा अति, 'साखी बेद-पुरानौ'—सा० १-११।
 ख. मनबांछित सबहिंनि फल पायौ, 'बेद-पुराननि साखी'—सा० १६०७।

७. चौरासी ब्रज कोस निरंतर खेलत हैं बलमोहन।
 'सामबेद रिगबेद जजुर में' कहेउ चरित ब्रजमोहन—सारा० १०६०।

८.क. भीर भई दसरथ के आँगन 'सामबेद धुनि छाई'—सा० ६-१७।
 ख. आँगन लीपौ चौक पुरावौ 'बिप्र पढ़न लागे बेद'—परमा० ११।
 ग. अन्वाचारज मुनि गरग परासर 'तिनपै बेद पढ़ावैं'—परमा० १२।
 घ. 'चहूँ बेद-धुनि' करत महामुनि पंच सबद ढपढोल—परमा० १५।
 ङ. सबद करत मानहुँ 'चहुँ बेद-धुनि' बंदीजन मिलि गाइ—गोविं० १२।

९.क. पाषँड-धर्म दूरि करिहैं प्रभु 'बेद-धर्म प्रगटाई'—गोविं० ८९।
 ख. प्रनमामि श्रीमद् बिट्ठलम्।
 'बेद-धर्म' प्रमान कारन जीव मात्रग सुखकरम्—गोविं० ६६।

१०.क. सूर पूरन ब्रह्म 'निगम नाही गम्य' तिनहिं अक्रूर मन यहै बिचारै—सा० २५५१।
 ख. बारिधि जोग अपार अगम कौ, 'निगम न थाह लही'।
 बुधि-बिबेक-बोहित चढ़ि स्रम करि, तौ सिव चेत परी—सा० ३६१०।

११. बिबिध भाँति बाजे बाजत हैं 'निगम पढ़त द्विज छंद'।
 —गोविं०, कीर्तन-सं०, भाग १, पृ० ५।

उल्लेख अष्टछाप-काव्य में कम हुआ है[१२]। इन कवियों ने 'स्रुति' या 'श्रुति' का प्रयोग कभी तो 'वेद' के पर्याय-रूप में किया है[१३] और कभी 'वेद' के साथ भी किया है[१४]। 'स्मृति' का उल्लेख भी कहीं 'श्रुति' के साथ हुआ है[१५] और कहीं 'वेद' के साथ[१६]। इसी प्रकार गोपियों को कहीं 'वेद' की 'रिचा' कहा गया है[१७] और कहीं 'स्रुति - रिचा'[१८]। 'उपनिषद' का उल्लेख भी अष्टछापी कवियों ने कहीं तो स्वतंत्र रूप से किया है[१९] और कहीं 'वेद' के साथ[२०]। परंतु महाप्रभु वल्लभाचार्य अथवा अष्टछापी कवियों ने 'वेद' की महिमा जिस रूप में भी गायी हो, उनका भक्ति-सिद्धांत 'वेद-मार्ग' या 'मर्यादा' का उल्लंघन करनेवाला ही है। प्रायः सभी अष्टछापी कवियों ने इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है[२१]।

१२. तातैं हरि करि ब्यासऽवतार, करी 'संहिता बेद बिचार'—सा० १-२३०।

१३.क. जाकैं स्वाँस उसाँस तें प्रगट 'भए स्रुति चार'—सा० २०६३।

ख. स्वाँसा तासु 'भए स्रुति चार'। करै सो अस्तुति या परकार—सा० ४३००।

ग. छीतस्वामी, गिरिधरन श्रीबिट्ठल सुजस बखान 'सकल स्रुति महिया—छीत० ४१।

घ. सकल 'स्रुति-दधि' मथत पायो इतोई घृत-सार—सा० २-४।

१४. अद्भुत जोट स्याम स्यामावर, बिहरत बृन्दावन चारी।
रूप कांति बल बैभव महिमा, रटत 'बेद-स्रुति' मति चारी।
—कृष्ण० १५, मीतल०, पृ० २२६।

१५.क. 'स्रुति, सुम्रति', मुनिजन सब भाषत, मैं हूँ कहत पुकारि—सा० २-३१।

ख. हरि समान द्वितिया नहिं कोइ, स्रुति सुम्रिति' देख्यौ सब जोइ—सा० २-५।

१६.क. 'सुमृति बेद' मारग हरिपुर कौं, तातैं लियौ भुलाई—सा० १-१८७।

ख. 'बेद पुरान सुमृति कौ', यह आधार मीन कौं ज्यौं जल—सा० १-२०४।

१७.क. 'बेद-रिचा' ह्वै गोपिका हरि सँग कियौ बिहार—सा० ११७५।

ख. जे वे गोप-बधू ही ब्रज में तेइ अब 'बेद-रिचा भई' येह—छीत० १५।

१८.क. नारि पुरुष कोउ होइ, 'स्रुति-ऋचा' गति सो पावै—सा० ११७५।

ख. ब्रज-सुंदरि नहिं नारि, 'रिचा स्रुति की सब आहीं'—सा० ११७५।

१९.क. सिव-बिरंचि नारद पद-बंदित 'उपनिषद' कीरति गाई—परमा० ६५०।

ख. निर्गुन सगुन आत्मा, रचि जु 'उपनिषद' गावैं—नंद०, भँवर०, पृ० १२७।

२०.क. जस 'बेद-उपनिषद' गावैं—सा० १-१२२।

ख. सूर स्याम तुम अन्तरजामी 'बेद-उपनिषद भाखैं'—सा० १६१३।

२१.क. इहिं बिधि 'बेद-मारग' सुनो कपट तजि पति पूजा करौ—सा० १०१६।

ख. 'मर्यादा उलँघन सबही की लोक बेद उपहास' सही री—परमा० ७१४।

ख. *गीता*—'श्री मद्भगवद्गीता' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में, 'साक्षी'-रूप में, कहीं अकेले हुआ है[२२] और कहीं 'वेद' के साथ[२३]।

ग. *श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराण*—अष्टछाप-काव्य में सबसे अधिक उल्लेख 'श्रीमद्भागवत्' का हुआ है जिसके कर्त्ता के रूप में व्यास का उल्लेख सूरदास ने किया है[२४]। संपूर्ण ग्रंथ में बारह स्कंध होने की बात भी उन्होंने लिखी है[२५]। उसकी रचना के आधार की चर्चा भी सूरदास ने की है[२६]। 'श्रीमद्भागवत' के वक्ता-श्रोता के रूप में परब्रह्म, ब्रह्मा, नारद, व्यास, शुकदेव, परीक्षित, सूत-शौनक, विदुर आदि का उल्लेख भी 'सूरसागर' में मिलता है[२७]। नंददास ने 'श्रीमद्भागवत' को 'निगम-सार' कहा है[२८] और सूरदास ने उसे वेद तथा गीता के समकक्ष माना है[२९]। सभी अष्टछापी कवियों ने 'भागवत' के माहात्म्य का बखान बड़ी श्रद्धा से

ग. परमानंद 'बेद मारग की मरजादा' गई टूट—परमा० ७२२।
२२.क. तब दारुक संदेस सुनायौ। कह्यौ, हरि जू जो 'गीता' गायौ—सा० १-२८६।
ख. सांख्य तत्व 'गीता' हरि कीन्हीं गुन के भेद करायो—सारा० ८४५।
२३. 'गीता-बेद-भागवत' मैं प्रभु, यौं बोले हैं आथ—सा० १-१६६।
२४. अंतरदाह जु मिट्यौ ब्यास कौ इक चित ह्वै 'भागवत' किऐं—सा० १-८६।
२५. ब्यास कहे सुकदेव सौं 'द्वादस स्कंध' बनाइ—सा० १-२२५।
२६. भई अकास बानी तिहिं बार। तू ये 'चारि स्लोक' बिचार।
इन्हैं बिचारत ह्वै है ज्ञान। ऐसी भाँति कह्यौ भगवान।
'ब्रह्मा' सो 'नारद' सौं कहे। 'ब्यास' सोइ 'नारद' सौं लहे।
ब्यास कह्यौ मोसौं बिस्तार। भयौ 'भागवत' या परकार।
सोई अब मैं तोसौं भाषौं। तेरे हृदै न संसय राखौं।
'मूल भागवत के येइ चारि'। सूर भली बिधि इन्हैं बिचारि—सा० २-३७।
२७.क. श्रीमुख 'चारि स्लोक' दए ब्रह्मा को समुझाइ।
'ब्रह्मा' 'नारद' सौं कहे, 'नारद' 'ब्यास' सुनाइ।
'ब्यास' कहे 'सुकदेव' सौं द्वादस स्कंध बनाइ—सा० १-२२५।
ख. ब्यास कह्यौ जो सुक सौं गाइ। कहौं सो सुनौ संत चित लाइ।
ब्यास पुत्र-हित बहु तप कियौ। तब नारायन यह बर दियौ।
ह्वै है पुत्र भक्त अति ज्ञानी। जाकी जग मैं चलै कहानी—सा० १-२२७।
२८. 'श्री भागवत' सुभ नाम, परम अभिराम, परम गति।
'निगम-सार', सुकुमार, बिना गुरु-कृपा अगम अति—नंद०, रास०, पृ० १५६।
२९. 'गीता, बेद, भागवत' में प्रभु यौं बोले हैं आथ—सा० १-१६६।

किया है[३०]। परमानंददास की सम्मति में यदि 'भागवत' पुराण और गोपियों का प्रेम न होता तो सब 'औघड़-पंथी' हो जाते[३१] और छीतस्वामी का मत है कि जब तक 'श्रीमद्भागवत' के कथा-रस में जन-समाज की रुचि है तब तक 'कलियुग' हो ही नहीं सकता[३२]। इसीलिए सूरदास कहते हैं कि यदि नर-जन्म पाकर 'भागवत' नहीं सुनी तो जीवन में किया ही क्या, अर्थात् सारा जीवन व्यर्थ ही हो गया[३३]।

अष्टछापी कवियों में सूरदास ने 'श्रीमद्भागवत' का आधार लेकर काव्य-रचना करने की बात कई पदों में लिखी है[३४]। परंतु इतना होने पर भी 'सूरसागर' किसी भी दृष्टि से 'श्रीमद्भागवत' का अनुवाद नहीं है; इस महत्वपूर्ण ग्रंथ से केवल कुछ कथा-सूत्र ही सूरदास ने लिये हैं। हाँ, नंददास ने अवश्य 'भागवत' का अनुवाद किया था जिसका सकारण उल्लेख उन्होंने 'दशम-स्कंध' के आरंभ में कर दिया है[३५]। अन्य कवियों में गोविंदस्वामी के कुछ पदों पर 'भागवत' का प्रभाव इतना

३०.क. 'श्री भागवत' सुनै जो कोइ। ताकौं हरि-पद-प्रापति होइ।

× × ×

सुनै 'भागवत' जो चित लाइ। सूर सो हरि भजि भव तरि जाइ—सा० १-२३०।

ख. 'श्रीभागवत' सुनै जो हित करि, तरै सो भव-जल पार—सा० १-२३१।

ग. 'श्रीभागवत' स्रवन सुनि नित इन तजि चित कहुँ अनत न लाऊँ—परमा० ६०१।

३१. जो गोपिनि को प्रेम न होतौ 'अरु भागवत पुरान'।
तौ सब औघड़ पंथहि होतो कथत गमैया ज्ञान—परमा० ८२४।

३२. जब लगि 'श्रीभागवत' कथा रस, तब लगि कलियुग नाहीं—छीत० ४२।

३३. नर तैं जनम पाइ कह कीनो ?
'श्रीभागवत सुनी नहिं स्रवननि', गुरु गोबिंद नहिं चीनौ—सा० १-६५।

३४.क. कहौं सु कथा, सुनौ चित धारि। सूर कह्यौ 'भागवतऽनुसारि—सा० १-२८५।

ख. सूर कह्यौ क्यौं कहि सकै, जन्म-कर्म अवतार।
कहे कछुक गुरु-कृपा तैं 'श्रीभागवतऽनुसार'—सा० २-३६।

ग. तिन हित जो जो किये अवतार। कहौं सूर 'भागवतऽनुसार'—सा० ३-६।

घ. कर्दम कै भयौ कपिलऽवतार। सूर कह्यौ 'भागवतऽनुसार'—सा० ३-१२।

ङ. ताकैं भयौ दत्त अवतार। सूर कहत 'भागवतऽनुसार'—सा० ४-२।

च. बरन्यौ रिषभदेव-अवतार। सूरदास 'भागवतऽनुसार'—सा० ५-२।

छ. सुक नृप सौं ज्यौं कहि समुझायौ। सूरदास त्यौंही कहि गायौ—सा० ६-८।

३५. परम बिचित्र मित्र इक रहे, कृष्न चरित्र-सुन्यो सो चहै।

अधिक है कि वह इसके तद्विषयक वाक्यों का अनुवाद ही जान पड़ता है[३६]।

'श्रीमद्भागवत' के अतिरिक्त सत्रह पुराण और माने गये हैं[३७] जिनका उल्लेख अष्टछापी कवियों ने कभी तो केवल 'पुरान'-रूप में अपने काव्य में किया है[३८] और कभी 'अठारह पुरान' कहकर 'वेदव्यास' को उनका रचयिता बताया है[३९]। 'वेदों' के साथ भी 'पुराननि' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है[४०]।

तिन कही दसम स्कंध जु आहि, भाषा करि कुछ बरनौं ताहि।
—नंद०, दशम०, पृ० १६६।

३६.क. अहो पिय, कैसे मृदुल चरन धरनि।
गिरि की काँकरी अति कठिन तृन अंकुर रसनाधर जियहिं,
सुधि-सुधि करि-करि छतियाँ जरनि।
सरसि सुजात गरभ की खिय मुसत हमारे कठिन उर,
सहसा ही न धरि सके उरनि—गोविं० ३५७।

ख. शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा।
× × ×
यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः-शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु
—'श्रीमद्भागवत', दशम स्कंध, अ० ३१, श्लो० २ और २६।

ग. बेनु बजावत री मोहन कल।
बाम कपोल भुज पर धरि बलगित भुव रस चपल दृगंचल।
सिंदूरारुण अधर सुधारस पूरत रंध्र मृदुल अँगुलीदल—गोविं० ४२०।

घ. मोहत ब्योम बिमान बनिता खसित नीबी सुध्यौ न अंचल—गोविं० ४२१।

ङ. वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम्।
कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः।
व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः।
काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः।
—'श्रीमद्भागवत', दशम०, अध्याय ३५, श्लो० २-३।

३७. अठारह पुराण ये हैं—ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, श्रीमद्भागवत, नारद, मार्कंडेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़, और ब्रह्मांड—लेखिका।

३८. तैं नर का 'पुरान' सुनि कीना। अनपायनी भगति नहिं उपजी, भूखे दान न दीना।
—परमा० ६०६।

३९. बहुरि 'पुरान अठारह किये'। पै तउ सांति न आई हिये—सा० १-२३०।

४०.क. 'बेद पुरान श्री भागवत' भाखे करत भगत मन भायो—परमा० ८२१।

अठारह पुराणों में से 'श्रीमद्भागवत' के अतिरिक्त केवल 'पद्म पुराण' का उल्लेख परमानंददास के एक पद में मिलता है[४१]।

घ. *अन्य ग्रन्थ*—इस वर्ग के ग्रंथों में प्रथम है 'महाभारत' जिसका उल्लेख सूरदास ने किया है[४२]। दूसरा उल्लेख है 'शास्त्रों' का जिनकी संख्या 'छह' होने की बात 'सूरसागर' में कही गयी है[४३]। हरिपद में चित्त लगाना ही सूरदास ने सभी 'शास्त्रों' का सार बताया है[४४]। 'तंत्र' और 'सतकोटि रामायन' का उल्लेख 'सारावली' में मिलता है[४५]। अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित अंतिम ग्रंथ है 'अमरकोश' जिसके आधार पर नंददास ने 'मान-मंजरी' नामक 'शब्दकोश' का निर्माण किया था[४६]।

ख. बदै 'बेद-पुरान' छिनु-छिनु साँझ अरु परभात—परमा० ८६५।
ग. द्वै बाप सबै कोऊ जानै जाहि 'बेद पुरान-बखानै'—परमा० ६२६।
घ. 'बेद पुराननि' खोजि कै, नहिं पायौ गुन एक—नंद०, भँवर०, पृ० १२७।

४१. 'पदम पुरान' कथा यह पावन धरनी प्रति बाराह कही।
तीर्थ महातम जानि जगतगुरु सों परमानंददास लही—परमा० ५७६।

४२.क. भक्तबछल श्री जादवराइ।
भीषम की परतिज्ञा राखी अपनौ बचन फिराइ।
'भारत' माहिं कथा यह बिस्तृत, कहत होइ बिस्तार—सा० १-२६७।
ख. फिरि द्रौपदी भवन में आई श्रीहरि लज्जा राखी।
'बेद पुरान तंत्र भारत' में कही बहुत बिधि भाखी—सारा० ७७०।

४३. सार बेद चारों को जोइ। 'छैऊ सास्त्र' सार पुनि सोइ।
सर्ब पुरान माहिं जो सार। राम-नाम मैं पढ्यौ बिचार—सा० ७-२।

४४. तब भृगु आदिक रिषि सकल रहे हरि-पद चित लाइ।
'सर्ब सास्त्र कौ सार', सार इतिहास सर्व जौ—सा० ११७५।

४५.क. बेद-पुरान-'तंत्र'-भारत में कही बहुत बिधि भाखी—सारा० ७७०।
ख. ब्यास पुरान प्रगट यह भाख्यौ 'तंत्र' ज्योतिषिनि जान्यौ—सारा० १०९१।
ग. रामचरित बरनन के कारन बाल्मीकि अवतार।
तीनों लोक भये परिपूरन रामचरित सुखसार—सारा० १५४।
घ. 'सतकोटी रामायन' कीनों तऊ न लीन्हों पार।
कह्यो बसिष्ठ मुनि रामचन्द्र सों 'रामायन' उच्चार—सारा० १५५।

४६. समुझि सकत नहिं संस्कृत, जान्यौ चाहत नाम।
तिन लगि नंद, सुमति जथा, रची नाम की दाम।

समीक्षा—उपरोक्त सभी ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखे हुए हैं और जिस रूप में उनका उल्लेख अष्टछापी कवियों ने किया है उससे यह नहीं जान पड़ता कि उन्होंने सभी का विधिवत् अध्ययन किया होगा। इस दृष्टि से नंददास का कार्य अवश्य उल्लेखनीय है जिन्होंने 'श्रीमद्भागवत्' और 'अमरकोश' का बहुत अधिक आधार लेकर 'दशम स्कंध' और 'नाममाला' की रचना की। सूरदास ने 'भागवतानुसार' काव्य-रचना का उल्लेख करते हुए भी केवल कुछ कथा-सूत्र ही उससे लिये। हाँ, वेद, पुराण, गीता आदि से संबंधित, उन कवियों के उल्लेखों से इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि वे जिस वातावरण में रहकर काव्य-रचना करते थे, उसमें इनकी चर्चा बराबर हुआ करती थी और यही उक्त ग्रंथों के प्रति इन कवियों की श्रद्धा का कारण है।

२. *कला-संबंधी विचार*—

'कला' से तात्पर्य यहाँ 'ललित कला' से है जिसके मुख्य पाँच भेद हैं—वास्तु, मूर्ति, चित्र, संगीत और काव्य-कला। इन्हीं के संबंध में अष्टछापी कवियों के विचार यहाँ दिये जा रहे हैं।

क. *वास्तुकला*—अष्टछाप-काव्य में मुख्यत: राम और कृष्ण के उन भवनों की चर्चा है जो 'वास्तुकला' के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं। कंस की राजधानी मथुरा में कंचन के आवास होने का उल्लेख परमानंददास ने किया है[४७]। वृन्दावन, मथुरा, द्वारका, सभी स्थलों के भवनों के साथ 'छज्जे'[४८] और झरोखे' या 'गवाक्ष' और खिड़कियाँ होने की बात भी अष्टछापी कवियों ने लिखी है[४९]।

गुंथनि नाना नाम की, 'अमरकोस' के भाइ।
मानवती के मान पर, मिलैं अर्थ सब आइ—नंद०, मान०, पृ० ६१।

४७. मथुरा देखिये नँदनंदन।
'भले अवास रचे कंचन के' केसौ कंस-निकंदन—परमा० ४६४।

४८.क. 'छजनि तैं छूटतिं पिचकारी, रँगि गईं बाखरि महल अटारी—सा० २९०२।
ख. लाल गुलाल के खंभ मनोहर, 'छज्जेन' की छबि भारी—गोविं० १४५।

४९.क. जहँ तहँ उझकि 'झरोखा' झाँकति जनक नगर की नारि—सारा० २०७।
ख. छिनु-छिनु झाँकि 'झरोखनि' पेखी—गोविं० ३३२।
ग. देख्यौ स्याम 'गवाच्छ' पंथ ह्वै मथति एक दधि भोरी—सा० ८८१।

भवनों के 'कँगूरों' का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है[५०] और उनमें 'मणिखंभ' तथा 'मणिचौक' होने की बात भी कही गयी है[५१]। ऐसे भवनों की वास्तुकला का कदाचित् सर्वोत्तम उदाहरण सूरदास के निम्नलिखित वर्णन में मिलता है—

दिन द्वारावति देखत आवत।
बिद्रुम स्फटिक पची कंचन खचि, मनिमय मंदिर बने बनावत।
जितै तितै नर-नारि मीन खग, सबहिनि के प्रतिबिंब दिखावत।
जल थल रंग बिचित्र बहुत बिधि, अवलोकत आनंद बढ़ावत[५२]।

वास्तुकला के आदर्श-रूप में उपस्थित ऐसे भवनों को देखकर सुर-मुनि का मोहित होना भी सूरदास ने कहा है।

ख. *मूर्तिकला*—अष्टछापी कवियों के समय में मथुरा की मूर्तिकला कितनी उत्कृष्ट थी, इसका परिचय तत्कालीन मंदिरों में निर्मित देवी-देवताओं के साथ-साथ अन्यान्य सुन्दर मूर्तियों से लगता है[५३]। श्रीकृष्ण, राधा आदि की विविध क्रीड़ाओं तथा भाव-भंगिमाओं का भावपूर्ण और सजीव-जैसा अंकन उस युग की मूर्तिकला की ऐसी विशेषता है जो आज भी दर्शक के चित्त को मुग्ध कर लेती है। अष्टछाप-काव्य में तत्संबंधी वर्णन बहुत कम हैं, केवल 'पाहन की पूतरी'-जैसे उल्लेख कहीं-कहीं मिल जाते हैं[५४]।

घ. बार-बार 'खिरकीन' ह्वै झाँकति अति आतुर पुलकित मन—गोविं० ३१।

५०.क. स्रवननि सुनत रहत जाको नित सो दरसन भये नैन।
'कंचन कोट कँगूरनि' की छबि मानहु बैठे मैन—सा० २५५६।

ख. काँप्यो सिंधु 'कँगूरा' ढरियो लंका आगम जनायो—परमा० ३३७।

५१.क. आजु सखी 'मनि खंभ' निकट हरि, जहँ गोरस की गो री—सा० २८८५।

ख. खेल मच्यो 'मनि खचित चौक में'—चतु०, कीर्तन०, भाग० २, पृष्ठ ४।

५२. 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद ४१६५।

५३. *Besides the images of gods, goddesees, incarnations of Visnu in ten forms, the Mathura Sculptors were successful in incarving images of persons.—P. K. Acharya, 'Indian Culture and civilization', page 207.*

५४. 'पाहन पूतरी' भई, बैन न बदति और जरति कहाँ तैं—सा० २७८८।

ग. *चित्रकला*—अष्टछापी कवियों ने चित्रकला के संबंध में चलताऊ ढंग से ही कुछ संकेत किये हैं। सूरदास की एक गोपी मन बहलाने के लिए जब वीणा बजाती है जिसे सुनकर चंद्र-रथ के मृग मुग्ध होकर स्थिर रह जाते हैं, तब सिंह का 'चित्र' बनाने का प्रस्ताव सामने आता है जिसे देखकर मृग शीघ्रता से भाग चलें और दुखदायिनी रात्रि का अंत हो जाय[५५]। श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं को नाना वर्णों के बेल-बूटों आदि से अंकित करना[५६] भी चित्रकला का ही एक सामान्य रूप कहा जा सकता है जिसकी ओर सूरदास ने एक पद में संकेत किया है[५७]। इसी प्रकार 'चित्र की पूतरी' का उल्लेख चतुर्भुजदास ने किया है[५८]। सूरदास ने 'भीति' के बिना 'चित्र' न खीचे जा सकने की बात कही है[५९]।

घ. *संगीत-कला*—अष्टछापी कवियों ने 'संगीत' का स्थान चौंसठ कलाओं में माना है[६०]। इस कला का संबंध प्रमुख रूप से गायन, वादन और नर्तन, तीन कलाओं से रहता है; अतएव इन तीनों के संबंध में स्वतंत्र रूप से विचार करना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

अ. *गायन*—'नाद' संगीत का मूल है जिसमें चर, अचर, सभी को मोहने की शक्ति होती है और मृग तो 'नाद-प्रेम' पर अपने प्राणों की बलि तक दे देता

५५. मन राखन को बेनु लियौ मृग थाके उड़पति न चलै।
अति आतुर ह्वै 'सिंह लिख्यौ' कर जेहिं भामिनि को कर न टरै—सा० ३५४७।
५६. डा० विजयेन्द्र स्नातक, 'राधावल्लभ सम्प्रदाय—सिद्धांत और साहित्य', पृ० ५८९।
५७. राधा प्यारी कह्यौ सखिनि सों 'साँझी' धरो री माई।
बिटियाँ बहुत अहीरनि की मिलि गईं जहाँ फूल अथाऊ।
× × × ×
कर सों कर राधा सँग सोभित 'साँझी' चीती जाय।
—सूर०, कीर्तन०, भाग १, पृ० २६२।
५८. 'पुतरी सी लिखी चित्र नयो' नेह नयो मित्र—चतु० १०६।
५९.क. ऐसे कहैं नर-नारि।
'बिना भीति चित्रकारि' काहे को देखैं मैं कान्ह कहा कहौं सहिए।
—सा० वें० १२७३।
ख. 'जल बिनु तरँग चित्र बिनु भीतिहिं', बिनु चेतहिं चतुराई—सा० ३९३१।
६०. कला चौसटि्ठ, 'संगीत' सिंगार रस, कोक-बिधि-बंद प्रगटि भेद सै-सै री।
—सा० २४५३।

है[६१]। श्रीकृष्ण की मुरली के मोहक 'स्वर' को सुनकर गोपियों का घर-द्वार की सुधि भूल जाना नाद-शक्ति के प्रभाव का प्रत्यक्ष उदाहरण है[६२]। संगीतकला के नाद-पक्ष को दृष्टि में रखते हुए अष्टछापी कवियों ने अपने काव्य में 'ग्राम', 'मूर्च्छना,' 'तान', 'राग'[६३] आदि अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है[६४]। 'मूर्च्छना' आदि के मूल 'सप्तस्वरों' या 'सरगम' को साधकर ताल-लय की गति अपनाने का क्रम सूरदास ने बताया है[६५]। गति-भेद से सप्त स्वरों के मिलने से स्वर-संधान की बात कृष्णदास कहते हैं[६६]। कुंभनदास और चतुर्भुजदास[६७] तथा

६१.क. जैसे मगन 'नाद-रस' सारँग बधत बधिक बिन बान—सा० १-१६६।
 ख. बचन रसाल सुरति और भूली सुनि बन 'मुरलीनाद' कुरंगी—परमा० २४६।

६२. भवन रवन की सुधि न रही तनु 'सुनत सब्द' वह कान—सा० २४०६।

६३.क. 'ग्राम' संगीत के मूल स्वरों के समूह या सप्तक—स, रे, ग, म, प, ध, नी—को कहते हैं। एक ग्राम से दूसरे ग्राम तक पहुँचने में स्वरों का आरोह-अवरोह ही 'मूर्च्छना' और उन स्वरों का कलापूर्ण विस्तार संगीत में 'तान' कहलाता है। 'तान' का उपयोग गायन-वैचित्र्य की वृद्धि के लिए किया जाता है—लेखिका।
 ख. 'स्कंद-पुराण' के काशी खंड में सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना, उनचास तान, एक सौ एक ताल, छः राग और प्रत्येक राग की पाँच-पाँच पत्नी रागिनियों का उल्लेख हुआ है। फिर यह भी कहा गया है कि कहीं-कहीं राग-रागिनियों की कुल संख्या पैंसठ है'—मन्मथराय, 'प्राचीन-भारतीय मनोरंजन', पृ० २०६।

६४.क. तीन ग्राम, इकईस मूर्च्छना, कोटि उन्चास तान।
 सर्व कला ब्युत्पन्न सुघर अति, यह समसरि को आन—सा० १३५३।
 ख. सप्त सुर, तीनि ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना, बाइस सित मति राग मध्य रंग-रंग राख्यो सरगम प ध नि सा स स स स न न न न ध ध ध ध प प प प म म म म ग ग ग ग री री सा सा—गोविं० ४२३।

६५. 'सरगम' सुनी कैं साधि, 'सप्त सुरनि' गाई।
 अतीत अनागत संगीत बिच तान मिलाई।
 सूर तालऽरु नृत्य धाइ, पुनि मृदंग बजाइ—सा० १५३१।

६६. 'सप्त सुर' गति भेद मिलवत बेनु सुरत संधान—कृष्ण० हस्त० ३०।

६७.क. उरप तिरप लेत तान नागर नागरी।
 'सरिगम'-पध-धनि-गम-पधनि, उघटित सप्त सुरनि—कुंभन० ३५।
 ख. मुखर मधुकर निकर मिले मृदु सप्त सुर अधर पल्लव कुनित मुरलि अभिरामिनी।
 —चतु० ३२।

गोविंदस्वामी[६८] ने भी 'सप्त स्वरों' का उल्लेख किया है।

संगीत के मूल राग छह माने जाते हैं—भैरव, कौशिक, हिंदोल, दीपक, मेघ और श्री। कहीं-कहीं 'कौशिक' के स्थान पर 'मालकोष' का नाम मिलता है। रागिनियों की संख्या छत्तीस बतायी गयी है जिनका सूरदास ने भी उल्लेख किया है[६९]। चतुर्भुजदास के 'षटऋतु वार्ता' नामक ग्रंथ में ३६ रागिनियों के नाम ये बताये गये हैं—मलार, ललित, पंचम, आसावरी, भैरव, मालव, टोड़ी, कल्याण, गुर्जरी, मालवा, गौड़ी, बिलावल, धनाश्री, रंगीली, खंमाच, देशाख, कान्हरो, गौड़ मल्हार, केदारौ, षट्मंजरी, रामकली, गंधार, बराड़ी, कुंकुभ, कामोद, नट, गुनकनी, माधवी, देस, बिभास, हास, काफी, सोरठ, ईमन, जैजैवंती और सारंग[७०]। 'सारावली' में ३६ राग-रागिनियों के ये नाम गिनाये गये हैं—ललित, पंचम, खट, मालकोष, हिंडोल, मेघ, मालव, सारंग, नट, सावंत, भूपाली, ईमन, कान्हरौ, अड़ाना, नायकी, केदारौ, सोरठ, गौड़मलार, भैरव, विभास, बिलावल, देवगिरि, देशाख, गौरी, श्री, जैतश्री, पूर्वी, टोड़ी, आसावरी, रामकली, गुनकली, सुघराई, जैजवंती, सूहा, सिन्धूरा और प्रभाती[७१]। इन दोनों सूचियों में दिये गये रागिनियों के नामों में जैसा अंतर है, वैसा संगीत-शास्त्रियों में सदा से रहा है।

६८. षड्ज रिषभ गंधार 'सप्त सुरनि' मधिम तार लेत ग्र ग्र त त त त होरी।
—गोविं० ६३।

६९. 'छहो राग, छत्तीस रागिनी', इक-इक नीके गावै री—सा० १२३८।

७०. श्री प्रभुदयाल मीतल के 'अष्टछाप-परिचय', पृ० ३६४ में उद्धृत 'षटऋतु की वार्ता', पृ० १२।

७१. ललिता ललित बजाय रिझावति मधुर बीन कर लीने।
जानि प्रभात राग पंचम षट मालकोस रस भीने।
सुर हिंडोल मेघ मालव पुनि सारँग सुर नट जान।
सुर साँवत भूपाली ईमन करत कान्हरो गान।
ऊँछ अड़ाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन।
करत बिहाग मधुर केदारो सकल सुरनि सुख दीन।
सोरठ गौड़ मलार सोहिनी भैरव ललित बजायो।
मधुर बिभास सुनत बेलावत दंपति अति सुख पायो।
देवगिरी देसाख देव पुनि गौरी श्री सुखरास।
जैतसिरी अरु पूर्वी टोड़ी आसावरि सुखरास।

उक्त दो विशिष्ट स्थलों के अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य के अनेक पदों में विभिन्न राग-रागिनियों का उल्लेख हुआ है, जिनमें से प्रमुख के नाम अकारक्रम से ये हैं—अहीरी, असावरि या आसावरी, ईमन, कान्हरो, काफी, केदारो, गुंडमलार, गूजरि, गौड़ी, गौरी, टोड़ी, नटनारायण, मलार, मल्हार, मारू, मालव या मालवा, विभास, विलावल, श्री, सोरठ या सोरठी आदि[७२]।

रामकली गुनकली केतुकी सुर सुघराई गाये।
जै-जैवंती जगत मोहिनी सुर सों बीन बजाये।
सूआ सरस मिलत प्रीतम सुख सिंधु वीर रस मान्यो।
जानि प्रभात प्रभाती गायो भोर भयो दोऊ जान्यो।

—सारा० १०१२ से १०१८ तक।

७२.क. कान अँगुरिया घालि निकट पुर, राग 'अहीरी' गाई—सा० ३२१७।
ख. नीकौ बन्यो राग 'आसावरी'—परमा० २५०।
ग. सुर सावंत 'भूपाली ईमन' करत कान्हरो गान—सा० १०१३।
घ. राग 'कान्हरो' सप्त सुर राजत गावत गीत रसाल—गोविं० २११।
ङ. 'काफी' राग मुख गावैं मुरली बजाइ री—सा० २८८७।
च. गावत 'केदारो' राग सप्त सुरनि साजै—कुंभन० ३४।
छ. त त त त त त थेई-थेई कहि गावत 'केदारो' राग—गोविं० ६४।
ज. राग रागिनी संचि मिलाई गावै 'गुंड मलार'—सा० २२७६।
झ. 'राग गूजरि' समुद्र तांडव लास्य कला निधान—कृष्ण० हस्त० ३०।
ञ. बेनु पानि गहि मोको सिखावत मोहन गावन 'गौरी'—सा० २८७३।
ट. बन तें आवत गावत 'गौरी'—नंद०, पदा० ३३२।
ठ. 'गौरी' राग अलापत गावत मधुर-मधुर मुरली कलघोर—चतु० ८५।
ड. 'गौरी' राग अलापत गावत कहत भावते बोल—परमा० ६२३।
ढ. सुही सारंग राग 'टोड़ी'—सा० २८३१।
ण. बहुत प्रसन्न भए पिय प्यारी 'टोड़ी' राग बेनु धरि गायो—चतु० ३३०।
त. गावत 'नट नारायन' राग जुवति जन खेलत फाग—चतु० ७७।
थ. गावत 'नट नाराइन' राग मुदित देत चैन—कुंभन० ७४।
द. तत्थेई, तत्थेई, तत्थेई, तत्थेई भैरव राग मुरली बजावै—कृष्ण०, अष्ट०, मीतल०, ३३।
ध. चहुँ दिसि राग 'मलार' सप्तसुर मगन भए सब गावत—गोविं० १८०।
न. गरजत गगन दामिनी कौंधति राग 'मलार' जमाए—चतु० ११६।
प. तान मान सुगान गावें जम्यो राग 'मल्हार'—कुंभन० १२०।

'गायन' के साथ 'ताल' का भी ध्यान रखा जाता है। अष्टछाप-काव्य में झप, चर्चरी, त्रिवट और ध्रुव तालों का उल्लेख हुआ है[७३]।

अष्टछापी कवियों की एक विशेषता यह है कि उन्होंने अपना प्राय: समस्त काव्य विभिन्न राग-रागिनियों में गाया है। एक सूरदास के काव्य में ही अनेक राग ऐसे मिलते हैं जिनके लक्षण भी न मिलने की बात आलोचक कहते आये हैं[७४]। अतएव स्पष्ट है कि अष्टछापी कवियों का संगीत-विषयक शास्त्रीय ज्ञान बहुत ऊँचे स्तर का था और उनका काव्य भारतीय संगीत-शास्त्र को एक महत्वपूर्ण देन है जिसका उसी दृष्टि से मूल्यांकन निश्चय ही बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

आ. वादन—अष्टछाप-काव्य में राग-रागिनियों के समान ही अनेक वाद्य यंत्रों के, जिनको परमानंददास ने 'बाजे' भी कहा है,[७५] नाम मिलते हैं। चतुर्भुजदास ने पाँच बाजे एक साथ बजाये जाने की बात कही गयी है[७६]। अपने 'षटऋतु वार्ता' नामक ग्रंथ में उन्होंने इन ३६ वाद्यों के नाम लिखे हैं—बीनाचीन, मुरली, अमृतकुण्डली, जलतरंग, मदनभेरी, धौंसा, दुंदुभी, निसान, नगाड़ा, शंख, घंटा,

फ. चातक पिक झिल्लीगन दादुर सब मिलि 'मारू' गायौ—सा० ३३२८।
ब. 'मालव' राग अलापति, भामिनि लेत उरप नागर नागरी—कृष्ण० हस्त० ६५।
भ. गुन की रासि ताल जानि प्रमुदित राग 'बिभासहिं' गावति—कृष्ण०, सोम०, ३३।
म. कल गावत रति सुख भाव 'बिलावल' राग—कृष्ण०, सोम०, २१।
य. 'श्रीराग' में कान्ह मुरली बजावै—छीत० ११६।
र. सुही सारँग, टोड़ी, भैरव, 'सोरठी' केदार—सा० २८३१।
७३.क. छंद ध्रुवनि के भेद अपार, नाचति कुँवरि मिले 'झपतार'—सा० ११८०।
ख. 'झपताल' मिल्यो राग केदारो सप्त सुरन अवघर तान रंग रास्यो।
—कृष्ण०, सोम०, पदा० ५७।
ग. 'झपताल' में अवघर गति उपजावै—गोविं० ५८।
घ. राग केदारौ, 'चर्चरी' ताल साजै—छीत० ११८।
ङ. 'ताल त्रिवट', ततकार, चाँचर खेल मनाइए—कुंभन० ७२।
च. चर्बन ताम्बूल देत, 'ध्रुव तालहिं' गतिहिं लेत—कुंभन० ३५।
७४.क. डा० मुंशीराम शर्मा, 'सूर-सौरभ', द्वितीय भाग, पृ० ७।
ख. श्री प्रभुदयाल मीतल, 'अष्टछाप-परिचय', पृ० ३६२।
७५. 'पंच सबद बाजे बाजत' घर घर तें आयो टीको—परमा० २०।
७६. 'पंच सबद बाजे बाजत' धुनि दिसनि दिसनि हरि छाई—चतु० १५।

मुहचंग, सिंगी, खंजरी, ताल, षट्ताल, मंजीरा, मुहवरि, थारी, झालर, ढोल, ढप, डिमडिम, झाँझ, मृदंग, गिड़गिड़, पिनाक, रवाब, जंत्र, सहनाई, श्रीमंडल, सारंगी, दूधारी, करताल, तुरही और किन्नरी[७७]।

अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित विविध वाद्य यंत्रों को उनकी बनावट और बजाने के उपकरण या रीति की दृष्टि से, प्रमुख रूप से, चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—तत् या तार के बाजे, चमड़ामढ़े बाजे, ताल और सेखर वाद्य।

१. *तत् वाद्य*—इस वर्ग के वाद्य पीतल, लोहे के तार अथवा रेशमी या सूती डोरों से बँधे होते हैं जिन्हें लकड़ी, हाथीदाँत या मिजराब से बजाते हैं[७८]। अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित इस प्रकार के बाजों में अमृतकुंडली, किंन्नरी, जंत्र, तुंबुर, बीन या बीना, रवाब, सुर या स्वर अथवा श्रीमंडल आदि आते हैं[७९]।

२. *चमड़ामढ़े बाजे*—इस वर्ग के ढोल-जैसे चमड़ामढ़े बाजों में[८०] अष्टछाप-काव्य में आउज या आउझ, उपंग, चंग, डफ, डमरू, डिमडिमी, डौंड़ी, ढाढ़, दुंदुभी, धौंसा, निशान या निसान, पखावज, पटह, पनव, भेरि या भेरी, मृदंग,

७७. श्री प्रभुदयाल मीतल के 'अष्टछाप-परिचय' नामक ग्रंथ के पृ० ३६४ में उद्धृत, 'षटऋतु की वार्ता', पृ० १२।

७८. 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास', भाग १, खंड ४, पृ० ६५४-५५।

७९.क. 'अमृत कुंडली' औ सुरमंडल आउझ सरस उपंग—सा० २६१६।
ख. बाजत बीन रबाब 'किन्नरी' अमृतकुंडली जंत्र—सारा० १०७३।
ग. बाजत बेनु रबाब 'किन्नरी' कंकन नूपुर किंकिनि सारी—छीत० १२०।
घ. अब तो हाथ परी 'जंत्री' के बाजत राग दुलारी—सा० ३४४४।
ङ. अरु पिनाक किन्नरी श्रीमंडल मधुर 'जंत्र' बाजत मुख चंगा—चतु० ८६।
च. मुरली इक उपंग इक 'तुंबुर' इक रबाब भाँति सों बजावै—सा० २८८८।
छ. बाजत ताल मृदंग, झाँझ, डफ, आवज, 'बीना' किन्नरेस—चतु० ७१।
ज. बेनु, बीना, ताल उघटित मुरज, मृदंग 'रबाब'—कुंभन० १२०।
झ. बाजत बेनु 'रबाब' किन्नरी कंकन नूपुर किंकिनि सोरी—परमा० २३०।
ञ. मदन भेरि अरु राइ गिरिगिरी, 'सुरमंडल' झनकार—सा० २८६५।
ट. आस पास सुंदरि मिलि गावति 'श्रीमंडल' कल घोरैं—कुंभन० १११।

८०. 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास', भाग १, खंड ४, पृ० ६५४-५५।

मुरज या मुरंज, रुंज आदि का उल्लेख हुआ है[८१]।

३. *ताल-वाद्य*—पीतल, ताँबे या लकड़ी के बने वे बाजे इस वर्ग में आते हैं जो परस्पर चोट करके या अन्य किसी वस्तु से मधुर स्वर उत्पन्न करते हुए बजाये जाते हैं। अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित करताल, गिरगिरी, घंट या घंटा, झाँझ,

८१.क. बीना झाँझ पखाउज आउज और राजसी भोग—सा० ६-७५।
ख. बाजत 'आवझ' उपंग, बाँसुरी, मृदंग चंग—छीत० ५४।
ग. बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ मुरली मुरज 'उपंग'—परमा० ३८८।
घ. बाजत ताल मृदंग 'उपंग' जु बाँसरी—चतु० ७।
ङ. बेनु मुरझ उपचंग 'चंग' मुख चलत बिबिध सुरताल—परमा० २४८।
च. मधुर जंत्र बाजत मुख 'चंगा'—चतु० ८६।
छ. बाजै ताल मृदंग झाँझ 'डफ' मधि मुरली धुनि थोरी हो—गोविं० १२४।
ज. संख, बंस, झाँझ, 'डफ मृदंग ढोलना'—कुंभन० ७४।
झ. हर हँसत 'डमरु' बजाइ—सा० १०-१७०।
ञ. डिमडिमी 'पटह ढोल डफ' बीना 'मृदंग चंग' अरु तार—सा० २५०६।
ट. लौड़ी के घर 'डौंड़ी' बाजी जब बढ़्यो स्याम अनुराग—सा० ३०६५।
ठ. ढाढ़िन मेरी नाचै गावै, हौंहूँ 'ढाढ़' बजाऊँ—सा० १०-३७।
ड. ब्रजपुर बाजत सबही के घर ढोल 'दमामा भेरी'—परमा० २५५।
ढ. 'दुन्दुभी' बाजै गहगही रँग भीजी ग्वालिनि—सा० २८६७।
ण. 'भेरि दमामा धौंसा' कोऊ काहू न सँभार—गोविं० ११८।
त. 'ढोल निसान दुन्दुभी' बाजत—चतु० ८६।
थ. गल गरजो गोकुल में बैठे गरज 'निसान' बजाई—परमा० ८६७।
द. झाँझ, बीन, 'पखावज', किन्नरी, डफ 'मृदंग' बजाइए—कुंभन० ७७।
ध. ताल 'पखावज' बीन बाँसुरी, बाजत परम रसाल—गोविं० १७०।
न. ताल निसान 'पटह' बाजे बजें मधि 'मृदंग' धाँधल गंधेलें—गोविं० १२३।
प. मधुर खंजरी पटह 'प्रनव' मिलि सुख पावत रत भंग—सारा० १०७५।
फ. बाजत ढोल 'भेरि' और महुवर नौबत धुनि घनघोर बजाई—परमा० ३०६।
ब. बाजत दुंदुभी 'भेरी' पटह नीसान सोहाये—नंद०, पदा० ६, परि०, पृ० ३६४।
भ. रुञ्ज, मुख, 'डफ', बाँसुरी, 'भेरिनि' कौ भरपूरि—छीत० ५७।
म. 'मृदंग' मुरली बिबिध नाद सुखकारी—छीत० १३४।
य. बाजत ताल 'मृदंग' अघौटी बीना मुरली तान तरंग—कुंभन० ७२।
र. बाजत 'चंग मृदंग' अघौटी 'पटह' झाँझ झालर सिर घोरी—परमा० ३३३।
ल. धिधि कटि धिधि कटि 'मृदंग' मधुर-मधुर गाजै—गोविं० ६२।

झालरी, तार या ताल आदि बाजे इसी वर्ग के हैं[८२]। धातु या चीनी की सोलह कटोरियों या प्यालियों में जल भरकर बजाये जानेवाले 'जलतरंग' वाद्य का भी अष्टछापी कवियों ने उल्लेख किया है[८३]।

४. *सेखर वाद्य*—मुँह से फूँककर बजाये जानेवाले वाद्यों को 'सेखर वाद्य' कहते हैं[८४]। इस वर्ग के वाद्यों में अष्टछापी कवियों ने सबसे अधिक उल्लेख 'मुरली' या 'बाँसुरी' का किया है जिसे 'बंसी', 'बेनु' आदि और भी अनेक नाम उन्होंने दिये हैं[८५]। इसके अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित गोमुख, तूर, महुअरि या महुवरि, मुहचंग, विषाण, शंख, शहनाई, सिंगी आदि वाद्य भी 'सेखर' वाद्य-वर्ग के ही हैं[८६]।

व. बाजत ताल 'मृदंग' झाँझ 'डफ' मुरली 'मुरज' उपंग—परमा० ३८८।
श. रुञ्ज 'मुरज' डफ 'दुंदुभी' मन-कर कठताल सुरंग—गोविं० १२५।
ष. चहुँ दिसि तें बाजे बजे 'रुञ्ज मुरझ डफ' ताला हो—गोविं० ११७।
स. 'रुञ्ज मुरज' डफ बाँसुरी, भेरिनि कौ भरपूरि—छीत० ५७।
८२.क. बाजे बहुत बजावहीं डफ दुंदुभी 'कठताला' हो—गोविं० ११६।
ख. कंसताल 'करताल' बजावत सृङ्ग मधुर मुह चंग—सारा० १०७५।
ग. मदन भेरि अरु राइ गिरगिरी, सुरमंडल झनकार—सा० २६१७।
घ. मदन भेरि सुरबीन 'गिड़गिड़ी' झाँझि उपंग—चतु० ८०।
ङ. 'घंट' बजाय देव अन्हवायो—सा० १०-२६१।
च. बजत 'घंटा' ताल बीन झालरी संख, मृदंग मुरली—छीत० १३४।
छ. ताल मृदंग 'झाँझ' इंद्रिनि मिलि, बीना, बेनु बजायौ—सा० १-२०५।
ज. बाजत घंटा ताल, बीन 'झालरी' संख—छीत० १३४।
झ. मंगल बाजत 'झालर' ताल—परमा० ५६०।
ञ. बाजत 'ताल' मृदंग अधौटी बीना मुरली तान तरंग—कुंभन० २२।
ट. 'ताल' पखावज भेरि संख धुनि गावत—परमा० ३०४।
८३. सुर सुरमंडल 'जल तरंग' मिलि करत मोहिनी मंत्र—सारा० १०७३।
८४. 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास', भाग १, खंड ४, पृ० ६५४-५५।
८५.क. महुवरी चंग जो 'बाँसुरी' बजावत गिरिधर लाल—परमा० ३३४।
ख. 'बेनु' धरयो कर गोबिंद गुननिधान—चतु० १७२।
८६.क. एक पटह, एक 'गोमुख', एक आवझ, एक झालरी—सा० २४२५।
ख. बाजत 'तूर' बरना मिलि गावत लाल पाट बैठायो—परमा० १६।
ग. जागी महरि पुत्र मुख देख्यौ आनंद 'तूर' बजायौ—सा० १०-४।

३. *नृत्यकला*—प्राचीन भारतीय कलाओं में 'नृत्य' कला भी प्रमुख स्थान की अधिकारिणी है। इसमें संगीत के ताल और लय के अनुसार ही पैर की गति होती है, इसी कारण संगीत से इसका घनिष्ठ संबंध है। नर्तक की वेषभूषा भी विशेष होती है। 'चोलना' पहनना, 'फेंटा' बाँधना, नूपुर धारण करना आदि उसकी सज्जा के अंग हैं जिनसे सज्जित होकर नाद और ताल के अनुसार उसके नाचने का उल्लेख सूरदास ने एक विनय-पद में किया है[८७]। 'नृत्य' के बोलों के साथ संगीत के अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग सूरदास, नंददास, छीतस्वामी और गोविंदस्वामी के कुछ पदों में मिलता है[८८]। नृत्य के समय मृदंग आदि वाद्य बजने की बात भी

घ. 'महुवरी' चंग जो बाँसुरी बजावत गिरिधर लाल केलि रस—परमा० ३३४।
ङ. सृङ्ग बेत्र मुरली 'महुवरि' धुनि नीके सब्द सुनाए—चतु० ७४।
च. कंसताल कठताल बजावत सृङ्ग मधुर 'मुहचंग'—सारा० १०७५।
छ. बेनु 'बिषान' मुरलि धुनि कीनी संख सब्द सहनाई—सा० ३४७२।
ज. बजत घंटा ताल बीन झालरी 'संख'—छीत० १३४।
झ. ताल पखावज भेरि 'संख' धुनि गावत—परमा० ३०४।
ञ. घुरत निसान सबद 'सहनाई' बाजत है जो बधाई—परमा० २७।
ट. ताल मृदंग उपंग झाँझ डफ ढोल भेरि 'सहनाई'—गोविं० १०६।

८७. अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम-क्रोध कौ 'पहिरि चोलना', कंठ बिषय की माल।
महामोह के 'नूपुर बाजत', निंदा सब्द रसाल।
भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल।
तृष्ना 'नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल'।
माया को 'कटि फेंटा बाँध्यौ', लोभ-तिलक दियौ भाल—सा० १-१५३।

८८.क. होड़ा होड़ी नृत्य करें, रीझि-रीझि अंक भरें।
ना, ता, थेई, थेई उघटत हैं हरषि मन—सा० ११४६।
ख. बेनु मधुर धुनि बोलत, थेइ-थेइ संगहि नाच नचाए—सा० ३६५७।
ग. तत थेई ता ता थेई सब्द सकल उघट,
उरप तिरप गति परै पग की पटक—नंद०, पदा०, पृ० ३३३।
घ. नागर नंदलाल कुवँर मोरनि संग नाचै।
कूजत कटि किंकिनि, कल नूपुर पग साँचै।
उरप तिरप सुलप लेत, धरत चरन साँचै।
बार-बार हरखि निरखि चंचल गति राँचै—छीत० ८०।

इन कवियों ने लिखी है जिनकी ध्वनि के अनुसार ही 'नृत्य' चलता है[९]।

रासलीला के नृत्य का विस्तृत वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने किया है[१०]। कृष्णदास ने 'तांडव' और 'लास्य' नृत्यों की भी उसी प्रसंग में चर्चा की है[११]।

समीक्षा—गायन, वादन, और नृत्यकला-संबंधी अष्टछापी कवियों के जो अवतरण ऊपर दिये गये हैं उनको लेकर यद्यपि तद्विषयक पारिभाषिक शब्दों और सामान्य बातों की ही चर्चा की गयी है, तथापि उतने से ही प्रत्यक्ष है कि संगीत के इन तीनों अंगों का उनको असाधारण ज्ञान था। इसके फलस्वरूप ही उनके गेय पदों

ङ. अग्रतकिट ध्रुं ध्रुं ध्रुं ध्रुं ध्रुं ध्रुं ध्रुं ध्रुं न न न न नृत्तत रसिक वर आवत गोधन संग।
लाल काछनी कटि किंकिनी पग नूपुर रुनझुनात सीस टिपारो अति खरोई सुरंग।
उरप तिरप चंद चाल मुरलिका मृदंग ताल, संग मुदित गोप बाल गावत तान
तरंग—गोविं० ३५६।

८९.क. सुर तालऽरु नृत्य ध्याइ, पुनि मृदंग बजाई—सा० ११५१।

ख. नृतत रास रंगा रसिक रस भरे हो।
सुलप संच गति लेत ग्र ग्र त त तत थेई-थेई बाजत मृदंगा।
ताल तंत्र किन्नरी कातर भेद तैसीए उठत धुनि सरस उपंगा—गोविं० ५६।

ग. गिड़ि गिड़ि थुंग थुंगनि तकिटि थुंगनि।
एक चरन कर सों भले-भले बहु मृदंग बजावैं।
दूसरे कर चरन सों कठताल त्रिकटि झं-झं।
झपताल में अवघर गति उपजावैं—गोविं० ५८।

९०.क. सप्त सुरनि की जाति अनेक, नीकैं मिलवति राधा एक, मन मोह्यो पिय कौ सुघर।
छंद ध्रुवनि के भेद अपार, नाचति कुँवरि मिले झपतार, कह्यौ सबै संगीत में।
—सा० ११८०।

ख. रास रच्यौ कान्ह तट कलिंद-नंदिनी।
निर्तत जुवती समूह रागरंग अति कुतूह—कुंभन० २७।

ग. रास मंडल मध्य मंडित मदन मोहन अधिक सोहत लाड़िली रूप-निधान।
हस्तकमल चरन चारु नृत्यत आछी भाँति मुख हास भ्रू - बिलास नैननि ही में
मान—परमा० २३१।

घ. रास रंग नृत्य मान अद्भुत गति लेत तान—कुंभन० ३४।

ङ. नृत्यत गुनी अनेक गुन भरे गावत जिय ह्वै-ह्वै आवेस—चतु० ७१।

९१. तांडव लास्य बिहार चलत सप्त सुरन सह तान चलो।
—कृष्ण०, कीर्तन-सं०, भाग २, पृ० ४१।

का संगीत-प्रेमियों में बहुत शीघ्रता से प्रचार हो सका जिससे ब्रजभाषा के क्षेत्र-विस्तार में भी बहुत सहायता मिली।

३. *विज्ञान*—साधारणतया गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि के अतिरिक्त भौतिक, रसायन, वनस्पति, प्राणि, भूगर्भ आदि शास्त्रों की गणना 'विज्ञान' के अंतर्गत की जाती है। अष्टछापी कवियों ने इनमें से सर्वाधिक वर्णन 'ज्योतिष विज्ञान' का किया है। नंददास ने तो 'ज्योतिष शास्त्र' को 'अतीन्द्रिय ज्ञान' कहा है[९२]। 'ज्योतिषी' का मुख्य कार्य जन्मपत्र आदि बनाकर लग्नफल बताना, विभिन्न संस्कारों और मंगल-कार्यों के अवसर पर उनके लिए शुभ 'मुहूर्त' शोधना आदि कहा जाता है। सूरदास ने कृष्ण के जन्म के अवसर पर नंद जी के यहाँ 'आदि ज्योतिषी' के आने और 'लग्न सोधकर' तथा 'जोतिष गिनकर' फल सुनाने की बात कही है[९३]। संवत, तिथि, वार, पक्ष, घड़ी आदि की गणना करके ज्योतिषी जी शिशु का भविष्य फल बताते हुए कहते हैं कि 'वृष' लग्न में जन्म होने और 'निसिपति' के उच्च होने से इनको सदैव 'तन' का सुख मिलेगा। 'सिंह राशि के दिनकर' होने से सकल 'मही' ये जीत लेंगे। 'बुध' में 'कन्या' के 'जोग' के फलस्वरूप उनके अनेक 'पुत्र' होंगे। 'तुला राशि' से युक्त 'शुक्र' के कारण इनके शत्रु नहीं 'रहने' पायँगे, सातवें घर में 'राहु' के फलस्वरूप ये उच्च तथा नीच कुल की अनेक युवतियाँ 'करेंगे'। 'भाग्य-भवन' में 'मकर' और 'महीसुत' होने से ये बहुत ऐश्वर्य बढ़ायँगे, 'लाभ' स्थान में 'मीन' तथा 'बृहस्पति' के रहने से इनके यहाँ नवनिधि सदैव वास करेंगी। 'कर्म' स्थान का 'ईश' 'सनीचर' होने से इनका वर्ण श्याम होगा[९४]।

९२. 'ज्योतिष सास्त्र जु अतींद्रिय ग्यान', ताके तुम ही बीज निधान।
पूर्व जन्म जु सुभासुभ करै, जा करि जंतु जगत संचरै।
—नंद०, दशम०, पृ० २२६।

९३. (नंद जू) 'आदि जोतिषी' तुम्हरे घर कौ, पुत्र-जन्म सुनि आयौ।
'लगन सोधि सब जोतिष गनि कै', चाहत तुमहिं सुनायौ—सा० १०-८६।

९४. संबत सरस बिभावन, भादौं आठैं तिथि बुधवार।
कृष्न पच्छ, रोहिनी, अर्ध निसि, हर्षन जोग उदार।
बृष है लग्न, उच्च के निसिपति, तनहिं बहुत सुख पैहैं।
चौथे सिंह रासि के दिनकर, जीति सकल महि लैहैं।
पचएँ बुध कन्या कौ जौ है, पुत्रनि बहुत बढ़ैहैं।

चतुर्भुजदास ने भी कृष्ण के जन्म के अवसर पर नक्षत्र, लग्न आदि ज्योतिष-संबंधी बातों का उल्लेख किया है[९५]। परमानंददास ने कृष्ण के 'कर्ण-वेध' संस्कार का शुभ मुहूर्त निकलवाने के लिए दो-चार निपुण ज्योतिषी बुलाये जाने की बात लिखी है जो 'गुरुबल', 'तिथिबल', 'नच्छत्र, 'वार', 'घड़ी' आदि की गणना करके मुहूर्त बताते हैं[९६]। एक अन्य पद में परमानंददास ने कृष्ण का 'हाथ देखकर' ज्योतिषी द्वारा भविष्य फल बताया जाना कहा है[९७]।

अष्टछापी कवियों ने ज्योतिष-संबंधी कुछ पारिभाषिक शब्दों की भी चर्चा की है। उदाहरणार्थ सूरदास की गोपियाँ 'दाहिने सूक' होने के बुरे योग के फलस्वरूप दुख पाने की बात कहती हैं,[९८] तो परमानंददास ने 'ज्येष्ठा नक्षत्र' को उत्तम और

छठएँ सुक्र तुला के सनि जुत, सत्रु रहन नहिं पैहैं।
ऊँच नीच जुवती बहु करिहैं, सतएँ राहु परे हैं।
भाग्य भवन मैं मकर महीसुत, बहु ऐश्वर्य बढ़ैहैं।
लाभ-भवन मैं मीन बृहस्पति, नवनिधि घर मैं ऐहैं।
कर्म-भवन के ईस सनीचर, स्याम बरन तन ह्वैहैं—सा० १०-८६।

९५. जदुकुल तिलक प्रगट प्रभु गोकुल, नंद महरि घर पूत।
बदि भादौं आयौ जुग द्वापर अर्धराति बुधवार।
बालव करन अरु नछत्र रोहनी जनमें जगदाधार।
द्वादस लगन सुभग नवग्रह उदित आपत मिति देखि—चतु० ५।

९६. गोपाल के वेध करन को कीजै;
गुरुबल तिथिबल नच्छत्र-बार-बलि सुभ घरी बिचार लीजै।
'गनिक निपुन द्वै-चारि बैठि कै मतो बिचार्यौ नीको'।
मुहूरत जामें दोष रहति सुख-सागर है जीको—परमा० ५३।

९७.क. सुनो हो जसोदा आज कहूँ ते गोकुल में इक पंडित आयौ।
अपने सुत को 'हाथ दिखावो' वह कहै जो बिधि निरमायौ—परमा० ५८।

ख. दै असीस कर धर कर देख्यौ सुनि बिलास नैनी सुत के गुन।
लोचन चिन्ह होइँ ये श्रीपति उदरदाम पावन सुभ बंदन।
हृदय सूत पग देत बहुत गुन भुव मंगल या सम नहिं कोऊ—परमा० ५८।

९८. कहाँ लगि मानिए अपनी चूक।
× × ×
सूरदास ब्रजबास बसीं हम मनहुँ 'दाहिने सूक'।
'भ्रमर-गीत-सार', संपा०, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पद० १६१।

शुभ बताया है[९९]।

वस्तुत: भारतीयों ने ज्योतिष शास्त्रीय ज्ञान में बहुत अधिक उन्नति की थी जिससे उनके निर्देशित फलों की सत्यता सभी को प्रभावित करती रही है। 'ज्योतिषी' के प्रति भारतीयों की श्रद्धा का यही प्रमुख कारण है। ज्योतिष शास्त्र का अष्टछापी कवियों ने इतनी लगन से जो वर्णन किया है वह भी इस बात का द्योतक है कि इस शास्त्र के प्रति भारतीय हिंदू समाज की सदैव से आस्था रही है। आज भी प्रत्येक शुभ कार्य और संस्कार के अवसर पर 'ज्योतिषी' सादर आमंत्रित किया जाता है।

समीक्षा—इतिहास में मुगलकाल विभिन्न कलाओं की उन्नति के लिए प्रसिद्ध है; विशेष रूप से उस युग की वास्तुकला के नमूने तो आज भी देशी-विदेशी कला-पारखियों और सौंदर्य-प्रेमियों के आकर्षण का केंद्र बने हुए हैं। अष्टछापी कवियों का तत्संबंधी वर्णन पढ़कर जान पड़ता है कि अपने युग की कला-विषयक प्रगति से वे कवि भलीभाँति परिचित थे। यद्यपि अष्टछापी कवियों के वर्णन से किसी प्रकार की प्रेरणा उस युग के कलाकारों को मिली हो, ऐसा तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, परंतु इतना निश्चित है कि कला-संबंधी जिस चरम आदर्श की कल्पना मानव-मस्तिष्क कर सकता है, उस तक पहुँचने का प्रयास अष्टछापी कवियों ने अवश्य किया और उसमें जो सफलता उन्हें प्राप्त हुई वह निस्संदेह असाधारण है।

९९. 'उत्तम ज्येष्ठ ज्येष्ठा नच्छत्र' होत अभिषेक भगतनि मन भायो—परमा० ७४०।

---

११ उपसंहार

'संस्कृति' की सरलतम परिभाषा है—'माँजी-सँवारी जीवन-वृत्ति तथा जीवन-चर्या'[1]। अष्टछाप-काव्य में चित्रित 'जीवन-वृत्ति और जीवन-चर्या' के विविध अंगों का ही पिछले पृष्ठों में परिचय दिया गया है। उसके आधार पर सांस्कृतिक चित्रण के संबंध में तीन बातों पर और विचार करना है—१. अष्टछापी कवियों का भारतीय संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण, २. विदेशी संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण और ३. सांस्कृतिक चित्रण की दृष्टि से अष्टछाप-काव्य का महत्व।

१. अष्टछापी कवियों का भारतीय संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण—

भारतीय संस्कृति की सर्वप्रमुख विशेषता है दृष्टिकोण की उदारता। अष्टछापी कवियों ने भी इस दृष्टिकोण का सदैव समर्थन किया है। उनके आराध्य जब अधम व्याध, गीध, गणिका अजामिल आदि को तारते हैं,[2] सबरी के जूठे बेर खाते हैं,[3] विभीषण-जैसे निशाचर से भरत की तरह मिलते हैं,[4] कपट करके मारने आनेवाली बकी या पूतना को बैकुंठ लोक भेजते हैं[5] और अपनी भक्त-वत्सलता के कारण किसी की जाति, गोत्र, कुल, पद, स्थिति आदि का ध्यान न करके सबको अपनाने को सदैव सहर्ष प्रस्तुत रहते हैं,[6] तब अष्टछापी कवियों का दृष्टिकोण संकुचित कैसे हो सकता था? जब उनके आराध्य स्वयं श्रीमुख से घोषणा

१. डा० बलदेवप्रसाद मिश्र, 'भारतीय संस्कृति', पृ० ५।

२. व्याध अरु गीध, गनिका, अजामील द्विज-चरन गौतम-तिया परसि पायो।
—सा० १-११६।

३. सबरी कटुक बेर तजि, मीठे चाखि, गोद भरि ल्याई।
जूठनि की कछु संक न मानी, भच्छ किए सत भाई—सा० १-१३।

५. रावन अरि कौ अनुज बिभीषन, ताकौं मिले भरत की नाईं—सा० १-३।

४. बकी कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुंठ पठाई—सा० १-३।

६.क. राम भक्त-बत्सल निज बानौं।
जाति, गोत, कुल, नाम, गनत नहिं, रंक होइ कै रानौं—सा० १-११।

ख. जन की और कौन पति राखै?
जाति-पाँति-कुल-कानि न मानत, बेद-पुराननि साखै—सा० १-१५।

करते हैं कि भक्त मेरे हैं और मैं भक्तों का हूँ तथा भक्तों को सभी प्रकार के संकटों से बचाने के लिए नंगे पैर 'धाने' को सदैव प्रस्तुत रहता हूँ,[७] तब अष्टछापी कवियों का भी समस्त मोह-भाव त्यागकर सबको समान रूप से प्रभु की भक्ति का अधिकारी समझने की उदारता दिखाना ही अपने परमाराध्य के प्रति निष्ठा का परिचायक हो सकता था।

दृष्टिकोण की यह उदारता यों तो प्रत्येक युग में भारतीय संस्कृति का अंग रही है, परंतु अष्टछापी कवियों-जैसे विदेशी शासनकाल में इसका महत्व बहुत बढ़ जाता है। धार्मिक कट्टरता और शक्ति के बल पर एक वर्ग दूसरे को अपने पथ पर लाने का प्रयत्न जिस युग में कर रहा हो, उस युग में प्रतिक्रिया-जन्य वैसा ही संकुचित दृष्टिकोण न अपना कर जहाँ अष्टछापी कवियों ने अपनी सहिष्णुता का परिचय दिया, वहीं उन्होंने भारतीय धर्म के उस संकुचित दृष्टिकोण का भी विरोध किया जो जन्म, कुल, गोत्र आदि की दृष्टि से उच्चता और नीचता की भावना का प्रचार और परिपालन करके राष्ट्रीय अहित का विष-बीज बोने की प्रेरणा दे रहा था। तात्पर्य यह कि अष्टछापी कवियों का दृष्टिकोण सांस्कृतिक दृष्टि से इतना उदार था कि धार्मिक भावों के प्रतिपादन और अभिव्यंजना के लिए लिखा गया उनका काव्य अपने युग में ही देशी - विदेशी जातियों और ऊँच-नीच वर्गों द्वारा पर्याप्त सम्मान पा सका।

२. *विदेशी संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण—*

अष्टछापी कवियों के प्रादुर्भाव-काल तक इस देश में इस्लामी संस्कृति का प्रचलन हुए लगभग तीन सौ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। दिल्ली, आगरा, मथुरा आदि सभी नगरों में इसलाम धर्मानुयायी बहुत समय से बस गये थे और उनकी संस्कृति की बहुत सी बातें जन-समाज में प्रचलित हो गयी थीं। परंतु गोकुल, वृन्दावन, गोवर्द्धन आदि स्थानों में, जो 'अष्टछाप' के परमाराध्य की क्रीड़ाभूमि थी, इसलामी

७. हम भक्तनि के, भक्त हमारे।
सुनि अर्जुन परतिज्ञा मेरी, यह व्रत टरट न टारे।
भक्तनि काज लाज जिय धरि कै, पाइ पियादे धाऊँ।
जहँ-जहँ भीर परै भक्तनि कौं, तहँ-तहँ जाइ छुड़ाऊँ—सा० १-२७२।

संस्कृति का प्रभाव अधिक व्यापक रूप से नहीं पड़ सका था जिसके फलस्वरूप अष्टछापी कवि भी उस प्रभाव से किसी सीमा तक बचे रहे। इसके मुख्यत: पाँच कारण हैं। पहली बात तो यह थी कि उन ग्रामीण क्षेत्रों का, युद्ध की दृष्टि से, विशेष महत्व न था; जिससे विदेशियों ने उनकी ओर नगरों-जैसा ध्यान न दिया। अतएव जनता के प्राचीन सांस्कृतिक विचार ही उन क्षेत्रों में अधिक प्रचलित रहे। दूसरे, अष्टछापी कवियों ने अपने को राजकीय प्रभाव से सर्वथा मुक्त रखने का प्रयत्न किया। अकबर से सूरदास और कुंभनदास की एक-आध बार भेंट की चर्चा प्राचीन वार्ताओं में मिलती है, तथापि इन कवियों ने सदैव 'संतन को कहा सीकरी सों काम'-जैसा आदर्श ही अपनाये रखा, कभी किसी ऐसी बात की कामना नहीं की जिसके लिए उन्हें घनिष्ठ रूप से राजकीय संपर्क में आना पड़ता।

तीसरे, अष्टछापी कवि अधिक पर्यटनप्रिय भी नहीं थे जो सुदूर प्रदेशों की यात्रा करते समय विदेशी संस्कृति से निकट से परिचित होने का अवसर पा सकते। चौथी बात यह कि श्रीनाथ जी के समक्ष ही उन कवियों के जीवन का अधिक भाग व्यतीत हुआ जहाँ हर समय भक्ति-चर्चा ही होती थी। पाँचवें, उन्होंने श्रीकृष्ण का जो पौराणिक आख्यान लेकर अपना काव्य रचा उसके मूल ग्रंथ 'श्रीमद्भागवत' का पारायण उनके निकट ऐसे नियमित रूप से होता था कि इतर विषयों के सोचने का कभी उनको अवकाश ही नहीं मिल सका। परिणाम यह हुआ कि अष्टछाप-काव्य का अंत: और वाह्य स्वरूप भारतीय सांस्कृतिक विचारों से ही निर्मित है, विदेशी संस्कृति की छाप उस पर नहीं के बराबर है।

इसलामी संस्कृति का यदि उनके काव्य में कोई रूप दिखायी देता है तो वह मुख्यत: उसमें प्रयुक्त भोज्य पदार्थों, वस्त्राभूषणों, बाजों आदि के लिए प्रयुक्त कुछ शब्दों के उल्लेख में मिलता है। वाणिज्य और व्यवसाय - संबंधी अरबी-फारसी के कुछ शब्दों से ज्ञात होता है कि अष्टछाप-काव्य-काल तक सामान्य वर्ग में उनका चलन हो गया था। इसी प्रकार अष्टछापी कवियों के काव्य में प्रयुक्त शासन-संबंधी विदेशी शब्दावली की अधिकता भी सूचित करती है कि भारतीय ग्रामीण क्षेत्र में भी उसका प्रवेश हो चुका था। फारसी के 'सरकार' शब्द को लेकर सूरदास की गोपियों का यह कहना कि 'अंधधुन्ध सरकार' कैसे और कब तक 'निबहेगी'[८] जहाँ उनकी

८. सूरदास ऐसी क्यौं निबहै, अंधधुंध 'सरकार'—सा० ३६०६।

राजनीतिक चेतना की ओर संकेत करता है, वहाँ इस बात का भी प्रमाण है कि 'सरकार'-जैसे शासन-संबंधी अनेक शब्दों को अपनाकर वे विदेशी संस्कृति के प्रति अपने विरोध-भाव का त्याग कर चुके थे। इसी प्रकार विदेशी 'सदका' जैसे शब्दों[९] के प्रयोग के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि जीवन के सामान्य व्यवहार में भी विदेशी शब्दों का प्रचार हो चुका था। कंस के 'दरबार' के लिए 'हजूर' शब्द का प्रयोग भी स्पष्टतः विदेशी संस्कृति के प्रभाव का प्रमाण है[१०]।

विदेशी शब्दों के प्रति अष्टछापी कवियों के दृष्टिकोण की उदारता का उदाहरण उन स्थलों पर विशेष रूप से मिलता है जहाँ वे अरबी के 'साहिब' शब्द का प्रयोग अपने परमाराध्य के लिए और फारसी के 'दरबार' शब्द का प्रयोग श्रीपति, राम, नंदराय आदि की आश्रय-दायिनी राजसभाओं के लिए[११] करते हैं[१२]। विदेशी संस्कृति के प्रति अष्टछापी कवियों के दृष्टिकोण की यह उदारता अपने आराध्य के लिए गो० तुलसीदास के 'साहिब' शब्द के प्रयोग में[१३] और अपने मान्य धर्मग्रन्थ के लिए सिक्खों के 'ग्रंथ साहब' प्रयोग में भी दिखायी देती है।

३. सांस्कृतिक चित्रण की दृष्टि से अष्टछाप-काव्य का महत्व—

साहित्य को समाज का 'दर्पण' कहने का तात्पर्य, स्थूल रूप से, यह है कि कवि-विशेष ने किसी भी युग की कथा को लेकर काव्य रचा हो, प्रसंगवश उसमें अनेक ऐसी बातों का भी उल्लेख हो जाता है जिनका संकलन करने पर कवि-काल का थोड़ा-बहुत परिचय सरलता से मिल सकता है। इसी प्रकार अष्टछापी

९. सूरदास प्रभु अपनैं 'सदका', घरहिं जान हम दीजै—सा० १५७४।

१०. जाइ सबै कंसहि गुहरावहु।
दधि घृत लेत छुड़ाए, आजु 'हजूर' बुलावहु—सा० १५१३।

११.क. दास ध्रुव कौं अटल पद दियौ, 'राम दरबारी'—सा० १-१७६।
ख. जाति पाँति कोउ पूछत नाहीं, श्रीपति कैं 'दरबार'—सा० १-२३१।
ग. राग रंग रँगि मँगि रह्यौ नंदराइ-'दरबार' —सा० २६०४।
घ. जहाँ राखो तहाँ रहूँ चरन तर परयौ रहूँ 'दरबार'—परमा० ८७५।
ङ. गृह-गृह तें गोपनि सबै आए राइ-'दरबार'—कुंभन० ३।

१२. तुम 'साहब' मैं ढाढ़ी—सा० १०-३६।

१३. गई बहोर गरीब नेवाजू सरल सबल 'साहिब रघुराजू'—मानस०, बाल०, दो० १३।

कवियों का अध्ययन करने पर तत्कालीन युग का परिचय प्राप्त कर लेना भी संभव समझकर प्रस्तुत प्रबंध लिखा गया है। ब्रजभाषा-कृष्ण-काव्य के आठ प्रमुख कवियों के काव्य के इस प्रकार के अध्ययन के लिए सुलभ होने से यह कार्य इस दृष्टि से और भी सुगम हो जाता है कि एक ही स्थान पर पर्याप्त समय तक साथ-साथ रहनेवाले और लगभग एक ही जैसा सांप्रदायिक दृष्टिकोण रखनेवाले आठ व्यक्तियों के अभिव्यक्त मतों का संकलन करने के पश्चात् निकाले गये निष्कर्ष किसी सीमा तक प्रामाणिक माने जा सकते हैं। इस प्रकार का अध्ययन इस कारण रोचक भी हो जाता है कि अष्टछाप के आठों कवियों की अवस्था में पर्याप्त अंतर था जिसका प्रभाव उनके काव्य पर पड़ना सर्वथा स्वाभाविक था।

इतना होने पर भी कुछ बातें ऐसी हैं जो प्रस्तुत अध्ययन-जैसे कार्य को कठिन बना देती हैं। सबसे पहली बात यह है कि अष्टछापी कवियों का दृष्टिकोण सामान्य कवियों के समान लौकिक नहीं था। फलस्वरूप उनके काव्य में समकालीन समाज का प्रत्यक्ष चित्रण नहीं मिलता। अपने आराध्य की ही लौकिक लीला का दर्शन दिन-रात के प्रत्येक पहर में करने के अभ्यस्त उन कवियों में लोक के प्रति एक प्रकार की उपेक्षा का ऐसा भाव आ गया था जिसने उन्हें प्रत्यक्ष जगत में ही नहीं, मानसिक जगत में भी प्रभु की जीवन-लीला के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्तित्व के संबंध में चिंतन और मनन करने से रोक रखा था। यही नहीं, स्वयं अपने ही इष्टदेव के जीवन की उन लीलाओं में अष्टछापी कवियों की अधिक रुचि नहीं थी जिनका प्रत्यक्ष संबंध लोक-जीवन से था और जिनके कारण भारतीय विचारधारा और चिंतन के इतिहास में वे लोकनायक और योगिराज के परम सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित किये गये हैं। इसी प्रकार उन कवियों के अध्ययन, चिंतन और मनन, कथा-चर्चा और वार्ता के ग्रंथ और विषय तक सीमित रहे जिसके फलस्वरूप लौकिक या सामाजिक चित्रण की दृष्टि से उनका दृष्टिकोण निश्चय ही सीमित हो गया। जीवन के सामान्य क्षेत्र में मर्यादा-निर्वाह की वैदिक रीति-नीति के उल्लंघन का जो वर्णन उनके काव्य में मिलता है, दार्शनिक दृष्टिकोण से यद्यपि उसका धरातल बहुत ऊँचा है, तथापि इसमें संदेह नहीं कि सामाजिक और लौकिक दृष्टि से वह ग्राह्य नहीं समझा गया है।

तीसरी बात यह है कि प्रायः समस्त अष्टछाप-काव्य गीति-काव्य के रूप में लिखा गया, जिसके लिए वर्णनात्मक प्रसंग उपयुक्त नहीं होते। स्वयं श्रीकृष्ण

के जीवन के ही विविध कथा-प्रसंगों को न अपनाकर घटनाओं के केवल आधार-सूत्रों को लेकर अष्टछापी कवियों ने पद रचे जो भाव-प्रधान और मार्मिक हैं। अतएव उनके काव्य में इतिवृत्तात्मकता-निर्वाह के लिए स्थान ही नहीं था और स्वयं उन कवियों की मनोवृत्ति भी उससे बचने की ही रही। सूरदास ने अवश्य कुछ पौराणिक प्रसंगों के साथ-साथ श्रीकृष्ण के जीवन की प्रमुख घटनाओं को विवरणात्मक विस्तार देने का प्रयत्न किया, परंतु वहाँ भी कवि की दृष्टि कथा की सीमित परिधि में ही घूमती रही, उस क्षेत्र के बाहर न जा सकी।

उक्त सब कारणों का परिणाम यह हुआ कि अष्टछापी कवि लोक और समाज के जीवन का प्रत्यक्ष चित्रण करने की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सके। फिर भी अष्टछाप-काव्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि व्रजप्रदेश के तत्कालीन जन-जीवन की गति-विधि का परिचय करानेवाली पर्याप्त उपयोगी सामग्री उन कवियों की रचनाओं में बिखरी पड़ी है। अष्टछाप के जिन कवियों, यथा गोविंद-स्वामी, छीतस्वामी, कुंभनदास और चतुर्भुजदास ने केवल कीर्तन-प्रसंगों, वर्षोत्सवों आदि पर ही विस्तार से लिखा, उनके काव्य के अध्ययन से केवल तत्संबंधी जानकारी ही हो सकती है; परंतु सूरदास, परमानंददास आदि ने उक्त विषयों के साथ-साथ अपने आराध्य की लीला के अनेक मनोरम प्रसंगों को लेकर उनके भावों का विस्तार करके अनेक पद रचे जिनसे व्रज-जन-जीवन के अनेक पक्षों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार सिद्धांत और दृष्टिकोण-संबंधी अनेक व्यवधानों के होते हुए भी अष्टछाप-काव्य, सामूहिक रूप में, अपने युग के समाज का इतना परिचय अवश्य देने में समर्थ है कि उसके आधार पर तत्कालीन जन-जीवन की अच्छी जानकारी हो सकती है।

प्रत्येक युग के सामाजिक जीवन में अनेक ऐसी बातें प्रचलित रहती हैं जिनका संबंध तत्कालीन परिस्थिति से रहता है और इसके परिवर्तित हो जाने पर वे बातें भी बदल जाती हैं। स्थायी न रहनेवाली ऐसी बातें जितनी नागरिक जीवन में मिलती हैं, उतनी ग्रामीण-जीवन में नहीं। कारण यह है कि भारत-जैसे कृषि-प्रधान देश में समाज-शरीर के हृदय वास्तव में ग्राम ही हैं, जहाँ विविध संस्कारों और परंपराओं की जड़ें, सहस्रों वर्षों तक उनके प्रचलन से, इतनी गहरी पहुँच गयी हैं कि उनमें सरलता से परिवर्तन नहीं होता। ऐसी परंपराएँ और मान्यताएँ दीर्घजीवी होती हैं। इसके विपरीत, जो बातें परिस्थिति-जन्य होती हैं, उनका जीवन

अल्प होता है और समय के बदलते ही वे भी स्मृति की क्षीण होती हुई रेखा छोड़कर लुप्त हो जाती हैं। अतएव युग-विशेष के समाज का चित्रण करते समय दूरदर्शी कवि को यह देखना होता है कि समाज में प्रचलित कौन सी बातें परंपरागत हैं और कौन सी परिस्थिति-जन्य। यदि वह परिस्थिति-जन्य बातों को आवश्यकता से अधिक महत्व देता है तो उसकी लोकप्रियता का क्षेत्र धीरे-धीरे समिति होता जाता है और यदि वह परंपरागत बातों को अपनाने की दूरदर्शिता दिखाता है तो उसके काव्य का महत्व अपेक्षाकृत स्थायी, और प्रचार का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है।

संतोष की बात है कि अष्टछापी कवि दूसरे वर्ग में आते हैं जिनकी दूरदर्शिता इसी एक बात से पूर्णतया प्रमाणित है कि ब्रज के सांस्कृतिक जीवन से संबंधित जिन बातों की चर्चा उन्होंने अपने काव्य में की है, उनमें से अधिकांश केवल ब्रजप्रदेश में ही नहीं, लगभग सारे उत्तरी-भारत के हिंदू गृहों में, जहाँ की जनभाषा हिंदी अथवा उसकी कोई विभाषा है, आज भी विद्यमान हैं। इस प्रकार हिंदी साहित्य में अष्टछाप-काव्य का, भारतीय इतिहास के सांस्कृतिक पक्ष के अध्ययन की दृष्टि से, महत्वपूर्ण स्थान है। कारण, मुस्लिमकालीन भारत का जो इतिहास विदेशियों ने अथवा शासन से संबंधित व्यक्तियों ने लिखा, उसमें तो सम्राट और उसके दरबार की चर्चा ही मुख्यतः की गयी है; प्रजा, और उसमें भी ग्रामीण हिंदू प्रजा की सांस्कृतिक स्थिति का चित्रण उनके क्षेत्र से सदा बाहर ही बना रहा। ऐसी स्थिति में विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध काल में ब्रज और निकटवर्ती प्रदेशों की संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने के प्रामाणिक साधनों में अष्टछाप-काव्य का निश्चय ही महत्वपूर्ण स्थान है।

सांस्कृतिक दृष्टि से अष्टछाप-काव्य का मूल्यांकन करते समय यह भी देखना चाहिए कि अष्टछापी कवियों का मुख्य ध्येय, वल्लभ-संप्रदायी सिद्धांतों का ध्यान रखते हुए अपने परमाराध्य की गोकुल-वृन्दावन-लीला के कुछ सरस प्रसंगों का गान मात्र है। यद्यपि वल्लभ-संप्रदायी सिद्धान्तों की छाप उनके काव्य पर पर्याप्त पड़ी है, तथापि सांप्रदायिक सिद्धांतों का विवेचन या प्रचार अथवा व्याख्या भी अष्टछापी कवियों की काव्य-रचना का लक्ष्य नहीं था। व्यक्ति जिस वातावरण में रहता है उसका कुछ प्रभाव उसके विचारों पर पड़ता ही है; फिर अष्टछापी कवि तो महाप्रभु और उनके सुपुत्र के प्रति अत्यंत पूज्य भाव रखते थे, उनके प्रवचन ही नहीं, उनका

प्रत्येक कथन बहुत ध्यान से सुनते और तदनुसार आचरण भी करते थे। ऐसी स्थिति में सांप्रदायिक सिद्धांतों की विवेचना या व्याख्या का कार्य यदि वे साग्रह ग्रहण करते तब भी कोई आश्चर्य की बात नहीं थी; और न उस युग को देखते हुए उस कार्य के लिए उन पर सांप्रदायिक दृष्टि से अनुदार होने का दोष ही लगाया जा सकता था; परंतु इष्टदेव की मधुरतम लीलाओं की तुलना में जब वैसा करना उन्होंने उचित नहीं समझा, तब यह आशा कैसे की जा सकती थी कि अपना प्रियतम विषय छोड़कर वे व्रज-जीवन के सांस्कृतिक पक्ष पर प्रकाश डालने को प्रवृत्त होते। अतएव उनके काव्य में तत्संबंधी जो उल्लेख मिलते हैं, वे प्रसंगवश ही आ गये हैं, जिससे वे तथ्य की दृष्टि से यथार्थ और समावेश की दृष्टि से नितांत स्वाभाविक हैं; उद्देश्य-विशेष से जोड़े या बढ़ाये गये काव्यांश नहीं।

अष्टछाप-काव्य 'श्रीमद्भागवत' का शब्दानुवाद अथवा छायानुवाद नहीं है, यद्यपि अनेक स्थानों पर, जैसा पीछे लिखा जा चुका है, अष्टछापी कवियों ने उसका अनुकरण करने अथवा आधार लेने की बात कही है। वस्तुतः हमारे आलोच्य कवियों ने कथा-सूत्र के साथ-साथ 'श्रीमद्भागवत' का सैद्धांतिक दृष्टिकोण ही अपने सामने रखा जिससे अपने तद्विषयक विचरण के लिए उन्होंने एक प्रकार से सीमा निर्धारित कर ली। काव्यात्मक भावव्यंजना और विषय-विस्तार के लिए उन कवियों ने सदैव पूरी स्वतंत्रता से काम लिया; यहाँ तक कि 'भँवर-गीत' और 'रास-लीला'-जैसे उन प्रसंगों के विशद विवेचन में भी स्वतंत्र उद्भावनाओं के अनेक उदाहरण अष्टछाप-काव्य में मिलते हैं, जिनका अपेक्षाकृत अधिक भाग 'श्रीमद्भागवत' के विवरण-क्रम के अनुसार ही है।

यही बात अष्टछापी कवियों के सांस्कृतिक चित्रण के संबंध में कही जा सकती है। वस्त्रों, आभूषणों, व्यंजनों, वाद्यों आदि की जो सूचियाँ अष्टछाप-काव्य में मिलती हैं, उनमें गिनायी गयी वस्तुओं में से अनेक 'श्रीमद्भागवत' में मिल जाती हैं; परंतु इस साम्य से अष्टछापी कवियों की मौलिकता का मान कम नहीं होता; क्योंकि उन वस्तुओं में से अधिकांश का चलन सोलहवीं शताब्दी में तो था ही, लगभग चार सौ वर्ष पश्चात् आज भी है। हमारे आलोच्य कवियों की तद्विषयक विशेषता इस बात में है कि 'श्रीमद्भागवत' की वस्तुओं के साथ उन अनेक नयी वस्तुओं का नामोल्लेख करना भी वे नहीं भूले जिनका प्रचलन पिछली कई शताब्दियों में अनेकानेक विदेशियों के आगमन से, उनकी संस्कृतियों के सम्मिलन

के फलस्वरूप हो गया था। वस्तुतः सूची-संग्रह के कार्य से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है स्त्री-पुरुष वर्गों के जीवन के विविध पक्षों की गति-विधि और उनके कार्य-कलाप का परिचय देना जिसके वर्णन में अष्टछापी कवियों ने सर्वदा स्वतंत्रता से काम लिया। सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से उनके काव्य का यही पक्ष उपयोगी है और इसकी मौलिकता के कारण वस्तुतः उनका प्रयास सर्वथा अभिनंदनीय समझा जाना चाहिए।

पिछले पृष्ठों में व्रजवासियों की पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, अध्यात्मिक, और कला-कौशल-संबंधी विचारधारा और स्थिति पर प्रकाश डालनेवाले जिन उदाहरणों का संकलन अष्टछाप-काव्य से किया गया है, उनके अधार पर तद्विषयक पूरी-पूरी जानकारी सहज ही हो सकती है। भारत में अभी तक जन-जीवन के सांस्कृतिक-इतिहास-लेखन का कार्य सुचारु रूप से आरम्भ नहीं हुआ है। जिस दिन ऐसा होगा, उस दिन उसके लेखक को विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के प्रथम पूर्वार्द्धकाल का सांस्कृतिक इतिहास लिखने के लिए अष्टछाप-काव्य से अत्यंत महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होगी और तभी काव्य-कला की दृष्टि से हिंदी साहित्य में उच्च स्थान के अधिकारी अष्टछापी कवि जन-जीवन की संस्कृति के सफल परिचायक के रूप में प्रतिष्ठित पद के अधिकारी समझे जायँगे।

नामानुक्रमणिका

(क) लेखक

अबुलफजल—७२, ७४।
अब्दुर्रहीम खानखाना—४१३।
आप्टे—२७
आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, डाक्टर—४८५।
ई. बी. टैलर—२८।
ईश्वरी प्रसाद, डाक्टर—४८६।
उमाशंकर शुक्ल—३३।
एफ. बर्नियर—५८, २२६, ५५०।
एम. आर. शर्मा—४८३, ४८४।
एस. लेनपूल—२०७।
कंठमणि शास्त्री—५४८, ५८६,
कबीर—५३२।
कात्यायन—४६३,
कालिकाप्रसाद—२६, १८७, ४८१।
कालिदास—४६, ५०, ५७, ७१, ७२, ७३, ७५, १००, १०४, २१६, ४६२, ५५१।
कुम्भनदास—लगभग प्रत्येक पृष्ठ में।
कृष्णदत्त वाजपेयी—४५।
कृष्णदास—लगभग प्रत्येक पृष्ठ में।
गोवर्द्धननाथ शुक्ल—३२।
गोविन्दस्वामी—लगभग प्रत्येक पृष्ठ में।
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, म० म०—४३१, ४४०, ४८१, ४८२, ४६३।
ग्राउज—४१।
चतुर्भुजदास—लगभग प्रत्येक पृष्ठ में।
चतुरसेन शास्त्री—४८६।
छीतस्वामी—लगभग प्रत्येक पृष्ठ में।
जगन्नाथदास 'रत्नाकर'—४४६।

टी. डब्ल्यू. ह्राइस डेविड्स—४४५ ।
तुलसीदास—१०१, १०३, १०४, १११, ११३, ३७६, ३८३, ३८६, ३८७, ३६३, ३६४, ३६६, ४०६, ४१०, ४११, ४२१, ४२४, ४४१, ४५४, ५४१ ।
दीनदयालु गुप्त, डाक्टर—३१, ३२, ३३, ४०, ४२, १५०, ५६३, ५८३ ।
द्वारकादास परीख—२७५, २७६, २८२, २८४ ।
धीरेन्द्र वर्मा, डाक्टर—३६ ।
ध्रुवदास—३४ ।
नंददास—लगभग प्रत्येक पृष्ठ में ।
नंददुलारे वाजपेयी, आचार्य—३१, ३२ ।
नाभादास—५३२ ।
परमानन्ददास—लगभग प्रत्येक पृष्ठ में ।
पाणिनि—४६३ ।
पी. के. आचार्य—२३०, ५६७ ।
प्रभुदयाल मीतल—३२, ३३, २७५, २७६, २८२, २८४, २८६, २८६, २६१, ६००, ६०२, ६०३ ।
प्रसन्नकुमार आचार्य, डाक्टर—४३१, ४३५, ४३८ ।
प्रेमनारायण टंडन, डाक्टर—३१, ४३३ ।
बलदेव प्रसाद मिश्र, डाक्टर—६१३ ।
बिहारी—१०३, १११, ११३, ४१०, ४४३ ।
ब्रजभूषण, गोस्वामी—३३, ५८६ ।
भूषण—४१२ ।
मंगलदेव शास्त्री, डाक्टर—२६ ।
मनूची—४८२ ।
मन्मथराय—५६६ ।
महाजन—४८२ ।
महादेव शास्त्री, दिवेकर—२८ ।
मलिक मुहम्मद जायसी—११४ ।
मल्लिनाथ—४६, ५०, ५७, ७१, ७३, ७५, १००, १०४ ।
मिश्रबंधु—३२ ।
मुंशीराम शर्मा, डाक्टर—३१, ५१४, ६०२ ।
मुकुंदीलाल—२६, १८७, ४८१ ।
मैथिलीशरण गुप्त, डाक्टर—३८२, ३८४ ।
मोतीचन्द्र, डाक्टर—१३६ ।
रमानाथ शर्मा, भट्ट—४६६, ५००, ५०४, ५०५, ५०७, ५१८, ५२७, ५३२ ।
राजवल्लभ—२६, १८७, ४८१ ।

रामचंद्र वर्मा—२६, १४१, १६५, २५५, ३५४, ४३२, ४३४।
रामलोचन शरण—३२।
रामचंद्र शुक्ल, आचार्य—३२, ६०६।
राधाकृष्ण दास—३४।
रामलाल पांडेय—५०, ५२, ६१, ६४, ६५, ६६, ६७, ८८, ७२, ७३, ७४, ७५, १४२, ४३३, ४३४, ४८३।
राधाकुमुद मुकर्जी, डाक्टर—४३०, ४४०, ४४२, ४८२।
राजबली पांडेय, डाक्टर—२०५, २३०, २३१, ४७६, ४८२, ४८६, ५८०।
लास्की, प्रोफेसर—२२६।
वाल्मीकि—२४६, २४८, २५४।
वासुदेवशरण अग्रवाल, डाक्टर—४६, ५४, ५८, ५६, ६२, ६६, ६७, ७३, ८७, ६६, १००, १०१, ११४, १३८, १६०, १६३, १६५, १६८, २०८, २१०, २१६, २२०, २२४, २५१, ३६८, ४२१, ४४१, ४४४, ४५०, ४६४, ४८३, ५४०, ५४३।
विजयेंद्र स्नातक, डाक्टर—५६८।
व्रजेश्वर वर्मा, डाक्टर—३१।
शांतिकुमार नानूराम व्यास, डाक्टर—१५१, २४६, २५७।
शिवदत्त ज्ञानी—१७८, २२६।
श्यामसुंदरदास, डाक्टर—२६, १८८।
सत्येन्द्र, डाक्टर—१६५।
सुनीतिकुमार चैटर्जी, डाक्टर—२३४।
सुदर्शनसिंह—२५६।
सूरदास—लगभग प्रत्येक पृष्ठ में।
सेठी—४८२।
सोमनाथ गुप्त, डाक्टर—३३, ३६२, ३६३, ३६३।
हरिराय—४६६।
हजारीप्रसाद द्विवेदी, डाक्टर—२६।
हरवंशलाल शर्मा, डाक्टर—३१
हीरेन्द्रनाथदत्त—२६।

(ख) ग्रंथ—

अणुभाष्य—४६६, ५६७ ।
अभिज्ञान शाकुन्तलम्—२१६ ।
अमरकोश—२३१, ५६६ ।
अशोक के फूल—२६ ।
अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—३१, ३३, ४०, ४२, ५६३, ५८३ ।
अष्टछाप-वार्ता—४६६ ।
अष्टछाप-पदावली (सोमनाथ गुप्त)—६६, १०७, १५०, १५३ ।
अष्टछाप-पदावली (मीतल)—३३, ३६२, ३६३, ३६२, ३६३ ।
अष्टछाप (काँकरोली)—३४, २५५, २५६, ४६५, ५०८, ५०६, ५१६, ५३२ ।
अष्टछाप-परिचय—३२, ६००, ६०२, ६०३ ।
अष्टछाप-संग्रह—३३ ।
आइने-अकबरी—५०, ५२, ६१, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ७२, ७३, ७४, ७५, १४२, २५१, ४३३, ४३४, ४८३ ।
आक्सफर्ड डिक्शनरी—२८ ।
आर्य संस्कृति का उत्कर्षापकर्ष—२८ ।
'इंडियन कल्चर'—२६ ।
'इंडियन कल्चर ऐंड सिविलीजेशन'—५६७ ।
'इंडिया ऐज नोन टू पाणिनि'—४६, ५४, ५८, ५६, ८१, ८६, ८७, ८६,६५, १४२, २३१, २३२, २३५, २५४, २५७, ४२४, ४३६, ४४२, ४५१, ४८३ ।
उद्धव-शतक—४४६ ।
'ए ग्रैमर आव पालिटिक्स' (राजनीति के मूल तत्व)—२२६ ।
ऋग्वेद—१६७, २२६, २३०, ४१८ ।
कबीर-वचनावली—५३२ ।
काँकरौली का इतिहास—५८६ ।
कृषक-जीवन—७५ ।
कृष्णदास (हस्तलिखित पद-संग्रह)—लगभग प्रत्येक पृष्ठ में ।
कृष्णाश्रय, षोडश ग्रन्थ—५०७ ।

कीर्तन-संग्रह (भाग १, २) लगभग प्रत्येक पृष्ठों में।
कुम्भनदास—(जीवनी और पद-संग्रह तथा भावार्थ) ३३।
कुमार-सम्भव—७२, ५५१।
गीतावली—३८३, ३८६, ३८७, ४१०।
गोविन्दस्वामी (जीवनी और पद-संग्रह)—३३।
'ग्लोरीज आव इंडिया आन इंडियन कल्चर ऐंड सिविलीजेशन'—२३०।
चतुःश्लोकी, षोडश ग्रंथ—५००।
चतुर्भुजदास—लगभग प्रत्येक पृष्ठ में।
चौरासी वैष्णवों की वार्ता—३६।
छीतस्वामी (जीवनी तथा पद-संग्रह)—३३।
जलभेद, षोडश ग्रंथ—५००।
जातककालीन भारतीय संस्कृति—४३६।
'ट्रैविल्स इन दि मुगल इंपायर'—५८, २२६, ५५०।
तत्वदीप निबंध—४६६, ५००, ५३२, ५६७, ५७१।
दो सौ वैष्णवों की वार्ता—३६।
दोहावली—१०१, ४११।
नंददास (दो भाग)—लगभग प्रत्येक पृष्ठ में।
नवरत्न, षोडश ग्रन्थ—५३२।
नारद भक्ति-सूत्र—५३४।
निरोध लक्षण, षोडश ग्रंथ—५१८।
पद्मावत, संजीवनी व्याख्या—७३, ६६, १००, १०१, ११४, १३८, २५१, ४२४, ४३६, ४४४, ४६४।
परमानंद-सागर—लगभग प्रत्येक पृष्ठ में।
पाणिनिकालीन भारतवर्ष—४२१।
प्राचीन भारतीय वेषभूषा—१३६।
प्राचीन भारतीय मनोरंजन—४६४, ५६६।
पोद्दार-अभिनन्दन-ग्रंथ—४०६, ५८६।
प्रामाणिक हिंदी-कोश—२६, १४१, १६५, ३५४, ३५५, ४३२, ४३४।
'प्रिमिटिव कल्चर'—२८।
बिहारी-बोधिनी—१०३, १११, ११३, ४१०, ४४३।
बौद्ध-भारत—४४५।
भक्त-नामावलि—३४।
भक्तमाल—५३२।
भक्ति-रसामृत-सिंधु—४६६।
भक्तिवर्द्धिनी, षोडश ग्रंथ—५०५।

भारतवर्ष का इतिहास—४८६ ।
भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी—२३४ ।
भ्रमर-गीत-सार—६०६ ।
भारतीय संस्कृति—१८८, २२६, ६१३ ।
भारतीय संस्कृति का इतिहास—४८६ ।
भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता—४३१, ४३५, ४३८ ।
भारतीय संस्कृति का विकास—२६ ।
भारतीय साधना और सूर-साहित्य—३१, ३२, ५१४ ।
'मथुरा मेम्वायर'—४१ ।
मनुस्मृति—२०४ ।
महाकवि सूरदास—३१, ३२ ।
मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—४३१, ४४०, ४८२, ४६३ ।
'मुगल इंपायर इन इंडिया'—४८३, ४८४ ।
मुगलकालीन भारत का इतिहास—४८२ ।
मुगलकालीन भारत—४८५ ।
मेडिवल इंडिया—२०७ ।
मेघदूत—७१ ।
यशोधरा—३८२, ३८४ ।
रघुवंश—४६२ ।
रहीम-रत्नावली—४१३ ।
रामचरित मानस—१०४, ३७६, ३६१, ३६३, ३६४, ३६६, ४१०, ४११, ४२१, ४२४, ४४१, ४५४, ५४१, ६१६ ।
रामलला नहछू—४१० ।
राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य—५६८ ।
रामाज्ञा प्रश्न—३६१ ।
रामायणकालीन संस्कृति—२३१ १५२, २४६, २५२, २५७, २५६, २६१, ३८६, ३६०, ३६६, ५४८ ।
'वाटर्स आन युवनच्वांग्स ट्रैविल्स'—४६३ ।
वाल्मीकि रामायण—२४६, २४८, २५४ ।
विनय-पत्रिका—४०६ ।
व्रज का इतिहास—४५ ।
व्रजभाषा सूर-कोश—४३३ ।
व्रजभाषा-व्याकरण—३६ ।
व्रज-लोक-साहित्य—३५१ ।
व्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन—१६५ ।

वृहत-हिंदी कोश—२६, १६५, १५५, ।
शिवा-बावनी—४१२ ।
शुक्रनीति—२३०, २३५, ४३६, ४८६ ।
षट्‌ऋतु की वार्ता—६००, ६०३ ।
संप्रदाय प्रदीपालोक—५४८ ।
साकेत—१०४, ४०६ ।
साहित्यलहरी—३२ ।
सिद्धांत मुक्तावली, षोडश ग्रंथ—४६६, ५२७ ।
सिद्धांत रहस्य, षोडश ग्रंथ—५०४ ।
सुबोधिनी—५८० ।
सूर की भाषा—३१ ।
सूर और उनका साहित्य—३१ ।
सूर-निर्णय—२७५, २७६, २८२, २८४, २८६, २८६, २६१ ।
सूर-विनय-पत्रिका—२५६ ।
सूरसागर—लगभग प्रत्येक पृष्ठ में ।
सूरसागर, वेंकटेश्वर प्रेस—लगभग प्रत्येक पृष्ठ में ।
सूर-सारावली—लगभग प्रत्येक पृष्ठ में ।
सूर-सौरभ—६०२ ।
सूर-साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन—३१ ।
स्कंदपुराण—५६६ ।
श्रीमद्‌भगवतगीता—५२८, ५७६ ।
श्रीमद्‌भागवत्—(दो भाग) ११६, २०६, २१३, २१५, ३५७, ३५८, ३६०, ३६१, ३६६, ३६७, ३६८, ५००, ५०३, ५०५, ५०८, ५२६, ५६६, ६२० ।
श्रीहरि भक्ति रसामृत-सिंधु—३६२, ५०२, ५०३, ५०५ ।
हरिवंश, विष्णु पर्व—३६ ।
हर्षचरित : सांस्कृतिक अध्ययन—५४, ५६, ६२, ६६ ६७, ८७, ६६, १६०, १६३, १६५, १६८, २०८, २१०, २१६, २२०, २२४, ३६८, ४४४, ४५०, ४६४, ५००, ५४०, ५४३ ।
हिंदी-नवरत्न—३२ ।
हिंदी शब्द-सागर—२६, १८८ ।
हिंदी साहित्य का इतिहास—३२ ।
हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास—२०५, २३०, २३१, ४७६, ४८२, ४८६, ५८०, ६०३, ६०५ ।
हिंदी साहित्य की भूमिका—७२, ४०६, ४१२ ।
हिंदू सभ्यता—४३०, ४४०, ४४२, ४८२ ।

(ग) पत्र

कल्याण, 'हिंदू संस्कृति अंक'—२७, २४४, ५३७ ।
कल्याण, 'साधनांक'—५१४ ।

